नवनीत

[हिन्दी डाइजेस्ट]

अप्रैल

पालन पोषण सही कीजिए;
बच्चों को बोर्नविटा दीजिए!

'नवनीत' के ग्राहकों को अपूर्व अवसर

आप 'नवनीत' का चंदा १ अप्रैल ७१ से २० मई ७१ तक भरकर सरस और ज्ञान-वर्धक सामग्री के वाचन का लाभ उठाने के साथ ही 'विजय पसंदगी हरिफाई' का प्रवेश-कूपन भी भेंटस्वरूप प्राप्त कर सकेंगे।

सोवियत संघ की

मुफ्त यात्रा और '१२४' विजय के जंगी पुरस्कार!

* पहला पुरस्कार—सोवियत संघ की यात्रा अथवा स्कूटर अथवा ३,३०० रुपये नकद।
* अन्य १२४ पुरस्कार—सिने कैमरा अथवा रेडियोग्राम, ४ बैंड ट्रांजिस्टर, कैमरा, घड़ियाल, प्रेशरकूकर, पेन सेट
* परिणाम १ जून १९७१ के दिन विजेताओं को डाक द्वारा भेज दिया जायेगा।

आप अपना और अपने स्वजनों का चंदा उपर्युक्त तिथि के अंदर नीचे लिखे किसी भी पते पर भेज दें। चंदे की राशि मिलते ही प्रवेश कूपन तुरंत भेज दिया जायेगा। (यह भेंट केवल भारत के ग्राहकों के लिए ही है)।

प्रकाशकों के प्रमोशन एजेंट :

विजय स्टोर्स

* २३१ दादाभाई नवरोजी रोड, पहला महला, कोमिसरियट बिल्डिंग, बम्बई १.
* ६२, कल्याण भुवन, रिलीफ रोड, अहमदाबाद—१
* स्टेशन रोड, आनंद

सेन्चुरी रेयॉन-
और भी आगे...
नये शानदार
सूत की खोज में

सुस्वागतम्।
सुस्वागतम्। करोमि स्वस्त्ययनानि ते।
सुस्वागतम्। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु।
ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं। भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्॥
सह नाववतु सह नौ भुनक्तु। सहवीर्यं करवावहै॥

आप खुद ही देखिए
आपके घरको
हिण्डालियम®
ने कितना आकर्षक
बना दिया है।
हिण्डालियम के बरतन खरीदने पर आपको
मिलती है—
चाँदी की झिलमिलाती हुई चमक
और एक निखरी हुई सादगी.
हिण्डालियम के बरतनों में
पकाना भी मज़ेदार,
खाना भी मज़ेदार.
हिन्दुस्तान अल्युमिनियम
कॉरपोरेशन लि.
HINDALCO
स्टील की
तरह
टिकाऊ
देखने में
चाँदी की
तरह सुंदर
कीमत
स्टेनलेस स्टील
की तिहाई

उच्च प्रकारके प्रीसिशन ब्रोचेस और
एवम् ब्रोचींग साधन उत्पन्न करनेमें
भारतभरमें अग्रसर उत्पादक।
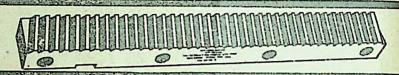
ब्रोचींग साधनो के आपके हर प्रकारकी
आवश्यकताके लिये संपर्क करें।

टूल्स लि.
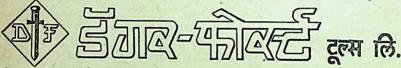
पंच पखाडी, पहला पोखरान रास्ता, थाना (पश्चिम), महाराष्ट्र.
टे. ५६१८६४. टेलेक्ष ०११-२३८१ 'डेगफोस्ट' वी वाय

Foresight/DF-2171

मुहासों को
दूर करने के लिये
लिचेन्सा!

● १०८ देशों के डाक्टरों की एक ही सलाह!
● सभी मुख्य केमिस्टों के पास मिलता है।

टेक्नॉलॉजी के क्षेत्र में भारतने बड़ी प्रगति की है। इस प्रगति में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है ग्वालियर रेयॉन की उस सफलता का जिसके अंतर्गत बिना विदेशी सहायता का सहयोग प्राप्त किये पूरी तरह स्वदेशी माल के द्वारा रेयॉन ग्रेड पल्प का निर्माण किया गया है। यह और भी महत्वपूर्ण इसलिये है कि देश के विभाजन के बाद बहुत सा कपास-उत्पादक क्षेत्र पाकिस्तान में चला गया और देश के सूती वस्त्र उद्योग को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। इसमें कोई शक नहीं कि पल्प से स्टेपल फ़ाइबर का यह निर्माण सूती वस्त्र-उद्योग के लिये वरदान बन गया है।

ग्रेसिम स्टेपल फ़ाइबर कई बातों में बिल्कुल बेजोड़ है। कपास, ऊन, रेशम, जूट आदि प्राकृतिक और सिंथेटिक रेशों के स्थान पर इसका उपयोग किया जा सकता है। दूसरे रेशों के साथ इसे मिश्रित करने पर जो कपड़ा तैयार होता है वह और भी ज़्यादा ठंडा, मुलायम व आरामदेह होता है और लागत भी कम आती है।

निस्संदेह ग्वालियर रेयॉन आज राष्ट्र की अर्थ व्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान कर रहा है। इसकी वजह से आज सैकड़ों सूती मिलों में उत्पादन चालू है, हजारों लोगों को काम मिल रहा है, लाखों लोगों को वस्त्र मिल रहे हैं, करोड़ों रुपये की विदेशी मुद्रा की बचत हो रही है और राष्ट्रीय कोष में धन-राशि का योगदान लगातार बढ़ता जा रहा है। ये गिनाये जा सकने वाले सिर्फ़ थोड़े से लाभ हैं।

रेयॉन ग्रेड पल्प और स्टेपल फ़ाइबर के अलावा ग्वालियर रेयॉन ऊँची क्वालिटी के कपड़े का निर्माण भी करता है। इसके अलावा अपने काम में आनेवाली मशीनों और साज-सामग्री को भी खुद ही बनाता है।

देश के लोगों की बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये राष्ट्र को बहुत सी चीज़ों की ज़रूरत है। ये ज़रूरतें निरंतर बढ़ती जा रही हैं। इस संबंध में अपनी जिम्मेदारी को अच्छी तरह समझकर ग्वालियर रेयॉन ने उत्पादन बढ़ाने की योजना अभी से तैयार कर ली है। कंपनी इस बात के लिये निरंतर प्रयत्नशील है कि वह देश की सेवा करे और अपनी पूरी क्षमता के साथ करे।

दि ग्वालियर रेयॉन सिल्क मैन्युफैक्चरिंग (वीविंग) कंपनी लिमिटेड बिड़लाग्राम, नागदा

SAS-GR 26 A HN

मुखमण्डल
मोती-सा चमके
मोती में तो कहीं वर्षों में
जाकर चमक पैदा होती है।
परन्तु लॅक्मे वैनिशिंग क्रीम
आपके चेहरे की चिकनाई और दाग़-धब्बों को पलों में
दूर करके उस पर मोती-सी मायावी चमक ले आती है।
लॅक्मे वैनिशिंग क्रीम के बाद हलके से लॅक्मे फ़ेस पाउडर
लगाइए। और फिर देखिए क्या बात बनती है!
Lakmé
VANISHING CREAM
लॅक्मे वैनिशिंग क्रीम से
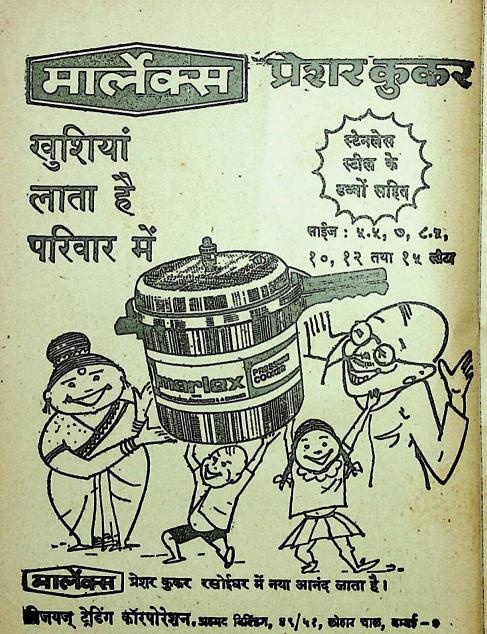
मार्लेक्स
प्रेशर कुकर
खुशियां लाता है परिवार में
स्टेनलेस स्टील के ढक्नों सहित
साईज : ५.५, ७, ८.५, १०, १२ तथा १५ लीटर
marlex
PRESSURE COOKER
मार्लेक्स प्रेशर कुकर रसोईघर में नया आनंद लाता है।
जयज् ट्रेडिंग कॉरपोरेशन, अहमद बिल्डिंग, ४९/५१,
भारत में सभी प्रमुख स्टोर्स में प्राप्य।

नवनीत
[हिन्दी डाइजेस्ट]

वर्ष : २०
अंक : ४
अप्रैल
१९७१

संचालक श्रीगोपाल नेवटिया
प्रधान संपादक सत्यकाम विद्यालंकार
संपादक नारायण दत्त
सहकारी
गिरिजाशंकर त्रिवेदी, सुरेश सिन्हा
प्रबंध-संचालक हरिप्रसाद नेवटिया
व्यापार-व्यवस्थापक महेंद्र मेहता
सज्जाकार ठाकोर राणा

चंदे की दरें : एक वर्ष १४ रु०
दो वर्ष २५ रु०
तीन वर्ष ३५ रु०

एक प्रति का १.३० रु०

चित्रसज्जा : होकुसाई, बर्दासिर्यान, भाऊ समर्थ, ओके, शेणै, राउतराय, दुवे

संपादकीय पत्र-व्यवहार का पता : नवनीत हिन्दी डाइजेस्ट, ३४१, ताडदेव, बंबई ३४.
फोन : ३७२८४७

व्यवस्था-संबंधी पत्र-व्यवहार का पता : नवनीत प्रकाशन लिमिटेड, अशीष बिल्डिंग, ३३५ बेलासिस रोड, बंबई ३४.

श्री हरिप्रसाद नेवटिया द्वारा नवनीत प्रकाशन लि०, ३४१ ताडदेव, बंबई—३४ के लिए प्रकाशित तथा श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, ३६।४८ खेतवाड़ी बैक रोड, बंबई में मुद्रित

आपके और हमारे बीच

नवनीत का स्वरूप बदलने का कुछ प्रयास हाल के अंकों में परिलक्षित हो रहा है; उसका स्वागत है। बीस वर्ष तक एक ही लीक पर चलना कल्पक और सर्जक मस्तिष्क का प्रमाण नहीं। आवरण-चित्र भी नये ढंग के दीजिये, जिनमें रंग और रेखा के नये साहस-पूर्ण प्रयोग हों। —सुशीला दवे, राजकोट

०००

बी. पी. पाल की 'गुलाब-गाथा' बहुत आनंद से पढ़ी। यदि लेख के साथ सुंदर गुलाबों के चित्र होते, तो नयनों की भी तृप्ति होती। —हीराचंद मानकचंद, जालौन

०००

'झुक गया फ्रांस, द'गोल न झुका' (पुस्तक-संक्षेप, मार्च) देश की वर्तमान राजनीतिक स्थिति के संदर्भ में पठनीय और मननीय था। अधिकार की लिप्सा और सिद्धांतहीनता का वही तांडव आज हमारे यहां भी हो रहा है। यदि हिटलर का कोई छुटभैया हमला कर दे, तो क्या हममें से कोई द'गोल सामने आ सकेगा? मुझे तो संदेह है।

—वी० कृष्णमूर्ति

०००

भारत से प्रतिवर्ष हजारों विद्यार्थी उच्च-स्तरीय अध्ययन के लिए पश्चिमी देशों को जाते हैं। पश्चिमी देशों के वासी भारतीय संस्कृति और संगीत के बारे में जानने को बहुत उत्सुक रहते हैं और देखा गया है कि विदेशों में भारतीय सांस्कृतिक समारोहों में वे भारतीय नृत्य और संगीत का प्रदर्शन करते हैं। लेकिन खेद का विषय है कि अधिकांश भारतीय छात्रों को अपनी संस्कृति और संगीत का बहुत कम ज्ञान होता है, क्योंकि वे देशी की अपेक्षा विदेशी नृत्य-संगीत आदि सीखने में ही अधिकांश समय बिताते हैं।

उन्हें विदेशी संस्कृति और संगीत सीखना चाहिये, किंतु अपनी संस्कृति और संगीत को जान लेने के बाद। जब तक मनुष्य को अपनी संस्कृति और संगीत के मूल तत्त्वों का ज्ञान नहीं होता, तब तक उस पर विदेशों की संस्कृति और संगीत का स्वस्थ प्रभाव नहीं हो सकता। लेकिन इस दिशा में दोष युवकों का ही नहीं, कुछ और बातों का भी है। जैसे यही कि हमारे यहां संगीत के ज्ञान को अनिवार्य नहीं माना जाता, जो कि अनिवार्य होना चाहिये।

इसके लिए कुछ खास कदम उठाये जा सकते हैं। सबसे पहली आवश्यकता तो यह है कि भारतीय शास्त्रीय संगीत को युवा-वर्ग के सामने इस रूप में रखा जाये कि उसमें युवकों को आकृष्ट करने वाली चंचलता, सरलता और स्वाधीनता हो, अर्थात् उसे सरलीकृत रूप में प्रस्तुत किया जाये।

दूसरे, शास्त्रीय संगीत को जन-साधारण के स्तर पर लाने का प्रयास किया जाये। तीसरे, संगीत प्रारंभिक स्कूलों के पाठ्यक्रम में अनिवार्य किया जाये और उच्च शिक्षा या पेशों में लगे युवकों के लिए संगीत की और सांध्य कक्षाएं खोली जायें।

इसके साथ ही ऐसी कक्षाएं भी लगायी जानी चाहिये, जहां 'संगीत-प्रदर्शन' न सीखना चाहने वालों के लिए 'संगीत सराहना' का प्रशिक्षण दिया जाये, जिससे वे संगीत सुनने में तो रुचि ले ही सकें। सार्वजनिक स्थानों पर संध्या समय ऐसे संगीत कार्यक्रम हों, जिनमें जनता भाग ले सके।

भारतीय संगीत के ऐसे नये रूप विकसित किये जायें, जो सामूहिक गायन-वादन के योग्य हों और नृत्य आदि को संकोच का नहीं, बल्कि सामाजिक सम्मान का विषय बनाया जाये।

—डा० प्रदीप कुमार रोहतगी, पेंसिल्वानिया

०००

नवनीत के हर माह के अंक में 'भविष्य-दर्शन' छापकर आप सोचते होंगे कि पढ़ने वाले आकर्षित होंगे। पर नवनीत में छपी सब सामग्री ही इतनी आकर्षक व पठनीय होती है कि पढ़ने वालों पर 'भविष्य-दर्शन' का कोई असर नहीं होता। देश में प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं में आज नवनीत का विशेष स्थान है। यह संपादकीय श्रम है।

—कमलेश मालू, जामनगर

०००

फरवरी के नवनीत में श्री भगवतशरण उपाध्याय का स्मृति-चित्र पढ़ा। करुण कथा व्यथाकारिणी है, मर्मस्पर्शिणी भी। किंतु लेखके नीचे निबद्ध श्लोकपंक्ति 'चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः' का अर्थ यों होना चाहिये :

पहिये के अरों की पंक्ति की भांति ही भाग्य की पंक्ति भी घूमती रहती है (चक्र=पहिया, अर=अरा)। चक्र का अर्थ चक्रवाक भी होता है। सारस कदापि नहीं।

—सुधाकर शुक्ल, दतिया

०००

जनवरी ७१ के अंक में विलियम सरोयान की 'नानी की नीतिकथाएं' प्रकाशित हुई हैं। इनसे कौन-सी नीति पर अमल करने की शिक्षा मिलती है? समझायें। क्या ये 'नीतिकथा' कहलाने की हकदार हैं? ऐसी सारहीन रचनाओं को प्रकाशित करके न तो नवनीत का दर्जा गिराइये और न लोगों को गुमराह कीजिये।

आपसे अनुरोध है कि 'बोधि के क्षण' शीर्षक से एक नया स्तंभ प्रारंभ कीजिये, जिसमें लोग अपने ऐसे अविस्मरणीय संस्मरण प्रकाशित करवायें, जब किन्हीं विशिष्ट परिस्थितियों या संयोगों ने उनकी आंखें खोल दी हों।

—किशनलाल राजपूत 'विक्रम', जबलपुर

(उत्तर : १. शायद शीर्षक में 'दंतकथा' शब्द अधिक मौजूं होता; मगर सरोयान की इन कथाओं में सार की तो कमी नहीं है। २. 'बोधि के क्षणों' की बात तो बुद्ध जैसे महापुरुष ही कर सकते हैं।—संपादक)

★

नूतन-पुरातन ज्ञान-विज्ञान
और मनोरंजन

जरा-सी ऐंठन

जवानी के दिनों में जब मेरी नयी-नयी शादी हुई थी, मैं अपने श्वसुर के यहां रहता था, जो घड़ीसाज थे। मेरी बड़ी इच्छा थी कि एक प्रसिद्ध यहूदी धर्माचार्य के दर्शन करने जाऊं; मगर मार्गव्यय के लिए मेरे पास पैसे नहीं थे। मैंने अपने श्वसुर से कहा, अगर आप मुझे चंद रुपये दें तो मैं उस छोटी घड़ी को दुरुस्त कर दूंगा, जिस पर ध्यान देने के लिए आपके पास फुरसत नहीं है। वे तैयार हो गये और मैंने घड़ी को खोल डाला कि देखूं, उसमें गड़बड़ क्या है। मुझे यह समझने में देर नहीं लगी कि पुर्जे तो सभी मौजूद हैं, मगर 'बालकमानी' में जरा-सी ऐंठन आ गयी है। चटपट मैंने उसे ठीक कर दिया और घड़ी फिर से ठीक समय देने लगी। क्या यह घटना नहीं सिखाती कि दिल की जरा-सी ऐंठन प्रायः स्वाभाविक नैतिक भावना को अवरुद्ध कर देती है? तनिक हेरफेर से दिल फिर ठीक से धड़कने लग जाता है।

—रबी येराहयेल

जीवन के दो स्तंभ

आज से दो हजार साल पहले गैलिली झील में सुबह-सुबह एक नौका छूटी। दस-बारह लोग उसमे सवार थे। सूरज थोड़ा ही ऊपर आया था कि तूफ़ान आ गया। लहरें ऊंची उठ-उठकर नाव को डगमगाने लगीं। जितने लोग सवार थे, सब घबरा गये। प्राणों का संकट खड़ा हो गया।

लेकिन उस समय भी नाव में एक आदमी शांत सोया हुआ था। लोगों ने उसे जगाया और कहा—"क्या सो रहे हो? सभी लोगों के प्राण संकट में हैं। तूफ़ान आना शुरू हुआ है। नौका के बचने की कोई उम्मीद नहीं है। तूफ़ान भयंकर है और किनारा दूर है।"

उस सोये हुए आदमी ने आंखें खोलीं। और कहा—"कितने कम विश्वास के लोग हो तुम! कहो झील से कि शांत हो जाये!" लोग हैरान हुए सुनकर। कैसी पागलपन की बात है! कहीं कहने से झील शांत होती है? लेकिन वह शांत सोया हुआ आदमी उठा और झील के पास जाकर बोला—"झील, शांत हो जाओ!" और लोग आश्चर्य से देखते रह गये। किसी नटखट बच्चे की तरह डांट सुनकर झील शांत हो गयी थी। तूफ़ान उतर गया था।

वह आदमी था यीशु ख्रिस्त।

पता नहीं कहानी कहां तक सच है। पर आज भी लोग संसार की झील में मन की नौका पर सवार हैं और रोज-रोज संघर्षों के तूफ़ान मन-नौका को डगमगाते हैं। पर यदि ऐसा विश्वास पैदा कर सकें कि कहें शांत हो जाओ और सब कुछ शांत हो जाये, तो जीवन दु:ख न रहे, कष्ट न बने, सब आनंदमय हो जाये। —रफ़त अधीर

०००

गीता के 'दैवी संपत्' के छब्बीस गुणों का चिंतन करते समय उसमें एक बात मुझे महत्त्व की लगी। दैवी संपत् के छब्बीस गुणों में श्रेष्ठ सद्गुण है 'सत्त्व-संशुद्धि'। फिर भी गीता ने 'अभय' को सत्त्व-संशुद्धि के भी पहले स्थान दिया। इससे आश्चर्य भी हुआ और संतोष भी। 'केवल छंद की सहूलियत के कारण अभय को प्रथम स्थान

दिया है' ऐसा मैं मान नहीं सका। सत्त्वसंशुद्धि आदि दैवी संपत् के सब गुणों का विकास तभी हो सकता है, जब मनुष्य में अभय की साधना पूरी तरह से दृढ़ होती है।

बिना सोचे जो भी कार्य मनुष्य को करने पड़ते हैं, उनमें नैतिकता का भाव नहीं रहता। सदाचार की भावना तभी आती है, जब मनुष्य सोचकर, अपने मन का प्रेरक हेतु क्या है और आचरण का फल क्या होगा, यह देखकर काम करता है, उसी में नैतिकता आ जाती है। जिसमें 'हेतु' और 'परिणाम' दोनों का एक-सा महत्त्व है। मनुष्य डरपोक तब बनता है, जब कोई कार्य करने में अथवा न करने में, उसका हेतु स्वार्थप्रेरित होता है, अथवा जब मनुष्य अपने चारित्र्य को खोकर आत्मरक्षा की भावना के वश हो जाता है। कायरता कहां आती है, इसकी व्याख्या करना आसान नहीं है, किंतु किस आचरण में कायरता भरी है, इसे समझना मनुष्य के लिए कठिन नहीं है। —काका कालेलकर 'मंगल प्रभात' में

- इंसान सूरज है, चांद है, तारों भरा आसमान है। —पैरासेल्सस
- मनुष्य को इसलिए सिरजा गया है कि वह स्वर्ग को ऊंचा उठा सके। —रबी मेंडल
- मनुष्य ही यज्ञ है। —शतपथ
- बेशक भगवान जहाज को बचाता है, मगर उसे बंदरगाह तक तो नाविक ही पहुंचाता है। —इरैस्मस
- मनुष्य से बढ़कर कुछ नहीं। —महाभारत

चित्रः विनोद दुबे

अनगाये गीत

मेरे प्रिय मित्रो !
जब कभी आओगे मेरी समाधि पर
देखोगे, ताजे खिले फूल
अनगिनत रंगों में खुशबुएं बिखेरते ।

मान मत लेना कहीं साधारण फूल इन्हें
जैसे ये पैरों तले यों ही उग आये हैं
या मेरी समाधि को सजाने के लिए
ऋतुराज इन्हें ले आये हैं ।

नहीं ! ये फूल नहीं—
गीत हैं मेरे, जो रहे हाय अनगाये
छिपे रहे मेरे अंतर के परदों में
ये हैं शब्द मेरे, स्नेह-भरे
छोड़ चला जिनको मैं अनबोले अंतिम क्षणों में।
प्रियवर ! ये मेरे चुंबन हैं गहरी आसक्ति-भरे
उस अज्ञात लोक से प्रेषित
जिसका सहज पंथ फैला है तुम्हारे सम्मुख
मंजिल और तुम्हारे बीच
मेरी समाधि व्यवधान
मुझे मात्र यह दुख !

मूल आर्मेनियन : हेवानोस ताउमेनियन
अनुवाद : दिनकर सोनवलंकर

आचार्य रजनीश द्वारा

उत्तरित प्रश्न

प्रश्न : धार्मिक व्यक्ति का व्यावहारिक जीवन किस प्रकार का होता है?

उत्तर : पहली बात तो यह है कि धार्मिक व्यक्ति के जीवन में व्यावहारिक और पारमार्थिक ऐसे खंड नहीं होते हैं। धार्मिक जीवन अखंड जीवन है। जहां खंड है, वहां धर्म नहीं है। खंडित चित्त ही तो रोग है। वही तो अधर्म है।

दूसरी बात यह है कि धार्मिक व्यक्ति का स्वयं का जीवन भी नहीं होता, क्योंकि 'स्व' के मिटने से ही तो वह धर्म को उपलब्ध होता है। धार्मिक व्यक्ति स्वयं नहीं जीता, उसमें से तो प्रभु ही जीता है। धार्मिक व्यक्ति बन जाता है बस माध्यम। बांसुरी ही रह जाता है वह। स्वर और संगीत उसमें से बहते हैं, लेकिन वे उसके नहीं होते।

तीसरी बात यह है कि धार्मिक जीवन के प्रकार नहीं होते हैं। जैसे सागर का पानी सब जगह खारा है, ऐसे ही धार्मिक जीवन का स्वाद भी सब जगहों और सब कामों में एक जैसा ही है। धर्म की अंतरात्मा सदा-सर्वदा एक है, एकरस है।

चौथी बात यह है कि आपका सवाल

प्रस्तुतकर्ता : हरकिशनदास अग्रवाल

बाहर से पूछा गया सवाल है। धर्म में प्रवेश करते ही ऐसे सवाल तत्काल गिर जाते हैं। धर्म अनुभूति में अद्वैत है। लेकिन बुद्धि अपनी सीमा में प्रत्येक विषय को अनिवार्यतः खंड-खंड कर देती है। क्योंकि विचार की प्रक्रिया ही विश्लेषण है। अनुभूति है सदा संश्लिष्ट और विचार है विश्लेषण; इसलिए अनुभूति और विचार का कहीं भी मिलन नहीं होता है।

अनुभूति, परमार्थ और व्यवहार एक हैं, ब्रह्म और माया एक है। परमात्मा और पदार्थ एक हैं। मुक्ति और बंधन एक हैं। लेकिन, बीच में जरा-सा विचार आया कि सब 'एक' तत्काल दो हो जाते हैं। और विचार जिन्हें भी तोड़ता है, उनके बीच अलंघ्य खाई रह जाती है। फिर विचार उन्हें जोड़ने की कोशिश में भी पड़ता है। लेकिन वह काम व्यर्थ है, क्योंकि विचार ही तो खाई है। विचार जोड़ नहीं सकता, वह तो केवल तोड़ ही सकता है। विचार का जहां अभाव है, वहां जोड़ है। वस्तुतः वहां कभी कुछ टूटा ही नहीं है।

बचने की तरकीब है। सोचना है सदा तट पर और जीवन है सदा सागर की गहराइयों में। छोड़ें तट और कूदें। कितने जन्मों-जन्मों से तो आप सोच रहे हैं? मैं कब से आपको तट पर ही देख रहा हूं? अब बहुत हुआ। अब तो कूदें। देखें-सुनें, कबीर क्या कह रहे हैं। "जिन खोजा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ। मैं बौरी डूबन डरी, रही किनारे बैठ।"

प्रश्न : कहीं-कहीं पर धर्म और व्यवहार में विरोध खड़ा हो जाता है, ऐसी परिस्थिति में सही मार्ग क्या है?

उत्तर : पहली बात तो यह है कि धर्म और व्यवहार में कभी भी विरोध खड़ा नहीं होता है। वह असंभव है। जैसे प्रकाश और अंधकार में कभी भी विरोध खड़ा नहीं होता है। ऐसे ही जहां प्रकाश है, वहां अंधकार है ही नहीं। तब विरोध खड़ा हो ही कैसे सकता है? उपस्थित प्रकाश और अनुपस्थित अंधकार में तो विरोध असंभव ही है न? विरोध के लिए कम-से-कम दोनों की उपस्थिति तो एक ही साथ होनी चाहिये न? और ऐसा भी नहीं होता है। जहां प्रकाश है, वहां अंधकार नहीं है। जहां प्रकाश नहीं है, वहां अंधकार है।

असल में अंधकार का अर्थ ही है, प्रकाश का न होना। उसकी अपनी कोई सत्ता नहीं है। वह तो बस अभाव है किसी का; अनुपस्थिति है किसी की। ऐसा ही व्यवहार है। ऐसा ही संसार है। ऐसा ही अज्ञान है। ऐसा ही अधर्म है। वे सब धर्म की अनुपस्थिति के भिन्न-भिन्न भाग हैं। जब धर्म आता है, तब वे सब चुपचाप हो जाते हैं। धर्म नहीं है, तभी तक वे हैं।

दूसरी बात यह है कि उधार, सुने हुए धर्म को हम धर्म मान लेते हैं। इससे ही कठिनाई खड़ी होती है। साधारणतः हमारे लिए व्यवहार तो सत्य है और धर्म है कोरा शब्द, इसलिए ही दोनों में विरोध खड़ा होता है। और ध्यान रहे कि यह कहीं-कहीं

नहीं, कभी-कभी नहीं, वरन् हर कहीं और हर पल खड़ा होता है। यही स्वाभाविक है। यह होगा ही; क्योंकि अंधकार है वास्तविक और प्रकाश है केवल विश्वास। विश्वास अंधकार को तो मिटाता ही नहीं, उलटे हमें और अंधा कर जाता है।

प्रकाश चाहिये, प्रकाश का विश्वास नहीं। प्रकाश के विश्वास से अंधकार नहीं मिटता है। धर्म चाहिये, धर्म का विश्वास नहीं। धर्म से व्यवहार रूपांतरित होता है और परमार्थ और व्यवहार एक ही हो जाते हैं। या ऐसा कहें तो भी ठीक है कि व्यवहार ही रह जाता है। और जो शेष रह जाता है, उसमें कोई द्वंद्व नहीं है, इसलिए कोई दुविधा भी नहीं है।

तीसरी बात यह है कि अलग-अलग परिस्थिति में अलग-अलग मार्ग नहीं हैं और न ही अलग-अलग सहीपन है। मार्ग तो एक ही है और जो सही है, वह भी एक ही है। और उस एक का नाम ही धर्म है। उसे जानते ही सभी परिस्थितियां मूलतः समान हो जाती हैं। आकार तो उनके भिन्न रहते हैं, लेकिन आत्मा भिन्न नहीं रह जाती है। जैसे अंधा आदमी सोच सकता है कि अलग-अलग अंधकारों में अलग-अलग प्रकाश आवश्यक होते होंगे, या अलग-अलग स्थितियों में मार्ग खोजने के लिए अलग-अलग आंखें होती होंगी, ऐसा ही हमारा यह सोचना भी है।

चौथी बात यह है कि धर्म को खोजें। धर्म और व्यवहार में सामंजस्य को नहीं। जैसे सामंजस्य की खोज ही बताती है कि धर्म का अभी पता नहीं है। धर्म के आगमन पर तो कभी-कभी सामंजस्य खोजना पड़ता है। क्योंकि सामंजस्य के लिए भी वैसा ही द्वैत आवश्यक है, जैसा कि संघर्ष के लिए। और धर्म का आगमन अद्वैत का है। फिर तो जो है, वही परमार्थ है और वही व्यवहार है। धर्म का आगमन अविरोध का आगमन है। इसलिए फिर न विरोध है किसी से, न सामंजस्य ही।

पांचवीं बात यह है कि धर्म को स्वयं को छोड़ और कहीं न खोजें; क्योंकि और कहीं से भी मिले धर्म से आपकी समस्या नहीं मिट सकती है।

वस्तुतः तो और कहीं से मिले धर्म से ही तो वह समस्या पैदा हुई है। उधार धर्म अनिवार्यतः समस्या है, ऐसी समस्या जिसका कि कोई भी समाधान नही है; क्योंकि उधार धर्म स्वयं को समाधान मान लेता है, जो कि वह नहीं है और ऐसी समस्या का कोई भी समाधान नहीं है, जो कि स्वयं को ही समाधान मानती है। ऐसी बीमारी का इलाज ही क्या हो सकता है, जो कि स्वयं को स्वास्थ्य समझती है?

लेकिन स्वयं धर्म निश्चय ही समाधान है। पर वह मिलता है समाधि से। समाधि के अतिरिक्त समाधान और कहीं से मिल भी कैसे सकता है? धर्म को खोजें अर्थात् समाधि को खोजें। शास्त्र से बचें, शब्द से बचें, विचार से बचें। निर्विचार ही द्वार है। शून्य में ही सत्य है। वही है धर्म। उसे जानकर कुछ भी जानने को शेष नहीं रहता।

★

'ख्रुश्चोव रिमेम्बर्स' प्रकाशन-जगत् की एक सनसनीखेज घटना है और विद्वानों में जबर्दस्त विवाद का विषय भी। उसे इस सदी की सबसे बड़ी साहित्यिक जालसाजी भी कहा गया है। मगर किसकी जालसाजी? कई अनुमान हैं। अवधनंदन से इसकी चर्चा सुनिये।

सोवियत संघ के भूतपूर्व सर्वेसर्वा, वातूनी और अपरिष्कृत, शरारती और नाटकीय निकिता ख्रुश्चोव एक बार फिर अंतर्राष्ट्रीय चर्चा के केंद्र बन गये हैं। नहीं, निकिता ने अपने उत्तराधिकारियों के विरुद्ध कोई राजनीतिक सरगर्मी नहीं दिखायी है। रूसी तानाशाही में इसकी कहीं कोई गुंजाइश नहीं होती, यह बात अब तक के रूसी शासकों में सबसे उदार निकिता को अच्छी तरह ज्ञात है।

निकिता ख्रुश्चोव की चर्चा का कारण तो पिछले दिनों पश्चिमी देशों में प्रकाशित हुए उनके संस्मरण हैं, जिन्हें लेकर सब कहीं यह पूछा जा रहा है कि ये संस्मरण सच्चे हैं या झूठे? इनके प्रकाशन के पीछे कौन है—अमरीका का जासूसी संघटन सी. आई. ए. या रूस की सुरक्षा पुलिस के. जी. बी.? और सबसे बड़ा सवाल तो यह कि इन स्मृतिचित्रों के प्रकाशन के पीछे असली मकसद क्या है?

ये सवाल देर-सवेर उठेंगे, यह बात ख्रुश्चोव के संस्मरणों के प्रकाशन में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करने वाले, प्रख्यात अमरीकी पत्रिका 'लाइफ' के प्रकाशक भी जानते थे। इसीलिए 'ख्रुश्चोव रिमेम्बर्स' के अमरीकी प्रकाशकों ने प्रस्तावना में लिखा कि यह पुस्तक "विभिन्न सूत्रों से अलग-अलग समय और स्थानों पर प्राप्त सामग्री से बनी है।" परंतु उन्हें इस बात का पूरा विश्वास है और उन्होंने इस बात की पूरी तरह से तसल्ली कर ली है कि "यह पुस्तक निकिता ख्रुश्चोव के अपने शब्दों का प्रामाणिक रेकार्ड है।"

अचरज की बात यह है कि प्रकाशकों ने पुस्तक की पांडुलिपि मिलने के बारे में कहीं

कुछ नहीं लिखा; जो बातें सामने आयीं, वे पत्रकारों के साथ हुई 'अप्रकाश्य बातचीत' के माध्यम से खुलीं। ये बातें क्या हैं?

'ख्रुश्चोव रिमेम्बर्स' के प्रकाशकों ने कहा है कि ये स्मृतिचित्र ख्रुश्चोव के परिवार के सदस्यों—उनकी पुत्री रादा, दो दामाद अलेक्सी अदझुबेई और लेव पेत्रोव—के माध्यम से प्राप्त हुए हैं। रादा का पति अलेक्सी अदझुबेई ख्रुश्चोव के शासन-काल में 'इज्वेस्तिया' का संपादक था, परंतु ख्रुश्चोव के पतन के बाद उसे एक छोटी-सी सचित्र पत्रिका में मामूली ढंग की पत्रकारिता से गुजारा करना पड़ रहा है। लेव पेत्रोव भी पत्रकार था और कुछ ही महीनों पहले उसकी मृत्यु हो गयी।

इन स्मृतिचित्रों की प्रामाणिकता की पुष्टि के लिए कुछ अमरीकी सूत्रों ने यह भी कहा है कि वस्तुतः यह सामग्री रूसी सुरक्षा पुलिस के. जी. बी. की सहायता से पश्चिमी देशों तक पहुंची है। इस संबंध में एक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति का नाम आया है। वह है विक्टर लुइस, के. जी. बी. के प्रचारतंत्र का एक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति।

कहते हैं, पिछले वर्ष अगस्त में विक्टर लुइस ने मास्को से कोपनहेगन तक की महत्त्वपूर्ण, परंतु अत्यंत गुप्त यात्रा की और ख्रुश्चोव के इन स्मृतिचित्रों के प्रकाशन का सौदा पक्का किया। हां, सौदा ही पक्का किया; क्योंकि ये संस्मरण तो, जैसा कि 'लाइफ' के प्रकाशकों ने दावा किया है, एक लंबे अरसे से अलग-अलग ढंग से उन्हें प्राप्त हो रहे थे और वे इनके अनुवाद, संपादन आदि की व्यवस्था में व्यस्त थे।

इन तथ्यों के प्रकाश में दो प्रश्न सहज में ही उठते हैं।

१. के. जी. बी. को ख्रुश्चोव के इन स्तालिन-विरोधी संस्मरणों के प्रकाशन में क्या दिलचस्पी हो सकती है?

२. के. जी. बी. द्वारा दी गयी सामग्री को प्रामाणिक कैसे माना जाये?

'ख्रुश्चोव रिमेम्बर्स' को प्रामाणिक मानने वालों ने इन प्रश्नों के उत्तर में यह दावा किया है कि के. जी. बी. के भीतर इस समय दो गुटों में संघर्ष चल रहा है। एक गुट

स्तालिनवादी है और दूसरा स्तालिन-विरोधी। चूंकि पिछले महीनों में रूस में स्तालिनवादी हथकंडों का जोर फिर बढ़ा है, इसलिए स्तालिनवाद का विरोधी गिरोह इन संस्मरणों को रूसी कम्युनिस्ट पार्टी की २४ वीं कांग्रेस से पहले प्रकाशित कराने को उत्सुक था।

के. जी. बी. में चल रहे आंतरिक संघर्ष की दलील को लंदन स्कूल आफ इकनामिक्स के प्रसिद्ध प्रोफेसर लियोनार्ड शेपिरो मानने को तैयार नहीं हैं। 'संडे टाइम्स' में उन्होंने लिखा है कि के. जी. बी. का कोई भी गिरोह स्तालिनवाद का विरोधी हो सकता है, यह सोचना अपने आपमें तर्क-विरुद्ध है। रूसी शासकों के स्तालिनवादी रुझान से अगर किसी को सबसे ज्यादा खुशी हो सकती है, तो वह के. जी. बी. है, क्योंकि इससे रूसी गुप्त पुलिस की शक्ति बढ़ेगी और वह और भी ज्यादा निरंकुश हो जायेगी।

मगर इन सबके बावजूद प्रोफेसर शेपिरो ने इन संस्मरणों के प्रकाशन में के. जी. बी. का हाथ होने की बात को असत्य नहीं माना है। उनका कहना है कि के. जी. बी. का ही एक विभाग ऐसा भी है, जिसका काम दुनिया को गलत-सलत जानकारी देना है। निकिता के ये संस्मरण भी उसी विभाग की ही करामात हैं।

शेपिरो लिखते हैं—"पिछले कई वर्षों से के. जी. बी. ऐसी मनगढ़ंत चीजों के निर्माण में महारत हासिल करती रही है, ताकि वह सच्ची और प्रामाणिक चीजों को भी असत्य और अविश्वसनीय ठहरा सके। के. जी. बी. ने सचमुच ही कमाल किया! हे भगवान! यह सब देखकर लेनिन क्या ठहाका लगाता!"

लेकिन शेपिरो जैसे सोवियत मामलों के जानकार की राय को भी चुनौती देने वालों की कमी नहीं है। निकिता के संस्मरणों को के. जी. बी. की साजिश मानने के पक्ष में शेपिरो की दलील का सबसे जोरदार उत्तर एक अन्य सोवियत-विशेषज्ञ विक्टर जोर्जा ने दिया है।

प्रख्यात ब्रितानी पत्र 'गार्जियन' के साप्ताहिक संस्करणों में प्रकाशित एक लेखमाला में विक्टर जोर्जा ने इन संस्करणों की प्रामाणिकता में अविश्वास व्यक्त किया है। वे यह मानने को तैयार नहीं हैं कि ये संस्मरण निकिता के परिवार के सदस्यों द्वारा टेप किये गये हैं और इनके प्रकाशन में कहीं-न-कहीं के. जी. बी. का हाथ है। उन्होंने इस सारे मामले की करीब एक महीने तक छानबीन की है और स्तालिन की पुत्री स्वेतलाना, युगोस्लाविया के भूतपूर्व उपराष्ट्रपति मिलोवन जिलास तथा रूसी पियानोवादक ब्लादीमीर अश्केनाजी से बातचीत की है।

विक्टर जोर्जा ने लिखा है, इस तरह की किसी भी पुस्तक के प्रकाशन में ख्रुश्चोव के परिवार के सदस्य साझीदार होंगे, इस पर यकीन करना मुश्किल है। उन लोगों को अंतर्राष्ट्रीय मामलों का इतना तो अनुभव होगा ही कि उनके नाम बहुत दिनों तक छिपे

नहीं रहेंगे और जैसे ही ये नाम खुलेंगे, के. जी. बी. उनके पीछे पड़ जायेगी और जो थोड़ी-बहुत स्वतंत्रता अभी उन्हें प्राप्त है, वह समाप्त कर दी जायेगी। ऐसी हालत में वे अपनी जिंदगी 'लाइफ' पत्रिका के प्रकाशकों के हाथ में क्यों सौंपने लगे? इस दलील में काफी दम है। और साथ ही ख्रुश्चोव की ओर से, इन संस्मरणों को असत्य बतलाने वाला प्रतिवाद भी छप चुका है।

इन कथित संस्मरणों की असत्यता की बात कुछ और तथ्यों से भी उभरकर सामने आती है। इनमें एक-दो नहीं, बीसियों जगह ऐसी भूलें हैं, जिन्हें रूसी इतिहास और घटनाक्रम का कोई भी जानकार आसानी से पकड़ सकता है। उदाहरणार्थ, स्तालिन की निरंकुशता के दौर-दौरे के दिनों में ख्रुश्चोव अपना राजनीतिक अस्तित्व कैसे बचा पाये, इसकी सफाई देते हुए उन्होंने इन संस्मरणों में एक दिलचस्प किस्सा गढ़ा है।

ख्रुश्चोव कहते हैं कि जिन दिनों मैं मास्को की इंडस्ट्रियल एकेडमी में था, उन्हीं, दिनों स्तालिनं की पत्नी नदेज्दा भी वहीं थी और वह मुझे काफी पसंद करने लगी थी। मानो "मेरे नाम लाटरी का भाग्यशाली टिकट निकल आया था ...... उसकी (नदेज्दा की) वजह से स्तालिन मुझ पर विश्वास करने लगा था।" यह मैत्री गहरी होती गयी और जब ख्रुचोव मास्को पार्टी के प्रथम सचिव बने, तो वे नियमित रूप से स्तालिन के घर जाने लगे, जहां स्तालिन और नदेज्दा उनके मेजबान होते थे।

महत्त्व की बात यह है कि ख्रुश्चोव के प्रथम सचिव बनने के पहले ही नदेज्दा आत्म-हत्या कर चुकी थी और नदेज्दा की आत्महत्या के बाद स्तालिन ने अपनी पत्नी के कई मित्रों और संबंधियों की हत्या करवा दी थी। फिर ख्रुश्चोव कैसे बचे रहे? इसका इन संस्मरणों में कहीं कोई उल्लेख नहीं है।

एक और उदाहरण। ख्रुश्चोव ने अपने इन कथित संस्मरणों में लिखा है कि जब वे कीव में थे, तब उनकी मुलाकात युगोस्लावियाई प्रतिनिधि मंडल से हुई, जिसमें टीटो और मिलोवान् जिलास दोनों थे। इस मुलाकात में जिलास ने एक किस्सा सुनाया कि एक संसदीय चुनाव में जब एक गाय, कुत्ते और गधे का मुकाबला हुआ, तो मतदाताओं ने गधे को संसद में भेजना पसंद किया। इन संस्मरणों के अनुसार, इस पर टीटो ने गुर्राकर जिलास को देखा और कहा—"क्या इस कहानी से तुम यह कहना चाहते हो कि हम संसद के लिए गधों को चुनते हैं?"

परंतु जब विक्टर जोर्जा इस किस्से की पुष्टि के लिए जिलास से मिले, तो जिलास ने कहा—"मुझे तो ऐसे किसी किस्से की याद नहीं है। यों भी ख्रुश्चोव से कीव में हमारी मुलाकात मार्च १९४५ में हुई थी और तब तक युगोस्लाविया में कोई कम्युनिस्ट चुनाव नहीं हुआ था। ऐसी हालत में टीटो के गुर्राने और इस तरह की प्रतिक्रिया व्यक्त करने

का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।" प्रो० शेपिरो ने भी ऐसी कई तथ्य-संबंधी गलतियां पकड़ी हैं।

ऐसे ही ढेर सारे तथ्यों के आधार पर विक्टर जोर्जा ने यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि ख्रुश्चोव के ये तथाकथित संस्मरण न तो प्रामाणिक हैं, और न ही ये के. जी. बी. की मार्फत पश्चिमी देशों तक पहुंचे हैं।

तो फिर इन संस्मरणों के लेखन और प्रकाशन के पीछे कौन-सी शक्ति और तंत्र है? विक्टर जोर्जा की बात पर यकीन करें, तो वह सिर्फ सी. आई. ए. हो सकती है, क्योंकि ख्रुश्चोव के इन संस्मरणों का स्तालिन-विरोधी रुख पश्चिमी देशों के अनुकूल पड़ता है।

इन संस्मरणों को धारावाहिक रूप से छापने वाली पत्रिका 'लाइफ' के प्रकाशकों का दावा है कि इनका सी. आई. ए. से कोई संबंध नहीं है। विक्टर जोर्जा इस दावे का खंडन तो नहीं करते, मगर उनका कहना है कि यह भी तो मुमकिन है कि सी. आई. ए. के एजेंटों ने अपने आपको रूसियों के रूप में पेश किया हो और 'लाइफ' की मार्फत ख्रुश्चोव के इन तथाकथित संस्मरणों का विश्वव्यापी प्रकाशन व प्रचार करवाया हो। और जोर्जा स्वयं सी. आई. ए. विरोधी हों, ऐसा नहीं है।

किंतु रूसी मामलों के एक और विशेषज्ञ तथा 'न्यूयार्क टाइम्स' के भूतपूर्व मास्को संवाददाता हेरिसन ई. सैलिसबरी की राय कुछ और है। उनका तो कहना है कि ये संस्मरण न सिर्फ सच्चे हैं, बल्कि महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक दस्तावेज हैं। जहां तक त्रुटियों और विसंगतियों का प्रश्न है, इसके लिए वे प्रकाशन में हुई जल्दबाजी को जिम्मेदार मानते हैं।

उन्होंने लिखा है—"ख्रुश्चोव रिमेम्बर्स को (पढ़कर) रखते समय मैं बीतों दिनों की यादों में खोया हुआ था। जब ख्रुश्चोव सत्ताधारी थे, उनके साथ मैंने काफी समय गुजारा है। मैं सोचता हूं कि कुल मिलाकर वे अपने देश और दुनिया के लिए बहुत अच्छे थे। उन्होंने कई भयंकर भूलें कीं; परंतु वे अपनी बड़ी गलतियों को कबूल करने से भी नहीं झिझके। उनमें बच्चों की-सी अनंत जिज्ञासा थी। और यह विश्वास करना मुश्किल है कि वे दिल में दुनिया को बेहतर बनाने को उत्सुक नहीं थे। 'ख्रुश्चोव रिमेम्बर्स' में ये स्मृतियां पूरी तेजी से उभर आती हैं। ख्रुश्चोव हमारे समय के महान व्यक्तियों में से एक हैं, और रूस की स्थिति का यह एक सबूत है कि ऐसा व्यक्ति अपने देशवासियों से अलग अपने घर में (इन दिनों अस्पताल में) नजरबंद रखा जाये और अपने देश में ही अपने को निर्वासित महसूस करे।"

पर सैलिसबरी के इस कथन में भी यह बात तो अनुत्तरित ही रह गयी कि घर में नजरबंद व्यक्ति के संस्मरण पश्चिम तक पहुंचे कैसे? इसके कई स्पष्टीकरण दिये गये हैं, मगर वे प्रायः ऊहापोह की कोटि के ही हैं। गुत्थी अभी भी बनी हुई है और उसके साथ ही बहस भी जारी है।

★

लेसर से हाइड्रोजन-बम?

उमेशचंद्र मिश्र

लेसर पिछले दशक के सबसे महत्त्वपूर्ण आविष्कारों में हैं। अमरीकी वैज्ञानिक शैलो और टाउंस ने सबसे पहले १९५८ में इसके सिद्धांत का प्रतिपादन किया और अमरीकी वैज्ञानिक मैमेन ने १९६० में इसे व्यावहारिक रूप दिया।

लेसर एक संयंत्र है, जो एक विशेष प्रकाश देता है। इस प्रकाश की विशेषता यह है कि यह एक विशिष्ट रंग या तरंग-दैर्घ्य का तथा कला-संबद्ध होता है। ये विशेषताएं न तो साधारण बिजली के बल्ब के प्रकाश में होती हैं और न सूर्य के प्रकाश में ही। इन्हीं विशेषताओं के कारण लेसर-पुंज सूक्ष्म स्थान में अत्यधिक गर्मी अथवा प्रकाश केंद्रित कर सकता है तथा रेडियो-तरंगों की भांति ही ध्वनिप्रसारण में लेसर-किरण का उपयोग किया जा सकता है।

पिछले दशक में लेसर के संबंध में विस्तृत शोधकार्य हुआ है और उसकी बदौलत व्यावसायिक, औद्योगिक, सामरिक, चिकित्सा-शास्त्रीय तथा वैज्ञानिक अनुसंधान के क्षेत्रों में लेसर का व्यापक उपयोग होने लगा है। दो उदाहरण काफी हैं—शल्य-चिकित्सा में और चंद्रयात्राओं में लेसर उपकरणों का प्रयोग।

हाल ही में कुछ वैज्ञानिकों ने यह भविष्य-वाणी करके तहलका मचा दिया है कि लेसर का हाइड्रोजन-बम में प्रयोग हो सकता है। इस प्रसंग में यह बात स्मरण रखने योग्य है कि लेसर के संबंध में अब तक हुए लगभग सभी अनुसंधानों के परिणाम विश्व के सभी वैज्ञानिकों को विदित हैं। लेसर आर्थिक और वैज्ञानिक दृष्टि से अधिकांश देशों की सामर्थ्य में हैं, और उनका आसानी से और सूक्ष्म आकारों में निर्माण किया जा सकता है।

अब यह देखें कि हाइड्रोजन-बमों में उसके प्रयोग की संभावना इतनी महत्त्वपूर्ण बात क्यों है, और अमरीकी परमाणु-शक्ति आयोग ने हाइड्रोजन-बमों में लसर के प्रयोग में सहायक हो सकने वाल सभी अनुसंधानों को गुप्त क्यों घोषित कर दिया है।

इसके लिए हमें हाइड्रोजन-बमों के मूल सिद्धांत के बारे में कुछ पता होना चाहिये।

हाइड्रोजन-बम प्रायः तीन खंडों वाले होते हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण खंड होता है प्रथम खंड या केंद्रीय भाग। यह वास्तव में परमाणु-बम होता है। इसके विस्फोट से कई करोड़ अंश का तापमान होता है, जो दूसरे खंड में प्रक्रिया प्रारंभ करने के लिए अनिवार्य है। यह अपार शक्ति युरेनियम-२३५ या प्लूटोनियम-२३९ नामक समस्थानिकों के विखंडन से उत्पन्न होती है।

दूसरे खंड में प्रायः लीथियम ड्यूटराइड या हाइड्रोजन के भारी समस्थानिक ड्यूटीरियम और ट्रीटियम का संमिश्रण होता है। केंद्रीय भाग (परमाणु-बम) के विस्फोट से उत्पन्न करोड़ों अंश तपमान की उपस्थिति में, दूसरे खंड में स्थित संमिश्रण में फ्यूजन या संलयन की प्रक्रिया संपन्न होती है, जिससे और भी अधिक शक्ति उत्पन्न होती है तथा शक्तिशाली न्यूट्रान उत्पन्न होते हैं।

तीसरे और सबसे बाहरी खंड में प्राकृतिक यूरेनियम होता है। दूसरे भाग में संलयन-प्रक्रिया से उत्पन्न शक्तिशाली न्यूट्रान, इस भाग में विखंडन-प्रक्रिया से और अधिक शक्ति उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार हाइड्रोजन-बम की विनाशकारी शक्ति तीन खंडों द्वारा उत्पन्न शक्ति का सर्वयोग होती है।

हाइड्रोजन-बम की लगभग आधी शक्ति दूसरे खंड से और आधी शक्ति तीसरे खंड से प्राप्त होती है। यों तो बम की शक्ति का बहुत थोड़ा भाग ही केंद्रीय भाग (परमाणु-बम) से प्राप्त होता है; पर हाइड्रोजन-बम के सफल विस्फोट के लिए यह अंग सबसे महत्त्वपूर्ण है। इसके विफल होने पर शेष दो खंड भी विस्फोट नहीं पैदा कर सकते।

इस रूपरेखा से यह स्पष्ट है कि हाइड्रोजन-बम का कठिनतम भाग केंद्रीय परमाणु-बम है। और परमाणु-बम संबंधी पूरी वैज्ञानिक जानकारी कुछ ही देशों के पास है और उसे बहुत गुप्त रखा गया है। यही नहीं, परमाणु-बम के निर्माण के लिए आवश्यक पदार्थ युरेनियम-२३५ अथवा प्लूटोनियम-२३९ पर्याप्त मात्रा में सब देशों

त्रिखंडीय हाइड्रोजन बम में होने वाली प्रक्रियाएं

को उपलब्ध नहीं हैं। दूसरे, इन पदार्थों को अलग करने अथवा उनका निर्माण करने के साधन भी अत्यधिक महंगे हैं और छोटे देशों या अविकसित देशों की आर्थिक सामर्थ्य से परे हैं। शेष दोनों खंडों का निर्माण इतना कठिन नहीं है।

अतः यदि परमाणु-बम का कार्य किसी और साधन से कराया जा सके, तो हाइड्रोजन-बमों का निर्माण आसान हो जायेगा और शायद विकासशील देशों के आर्थिक सामर्थ्य से परे नहीं रह जायेगा। यही कारण है कि हाइड्रोजन-बम में लेसर के प्रयोग की संभावना को इतना अधिक महत्त्वपूर्ण माना जा रहा है।

ऊपर हम देख चुके हैं कि हाइड्रोजन-बम में केंद्रीय भाग का मुख्य उद्देश्य है—दूसरे खंड में संलयन-प्रक्रिया के लिए आवश्यक करोड़ों अंश का तापमान उत्पन्न करना। यदि यही कार्य लेसर कर सके, तो परमाणु-बमों के निर्माण के बिना ही हाइड्रोजन-बम बना लेना संभव हो जायेगा।

यह चीज विकसित और न्यूक्लीय-शक्ति से संपन्न देशों के लिए भी कम महत्त्व की नहीं है। लेसर छोटे आकार के बनाये जा सकते हैं। अतः अनुमान है कि लेसर के प्रयोग से बने हाइड्रोजन-बम छोटे आकार और कम लागत के होंगे। साथ ही ये बम अधिक विश्वसनीय भी होंगे।

एक लाभ और है, जो कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। संभवतः ये बम 'स्वच्छ' होंगे, अर्थात् रेडियोधर्मी धूल नहीं छोड़ेंगे। यह इसलिए संभव होगा कि हाइड्रोजन-बम के विस्फोट से उपजने वाले हानिकारक रेडियोधर्मी पदार्थ मुख्यतः केंद्रीय परमाणु-बम और सबसे बाहरी तीसरे खंड के विस्फोट से उत्पन्न होते हैं। अतः यदि परमाणु-बम के स्थान पर लेसर का प्रयोग हो सके, तो तीसरे खंड को न रखने से स्वच्छ बम बनाना संभव हो सकेगा। शांतिमय कार्यों के लिए ऐसे बम बहुत उपयोगी होंगे।

हाइड्रोजन-बम में लेसर के प्रयोग की संभावना व्यक्त तो की गयी है; परंतु अभी तक के अनुसंधान बहुत आशाजनक नहीं हैं। इस दिशा में अमरीका के राचेस्टर और प्रिंस्टन विश्वविद्यालयों तथा अनेक अनुसंधानशालाओं में बहुत तेजी से प्रयोग चल रहे हैं। किंतु अभी तक जो तापमान पैदा किये जा सके हैं, वे आवश्यक तापमानों से बहुत कम हैं और शक्ति की दृष्टि से इन्हें अभी की तुलना में १०० से १,००० गुना प्रबल बनाना आवश्यक है। तभी लेसर हाइड्रोजन-बमों में प्रयुक्त हो सकेंगे।

परंतु विज्ञान में ऐसी बहुत-सी चीजें, जो आज असंभव मालूम होती हैं, कल संभव हो जाती हैं। और उनके संभव होने की आशा ही वैज्ञानिकों के लिए इतनी महत्त्वपूर्ण होती है कि वे जी-जान से उसमें जुट जाते हैं।

अब देखना है कि लेसरयुक्त हाइड्रोजन-बम तैयार करने में कब सफलता मिलती है। जब भी यह होगा, विज्ञान तथा अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में नया मोड़ आयेगा।

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद्, बंबई द्वारा प्रेषित

सैनिक जीवन एक सैनिक की दृष्टि में
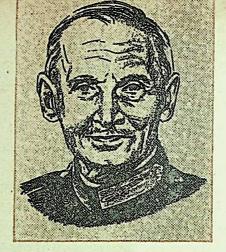
फील्डमार्शल मांटगोमरी

स्कूल से निकलकर मैंने सैनिक बनने का निश्चय किया और शिक्षार्थी के रूप में सैंडहर्स्ट के रायल मिलिटरी कालेज में भरती हुआ। मेरा खयाल था कि वहां मुझे सैन्यविद्या की बुनियादी बातें सिखायी जायेंगी। मगर वहां मुझे मानवीय पहलू के बारे में, यानी आदमियों से कैसे व्यवहार किया जाता है, इस बारे में कुछ भी तो नहीं सिखाया गया, जबकि मेरे खयाल में यह सैन्य-संचालन में सबसे महत्त्वपूर्ण चीज है।

सैंडहर्स्ट में मुझे काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। गलती मेरी ही थी। मैंने अभी यह सबक नहीं सीखा था कि अगर मुझे सैनिकों का सफलतापूर्वक अनुशासन और नियंत्रण करना है, तो पहले स्वयं अपने आप पर अनुशासन और नियंत्रण करना सीखना होगा।

मेरे अफसरों ने इस सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पाठ के बारे में मुझे कभी कुछ नहीं बताया; पदोन्नति के साथ-साथ मैंने अपने ही अनुभवों से इसे परिश्रमपूर्वक सीखा।

सैंडहर्स्ट से निकलकर जब मैं अपनी रेजिमेंट में भरती हुआ, तो कोई तीस आदमियों की पलटन मेरे सुपुर्द की गयी। शीघ्र ही यह बात साफ मेरी समझ में आ गयी कि इनसे मैं क्या-कुछ करा सकता हूं, यह पूरी तरह मुझ पर ही निर्भर है। अगर उन्हें मेरे नेतृत्व में विश्वास है, तो वे मेरे पीछे कहीं

भी चलने को तैयार हो जायेंगे। १९१४ में मैं अपनी पलटन को जर्मनों के विरुद्ध मोर्चे पर ले गया।

तब से लेकर ऊपर चढ़ते-चढ़ते प्रधान सेनापति बनने तक लगातार यह बात मेरे चित्त पर अंकित होती रही कि युद्ध का एक मानवीय अंग भी है और सारा दारोमदार उसी पर है। थकान, भय, भयंकर परिस्थितियां, घोर कष्ट और अभाव, घावों की अनिवार्यता और मृत्यु की संभावना—इन सबको युद्धरत सैनिक सह लेगा, अगर उसका दिल मजबूत है, अगर वह जानता है कि वह किस चीज के लिए लड़ रहा है, अगर उसे अपने अफसरों और साथियों में विश्वास है, और अगर उसे मालूम है कि उससे कोई असंभव कार्य करने को नहीं कहा जायेगा।

जैसे-जैसे मेरी पदोन्नति हुई, मैं जनरल बना और मुझे लड़ाइयों की योजनाएं बनानी पड़ीं, यह बात मेरे लिए स्पष्ट हो गयी कि मोर्चे तो सैनिकों के दिल में जीते जाते हैं। अगर आपने अपने अधीनस्थों के दिल जीत लिये हैं, उनकी श्रद्धा प्राप्त कर ली है, तो बड़ी-से-बड़ी विजय संभव हो जाती है।

हर लड़ाई में एक वक्त आता है, जब दोनों पक्षों का पलड़ा बिलकुल बराबर होता है। तब शक्ति जनरलों से निकलकर सैनिकों में प्रविष्ट हो जाती है और विजय पूरी तरह उनके साहस, उनके प्रशिक्षण, उनकी दृढ़ता व अडिगता तथा जीतने या जान निछावर कर देने के उनके संकल्प पर अवलंबित हो जाती है। वास्तव में मोर्चा तो अंततः रेजिमेंट के अफसर और जवान ही जीतते हैं—जनरल चाहे कितने ही बढ़िया हों, या चाहे कितने ही निकम्मे।

एक वाकया लीजिये, जो अक्तूबर १९१४ में यर्प्स की पहली लड़ाई के शुरू में खुद मेरे साथ बीता। हमारी रेजिमेंट मेटरेन नामक गांव के आक्रमण में भाग ले रही थी और मेरी पलटन ने गांव के सामने कुछ अग्रिम खंदकों पर कब्जा जमा लिया था। पलटन को पुनर्व्यवस्थित करते समय एक जर्मन बंदूकची ने मुझे निशाना बनाया। गोली मेरे फेफड़े को चीरती हुई निकल गयी। मैं बुरी तरह घायल होकर मोर्चे पर गिर पड़ा। जर्मन मुझ पर गोलियां दागते रहे।

मेरी पलटन का एक सैनिक तुरंत दौड़ता हुआ आया और रक्तस्राव रोकने के लिए मेरे घाव पर पट्टी बांधने लगा। तभी उसके सिर में गोली लगी और वह मेरे ऊपर लुढ़क गया। लड़ाई जारी रही और मुझे लक्ष्य करके दागी गयी और भी कई गोलियां उसके लगीं। मेरे तो सिर्फ एक और गोली लगी—सो भी घुटने में।
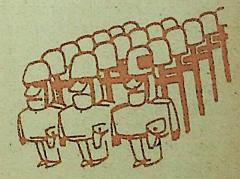
छः घंटे तक हम वहां पड़े रहे। मूसलाधार पानी बरस रहा था। अंत में जब दिन छिपा, तो हमारा बचाव किया गया। मैं कहने मात्र को जिंदा था, पर जवान मर चुका था।

उस सैनिक को अवश्य पता रहा होगा कि उसके बचने की आशा कितनी कम थी। असल में, बेहोश होने से पहले मैंने अपनी पलटन को चिल्लाकर यह आज्ञा दी थी कि कोई भी मेरे पास न आये—बहुत अधिक खतरा है। फिर भी उस युवक ने स्वेच्छा से अपनी जान न्यौछावर कर दी मेरे लिए—अपने नेता और मित्र के लिए, जिसके अधीन वह युद्ध के आरंभ से ही काम कर रहा था।

"इससे बढ़कर कोई प्रेम नहीं कि मनुष्य अपने मित्रों के लिए अपने प्राण दे दे!" संत जॉन की सुवार्ता के ये शब्द मेरे मन में घूम रहे थे, जब मैं अस्पताल में पड़ा था। जीवन का वह दिन मुझे कभी नहीं भूला है, और न वह बहादुर नौजवान।

मोर्चे पर मानवीय तत्त्व कई रूप में काम करता है और अगर उसे ठीक से समझा जाये, तो मनोबल बढ़ाने में उससे जबर्दस्त सहायता मिलती है। घायलों की ही बात लीजिये। अगस्त १९४२ में मुझे सहारा रेगिस्तान में आठवीं सेना का सेनापति बनाया गया। उस समय नियम था कि मोर्चे पर नर्सें बहुत आगे न जायें। मैंने यह नियम रद्द कर दिया और कहा कि वे जितना भी आगे जाना चाहें, जा सकती हैं। नर्सें इससे बड़ी खुश हुईं।

मेरी दलील यह थी। जब मोर्चे पर कोई सैनिक घायल होता है, तो उसे मानसिक आघात लगता है और उसका स्नायु-संस्थान एकदम झन्ना उठता है। यदि मोर्चे पर दवाखाने में पहुंचकर वह महिला नर्स को देखता है, तो उसके स्नायु कुछ शांत हो जाते हैं, क्योंकि उसे ऐसा लगता है कि शायद वह युद्धस्थल से दूर किसी सुरक्षित स्थल पर है।

असलियत तो कुछ और ही है। वह खतरनाक स्थान में है और नर्स-बहन वहां उसके साथ है। मगर उसे राहत अनुभव होती है। उसे पता है कि उसकी अच्छी तीमारदारी की जायेगी—क्योंकि पुरुष कभी स्त्री जितनी अच्छी तीमारदारी नहीं कर सकता।

इस संबंध में आठवीं सेना की ही एक घटना है। इटली में मोर्चे के अग्रभाग में खंदक में बम फटने से एक सैनिक को भयंकर घाव लगे। अंधेरा होने से पहले उसे वहां से हटाना संभव नहीं था। डाक्टर का कहना था कि उसके प्राण सिर्फ इस सूरत में बच सकते हैं कि अगले चार-पांच दिनों में जब तक उसका रक्तस्राव बंद न हो जाये, उसे खंदक में ही रहने दिया जाये।

उस रात अंधेरा होने पर एक नर्स-बहन खंदक में पहुंच गयी और चार दिन तक वहीं रही। फिर वह अस्पताल ले जाने लायक हो गया। धन्य है, वह वीर महिला!

युद्धकाल में मेरी यह आदत थी कि महत्त्वपूर्ण घड़ियों में आठवीं सेना के नाम निजी संदेश जारी किया करता था। सैनिक-

दल बड़ी उत्सुकता से इन संदेशों की प्रतीक्षा करते थे; इन संदेशों से उनका उत्साह और जीतने का संकल्प बढ़ता था, जिससे सारी आठवीं सेना एक सुखी परिवार-सा बन गयी थी।

अलामीन की लड़ाई से पहले मैंने जो वैयक्तिक संदेश जारी किया था, वह इस प्रकार हैं :

"१. आठवीं सेना की कमान संभालते समय मैंने कहा था कि मुझे रोमेल और उसकी सेनाओं को नष्ट करने का आदेश है और ज्यों ही हमारी तैयारी हो जायेगी, हम यह काम करेंगे।

"२. अब हम तैयार हैं। अब जो लड़ाई शुरू होने वाली है, वह इतिहास की निर्णय-कारी लड़ाइयों में से एक होगी। यह युद्ध का पासा पलट देगी। सारी दुनिया हम पर नजरें गड़ाये बेचैनी से देख रही होगी कि लड़ाई का पासा किस ओर पलटता है। हम उन्हें अभी से बता सकते हैं—पासा हमारी ओर पलटेगा।

"३. केवल एक चीज जरूरी है—वह यह कि हरएक अफसर और जवान इस निश्चय के साथ मैदान में उतरे कि हम अंत तक लड़ेंगे—और जीतकर रहेंगे। अगर हम सब ऐसा करेंगे, तो परिणाम एक ही होगा। हम सब धुरी राष्ट्रों को अफ्रीका से मार भगायेंगे।

"४. युद्ध का पासा पलटने वाली यह लड़ाई हम जितनी जल्दी जीत लेंगे, उतनी ही जल्दी अपने वतन और अपने घर वापस लौट सकेंगे। इसलिए हरएक अफसर और जवान मजबूत दिल लेकर, जब तक एक भी सांस बाकी है, अपना कर्तव्य निभाते रहने का संकल्प लेकर मैदान में उतरें।

"आइये, हम सब प्रार्थना करें कि सर्व-शक्तिमान भगवान मोर्चे पर हमें विजयी बनाये।"

★

चीन का एक मंत्री शाहचंग बहुत थक गया था। अगले दिन सवेरे ही उसे बाद-शाह के सामने एक रिपोर्ट पेश करनी थी। आधी रात तक जागकर वह अपने सहायक को रिपोर्ट लिखवाता रहा। रिपोर्ट पूरी करके वह उठा और अपने शयन-कक्ष की ओर बढ़ा। इसी समय उसका सहायक भी उठा। किंतु उसकी असावधानी से लैंप को धक्का लग गया और लैंप गिर पड़ा। पूरी रिपोर्ट तेल में सराबोर हो गयी और उसमें आग लग गयी। सहायक को काटो तो खून नहीं।

लेकिन मंत्री तुरंत लौट पड़ा। उसने सहज भाव से कहा—"यह महज संयोग की बात है। इसमें तुम्हारी कोई गलती नहीं है। बैठो, हम दोनों फिर से वह रिपोर्ट तैयार कर लेते हैं।"

और शाहचंग बैठकर फिर से सहायक को रिपोर्ट लिखवाने लगा।

—रामनिवास शर्मा 'मयंक'

प्रो० एफ. सी. दावर

कई आदतें ऐसी हैं, जिनसे वृद्ध मनुष्य नयी पीढ़ी का प्यारा बन जाता है। बच्चों से प्यार करना एक प्यारा गुण है, जिससे बच्चों में अच्छी आदतें पनपती हैं और दादाजी का वक्त भी अच्छा कटता है।

रेडियो-संगीत सुनने से बढ़कर कुछ नहीं, बशर्ते काम-काज में लगे हुए लोगों को उससे परेशानी न हो। दूसरों के काम में तनिक भी खलल डाले बिना जिसका आनंद लिया जा सकता है, ऐसी सबसे बढ़िया आदत है—स्वाध्याय। आंखें जब तक साथ दें, पढ़िये उसके बाद चिंतन-मनन का आनंद उठाइये।
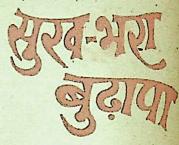
कटुता और व्यंग्योक्ति से रहित और दूसरे को चोट पहुंचाने की नीयत से विमुक्त विनोद भी वृद्ध मनुष्य को जीवन की विसंगतियों पर हंसने और शांति से दिन काटने की शक्ति देता है।

बुढ़ापा पुरानी भूलों और बदकिस्मतियों की यादों को कुरेद-कुरेदकर न जगाये। बल्कि बीती को बिसार ही दे। बुढ़ापा वह वक्त है, जब "चित्त के प्रशांत और वासनाओं के क्षीण हो जाने से" प्रेम और क्षमा को गहरा और व्यापक हो जाना चाहिये।

सारा विश्व एक विशाल कुटुंब है तथा परमात्मा सबका पिता है और उसके पुत्रों के नाते हम सब मनुष्य भाई-भाई हैं, इस उदात्त सिद्धांत को जीवन में अनुभव करने की अगर कोई उम्र है, तो वह बुढ़ापा है।
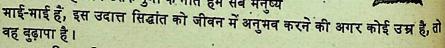
आत्मिक दृष्टि से वृद्ध होने का अर्थ है—सौंदर्यपूर्वक वृद्ध होना और बुढ़ापे की घड़ियों को आत्मिक संतोष से भरने का धर्म से बढ़कर कोई साधन नहीं।

प्रकृति में बड़ा अद्भुत संतुलन है। बुढ़ापे का समतोल और विवेक यौवन के मद और अविवेक की दवा है। यदि नौजवानों में इतनी समझ हो कि अपनी बेतहाशा दौड़धूप में भी वे भविष्य के बारे में सोच सकें, तो वे बुढ़ापे से पहले ही इसका रहस्य जान जायेंगे कि सौंदर्यपूर्वक बूढ़ा कैसे हुआ जाता है।

★

सदरुद्दीन

जेकबसन

• हरिशंकर •

ऊ थां के बाद कौन ?

प्रिंस सदरुद्दीन जब पिछले दिनों भारत आये थे, बहुत लोगों ने अखबारों में छपे उनके चित्रों को बहुत ध्यान से देखा होगा। वे रूपवान हैं; फिर वर्तमान आगा-खां के चाचा हैं।

एक और कारण से भी अब वे दर्शनीय हैं। वे राष्ट्रसंघ के महामंत्री के रूप में ऊ थां के संभावित उत्तराधिकारियों में से हैं।

ऊ थां का कार्यकाल इसी वर्ष दिसंबर में समाप्त हो रहा है। १९६१ में कांगो में एक विमान-दुर्घटना में डाग हैमरशोल्ड के मारे जाने पर ऊ थां राष्ट्रसंघ के महामंत्री बनाये गये थे। यह उनकी दूसरी कार्यावधि है और उन्होंने अब निवृत्त होने की इच्छा व्यक्त की है।

उनके उत्तराधिकारी के रूप में जो नाम चर्चाधीन हैं, उनमें तीन नाम मुख्य हैं—प्रिंस सदरुद्दीन, मैक्स जेकबसन और ली क्वान यू। इनमें से किसके चुने जाने की अधिक संभावना है, इसका हिसाब लगाने के पूर्व यह भी देख लिया जाये कि राष्ट्रसंघ का महामंत्री बनने के लिए आवश्यक योग्यताएं क्या हैं।

उम्मीदवार को न तो अमरीकी होना चाहिये, न रूसी। साथ ही यह भी जरूरी है कि वह अमरीका और रूस में से किसी का द्वेषपात्र भी न हो। वह किसी तटस्थ देश का हो, तो अच्छा। प्रथम महामंत्री ट्रिग्वे ली नार्वे के थे और उनके उत्तराधिकारी हैमरशोल्ड स्वीडन के। दोनों ही समुन्नत देशों के निवासी थे।

ऊ थां का देश बर्मा आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ है और अंतर्राष्ट्रीय राजनीति

से एकदम उदासीन है। मगर आवश्यक नहीं कि अगला महामंत्री भी ऐसे ही किसी देश का हो।

राष्ट्रसंघ के कायदे-कानून और प्रशासन का अनुभव यदि उमीदवार को हो, तो अच्छी बात है। ऊ थां सन् १९४६ से ही राष्ट्रसंघ में बर्मा के राजदूत थे, हालांकि बोलने वालों की उस मजलिस में वे "मौनी राजदूत" के नाम से मशहूर थे। हैमरशोल्ड को राष्ट्रसंघ का कोई अनुभव नहीं था। ट्रिग्वे ली को पूर्व-अनुभव संभव ही नहीं था; क्योंकि वे राष्ट्रसंघ के प्रथम महामंत्री थे।

अनुभव की दृष्टि से मैक्स जेकबसन सब संभावित उम्मीदवारों में से आगे हैं। वे राष्ट्रसंघ में फिनलैंड के राजदूत हैं और दो साल तक सुरक्षा-परिषद् में फिनलैंड के प्रतिनिधि के रूप में काम कर चुके हैं।

उन्हीं के सुझाव पर अब सुरक्षा-परिषद् की बैठकें विश्व राजनीति की समस्याओं पर विचार करने के लिए नियमित रूप से होने लगी हैं। हालांकि राष्ट्रसंघ के संविधान में इसकी व्यवस्था थी, पर बैठकें तभी बुलायी जाती थीं, जब कोई संकट खड़ा हो जाये।

जेकबसन की प्रखर और परिपक्व बुद्धि की साख सभी मानते हैं; व्यक्तित्व भी उनका शानदार है। एक ही बात उनके विपक्ष में जा सकती है— वे यहूदी हैं। शायद अरब उन्हें स्वीकार न करें। मगर अरब भी उनके चरित्र और नेकनीयती का मान करते हैं।

प्रिंस सदरुद्दीन फिलहाल राष्ट्रसंघ शरणार्थी विभाग के उच्च-आयुक्त हैं। इ पद पर रहते हुए उन्होंने अपनी व्यवहा कुशलता, राजनयिक दक्षता और प्रबं चातुरी से लोगों को काफी प्रभावित कि हैं। वे अनेक राष्ट्रों को अपने यहां अधि शरणार्थियों को बसाने, राष्ट्रसंघ के श णार्थी-कोष के लिए अधिक पैसा देने औ शरणार्थियों की हितरक्षा के लिए आवश्य कानून बनाने के लिए राजी करने में सफ हुए हैं। हां, सदरुद्दीन कभी अपने रंगी पन के लिए काफी मशहूर थे, हो सकता है वह पुराना यश उनके लिए बोझ बन जाये

सिंगापुर के समाजवादी प्रधान मंत्री ली क्वान यू की विशेष ख्याति इस रूप में है कि वे अपने राष्ट्र की नाना नस्लों की प्रजा को एकजुट रखने में सफल हुए हैं; और स्व चीनी तथा समाजवादी होते हुए भी माओ के प्रभाव से अपने नन्हे देश को अभी तक मुक्त रख सके हैं। उनकी एक महिमा य भी है कि उनके नेतृत्व में सिंगापुर ने अद् भुत आर्थिक प्रगति की है—पिछले पांच वर्षों में वहां के औसत नागरिक की वार्षिक आय में ५० प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इस साल जनवरी में सिंगापुर में हुए राष्ट्रमं लीय सम्मेलन से भी उनकी अंतर्राष्ट्री प्रतिष्ठा बढ़ी है।

ट्रिग्वे ली और हैमरशोल्ड यूरोपवासी थे और ऊ थां एशियाई हैं। अतः संभव है किसी अफ्रीकी को अवसर देने का प्रस्ता इस बार सामने आये। तब घाना के राज

गार्डिनर का नाम अवश्य लिया जायेगा। मगर वे पदच्युत राष्ट्रपति एनक्रुमा के विश्वासपात्र थे; इसलिए संभवतः घाना और दूसरे कई अफ्रीकी देश उनका समर्थन नहीं करेंगे।

अभी तक किसी दक्षिण अमरीकी को भी महामंत्री बनने का अवसर नहीं मिला है। दक्षिण अमरीकियों में राओल प्रेबिश में महामंत्री बनने की योग्यता है। वे 'अंक्टाड' के महामंत्री रह चुके हैं। मगर शायद संयुक्त राज्य अमरीका और कई पश्चिम यूरोपीय देशों को वे नामंजूर होंगे।

इथियोपिया ने राष्ट्रसंघ में अपने राजदूत को महामंत्री चुनवाने के लिए अभी से प्रचार-कार्य शुरू कर दिया है।

क्या किसी भारतीय का नाम भी प्रस्तावित हो सकता है? सी. वी. नरसिम्हन् का नाम १९६१ में हैमरशोल्ड की मृत्यु के बाद भी लिया गया था। राष्ट्रसंघ में दीर्घकाल से वे उच्च पदों पर हैं और इस समय महामंत्री के प्रधान सचिव हैं। भारतीय होने से वे शायद पाकिस्तान को नामंजूर होंगे। स्वयं भारत में भी बहुत लोगों की मान्यता है कि नरसिम्हन् का अमरीका और ब्रिटेन की ओर बहुत झुकाव है।

यह भी असंभव नहीं कि ऊ थां के उत्तराधिकारी स्वयं ऊ थां ही हों। उन्होंने कहा भी है कि अगर और कोई नहीं मिल सका, तो मैं ही निभा लूंगा।

भले ही उनमें स्वर्गीय हैमरशोल्ड-जैसा चमत्कारी कर्तृत्व और आकर्षक व्यक्तित्व न हो, मगर अपने परिपक्व विवेक, प्रशासन-कौशल और सौजन्य के कारण राष्ट्रसंघ में उनका बहुत मान है। यह बात अलग है कि स्वयं राष्ट्रसंघ का मान ही पहले जितना नहीं रह गया है। ×××

तीन रुबाइयां

फ़िक्रो-अहसास के धुंधलके में
वक़्त की जिंदगी सिमट आयी
हाफ़ज़े के ख़मोश गुंबद में
दफ़अतन एक गूंज लहरायी।

गूंज लहरायी और लहराकर
ढल गयी ख़ामुशी के सांचे में
इक लहर उट्ठी और डूब गयी
ज़ेह्न के खोखले-से ढांचे में।

जिस तरह रोशनी की एक किरन
बेकरां ज़ुल्मतों में खो जाये
या कोई रेंगता हुआ चश्मा
रेगज़ारों में जज़्ब हो जाये।

मूल उर्दू : नरेश कुमार 'शाद'

अनुवाद : जहीर न्याजी

लाटरियां किसकी किस्मत खोल रहीं

◦ विद्यानिवास ◦

कन्या कुमारी से कश्मीर तक आज किसी भी शहर, कस्बे या गांव में घूमें, तो ऐसा लगता है कि लाटरी के टिकट वेचना भारत का सबसे बड़ा धंधा है।

मजेदार बात यह है कि लोगों को बिना हाथ-पैर हिलाये या दिमाग लड़ाये माला-माल होने के लिए लुभाने का यह विशाल धंधा सरकारी तौर पर चल रहा है। इसकी शुरूआत श्री शंकर नंबूदिरीपाड के मुख्य-मंत्रित्व में केरल की मार्क्सवादी सरकार ने जनवरी १९६८ में की थी। फिर दूसरे राज्यों की सरकारों ने भी इसका अनुकरण किया और आज देश के चौदह राज्यों की सरकारें देश के करोड़ों लोगों की किस्मत खोलने के इस धंधे में व्यस्त हैं।

टिकटों की दरें अलग-अलग हैं, इना की रकमें भी। हरियाणा, केरल, महाराष्ट्र पंजाब और तमिलनाडु आदि की टिकटों की कीमत एक रुपया है, जबकि राजस्थान पश्चिम बंगाल आदि की टिकटें दो-दो रुपये की हैं।

टिकिटों की कई-कई सीरीजें होती हैं। कुछ राज्यों में सब सीरीजों का एक साझा पहला इनाम भी हो सकता है, पृथक्-पृथक् इनाम भी हो सकते हैं। सबसे बड़ा पहला इनाम १२॥ लाख रुपये का है—हथेली-भर चौड़े राज्य हरियाणा का।

टिकटों की बिक्री करने वाले एजेंटों की दलाली की दर १२॥ प्रतिशत से ३३ प्रतिशत तक है। सबसे ज्यादा कमीशन

जम्मू-कश्मीर (३३ प्रतिशत) तथा असम (३० प्रतिशत) देते हैं; जबकि अन्य राज्य १२।। से २७ प्रतिशत तक देते हैं। इसके अलावा, सबसे ज्यादा टिकट बेचने वाले एजेंटों और इनाम जीतने वाले टिकटों के विक्रेता एजेंटों को विशेष कमीशन या बोनस दिया जाता है। एजेंटों को दिये गये टिकट वापस नहीं लिये जाते, चाहे वे उन्हें बेच पायें या नहीं। कई राज्य-सरकारें सीधे जनता को भी टिकटें बेचती हैं।

सरकारी लाटरियां आरंभ करते समय दावा किया गया था कि इनका उद्देश्य आर्थिक विकास और निर्माण के कार्यों के लिए जनता से पैसा प्राप्त करना है। यह उद्देश्य कहां तक पूरा हो रहा है, यह विचारणीय है।

यद्यपि यह सत्य है कि इससे देश के कुछ लोगों को एक नये किस्म का रोजगार मिला है और कुछ लोग 'लखपति' भी बने हैं, किंतु आम जनता की जेब से निकला यह रुपया जनता की भलाई में कहां तक लग रहा है, यह बात संदेहास्पद ही है।

पिछले दो वर्षों में राज्यों के इस लाटरी-व्यापार के आंकड़ों पर नजर डालने से पता चलता है कि सभी राज्यों में आमदनी की तुलना में खर्च की मात्रा लगातार बढ़ती गयी है। इस कारण विकास-कार्यों के लिए बचने वाले पैसे की मात्रा घटती गयी है।

सन १९६८-६९ में केरल, महाराष्ट्र, राजस्थान, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल ने लाटरी से कुल ११.८५ करोड़ रुपये कमाये थे। इसमें से इनाम तथा अन्य मदों में ३.१८ करोड़ रुपये खर्च हुए और ७.९९ करोड़ रुपये इन सरकारों के पास बचे। अर्थात् उस वर्ष इन राज्यों ने कुल आय का दो-तिहाई से ज्यादा भाग जन-कल्याण योजना में खर्च किया, जैसा कि तालिका-१ में दिखाया गया है। यह तो काफी अच्छी स्थिति थी।

मगर अगले साल १९६९-७० में स्थिति

तालिका—१

१९६८-६९ में राज्यों को लाटरी से मिली राशि, व्यय, बचत (लाख रुपये)

राज्य	आय	इनाम सहित व्यय	शेष बचत	बचत का प्र. श.
केरल	१८१	२४	१५७	८६.७
महाराष्ट्र	१३१	१४	११७	८९.३
राजस्थान	३४	१५	१९	५५.९
तमिलनाडु	७३०	२५६	४७४	६४.९
उत्तर प्रदेश	२९	४	२५	८६.२
पश्चिम बंगाल	१२	५	७	५८.३
	१११७	३१८	७९९	७१.५

तालिका—२

विभिन्न राज्यों को लाटरी से मिली राशि, व्यय और बचत (लाख रुपये)
(१९६९–७० के संशोधित अनुमान)

राज्य	आय	इनाम सहित व्यय	बचत	व्यय का प्र.
असम	२१	१३	८	६१
बिहार	३०	१३	१७	४३
हरियाणा	२००	७६	१२४	३८
जम्मू-कश्मीर	५५	२७	२८	४९
केरल	२५०	९३	१५७	३७
मध्यप्रदेश	७६	३६	४०	४७
महाराष्ट्र	८६०	४१२	४४८	४७
मैसूर	१९३	१०६	८७	५४
उड़ीसा	६	५	१	८३
पंजाब	२००	७९	१२१	३९
राजस्थान	१२५	७८	४७	६२
तमिलनाडु	६४०	२२४	४१६	३५
उत्तर प्रदेश	१२५	७१	५४	५६
पश्चिम बंगाल	५५	५३	२	९६
योग	२८३६	१२८६	१५५०	४५

उतनी प्रशंसनीय नहीं रही। १९६९-७० में इन राज्यों तथा अन्य सभी राज्यों की लाटरी से मिली रकम, व्यय और बचत के आंकड़ों पर नजर डालने से एक चिंता-जनक बात सामने आती है। जहां १९६८-६९ में लाटरी के संचालन का खर्चा लगभग २८ प्रतिशत था, १९६९-७० में वह बढ़कर ४५ प्रतिशत से भी ज्यादा हो गया। यानी लाटरी से जमा हुए हर १०० रुपयों में से ४५ रुपये से ज्यादा तो केवल कमीशन तथा अन्य खर्चों में चला गया। इसका राज्य-वार विवरण तालिका-२ में है।

जनता की भलाई के लिए लाटरी किस राज्य की सरकार को कितनी रक मिली, यह तालिका-२ से पता चल जाता उड़ीसा और पश्चिम बंगाल को ही उड़ीसा में लाटरी से ६ लाख रुपये कम में ५ लाख रुपये खर्च हो गये। जनता से लाख रुपये इकट्ठे किये गये; खर्च काटने बाद जनता की भलाई के लिए केवल

लाख रुपये बचे! पश्चिम बंगाल में भी ५५ लाख रुपये इकट्ठे करने में ५३ लाख रुपये खर्च हो गये! अन्य राज्यों की हालत भी लगभग ऐसी ही है।

अब विचार करें अभी-अभी समाप्त हुए वित्तीय वर्ष (१९७०–७१) के अनुमानित आंकड़ों पर। अलग-अलग राज्यों ने अपने बजट में लाटरी से मिलने वाली रकमों, उस पर खर्च होने वाले रुपयों और बचत का अनुमान लगाया है। इनमें भी आमदनी की तुलना में खर्च की रकम बढ़ी है। अनुमानित आय ३६.१३ करोड़ रुपये है, अनुमानित व्यय १९.५५ करोड़ रुपये। अर्थात् राज्यों के पास बचेंगे केवल १६.५८ करोड़ रुपये। इकट्ठा किये गये हर १०० रुपयों पर ५४ रुपये से ज्यादा खर्च का अनुपात है। अर्थात् पहले (१९६९-७० में) जहां १०० में से ५५ रुपये जनता की भलाई में खर्च होते थे, वहां १९७०-७१ में ४४ रुपये ही खर्च होंगे।

अन्य राज्यों में भी लाटरी से आमदनी की तुलना में खर्चों में कहीं ज्यादा वृद्धि होने का अनुमान है। मैसूर में कुल टिकटों की बिक्री का ७३.६ प्रतिशत खर्च में चला जायेगा। पिछले वर्ष वहां खर्च आमदनी का ५४.९ प्रतिशत था। राजस्थान और उड़ीसा में भी आमदनी का ७० प्रतिशत के करीब खर्च हो जायेगा।

उत्तर प्रदेश की तो बड़ी शोचनीय स्थिति है। वहां १०० रुपयों में से केवल ६ रु. ४० पैसे खजाने में पहुंचेंगे, शेष ९३ रुपये ६० पैसे कमीशन, इनाम और प्रबंध-कार्यों में खर्च हो जायेंगे।

वस्तुतः केवल तमिलनाडु और हरियाणा ऐसे राज्य हैं; जिनमें बचत की राशि खर्च की राशि से अधिक है।

अब यह भी देख लें कि खर्च होने वाला रुपया आखिर जाता कहां है। आंकड़े बताते हैं कि लाटरी से जमा होने वाली कुल रकम का एक तिहाई भाग एजेंटों की जेब में जाता है। दूसरा एक तिहाई भाग चंद लोगों को 'लखपति' बनाने में खर्च हो जाता है—टिकट खरीदने वाले हर दस लाख में एक ही आदमी ऐसा होता है, जो 'लखपति' बनता है।

अब बाकी बचा लगभग एक तिहाई भाग। उसमें से सरकार को लाटरी के टिकट छापने, उनका प्रचार करने, बेचने की व्यवस्था करने आदि का खर्चा भी निकालना पड़ता है। इसे काटने के बाद जो नाममात्र का रुपया बचता है, वही जनकल्याण की गतिविधियों पर खर्च करने के लिए माना जा सकता है। परंतु उसमें से भी कितना धन वास्तव में लोगों का जीवन-स्तर सुधारने में खर्च होता है, यह कहना बड़ा मुश्किल है।

तो ये आंकड़े स्पष्ट सिद्ध करते हैं कि सरकारी लाटरियों के जरिये साधारण आदमी के खून-पसीने की कमाई का रुपया उसकी जेब से निकलकर टिकटों के दलालों और चंद सौभाग्यशालियों को धनवान बना रहा है। और इन दलालों और इनाम

विजेताओं से समाज को उत्पादन-वृद्धि या सेवा के रूप में कोई भी प्रतिफल नहीं प्राप्त होता।

जब लाटरियों की परंपरा शुरू हुई थी, तब राजाजी ने कहा था कि यह जनता में जुए की वृत्ति को बढ़ावा देना है। सचमुच यह विचारणीय प्रश्न है कि देश के नागरिकों के मन में बैठे-ठाले लखपति बनने की कामना जगाना क्या अनर्थकारी नहीं है? देश को गरीबी के शिकंजे से छुड़ाने के लिए आज आवश्यकता इस बात की है कि लोगों को श्रमनिष्ठ और उत्पादन-परायण बनाया जाये।

इसके अलावा, वर्तमान स्थिति को देखें तो पता चलेगा कि लाटरी से राज्यों के आपसी संबंधों में तनाव आया है; क्योंकि कई राज्यों ने अपने यहां अन्य राज्यों के लाटरी के टिकटों की बिक्री पर प्रतिबंध लगा दिया है। भ्रांत भाषाभक्ति, जातिवाद और क्षेत्रीयता जैसी विभाजनकारी भावनाओं से ग्रस्त इस देश में राज्यों के बीच मनमुटाव का एक और कारण प्रस्तुत करना विवेक की बात तो नहीं है।

बेशक योजना-कार्यों के लिए धन एकत्र करना आवश्यक है। इसके लिए प्रशासन और मंत्रियों की फौज पर जो भारी खर्चा हो रहा है, उसमें १० प्रतिशत की कटौती करना बहुत कठिन नहीं है।

टैक्स की चोरी को रोकना, धन जुटाने का दूसरा साधन है। अनुमान है कि हर साल लोग १०० करोड़ रुपये से ज्यादा के टैक्स की चोरी करते हैं। इसी तरह अनुमान है कि देश में काले धन की राशि ३,००० करोड़ रुपये जितनी है। अगर इन पर कड़ा नियंत्रण रखा जाये, तो लाटरी से कहीं ज्यादा धन राज्यों को मिल सकता है। और चूंकि यह रुपया समाजद्रोहियों से वसूल किया जायेगा, इससे देश को दोहरा लाभ होगा।

लोककल्याणकारी राज्य की सफलता इसी में है कि सरकार ऐसे साधनों से रुपया इकट्ठा करे, जो जनहितकारी हों, जनघातक नहीं। और लाटरी को जनहितकारी साधन हर्गिज नहीं माना जा सकता।

★

अब्राहम लिंकन जब अभी अमरीका के राष्ट्रपति नहीं बने थे, उन्हें एक कंपनी से इस आशय का पत्र मिला कि अपने पड़ोसी की आर्थिक हैसियत का ब्योरा लिख भेजें। लिंकन ने कंपनी को लिखा –"आपकी दस तारीख की चिट्ठी मिली। पहली बात, उनके एक बीवी और बच्चा है, दोनों का मूल्य किसी भी पुरुष की नजर में ५,००,००० डालर होगा। दूसरी बात, उनका एक दफ्तर है, जिसमें करीब १.५० डालर की एक मेज है और १.०० डालर की तीन कुर्सियां हैं। और अंत में, एक कोने में एक चूहे का बिल है, जिसकी तहकीकात करना खर्चीला मामला होगा। –आदर सहित, ए. लिंकन।"

★

नयी दिशाएं नये आयाम

केजिता

तीस जनवरी—नयी दिल्ली की एक सड़क का नाम, राष्ट्रपिता की निर्मम हत्या का दिन और अब एक भारतीय हवाई जहाज के हवा-हरण का दिन भी।

दो दिन की तीव्रतम मानसिक यातना के बाद हवाई यात्री जैसे-तैसे स्वदेश आये, अगले दिन पाकिस्तानी सरकार की साठ-गांठ का नतीजा भी सामने आ गया। हवाई जहाज को उड़ा दिया गया, पाकिस्तानी टेलिविजन पर इस उल्लासोत्वस को टेलिकास्ट किया गया।

हवाई जहाजों का हवा-हरण हिन्द उपमहाद्वीप के लिए भले नयी चीज हो, पिछले तीन बरसों में उसकी कई वारदातें दुनिया में हो चुकी हैं। कुछ मुकम्मिल उपाय इसे रोकने के लिए होन चाहिये। अब विज्ञान ने इस तरफ पांव बढ़ाया है।

प्रश्न यह है कि कोई प्राणघातक हथियार किसी यात्री के पास नहीं है, इसकी जांच कैसे की जाये? इसके लिए ही इंग्लैंड की डाइवर डिटक्शन डिवाइसेज लि. नामक कंपनी ने एक ऐसे यंत्र का विकास किया है, जो छिपी हुई धातु का तत्काल पता लगा सकता है। विशेषता यह है कि यह यंत्र चाबी का गुच्छा, रेजगारी जैसी धातु-निर्मित किंतु गैरखतरनाक चीजों को चाकू, पिस्तौल आदि प्राणघातक हथियारों से अलग करके पहचान सकता है। चुंबकीय क्षेत्र का तथा पास से किसी गाड़ी के गुजरने का इसके कार्यचालन पर कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता। हथियार किस जगह छिपाया गया है, इसका इशारा भी यह कर सकता है और लौह और अलौह धातुओं में फर्क करने की भी इसे तमीज है।

जांच के लिए प्रत्येक यात्री को एक दूसरे से पौने तीन फुट दूर स्थित छः फुट ऊंचे दो खंभों के बीच में से गुजारा जाता है। एक यंत्र इन खंभों के भीतर रहता है, और खंभों

के बीच से होकर जाने वाले किसी भी धातु-पिंड के घनत्व को मापकर उसकी सूचना एक दूसरे यंत्र को भेज देता है। यहां एक एम्प्लिफायर उसे 'मीटर रीडिंग' में बदल देता है और धातु की उपस्थिति की घोषणा स्वयंचलित अलार्म घंटी की आवाज या तेज रोशनी के रूप में कर देता है।

इस यंत्र में और भी कई खूबियां हैं—इसे आसानी से जोड़ा और खोला जा सकता है, और इसे किसी खास देखभाल की जरूरत नहीं होती। सबसे बड़ी बात यह है कि अपने आप तालाबंद होने वाले द्वार, कैमरा, या टेपरिकार्डर आदि किसी भी रूप में इसे प्रचलित किया जा सकता है।

लंदन के हीथ्रो हवाई अड्डे पर बी. ओ. ए. सी. ने अपने यानों के लिए इस यंत्र का प्रयोग शुरू भी कर दिया है।

दूरदर्शन भी, प्रकाश-बंधन भी

चाहे आप मैच देखने के शौकीन हों या प्राकृतिक दृश्यावली का रसपान करने के लोभी हों, 'बाइनॉक्युलर' आपके लिए अत्यावश्यक है। और खुदा भला करे जापानी वैज्ञानिकों का, जिन्होंने ऐसा बाइनॉक्युलर बना डाला है, जो दृश्य-दर्शन के साथ फोटो खींचने का काम भी कर सकता है।

नाम है 'निकनॉन'। यह एक 'हाई ग्रेड बाइनॉक्युलर-कम कैमरा' है। जो भी फोटो यह खींचेगा, वे उतने ही साफ होंगे, जितने कि एक फर्स्ट क्लास ३५ मिलिमीटर कैमरे से मिलते हैं। इसे ६० फुट से लेकर 'अनंत' तक कहीं भी फोकस किया जा सकता है। शटर को दबाने और प्रत्यक शाट के बाद फिल्म को आगे बढ़ाने के लिए इसमें स्वयंचलित व्यवस्था है। फोटो एक सेकेंड में खिंचकर तैयार। वजन, चार पौंड से कम।

वक्त की चाल :

समय मापने का काम कुछ आसान काम नहीं है। मामूली घड़ी, बहुत हुआ तो आधे सेकेंड तक का समय बता सकती है। परंतु आज के अतिसूक्ष्म, अतिसंवेदनशील वैज्ञानिक उपकरणों में कहीं-कहीं समय बहुत महत्त्वपूर्ण होता है और वहां एक सेकेंड के कई हजारवें हिस्से की सही-सही माप की आवश्यकता होती है।

इस सिलसिले में वैज्ञानिक जगत् में एक नयी क्रांति हुई है। हाल में एक नाभिकीय विखंडन को मापा गया था। विखंडन की क्रिया में ०.०००००००००००००००००१० सेकेंड समय लगा था। इसे यों भी कहा जा सकता है कि एक इंच के एक करोड़वें हिस्से की यात्रा करने में प्रकाश जितना समय लेगा, उसे अब माप लिया गया है। अब तक तो इसकी केवल गणितीय गणना ही संभव थी, वास्तविक मपाई नहीं। और यह संभव हो सका है डेन्मार्क के आर्थस विश्वविद्यालय के प्रोफसर के. ओ. नीलसन तथा अमरीकी प्रोफेसर डब्ल्यू. एम. गिब्सन के प्रयत्नों-प्रयोगों के कारण।

न्यूक्लीय अभिक्रियाओं तथा पदार्थ की आधारभूत संरचना को और अधिक अच्छी तरह से समझे जाने की दिशा में इससे काफी सहायता मिलेगी।

विज्ञान-लेख पुरस्कार

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद्, बंबई–८५ ने कुछ समय पूर्व एक विज्ञान-लेख प्रतियोगिता का आयोजन किया था। परिषद् ने उसका यह परिणाम घोषित किया है :

क. छात्र वर्ग :

प्रथम पुरस्कार	(१५० रु.)	श्री अशोक कुमार, वाराणसी
द्वितीय पुरस्कार	(१०० रु.)	श्री ओमप्रकाश महरोत्रा, लखनऊ
तृतीय पुरस्कार	(५० रु.)	कुमारी प्रतिभा इंद्र, बंबई
विशेष पुरस्कार	(२५ रु.)	श्री निरंकार सिंह, वाराणसी

ख. सामान्य वर्ग :

प्रथम पुरस्कार	(१५० रु.)	श्री प्रेमसागर, कानपुर,
द्वितीय पुरस्कार	(१०० रु.)	श्री नागेश प. करंजीकर, बंबई
तृतीय पुरस्कार	(५० रु.)	श्री चंद्रकुमार मिश्र, काबुल
अहिन्दी-भाषी लेखक पुरस्कार	(२५रु.)	श्री के.एल.पौलोज,कालडी (केरल)

निर्णायक थे श्री सुरेंद्र झा (संपादक, सायंस टुडे) और श्री नारायण दत्त (संपादक, नवनीत)।

पुरस्कार विजेताओं और हिन्दी विज्ञान परिषद् को नवनीत की ओर से बधाई। श्री अशोक कुमार, श्री प्रेमसागर और श्री नागेश प. करंजीकर के लेख नवनीत के अगले अंकों में प्रकाशित हो रहे हैं।

oooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooo

सूरज जमीन पर

उधर कनाडा की एक वैज्ञानिक कंपनी एक ऐसी छोटी भट्ठी बनाने में कामयाब हो गयी है, जिसमें सूर्य की सतह से भी ढाई गुना ऊंचा तापमान उत्पन्न किया जा सकेगा। इलेक्ट्रानिक्स उद्योग में इसके नतीजे काफी दूरगामी होंगे। मसलन अतिशुद्ध सिलिकोन का निर्माण एक समस्या है और इलेक्ट्रानिक्स उद्योग के लिए अतिशुद्ध सिलिकोन चाहिये ही। यह उच्च तापमान वाली भट्ठी इस दिशा में बड़ी उपयोगी है। वास्तव में कनाडा में प्रगलन की एक नयी तकनीक का विकास हुआ है, उसमें इस भट्ठी को काम में लाया जाने लगा है।

सूरज आग का भभकता-धधकता गैसीय गोला है। फिर दूरी भी कई करोड़ मील। इसलिए चांद की तरह मानव उसे कभी भी पददलित नहीं कर पायेगा। परंतु पचीस हजार डिग्री फारनहाइट का ताप पृथ्वी पर हासिल कर लेना, एक तरह-से सूर्य को पृथ्वी पर ले आना ही है।

शेविंग काउंटर

पुरुष के चेहरे पर खुदा ने दाढ़ी-मूंछ का क्या रोग लगाया है, कोई वजह समझ में

नहीं आती। हर रोज सुबह फसल पककर तैयार हो जाती है और साहब हैं कि आये दिन उसे सफाचट कर डालते हैं। क्या करें, सभ्य समाज के तौर-तरीकों का तकाजा ही ऐसा है।

आपको शायद मालूम हो कि अमरीका आदि उन्नत देशों में इतने उम्दा दर्जे के ब्लेड तैयार किये जा चुके हैं, जिनसे आप लगभग एक सौ हजामतें कर सकते हैं। एक ब्लेड ले लिया तो कई महीने की छुट्टी हो गयी। एक अमरीकी आविष्कारक ए. सेफरस्टाइन ने हाल में, इस सिलसिले में एक पेटेंट लिया है। उन्होंने एक ऐसा रेजर तैयार किया है जो अपने आप इसका हिसाब रखेगा कि उससे कितनी बार हजामत की गयी है। एक स्प्रिंग को दवाकर इसके 'रोटेटिंग काउंटर रिंग' को शून्य पर 'एडजस्ट' कर लीजिये। बस जब भी आप रेजर को पूरा खोलेंगे, एक नंबर अपने आप आगे ब जायेगा। रेजर को आधा या कम खोलने से गणना पर कोई फर्क नहीं पड़ता।

मजबूरी पानी की

छोटे शहर बड़े होते जा रहे हैं और बड़े शहर और भी वड़े। यह उद्योगीकरण का एक अनिवार्य परिणाम है। और शहरों में वहुत कुछ बदलता जाता है, नया होता जाता है। नये किस्म के फ्लैटनुमा मकान और हर मकान में हर परिवार के लिए अलग से शौचालय—फ्लश वाला शौचालय। इसका सीधा असर पड़ता है शहर की पानी सप्लाई पर। नहाने-धोने अथवा खाने-पीने में जितना पानी खर्च होता है, उससे भी कहीं अधिक पानी फ्लश वाले शौचालयों में वरबाद हो जाता है। और यह सब शोधा हुआ स्वच्छ पानी होता है। आप जानते ही हैं, वाटर-वर्क्स में पानी शोधने पर काफी वड़ी धन राशि खर्च होती है। पाखानों में वह जाने वाले पानी को फिल्टरित करना सरासर फिजूलखर्ची है।

इसे यथासंभव रोकने के लिए रुड़की के केंद्रीय भवन-शोध संस्थान ने एक नयी तरह की फ्लशिंग-व्यवस्था खोजी है। नाम दिया गया है 'डयूअल फ्लशिंग सिस्टर्न'। प्रचलित साइफोनिक किस्म के फ्लश के मुकावले इसमें यह सुविधा है कि पानी-डिस्चार्ज को नियंत्रित किया जा सकेगा। अब तक एक ही तरीका था—जंजीर खींची और पूरी टंकी खाली। चाहे जरूरत कितने भी पानी की हो। अव अगर आपको कम पानी की जरूरत है, तो यह मजबूरी नहीं है कि सारी टंकी को जाया करें। आप चेन को खींचकर छोड़ दीजिये। सिर्फ आधी टंकी का पानी वाहर आता है। अगर आपको जरूरत हो, सारे पानी की, तो कोई हर्ज नहीं। आप चेन को खींचकर, उसे छोड़ें नहीं, कुछ देर यों ही थामे रहें, सारी टंकी का पानी झटके से बाहर आ जायेगा।

इस तरह वंबई जैसे बड़े शहरों में करोड़ों टन शोधित जल बचाया जा सकता है और गरीब गंदी बस्तियों में पर्याप्त नल लगाकर लोगों को पीने-पकाने के लिए स्वच्छ जल मुहैया किया जा सकता है।

★

नोबेल पुरस्कार का प्रथम विजेता

मोहन रामचंदाणी

सन १८९५ की बात है। अंधेरे कमरे में बैठा एक वैज्ञानिक एक प्रयोग कर रहा था। प्रयोग साधारण किस्म का था और उस वैज्ञानिक को खयाल भी नहीं हो सकता था कि इस प्रयोग से ऐसी कोई जानकारी हाथ लगेगी, जो विज्ञान में क्रांति ला देगी और उसे आधुनिक विज्ञान के प्रवर्तकों की महिमाशाली पंक्ति में बैठायेगी।

वैज्ञानिक थे विलियम कोनराड रोंटजेन और उनके उस प्रयोग ने जन्म दिया क्ष-किरणों को।

कम दवाव पर भरी गयी गैस की नली में विद्युत को प्रवाहित करने पर कई रोचक घटनाएं घटती हैं। रोंटजेन इन्हीं रोचक घटनाओं का अध्ययन कर रहे थे कि क्ष-किरणों का आविष्कार हो गया।

प्रयोग के लिए आधा मीटर लंबी व दो अंगुल चौड़ी शीशे की खोखली नली ली गयी थी। नली के दोनों छोरों पर पीतल की टोपियां थीं। इन टोपियों को तार द्वारा इंडक्शन काइल से जोड़ दिया गया था। नली में भरी हवा (अथवा अन्य गैस) का दवाव कम करने के लिए एक छिद्र था, जिससे निष्कासन पंप जोड़ दिया गया था।

साधारण दवाव पर हवा में विद्युत प्रवाहित नहीं हो सकती। लेकिन अगर विभवांतर बहुत अधिक हो और हवा का दबाव कम हो, तो विद्युत प्रवाहित हो सकती है और चिनगारियां दिखाई देने लगती हैं।

विलियम कोनराड रोंटजेन
क्ष-किरणों का खोजी

दबाव को कम करने पर चिनगारियां ज्यादा निकलने लगती हैं। दबाव को और कम करने पर चिनगारियों का पुंज लहरदार पतली धाराओं का रूप धारण कर लेता है। दबाव को और भी कम करने पर संपूर्ण नली मोहक गुलाबी रंग की दीप्ति से भर उठती है। ऋणात्मक इलेक्ट्रोड नीली दीप्ति से चमकने लगता है।

ध्यान से देखने पर यह जान पड़ता है कि

रोंटजेन द्वारा लिया गया हाथ का एक्सरे चित्र

गुलावी और नीली दीप्तियों के संधिस्थल पर थोड़ा-सा स्थान दीप्ति-रहित रह जाता और काला दिखाई पड़ता है। इस काले भाग को सर्वप्रथम फैराडे ने देखा था। नली के अंदर का दवाव १ मिलिमीटर पारे की ऊंचाई के तुल्य होने पर ऐसी अवस्था आती है।

दवाव को और भी कम करने पर गुलावी भाग धनात्मक इलेक्ट्रोड की ओर बढ़ने लगता है और ऐसा जान पड़ता है कि वह धनोद में विलीन होता जा रहा है। नीली दीप्ति भी ऋणोद से आगे की ओर बढ़ती है, और इसके तथा ऋणोद के वीच एक और दीप्तिहीन भाग आने लगता है। इस नये दीप्तिहीन भाग को सर्वप्रथम सर विलियम क्रुक्स ने देखा था। दवाव को और भी कम किया जाये, तो संपूर्ण नली दीप्तिहीन हो जाती है और आगे बढ़ने पर पुनः संपूर्ण नली हल्की संदीप्त से चमकने लगती है।

नली के पूर्णरूपेण दीप्तिहीन हो जाने की स्थिति में कैथोड किरणें निकलने लग जाती हैं। ये ऋण आवेश वाली होती हैं और वायु में कुछ ही सेंटिमीटर चलकर विलीन हो जाती हैं। अर्थात् वायु की मोटी परत को ये नहीं भेद पातीं। इन किरणों का पता सर्व-प्रथम जे. जे. थाम्सन को हुआ था। क्योंकि ये किरणें कैथोड अर्थात् ऋण इलेक्ट्रोड से निकलती हुई जान पड़ती हैं, इसलिए थाम्सन ने इनका नाम 'कैथोड किरणें' रखा। वाद में परीक्षण करने पर ज्ञात हुआ कि कैथोड किरणें इलेक्ट्रोनों का समूह होती हैं।

उस रोज रोंटजेन यही प्रयोग कर रहे थे। उन्होंने नली को कागज से ढंक रखा था, ताकि उसमें से प्रकाश वाहर न आ जाये। नली में विद्युत को प्रवाहित करते ही उन्हें एक आश्चर्यजनक घटना देखने को मिली।

उन्होंने देखा कि मेज पर रखे एक रद्दी कागज के टुकड़े से प्रकाश निकल रहा है। विद्युतधारा वंद करने पर प्रकाश निकलना भी वंद हो गया। कागज को नली से दूर ले जाने पर यह प्रभाव लुप्त हो जाता था।

इस टुकड़े को वहुत ध्यानपूर्वक देखने पर रोंटजेन को पता चला कि उस पर एक खनिज का घोल गिरकर सूख गया है। इस खनिज का यह गुण था कि इस पर (या इसके घोल पर) एक प्रकार की प्रकाश-किरणें पड़ने पर इसमें से दूसरे प्रकार की प्रकाश-किरणें निकलने लगती थीं। जैसे, यदि एक ओर से उस पर बैंगनी रंग की किरणें पड़तीं, तो दूसरी ओर से नीले या हरे रंग की किरणें निकलतीं। ऐसे पदार्थ को विज्ञान में उत्तर-संदीपक (फ्लुओरेसेंट) कहते हैं और उसके इस गुण को 'उत्तर-संदीपन' या 'उत्तरसंदीप्ति' (फ्लुओरेसेन्स)।

उत्तर-संदीप्ति रोंटजेन के लिए कोई नयी चीज नहीं थी। किंतु इस उत्तर-संदीप्ति में कौन-सी किरणें निकल रही हैं, यह बात उनकी जिज्ञासा का विषय थी।

अंधेरे कमरे में यह प्रयोग किया जा रहा था। वह नली, जिससे प्रकाश-किरणें निकलने की संभावना थी, काले कागजों की परतों में ढंकी हुई थी। तो क्या यह कैथोड किरणों का प्रभाव था? नहीं, इतनी दूर तक वायु में चलकर आना कैथोड किरणों के बस की बात नहीं थी।

तो क्या कोई अन्य अदृश्य किरणें अपना प्रभाव दिखा रही थीं? हो न हो, कैथोड किरणों से भी अधिक भेदन-शक्ति वाली कोई किरणें नली में से निकलकर काले कागज की परतों को भेदकर खनिज से सने कागज के टुकड़े को प्रकाशित कर रही थीं। रोंटजेन ने सोचा—अवश्य ही इन किरणों की भेदन-शक्ति बहुत प्रबल होनी चाहिये।

सामने ही सहस्र पृष्ठों वाली एक पुस्तक पड़ी थी। उन्होंने उस भीमकाय ग्रंथ के तले, जहां कैथोड किरणों की सांस भी नहीं पहुंच सकती थी, उस कागज के टुकड़े को रखा और सीने पर सलीब का निशान बनाते हुए धड़कते दिल से विद्युतधारा प्रवाहित करनी प्रारंभ की। डरते हुए उन्होंने पुस्तक के तले झांका और एकाएक उछल पड़े। वे अदृश्य किरणें अब भी अपना प्रभाव दिखा रही थीं। वह कागज का टुकड़ा चमक रहा था। खुशी में वे कभी नली को चूमते, कभी पुस्तक को।

थोड़ा शांत होने पर रोंटजेन ने किरणों की भेदन-शक्ति का प्रयोग अन्य वस्तुओं पर भी किया—ताश की गड्डी पर, मोटे पट्टे पर, अल्युमिनियम की चादर पर। अल्युमिनियम के पार जाने पर कागज पर प्रभाव कुछ कम हो गया था। अज्ञात होने के कारण उन्हें 'एक्स-किरण' नाम दिया गया।

Dr. W. C. Röntgen.

रोंटजेन का हस्ताक्षर

रोंटजेन ने अपनी पत्नी के हाथ को किरणों के मार्ग में रखा और हथेली की हड्डियों का चित्र पाया। किरणें मांस को भेदने में समर्थ थीं, पर कड़ी हड्डियां उन्हें रोक लेती थीं।

क्ष-किरणों की खोज करने वाले इस वैज्ञानिक रोंटजेन का जन्म २७ मार्च १८४५ को जर्मनी के लेनेप नामक स्थान पर हुआ था। हालैंड में प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करके उन्होंने स्विट्जरलैंड से १८६९ में डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की और फिर कई स्थानों पर भौतिकी का अध्यापन किया। क्ष-किरणों की खोज के समय वे वुर्जबर्ग में भौतिकी के प्रोफेसर के पद पर थे।

रोंटजेन ने भौतिकी की कई शाखाओं में कार्य किया है। उनका पहला कार्य गैस की आपेक्षिक ऊष्मा के अनुपात के संबंध में था। हवा में अवरक्त (इन्फ्रारेड) किरणों के अवशोषण तथा द्रव के भिन्न गुणधर्मों पर भी रोंटजेन ने कार्य किया। परंतु क्ष-किरण संबंधी कार्य ने ही उन्हें अंतर्राष्ट्रीय ख्याति

प्राप्त करायी।

सन १९०१ में उन्हें नोवेल पुरस्कार दिया गया। और यह याद रखने की बात है कि नोवेल पुरस्कार उसी साल शुरू हुआ था। यही नहीं, क्ष-किरणों की महत्ता इस बात से आंकी जा सकती है कि उन पर आधारित खोज-कार्य के लिए अब तक लगभग आठ नोवेल पुरस्कार दिये जा चुके हैं।

क्ष-किरणों की खोज के तीन महीने के भीतर ही चिकित्सालयों में उनका व्यापक उपयोग आरंभ हो गया। उनसे आजकल धातुओं में दरार आदि का पता लगाने, शरीर में छिपे सोने आदि की टोह लेने का काम भी लिया जाता है।

क्ष-किरणें प्रकाश की तरह विद्युत-चुंबकीय तरंगें हैं। अंतर है तरंगदैर्ध्य का। क्ष-किरणों का तरंगदैर्ध्य कुछ एंगसट्रम (एक मिलिमीटर का करोड़वां भाग) होता है, जबकि साधारण प्रकाश का तरंगदैर्ध्य पांच से आठ हजार एंग्सट्रम होता है। क्ष-किरणों के कम तरंगदैर्ध्य का उपयोग सर्वप्रथम वान लवे नामक एक जर्मन वैज्ञानिक ने मणिभ (क्रिस्टल) द्वारा क्ष-किरणों के नमन के अध्ययन में किया और मणिभ में दो परमाणुओं की दूरी नापी। इसके लिए १९१४ में उन्हें नोवेल पुरस्कार प्रदान किया गया।

क्ष-किरणों द्वारा मणिभ-रचना को समझाने के लिए विलियम हेनरी ब्रैग व विलियम लारेन्स ब्रैग ने १९१५ में नोवेल पुरस्कार पाया। विज्ञान की नोबेल पुरस्कार सूची में पिता व पुत्र की यही एक जोड़ी है। माता और पुत्री की जोड़ी है मादाम क्यूरी और आइरीन जोलियो-क्यूरी की।

१९१७ में विभिन्न तत्त्वों की विशिष्ट क्ष-किरणों के अध्ययन के लिए ब्रिटिश वैज्ञानिक बरकला को और १९२९ में स्वीडन के सिगबान नामक वैज्ञानिक को क्ष-किरणों की उत्पत्ति के विषय में महत्त्वपूर्ण अध्ययन के लिए नोवेल पुरस्कार मिला।

क्ष-किरणों की सहायता से पेनिसिलीन व विटामिन बी-१२ की संरचना की गुत्थी आक्सफोर्ड की डा० डोरोथी हॉजकिन ने सुलझायी और उसके लिए उन्हें १९६४ में रसायन का नोवेल पुरस्कार मिला। प्रोटीन की संरचना के रहस्य कैम्ब्रिज के केंड्रयू एवं पेरुज नामक वैज्ञानिकों ने क्ष-किरणों की मदद से उद्घाटित किये और १९६२ में नोवेल पुरस्कार पाया। डी. एन. ए. की संरचना को समझाने के लिए वाटसन व क्रिक को नोवेल पुरस्कार दिया गया; उन्होंने भी क्ष-किरणों का उपयोग किया था।

रोंटजेन बहुत ही निःस्पृह व्यक्ति थे। क्ष-किरणों को पैदा करने के उपकरण का रोंटजेन ने पेटेंट नहीं लिया, यद्यपि ऐसा करके वे बहुत धन कमा सकते थे। वे अकेले ही काम करना पसंद करते थे। जिस यंत्र द्वारा उन्होंने क्ष-किरणों का आविष्कार किया था, उसे उन्होंने स्वयं बनाया था।

क्ष-किरणों की खुराक को नापने की इकाई की संज्ञा 'रोंटजेन' रखी गयी है। महान विज्ञानियों के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन का विज्ञान का यह अपना तरीका है।

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद्, बंबई द्वारा प्रेषित

वनस्पति-लोक का विदूषक

डा० अंबिका प्रसाद दीक्षित

उच्च श्रेणी के वनस्पति-समुदाय में शायद सबसे अजीब शक्ल-सूरत कैक्टसों की होती है। बहुधा ये कांटों से लदे होते हैं और कभी-कभी अत्यंत खूबसूरत फूल इनमें लगते हैं। अजब विरोधाभास है।

रूप के कारण यदि इन्हें विदूषक कह सकते हैं, तो इनके स्वभाव के कारण इन्हें तपस्वी भी कहा जा सकता है। प्रायः ये मरुस्थलों में तप करते हुए दिखाई पड़ते हैं। वास्तव में बात यह है कि कैक्टस अपने मांसल शरीर के भीतर पानी इकट्ठा रखने का पूरा प्रबंध रखते हैं, इसलिए रेगिस्तानों में भी हरे-भरे रहते हैं। चूंकि सूर्य का प्रकाश इनके लालन-पालन के लिए अत्यावश्यक होता है, इन्हें 'सूर्य के बच्चे' (चिल्ड्रन आफ द सन) की भी संज्ञा दी गयी है।

कैक्टस के बारे में उपलब्ध सबसे पुराना विवरण कोरोनाडो का दिया हुआ है। यह विवरण १५४० का है, जब नयी दुनिया की खोज हुई ही थी। कैक्टस का उद्गम-स्थल भी अमरीका माना जाता है। वहीं से ये जहाजी बेड़ों द्वारा यूरोप लाये गये, फिर अन्य स्थानों पर इनका फैलाव हुआ।

पश्चिमी गोलार्ध में ये उत्तर में कनाडा से लेकर मध्य अमरीका और वेस्ट इंडीज होते हुए पैटागोनिया तक पाये जाते हैं। नाटकीय आकार के इन पौधों की लगभग ५,००० जातियों का अब तक पता चला है।

लाखों वर्ष पूर्व, सारा अमरीका महाद्वीप झीलों, नम जंगलों एवं नाना प्रकार के वनस्पतियों से ढंका हुआ था। धीरे-धीरे पृथ्वी
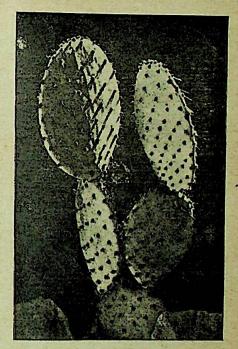
और उसकी जलवायुमें परिवर्तन हुआ, वर्षा की कमी से ये स्थान रेगिस्तान में परिवर्तित होने लगे। इस महान परिवर्तन के दौरान वनस्पति समुदाय को भी अस्तित्व के लिए होड़ करनी पड़ी और वहीं वनस्पतियां बच सकीं, जिन्होंने अपने को परिस्थितियों के अनुकूल ढाल लिया।

शुष्क वातावरण में पलने के लिए कुछ वनस्पतियों ने अपने शरीर को ऐसा बना लिया कि उनके भीतर का बहुमूल्य पानी जल्दी भाप बनकर निकल न सके। इसके लिए उन्होंने अपनी पत्तियों की संख्या कम कर ली एवं उनका आकार भी छोटा कर लिया। कुछ में तो पत्तियां बिलकुल ही समाप्त हो गयीं। इसके साथ-साथ पौधे का
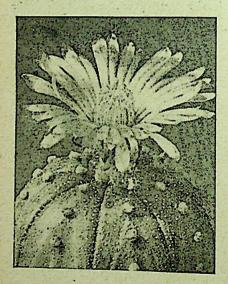
ए. माइरियोस्टिग्मा

ए. एस्टेरियास
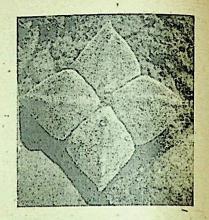
तरल भाग गाढ़ा होकर दूध-जैसा बन गया।

तना विशेष रूप से मोटा हो गया, जिससे उसमें अधिक-से-अधिक पानी इकट्ठा हो सके। शरीर में कई कोने बन गये, ताकि किसी भी भाग पर अधिक देर तक सीधी धूप न पड़े। मोटे तने में भोजन बनाने वाले ऊतकों का जमाव हो गया और वे स्वयं भोजन बनाने का काम करने लगे। भक्षक जीवों से अपनी मांसल काया की रक्षा के लिए उन्होंने कांटों का कवच पहन लिया। इस तरह उस विलक्षण और रोचक वनस्पति-समुदाय का विकास हुआ जिसे 'कैक्टस' कहा जाता है।

सभी कैक्टसों का एक प्रधान लक्षण होता है 'एरिओल', जो पौधे के पोरों का ही दूसरा रूप है। नयी शाखाएं (यदि कोई हों) कांटे, बाल इत्यादि यहीं से निकलते हैं।

शास्त्रीय दृष्टि से कैक्टस कुल को मुख्यतया तीन वर्गों में विभाजित किया गया है-

पेरेस्की, ओपन्सी और सेरी।

१. पेरेस्की में आदिम रूप कैक्टस आते हैं, जो जंगली वृक्षों से काफी मिलते-जुलते हैं। ये कैक्टस प्रायः झाड़ी या लता के आकार के होते हैं और इनमें जंगली गुलाब की भांति एक साथ बहुत फूल लगते हैं। इनमें कांटे तो होते हैं, पर नुकीले मुड़े हुए शूल (स्पाइन) नहीं पाये जाते।

२. ओपन्सी का प्रधान लक्षण है 'एरिओल' के पास 'ग्लाकिड्स' या 'ब्रिस्टिल' का पाया जाना। इस वर्ग के कैक्टसों में तने मांसल, गोल या चपटे आकार के तथा एक दूसरे से इस तरह जुड़े हुए होते है कि किंचित् दबाव से अलग हो जाते हैं, पर 'रिब्स' नहीं होतीं। पत्तियां सामान्यतया नहीं होतीं और यदि होती भी हैं, तो रूपांतरित होती हैं और मौसम के अनुसार गिरती रहती हैं। फूल
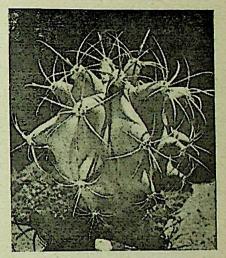
फेरोकैक्टस कोविलेई

चक्राकार होते हैं। नागफनी इसी वर्ग में आती है।

३. सेरी वर्ग के सदस्यों का खास लक्षण है इनके शरीर में 'रिब्स' और मांसल तनों की उपस्थिति तथा ग्लोब्स की लगातार बढ़वार। इनके एरिओल में 'ग्लाकिड्स' नहीं होते। साधारणतः फूल काफी सुंदर होते हैं और सीधे पौधे से जुड़े होते हैं। यह वर्ग काफी बड़ा है। छोटे से लेकर वृक्षाकार कैक्टस तक इसमें आते हैं। रेगिस्तान में उगने वाले, पहाड़ों पर पाये जाने वाले एवं उष्णकटिबंधीय प्रदेशों में पराश्रयी रूप में पाये जाने वाले कैक्टस इसमें शामिल हैं। शास्त्रीय दृष्टि से इसे आठ अनुभागों में विभाजित किया गया है। मगर उनकी तफसील में जाना आवश्यक नहीं।

लोफोफोरा विलियम्सीई

कुछ खास कैक्टस :

मैमिलेरिया : इनमें शोख रंग के ढेरों फूल लगते हैं। प्राय: ये गोल या लंबोतर आकार के छोटे कैक्टस होते हैं। इनकी जरा अधिक देखरेख करनी पड़ती है। इनकी कुछ जातियां गोल खरबूजे की शक्ल की होती हैं; चोटी पर गोलाई में फूलों का गुच्छा लगने पर ये बड़ी खूबसूरत लगती हैं। इस प्रकार की कुछ प्रसिद्ध जातियां हैं—जिमनो कैलीसियम, जिमनोप्लेटेंस, विलिमम साई इत्यादि। कुछ नाम बड़े मजेदार हैं—मैडम विलडाई, मैडम शिल्हासी।

सेरी : ये फैलने वाले कैक्टस हैं तथा सामान्यतया वृक्षों के सहारे वढ़ते हैं। इनमें सुंदर आकार के सफेद, लाल एवं पीले रंग के फूल लगते हैं। इसी वर्ग का एक कैक्टस हैं, 'सेलेनिसेरियस ग्रेंडीफलौरा' जिसके फूल

गमले में ऐसे उगायें

प्राय: आधी रात को खिलते हैं तथा सूर्योदय होते-होते मुरझा जाते हैं।

इकाइनोप्सिस : इनमें कीप (फनेल) के आकार के सफेद, गुलावी तथा पीले फूल लगते हैं। इनका पालन काफी आसान होता है। पौधे का आकार गोल होता है।

जाइगोकैक्टस : ये 'क्रिसमस कैक्टस' के नाम से जाने जाते हैं। अनेक रंग के खूब फूल देने वाले 'फ़िललोकैक्टस' भी इनमें शामिल हैं।

गृहोद्यानों में कैक्टस उगाना स्थान एवं जलवायु पर वहुत कुछ निर्भर रहता है। मांसल शरीर के होने के कारण अधिकांश कैक्टस विपरीत परिस्थितियों में भी जी लेते हैं और काफी उपेक्षा भी वर्दाश्त कर लेते हैं। शुष्क वातावरण के आदी कैक्टस को यदि महीनों पानी न मिले, तो अधिक-से-अधिक यही होगा कि वह दुवला-पतला हो जायेगा, उसकी वृद्धि रुक जायेगी। यदि उसे सूर्य के प्रकाश एवं खुली हवा से वंचित रखा गया, तो उसके रूप का आकर्षण समाप्त हो सकता है और संभव है फूल न निकलें; परंतु पौधा नहीं मरेगा।

उचित पानी, धूप एवं खुली हवा तथा तनिक-सी खाद देकर कैक्टस से अत्यंत आकर्षक फूलों का उपहार पाया जा सकता है। कांटों से लदी काया के वीच फूल देखते ही वनते हैं।

वसंत ऋतु में कैक्टस विशेष सक्रिय होता है। उस समय पौधों के लिए उचित प्रकाश एवं हवा का प्रवंध करना चाहिये।

सूर्य की रोशनी में प्रखरता आने के साथ-साथ स्वस्थ पौधों को पानी की कुछ अधिक आवश्यकता होती है। स्वच्छ आकाश के दिनों में प्रातःकाल का समय पानी देने के लिए उत्तम होता है। चूंकि इन दिनों पौधे बढ़ाव पर होते हैं, इसलिए इस समय उचित मात्रा में खाद देना भी अच्छा होता है। फास्फोरस एवं पोटाश खाद की अधिक आवश्यकता होती है।

एक भाग दूमट मिट्टी, दो भाग पत्ती की खाद, एक भाग खूब सड़े हुए गोबर की खाद तथा एक भाग कंकड़—यह कैक्टस उगाने का अच्छा माध्यम है। गर्मी के दिनों में उषा के सूर्य का प्रकाश पौधों के लिए अधिक उपयोगी होता है। दोपहर की प्रखर धूप में ताप से पौधे के झुलसने का भय हो सकता है। यह देखा गया है कि मछली के चूर्ण एवं शैवाल की खाद से कैक्टस की वृद्धि तथा पुष्पोत्पादन खूब होता है। यदि सफेद बाल वाले कैक्टस (मैमिलेरिया और एस्ट्रोफिटम) उगाने हों, तो एक मुट्ठी चूना मिला दें।

शुष्क प्रदेशों में, जहां की मिट्टी चूने, लवण, एवं जीवांश पदार्थ से युक्त होती है, कैक्टस की वृद्धि अधिक हो पाती है। पौधा मिट्टी से अपना भोजन उचित रूप से प्राप्त कर सके, इसके लिए मिट्टी का नम रहना आवश्यक है; पर जल की निकासी का
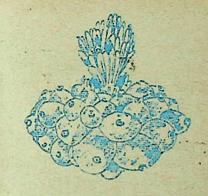
मेक्सिको के इस रेगिस्तानी कैक्टस की जड़ से 'मेस्कालिन' बनती है, जिसका उपयोग प्राचीन काल से रेड इंडियन जादूगर करते आ रहे हैं। लेखक हक्स्ले की बदौलत आज हिप्पियों के अलावा भी बहुत लोग इसके भक्त बन गये हैं।

प्रबंध ठीक-ठीक होना चाहिये।

स्केली कीड़े और मिलीबग कभी-कभी कैक्टस के पौधों को परेशान करते हैं। इसका इलाज है, मैलाथियान के हल्के घोल का छिड़काव। छिड़काव दबावपूर्वक करना चाहिये; क्योंकि कीड़े भीतर की ओर छिपे रहते हैं। लाल मकड़ी भी कैक्टस के तनों को बदरंग करती पायी जाती है। हर तीसरे दिन इंड्रीन का छिड़काव करें। पौधे के किसी भाग में घाव हो जाये, तो वहां लकड़ी के कोयले का चूर्ण छिड़कना चाहिये।

★

क्या कहूं मैं पुराणपंथी को, गुलाब रखकर कमाल करते हैं।
आधुनिक बन गये हैं अब वो जो, कैक्टस बेहिसाब रखते हैं॥

—सुरेश उपाध्याय

★

व्यापारिक सफलता के

चंद परखे हुए नुस्खे

संतकुमार टंडन 'रसिक'

सजाप्रचुस्वीस ? यह कौन-सा मंत्र है ? किस भाषा का ? किस ग्रंथ से ? और इससे व्यापारिक सफलता का क्या संबंध ?

प्रश्नों की बौछार करने से पहले एक कहानी सुनिये। बात बहुत पुरानी नहीं, इसी सदी की है। इंग्लैंड में बेंजामिन ड्रेग नामक एक निर्धन बालक था। मेहनत-मजदूरी करता और अमीर बनने के सपने देखता। वह सिर्फ सपने ही नहीं देखता था, अपने सपनों को साकार करने के लिए कुछ करता भी था। उसने एक संदूकची बना रखी थी, जिसमें वह रोज की मजदूरी से कुछ पैसे बचाकर डालता। इस तरह उसने सोलह साल की उम्र में कोई अस्सी रुपये बचा लिये।

अस्सी रुपये की इस नगण्य-सी रकम से उस लड़के ने फर्नीचर का छोटा-सा धंधा शुरू किया और पच्चीस वर्ष की उम्र में वह लखपती बन गया और पचास में करोड़पति।

यह कैसे हुआ ? इसी मंत्र के कारण। और यह मंत्र बेंजामिन ड्रेग का ही बनाया हुआ है। अंग्रेजी में ड्रेग इसे व्यापारिक सफलता का फार्मूला कहता था और उसका फार्मूला अपने मूल रूप में यों था—'आर. आई. डी. एस. ए. सी.।' और 'सजाप्रचुस्वीस' उसी का हिन्दी रूप है।

ड्रेग ने इस फार्मूले का रहस्य इस प्रकार समझाया है :

पहला अक्षर है 'आर' अर्थात् रेस्पेक्ट अथवा रिसेप्शन—ग्राहकों का सम्मान, उनका स्वागत। ग्राहक को अतिथि समझना चाहिये। आपकी दुकान या प्रतिष्ठान में जो भी ग्राहक आये, उसकी आवभगत कीजिये। बैठने के लिए अच्छी जगह, पंखे की हवा, पीने का पानी, मौसम के अनुसार पेय पदार्थ (भारत में पान भी) उन्हें दिया जाये। ग्राहक को कोई कष्ट या शिकायत न हो। उसे जो सुख, सुविधाएं, सम्मान आदि आप देंगे, उनका मूल्य वह अवश्य चुकायेगा। यह हुआ सम्मान। मंत्र का पहला अक्षर 'स'।

दूसरा अक्षर है 'आई' अर्थात् इन्क्वायरी। इसके पूर्व कि आप ग्राहक से पूछें कि वह क्या चाहता है, उसके साथ दिलचस्पी और आत्मीयता के साथ परिचय और घनिष्ठता बढ़ाने वाली बातचीत कीजिये। फिर बड़े मधुर शब्दों में उसकी इच्छा की वस्तु के संबंध में पूछिये—"अच्छा तो अब आपकी सेवा में क्या लाऊं, क्या दिखाऊं ?" समझदारी से बातचीत करने की यही कला है।

इस प्रकार 'इन्क्वायरी' अथवा जानकारी से आप अपने ग्राहक से घनिष्ठता पैदा कर लेंगे, उसे मित्र वना लेंगे। यह हुई जान-पहचान। यानी मंत्र का दूसरा अक्षर 'जा'।

तीसरा अक्षर है 'डी' अर्थात् 'डिस्प्ले' यानी प्रदर्शन। इच्छित वस्तु को ग्राहक के सामने तरतीव से रखना। ग्राहक के सामने एक वस्तु लाकर रख देना मुनासिब नहीं। उसकी मांगी हुई वस्तु की क्वालिटी और वैराइटी दिखलाइये। कई किस्म, कई नमूने की चीजें, भिन्न-भिन्न दामों की, उम्दा-महंगी, घटिया-सस्ती—सभी दिखाइये। चीजों के दिखलाने में आप न तो जल्दवाजी करें और न अपना धैर्य खोयें। अपनी आवश्यकता, उपयोगिता, अवसर और साधन के मुताबिक ग्राहक चुनाव कर लेगा और उसे खरीदेगा भी। यह होता है प्रदर्शन—संक्षेप में 'प्र'।

चौथा अक्षर 'एस' है, अर्थात् सिलेक्शन, चुनाव। प्रदर्शित वस्तुओं में चुनने का काम ग्राहक का है, आप उसमें न तो अनावश्यक हस्तक्षेप करें और न अपनी पसंद ग्राहक पर थोपें। हां, यदि ग्राहक पूछे तो वस्तु का गुण-दोष आप अवश्य वता दें। जब ग्राहक कोई वस्तु पसंद कर ले, तो आप उसमें ऐब न निकालें, दोष न बतायें, उसे बुरा न कहें। ग्राहक से विवाद करने की अपेक्षा, बहुत हद तक उससे सहमत रहना ही सफलता की कुंजी है। यह हुआ चुनाव—मूल मंत्र में 'चु'।

पांचवां अक्षर 'ए' आता है। 'ए' अर्थात् एक्सेप्टेंस यानी स्वीकृति। ग्राहक द्वारा अपनी पसंद की वस्तु छांट लिये जाने के बाद उसमें किसी प्रकार की अदल-बदल करना या उसी दाम या नमूने की दूसरी वस्तु रखना उचित नहीं। ग्राहक की पसंद की हुई वस्तु को अलग कर दें, दूसरी चीजों को वैसी ही पड़ी रहने दें। इसके बाद ग्राहक से इस प्रकार बात करें कि अपनी पसंद की वस्तु से हटकर उसका ध्यान किसी और वस्तु की ओर न जाये। पहले ग्राहक की वस्तु पैक करके दे दें, बाद में अपना सामान समेटें।

अंतिम अक्षर 'सी' का आशय है 'कन्सल्टेशन' यानी राय, सम्मति। ग्राहक की पसंद की हुई वस्तु के संवंध में अपनी सम्मति अवश्य दें, पर यह सम्मति प्रतिकूल न हो। पसंद से पहले आप विनम्र शब्दों में पक्ष-विपक्ष की बातें कह सकते हैं, किंतु ग्राहक द्वारा माल पसंद कर लिये जाने के बाद तो आप उसकी प्रशंसा ही करें। जैसे आप कह सकते हैं—"आपको माल की खूब परख है, वाकई आपका सिलेक्शन बहुत बढ़िया है। मुझे भी यही पसंद है। यह चीज सस्ती, मजबूत और अच्छी भी है।" यह होती है सम्मति या सहमति, जो 'स' के साथ मूल मंत्र संपूर्ण।

अंत में ग्राहक की पसंद की वस्तु को इसी बातचीत के दौरान अच्छी तरह से पैक कर दीजिये। ग्राहक की प्रशंसा करते जाइये। दाम लेने के बाद 'धन्यवाद' अवश्य दीजिये। दुकान के दरवाजे तक जाकर उसे विदा कीजिये और पूछिये—"अब कब दर्शन होंगे? हां, थोड़े ही दिनों में नया माल आने को है। सेवा का अवसर दीजियेगा ......दुकान आपकी ही है!"

★

जापान का स्त्री-वर्ग दो स्पष्टतः विभागों में विभक्त है—एक है पत्नी वर्ग, दूसरा है रमणी वर्ग। यह विभाजन उस देश की मूलभूत वृत्तियों का एक रोचक विवरण है और विदेशियों के लिए अत्यंत अचरजभरा। जापान जाने वाले पर्यटक इधर-उधर की बातों से इतना तो जान पाते हैं कि जापानी गृहलक्ष्मियां घर में ही रहती हैं, पति की दुनियादारी से उनका कोई संबंध नहीं होता; परंतु प्रायः वे यह नहीं जान पाते कि पति-पत्नी के संबंधों में वहां एक विचित्र समन्वय है, जो सभ्य कहलाने वाले संसार में तो कहीं नहीं पाया जाता। स्पष्ट शब्दों में कहें तो जापानी पत्नी पति के परस्त्री-संपर्क को स्वाभाविक समझती है और उससे उसे विशेष दुःख नहीं होता।

जापानी पुरुष कर्तव्य-पालन और अपने हिस्से के काम को जी-जान से करने के लिए मशहूर है। पुरुष के इस श्रमजन्य मानसिक भार को हल्का करने के लिए वहां की समाज-व्यवस्था ही ऐसी बन गयी है कि वह अपनी यौनवृत्तियों की निर्बाध तृप्ति कर सके।

नारी जापान की

गोविंद रत्नाकर

जापान जाने वाले पर्यटक को वहां पद-पद पर आधुनिक नृत्य-मद्यशालाएं दिखाई देती हैं। वह समझता है कि पश्चिम या अमरीका की भांति ये ही वासना-तृप्ति के जापानी केंद्र हैं। वह गीशा-वर्ग का भी यत्किंचित परिचय प्राप्त करता है, जो पर्यटकों को उपलब्ध है। परंतु गीशा-वर्ग की सृष्टि के आधारभूत कारणों को जानना, उनका परिचय प्राप्त करना, उसकी शक्ति से परे ही होता है।

यों पुरुष की स्वाभाविक और अदम्य स्त्री-कामना की पूर्ति के साधन सभी सभ्य-असभ्य समाजों में प्रस्तुत किये गये हैं। परंतु जापान ने उसे जो रूप दिया है और जिस तरह स्वीकार किया है, वह जापान का अपना ही दृष्टिकोण है।

यह बहुचर्चित बात है कि जापान के व्यवसायाधिकारियों को कंपनी के खर्च से सालाना करोड़ों-अरबों रुपये मनोरंजन में व्यय करने का अधिकार प्राप्त है। बेशक इसका कुछ भाग कंपनी के ग्राहकों पर व्यय होता है, परंतु अधिकांश भाग तो स्वयं

अधिकारी अपने लिए व्यय करते हैं। जैसा अधिकारी और उस पर जितना कार्यभार, वैसा ही उसका व्ययाधिकार। कंपनी मानती है कि अमुक कर्मचारी इतना भार वहन करता है, तो उस भार को हल्का करने के लिए उसे विविध आमोद-प्रमोदों में अपने को कुछ समय के लिए अवाध वहने देना चाहिये। इन चित्तवृत्तियों की निवृत्ति के पश्चात् वह कंपनी के कार्य में और भी मनोयोग और क्षमता दिखायेगा।

है न अनोखा 'एप्रोच'? पत्नियां भी यही मानती हैं कि जिस प्रकार घर के भोजन से तृप्ति नहीं होती और बाहर जाकर खाने को मन करता है, उसी प्रकार पति यदि अपनी यौनवृत्तियों की तृप्ति बाहर कर आता है, तो उसमें ऐसा अनौचित्य क्या? उस भूख को बुझा लेने के बाद पत्नी के प्रति पति का मनोभाव स्निग्ध रहेगा, वह उतनी ज्यादा मांगें नहीं करेगा।

कर्तव्य के प्रति अत्यंत निष्ठावान और कर्तव्यच्युत होने पर आत्महत्या तक को वांछनीय समझने वाला उद्योग-विज्ञान-संपन्न जापान ऐसा क्यों सोचता है? संभव है, यह वृत्ति भी उसकी सफलता का कारण हो। जब यह समाज-व्यवस्था की गयी थी, तब उतने प्रलोभन नहीं थे, जितने आज हैं। उतनी स्वच्छंदता नहीं थी, जितनी आज है। और कौन जाने इस परम उद्योगी देश को यह वासना-परायणता कभी ले डूबेगी।

यूरोप और अमरीका की तरह और आज के प्रगतिशील नगरों की तरह नाचघर और शराबखाने तो वहां बहुतायत से हैं ही, किंतु रात बाहर बिताने वाले गृहस्थों के लिए वहां ऐसे हजारों रैन-बसेरे भी हैं, जो विदेशियों की पहुंच से परे हैं। वहां की मधुशाला की साकी ग्राहक की आवश्यकता और

चित्र : होकुसाई

जेब को समझने-परखने में अत्यंत कुशल होती है। मनचाहा संतोष देकर वे उसकी जेब को भी पूरी तरह टटोल लेती हैं और

उससे प्राप्ति नहीं होती तो दूसरे दिन उसके घर या दफ्तर पहुंचकर हंगामा मचाकर पूरी वसूली कर लेती हैं। ऐसी घटना से न पत्नी के चेहरे पर शिकन आती है, न दफ्तर के सहकारी नाक-भौंह सिकोड़ते हैं।

इस प्रवृत्ति का स्रोत रहा है गीशा-वृत्ति। अमीर-उमरावों ने उस वृत्ति को स्थापित किया, उसे एक ललित-कला की कोटि में पहुंचा दिया। पुरुष के मनोरंजन में जापानी गीशा सरीखा कुशल नारी-वर्ग शायद ही कहीं हो। गीशा-वृत्ति अब अपना स्थान-मान खोती जा रही है। समय की गति दूसरी होती जा रही है न! गीशा-कला की सच्ची ज्ञाताओं पर उसके पारखी धनिक एक-एक रात में हजारों-लाखों निछावर कर देते हैं।

पुरुष की स्त्री-साहचर्य की कामना और मनोरंजनप्रियता का गीशा-वृत्ति के विकास और पनपने में जबर्दस्त हाथ रहा है। पर वह अन्य समयों व स्थानों की वेश्यावृत्ति जैसी न कभी रही, न आज है। गीशा अपने ग्राहक को भोजन परोसेगी, उससे मीठी-मीठी मनोरंजक बातें करेगी, उसे गाना सुनायेगी, उसे मीठी चुटकियां भी लेने देगी, पर उससे आगे नहीं। उससे आगे की प्रक्रियाएं अन्य श्रेणी के सुपुर्द हैं, जो आज जापान की गली-गली में मौजूद हैं।

आपको पढ़कर आश्चर्य होगा कि जापानी भाषा में "मैं तुम्हें प्रेम करता हूं," का सही पर्यायवाची वाक्य नहीं है। वहां स्त्री के साथ पुरुष का संबंध दो भागों में विभक्त है। एक है, पत्नी अर्थात् गृहस्थी की संचालिका और संतान की जननी के रूप में; और दूसरा है, रमणी अर्थात् वासना-वृत्तियों को संतुष्ट करने वाली के रूप में। थोड़े बहुत अंश में यह विभाजन प्राचीन काल से आज तक सर्वत्र ही रहा है; परंतु जिस प्रकार जापान ने इसे सामाजिक व्यवस्था में ही गूंथ दिया है, वैसा और कहीं नहीं हुआ।

एक सफल उद्योगपति ने अपना जीवन-वृत्तांत सुनाते हुए बताया कि यद्यपि वह अपने धन का उपयोग गीशा-गृह बनवाने के बजाय मंदिर-निर्माण में करना पसंद करेगा; किंतु यदि गीशा-वृत्ति का उन्मूलन करने का प्रयास किया गया, तो वह अपने बाग में गीशा-गृह बनवाकर उस वृत्ति को सजीव रखेगा और उससे लाभान्वित होता रहेगा।

उसकी मान्यता है कि सुंदर युवती का सान्निध्य कार्यतत्परता और स्फूर्ति प्रदान करता है और जीवन को आनंदमय बनाता है। वह मानता है कि पत्नी और परनारी के क्षेत्र अलग-अलग हैं, परंतु दोनों में से कोई प्रेमविहीन नहीं है; हां, दोनों के प्रेमों का स्वरूप भिन्न होता है। पति यदि परनारी के पाश में फंसकर पत्नी की अवहेलना करने लगे, तो पत्नी हीन-भावना में ग्रस्त हो जाती है, जो कि वह पुरुष के सुखमय जीवन के के लिए सर्वथा अवांछनीय है। गीशा या उस जैसी रमणी के साथ कालयापन तो महज कामनापूर्ति के लिए है, उसके पीछे गृह-जीवन को दुःखी करके झगड़े मोल लेने वाला निरा मूर्ख ही है।

ऐसी भावना है वहां के धनिक वर्ग की, राजवर्ग की; वही भावना निचले वर्गों में भी है अपनी-अपनी औकात के अनुसार।

सारे संसार में औद्योगीकरण हो रहा है। पुरुष हो या स्त्री, हर कोई उस गाड़ी का चक्का बनता जा रहा है, चक्के की तरह चलता हुआ और बोझा ढोता हुआ। मानसिक तनाव बढ़ता जाता है। फलतः कामकाज का दैनिक भार ढो लेने के बाद लोग मनोरंजन की ओर दौड़ते हैं। परिवार में, घर-गृहस्थी में, बाल-बच्चों में मन लगाने और सुख पाने की वृत्ति का ह्रास होता जा रहा है। सुरा-पान द्वारा मस्तिष्क को उत्तेजित या सुन्न बना लेने और घड़ी-दो घड़ी तथाकथित शरीर-सौंदर्य के प्रदर्शन को देखकर अपनी हीन वासना-वृत्तियों को जगाने और शांत करने के पीछे नर-नारी पागल हैं।

यूरोप और अमरीका में नारी पुरुष को अकेले यह सब नहीं करने देती; वह भी उसकी समभागिनी है। जापान में ऐसा नहीं है। यही बड़ा अंतर दीखता है। आज का व्यवसायोद्योग-प्रधान शहरी जीवन सर्वत्र इस अभिशाप के चंगुल में फंसता जा रहा है। अपने देश भारत के शहरों में भी उसके हेय उदाहरण देखने को मिलने लगे हैं।

इन सब आकर्षणों के जिस रीति से विज्ञापन और प्रदर्शन होते हैं, और उनसे आज स्त्री-पुरुष जिस दिशा की ओर अग्रसर हो रहे हैं, वह घोर भौतिक सुखवाद की दिशा है। जापान का अतिशय भौतिक सुखवादी भले ही यह माने कि स्त्री-संसर्ग पुरुष को कर्मशीलता प्रदान करता है; पर वस्तुतः यह ऐसा ही है, जैसे रोज शाम को शराब पीकर अगले दिन काम में जुटना और उससे अपने शरीर का क्षय करना।

यह आज की सबसे बड़ी विडंबना है कि औद्योगीकरण जितना तीव्र और जितना व्यापक होता है, उसी परिणाम में यौन-वृत्ति और वासनामयता की भी वृद्धि होती जा रही है। जापान औद्योगीकरण में सबसे आगे है, तो वहां यौन-वृत्ति और वासनामयता का भी सर्वाधिक बोलबाला है। फर्क बस यही है कि वहां इस वृत्ति को एक अलग दृष्टि से देखा जाता है। परंतु इतने मात्र से उसका औचित्य सिद्ध नहीं होता।

★

श्री रामकृष्ण परमहंस की मां वृद्धावस्था के दिन गंगातट पर काटने के उद्देश्य से दक्षिणेश्वर में रानी रासमणि के कालीघाट में जा बसी थीं। रानी के दामाद मथुर बाबू ने परमहंस के समस्त सगे-संबंधियों के गुजर-बसर के प्रबंध का संकल्प किया था। जब माताजी के सामने भी उन्होंने यह इच्छा प्रकट की, तो उत्तर मिला—"नहीं भाई, मुझे कुछ नहीं चाहिये, मैं तो बड़े सुख में हूं। मुझे किसी बात की कमी नहीं हैं।" मथुर बाबू ने बार-बार आग्रह किया, तो उन्होंने यही कहा—"अच्छा, तो मुझे दो पैसे की तंबाकू ला दो।" सुनकर मथुर बाबू बोल उठे—"तभी तो आपकी कोख से परमहंस जनमे!"

★

गीत

प्यार पर अधिकार मैं करता नहीं हूं।
प्यार करने के लिए स्वाधीन मैं, स्वाधीन तुम हो
क्या कहूं तुमसे कि मैं आकाश और जमीन तुम हो।
ठीक है यह, मैं तुम्हारे और तुम मेरे लिए हो
किंतु रेखा पार मैं करता नहीं हूं
प्यार पर अधिकार मैं करता नहीं हूं।

प्यार के संसार की मैंने कहीं सीमा न बांधी
रोकने को सैकड़ों उठते रहे तूफान-आंधी।
जो न ले पायें, न दे पायें, किसी को प्यार ऐसे
देवता स्वीकार मैं करता नहीं हूं
प्यार पर अधिकार मैं करता नहीं हूं।

'स्वप्न है मेरा कि हम-तुम दो नहीं हैं, एक ही हैं'
इस तरह बातें अनेकों बार हम-तुमने कही हैं।
स्वप्न कितना ही मनोहर या मधुर हो किन्तु उसके
सत्य से इनकार मैं करता नहीं हूं,
प्यार पर अधिकार मैं करता नहीं हूं।

—निरंकारदेव सेवक

गीत

भादों आया रिमझिम बरसता
बह रही भीगी पुरवइया ।

मेघाच्छन्न रात्रि में बिजली चमकती है
सांवली लड़की के भीरु प्रेम की तरह ।
मैं विस्मृत कर बैठा, मेघ नहीं भूले किंतु
उन काली आंखों को, गुंथी हुई वेणी को ।

प्रियतमा की दूती-सी एक याद आती है
एक दिन आयी थी ऐसी शुभ घड़ी कि जब
कुछ नहीं था विश्व में, और कुछ नहीं था
—सारा संसार था बस दो जनों का ।

पर सहसा बिछुड़ गये दोनों दो किनारों-से
कौन कहां खो गया, मिला नहीं कोई कूल ।
इस बरसात में, किंतु याद आती है
विदा की बेला की
उसकी वे असहाय अश्रु-सघन आंखें ।

बंगला से अनुवाद : शरद राकेश

—काजी नजरुल इस्लाम
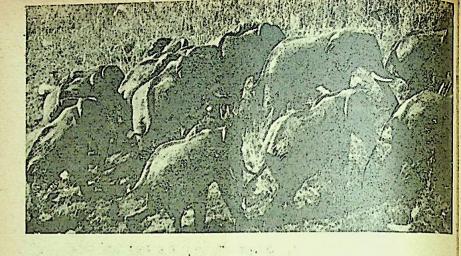
अफ्रीका के विख्यात शिकारी एवं वन्यपशु-विज्ञ डेस्मांड वेराडे और उनकी चीता-पुत्री गारा-याका का परिचय आप अगस्त १९७० के नवनीत में पा चुके हैं। यहां उन्हीं पिता-पुत्री के जीवन का एक और प्रसंग पढ़िये।

मैं गारा-याका के साथ अपने क्षेत्र की उत्तरी सीमा पर था। यहां कलगीदार नीली गिनी मुर्गियों की बहुतायत थी। दौड़ने में और हमलावर को चकमा देकर भाग निकलने में ये उस्ताद होती हैं। सोचा, गारा-याका के लिए अच्छी कसरत होगी।

जब गारा-याका ने तीन-चार मुर्गियां पकड़ लीं, तो मैं उसके संग लैंडरोवर की ओर लौट चला। तभी मुझे क्रोधभरी चिंघाड़ सुनाई दी। देखा, तो २० गज की दूरी पर एक इकदंता हाथी खड़ा था। स्पष्ट ही खूनी इरादा लेकर आया था वह। सूंड उठाकर उसने चिंघाड़ भरी और मेरी ओर लपका। उसके झुर्रीदार चेहरे पर विकृत भाव थे।

प्रायः मार्जार-कुल के शिकारी जीव और हाथी एक दूसरे का अदब करते हैं। ६०० पौंड का सिंह भी अक्सर ७ टन के असली वनराज के सामने पड़ जाने पर कन्नी काटकर निकल जाने का यत्न करता है। मगर मेरी नादान गारा-याका हाथी को चुनौती देती हुई कूल्हे के वल उकडूं वैठ गयी और लगी गुर्राने।

मेरे पास केवल १२ वोर का शाटगन था, इसलिए मैं एक तरह से निहत्था था। मैंने भागकर एक वृक्ष के पीछे छिपना चाहा। मगर हवा उल्टी बह रही थी। मेरी गंध हाथी को मिल रही थी। उसकी दृष्टि जरूर कुछ मंद होती है; मगर घ्राणशक्ति बड़ी ही तीव्र होती है। गारा-याका की उपेक्षा करके वह मेरी ओर बढ़ा आ रहा था। मैंने भागने में ही वीरता मानी।

बंदूक मुझे मनों भारी लग रही थी। बीच-

हाथियों के चक्रव्यूह में

• डेस्मांड बेराडे •

बीच में कांटे मेरे कपड़ों को पकड़कर मुझे रोकने की चेष्टा कर रहे थे। पीछे चिंघाड़ के साथ झाड़ियों के तड़ातड़ टूटने की आवाज आ रही थी। कहां मेरी दस मील घंटे की रफ्तार, कहां हाथी का २५-३० मील घंटे का वेग। मेरी टांगें जवाब दे रही थीं। मन के किसी कोने से आवाज आ रही थी—"अपने आपको गोली मार लो, हाथी को तुम्हारा खात्मा करने के आनंद से वंचित कर दो।"

अब मैं शाशी नदी के कंकड़ीले पाट में भाग रहा था। गारा-याका मुझसे लगभग सटकर दौड़ रही थी। इससे मुझे बल मिल रहा था। मैंने देखा सामने के कगार पर पशु चर रहे हैं। मैं लपककर कगार पर चढ़ गया। गारा-याका बार-बार हाथी का रास्ता काटकर उसका ध्यान बंटाने की कोशिश कर रही थी। मगर हाथी मेरे ही पीछे पड़ा था।

तभी मरुस्थल में शादूल की भांति मुझे कुछ झोंपड़े दिखाई दिये। मैं पूरी शक्ति लगाकर दौड़ा और एक झोंपड़ी में घुसकर धम्म से फर्श पर गिरा और लेट गया। तभी एक हृदय-विदारक चीख गूंज गयी। मैं सोचने लगा, कहीं यह मेरी अपनी ही चीख तो नहीं। चिंघाड़ और धम्म-धम्म की आवाज आ रही थी। कहीं मैं मर तो नहीं चुका हूं। तभी मुझे जरा होश-सा आया, बड़ी कोशिश से घिसटता हुआ मैं दरवाजे पर पहुंचा और सिर उठाकर झोंपड़ी के बाहर झांकने लगा। हाथी ने अपनी सूंड से पकड़कर एक अफ्रीकी औरत को उठा रखा था और जमीन पर उसे पटक-पटक कर उसकी कुटम्मस कर रहा था।

तभी एक आदमी दौड़ता हुआ झोंपड़ी में आया और लपककर उसने एक पुराना मजल लोडर उठाया और हाथी पर फायर कर दिया। हाथी औरत के क्षत-विक्षत शव को पटककर धीरे-धीरे चलता हुआ जंगल में घुस गया। गारा-याका उसका पीछा कर रही थी।

जब विक्षोभ जरा शांत हुआ, मजल लोडर के मालिक ने बताया कि यह इकदंता हाथी एक हस्तियूथ का मुखिया है। यह यूथ गांव के खेतों को उजाड़ रहा है और पीने के पानी को भी खत्म कर रहा है। यह आदमी उस गांव का मुखिया था और उसने हाथियों के उपद्रव को मिटाने में मुझसे सहायता की प्रार्थना की। कैसी विचित्र स्थिति थी। मेरा काम मनुष्यों से पशुओं को बचाना था।

मेरी ·३७५ मैग्नम राइफल पीछे लैंड रोवर में पड़ी थी। मैंने निश्चय किया कि जरा सुस्ता लेने के बाद उसे ले आऊंगा।

मुखिया ने भी कहा कि हाथी तो अब रात को ही लौटेंगे—पानी पीने और खेत उजाड़ने। मैं और गारा याका लैंड रोवर तक गये और कार व राइफल ले आये। मैंने गाड़ी के दरवाजे मजबूती से बंद किये और राइफल में हार्डनोज बुलेट भरे।

मैंने अपनी योजना गांव वालों को समझायी। खूब सारी सूखी झाड़ियां बटोरकर गांव के चारों ओर गोलाई में जमा कर दी गयीं। फिर इस चक्र की परिधि से पहिये के अरों की तरह ईंधन की दीवारें चिन दी गयीं बीचों-बीच खूब बड़े अलाव की व्यवस्था की और उसके पास ही कार खड़ी कर दी। सिर्फ गांव का प्रवेश-मार्ग खुला छोड़ दिया गया।

यह चक्रव्यूह बांधकर हम सब चुपचाप बैठ गये। गांव का मुखिया और गारा-याका मेरे साथ घेरे के केंद्र में जलते अलाव के पास थे। आधी रात को खट् से एक टहनी टूटी। हाथी आ पहुंचे। मैंने इशारा किया और मुखिया ने सुलगती लकड़ियां अलाव से निकालकर घास-फूस को छुआ दीं। घास धू-धू करके जल उठीं और मिनिट भर में गांव के चौगिर्द जमा ईंधन की बाड़ तेजी से सुलग उठी।

लपटों की रोशनी में मैंने गांव के चौगिर्द नजर घुमायी। नौ या दस हाथी आकस्मिक अग्निज्वाला से चकित हो मूर्तिवत् खड़े थे। अपने नेता के आदेश की प्रतीक्षा कर रहे थे।

गारा-याका लैंड रोवर के पिछले पहियों के पास जा दुबकी थी। हाथियों को देख वह जोर से 'चीं' की आवाज कर बैठी। मैंने गांव वालों को कह रखा था कि जब मुखिया संकेत करे, सब ग्रामवासी झोंपड़ियों से निकलें और अगर हाथी हमला करें, तो जलती लकड़ियां हाथियों पर फेंके। गारा-याका की आवाज को मुखिया का संकेत समझ ग्रामवासी बाहर निकल आये। इस शोर-शराबे से उत्तेजित हाथियों ने हल्ला बोल दिया और ग्रामवासी लोग जलती लकड़ियां उनके ऊपर फेंकने लगे।

मैं सोच ही रहा था कि फायर करूं, तभी पीछे से मनुष्यों की चीख सुनाई दी—विजय की नहीं, भय की। मुड़कर देखा, तो देखता रह गया। आग बुझ जाने से ईंधन के पास प्राचीर में एक काली दरार पड़ गयी थी। इकदंता हाथी उस दरार में से घुसा चला आ रहा था।

मेरे मन में भयंकर शंका उठ रही थी—यदि मेरे वार खाली गये तो! मेरा दिल इतनी जोर से धड़क रहा था कि अपने बायें पैर में मुझे उसकी धड़कन महसूस हो रही थी। मैंने अंधेरे में यथाशक्ति साध कर निशाना लिया और फायर कर दिया। दूसरे फायर की आवश्यकता नहीं पड़ी। हाथी के घुटने आगे को झुके और वह धड़ाम से जमीन पर आ रहा। उसकी तनी हुई सूंड लगभग मेरे जूते को छू रही थी।

बाकी हाथी घबराकर भाग गये। मैंने अगले दिन सवेरे हाथी का एकमात्र दांत कटवाया और ६५ पौंड का वह दांत अपनी रिपोर्ट के समेत जिलाधीश को समर्पित कर आया।

प्रस्तुतकर्ता : विपिन

★

सबसे अधिक बिक्री वाला उपन्यास

सुखबीर द्वारा प्रस्तुत

जैकलीन सूसन : वैली आफ दि डाल्स

१२ फरवरी, १९६३। न्यूयार्क की जैकलीन सूसन नामक टेलिविजन-अभिनेत्री ने टाइपराइटर पर कागज चढ़ाया और अपने दोनों हाथों की तीन उंगलियों से टाइप करती हुई वह एक उपन्यास लिखने लगी। उस समय न तो सूसन, न अन्य कोई व्यक्ति ही जानता था कि संसार भर में सबसे तेजी से बिकने वाला उपन्यास जन्म लेने लगा है। और जब फरवरी १९६६ में वह उपन्यास प्रकाशित हुआ, तो चौबीस घंटों में एक लाख प्रतियों के हिसाब से बिकने लगा।

इस उपन्यास का नाम है 'वैली आफ दि डाल्स', जिसकी आज अस्सी लाख से ज्यादा प्रतियां बिक चुकी हैं। आखिर इस उपन्यास की इतनी लोकप्रियता का कारण क्या है? उसकी लेखिका के शब्दों में ही सुनिये :

"यह उपन्यास इसलिए बिक रहा है कि यह एक 'कहानी' है। इसके पात्र ऐसे लोग हैं, जो आपको सच्चे लगेंगे और जिनके दुःख-सुख में आप शरीक होना चाहेंगे। आप उनके बारे में बातें करेंगे और आपकी वे बातें एक मुंह से दूसरे मुंह तक पहुंचती हुई उपन्यास की चर्चा करेंगी, और जो भी उन बातों को सुनेगा, वह उपन्यास पढ़ना चाहेगा।"

इस उपन्यास में तीन लड़कियों की कहानी है, जो अपने जीवन के लगभग बीस साल हालिवुड और ब्राडवे की फिल्मों और नाटकों की दुनिया में बिताती हैं। लेखिका के शब्दों में—"यह उपन्यास जो बात कहना चाहता है, बहुत स्पष्ट शब्दों में कहता है, और ऐसी हर स्त्री से कहता है, जिसने कभी ऊपर उठने, प्रसिद्धि और धन-दौलत पाने

का सपना देखा और जो अंत में किसी साधारण-से व्यक्ति से शादी करके साधारण-सा जीवन बिताने लगी है।"

'वैली आफ दि डाल्स' जहां एक तरफ खूब बिका, वहीं दूसरी तरफ उसकी कटु एवं कठोर आलोचनाएं भी हुईं। 'टाइम' पत्रिका ने उसे 'गंदी पुस्तक' कहा। कई आलोचकों को अभिनेत्री जैकलीन सूसन के 'लेखिका' बन जाने पर हैरानी भी हुई। भाषा और शैली की दृष्टि से भी उपन्यास को भोंडा बताया गया। यहां तक कहा गया कि वह साहित्यिक तौरपर बहुत निम्न स्तर के पाठकों को ही आनंद दे सकता है और यही उसकी सफलता का सबसे बड़ा कारण है।

सन १९४३ में सूसन जब सोलह वर्ष की थीं, अपना घर छोड़कर "थियेटर में तूफान लाने के लिए" न्यूयार्क आयी थी। वह लगभग बारह साल तक अभिनेत्री के रूप में काम करती रही। सन ५३ से ५६ तक लगातार चार साल वह टेलिविजन की सबसे बढ़िया लिबास पहनने वाली अभिनेत्री मानी गयी।

लेकिन वह जानती थी कि वह बहुत बढ़िया अभिनेत्री नहीं है। वह बताती है—"बस, गुजारे लायक ही काम था मेरा। यों, गुजारा अच्छी तरह हो जाता था!

"एक बार हमारी थियेटर-कंपनी को कैलिफोर्निया जाना पड़ा। मैं अपने पति से दूर रहना नहीं चाहती थी। सो, मैं न्यूयार्क में ही रहकर दूसरे प्रोग्रामों में हिस्सा लेने लगी। मैं अच्छा पैसा कमा रही थी। लेकिन एक दिन जब मैं किसी होटल से निकल रही थी, तो एक छोटे-से लड़के ने मुझे देखकर ऐसा फिकरा कसा कि मुझे लगा, मैं व्यापारिक फिल्मों में काम करने वाली एक साधारण-सी अभिनेत्री हूं। अभिनेत्री बनने की कोशिश में पंद्रह साल बीत गये थे, और अंत में मैं व्यापारिक फिल्मों की अभिनेत्री बनकर रह गयी थी। तब मैंने लेखिका बनने का फैसला किया।

"इसके पहले भी मैं लिखने का प्रयत्न करती रही थी। फिल्मों की शूटिंग से लौटने पर जब मैं दो या तीन बजे घर पहुंचती, तो कुछ-न-कुछ लिखने बैठ जाती—खास तौर से कहानियां। लेकिन वे चीजें मैंने आज तक किसी को दिखायी नहीं हैं। फिर मैंने जोसेफीन नामक अपनी कुतिया के बारे में एक पुस्तक लिखी। जब वह छपी, तो उसकी बहुत अच्छी समालोचना हुई। पाठकों के पत्र आये कि मैं कुछ और लिखूं। सो मैंने 'वैली आफ दि डाल्स' उपन्यास लिखना शुरू किया।

"तब मुझे लगा कि लिखना मेरे लिए एक नशे की तरह है। यह उपन्यास मैंने पैसों के लिए नहीं लिखा। शुरू-शुरू में मुझे कुछ लोगों ने कहा भी था कि फिल्मी दुनिया की पृष्ठभूमि पर लिखी गयी पुस्तक के बिकने और प्रसिद्ध होने की संभावना नहीं है। लेकिन मैंने प्रसिद्धि के लिए भी यह उपन्यास नहीं लिखा। मैं बुनियादी तौर पर एक कहानीकार हूं, और कहानी कहने की खातिर ही मैंने उपन्यास लिखा।

"यह कहानी उन लोगों की है, जो मेरे

दिमाग से जनमे हैं। यों उपन्यास की तीनों लड़कियों का संबंध हालिवुड की मेरिलिन मनरो, जुडी गार्लैंड और ग्रेस केली—इन तीन प्रसिद्ध अभिनेत्रियों से जोड़ा जाता रहा है और कहा जाता है कि मैंने उन तीनों की अनुकृति पर ही अपने उपन्यास के तीन मुख्य स्त्री पात्रों की सृष्टि की है। लेकिन यह सरासर गलत है।"

फिर भी यह सवाल पैदा होता है कि इस उपन्यास की इतनी ज्यादा बिक्री का रहस्य क्या है? इसमें शक नहीं कि बहुत बड़े पैमाने पर इस किताब की विज्ञापनबाजी हुई है। 'न्यूयार्क टाइम्स' जैसे समाचार-पत्र में उसके पूरे पृष्ठ के विज्ञापन छपते रहे हैं, जिन पर प्रकाशक ने एक लाख डालर से ज्यादा खर्च किया है।

उपन्यास की विज्ञापनबाजी में सूसन ने भी हिस्सा लिया है। लगभग एक सौ टेलिविजन के और दो सौ रेडियो के प्रोग्रामों में हिस्सा लेकर उसने उपन्यास की चर्चा की है। एक लोकप्रिय अभिनेत्री टेलिविजन और रेडियो पर अपने उपन्यास की चर्चा करे तो उसे सुनने वाले लाखों लोग स्वभावतः उसे पढ़ना चाहेंगे।

सूसन ने कुछ नये तरीकों से भी उपन्यास की विज्ञापनबाजी की है। वह देश-भर में पुस्तकों की बड़ी दुकानों में जाती है। अगर उसे पता लगा कि किसी दुकानदार ने उसका उपन्यास नहीं पढ़ा है, तो वह खुद उसकी दुकान से उपन्यास खरीदती है और उस पर अपने हस्ताक्षर करके दुकानदार को उपहार के रूप में देती है। उसका कहना है कि अगर दुकानदार ने खुद पुस्तक नहीं पढ़ी, तो वह उसे पूरी सरगर्मी से नहीं बेच सकेगा।

फिर जब कोई पुस्तक एक लाख से ज्यादा बिक जाती है, तो इसके बाद वह खुद-ब-खुद बिकने लगती है। उसकी चर्चा हरएक आदमी की जबान पर होती है, और लोग उसे खरीदे बिना नहीं रह सकते। देखा गया है कि उपन्यास खरीदने वाले ग्राहकों में अधिकांश स्त्रियां होती हैं। पुरुष प्रायः इतिहास, जीवनी आदि से संबंधित पुस्तकें खरीदते हैं।

लेकिन जब कोई पुरुष अपनी पत्नी को रात-भर किसी उपन्यास से चिपकी हुई देखता है, तो वह खुद भी उस उपन्यास को पढ़ने के लिए उत्सुक हो उठता है। तब न कोई आलोचक ही उसे रोक सकता है, और न कोई और चीज उसे उपन्यास पढ़ने से हटा सकती है।

★

उर्दू के प्रसिद्ध व्यंग्यकार कन्हैयालाल कपूर से एक बार एक सज्जन उलझ पड़े। उत्तर में कन्हैयालालजी ने केवल इतना ही कहा—"मैं तो आपको एक शरीफ आदमी समझता था।" वे सज्जन भी कटकर बोले—"मैं भी आपको शरीफ ही समझता था।"

"आप बिलकुल ठीक समझते थे," कन्हैयालालजी ने कहा—"गलती तो मुझसे ही हुई है।"

—नरेंद्र मोहन

★

इंटरव्यू मालिकों का

— शफ़ीक़ अहमद सिद्दीकी

असली घी के बारे में शायद इब्राहीम जलीस साहब ने लिखा था कि जिस तरह लोग आजकल इत्र इस्तेमाल करते हैं, उसी तरह आने वाले जमाने में लोग असली घी का इस्तेमाल किया करेंगे। मगर साहब, असली घी के बगैर लोग आज जिंदा हैं और शायद भविष्य में भी जिंदा रहेंगे, लेकिन नौकरों के बगैर गुजारा मुश्किल है। कसम खुदा की, क्या खुशनसीब थे वे लोग, जिन्हें नौकर आसानी से मिल जाते थे। एक हम हैं कि हमें कोई नौकर ही नहीं मिलता।

कोई अल्लाह का बंदा या बंदी हमारे घर का रुख ही नहीं करता। भूल से आ भी जाये तो ज्यादा दिनों तक ठहरता नहीं। साहब, आपसे क्या परदा, इन नौकरों, बल्कि कहना चाहिये, इन कमबख्त नौकरों ने तो हमें परेशान करके रख दिया है। आप यकीन नहीं करेंगे, लेकिन यह हकीकत है कि हम तो पूरी मुमकिन कोशिश करते हैं कि नौकर साहब या नौकरानी साहिबा को कोई तकलीफ न हो, लेकिन फिर भी दिन-ब-दिन उनके नखरे बढ़ते ही जाते हैं। कभी-कभी महसूस होता है, जैसे हम खुद नौकर बन गये हों और हमारे नौकर हमारे मालिक।

यकीन कीजिये, मुझे तो ऐसा लगता है कि आगे चलकर समाज में केवल उसी आदमी की इज्जत हुआ करेगी, जिसके घर का काम संभालने के लिए एक अदद नौकर होगा। लोग उन्हीं घरों में अपनी लाड़ली बेटियां ब्याहने में गौरव समझेंगे, जिनमें नौकर या नौकरानी होगी। आजकल के लड़के भी यही चाहने लगे हैं कि उनके विवाह के दहेज में उन्हें एक नौकरानी जरूर मिले, ताकि उनकी बीवियों को चूल्हा न फूंकना पड़े, घर के बर्तन न मांजने पड़ें, कपड़े न धोने पड़ें। घर का सब काम दहेज में मिली नौकरानी करे और वे अपनी बीवियों के साथ खूब हनीमून मनायें, फिल्में देखें और पिकनिकों पर जायें।

आने वाले दौर में दो समधिनों की बातें कुछ इस तरह हुआ करेंगी :

लड़की की अम्मी : बहन, लड़की की तरफ से तो आप बिलकुल फिकर मत कीजिये। मुझे अपने मुंह मियांमिट्ठू बनना पसंद नहीं, लेकिन बात मैं ईमानदारी की कहूंगी कि मेरी लाड़ली हजारों में नहीं, लाखों में एक है। खुदा उसकी जवानी सलामत रखे, बारहवां दरजा पास है।

लड़के की अम्मी : माशाल्लाह! माशाल्लाह! मगर बहन ......

लड़की की अम्मी : और शकल-सूरत में तो खुदा झूठ ना बुलाये, चौदहवीं का चांद भी उसके सामने शरमा जाता है।

लड़के की अम्मी : हां, हां क्यों नहीं ...... मगर बहन ......

लड़की की अम्मी : आप दहेज की फिकर मत कीजिये। आलीशान नहीं तो, ऐसा बुरा भी न होगा।

लड़के की अम्मी : हां-हां, यह सब तो ठीक है, लेकिन आप जरा मेरी बात भी तो सुन लीजिये। माना, लड़की खूबसूरत है, पढ़ी-लिखी है, रही दहेज की बात सो इसका हमें भी लालच नहीं। हमारे यहां खुदा का दिया सब कुछ है। हमारे लड़के की तो बस एक ही जिद है कि शादी ऐसी जगह करूंगा, जहां से दुल्हन अपने साथ नौकर, बल्कि अगर मुमकिन हो तो नौकरानी साथ लाये। यकीन करना बहन, वैसे तो अपनी बिरादरी में एक-से-एक हसीन लड़कियां पड़ी हैं। लोग तो अपनी बेटियों को थालियों में सजाकर देने को तैयार हैं, लेकिन मैं उन घरों में अपने बेटे की शादी इसलिए नहीं करना चाहती कि वहां से दुल्हन के साथ नौकरानी मिलने की कोई उम्मीद नहीं है। मैंने सुना था, तुम्हारे यहां एक नौकरानी है, इसलिए ......

आने वाले दौर में और भी बहुत कुछ होगा। मसलन नौकर-नौकरानियों का इंटरव्यू मालिक लोग नहीं, मालिकों का इंटरव्यू नौकर-नौकरानियां लिया करेंगे। उस दौर की तस्वीर कुछ यों होगी :

सजी हुई इमारत पर बोर्ड लगा हुआ है—"नौकर या नौकरानी मिल सकते हैं। जिन्हें जरूरत हो, हमसे मिलें।"

कमरे में मेज़-कुर्सी रखी हुई है। कुर्सी पर एक 'अम्मा' (नौकरानी को हमारी

घरेलू बोलचाल में 'अम्मा' कहते हैं) धुले हुए कपड़े पहने बैठी हैं। मेज पर लिफाफों का ढेर है। अम्मा एक लिफाफा उठाती हैं और पढ़कर उसे बड़ी बेदर्दी से रद्दी की टोकरी में फेंक देती हैं। आखिरकार कुछ खुशकिस्मत लिफाफे चुन लिये जाते हैं। मेज पर रखी हुई घंटी बजती है और नौकर और नौकरानियों की जरूरतमंद औरतें कमरे में दाखिल होती हैं। सभी को नौकरानी की जरूरत है। अभी सबका इंटरव्यू शुरू होने वाला है। सबके दिल धड़क रहे हैं कि न जाने 'अम्मा' साहिबा क्या पूछ बैठें।

कुर्सी पर बैठी हुई 'अम्मा' इंटरव्यू के लिए आयी हुई महिलाओं की आर्थिक स्थिति का अनुमान लगाती हैं और पूछती हैं :

"क्या काम करना पड़ेगा ?"

"तनख्वाह क्या मिलेगी ?"

"सुबह-शाम कितनी सब्जियां बनती हैं ?"

"घर में कितने आदमी हैं ?"

"रसोईघर कैसा है ?"

"खाना पकाने का सब सामान घर में मौजूद है या नहीं ?"

बेचारी जरूरतमंद औरतें एक-एक करके 'अम्मा' के सामने आती हैं और जवाब देकर निकल जाती हैं। किसी का घर छोटा है, तो किसी के घर में आदमी ज्यादा हैं। किसी का रसोईघर ठीक नहीं है, तो कोई तनख्वाह ज्यादा नहीं दे सकती।

अंत में सिर्फ दो औरतें रह जाती हैं। एक बेगम ख्वाजा और दूसरी मिसेज खान। दोनों की हैसियत एक-दूसरी से बढ़-चढ़कर है। कहने को तो वे दोनों सहेलियां हैं, लेकिन मन-ही-मन दोनों एक-दूसरी से जलती हैं। दोनों के दिल धड़क रहे हैं कि देखें कौन किसको मात देता है। पहले बेगम ख्वाजा सामने आती हैं। कुर्सी पर बैठी हुई 'अम्मा' पहले तो उन्हें सिर से पैर तक देखती हैं और फिर पूछती हैं :

"अच्छा ! तो आपको नौकरानी की जरूरत है ?"

"जी हां, आपने बिलकुल ठीक समझा।" बेगम ख्वाजा हकलाते हुए कहती हैं।

"आपके घर में कौन-कौन रहता है ?"

"मैं और मेरे शौहर।"

"आपके शौहर का मिजाज कैसा है ?"

"जी, बहुत अच्छा है। यकीन कीजिये, बहुत शरीफ आदमी हैं। उनका नाम भी ख्वाजा शरीफुद्दीन है।"

"मुझे उनके नाम-वाम से कोई मतलब नहीं...... अच्छा तुम यह बताओ, तुम्हारे बच्चे कितने हैं ?"

"फिलहाल तो सिर्फ दो हैं। वैसे घर में एक सास भी हैं। वे तो अपना काम खुद करती हैं। आपको तो घर का, बस, छोटा-मोटा काम करना पड़ेगा।"

"समझ में नहीं आता, तीन-चार आदमियों के छोटे-से घर को नौकरानी की जरूरत कैसे महसूस हुई ?"

"देखिये ना ...... मैं एक सोशल वर्कर हूं। कौम और बिरादरी की खिदमत के लिए मुझे अक्सर घर से बाहर रहना पड़ता है। घर के काम-काज के लिए भी तो आखिर

कोई-न-कोई होना ही चाहिये।"

"माफ कीजिये...... मैं खुद सोशल वर्क में दिलचस्पी रखती हूं।"

"जी ? जी हां, जी हां, आपने ठीक फरमाया। यह तो बहुत अच्छी बात है। आप जिस दिन सोशल वर्क पर जायें, मुझे बतला दें। उस दिन घर का काम मैं खुद कर लूंगी।"

"मुझे अफसोस है, मैं आपको अपनी मालकिन नहीं बना सकती।"

"वह क्यों ?" बेगम ख्वाजा हैरान होकर पूछती हैं।

"इसके दो कारण हैं। पहला तो यह कि आपको नौकरानी की जरूरत नहीं। तीन या चार आदमियों के घर को एक नौकरानी का खर्च जरूरत से ज्यादा महसूस होगा। जल्दी ही आपको एहसास हो जायेगा कि एक नौकरानी का रखना इतना आसान नहीं, जितना आप समझती हैं। फिर आप कहेंगी कि तनख्वाह ज्यादा है।"

"मैं आपको यकीन दिलाती हूं कि ऐसा कभी नहीं होगा।"

"वैसे भी मुझे आपके खयालात पसंद नहीं है।"

"जी ? मैं आपका मतलब नहीं समझी।"

"हो सकता है, किसी दिन शहर में कोई कल्चरल शो हो और आप सोशल वर्क का बहाना करके घर से रफूचक्कर हो जायें। आखिर मैं भी सोशल वर्क में दिलचस्पी रखती हूं। उस दिन क्या मैं घर में भाड़ झोंकती बैठी रहूंगी ?"

"बारी-बारी से भाड़ झोंकने के बारे में आपका क्या खयाल है ?" बेगम ख्वाजा आखिरी कोशिश करती हैं।

"जी नहीं, आप तशरीफ ले जा सकती हैं। मुझे ऐसी मालकिन नहीं चाहिये, जो अपने ऐशोआराम के सामने नौकर की खुशी का खयाल न रखे।"

बेगम ख्वाजा को निराश होकर जाते देख मिसेज खान के होठों पर मुस्कराहट खिलने लगती है ? अब अकेली उम्मीदवार रह गयी हैं और उन्हें शत-प्रतिशत सफलता की आशा है। कुर्सी पर बैठी 'अम्मा' मिसेज खान से कहती हैं—"अच्छा, तो आप भी सोशल वर्क में दिलचस्पी रखती हैं?"

"जी नहीं। आपने बिलकुल ही गलत समझा। मुझे सोशल वर्क में कोई दिलचस्पी नहीं है और आपके कभी-कभी सोशल वर्क पर जाने से मुझे कोई ऐतराज नहीं होगा।"

"आपके यहां कुल कितने आदमी हैं ?"

"पंद्रह।"

"पंद्रह आदमियों का काम तो बहुत होगा अच्छा यह बताओ, पहले भी कोई नौकरानी रखी है या सारा काम मुझे ही करना पड़ेगा ?"

"जी, मैं पूरी कोशिश कर रही हूं। उम्मीद है, जल्द ही एक छोटी नौकरानी का बंदोबस्त हो जायेगा।"

"यह ठीक है। जब छोटी नौकरानी का बंदोबस्त हो जाये तो खबर कर दीजियेगा।"

मिसेज खान बड़ा जोर लगाती हैं कि 'अम्मा' रजामंद हो जायें, लेकिन कम्बख्त 'अम्मा' टस-से-मस नहीं होतीं।

★

साल गुजर जाते हैं

"हेलो ...."

"हेलो। मैं बड़ा गजब का सेब खा रही हूं।"

"क्या कहा ?"

"गजब का सेब।"

"किससे बात करनी है आपको ?"

"तुमसे।"

"तुम कौन हो ?"

"एक लड़की।"

"मुझे जानती हो क्या ?"

"नहीं, मगर मैंने तुम्हें दो-एक बार देखा है। यों ही इच्छा हुई कि तुम्हें फोन करूं।"

"यह बताने के लिए कि तुम गजब का सेब खा रही हो ?"

"हां, बस यही।"

"हूं......पर बड़ी कमाल की आवाज है तुम्हारी।"

"धन्यवाद ! अब फोन रखने का वक्त हो गया है।"

"इतनी जल्दी ? मगर तुमने फोन क्यों किया था ?"

"यह देखने के लिए कि तुम्हारी आवाज कैसी है।"

"बस, इतना ही ?"

"हां, इतना ही। चीरियो!"

"बस एक मिनिट। फोन रख न देना। तुम्हारी आवाज बड़ी कमाल की है।"

"वह तो तुम पहले ही कह चुके हो। अलविदा......"

"तुम फोन रख दोगी, तो तुम्हें मैं कैसे ढूंढ़ पाऊंगा?"

"ढूंढ़ा तो मैंने तुम्हें है, न कि तुमने मुझे।"

"मान भी जाओ। कम-से-कम अपना नाम तो बता दो।"

"उससे तुम्हारा क्या बनेगा? फिर भी लो। मेरा नाम है कात्या, कातेंका, एकातेरीना, जो भी तुम्हें ज्यादा अच्छा लगे।"

"खुद तुम्हें कौन-सा ज्यादा पसंद है?"

"असल में इनमें से कोई भी नहीं। मुझे 'करीना' पसंद है।"

"ठीक ...... करीना, क्या मैं तुम्हें फोन कर सकता हूं?"

"नहीं कर सकते। तुम्हें मेरा नंबर नहीं मालूम है।"

"तो बता दो, अपना नंबर।"

"नहीं।"

"अच्छी बात है। मगर मुझे फोन जरूर करना, ठीक है करीना?"

"............"

"हेलो, हेलो, क्या तुम फोन पर हो?"

"हां।"

"तो माजरा क्या है?"

"मैं सोच रही हूं ...... अच्छी बात है, मैं फोन करूंगी।"

"कल इसी समय?"

"अच्छी बात है। कल छः बजे।"

कल छः बजे

"मैं गजब का सेब खा रही हूं। हेलो।"

"मैं आधे घंटे से फोन के सामने बैठा हूं।"

"तुमने कहा था छः बजे, और अब छः बजे हैं।"

"धन्यवाद।"

"किस बात का।"

"करीना?"

"क्या?"

"अगर मैं कुछ पूछूं तो बताओगी?"

"यह तो सवाल पर निर्भर है। खैर पूछो, क्या पूछते हो!

जैकोब सीगल

अनुवाद : विष्णु प्रसाद

"तुम्हारी उम्र क्या है?"

"सोलह। लगभग सोलह। और तुम सत्रह के हो, तुम्हारा नाम मिशा है ...... और तुम २३ पत्रो व्का स्ट्रीट पर रहते हो।"

"तुम्हें यह सब कैसे पता है?"

"मुझे तुम्हारे बारे में सब कुछ पता है। ...... लगभग सब कुछ!"

"यह तो न्याय की बात नहीं है।"

"क्यों?"

"क्योंकि तुम्हें मेरे बारे में सब कुछ पता है, जबकि मैं तुम्हारे बारे में कुछ भी नहीं जानता। क्या तुम कद में ऊंची हो?"

"साधारण।"

"सुंदर हो ?"

"बहुत साधारण। अब मुझे जाना होगा।"

"बस, सिर्फ एक मिनिट। तुम फिर फोन करोगी न ?"

"क्यों करूं मैं ?"

"क्योंकि ...... कब करोगी ?"

"पता नहीं।"

"अपना नंबर क्यों नहीं बताती मुझे ? मान भी जाओ" !

"............"

"क्या फिर सोच में पड़ गयीं ?"

"ओह ! ठीक है। लिख लो—५२६८९।"

उसी दिन ६·१० बजे शाम

"क्या यह टेलीफोन डाइरेक्टरी पूछताछ विभाग है ?"

"हां, कहिये क्या सेवा है।"

"बात ऐसी है जी कि ...... मेरे पास एक फोन-नंबर है, और मैं उसका पता जानना चाहता हूं।"

"माफ कीजिये, हम ऐसी जानकारी नहीं देते।"

"मगर मुझे उसकी बड़ी जरूरत है।"

"माफ कीजिये, हम यह जानकारी नहीं दे सकते।"

"तो मैं क्या करूं ?"

"मुझे अफसोस है, हम आपके लिए कुछ भी नहीं कर सकते। चाहे तो टेलिफोन डाइरेक्टरी में ढूंढ़ लीजिये।"

"उसमें तो बरसों लग जायेंगे।"

"हां, मगर हम कुछ नहीं कर सकते।"

दो दिन बाद

"क्या मैं करीना से बात कर सकता हूं?"

"इस नाम का कोई व्यक्ति इस नंबर पर नहीं है।"

"होना तो जरूर चाहिये ...... एक लड़की सोलह-एक साल की।"

"ओह, तो वह कात्या ग्राडोवा होगी। अपने लिए कैसे काल्पनिक नाम घड़ा करती है यह भी ! करीना, वाह ! कात्या......ओ कात्या !"

"हेलो।"

"करीना ? मैं बोल रहा हूं।"

"मैंने भी यही सोचा था।"

"जब मैंने करीना को बुलाने को कहा, तो वे समझ ही नहीं पायीं कि मैं किसकी बात कर रहा हूं।"

"केवल तुम्हीं जानते हो। यह मेरा रहस्य है।

"अच्छा-अच्छा। मैं तुम्हारा रहस्य नहीं खोलूंगा। ...... मुझे तुम्हारा 'सरनेम' पता चल गया है। ग्राडोवा है न तुम्हारा सरनेम ? अब तो मैं टेलिफोन पूछताछ विभाग से तुम्हारा पता प्राप्त कर सकता हूं। तुम्हारा नाम बताऊंगा, तो फोन नंबर और पता बता देंगे।"

"ना, ऐसा न करना, प्लीज ! ...... या चाहो तो करके देखो। कुछ भी लाभ न होगा; फोन हमारे नाम पर है ही नहीं।"

"यानी मुझे इंतजार करते रहना पड़ेगा?"

"क्यों करना पड़ेगा ?"

"कैसी कमाल की आवाज पायी है तुमने।

...... मैं देखना चाहता हूं कि तुम दिखती कैसी हो।"

"बताया न मैंने, बहुत साधारण!"

"तो क्या हुआ!"

"नहीं, ईमान से कहती हूं, बहुत साधारण। समझ लो बहुत ही साधारण। अलविदा।"

कुछ दिन बाद

"जरा करीना को बुला दीजिये।"

"किसे?"

"मेरा मतलब है, कात्या ...... कात्या ग्राडोवा।"

"क्या-क्या काल्पनिक नाम घड़ लेती है यह लड़की! कात्या बाहर गयी हुई है।"

और कुछ दिन बाद

"क्या मैं कात्या ग्राडोवा से बात कर सकता हूं।"

"सबके सब ग्राडोवा लोग बाहर गये हुए हैं।"

और कुछ दिन बाद

"क्या मैं कात्या ग्राडोवा से बात कर सकता हूं?"

"मैं उसकी मां हूं। कातेंका गर्मियां बिताने अपनी नानी के पास गांव गयी हुई है। दो-एक रोज में मैं उसे पत्र लिखने वाली हूं। कोई संदेश?"

"मेहरबानी करके उसे इतना बता दीजियेगा कि मिशा ने फोन किया था।

जून १९४१ के अंत में

"क्या मैं कात्या ग्राडोवा से बात कर सकता हूं।"

"शायद वह घर में नहीं है।"

"तो कृपया उसकी माताजी को ही बुला दीजिये।"

"एक मिनट ठहरिये।"

"हैलो।"

"हैलो, क्या आप कातेंका की माताजी बोल रही हैं?"

"हां-हां, क्या कात्या की कोई चिट्ठी आयी है?"

"नहीं। क्या आपको मेरी याद है? मैंने कुछ दिन पहले फोन किया था।"

"अच्छा-अच्छा, याद है। कात्या कल गांव से लौट रही है। कल फोन करना।"

"नहीं, कल नहीं कर सकूंगा। ...... कल तो मैं जा रहा हूं।"

"क्या सुरक्षा के लिए बाहर भेजे जा रहे हो?"

"नहीं, मोर्चे पर जा रहा हूं। कात्या को मेरी नमस्ते कहियेगा। आपको भी नमस्ते।"

"नमस्ते भाई, नमस्ते। तुमने क्या नाम बताया था अपना?"

"मिशा।"

चार साल के बाद

"क्या मैं कात्या ग्राडोवा से बात कर सकता हूं?"

"किससे?"

"कात्या ग्राडोवा से।"

"यहां तो किसी का यह नाम नहीं है।"

"वह यहीं रहा करती थी, युद्ध से पहले।"

"तो एक मिनट ठहरिये। मैं पड़ोसिन से पूछती हूं।"

"हेलो, क्या मैं आपकी कोई मदद कर सकती हूं ?"

"मैं कात्या ग्राडोवा को खोज रहा हूं।"

"वह तो चार साल पहले यहां से चली गयी। पहले उसे सुरक्षा के लिए शहर से बाहर भेजा गया, फिर वह लौटकर यहां नहीं आयी।"

"तो वह मास्को में नहीं है ?"

"है तो मास्को में ही; उसके पिता के मारे जाने के बाद से उन लोगों ने इस फ्लैट में आना बंद कर दिया है। वह अपने पति के माता-पिता के साथ रहती है। वहीं उसके बच्चा भी हुआ। उसकी मां भी वहीं रहने चली गयी।"

"क्या उसका फोन नंबर आपको मालूम है ?"

"जरा ठहरिये। यहीं कहीं दीवार पर लिखा हुआ है। हां, यह रहा—८३०१६८ ......"

उसी दिन

"क्या यह ८३०१६८ है ?"

"जी हां।"

"क्या मैं एकातरीना ग्राडोवा से बात कर सकता हूं ?"

"वह अब ग्राडोवा नहीं जेमत्सोवा है। और वह मैं ही हूं। हेलो मिशा।"

"तुम कैसे जान गयी कि मैं ही हूं ?"

"बड़ी आसानी से।"

"चार साल से ज्यादा हो गये, लगभग पांच साल, फिर भी तुमने मेरी आवाज पहचान ली !"

"हां, मैंने पहचान ली—और मुझे बड़ी खुशी है कि तुम ......"

"कि मैं जिंदा हूं ......"

"हां, और इसकी भी कि तुमने फोन किया।"

"आज भी तुम्हारी आवाज बिलकुल उस समय जैसी ही है।"

"क्या सचमुच साढ़े चार साल हो गये?"

"उससे भी ज्यादा ...... लगभग पांच। ...... तो अब तुम जेमत्सोवा हो ?"

"हां, मैं विवाहिता हूं।"

"हां, मुझे मालूम है। मुझे पता है कि तुम्हारे एक बच्चा है और यह भी कि तुम्हारी मां तुम्हारे साथ रहती है। और ...... तुम विवाहिता हो।"

"बिलकुल ठीक ! तुम मेरे बारे में सब कुछ जानते हो और मैं तुम्हारे बारे में कुछ भी नहीं जानती।"

"जानने को है ही क्या ! जैसे और लोग, वैसे मैं। मोर्चे पर लड़ा। दो बार जख्मी हुआ......"

"बहुत ज्यादा ?"

"एक बार तो काफी। पर जख्म भर गये, जैसे कुत्ते के भी भर जाते हैं। और क्या ? हां, सेना से बर्खास्त हुआ, घर गया। लगता है, मैं लंबा-चौड़ा हो गया हूं। मां ने सब चीजें संभालकर रखी हुई थीं—सूट, कमीजें, जूते। और वे सब मीलों छोटे पड़ते थे। मैं न उन्हें पहन सकता था, न कुछ कर सकता था। मजेदार बात है कि मैं काफी लंबा-चौड़ा हो गया हूं।"

"लगभग पांच साल भी तो हो गये।"

"और अपने पुराने सूट की जेब में मुझे एक नोटबुक मिली, जिसमें कि तुम्हारा फोन नंबर था। मैंने फोन किया। उन लोगों ने मुझे नंबर दिया। और अब मैं तुम्हें फोन कर रहा हूं।"

"धन्यवाद।"

"और अब तुम विवाहिता हो ......"

"हां, काफी समय से।"

"तुम तो जैसे क्षमायाचना कर रही हो!"

"बिलकुल अकस्मात् हो गया विवाह।"

"अपने पति से तुम्हें प्यार है?"

"बहुत। वे भी बहुत जख्मी हो गये थे। और अपने बेटे से मुझे प्यार है। वे दोनों भी मुझे बहुत प्यार करते हैं।

"करीना......"

"............"

"करीना, क्या मैं तुमसे मिल सकता हूं?"

"............"

"जवाब क्यों नहीं देतीं? सोचने लग गयीं क्या?"

"नहीं, मैंने पहले ही सब सोच रखा है।"

"कैसी सुंदर है तुम्हारी आवाज!"

"तब तो हमें बिलकुल नहीं मिलना चाहिये।"

"क्यों?"

"ऐसा है, तुम मुझे एक सुंदर आवाज के रूप में जानते हो, यह बहुत अच्छी बात है। तुम सुंदर आवाज की बात सोचते हो और शायद समझते हो कि मैं भी कुछ खास चीज हूं। समझ रहे हो न मेरी बात?"

"पूरी तरह नहीं।"

"किसी दिन समझ जाओगे। और अब सब कुछ वैसा ही रहने दो, जैसा वर्षों पहले था। किसी जमाने में एक लड़की थी करीना, जिसकी आवाज कमाल की थी।"

"............"

"लो, अब तुम जवाब नहीं दे रहे हो।"

"मैं सोचने लगा हूं।"

"मिशा, मेरी शुभकामनाएं! जीवन में आनंद मनाओ।"

"पता नहीं, मना पाऊंगा या नहीं। मगर कोशिश करूंगा......"

"जरूर करना। तो अब दोनों अलविदा कह लें।"

"करीना, कोई अच्छी-सी बात कह दो उपसंहार के रूप में।"

"जैसे कि ......?"

"जो भी तुम्हें जंचे...... सबसे अच्छी बात, जो तुम सोच सको।"

"मैं गजब का सेब खा रही हूं......"

जीवन एक ढंग से कर्ज लेना-चुकाना है। वह हमें आज देता है, ताकि कल वापस ले सके। वह पुनः देता है और पुनः वापस ले लेता है—आखिर हम लेते-देते थक जाते हैं और सदा की नींद सो जाते हैं।

—खलील जिब्रान

पहली छाप दूसरी छाप

व्यक्तियों की तरह नगरों और देशों की भी आत्मा पहली मुलाकात में पकड़ाई में नहीं आती–उसे समझ पाने के लिए संवेदनशीलता और सब्र आवश्यक है।

एन. जी. जोग

काफी सारे विदेशी आगंतुकों ने इस पर अप्रिय टिप्पणी की है कि बंबई के सांताक्रुज हवाई-अड्डे से शहर आते हुए उन पर बंबई की–और भारत की–पहली छाप क्या पड़ी।

विशेषत: जो प्रात:कालीन उड़ानों से यहां पहुंचते हैं, उन्हें लोगों को शहर आने वाली सड़क के दोनों ओर बैठकर नैसर्गिक नित्य-विधियां निपटाते देखकर बड़ी ही जुगुप्सा होती है।

कुछ साल पहले भारत का दौरा करने वाले वेस्टइंडीजी लेखक नैपाल ने तो खुले में प्रात:कृत्य के इसी रिवाज को पकड़कर भारत की खूब खबर ली है।

उनकी पुस्तक 'एन एरिया आफ डार्कनेस' का तो यही तकियाकलाम है।

मगर इस तरह पहली छाप का अप्रिय होना कोई बंबई की ही बपौती नहीं है। यह बात पिछले साल अपनी विश्वयात्रा में मु[illegible] बखूबी पता चली।

हवाई-अड्डे से शहर जाते समय मुझ[illegible] बैंकाक की पहली छाप यह पड़ी कि [illegible] पिछड़ा हुआ मध्ययुगीन नगर है। जाने क्यों उस समय मुझे चार दशक पहले के पूना [illegible] याद आने लगी।

इधर-उधर सिर उठाते हुए चंद विशा[illegible] और अत्याधुनिक होटलों को छोड़ दें, [illegible] बैंकाक मध्ययुगीन नगर ही है, जिसमें भगवा वस्त्रधारी फुंगियों (भिक्खुओं) और बु[illegible] मंदिरों की भरमार है–एक मंदिर में ठो[illegible] सोने की बुद्ध-प्रतिमा है।

मैंने और कहीं नहीं देखा कि शहर [illegible] इतने सारे निठल्ले साधु रहते हों और (जै[illegible] कि मैंने सुना) राज्य उनके भरण-पोषण [illegible] व्यवस्था करता है।

वे भिक्षा के लिए हाथ नहीं पसारते [illegible]

जैसा कि भारत में होता है। परंतु स्वेच्छा से दी हुई भिक्षा से उन्हें परहेज भी नहीं था।

मुझे यह देखकर शर्म आयी कि भारत ही एकमात्र देश है, जहां सुसंघटित भिखमंगी खासा पनपता हुआ पेशा है। मैंने यहां की तरह एक भी आदमी को वहां गिड़गिड़ाते और भीख मांगते नहीं देखा, न ही रोगाक्रांत या विकृत अंगों को दरसाकर करुणा उत्पन्न करने की कोशिश करते देखा।

न्यूयार्क में अलबत्ता दो अंधे भिखारी मेरी नजर में पड़ गये, मगर वे भी कहने को तो सचित्र पोस्टकार्ड बेच रहे थे।

बैंकाक की दूसरी छाप ने भी पहली छाप की ही पुष्टि की कि वह पिछड़ा हुआ शहर है। मगर वहीं के एशिया होटल में मैंने शौचालय में फोन लगा हुआ पाया। मुझे नहीं मालूम, अगर यह हिल्टन और इंटरकांटिनेंटल होटलों में आम चीज हो। मगर अत्यल्प विदेशी मुद्रा के कारण कोई इक्का-दुक्का भारतीय यात्री ही उन शानदार बसेरों में ठहरता होगा।

हैनेडा हवाई-अड्डे से टोक्यो आते हुए मुझ पर प्रमुख छाप पड़ी अटूट ट्रैफिक-जैम की। हमारी गाड़ी बार-बार ट्रैफिक के गोरखधंधे में फंस जाती थी। और सड़क भी विश्व का सबसे बड़ा नगर होने का दावा करने वाले शहर की शान के अनुरूप नहीं थी। आबादी की दृष्टि से यह दावा भले सच हो, मगर विस्तार और भव्यता में टोक्यो न्यूयार्क का पासंग भी नहीं है।

जब मैं एक विश्वविद्यालय देखने लोकल ट्रेन से गया, तो मुझे ऐसा लगा, जैसे बंबई में ग्रांट रोड से बोरिवली की यात्रा लोकल ट्रेन से कर रहा हूं। पटरी के दोनों ओर एकदम सटे हुए छोटे-छोटे मकान थे, जो कई जगह गंदी बस्ती जैसे लगते थे।

दूसरी नजर में टोक्यो निश्चय ही अधिक अच्छी छाप छोड़ता है। सड़कें विशाल और साफ-सुथरी हैं, उनके किनारे पदचारियों के लिए खासे चौड़े पथ हैं, लोग सुवेशधारी—प्रायः पश्चिमी वेश में—और विनम्र होते हैं।

और टोक्यो का सबसे बड़ा आकर्षण तो गिंजा है, जिसकी जादू-लोक जैसी नियान रोशनियां रात को दिन बना देती हैं और आंखों को चुंधिया देती हैं। मगर जो लोग कहते हैं कि गिंजा के सामने न्यूयार्क का ब्राडवे पानी भरता है, वे प्रलाप करते हैं।

और गिंजा में ही (नैपालजी कृपया नोट कर लें) मैंने बीच सड़क पर एक आदमी को धड़ल्ले से मूत्र-विसर्जन करते हुए देखा। इस दृश्य ने मुझ पर और भी अधिक छाप इसलिए डाली कि हमारी टोली में एक जापानी महिला भी थी।

पलड़ा बराबर रखने के लिए (नैपालजी फिर नोट करें) यही दृश्य मैंने दिनदहाड़े न्यूयार्क के एक उपनगर में भी देखा।

हवाई-अड्डे से आते समय लास एंजलीस और सानफ्रांसिस्को ने मेरे मन पर मीठी पहली छाप डाली, और वाशिंगटन ने भी।

ये सभी सुंदर नगर हैं। उनकी अपनी विशिष्ट रमणीयता है। परंतु वाशिंगटन पर

में विशेषत: मुग्ध हो गया– वृक्षावलीयुक्त विशाल राजपथ और विस्तीर्ण अहातों में स्थापित अनेक स्मारक।

कहते हैं, नयी दिल्ली को वाशिंगटन के अनुकरण पर वसाया गया है; दोनों की समता सर्वाधिक स्पष्टता से दिखती है सर-कारी कार्यालय भवनों में।

विशाल जनसमूह के–ज्यादातर जनाना-समूह के–शाम के समय एक साथ दफ्तर से निकलने और हर किस्म, मेक और आकार की कारों में अपने घरों की ओर रवाना होने का नजारा भी देखने योग्य होता है। लगता है कि नयी दिल्ली में वावुओं की जितनी साइकलें हैं, उससे ज्यादा कारें वाशिंगटन में हैं।

हम न्यूयार्क के घरेलू हवाई-अड्डे ला गार्डिया में उतरे और हमारे मेजवान हमें कार में वैठाकर नगर के केंद्र की ओर नहीं, वल्कि उससे परे उपनगरों की ओर रवाना हो गये।

आप मानें या न मानें, न्यूयार्क की पहली छाप मुझ पर यह पड़ी कि सड़कों में गढ़े-ही-गढ़े हैं और राष्ट्रीय पथों पर लगा-तार चुंगी-चौकियां हैं।

भारत में हम लोगों का खयाल है कि सड़क-चुंगी वावा आदम के जमाने की व्यवस्था है; मगर सारे संयुक्त राज्य अम-रीका में यह खूब पनपती दिखाई देती है। इसी प्रकार तो वे अपनी सड़कों को दुरुस्त रखते हैं (क्या सचमुच करते हैं?) और अपने शानदार पुलों का खर्चा वसूल करते हैं।

न्यूयार्क की दूसरी छाप भी इतनी ही खरावपड़ी। हमारे मेजवान अगले रोज हमें कार में सेंट्रल पार्क, ग्रीनविच विलेज और न्यूयार्क के अन्य पुराने हिस्सों में ले गये। वहां हैं रोशनीहीन लाल मकान, उनकी दीवारों से सटी हुई भोंड़ी चिमनियां और गलीज सड़कें।

गलीज विलकुल ठीक शब्द है। सेंट्रल पार्क में भी कूड़ा-ही-कूड़ा विखरा हुआ था। मैंने विना लाग-लपेट के अपनी प्रतिक्रिया जतायी। और जो कुछ मैंने देखा, उससे मुझे झटका-सा लगा।

जव मैं मैनहैटन में राष्ट्रसंघ की इमारत के पास एक होटल में आकर ठहरा, तब मुझे असली न्यूयार्क और उसकी सुंदरता और भव्यता के दर्शन हुए।

मैनहैटन की भव्य अभ्रंकष अट्टालिकाएं ऊंचाई में परस्पर होड़ करती हैं और जब हम एम्पायरस्टेट विल्डिंग से, जो कि दुनिया की सवसे ऊंची इमारत है, नीचे झांकते हैं तो दौड़ती हुई कारें चलायमान दियासलाई कि डिबियों जैसी लगती हैं।

एंपायर स्टेट विल्डिंग अभी भी न्यूयार्क की सबसे ऊंची इमारत है, यह उसके सामने लगी प्रवेशार्थियों की लंवी कतारों से पता चलता था। अमरीका में इससे लंबी कतारें मैंने केवल वाशिंगटन में ह्वाइट हाउस के सामने देखीं।

मगर मुझे ह्वाइट हाउस से तो निराशा हुई। वह नयी दिल्ली के राष्ट्रपति भवन के सामने कुछ भी नहीं है।

न्यूयार्क की मुझ पर आखिरी छाप क्या पड़ी? उसे न्यूयार्क बंदरगाह की एक इमारत पर लगे विशाल पोस्टर पर लिखे चंद शब्दों में अच्छी तरह व्यक्त किया जा सकता है। उन पर स्वाधीनता की प्रतिमा देखने जाते समय मेरी नजर पर पड़ी थी। वे शब्द थे :

"न्यूयार्क न्यूयार्क है ! क्या और भी कोई जगह है ?"

मुझे लोगों ने आगाह किया था कि न्यूयार्क के बाद लंदन बड़े-से गांव जैसा लगेगा और सचमुच वैसा लगा। सुंदर, सौम्य गांव, सुपरिचित स्थलों से भरा।

पार्लमेंट भवन, वेस्टमिंस्टर एबे, जिसमें दिवंगत महापुरुष कंधे-से-कंधा छुआते हुए अपनी कब्रों में लेटे हैं, हाइड पार्क और उसका वक्ताओं का कोना, सेंट पाल का गिरजा, ट्राफल्गर स्क्वेयर, फ्लीट स्ट्रीट—ये सब पहले ही हमारे देखे हुए होते हैं, भले ही यह हमारी पहली लंदन-यात्रा हो।

सिर्फ ईरोस की मूर्ति, जिसके इर्द-गिर्द हिप्पी जोड़े नितांत निजी मुद्राओं में खड़े या लेटे हुए थे, अप्रत्याशित दृश्य था— ब्रिटेन के निषेधहीन समाज की अंतरंग झांकी प्रस्तुत करता हुआ।

और मानो लंदन को और भी सुपरिचित बनाने के लिए ही, वहां कितने सारे भारतीय हैं! अफसोस बस सिर्फ इस बात का रहा कि लंदन में हम इतने समय नहीं रहे कि वहां के वातावरण में रमकर अपने को उसका अंग अनुभव कर सकें।

भरे-भरे हवाई जहाज से हम इंग्लिश चैनल पार करके ओर्ली हवाई अड्डे पर उतरे। वहां से मोटर में पेरिस जाते हुए बार-बार मैं अपने आपसे पूछ रहा था कि क्या यह संसार की सबसे सुंदर नगरी है ?

फ्रांस की राजधानी को जाने वाले उस निहायत मामूली-से मार्ग में सौंदर्य के नाम पर कुछ नहीं था। और फ्रांस उन दिनों नैपोलियन की दूसरी शताब्दी मना रहा था। काफी टटोलने, टोह लेने पर ही पेरिस अपना सौंदर्य आगंतुक के सामने उघाड़ता है; मगर वह सौंदर्य देख लेने पर आगंतुक संमोहित हो जाता है।

बर्लिन का टेम्पलहार्फ हवाई अड्डा शहर के बीचो-बीच है। शायद इसलिए कि वहां अंतर्राष्ट्रीय आवागमन जैसी कोई चीज तो है नहीं।

जमीन पर पदार्पण करते ही उभरती हुई नयी विशाल इमारतें और युद्ध के समय बमबारी में ध्वस्त पुरानी इमारतों के खंडहर हमारा स्वागत करते हैं। और ये खंडहर रूपी दाग पश्चिम बर्लिन से ज्यादा पूर्वी बर्लिन के चेहरे पर हैं।

बर्लिन की पहली छाप अच्छी रही और दूसरी भी, हालांकि पश्चिमी बर्लिन से पूर्वी बर्लिन जाते समय युद्ध की डरावनी स्मृतियां जाग उठती हैं।

रोम के हवाई अड्डे पर हम बहुत रात गये पहुंचे और जब उस शाश्वत नगरी की ओर कार से चले, कुछ देख नहीं सके। ज्यादातर खुला इलाका था।

लेकिन मुझ पर पड़ी यह पहली छाप कि

मैं एक प्राचीन नगरी में प्रवेश कर रहा हूं, अंत तक बनी रही। रोम यूरोप का सबसे पुराना नगर है और उसके प्राचीन खंडहरों ने मानो इतिहास को जीवित रखा हुआ है।

सर्वत्र खंडहर, सर्वत्र मूर्तियां, सर्वत्र टूरिस्ट—यह संक्षेप में रोम का वर्णन है। वैटिकन में दुनिया के सबसे बड़े संग्रहालयों में से एक है और सेंट पीटर का गिरजा दुनिया का सबसे पुराना गिरजा है। थोड़े समय की यात्रा में उसके सौंदर्य और भव्यता की उड़ती-सी छाप ही ग्रहण की जा सकती है।

अजीब बात है कि यह बात याद रह जाती है कि जो युवती हमें शहर दिखाने ले गयी थी, उसे सेंट पीटर गिरजे के वर्दी से लदे-फदे द्वारपालकों ने इसलिए अंदर नहीं घुसने दिया कि वह मिनिस्कर्ट पहने थी। तो पुराण-पंथ केवल भारत के मंदिरों में ही नहीं है।

इन सबकी अंतिम और स्थायी छाप क्या रही? बात यह है कि मेरी यात्रा इतनी अल्पकालीन और जल्दी में की गयी थी कि उसका कोई चिरस्थायी प्रभाव नहीं हो सकता। सब घुला-मिला है, खिचड़ीनुमा दृश्यों और ध्वनियों का ही नहीं, गप्पों का भी मिश्रण।

जब लोग पूछते हैं, आपको कौन-सा देश सबसे अधिक अच्छा लगा, तो मैं सच्चाई से कहता हूं—सभी मुझे अच्छे लगे; हर एक की अपनी खासियत और खूबी है।

और सभी देशों के लोग मूलतः भले हैं। कम-से-कम हमारे लिए तो भले ही थे।

मेरे मित्र समझते हैं कि मैं टालमटूल कर रहा हूं और चतुराई की बात कर रहा हूं। ऐसी बात नहीं है।

यदि अपनी यात्रा का मेरे मन पर कोई भी स्थायी प्रभाव है, तो वह यह है कि इसने मुझे अनुभव कराया है कि मैं विश्व-नागरिक हूं—भले ही शेष सारा जीवन मैं अपने ही कोने में दुबककर बिता दूं।'

[‘संडे स्टैंडर्ड’ से साभार]

प्रायश्चित्त

बापू ने रात को भी नौ बजे से आध घंटे का टाइम बातचीत के लिए मुझे दिया था। बापू खूब हंसते और हंसाते रहे, फिर गंभीरतापूर्वक बोले—“अब तो साढ़े नौ बज चुके। मैं रात के डेढ़ बजे का उठा हुआ हूं और दोपहर को सिर्फ पचीस मिनिट के लिए आराम किया!” रात के डेढ़ बजे से लेकर रात के साढ़े नौ बजे तक पूरे बीस घंटे! मैं चकित रह गया। मद्रास के भाई हरिहर शर्मा से, जो उन दिनों वहीं थे, दूसरे दिन मैंने पूछा—“बापू इतनी मेहनत क्यों करते हैं?” उन्होंने तुरंत उत्तर दिया—“प्रायश्चित्तस्वरूप! हम सब लोग आलसी हैं, उसी का तो प्रायश्चित्त बापू कर रहे हैं!” —बनारसीदास चतुर्वेदी

★

केवल डाक्टर

अयोध्याप्रसाद गोयलीय

चालीस वर्ष पूर्व एक युवक कालेज से डाक्टरी की डिग्री लेने के बाद राय-बहादुर मथुरादास पाहुवा के पास उनका आशीर्वाद लेने पहुंचा, तो लाखों मनुष्यों को नेत्र-ज्योति का दान देने वाले उस सुविख्यात नेत्र-चिकित्सा-विशेषज्ञ ने ममता-भरे शब्दों में पूछा था—"कहो, साहबजादे! डाक्टरी से तुम क्या चाहते हो? धन-दौलत या यश और दुआएं?"

युवक नम्रतापूर्वक बोला—"मुझे धन की चाहत नहीं। मैं दिल्ली की गली-गली और कूचे-कूचे में अपना नाम चाहता हूं।"

डाक्टर पाहुवा ने युवक की पीठ थपथपाते हुए फर्माया—"शाबास बेटे! मगर यश और दुआ के लिए तुम्हें बहुत धैर्य और संयम की कसौटी पर खरा उतरना होगा। ऐसा भी होगा कि घर में जिस रोज भुनी भांग भी न होगी, उसी रोज नाजायज काम करने के लिए धन का प्रलोभन दिया जायेगा। उस प्रलोभन को ठुकराकर घर में भूखे पेट सो सके, तो तुम इस पेशे में अवश्य नाम कमाओगे। लेकिन मेरे बच्चे! मेरी एक बात गांठ बांध लो कि अपने किसी भी शत्रु से इस पेशे का लाभ उठाकर प्रतिशोध लेने का प्रयास न करना।"

युवक ने बात को कुछ और स्पष्ट करने की सविनय प्रार्थना की।

"साहबजादे! हर आदमी के शत्रु-मित्र होते हैं; किंतु डाक्टर को अपने शत्रु से भी मित्रता का ही व्यवहार करना चाहिये। मैं अपने ही जीवन की एक घटना सुनाता हूं। बहुत दिनों की बात है—मैं फर्स्ट क्लास में रेल-यात्रा कर रहा था और मेरे मुलाजिम के पास थर्ड क्लास का टिकिट था। संयोग की बात, जब टी. टी. आई. टिकिट चेक करने आया, तब मेरा मुलाजिम भी मेरे पास मौजूद था। मैंने बताया कि ट्रेन छूट जाने से यह अपने डिब्बे में वापस नहीं जा सका, अगले स्टेशन पर उतर जायेगा। इस पर टी. टी. आई. चुपचाप दूसरे डिब्बे में चला गया। किंतु कुछ समय के बाद वही टी. टी. आई. जब दुबारा मेरे डिब्बे से गुजरा, तो इत्तफाक से मुलाजिम किसी काम से फिर मेरे पास आया था। टी. टी. आई. यह देखकर आपे से बाहर हो गया। मेरे समझाने-बुझाने पर भी वह नहीं माना और मुलाजिम का फर्स्ट क्लास का किराया लेकर ही टला। क्रोध तो मुझे बहुत आया, किंतु कानून के आगे लाचार था।

"चार-पांच वर्ष बाद एक दिन अपनी क्लिनिक में रोगियों की पंक्ति में उसी टी. टी. आई. को देखा, तो मुझे वह घटना

याद हो आयी और मेरा चेहरा खुशी से चमक उठा। मैंने अपने मन-ही-मन में कहा कि बदला लेने का बहुत अच्छा अवसर है।

"लेकिन मेरे बच्चे, जब मैं उसकी आंखें फोड़ने के लिए आपरेशन थियेटर में घुसा, तो मेरा रोम-रोम कांप उठा। मैं पसीने से तर-बतर हो गया था। मेरे हाथों में औजार उठाने की ताकत नहीं रही। कोई मेरे कान में कह रहा था—तू इस वक्त मथुरादास नहीं, केवल डाक्टर है; मेज पर पड़ा हुआ आदमी टी. टी. आई. नहीं, केवल रोगी है। उसने अपनी ड्यूटी पर अपने कर्तव्य का पालन किया! तू अपना कर्तव्य पालन कर।

"नेत्र-ज्योति मिलने पर वह देखता ही रह गया। फिर रुंधे हुए कंठ से बोला—डाक्टर, तुम इंसान भी हो और फरिश्ता भी!"

युवक विदा होते समय विनम्रता से बोला—"बुजुर्गवार! आपकी इस नसीहत की मैं धरोहर की तरह रक्षा करूंगा।"

वही युवक आज डाक्टर के. एल. जैन बालरोग-विशेषज्ञ के नाते दिल्ली में ख्याति और दुआएं अर्जित कर रहा है।

★

गृहस्थी एक यज्ञशाला

कोई बीस साल पहले की बात है। एक गांव में एक किसान रहता था। उसके दो लड़के थे। कमल और विधु। कमल की नयी-नयी शादी हुई थी। उसकी पत्नी का विधु के साथ व्यवहार ठीक न था। इससे विधु धीरे-धीरे संसार से विरक्त हो गया। इसी बीच पिता की मृत्यु के बाद एक रात कमल ने कहा—"विधु, हम लोगों के बीच पिता-जी जो कुछ संपत्ति छोड़ गये हैं, उसे आपस में बांट लेना चाहिये। तुम अब जवान हो गये हो, गृहस्थी में प्रवेश करो।" किंतु विधु ने कहा—" भइया, मैं कुछ लेना नहीं चाहता और न मेरा इरादा घर में रहने का ही है। मैं एकांत चाहता हूं, जहां कुछ प्राप्त कर सकूं।" कमल ने मौन स्वीकृति दे दी। दस साल बाद विधु एक बहुत बड़ा महात्मा बन चुका था। एक दिन विधु कमल से मिलने आया। कुछ देर गप-शप होती रही। फिर महात्मा विधु को प्यास लगी। उसने कमल से कहा—"मुझे प्यास लगी है, पानी मंगवाइये।" कमल ने गंभीर होकर कहा—" विधु, तुम अब एक बहुत बड़े महात्मा हो। क्या तुम में इतनी शक्ति नहीं है कि यहीं बैठे-बैठे अपनी प्यास बुझा सको?" विधु ने कहा—"मुझमें अभी उतनी शक्ति नहीं है।"

"तब तो साफ जाहिर है कि तुममें तेज तो है, किंतु असहाय हो। देखो, मैं तुम्हें यहीं बैठे-बैठे पानी पिलाता हूं।" फिर उसने अपने छोटे लड़के से पानी लाने को कहा। लड़का दौड़कर पानी ले आया। विधु चकित था, इस सूझ पर। इस दृश्य को देखकर उसकी आत्मा का आवरण एक ही झोंके में उड़ गया। तब कमल ने कहा—"विधु गृहस्थी एक यज्ञशाला है। इस यज्ञ से जीवन पवित्र हो जाता है। अभी जो कुछ तुमने देखा, इसी यज्ञ का फल है।" विधु अब महात्मा नहीं रहा।

—राणा प्रताप सिंह

★

प्रचलित मान्यता यह है कि पुलिस से लड़ते-लड़ते अमर शहीद चंद्रशेखर आजाद ने आखिरी गोली अपनी कनपटी में मारकर मातृभूमि से सदा के लिए विदा ली थी। किंतु उस समय के सी. आई. डी. डिप्टी इंस्पेक्टर जनरल एस. टी. हालिस ने अपनी पुस्तक में कुछ और ही बयान दिया है।

खुफिया अफसर का बयान

चंद्रमाधव बाबू

मलिका विक्टोरिया की मृत्यु के बाद ही एक अंग्रेज नौजवान भारतीय पुलिस में भर्ती हुआ और सन १९४५ तक इस देश में काम करता रहा। जैसा उन दिनों कायदा था, अंग्रेज पुलिस अफसर की नियुक्ति डिप्टी से ऊपर नायब कप्तान के पद पर होती थी और कुछ ही वर्ष इस पद पर काम करने और अनुभव प्राप्त करने के बाद वह कप्तान बना दिया जाता था।

यह अंग्रेज नौजवान भी इसी तरह नियुक्त होकर उत्तर प्रदेश के इंस्पेक्टर-जनरल के पद तक पहुंचा। उसकी नौकरी के ४२ साल हिन्दुस्तान की आजादी की लड़ाई के भी सबसे मार्के के दिन थे और उन दिनों की घटनाओं को उसने सरकार के वफादार पुलिस अफसर के रूप में अक्सर काफी नजदीक से देखा।

अमर शहीद चंद्रशेखर आजाद की इलाहाबाद के एल्फ्रेड पार्क में (अब आजाद पार्क) मृत्यु होने के समय यह अंग्रेज अफसर उत्तर प्रदेश पुलिस का डिप्टी इंस्पेक्टर-जनरल और सी. आई. डी. विभाग का इंचार्ज था। सी. आई. डी. का मुख्य कार्यालय इलाहाबाद में ही था और इलाहाबाद हमारे राजनीतिक आंदोलन का भी बड़ा महत्त्वपूर्ण केंद्र था।

इसी अंग्रेज अफसर ने, जिसका नाम हालिस था, उन दिनों के अनुभवों के बारे में एक पुस्तक लिखी, जिसमें चंद्रशेखर आजाद की मृत्यु की समूची घटना का वर्णन है। कुछ बातों में यह वर्णन हमारे क्रांतिकारी नेताओं द्वारा किये गये वर्णन से मेल खाता है। फिर भी पाठक को यह उत्सुकता हो सकती है कि शासक जाति के उस सी. आई. डी. अफसर ने इस घटना के बारे में क्या बयान किया।

जिन दिनों हालिस उत्तर प्रदेश की सी. आई. डी. का डिप्टी इंस्पेक्टर जनरल

नियुक्त हुआ, उससे कुछ ही पहले वायसराय की ट्रेन पर दिल्ली के निकट बम फेंका गया था। बम के सारे सुबूत, बम फेंकने वालों के छिपने का स्थान आदि सारी जानकारी तो पुलिस को मिल गयी; लेकिन बम फेंकने वालों को वह पकड़ न सकी थी। बड़ी सरगर्मी के साथ उनकी तलाश की जा रही थी।

क्रांतिकारी आंदोलन को दबाने के लिए उत्तर प्रदेश सी. आई. डी. में विशेष रूप से एक कप्तान पुलिस की नियुक्ति की गयी थी। उसका नाम था नाट बावर। आजाद की मृत्यु तथा कई अन्य क्रांतिकारियों की गिरफ्तारी के लिए नाट बावर ही उत्तरदायी था। बाद में वह सर जान नाट बावर हुआ और लंदन की मेट्रोपोलिटन पुलिस का कमिश्नर।

हालिस के कथनानुसार, वह बड़ा उत्साही और मेहनती अफसर था। उसने आजाद तथा दूसरे क्रांतिकारियों के बारे में काफी जानकारी इकट्ठी कर ली थी। उनकी निजी आदतों और स्वभाव के बारे में भी छोटी-छोटी बातें उसे मालूम थीं। अपने दफ्तर में बैठकर हालिस और नाट बावर अटकलें लगाया करते थे कि कौन क्रांतिकारी कहां जाने वाला है और उसे कहां गिरफ्तार किया जा सकता है, पुलिस की किस कार्रवाही का उन पर क्या असर पड़ेगा और वे बदले में क्या करेंगे?

हालिस ने अपने बयान में कहा है:

उन दिनों हमने सभी बड़े स्टेशनों पर अपने खुफिया आदमी लगा रखे थे, जो हर समय यह देखते रहते थे कि कोई क्रांतिकारी तो उस स्टेशन पर नहीं उतरा या वहां से रेल में बैठा। किसी पर थोड़ा भी शक होते ही वह खुफिया सिपाही उसकी सूचना अपने अफसर को दे देता था। इस योजना में हमें काफी सफलता मिली। हालांकि वायसराय पर बम फेंकने वाले को हम गिरफ्तार नहीं कर सके थे; लेकिन सुराग हमें मिल चुका था। (और यह व्यक्ति और कोई नहीं प्रसिद्ध क्रांतिकारी यशपाल थे। —लेखक)

क्रांतिकारियों की गिरफ्तारी के लिए हमने इनामों की घोषणा कर दी थी और अपनी खुफिया आंखों की सहायता से आजाद के दो साथियों को रेलवे स्टेशनों पर गिरफ्तार कर चुके थे। दोनों के पास रिवाल्वर और कारतूसें बरामद हुई थीं और उनका टिकट इलाहाबाद तक का था।

उन्हीं दिनों क्रांतिकारी पार्टी की सदस्य दो महिलाएं—एक कलकत्ते से और दूसरी लाहौर से—इलाहाबाद पहुंचीं और यमुना के किनारे एक मकान में ठहरीं। दोनों का पीछा हमारे आदमी कर रहे थे।

नाट बावर से मैंने इन सारी बातों की चर्चा की और हम दोनों इस नतीजे पर पहुंचे कि इलाहाबाद में इन क्रांतिकारियों के जमघट का अर्थ है कोई भयंकर घटना घटने वाली है। उन महिलाओं को हमने जानबूझकर गिरफ्तार नहीं किया। (लाहौर से आने वाली महिला प्रसिद्ध क्रांतिकारी शहीद भगवतीचरण की पत्नी दुर्गादेवी थीं—लेखक)

आजाद की टोह में हम बराबर लगे हुए थे। कुछ ही दिन बाद की घटना है कि नाट बावर का एक डिप्टी, विशेश्वर सिंह एल्फ्रेड पार्क में सुबह की सैर को गया। उसने देखा एक बेंच पर एक तगड़ा आदमी अपने दो साथियों के साथ बैठा हुआ है। विशेश्वर सिंह ने उन्हें देखा और उसी दम उसे लगा कि वह तगड़ा आदमी और कोई नहीं, स्वयं चंद्रशेखर आजाद हैं।

विशेश्वर सिंह बिना रुके उसी तरह टहलता चला गया और आंख से ओझल हो गया। वह तेजी से पास ही बनी विश्वविद्यालय की इमारत में पहुंचा और वहां से नाट बावर को खबर भेजी कि एक तगड़ा आदमी, जो आजाद मालूम होता है, अपने दो साथियों के साथ एल्फ्रेड पार्क में बैठा है।

तीन खुफिया सिपाहियों के साथ नाट बावर तुरंत अपनी कार में बैठा और तेजी से मोटर दौड़ाता हुआ पार्क में पहुंचा। सड़क के किनारे की जमीन ढाल के साथ ऊपर उठी थी और वहीं उसने तीनों आदमियों को देखा, जिनमें से एक लंबे-चौड़े शरीर का मजबूत काठी वाला वही व्यक्ति था।

उस ऊंची जमीन के नीचे ही नाट बावर ने मोटर रोक दी। जेब में हाथ डालकर उसने मजबूती से अपनी पिस्तौल की मूठ पकड़ ली। वह सीधा उस व्यक्ति के सामने जा पहुंचा और उसका नाम पूछा। उस व्यक्ति ने फुर्ती से अपना रिवाल्वर निकाला। तुरंत, करीब-करीब एक साथ, दो गोलियां छूटीं। नाट बावर का पिस्तौल पहले दगा और गोली उस व्यक्ति के पैर में लगी, जिससे उसका निशाना चूक गया। दोनों ने फिर गोली चलायी। नाट बावर की गोली उसके सीने में लगी और उसकी गोली नाट बावर के बाजू को छेदती हुई निकल गयी। दोनों ने ही पेड़ों की आड़ ले ली।

यह सारी घटना कुछ ही सेकेंडों में घट गयी। खुफिया सिपाही इस बीच उन तीनों आदमियों के पीछे पहुंचकर अपना स्थान ले चुके थे। वहीं डिप्टी विशेश्वर सिंह भी पहुंच गया और एक झाड़ी के पीछे से उसने उस तगड़े व्यक्ति पर गोली चलायी। वह व्यक्ति गोली की आवाज पर पलटा और उसने अट्ठावन गज की दूरी पर डिप्टी सुपरिंटेंडेंट का सिर झाड़ी के ऊपर निकलता देखा। निशाना लेकर उसने रिवाल्वर चलाया और गोली डिप्टी के जबड़े पर जाकर लगी।

हालिस के अनुसार यह बड़ा उम्दा निशाना उसने लगाया था; लेकिन यही उसका आखिरी निशाना था। उसकी रिवाल्वर से अभी धुआं निकल ही रहा था कि एक खुफिया सिपाही की गोली उसके सिर में लगी और वह लुढ़क गया। इस प्रकार चंद्रशेखर आजाद, कमांडर, हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी का अंत हुआ।

हालिस का वर्णन यहीं समाप्त हो जाता है। उसने यह नहीं बताया कि आजाद के उन दो साथियों ने इस घटना में क्या हिस्सा लिया। क्या वे आजाद द्वारा भगा दिये गये? यदि भगा दिये गये, तो पुलिस ने उनका पीछा क्यों नहीं किया ?

★

खिलौना

○ नारायण गंगोपाध्याय ●

खोजते-खोजते वेणु उस दुकान पर भी आ पहुंची। सांझ गहरी होती जा रही है। पास के सिनेमा-हाल के सामने मोटरें खड़ी हैं। सामने होटल की दीवार पर नियोन की निर्लज्ज घोषणा—"लेट्स गो टु ......"

वुश शर्ट, सेलर शर्ट, ट्राउजर, कंविनेशनशू, सलवार, साड़ी। दो विदेशी नाविकों के साथ रास्ते पर ही दोस्ती करने की कोशिश कर रही है एक शीर्णदेह एंग्लो-इंडियन लड़की।

वेणु यहां, इस परिवेश में एकदम नहीं जंचती।

मीरा काउंटर पर झुककर 'कैश मेमो' काट रही थी। अस्पष्ट आंखें उठाकर ओंठों के किनारे एक अभ्यस्त मुस्कान लाते हुए उसने कहा —" वन मिनिट प्लीज।"

वैरा पैकेट वाहर की गाड़ी में रख आया। अब मीरा ने आंखें उठाते हुए कहा —"वेल मैडम, ह्वाट कैन आइ डू फार यू ?"

किंतु मैडम नहीं, वेणु ! एक ओर खड़ी-खड़ी वह राकिंग-हार्स देख रही थी। अब पास आयी।

"अरे तू ?" एकदम मातृभाषा में विस्मय छलक पड़ा। सचमुच, वेणु को मैडम नहीं कहा जा सकता। शरीर पर साधारण-सी डोरिया साड़ी और मैले छींट का ब्लाउज। पैरों में पुरानी मैली सैंडल। कंधे पर एक वड़ा थैला।

उज्ज्वल स्वस्थ हंसी हंसते हुए वेणु ने कहा—"वहुत दिनों वाद तेरी खवर लेने आयी हूं।"

वहुत दिन ! हां, सचमुच वहुत दिन हो गये। कालेज छोड़ने के बाद, चार वर्ष पहले रास्ते में उससे एक दिन मुलाकात हुई थी। कैसी है, कहां रहती है आदि पूछने के पहले ही सामने की ट्राम पर चढ़ गयी थी वेणु। उसने कहा था—" आज तो समय नहीं है मीरा, आफिस जा रही हूं। बाद में मुला-

चित्र : शेणै
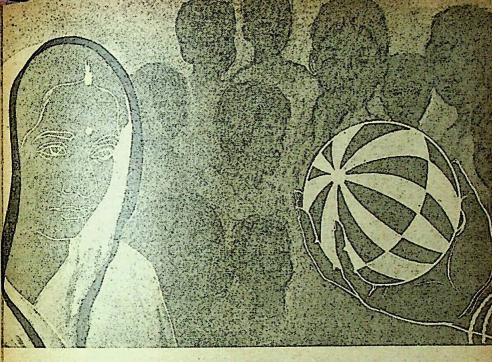
कात होगी।"

उसके बाद मुलाकात फिर आज हुई, चार वर्षों के बाद।

निरर्थक संकोच से साड़ी के आंचल को संभालते हुए मीरा ने कहा—"बैठ, बैठ!"

मगर अनुरोध करने की जरूरत नहीं थी। उसके पहले ही लोहे की एक कुर्सी खींचकर वेणु बैठ गयी थी, बोली—"बड़ी अच्छी जगह नौकरी मिली है तुझे, खिलौने की दुकान में!"

"नौकरी सब जगह एक-सी होती है। खिलौने की दुकान में हो, या जहाज कंपनी के आफिस में।"

कोई प्रतिवाद नहीं किया वेणु ने—"हां, सही कहा तूने। लेकिन फिर भी परिवेश का पार्थक्य तो है ही। ढेर-सी फाइलों से रंग-बिरंगे खिलौने कहीं बेहतर हैं—आंखों को अंततः आनंद तो देते हैं।"

आनंद नहीं, आंखों में दर्द होता है। कभी-कभी पागल की तरह सब तोड़-फोड़ डालने की इच्छा होती है उसकी। सेल्युलायड और प्लास्टिक के खिलौनों को टुकड़े-टुकड़े कर देने की इच्छा होती है—फेंक देने की इच्छा होती है मैकेनिक सेटों को, मैजिक कलर

अनुवाद : सुशील कुमार सोमानी

की किताबों को फाड़ डालने की आकांक्षा होती है—और एक अद्‌भुत कल्पना में वह सोचती है, यदि वह 'कार्क-गन' या 'शाट-गन' होती ....

किंतु घुटन और अवसाद की ये बातें वेणु को नहीं कही जा सकतीं। वेणु के चमकते दांतों में स्वस्थ मुस्कान है, आंखों में आनंद की झिलमिलाहट है।

मीरा ने पूछा—"तू अब भी नौकरी करती है क्या ?"

"हूं, बिना नौकरी के गुजारा कैसे होगा।"

"कहां ? वही रिहेबिलिटेशन ?"

"नहीं, नहीं। वह नौकरी तो कब की खत्म हो चुकी।"

"छोड़ दी तूने ?"

"अपनी इच्छा से आजकल कोई नौकरी छोड़ता है ?" वेणु की हंसी फीकी-फीकी लगती है—"और फिर अच्छे वेतन की नौकरी ? उन लोगों ने जवाब दे दिया भाई!"

"क्यों ?" प्रश्न करने के बाद ही मीरा ने सोचा, यह पूछने की कोई आवश्यकता नहीं थी। नौकरी क्यों चली जाती है, सोचने का आजकल कोई अर्थ नहीं होता। नौकरी क्यों रहती है, शोध का विषय तो यही है। इन चार वर्षों में खुद उसे तीन बार नौकरी बदलनी पड़ी।

लेकिन वेणु ने जवाब दिया—"ओवर-स्टाफ और राजनीति।"

अंतिम शब्द सुनते ही मीरा चौंक पड़ी। वेणु क्या अब भी कालेज की आदत नहीं छोड़ सकी है? क्या अब भी वह राजनीति में भाग लेती है ? इस दुकान के मालिक मिस्टर पालिया राजनीति के डर से हरदम सहमे-से रहते हैं।

"ओ।" निरुत्ताप एकाक्षर जवाब दिया मीरा ने। साड़ी उसके कंधे से फिसलने की कोशिश कर रही है।

उसकी एकदम कहने की इच्छा हुई कि तू आज जा वेणु, मैं बहुत व्यस्त हूं। किंतु कहने के पहले ही एक नये खरीदार के भारी जूतों की आहट मिली।

"वेल सर, ह्वाट कैन आइ डू फार यू ?"

वही स्वर, वही सुर। ठीक इसी लहजे में उसने वेणु को संबोधित किया था—ग्रामोफोन के रिकार्ड की तरह पुनरावृत्ति। सिर्फ सर और मैडम का पार्थक्य।

वेणु से दो हाथ दूर काउंटर पर झुका है वह आदमी। उम्र ४०-४५। पाउडर, पसीना और स्पिरिट जैसी एक गंध पंखे की हवा से सारे कमरे में फैल गयी। पीकर आया है वह।

एक बार उसे देखकर मुंह घुमा लिया वेणु ने। सामने की शेल्फ में हैं—मिकी माउस, डोनाल्ड डक.........

रास्ते पर से आता बैंजो का स्वर—एक लंबा, अंधा आदमी चला जा रहा है, एक फूलों की माला बेच रहा है—वेणु की तरह अस्वाभाविक।

म्यूजिक के रिकार्ड की तरह मीरा बोलती जा रही है। वेणु कुछ-कुछ सुन पा रही है।

"मैकेनिक सेट......बच्चों की इंटेलिजेंस बढ़ाते हैं।"

"नो, नो, वह नहीं"— शराब पिये गले की भरी-भरी आवाज—ब्लड-हाउंड की आवाज की तरह—"नया कुछ चाहिये, दोस्त के लड़के का जन्मदिन है।"

"यह 'कैट एंड द बाल' देखिये। चाबी देते ही यह बिल्ली बाल से खेलने लगेगी। जापानी है। कलकत्ते में सिर्फ हमारी दुकान में मिलती है। वेरी चीप—सिर्फ बीस रुपये।"

वेरी चीप—सिर्फ बीस रुपये! वेणु सोच रही थी—दो-एक पैसे का खिलौना कितने लोग अपने बच्चों के लिए खरीद पाते हैं! यह सियालदह, रथ के मेले का कलकत्ता नहीं है। यह दूसरा ही कलकत्ता है। सामने नियोन जल रही है—'लेट्स गो टु ......।' एक रात में कितना खर्च होता होगा यहां? रास्ते में वह आदमी अब भी फूलों की माला बेच रहा है। इन मालाओं की कीमत यहां कितनी होगी? दस रुपये? पांच रुपये? क्या मालूम?

नारायण गंगोपाध्याय

अन्यमनस्क हो गयी थी वेणु। हठात् उसने देखा, एक तीक्ष्ण हंसी हंस रही है मीरा—प्रतिदिन की अभ्यस्त हंसी। उस ओर एक बार देखकर ही वेणु को मिकी माउस की ओर नजरें घुमा लेनी पड़ीं। अधेड़ उम्र के उस आदमी की आंखों में थी आदिम क्षुधा की नग्न छाया। मीरा के कंधे से साड़ी कब की फिसल चुकी थी।

मिकी माउस की हंसी में तीव्र व्यंग्य था। मीरा के लिए एक कोमल सहानुभूति से वेणु का दिल भर उठा। नौकरी! इस नौकरी के लिए कितना भयंकर मूल्य चुकाना पड़ रहा है उसे।

नोट गिनने की खच्-खच्—कैश मैमो की खस्खस्—तीखी मुस्कान की एक झलक, मीठे स्वर से 'थैंक यू'—और उसके बाद, एक पैकेट लेकर भारी जूतों की वह आवाज चली गयी। पंखे की हवा में एक बार और फैल गयीं पसीना, पाउडर और स्पिरिट की वह मिली-जुली गंध।

"वेणु!" मीरा की आवाज आयी।

वेणु ने मुंह घुमाया—"बोल!"
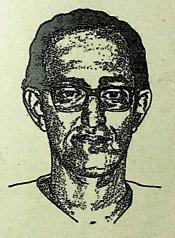
"अब अपनी खबर तो सुना। क्या कर रही है आजकल?"

"एक आश्रम बनाया है, रेफ्यूजी लड़कियों के लिए," वेणु ने स्वाभाविक होने की कोशिश की—"कुछ काम तो करना ही होगा, और फिर मेरा अपना संसार।"

"ठहर-ठहर।" मीरा मानो भूत देखकर चौंक पड़ी—"अपना संसार? ब्याह किया है तूने?"

"हां, किया है।" वेणु के ओंठों पर मुस्कान तैर गयी।

"किससे रे?" अद्‌भुत उत्तेजना में सारस की तरह गला बढ़ा दिया मीरा ने; आंखों के ऊपर सेलोफेन कागज-सा कुछ चमक उठा—"कौन है वह?"

"बहुत साधारण आदमी है, गांव के स्कूल का मास्टर।" वेणु के ओंठों में मुस्कराहट, जैसे गिरफ्तार हो गयी है—"दो बार बड़े घर की हवा खा चुका है।"

मीरा को फिर भी तसल्ली नहीं हो रही है। मन की आह को मन में ही दबाये फांसी की सजा सुनाने की तरह धीरे-धीरे उसने पूछा—"और, और बच्चा है?"

है, दो वर्ष का बेटा! खूब नटखट है।" वेणु के सांवले चेहरे पर लज्जा की तरंग दौड़ गयी।

टेबल से छिटककर पेंसिल नीचे जा गिरी। उसे खोजने के लिए काउंटर के नीचे डूब गयी मीरा। वेणु के सामने फिर से खड़े होने में उसे दो मिनट लगे। "तब तो तू बड़े मजे में है। एकदम गृहणी! बड़ी खुशी हुई।" काउंटर से हट गयी मीरा, सेल्फ से एक बाल ले आयी—"यह ले जा, बच्चे को देना।"

"नहीं, रहने दो।"

"क्यों? रहने क्यों दूं? तेरे बेटे को मैं दे रही हूं।"

"नहीं भई, बुरा न मानना, ऐसा नहीं हो सकता।"

"मौसी के नाते क्या मेरा इतना भी अधिकार नहीं कि मैं तेरे बच्चे को एक खिलौना दूं?"

"तू मुझे गलत समझ रही है। सिर्फ मेरा ही बच्चा नहीं, वहां और भी बीस बच्चे हैं। लेना हो तो सबके लिए लेना चाहिये। हम सभी एक ही आश्रम में रहते हैं न।"

"ओ!"

फिर चुप्पी। बाहर रिकार्ड पर कोई धुन बज रही है। चौरंगी की मदिर संध्या गहरी होती जा रही है। एक अधेड़ उम्र की एंग्लोइंडियन महिला ने दुकान में प्रवेश किया।

"इतनी देर कर दी तुमने मिस पार्कर? तुम्हारे कारण एक कप चाय तक मैं न पी सकी।"

"खेद है। अब तुम जा सकती हो। तुम्हारी छुट्टी।" मिस पार्कर मीरा के पास आकर खड़ी हुई।

मीरा ने अपना बैग हाथ में लिया। पाईथन के नकली चमड़े का बैग। फिसलती साड़ी को उसने फिर से संभाला—"चल वेणु!"

वेणु शायद बाहर ही जाना चाहती थी। वह साथ-साथ उठ खड़ी हुई और मीरा के पहले ही बाहर चली गयी।

आंखों से इशारा किया मिस पार्कर ने, कौन है वह?

"मेरी दोस्त।"

"उसे भी बर्बाद कर रही हो।" एक तीखी-सी मुस्कराहट दिखाई दी पार्कर के ओंठों पर।

"बेकार की बातें मत करो!" धीरे-से

धमकी दी मीरा न।

थोड़ी ही दूरी पर था रेस्तरां और बार। मीरा ने कहा –" चल चाय पियें।"

"यहां ?" वेणु संकुचित हुई। 'स्पोर्ट्स मेन' की भावना वाली दुस्साहसी वेणु घबरा उठी। मीरा को खुशी हुई उसकी घबराहट देखकर।

"डर लग रहा है तुझे ?"

"नहीं, डर नहीं कहा जा सकता।" वेणु ने थोड़ा ठहरकर फिर कहा–"ऐसे रेस्तरां में चाय आदि पीने का अभ्यास नहीं है न !"

"चाय पीने में अभ्यास-अनभ्यास का कोई प्रश्न नहीं उठता। चल !" कांच के दरवाजे को ठेलकर दोनों ने अंदर कदम रखा। एक बार वेणु ने चारों ओर निगाह दौड़ायी। इधर-उधर जो देशी-विदेशी नारी-पुरुष बैठे हैं, सबके सामने रंगीन ग्लास रखे हुए हैं। और फैली हुई है चारों ओर स्प्रिट और चुरुट की एक मिश्रित गंध।

वेणु इस परिवेश में नहीं जंचती–एकदम नहीं। जो बैरा उनकी ओर आ रहा है, उसकी आंखों में विस्मय छलक रहा है

सिर झुका लिया वेणु ने। इसी अवसर पर मीरा की आंखें बैरे से मिलीं–"नहीं नहीं, वह सब नहीं !" वेणु को सुना-सुनाकर मीरा कह रही है–"दो चाय और कटलेट!"

वेणु ने सिर उठाया–" कटलेट क्यों ? चाय ही काफी है।"

"सिर्फ चाय पियेगी ? इतने दिनों बाद मुलाकात हुई है तुझसे........"

वेणु ने बात नहीं बढ़ायी ! सिर झुकाये

मातृत्व : विनोद राउतराय

बैठी रही। एक अपरिचित कलकत्ता। मीरा की दुकान में ही नहीं, यहां भी चारों ओर खिलौने नजर आ रहे हैं। रंगीन, चटकदार। रंगीन ग्लासों के सामने जो बैठी हैं, वे भी खिलौने-सी लग रही हैं। सचमुच वेणु यहां एकदम नहीं जंचती–एकदम नहीं।

वेणु सिर झुकाये कार्पेट की ओर देख रही है चुपचाप। उसे याद आ रहा था, कालेज में यही मीरा 'नटीर पूजा' में श्रीमती की भूमिका में स्टेज पर उतरी थी। उस दिन कितनी शुचि-स्मित लग रही थी–आज भी वेणु के कानों में गूंज रहा है–"बुद्ध, खमतु मे, खमतु मे।" किंतु आज सब बदल गया है।

"तुम्हारा वह महिला आश्रम कहां है ? कलकत्ते में ?" मीरा ने पूछा।

"नहीं, कलकत्ते से बाहर। बेलगछिया से जाना पड़ता है।"

"गांव में ? असुविधा नहीं होती ?"

"थोड़ी-बहुत असुविधा तो होती ही है। कलकत्ते की सुविधाएं तो वहां नहीं मिल सकतीं। रेफ्यूजी लड़कियों के साथ काम करती हूं। सब किस्म की बाधाओं से गुजरना पड़ता है?"

चाय ले आया बैरा।

"ले पी।" ...... "क्या हुआ ?"

"कुछ नहीं।" हठात् एक अशोभन प्रश्न कर बैठी वेणु—"अच्छा, इस चाय का बिल कितने का होगा ?"

नकली, अंकित भ्रू दोनों जुड़ गये मीरा के—"ये सब व्यर्थ के प्रश्न क्यों ?"

"यों ही पूछ रही थी। कितने का होगा?"

"कितने का? यही ढाई-तीन रुपये।"

"ढाई-तीन रुपये !" वेणु मानो अपने आप से कह रही थी—"ढाई-तीन रुपये में तो मेरे आश्रम के बच्चों के लिए एक वक्त का दूध आ जाता।"

मीरा के शरीर पर मानो चाबुक पड़ा। वेणु क्या उसे आघात पहुंचाना चाहती है ? व्यंग्य करना चाहती है ? क्रोध से, अपमान से मीरा गुम होकर बैठी रही। फिर सेलोफ़ोन कागज की तरह उसकी आंखें चकचक कर उठीं।

"संसार में करने के लिए बहुत अच्छे काम हैं। लेकिन सब कोई, सब काम नहीं कर सकता।"

"ठीक कह रही है तू।" वेणु ने बुझे स्वर से कहा, प्रतिवाद नहीं किया। उसके बाद चाय को जल्दी-जल्दी पीकर उसने कहा—"तू धीरे-धीरे पी मीरा। मैं जाती हूं।"

"ऐं! क्या हुआ तुझे?" पूछा मीरा ने।

"सात बज गये हैं। आठ बजे की ट्रेन पकड़नी होगी। वहां बहुत काम-काज हैं। फिर मेरा बच्चा भी रोना शुरू कर देगा।"

मीरा का मुंह काला हो गया—"अच्छा, जा तू।"

"गुस्सा मत होना।" वेणु कहने लगी—"क्या करूं भई, कोई उपाय नहीं है। सिर्फ एक बात कहने आयी थी। तू तो अच्छे वेतन की नौकरी कर रही है। कुछ सहायता कर न गरीब शरणार्थियों की।"

थोड़ी देर पहले ही वेणु ने उस पर चोट किया था, अब उसकी बारी है।

"इस महीने में कुछ नहीं कर सकूंगी।" मीरा कहने लगी—"दो नयी साड़ियां खरीदनी है। न्यू मार्केट में देख रखी हैं।"

मैला ब्लाउज और डोरिया साड़ी पहने हुई वेणु ने कहा—"ठीक है, तो बच्चों के लिए कुछ खिलौने ही 'डोनेट' कर दे।"

गले के स्वर में यथासंभव तिक्तता मिलाकर मीरा ने कहा—"दुकान मेरी नहीं, मिस्टर पालिया की है। उनकी चीजों को लेकर चैरिटी करने का अधिकार मुझे नहीं है।"

बड़ी निर्लज्ज है वेणु, फिर भी नहीं टली—"ठीक है, तो अगले महीने कुछ रुपये ही दे देना। मैं फिर आऊंगी।" दरवाजे की ओर जाती हुई, मुड़कर उसने फिर कहा—"बुरा मत मानना मीरा, मुझे आठ बजे की ट्रेन पकड़नी ही होगी।"

तनिक देर के लिए हिंस्र कुटिल आंखों से मीरा दरवाजे की ओर ताकती रही। चाय

ठंडी हो गयी है। अद्भुत तीक्ष्ण कंठ से मीरा ने पुकारा—"ब्याय !"

वेटर के आने के पहले ही न जाने कहां एक पंजावी युवक आ टपका। वेणु की परित्यक्त कुर्सी पर बैठ गया वह, मीरा को पहचानता था। उसकी ओर देखकर मीरा के ओंठों के किनारे एक हिंस्र रक्तिम मुस्कान फूट पड़ी। यह मुस्कान दुकान के खरीदारों ने कभी नहीं देखी थी—वेणु ने भी नहीं।

और डेढ़ घंटे बाद।

सिर्फ चारों ओर नियोन ही दप-दप करके नहीं जल रही है—मीरा के खून में भी आग जल रही है, आंखें भी जल रही हैं— किंतु उधार ली हुई उज्ज्वलता नहीं है इन आग लगी आंखों में। ये आंखें वेणु ने नहीं देखी हैं—देखने की हिम्मत भी नहीं है उसमें।

सहसा मीरा को जोर से हंसने की इच्छा हुई। आश्रम ! वेलगछिया ! अंधेरे रास्ते पर पुरानी कावुली सैंडल को घसीटती-घसीटती वेणु अव भी चल रही होगी। दूर से अपने वच्चे के रोने की आवाज सुन पा रही होगी वह। और यहां, यहां कितनी रोशनी है—कितनी रोशनी ! इतनी रोशनी में तो खोयी सूई भी मिल जाती है। लेकिन, लेकिन—मीरा के गले में जैसे एक कांटा विंध रहा हो – इतनी रोशनी होने पर भी एक परिचयहीन शिशु किस अनाथाश्रम में खो जाता है, वह किसी को भी मालूम नहीं।

हठात् चौंककर रुक गयी मीरा। सामने ही उसकी दुकान है। अब बंद हो गयी है। केवल शो-केस की उज्ज्वल रोशनी में जगमगा रहे हैं कुछ खिलौने—एक डॉल, दो मैकेनिक सेट, कुछ प्लास्टिक के छोटे-छोटे खिलौने, एक कार्क-गन।

खिलौनों की ओर देखकर न जाने क्यों मीरा का दम घुटने लगा। वेण के लिए ये खिलौने नहीं हैं। किंतु जो शिशु किसी अनजान अनाथाश्रम में बढ़ रहा है, उसका भी क्या कुछ अधिकार नहीं है इन पर ?

एक गूंगी यंत्रणा से चिल्ला उठने की इच्छा हुई उसकी। उसका मन आर्तनाद कर उठा। वेलगछिया जाने की अव भी कोई ट्रेन है क्या ? अब भी क्या आशा कर सकती है वह ? अव भी दौड़कर वह क्या वेणु को कह सकती है......

नहीं, नहीं कह सकती। बहुत अंधेरा है वहां। उस अंधकार में वेणु चल सकती है, मीरा नहीं। यहां चारों ओर रोशनी है—यह रोशनी उसके खून में शराब के नशे की तरह खेल रही है। इसके हाथ उसे मुक्ति नहीं मिल सकती। मृत्यु को आत्म-समर्पण करने के पहले इसी तरह, इस रोशनी के चारों ओर चक्कर काटते पतंगे की तरह परिक्रमा करते रहना होगा उसे।

उस अंधकार के अंत में एक आश्रम है। और इस रोशनी के अंत में ? इस उज्ज्वल निर्लज्जता के अंत में क्या है मीरा के लिए ?

अभी तो वह सिर्फ कांच के शो-केस को फोड़ सकती है, चकनाचूर कर सकती है कार्क-गन को। किंतु उसे यह भी मालूम है कि इससे केवल धुंआ और आवाज निकल सकती है, और कुछ नहीं—कुछ नहीं ......।
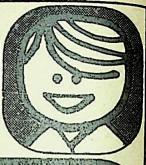
★

विमलेंदु सरकार

आत्मविश्वास जब डिगने लगे

ऐसा मत सोचिये कि आप ही दुनिया में पहले आदमी हैं, जिसका आत्मविश्वास डिग गया है।

चीजों को सही परिप्रेक्ष्य में देखने की कोशिश कीजिये। अपनी दृष्टि में इतने अधिक महत्त्वपूर्ण न बन जाइये कि तनिक-सी भी विफलता आपके अभिमान को आहत कर दे।

ऐसा मत सोचिये कि दूसरे लोगों की दुष्टता या परिस्थितियों की प्रतिकूलता ने आपको सफल नहीं होने दिया है।

यह स्वीकार करने के लिए तैयार रहिये कि शायद आपने ही असावधानी बरती थी; या कि आपकी तैयारी पर्याप्त नहीं थी; या शायद आप ज्यादा चिंतित और व्यग्र हो उठे थे।

ऐसा न समझ बैठिये कि इस विफलता का अर्थ कयामत है।

इस बात को हृदयंगम कीजिये कि लगातार कई छोटी-छोटी सफलताएं प्राप्त करके टूटे आत्मविश्वास को फिर जोड़ा जा सकता है। सो छोटे कामों को पूरी मुस्तैदी और दक्षता से कीजिये; बड़े काम भी ठीक होने लगेंगे।

ऐसा न समझ बैठिये कि यह कोई गोपनीय और शर्मनाक स्थिति है।

इस बात को हृदयंगम कीजिये कि यही वह समय है, जब सहारे और प्रोत्साहन की आवश्यकता होती है। सो अपनी पत्नी, किसी अंतरंग मित्र या हितैषी बुजुर्ग के सामने अपना दिल खोलकर रखिये। इससे दिल की घुटन निकल जायेगी; और उनकी सहानुभूति दिल को बल देगी।

अपनी छोटी-छोटी भूलों को, गलतियों को, विफलताओं को बहुत तूल मत दीजिये। न अपनी असमर्थता और हताशा को सींच-सींचकर बड़ा कीजिये।

इस तथ्य को समझिये कि हर आदमी के जीवन के दो पहलू होते हैं — एक जो स्पृहणीय है, दूसरा जो स्पृहणीय नहीं कहा जा सकता। अच्छे पहलू को याद कीजिये और खुदा का शुक्र मनाइये।

★
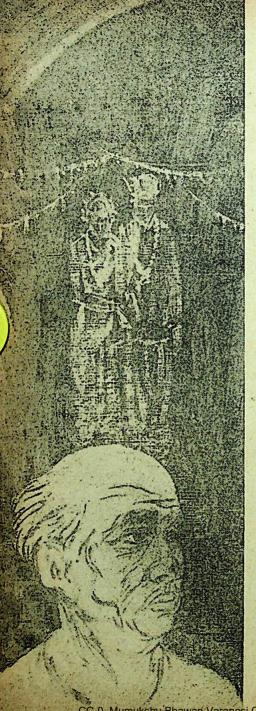
उस दिन बेहद गर्मी थी। मौसम की पहली वर्षा नहीं हुई थी और लगन के दिन शुरू हो गये थे।

बाहर सहन में छिड़काव हो रहा था। पानी पड़ने से धूल का एक छोटा-सा बादल उठता और सोंधी गंध चारों ओर फैल जाती। सजावट वाले गमलों की हरी पत्तियां चमकने लगी थीं, हालांकि उनके सिरे झुके हुए थे और उनमें ताजगी नहीं आ पायी थी।

वेदी के चारों कोनों पर लगे केले के पत्ते अभी से मुरझाने लगे थे, जबकि विवाह की पूरी रात सामने थी। उन्हें जोड़ने वाली लाल-हरी झंडियां जरूर सदाबहार फूलों की तरह मुस्करा रही थीं। मकान के आगे भी रंग-बिरंगे कागजों की झंडियां झालरों की तरह बांधी गयी थीं। उत्सव का उल्लास मौसम की उदासी और बेचैनी के ऊपर उभरकर फैल रहा था।

बेले के पौधों पर पानी पड़ा तो लोगों को एक सुगंधित रात का आश्वासन-सा मिला। गौरी बाबू ने सुवास-भरी एक लंबी सांस खींची और अपने अंदर हल्की-सी कमजोरी महसूस की। उन्हें कन्यादान करना था और उन्होंने दिन-भर उपवास किया था। कमजोरी महसूस हो रही थी, लेकिन वे उसे भूले हुए थे। इकलौते बेटे की पहली बेटी का विवाह था। उमंगों और अरमानों का दिन।

बेले की सुगंध गौरी बाबू को अक्सर बीते दिनों की याद दिला जाती है। फुरसत की घड़ी हो तो और ज्यादा। अतीत उनकी आंखों में सपने-सा तैर गया। अपनी शादी

अप्रैल

• निर्मला ठाकुर •

...... अपनी पत्नी ...... शिवेन का जन्म ...... शिवेन के जन्म के कुछ ही दिनों बाद पत्नी की मृत्यु ...... गौरी बाबू ने एक बकरी खरीद ली थी और एक नौकरानी घर में रख ली थी...... गुनिया ...... एक सुंदर स्त्री ...... उसके लिए गौरी बाबू को कितना अपवाद सहना पड़ा था ...... अध्यापक थे ...... ब्राह्मण थे .... कर्मकांडी .... भर्त्सना का सामिष ग्रास उनके गले में अटक-अटक जाता था और घृणा से उनका मन छटपटा उठता था ...... लेकिन दिवंगत पत्नी को दिया गया वचन ...... बेटे के लालन-पालन की प्रतिज्ञा ...... गंगाजल के घूंट की तरह शांति देने वाली वह प्रतिज्ञा उनके आत्मबल को अक्षुण्ण रखती रही ... नहीं तो गौरी बाबू अपवाद से बचकर बेटे का मोह छोड़कर कहीं निकल जाते ...... संन्यास ले लेते...... लेकिन उनकी प्रतिज्ञा सफल हुई ...... शिवेन फल-फूल रहा है...

बेटी के विवाह में व्यस्त शिवेन को देखकर गौरी बाबू का मन उल्लसित हो उठा। कैसा लगता है। शिवेन के मुंह पर जितनी व्यग्रता है, उतना ही संतोष है; जितना संतोष है, उतनी ही चिंता है; जितनी चिंता है, उतनी ही प्रसन्नता......और उसकी पत्नी माया को देखो ...... उसके आगे-पीछे सहायता करते हुए संबंधियों और परिजनों के हाथ हैं, खुशी से मुस्कराते हुए चेहरे हैं और उत्तरदायित्व से भरे हुए उदास हृदय हैं ...

माया की अपनी कोई देवरानी नहीं, लेकिन शिवेन के मित्र जोशी की पत्नी सरला स्नेह से उसके इतने निकट आ गयी है कि सगी देवरानी ही हो। और सरला की बेटी......

"चाची, मीनू के पैरों में आलता लगा दें ना ?" सरला की बेटी कुसुम ने आकर पूछा। माया कुसुम की ओर ममता से देखकर बोली–"हां-हां, लगा दो।" वह अकेली संभाले भी क्या-क्या ! फिर, खुशी तो बांटने लायक चीज है–जैसे सुगंध। फिर भी कितनी व्यस्तता ! सरला बार-बार आती है–दीदी, दीपक में बाती चाहिये......दीदी, कोई नया कपड़ा दे दो ...... दीदी, रंगी हुई पांच सुपारियां चाहिये, पंडितजी मांगते हैं ...... कभी-कभी मजाक भी कर जाती है–दीदी, इस साड़ी से काम नहीं चलेगा। जमाई सबसे पहले तुम्हें ही तो देखेंगे। अच्छी रेशमी साड़ी पहन लो ......

"चुप छोटी!" वह सरला को प्यार से छोटी ही कहा करती है।

इतने में ही कोई भंडार का इंतजाम जानने आ जाता है– औरतों के लिए नाश्ते की कितनी तश्तरियां चाहिये?...... आंगन और बरामदे में दरियां बिछ गयीं या नहीं?...... माया चारों तरफ देखती है। सबकी सुनती है...... गौरी बाबू घर में फिरकी-सी नाचती पुत्रवधू को देखते हैं। फिर बाहर-भीतर आते-जाते पुत्र पर निगाह पड़ती है। धोती-कुर्ते में कितना सुंदर लग रहा है शिवेन! चमकता हुआ माथा, मीठी स्वच्छ मुस्कान ......

गौरी बाबू ने मीनू के होने वाले पति को अभी नहीं देखा। शिवेन ने ही रिश्ता तय कर लिया है। वे मन-ही-मन प्रार्थना करने लगते हैं कि मीनू का वर भी ऐसा ही हो। सुंदर, स्वस्थ, प्रतिभाशाली......जैसा उनका शिवेन है......शिवेन ने सोच-समझकर ही संबंध किया होगा......आगे मीनू का भाग्य। गौरी बाबू चिंतित हो जाते हैं। लेकिन तभी कोई काम याद आ जाता है या कोई बुलाने आ जाता है। बारात आने का समय हो गया है, चिंता का समय नहीं है।

गौरी बाबू उठकर बाहर आ गये। शामियाने में टेबल-कुर्सियां लग गयी थीं। पान के वर्क लगे बीड़े से लेकर अल्पाहार और गद्दी-मसनद का इंतजाम देखते-देखते संध्या गहराने लगी। शहनाई की मीठी करुण ध्वनि इक्के-दुक्के संध्या-तारे को अपनी मोहिनी से धरती की ओर खींचने लगी। आमंत्रित मेहमान आने लगे। सजी-संवरी स्त्रियों से घर का आंगन भर गया। बातचीत का शोर समुद्र की लहरों की तरह उठने-गिरने लगा। हंसी की सुरीली घंटियां समुद्र-तट पर के किसी देव-मंदिर की याद दिलाने लगीं। अंदर की व्यवस्था माया देख रही थी, बाहर मेहमानों का स्वागत गौरी बाबू कर रहे थे और शिवेन कामकाज की दौड़धूप में कभी बाहर आते, कभी भीतर जाते।

बारात आने का समय कब का हो गया। बारात अभी तक आयी क्यों नहीं? गौरी बाबू के मन में आशंका की पहली लहर कांप गयी। आये हुए मेहमानों ने जैसे अपनी आवाज में जोर से गौरी बाबू का प्रश्न दोहराया–" भई, वक्त तो हो गया, बारात क्यों नहीं आयी?"

"आती ही होगी।" शिवेन ने उत्तर दिया। लेकिन मन उसका भी डोल गया। शादी का मुहूर्त टला जा रहा था। बात क्या हुई? सभ्य और शालीन लोग हैं वे। अकारण आना स्थगित तो कर नहीं सकते। फिर क्या बात है? शायद रास्ते में कार खराब हो गयी हो, या और कुछ ......

गौरी बाबू की बेचैनी प्रतिपल बढ़ती जा रही थी। सबसे अधिक उन्हीं का मन आशंकित था। कहीं ऐसा तो नहीं कि ...... वे सोचते-सोचते सहम गये।

आत्मीय, मित्र और आमंत्रित अतिथि तरह-तरह के तर्क करने लगे–कार खराब हो गयी होगी...... आज गर्मी बहुत थी, हो सकता है, बारात के किसी व्यक्ति की तबी-

यत खराब हो गयी हो ...... आ जायेंगे, लंबी यात्रा में देर हो ही जाती है ......

आंगन में भी हास-परिहास के बीच शंका की नोक चुभने लगी। स्त्रियों को वस्त्राभूषणों की चर्चा में रस नहीं रहा। पिछले विवाहों की घटनाओं के वर्णन में उत्साह नहीं रहा। फिर भी समय काटने के लिए जैसे जबर्दस्ती बातें करती रहीं। माया के मन में तो आंधी उठ रही थी। वह आंगन के एक एकांत और अपेक्षाकृत अंधेरे कोने में बैठ गयी थी। अगर आज रात बारात नहीं आयी, तो उसकी निर्दोष बेटी कल से सबकी आंखों में संदिग्ध हो जायेगी। लोग तमाम तरह की बातें बनायेंगे। किस-किस का मुंह पकड़ा जायेगा? और आगे कोई दूसरा रिश्ता ढूंढ़ना पड़ा तो ......?

धीरे-धीरे कानाफूसी बढ़ने लगी। जितने मुंह, उतनी बातें—शायद रुपये-पैसे के किसी झंझट के कारण लड़की वालों ने शिवेन को नीचा दिखाया है ...... कहीं लड़की में तो कोई अवगुण नहीं .... आजकल क्या ठिकाना है ...... भले घरों की लड़कियां भी आजकल तो ...... तिथि-मुहूर्त ठीक करके बारात नहीं लाने का कुछ कारण तो अवश्य ही होगा ......

गौरी बाबू सब सुन रहे थे और इधर से उधर चक्कर काट रहे थे। अचानक उनके पांव रुक गये। एक फुसफुसाहट शामियाने की कनात के उस पार सुनायी दी—कहीं ऐसा तो नहीं कि गुनिया वाले प्रसंग ने यह गुल खिलाया हो?
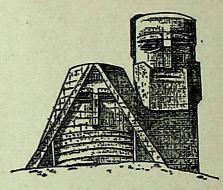
वृद्ध दंपति : सर्गेई बर्दासर्यान

गौरी बाबू जैसे आसमान से गिरे। लड़खड़ा गये। बड़ी कठिनाई से स्वयं को संभाल पाये। उन्हें ऐसा लगा, जैसे यह फुसफुसाहट उन पर सैकड़ों कोड़े बरसा गयी हो। बालक शिवेन को पालने के लिए रखी गयी नौकरानी गुनिया के कारण उन्हें क्या-क्या नहीं सुनना पड़ा था—लेकिन आज? और इस समय? हे ईश्वर! वे अंधेरे में हो गये। अपराधियों की तरह बचते हुए ऊपर छत पर चले गये। उनका कमरा अंधेरा था। अंधेरे में ही अपने बिस्तर पर जा पड़े और जीवन में पहली बार धैर्य खोकर फूट-फूटकर रोये।

नीचे शहनाई की गूंज क्रमशः मंद होते-होते चुप लगा बैठी। शिवेन का कोई हितैषी सुझाव दे रहा था—"खबर लाने के लिए कार लेकर किसी को भेजिये, शायद रास्ते में कोई दुर्घटना हो गयी हो ...... ।"

आकाश में बड़ा-सा उजला चंद्रमा निकल आया। चांदनी ठंडी होकर नीचे उतर आयी। बेले के फूल पूरी तरह खिल गये। उनकी

सुगंध चारों ओर फैल गयी– लेकिन अब उस शोभा और सुगंध की ओर कोई ध्यान नहीं दे रहा था।

बच्चे ऊधम मचाकर, थककर सोने लगे थे। वयस्कों के चिंतातुर चेहरे उनके उल्लास में बाधक बन गये थे।

"सभी तो जा रही हैं।" सरला ने माया के पास आकर चिंतातुर स्वर में कहा। महिलाओं को विरक्त, खिन्न मन से उठते देखकर माया अपनी जगह से उठ आयी। उन्हें रोकने, बिठा लेने का रत्ती-भर भी उत्साह उसके मन में नहीं बचा था। उसका शरीर डोल रहा था। हृदय की धड़कनें अस्वाभाविक रूप से बढ़ गयी थीं। चेहरा सफेद हो रहा था। हाथ-पैर ठंडे होकर पसीज रहे थे। उसने सरला का हाथ पकड़ लिया– "छोटी, मीनू ?"

सरला ने चौंककर उसे थाम लिया– "दीदी ! कैसी लग रही हो ? लोग खबर लाने गये हैं। कुछ ही देर में कोई खबर आ जायेगी। सब ठीक होगा। चलो, तुम आराम करो।"

माया ने फिर दबे स्वर में पूछा–"मीनू ?"

"मीनू को क्या होगा ? अच्छी-भली बैठी है। उसकी सब सहेलियां बैठी हुई हैं। तुम तो बेकार इतनी परेशान हो रही हो। रात अभी बीत तो नहीं गयी ? पंडितजी कहते हैं कि बारह बजे के बाद फिर मुहूर्त है। मेरा मन कहता है कि सब ठीक होगा। रास्ते में कोई बात हो गयी होगी। चलो, चलो तुम ......।"

सरला ने माया को छोटी बच्ची की तरह यत्न से बिस्तर पर लिटा दिया और बोली–"लेटी रहो। तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं लग रही है। तुम थक गयी हो। बारात आयेगी। तो तुम्हें उठा दूंगी।" कहकर सरला ने बत्ती बुझा दी; माया की आंखों से आंसू बहने लगे। अंधेरे में तकिये में मुंह गड़ाकर वह रोने लगी।

बाहर शिवेन के एक मित्र कह रहे थे– "मेहमान उठने लगे हैं, उनका कुछ स्वागत-सत्कार हो जाता, तो ......"

शिवेन ने अपने मित्र की ओर इस तरह देखा, जैसे पहचान नहीं पा रहे हों। दिमाग सुन्न हो रहा था। अपमान, दुःख और लज्जा से उनका चित्त ठिकाने नहीं था। बोले– "किसका स्वागत-सत्कार ? किस खुशी में ?"

मित्र मुंह देखने लगे। लेकिन तभी कोई दौड़ता हुआ आया–" आ गये ! आ गये! बारात आ गयी।"

जैसे जादू-सा हो गया। क्षण-भर पहले जो घर-बाहर मानो किसी के शाप के पथरा गया था, जीवंत हो उठा। जाते-जाते लोग ठिठक गये। लौट पड़े। खामोशी टूट गयी। स्त्रियां जो चुप थीं, फिर बोलने लगीं। शहनाई जो बजते-बजते बंद हो गयी थी, फिर बज उठी। चांदनी जो काटने लगी थी, फिर शीतलता बरसाने लगी। हवा जो रुक गयी थी, फिर चल पड़ी। सुगंध, जो मर गयी थी, फिर जी उठी।

सरला ने माया को जगाया –"दीदी .... दीदी ...... उठो ...... बारात आ

गयी। उठो, मैं कहती थी ना ?"

"कितने बज गये ?" माया ने अविश्वास के स्वर में पूछा। सरला झुंझला गयी, पागल हुई हो ? उठो ना। मीनू की बारात आ गयी। अभी तो बारह भी नहीं बजे, उठो। सुनो, शहनाई बज रही है।"

माया ने सुना। शहनाई सचमुच बज रही थी।

ऊपर गौरी बाबू ने सुना कि सचमुच शहनाई ऊंचे स्वर में बज रही है। कोलाहल जाग उठा है—भीतर-बाहर। अव्यक्त प्रसन्नता से उनका हृदय जड़ हो गया। नीचे आते हुए उन्होंने पूछा—"क्या हुआ था ? इतनी देर क्यों हुई ?"

"कितनी गर्मी थी दिन में। दोपहर में ये लोग रास्ते के उस बंगले में रुक गये थे। फिर दिन ढलने पर चले तो कार खराब हो गयी। अब सभी पहुंच चुके हैं। जनवासे से नहा-धोकर आ ही रहे होंगे।" किसी ने उत्तर दिया।

धीरे-धीरे लोग जुटने लगे। वातावरण फिर हास-परिहास से मुखरित होने लगा। थोड़ी देर पहले हठात् जो नाटक में व्यवधान हो गया था, वह मानो किसी कुशल संकेत से हट गया। दृश्य फिर जीवित हो उठे। ब्याह के मधुर गीतों ने अर्धरात्रि के नीरव स्वच्छ आकाश को गुंजा दिया।

"जो भी हो, दामाद है आपका सोने का टुकड़ा। जैसी योग्यता, वैसी ही शिष्टता। सुंदर व्यक्तित्व। इकलौती बेटी के लिए उपयुक्त वर ढूंढ़ा है आपने।" सुन-सुनकर शिवेन बाबू मुस्करा देते।

सभी अनुष्ठान शीघ्रता से संपन्न होने लगे। समय कम था। गौरी बाबू जब कन्यादान करने लगे तो उनके हृदय में प्रसन्नता भरी थी और आंखों में आंसू।

चित्र : भाऊ समर्थ

सरला ने माया से परिहास किया—"जमाई इतना सुंदर है तो समधी भी सुदर्शन होंगे ही। समधी को देखा या नहीं दीदी ? जरूर पसंद करोगी!" माया ने उसे आंखों से धमकाया कि ससुर सामने बैठे हुए हैं।

सभी अनुष्ठान समाप्त होते-होते सुबह हो गयी। जब विधिवत् विवाह समाप्त होने पर वर-वधू पैर छूने आये तो गौरी बाबू को लगा कि वे पूर्णकाम हो गये हैं।

बारात लौट गयी थी। स्वागत-सत्कार से समधी संतुष्ट थे, बारात के अन्य बंधु-बांधव भी प्रसन्न थे।

तीसरे पहर घर के सभी लोग थके-मांदे विश्राम करने लगे। गौरी बाबू बाहर वाले कमरे में बिछी हुई दरी पर ही लेट गये थे।

बादल घिरे आ रहे थे। ठंडी-ठंडी हवा के झोंके लगे तो नींद गहरी हो गयी। बहुत देर बाद संजू ने आकर उन्हें जगाया –"दादा जी उठिये। आइये, आपको एक चीज दिखायें।"

उठकर बाहर आ गये। अनोखी ताजगी लग रही थी। इस बीच मूसलाधार वर्षा हो चुकी थी। एक दिन पहले की उमस का नामोनिशान नहीं था। पेड़-पौधे धुलकर निखर गये थे। आकाश में अभी भी बादलों के छोटे-छोटे टुकड़े उड़ रहे थे। ठंडी हवा के झोंकों से शरीर में सजगता आ रही थी। पूरब में इंद्रधनुष निकल आया था।

"देखिये, कितना अच्छा इंद्रधनुष निकला है। है ना?"

खूब प्रसन्न होते हुए उन्होंने पोते को चूम लिया–"जरूर। बहुत सुंदर है! अब तुम इसके रंगों को गिनो। देखो कितने हैं। गिनकर बताओ तो?"

संजू रंग गिनने लगा –"बैंगनी, आसमानी ...... आसमानी ही है ना, दादाजी? नहीं? फिर? ...... नीला? अच्छा, नीला के बाद आसमानी ...... उसके बाद हरा ...... फिर पीला...... ओह! दादाजी, देखिये ना, वह तो मिटने लगा! कितना खराब है!"

उन्होंने उत्सुकता से पूछा– "नहीं तो खराब क्यों होगा?"

"अभी था, अभी खत्म! इंद्रधनुष बहुत खराब है। दो मिनट में खत्म!" संजू ने मुंह बिसूरकर कहा।

"नहीं मुन्ने," उन्होंने अपने पोते के कंधे को थपथपा दिया–"चांद-सूरज भी तो हमेशा हमारे सामने नहीं रहते। वे क्या खराब हैं। इंद्रधनुष मिट गया तो फिर उगेगा, कितने सुंदर रंग थे इसके ...... देखा?"

लेकिन पोते के कंधे को जकड़ती हुई उनकी उंगलियां एकाएक कांपने लगीं। रात के सभी दृश्य एक-एक करके सामने आने लगे। लगा कि रात संजू-सा ही कोई उनके मन में हाहाकार कर रहा था।

★

एक दिन खलीफा हारूनल रशीद का बेटा गुस्से से भरा हुआ आया और अपने पिता से कहने लगा–"फलां सिपाही के लड़के ने मुझे गाली दी है।" मंत्रियों में से किसी ने सिपाही के लड़के को जेल में डालने की सलाह दी, तो किसी ने सूली पर चढ़ा देने की। मगर खलीफा अपने शहजादे से बोला–"बेटा! सबसे अच्छा तो यह है कि तुम उस लड़के को क्षमा कर दो। और अगर तुममें इतना उदार होने की शक्ति न हो, तो तुम भी उसे गाली दे डालो!"

ooo

शेख सादी की हालत उन दिनों इतनी खस्ता थी कि पैरों में जूते तक नहीं रह गये थे। एक दिन किसी मस्जिद में गये, तो देखा कि दरवाजे पर बैठे एक आदमी के पैर ही नहीं हैं। उनकी आंखें खुल गयीं। उस रात प्रार्थना के समय उन्होंने ईश्वर को धन्यवाद दिया–"ऐ खुदा! तेरा कितना बड़ा उपकार है कि तूने मेरे दोनों पैर तो सलामत रखे हैं।"

★

• कल्पना भार्गव •

पुराने जमाने से वैद्यों और दादी अम्माओं की जानी-पहचानी कई जड़ी-बूटियां आज अचानक ही वैज्ञानिक महिमा से मंडित हो उठी हैं। एशिया के अनेक देशों में देसी दवा के रूप में प्रचलित जेन्शेन् भी उन्हीं में से एक है। अचानक ही जेन्शेन् की जड़ को प्राचीन चीन के सम्राट् जीवनामृत मानते थे और कामोद्दीपक औषध के रूप में उसका सेवन करते थे।

यों तो जेन्शेन् थोड़ी-बहुत एशिया के हर हिस्से में मिलती है, लेकिन कोरिया में इसकी खेती सबसे ज्यादा होती है। वैज्ञानिक ढंग से इसकी जांच-परख और इसके विविध उपयोगों का प्रचार करने का श्रेय भी कोरिया को ही है।

पिछले बीस-पच्चीस वर्षों में जेन्शेन् पर इतना काम हुआ है कि पश्चिमी जगत में इसके औषधीय तत्त्वों पर बहुत ध्यान दिया जाने लगा है। साथ ही इसका व्यापार भी बहुत बढ़ा है। आज संसार-भर में प्रतिवर्ष १।। लाख किलोग्राम जेन्शेन् की खपत होती है, जिसकी ४० प्रतिशत पूर्ति अकेला कोरिया करता है। पिछले साल उसे जेन्शेन् के निर्यात से ४।। करोड़ रुपये की आय हुई।

जेन्शेन् है तो एक जड़ ही, लेकिन गाजर, मूली या शकरकंद की तरह इसका उपयोग आहार में नहीं होता। मगर इससे इतनी तरह की चीजें बनती हैं कि आप आश्चर्य करेंगे—दवाइयों में काम आने वाले सत, सार आदि तो इससे निकलते ही हैं, चाय,

सिगरेट और शराब भी इससे बनती हैं।

सन १९६८ में कोरिया ने प्रयोग के तौर पर जेन्शेन् से बनी सिगरेटों के दस हजार कार्टन हांगकांग को निर्यात किये थे। लोगों को ये सिगरेटें इतनी पसंद आयीं कि एकाएक बाजार में इनकी मांग बढ़ गयी। और आज दक्षिणी कोरिया में हर साल लगभग चार करोड़ अदद सिगरेटें बनती हैं, जो यूरोप और अमरीका के बाजारों में बिकती हैं। इसी तरह जेन्शेन् की चाय भी लोकप्रिय होती जा रही है।

यूरोप में जेन्शेन् के विविध उपयोग खोज निकालने के लिए प्रयोग और परीक्षण किये जा रहे हैं। डेन्मार्क में उससे साबुन बनता है। पश्चिम जर्मनी उससे शैम्पू, लोशन, टानिक और पेय पदार्थ बनाने के लिए प्रयत्नशील है। स्विट्जरलैंड में तो इससे बनी 'पैराटोन' नामक बलवर्द्धक दवा काफी लोकप्रिय हो गयी है। अन्य देशों के भेषज-विज्ञानी और चिकित्सक कैन्सर के इलाज और विकिरण के दुष्प्रभावों को दूर करने में इसकी उपयोगिता की जांच कर रहे हैं।

चीन के जड़ी-बूटी-विज्ञ तो बहुत पुराने जमाने से अनेक प्रकार के रोग-चिकित्सा में जेन्शेन् का प्रयोग करते आ रहे हैं। अब नयी खोजों से पता चला है कि इसमें बीस से अधिक जैव-रासायनिक सक्रिय तत्त्व होते हैं, जिनमें से कुछ हैं—सैपोनाइन, ग्लिसिकोड, टर्टेन, विविध अल्कलाय्ड, अमीनो एसिड, विटामिन बी और सी, विभिन्न नाइट्रोजन यौगिक। ये मानव-शरीर की चयापचय-क्रियाओं को सीधे-सीधे प्रभावित करते हैं। कोरिया विश्वविद्यालय के जीव-रसायनशास्त्री प्रो० किम ताइ-होन के अनुसार, जेन्शेन् में एंजाइम की वृद्धि और निरोध दोनों की शक्ति होती है। इससे शरीर का केंद्रीय नाड़ी-संस्थान, हृदय, रक्तवाहिकाएं और मूत्राशय उत्तेजित भी हो सकते हैं और शांत भी। शरीर में प्रोटीन पैदा करने में भी जेन्शेन् सहायक होती है।

अब तक विश्व के विभिन्न देशों के विज्ञानियों ने कुल मिलाकर ६०० से अधिक शोध-पत्र प्रकाशित कराये हैं। पश्चिम जर्मनी के मुन्शेन विश्वविद्यालय का वनस्पति शोध-संस्थान जेन्शेन् के औषधीय तत्त्वों के विश्लेषण में विशेष दिलचस्पी ले रहा है।

लेकिन जेन्शेन् के उत्पादन और निर्यात की भांति शोधकार्य में भी कोरिया सबसे आगे है। लगभग तीन वर्ष पहले वहां जेन्शेन की टिकियों और पेय पदार्थों पर परीक्षण प्रारंभ हुए थे। आज वहां जेन्शेन् की त्रिविध परीक्षा की जा रही है — १. उसके वास्तविक औषधीय गुण क्या हैं? २. उसके और सारतत्त्व कैसे प्राप्त किये जायें? ३. उससे निकाले गये पदार्थों का औषधीय स्थायित्व क्या है?

जेन्शेन् कोई मामूली पौधा नहीं कि उसकी जड़ आसानी से हासिल हो जाये। उसे उगाना बड़ी सूझबूझ और धीरज का काम है। मिट्टी ऐसी हो कि उसे आप न

ज्यादा उपजाऊ कह सकें, न एकदम बंजर। यह पौधा न ज्यादा धूप सह सकता है, न ज्यादा बारिश, इसलिए उसके ऊपर छप्पर छाना जरूरी है। मौसम सारे साल मासूम रहना चाहिये और ऊपर से तुर्रा यह कि बुआई के बाद फस्ल काटने के लिए पांच या सात साल सब्र करना पड़ेगा। उसी जमीन में अगर दूसरी फस्ल लेनी हो, तो पंद्रह साल तक जमीन को परती छोड़ना पड़ेगा।

लेकिन इतनी मेहनत और प्रतीक्षा का प्रतिफल इतना मिलता है कि कृषक मालामाल हो जाये। कोरिया की धरती पर उगने वाली सबसे ज्यादा महंगी चीज शायद यही है। वहां इसकी वार्षिक उपज लगभग ५०० टन होती है। और दक्षिण कोरिया में तो उस पर सरकार का एकाधिकार है, जैसे कि तंबाकू और शराब पर है। कोरिया से जितना जेन्शेन् निर्यात होता है, उसके ४४ प्रतिशत का ग्राहक तो अकेला हांगकांग ही है। उसके बाद जापान है, तैवान है, सिंगापुर है, अन्य देश हैं।

जेन्शेन् की बढ़ती हुई लोकप्रियता को देखते हुए चीन, जापान, भारत और नेपाल में भी उसे उगाने और निर्यात करने के बारे में सोचा जा रहा है। लेकिन अन्य देशों की जेन्शेन् कोरियाई उपज का मुकाबला नहीं कर पाती और उसकी अपेक्षा आधे दामों पर बिकती है।

★

क्या आपका बच्चा कम सुनता है ?

यदि आपको तनिक भी ऐसा प्रतीत हो कि शायद आपके बच्चे को कम सुनाई देता है, तो अपने आपसे ये प्रश्न पूछिये :

- जब आप उससे बात करते हैं तो क्या आपको ऊंचे स्वर में बोलना पड़ता है ?
- जब आप बोल रहे होते हैं, क्या वह गौर से आपका चेहरा देखता रहता है ?
- क्या वह रेडियो बहुत जोर से बजाकर सुनना पसंद करता है?
- क्या वह अपने हमउम्र बच्चों जितनी जल्दी नये शब्द नहीं सीख पाता ?
- क्या वह शब्दों का लगातार गलत उच्चारण करता है ?
- क्या वह अक्सर आपकी बात सुनते समय 'ऐं?' 'क्या?' 'क्या कहा?' आदि कहा करता है?
- क्या उसे दूर से आने वाली तेज आवाजें भी सुनाई नहीं पड़तीं ?

और यदि इन प्रश्नों के उत्तर 'हां' में मिलें, तो तुरंत बच्चे को कान के विशेषज्ञ के पास ले जाकर पूरी जांच कराइये। जितनी जल्दी करें, उतना ही अच्छा। बच्चों की बधिरता सही समय पर सही इलाज से अक्सर दूर हो जाती है। —'पैरेंट्स मैगजीन'

★
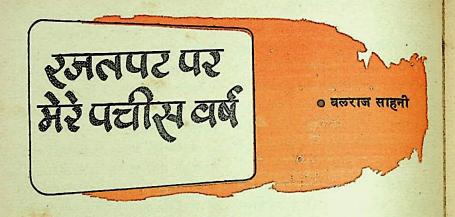
फिल्मों में काम करते हुए मुझे पच्चीस वर्ष हो गये हैं। अब तक सवा सौ से ऊपर फिल्मों में काम कर चुका हूं। ऐसे मौके पर जश्न मनाना बहुत उपयुक्त और सौभाग्यपूर्ण समझा जाता है। लेकिन पता नहीं क्यों, मेरे दिल में जश्न मनाने का उत्साह नहीं है।

कालेज के दिनों में, मेरे अंग्रेजी के प्रोफेसर और 'ड्रामा सोसायटी' के डायरेक्टर श्री अहमद शाह बुखारी ने मुझसे एक बार कहा था—"तुम्हारे अंदर ऐक्टर बनने के सभी गुण हैं; लेकिन साथ ही एक बड़ी खामी भी है कि तुम बहुत सुस्त हो।" आज भी यही सुस्ती, जो मेरे स्वभाव का अमिट अंग है, मुझे जश्न मनाने से हतोत्साह कर रही प्रतीत होती है।

मेरे प्रोफेसर साहब ने ठीक ही कहा था। मुझे अच्छी तरह याद है कि मेरे स्वभाव में बचपन से ही सुस्ती चली आयी है। इसका कारण भी मैं बखूबी जानता हूं।

मैं अपने माता-पिता के यहां उन दिनों जनमा था, जब वे पुत्र का मुंह देखने की आशा लगभग छोड़ चुके थे। इसलिए मुझे जरूरत से ज्यादा लाड़-प्यार मिला, और वह लाड़-प्यार मेरे लिए कैद बन गया। पेड़ पर न चढ़ो, क्योंकि गिरकर टांग-बांह टूटने का खतरा है। पतंग न उड़ाओ, असावधानी में मोटर, तांगे के नीचे आ जाने का खतरा है। गली-मोहल्ले से निकलकर ज्यादा दूर न जाओ, क्योंकि चोर-ठग बच्चों को उठाकर ले जाते हैं।......

इन बंदिशों के कारण मेरा अधिकांश समय घर की चहारदीवारी में ही गुजरता था। शायद इसीलिए मैं संकोचशील और झेंपू किस्म का बन गया। और शायद इसीलिए मेरी रुचि कहानियों, कविताओं, उपन्यासों में इस हद तक बढ़ गयी थी। मेरे चरित्र का वह बहिर्मुखी विकास न हो पाया,

जो अभिनेता के लिए बहुत सहायक सिद्ध होता है।

पुस्तकों से, भाषाओं से मुझे हमेशा खास प्यार रहा है। वाल्मीकि रामायण मैंने बारह साल की उम्र में संस्कृत में पढ़ी थी। मुझे संस्कृत के श्लोक बहुत अच्छे लगते थे। पंचतंत्र की कहानियों ने कहानियां सुनने और लिखने का शौक मुझमें पैदा किया।

बंगला लिपि मैंने अपने घर में ठहरे हुए एक साधु से सीखी, जो मुझे बहुत ही सुंदर लगी। मेरे पिताजी की उर्दू की लिखावट थी कि जैसे मोती पिरोये हुए हों। अंग्रेजी लिखते समय भी उनका हाथ बहुत साफ होता था। इसका भी मुझ पर प्रभाव पड़ा।

अब भी मेरी बड़ी लालसा है कि मैं हिन्दुस्तान की सारी भाषाएं लिख और बोल सकूं। बंगला, मराठी, तमिल आदि सीखने के लिए मैंने कुछ मेहनत की भी है; लेकिन संकोची स्वभाव के कारण बोलते समय बड़ी कठिनाई पेश आती है। मेरे कई ऐक्टर दोस्त बड़ी आसानी से ये भाषाएं बोल लेते हैं, हालांकि सीखने के लिए उन्होंने मुझसे आधी मेहनत भी नहीं की है।

स्कूल और कालेज की शिक्षा ने भी मेरी साहित्यिक रुचियों को ही ज्यादा बढ़ाया था। कालेज की ड्रामा सोसायटी में तो मैं इसलिए चला जाता था कि मुझे कुदरती तौर पर अच्छे नाक-नक्शे वाला चेहरा और ऊंचा-लंबा सेहतमंद शरीर मिला हुआ था। मैं जब भी कोई फिल्म देखने जाता, तो लौटने पर आईने में अपने आपको देखकर मुझे ऐसा लगता था, जैसे मेरी शक्ल फिल्म के हीरो से बहुत हद तक मिलती-जुलती है।

अपने सुंदर होने का वहम ही मुझे कालेज की ड्रामा सोसाइटी में खींचकर ले जाता था। मेरा शौक सच्चा और दिल से निकला हुआ नहीं था। इसीलिए प्रोफेसर बुखारी मुझे सुस्त कहते थे।

पिताजी धनवान थे। इसलिए एम. ए. पास करने के बाद नौकरी ढूंढ़ने और उसे अपने बाकी जीवन का सहारा बनाने की मुझे कोई मजबूरी नहीं थी। इसीलिए मैं एक जगह टिककर नहीं रह सकता था। मैंने एक-दो साल तक पिताजी के साथ व्यापार किया। फिर एक-दो साल तक शांतिनिकेतन में शिक्षक बनकर रहा। फिर सेवाग्राम गया। फिर लंदन गया। फिर बंबई लौटकर फिल्मों में काम करने लगा।

मुझे रोजगार की इतनी ज्यादा चिंता नहीं थी, सो रोजी कमाने के लिए मुझे अच्छे मौके मिल जाते थे। पूंजीवादी व्यवस्था में धन कमाने और उन्नति करने के मौके उसे ज्यादा मिलते

रजत-जयंती पर आत्मनिरीक्षण

हैं, जिसे पैसे की ज्यादा परवाह न हो। जो पैसे की मजबूरी में बंधा हुआ हो, उसकी सारी उमंगें बस हसरतें बनकर रह जाती हैं।

मैं शायद फिल्मों में भी ज्यादा देर तक न रहता, अगर १९४७ में देश के बंटवारे के कारण मुझे पिताजी की धन-दौलत के आश्रय से वंचित नहीं होना पड़ता। उनकी सारी जमीन-जायदाद पाकिस्तान में रह गयी थी। अब अपने पांवों पर खड़ा होना जरूरी था।

अपने पांवों पर खड़े होने के संघर्ष ने मुझसे कई और काम भी कराये। मैंने फिल्म्स-डिविजन की डाक्युमेंटरी फिल्मोंकी कामेंटरी बोली, विदेशी फिल्मों की हिन्दी 'डबिंग' में भाग लिया, और स्वर्गवासी गुरुदत्त द्वारा निर्देशित पहली फिल्म 'बाजी' की पटकथा और संवाद लिखे। यह फिल्म कामयाब हुई थी। तब, उसके निर्माता चेतन आनंद ने मुझे एक फिल्म लिखने और उसका निर्देशन करने के लिए कहा। आज मुझे अफसोस होता है कि चेतन आनंद की इतनी अच्छी पेशकश मैंने क्यों न कबूल की।

उन्हीं दिनों, जिया सरहदी की फिल्म 'हम लोग' बहुत कामयाब हुई थी, जिसमें मैंने मुख्य पात्र की भूमिका की थी। तब मुझे लगा कि मैं निर्देशक के बजाय अभिनेता बनकर ज्यादा पैसे कमा सकता हूं और ज्यादा आसानी से भी। वैसे मैं समझता हूं कि अच्छा पटकथा-लेखक और निर्देशक बनने की शक्ति मुझमें थी।

साहित्य के क्षेत्र में मैंने कला के संबंध में जो बातें सीखी हैं, उन्होंने मुझे अपने अभिनय को अच्छा बनाने में काफी मदद दी है। इसे देखते हुए मैं कह सकता हूं कि वे बातें अच्छा निर्देशक बनने के लिए और भी फायदेमंद साबित हो सकती हैं। उन बातों का संबंध यथार्थवादी मूल्यों से है।

यथार्थवाद का अमृत-पान मैंने कालेज के दिनों में ही कर लिया था— अंग्रेजी साहित्य के अध्ययन द्वारा। यथार्थवाद का मतलब है—कला में लंबाई, चौड़ाई और गहराई, तीनों आयामों का होना। लंबाई और चौड़ाई पेश करना आसान है, गहराई पैदा करना बहुत मुश्किल है। और कला में महानता इस तीसरे आयाम द्वारा ही आती है। इस तीसरे आयाम को हम गति भी कह सकते हैं।

गति जीवन का मूल गुण है। जैसे सूरज में प्रतिक्षण अणु-विस्फोट होता रहता है, वैसे ही हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में भी लगातार अणु-विस्फोट होता रहता है। प्रतिक्षण परिस्थितियां बदलती रहती हैं, और उनके अनुसार हम भी प्रतिक्षण बदलते रहते हैं। यह गति जिस लेखक की कहानी में जीवन की हूबहू पूरी तस्वीर बनकर सामने आयेगी, वही कहानी सफल होगी। उसमें प्लाट का होना जरूरी नहीं है। जीवन किस प्रकार एक बिंदु से दूसरे बिंदु तक, एक पड़ाव तक चलकर गया, यह बात पाठकों को जरूर रोचक लगेगी।

लेखक जीवन के किसी छोटे टुकड़े का वर्णन करे, या विशाल टुकड़े का, उसे इस गति को ध्यान में रखना होगा। चेखोव अपनी कहानियों में छोटे-छोटे टुकड़े लेता

है, ताल्स्ताय अपने उपन्यास 'युद्ध और शांति' में बहुत विशाल टुकड़ा लेता है; लेकिन दोनों की सफलता का रहस्य एक ही है। पाठक उस जीवन के बारे में सिर्फ पढ़ता ही नहीं, उसे जीता भी है।

मुझे कालेज के जमाने में ही अपने देश के साहित्य (जितना कि उस समय मैंने पढ़ा था), कला और फिल्मों में इस तीसरे आयाम का अभाव प्रतीत होता था। इन तीनों क्षेत्रों में मुझे हर चीज एक चौखटे में बंद नजर आती थी। उस चौखटे में लंबाई और चौड़ाई तो थी, गहराई नहीं थी।

हिन्दी फिल्में मुझे आज भी इस दृष्टि से नकली और निर्जीव प्रतीत होती हैं। उनमें जीवन के यथार्थ और गति की कमी है। वे अस्वाभाविक और जोड़-तोड़कर बनायी गयी कहानियों के चौखटों में बंद होती हैं। उनमें न स्वाभाविक गति होती है, न पात्रों का विकास होता है, और न ऐसी परिस्थितियां ही होती हैं, जिनमें पात्रों का चरित्र-चित्रण हो सके।

मजबूरी ने मुझे फिल्म-अभिनेता बनाया, तो मेरे स्वभाव की सुस्ती और परस्पर विरोधी बातों ने मेरे रास्तों में कई बहुत बड़ी अड़चनें खड़ी कर दीं। लेकिन अंग्रेजी साहित्य से मैंने जो रोशनी हासिल की थी, मुझे लगातार रास्ता दिखाती रही।

अगर मुझे कुदरती तौर पर अभिनय-प्रतिभा मिली होती, तो मैंने जो कुछ दस सालों में सीखा, वह दस महीने में सीख सकता था। मैं अपने इर्द-गिर्द कई ऐसे साथियों को देखता हूं, जो अभिनेता बनते ही कुछ ही देर में मुझसे कहीं आगे निकल गय। अब उन तक पहुंचने के लिए मुझे कछुए की तरह धीरे-धीरे लगातार चलना पड़ रहा है। वैसे मैं उन साथियों का देनदार हूं कि उन्होंने उदाहरण बनकर मुझे आगे बढ़ने और उन तक पहुंचने की प्रेरणा दी है।

इन पच्चीस वर्षों में क्या मैं अपनी मंजिल पर पहुंचा हूं? मेरी सुस्ती आज भी उसी तरह कायम है। मैं आज भी उसी तरह अंतर्मुख हूं। इसीलिए फिल्मों में काम करने पर भी मैं फिल्मी दुनिया के वातावरण में अपने को अजनबी-सा महसूस करता हूं। जब भी अपनी कोई पुरानी फिल्म देखता हूं, तो दिल में टीस-सी उठती है —"काश, यह रोल दुबारा करने का मौका मिल सके। तब मेरे काम में कितनी खामियां थीं!"

लेकिन एक बात का संतोष मुझे जरूर है कि इन पच्चीस वर्षों में मैंने हर प्रकार की भूमिकाएं की हैं। अस्वाभाविक कहानियों और अन्य कई प्रकार की बंदिशों के बावजूद मैंने उन सभी भूमिकाओं में गति लाने की कोशिश की है, उन्हें जीने की कोशिश की है। मैं किसान भी बना हूं, मजदूर भी, पूंजीपति भी, सिपाही भी, फौजी अफसर भी, पठान भी, क्लर्क भी, और पता नहीं क्या कुछ। अगर मैं अपनी हर भूमिका में पूरा यथार्थ पेश नहीं कर सका, तो उसे पेश करने की भरपूर कोशिश मैंने जरूर की है।

फिर भी, मैं सोचता हूं कि अगर चेतन आनंद के कहने पर, लेखन और निर्देशन के

क्षेत्र में उतर पड़ता और उन मूल्यों के लिए संघर्ष करता, जो मेरी नजर में महत्त्वपूर्ण हैं, तो इस समय शायद ज्यादा संतुष्ट होता और खुद को ज्यादा भरा हुआ पाता।

आज फिल्मों में वह मोड़ लाने का समय आ गया है, जो आज से बीस साल पहले लाना संभव नहीं था। अगर मैं निर्देशक बन गया होता, तो मैं आज फिल्मों से रिटायर होकर, कहीं एकांत में साहित्य-सेवा करने का सपना देखने के बजाय, फिल्मों में और ज्यादा काम करना चाहता और ऐसी फिल्में बनाता, जिनमें प्रतिक्षण अणुविस्फोट होता, जिस प्रकार कि सूरज में हो रहा है।

लेकिन यह सब सोचने से क्या फायदा? और चाहे कुछ भी कर सकूं, इन बीते हुए पच्चीस वर्षों को फिर से नहीं जी सकता। सो, यहीं कहूंगा कि चलो, जितना नहाया, उतना पुण्य कमाया। और फिर......

गालिबे खस्ता के बगैर कौन-से काम बंद हैं?
रोइये जार-जार क्यों, कीजिये हायहाय क्यों?

★

सौभाग्यफल चारुता

कलाकार रेखा, पत्थर, आकार या लय नहीं खोजता, किसी आंतरिक रम्यता को खोजता है; ललित साहित्य का सर्जक कवि शब्द नहीं खोजता, बल्कि इस जीवन में अनेकानेक बुद्‌बुदों में अन्वित सत्य को खोजता है। यह सत्य उसे बौद्धिक विश्लेषण से या तर्क के आयास से नहीं मिलता, अपितु कल्पना से प्राप्त होता है और कल्पना बुद्धि का उच्चतम स्वरूप है।

सर्जक कल्पना का ही नाम प्रतिभा है; उसे अतिदिव्यता का चोला पहनाने की आवश्यकता नहीं—सर्जक कल्पना में भावना, मनःप्रसाद, संकल्प, स्मृति, तर्क, ज्ञान, विद्या आदि सभी आंतरिक शक्तियों का समन्वय होता है। इनमें से किसी भी शक्ति का कल्पना में निषेध नहीं, बल्कि इन सभी शक्तियों का विनियोग उसमें हो सकता है। इसीलिए ललित साहित्य वैयक्तिक सृजन होने के साथ-साथ व्यक्तिमत्ता का प्रतिबिंब भी होता है। रेखा, लय, पत्थर, शब्द—ये सब कल्पना के अधीन हैं, कल्पना को मूर्त करना इनका सहज क्रिया-धर्म है।

प्रतिभा या सर्जक कल्पना का पकड़ा हुआ सत्य कोई कोरा बौद्धिक पदार्थ नहीं, रूक्ष मत्यर्थ नहीं, तत्त्वविद्या का सार या शुष्क सूत्र नहीं। वह दर्शन है; चीज या वस्तु नहीं, अपितु भाव है। इसमें अनुप्रवेश, इसकी आंतरिक अनुकृति संभव है। कला द्वारा पड़ने वाला इसका संस्कार उषा के उजाले की तरह, वसंत की हवा की तरह, श्रावण की वर्षा की तरह सर्वांगस्पर्शी होता है। निर्माण और निबंधन की चारुता या औचित्य पूर्वोक्त कल्पना को सफल और सर्वसाधारण की संपत्ति बना देता है।

—विष्णुप्रसाद त्रिवेदी (विख्यात गुजराती साहित्य-विवेचक)

★

लैला खालिद
विमान-हरण की विशेषज्ञ

● चारुमित्रा

एक लैला वह थी, जिस पर फिदा होकर मजनूं मियां दीवाने हो गये थे और जिसके किस्से पूरब के लोगों ने बहुत सुने हैं। फिलस्तीन के हैफा नगर में अप्रैल १९४४ के किसी दिन एक दूसरी लैला का जन्म हुआ। इस लैला की विशेषता यह है कि यह लैला खुद फिदा है, मगर मजनूं पर नहीं, फिलस्तीन पर। इसका पूरा नाम है लैला खालिद। लेकिन इसके साथ इसे शादिया अबू-गजली भी कहते हैं।

शादिया भी फिलस्तीन पर फिदा थी और फिदाई में गेरिल्ला सैनिक बन गयी थी। वह २१ बरस की उम्र में अक्टूबर १९६८ में यहूदियों की गोलियों से मर गयी थी। लैला खालिद ने अपने असली व्यक्तित्व को छिपाने के लिए अपना नाम तो शादिया रख ही लिया, उसके व्यक्तित्व को भी पूरी तरह ओढ़ लिया, मानो वह शादिया के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना और उसे अमर बनाये रखना चाहती हो।

लैला खालिद फिलस्तीनी अरबों के फिदाईन संगठन में गेरिल्ला सैनिक है और दुनिया ने उसका नाम तब जाना, जब ६ सितंबर १९७० को वह एक विमान भगाने की कोशिश में नाकाम होकर इंग्लैंड में पकड़ी गयी और उसके पीछे उसके साथियों ने कई अमरीकी विमानों को भगाकर उनके यात्रियों को पकड़ लिया और वे लैला की रिहाई की शर्त लगाकर बैठ गये।

जी हां, यह २६ वर्षीया सुंदरी विमान-दस्यु है। यह हवाई-जहाजों को भगा लेती है। इसने पहला विमान पिछले साल २९ अगस्त को भगाया था। लैला यह खतरनाक काम क्यों करती है और वह विमान-दस्यु क्यों बन गयी है? यह एक कहानी है।

लैला खालिद की कहानी मार्च १९४८

से शुरू होती है। उस समय वह केवल चार बरस की थी। यह वह समय था जब फिलस्तीन प्रदेश में इजरायल के नये यहूदी राज्य की स्थापना की गयी थी। लैला का परिवार हैफा में रहता था। उसके पिता कोई मालदार आदमी तो नहीं थे, लेकिन उनका अपना मकान था और चंद दुकानें, जिनके किराये से कुछ आमदनी होती थी। पिता कपड़ा बेचते और एक छोटा-सा कहवा-घर चलाते थे। इजराय़ल की स्थापना होते ही अरबों और यहूदियों में झगड़े-फसाद शुरू हो गये। लैला कहती है–"मुझे वह दिन याद आता है, जब हमारे घर की सीढ़ी के नीचे एक आदमी पड़ा था, उसके चेहरे से खून बह रहा था। मां कहती है कि वह वहीं मर गया। वह उन्हीं दंगों का शिकार था।"

उस दिन लैला के पिता घर पर नहीं थे। उसकी मां समझ गयी थी कि अब ज्यादा दिन फिलस्तीन में नहीं रहा जा सकता। आस-पास के अरब मुसलमान अपना सामान लेकर फिलस्तीन से भाग रहे थे। लैला की मां ने भी अपना सामान बांध-जोड़कर तैयार कर लिया। पिता घर लौटे तो यह माजरा देखकर हैरान रह गये। उन्होंने अपना फैसला सुना दिया कि हम अपना घर छोड़कर कहीं नहीं जायेंगे। लेकिन मां अपने बच्चों को लेकर निकल पड़ी, क्योंकि सड़कों पर दंगे फैलते जा रहे थे।

फिलस्तीन से चलकर लैला का परिवार लेबनान पहुंचा। लेबनान के समुद्र-वर्ती नगर टायर में ही उसकी मां का जन्म हुआ था। वहां मां के एक चाचा रहते थे। पूरे एक साल तक वे दरिद्रों की तरह उन्हीं के पास रहे। उसके बाद उन्होंने दो कमरे का एक अलग मकान किराये पर ले लिया, जिसमें वे सोलह वर्ष रहे। फिलस्तीन में अराजकता मची हुई थी। वहां से खदेड़े गये लोगों के परिवार टूट गये थे।

लैला के पिता का काफी समय तक कोई पता नहीं चला। परिवार ने मान लिया था कि उनकी मृत्यु हो चुकी है। लेकिन वे फिलस्तीन से मिस्र जा पहुंचे थे। जब वे परिवार से मिले, तब उन्हें दिल की बीमारी और रक्तचाप की शिकायत थी। उन्हें अपने घर और रोजगार के छूटने का बेहद गम था। १९६६ में उनका देहांत हो गया। उस समय तक परिवार में बच्चों की संख्या आठ से बढ़कर १४ हो गयी थी।

इस काफी बड़े परिवार को पालने के लिए आय का कोई साधन नहीं था। लैला की मां के चाचा उन्हें सौ लेबनानी पौंड यानी केवल २३४ रुपये हर महीने भेजते थे। इतने में गुजर नहीं होती थी, इसलिए मजबूर होकर लैला की मां ने परिवार के सदस्यों के नाम शरणार्थियों की सूची में लिखवाये और घर में 'संयुक्त राष्ट्र शरणार्थी कल्याण संघटन' की ओर से मुफ्त बांटा जाने वाला राशन आने लगा। लैला ने जब यह देखा तो उसके मन पर इस सबकी बहुत गहरी प्रतिक्रिया हुई। वह खुद कतार में खड़ी होकर टिनों और बोरों में राशन लाती थी। उसे लगता, मानो यह राशन लेना

भीख लेने की तरह है और वह गैरत के मारे उदास हो जाती।

उसे यह गैरत १९५७ तक उठानी पड़ी—पूरे नौ वरस। उस समय लैला १३ साल की थी। उस साल उसकी दो वहनें स्कूल में पढ़ाने लगीं और उनके घर का राशन वंद कर दिया गया। इससे कठिनाई तो हुई, मगर दान-दया के बजाय अपने पांवों पर खड़े होने का गौरव भी मन में जागा।

संयुक्त राष्ट्रसंघ की ओर से स्कूल भी खोले गये। लैला स्कूल जाने लगी। पहले तो टायर में ही और बाद में वजीफा लेकर पास के नगर सिदौन के अमरीकी मिशनरी स्कूल में। वहां की पढ़ाई पूरी करने के वाद उसे फिर एक वजीफा मिल गया और वह वेरुत के अमरीकी विश्वविद्यालय में भरती हो गयी। वह फार्मेसी-विज्ञान का अध्ययन करना चाहती थी, लेकिन वजीफे की रकम बहुत कम थी और एक साल बाद लैला को पढ़ाई वंद करके घर लौट आना पड़ा। वह कहती है—"इस तरह पढ़ाई का छूट जाना, मेरे जीवन की सबसे बड़ी निराशा थी।"

लैला : महज बारह साल

इस निराशा से उबरने पर लैला कुवैत चली गयी और वहां एक स्कूल में अंग्रेजी पढ़ाने लगी। यह काम उसने छः साल तक किया। अध्यापन में उसकी रुचि नहीं थी, लेकिन परिवार को पालने के लिए उसे यह काम करना पड़ा। जब उसके दो भाई शिक्षा पूरी करके नौकरी करने लगे, तो लैला ने नौकरी छोड़ दी। उसका एक भाई फिदाईन संघटन में सक्रिय कार्यकर्त्ता था। लैला भी उसके साथ जुट गयी।

यों तो वह जब सोलह बरस की हुई, तभी गुप्त रूप से फिदाईन वन गयी थी, अव वह पूरे समय फिदाईन संघटन में काम करने लगी। उसके बड़े भाई-वहन भी फिदाईन वन चुके थे और उसने उनके साथ बैठकर फिलस्तीन अरबों की मुक्ति, फिलस्तीन वापसी और गुप्त संघटन तथा हिंसा के माध्यम से अपने लक्ष्य सिद्ध करने के मुद्दे पर बहुत बार चर्चा की थी। वह कहती है कि फिलस्तीनी अरब कभी भी किसी दूसरे अरब देश में वह अपनापन महसूस नहीं कर सकते, जो उन्हें अपने देश में महसूस हो सकता है।

एक साल के प्रशिक्षण के बाद लैला को विमान भगाने का काम सौंपा गया और वह बाकायदा विमान-दस्यु बन गयी। उसे फिदाईन के 'चे ग्वेवारा दस्ते' में शामिल

कर लिया गया। एक दिन आदेश मिला—"अमरीकी कंपनी ट्रांस-वर्ल्ड एयर लाइन्स की रोम से एथेंस नंबर की ८४० उड़ान के बोइंग ७०७ को भगाकर सीरिया के दमिश्क हवाईअड्डे पर उतारो।" इस काम में उसकी मदद के लिए एक अन्य फिदाईन को तैनात किया गया, जिसे उसने कभी पहले नहीं देखा था। मगर उसके पास अपने साथी की तस्वीर थी, जिसके आधार पर वह उसे रोम के हवाई अड्डे पर पहचान सकती थी। अपने इस मिशन को पूरा करने के लिए लैला रोम आ पहुंची।

उड़ान में आधे घंटे का विलंब हो गया था। लैला हवाई अड्डे पर बने मुसाफिरखाने में बैठी थी। उसे अपने साथी की भी तलाश थी। वह आ गया और दोनों ने संकेत द्वारा एक दूसरे को पहचाना, लेकिन बातचीत नहीं की। इतने में ही एक अमरीकी महिला अपने चार बच्चों को लेकर वहां पहुंची और लैला के पास बैठ गयी। उसे देखकर लैला सहम गयी।

वह कहती है—"मुझे बच्चों से बहुत प्यार है। उन बच्चों को देखकर मैंने सोचा कि यदि कुछ हो गया, तो इन बच्चों को कभी घर नसीब नहीं होगा। लेकिन उसी समय मुझे फिलस्तीनी अरबों के बच्चों का खयाल आ गया और उनके अनिश्चित भविष्य की कल्पना ने मुझे अपना मिशन पूरा करने की शक्ति दी।"

आखिर बस आ गयी और लैला दूसरे मुसाफिरों के साथ विमान तक पहुंचने के लिए उस पर चढ़ी। उसके पास वाली सीट पर एक यूनानी तरुण बैठा था। दोनों में परिचय हुआ। लैला ने कहा कि मैं बोलिविया की रहने वाली हूं। उस तरुण ने लैला को बताया कि मेरी विधवा मां एथेंस के हवाई अड्डे पर मेरी अगवानी करेगी। यह सुनना था कि लैला के मन में फिर से भावुकता का ज्वार उठा, उसे खयाल आया कि मेरी मां भी विधवा है और वह भी घर पर मेरी राह देख रही होगी। मगर लैला ने जी कड़ा कर लिया।

लैला और उसके साथी के पास पहले दर्जे का टिकट था, इसलिए वे दोनों आगे जाकर बैठे—चालक के कबिन के पास। उस दर्जे में तीन मुसाफिर और थे। ये दोनों कैबिन के दरवाजे के करीब बैठे। परिचारिकाओं ने खातिर शुरू की। लला को यह डर था कि अगर हमारे सामने खाने की ट्रे आ गयी, तो हमें उठने और कैबिन में घुसने में दिक्कत होगी। वे दोनों इस इंतजार में थे कि कोई परिचारिका कैबिन में जाने के लिए दरवाजा खोले, तो हम भी उसमें घुस जायें और हथियार दिखाकर विमान-चालक को काबू में कर लें।

दोनों ने बीमारी का बहाना बनाकर खाने की मनाही कर दी, मगर परिचारिकाएं उनके लिए एक बड़ी-सी ट्राली में फल और बिस्कुट ले आयीं। वे लोग बहुत परेशान हुए। इन्हें आदेश मिला था कि उड़ान के आधा घंटे बाद तुम्हें अपना काम तीस मिनिट के भीतर पूरा करना है, क्योंकि रोम से

एथेंस की उड़ान कुल डेढ़ घंटे की ही तो है। ये लोग परिचारिका को ट्राली हटाने के लिए कहना नहीं चाहते थे; क्योंकि उससे शक पैदा होने का डर था। बहरहाल ट्राली समय रहते ही हटा ली गयी और कैबिन के दरवाजे के पास बैठा एक दूसरा मुसाफिर भी वहां से उठकर चला गया।

लैला ने तबीयत खराब होने का बहाना बनाकर कंबल मांगा, उसके नीचे हाथ डालकर थैले में से पिस्तौल निकाली और पैंट के ऊपरी भाग में खोंस ली। उसके बाद उसने साथी को पांच उंगलियां दिखायीं। यह इशारा था कि बस पांच मिनट के भीतर हम अपना काम शुरू कर देंगे।

इतने में ही एक परिचारिका चालक के कैबिन में से ट्रे लेकर आयी। उसने अपनी कुहनी से दरवाजा बाहर की तरफ खोला और बाहर निकलने की कोशिश करने लगी। लैला ने इस अवसर का लाभ उठाया। उसका साथी झट से उठा, उसके एक हाथ में हथगोला था और दूसरे में पिस्तौल। उसने परिचारिका को एक ओर किया और कैबिन में घुस गया। परिचारिका ने पिस्तौल देखी तो मारे डर के ट्रे नीचे फेंक दी और चिल्लायी—"नहीं-नहीं!"

लैला मुसाफिरों की ओर मुंह करके खड़ी हो गयी, उसके एक हाथ में हथगोला था और दूसरे में पिस्तौल। लैला का साथी विमान-चालक के पीछे जा खड़ा हुआ और बोला—"हिलो-डुलो मत, अब तुम्हें नये कप्तान का आदेश सुनना है।" चालक ने

शरणार्थी मां

घबराकर रेडियो पर संदेश प्रसारित किया—"दो सशस्त्र व्यक्ति कैबिन में घुस आये हैं और यह विमान भगाने का मामला है।" फिर वह पीछे मुड़ा और उसने लैला को देखा।

अब लैला भी चालक के पास जा पहुंची और उससे बोली—"मैं इस विमान की नयी कप्तान हूं।" उसने हथगोले में से सुरक्षा-पिन निकाली और उसे चालक की ओर बढ़ाकर कहा—"लो, इसे अपने पास यादगार के तौर पर रख लो।" फिर उसने हथगोला चालक की नाक की ओर बढ़ाया और धमकाकर बोली—"यदि तुम मेरे आदेश का पालन नहीं करोगे, तो मैं इस हथगोले का इस्तेमाल करूंगी, जिसका नतीजा यह होगा कि यह विमान और इसके सब यात्री समाप्त हो जायेंगे।"

अब चालक ने स्थिति की गंभीरता को

सब एम्ब्रॉयडर्ड कपडे भले
ही एक से लगें परन्तु
हकोबा
एम्ब्रॉयडर्ड कपड़े
की तो अपनी ही
शान है!
हकोबा उन एम्ब्रॉयडर्ड कपड़ों और एम्ब्रॉयडर्ड लेसों का रजिस्टर्ड ट्रेड मार्क है
जिनके निर्माता हैं : फ़ैन्सी कॉर्पोरेशन लिमिटेड १६, अपोलो स्ट्रीट, बम्बई-१.
Model: Courtesy Air-India
Ratan Batra/Fc/H/347

समझा और लैला से पूछा—"आप चाहती क्या हैं?" लैला ने तुरंत उत्तर दिया—"सीधे लिद्दा चलो।" लिद्दा इजरायल में है। अरब विमान-दस्यु विमान को भगाकर वहां क्यों ले जायेंगे? यह सोचकर सह-चालक ने लैला से पूछा कि क्या सचमुच हमें लिद्दा जाना होगा। लैला ने कड़ककर उससे पूछा—"तुम अंग्रेजी समझते हो न?" आदेश के बाद दोनों विमान-दस्यु चालक की सीट के ठीक पीछे बैठ गये।

विमान-चालकों को यह जताने के लिए कि लैला बोइंग-७०७ की पूरी जानकार है, उसने उड़ान-इंजीनियर से पूछा—"हमारे पास कितने उड़ान-घंटों का ईंधन है?" जवाब मिला—दो घंटे की उड़ान का। लैला ने ईंधनसूचक सूई की ओर इशारा करते हुए रौब जमाया—"तुम झूठ बोलते हो! अगली बार यदि तुमने मुझसे झूठ बोला, तो मैं तुम्हारी गर्दन तोड़ दूंगी।" वह बेचारा सारे रास्ते खामोश बैठा रहा।

इधर से निपटकर लैला मुसाफिरों की ओर मुड़ी। उसने कहा—"मैं आपकी नयी कप्तान बोल रही हूं। आप अपनी पेटियों को मजबूती से कस लें, ट्रांस-वर्ल्ड एयर-लाइंस की इस उड़ान की कमान फिलस्तीन-मुक्ति जनमोर्चे के चे ग्वेवारा कमांडो दस्ते ने संभाल ली है। आपको आदेश दिया जाता है कि आप निम्न हिदायतों का पालन करें—बैठे रहिये; और शांत रहिये; ऐसी कोई हरकत मत कीजिये, जिससे विमान में उपस्थित किसी अन्य यात्री की जान को खतरा पैदा हो जाये; अपनी सुरक्षा की खातिर अपने हाथ अपने सिर के पीछे रख लीजिये। हम अपनी योजनाओं की सीमा के भीतर आपकी सभी मांगों पर विचार करेंगे।"

वास्तव में फिलस्तीन गेरिल्लों को यह बताया गया था कि इजरायल का भूतपूर्व सेनाध्यक्ष जनरल रेबिन उस विमान से यात्रा कर रहा है, मगर जनरल रेबिन अपनी यात्रा स्थगित कर चुका था। वह विमान में नहीं था।

इस सब व्यवस्था के बाद लैला ने अपना नया मार्ग-चित्र चालक को दे दिया और विमान एथेंस और निकोसिया पर से ले जाने के बजाय यूनान के समुद्र-तट पर से सीधे नीचे उतारकर क्रीट और वहां से लिद्दा की ओर मोड़ दिया गया। विमान सागर-तल से तैंतीस हजार फुट की ऊंचाई पर चला जा रहा था। चालक विमान को दक्षिण-पश्चिम की दिशा में लीबिया के अमरीकी अड्डे त्रिपोली की ओर ले जाने की कोशिश करने लगा, तो लैला ने कुतुबनुमा से पता लगा लिया और चालक को रस्ता बताना शुरू कर दिया।

उधर मुसाफिर १५ मिनिट तक हाथ सिर के पीछे बांधे बैठे रहे, लैला का ध्यान उनकी ओर गया ही नहीं। जब उसके साथी ने उसका ध्यान इस ओर दिलाया, तो उसने मुसाफिरों से क्षमा मांगी और परिचारिकाओं को आदेश दिया कि मुसाफिरों को खाने-पीने की सामग्री दी जाये।

चालकों न लैला के बारे में कुछ भी

फ़ोरहॅन्स टूथपेस्ट से नियमित रूप से ब्रश करने से मसूढ़ों की तकलीफ़ और दाँतों की सड़न दूर ही रहती है

जवानों और बूढ़ों द्वारा अपने आप भेजे गये प्रमाण पत्रों में मसूढ़ों की तकलीफ़ और दाँतों की ख़राबी को रोकने के लिए फ़ोरहॅन्स टूथपेस्ट के गुणों की समान रूप से प्रशंसा की गयी है। ये प्रमाणपत्र जैफ़्री मैनर्स एण्ड कं. लि. के किसी भी कार्यालय में देखे जा सकते हैं।

"मैं सच्चे दिल से फ़ोरहॅन्स टूथपेस्ट का और इसका दैनिक उपयोग करने की राय देने वाले डाक्टर साहब का आभारी हूँ...परिणाम यह है कि आज मेरी ७६ वर्ष की उम्र में भी मेरे दाँत मोतियों की तरह एक समान सफ़ेद, चमकदार हैं और स्वस्थ मसूढ़ों में उनकी जड़ें गहरी और मज़बूत हैं..."

—विभूती भूषण बोस, कलकत्ता

"मैं तो बचपन से ही आपका जगप्रसिद्ध टूथ-पेस्ट नियमित रूप से इस्तेमाल कर रहा हूँ। आज भी मेरा एक-एक दाँत बिल्कुल मज़बूत है... सबसे महत्त्व की बात तो यह है कि फ़ोरहॅन्स दाँतों के डाक्टर का बनाया हुआ टूथपेस्ट है। इसलिए मुझे तो बस यही टूथपेस्ट पसन्द है।"

एस्. एन्. चटर्जी, कोइम्बतूर

दाँतों की समुचित देख-भाल के लिए रोज सवेरे और रात को फ़ोरहॅन्स के दोहरे-उपयोगी टूथब्रश पर फ़ोरहॅन्स टूथपेस्ट लगाकर दाँतों को ब्रश कीजिए...और नियमित रूप से डाक्टर की राय भी लेते रहिए !

मुफ़्त: "दाँतों और मसूढ़ों की रक्षा" नामक रंगीन सूचना-पुस्तिका मुफ़्त प्राप्त करने के लिए (डाक-खर्च के लिए) २० पैसे के टिकट इस पते पर भेजिए: मैनर्स डेण्टल एडवाइज़री ब्यूरो, पोस्ट बैग नं. १००३१, बम्बई-१ यह पुस्तिका १० भाषाओं* में मिलती है।

नाम________ 06 उम्र______

पता________________
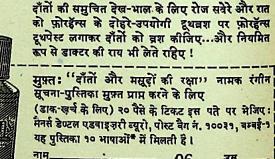
*कृपया जिस भाषा की पुस्तिका चाहिए उसके नीचे रेखा खींच दीजिए: अंग्रेजी, हिन्दी, मराठी, गुजराती, उर्दू, बंगाली, तामिल, तेलगु, मलयालम, कन्नड़

फ़ोरहॅन्स —दाँतों के एक डाक्टर का बनाया हुआ टूथपेस्ट

90F-162 HIN

जानने की उत्सुकता नहीं दिखायी, न उसके हाथ से सिगरेट ही कबूल की। मुख्य चालक बार-बार पीछे मुड़ता और लैला को देखकर इस तरह गर्दन हिलाता, मानो उसे यकीन ही न हो रहा हो कि कोई लड़की भी विमान-दस्यु हो सकती है। लैला बार-बार चालक की बगल में हाथ डालती और अपने हथगोले से उसका कंधा थपथपा देती। चालक घबरा जाता। सबसे मजेदार घटना यह हुई कि सह-चालक ने बिलकुल प्राइमरी स्कूल के बच्चे की तरह उठकर लैला से पूछा—"क्या मैं शौचालय जा सकता हूं?"

विमान इटली, यूनान ,मिस्र, लेबनान और सीरिया पर होकर उड़ता जा रहा था। लैला रास्ते-भर इन देशों के नागरिकों से यह अपील करती रही कि आप फिलस्तीनी जनता के न्यायपूर्ण संघर्ष में हमारा साथ दें। वह यात्रियों को भी यह समझाती गयी कि हम इजरायल की आय के स्रोत मिटा देना चाहते हैं, आप अपने मित्रों से कहिये कि वे पर्यटन के लिए इजरायल न जायें। हम लोग इजरायल लौट जाना चाहते हैं, हम यहूदियों के साथ रह सकेंगे; क्योंकि हम पहले भी उनके साथ रह चुके हैं। हम यहूदियों के नहीं, यहूदीवाद के विरुद्ध हैं।

मिस्र पर उड़ान लेते समय काहिरा हवाई अड्डे ने लैला से पूछा कि तुम इजरायल क्यों जा रही हो? लैला ने जवाब दिया कि हम उसे मुक्त कराने के लिए वहां जा रहे हैं। मगर अब इजरायल दूर न था। लिद्दा का आकाश साफ था और विमान ने उतरना शुरू किया।

लैला को मालूम था कि विमान को यहां उतारना नहीं है, लेकिन वह शत्रु को बता देना चाहती थी कि फिलस्तीनियों में इतना साहस है कि वे उसके नगरों पर उड़ान भर सकते हैं। लेकिन इजरायल के लोग भी बहुत प्रतिशोध-प्रिय हैं। उन्होंने कुछ मिराज लड़ाकू विमान तुरंत भेज दिये, जिन्होंने लैला का विमान घेर लिया। फिर भी लैला का विमान पूरे सात मिनिट तक इजरायल की राजधानी तेलअवीव पर मंडराता रहा। इसके बाद लैला लिद्दा से आगे चल पड़ी।

चंद मिनट बाद लैला के जीवन की एक बड़ी साध पूरी होने की घड़ी आ गयी। उसका विमान हैफा के ऊपर था। वह भावातिरेक में चिल्लायी—"यह मेरा नगर है, इसे अच्छी तरह देख लो। मैं यहीं पैदा हुई थी।" उसने नक्शा देखकर अपना घर पहचानने की कोशिश की, लेकिन इतने में ही विमान हैफा का आकाश पार कर गया।

जब विमान ने लेबनान की सीमा पार करके सीरिया के आकाश में प्रवेश किया तो इजरायल के मिराज विमानों ने उसका पीछा करना बंद कर दिया और वे लिद्दा लौट गये। लैला ने तुरंत दमिश्क हवाई अड्डे के साथ संपर्क स्थापित किया और अरबी में कहा कि हम यहां उतर रहे हैं। उसने यात्रियों से कहा कि आप विमान के रुकते ही उतर जायें; क्योंकि हम विमान को तुरंत नष्ट कर देंगे।

शाम को ५ बजकर ३५ मिनिट पर विमान

जीवनोपयोगी साहित्य

(हरिकिशनदास अग्रवाल द्वारा लिखित)

			मूल्य
१.	पीस आफ माइण्ड	(अंग्रेजी में)	३—००
२.	क्वायटर मोमेंट्स	(अंग्रेजी में)	२—००
३.	आध्यात्मिक पिक्टोरियल	(हिन्दी/अंग्रेजी)	३—००
४.	संसार का सार	(हिन्दी में)	३—००
५.	ज्ञान साधना		२—००
६.	वेदान्त नवनीत		१—५०
७.	विज्ञान से ज्ञान		१—००
८.	वेदान्त का सरल बोध		१—००
९.	मुमुक्षु (उपन्यास)		५—००
१०.	मन की शांति (पद्य)		४—००
११.	हमारी परंपरा		२—००
१२.	आराम, सुख, शांति और आनंद		०—५०
१३.	अपनी ओर इशारा		१—००
१४.	आध्यात्मिक डायरी		६—००
१५.	व्यावहारिक जीवन और परमात्मा		१—००
१६.	श्मशान यात्रा		०—५०
१७.	मेरे १०८ गुरू		३—००
१८.	सजगता		१—००
१९.	वेदान्त का वैज्ञानिक मनन		१—००
२०.	अविरोध–निरोध और स्वबोध (प्रेस में)		१—००
२१.	चिंता और निश्चिंतता (प्रेस में)		१—००

तुलसी मानस प्रकाशन

गुप्ता मिल्स स्टेट, रे रोड

बंबई–१०, टेलीफोन नं. ३७२१५१

दमिश्क हवाई अड्डे पर पहुंचा। उस समय लैला खालिद और चालक के बीच बहुत मजेदार संवाद हुआ :

लैला : ज्यों ही जहाज भूमि का स्पर्श करे, तुम इंजन बंद कर देना।

चालक : यह संभव नहीं है।

लैला : तुम्हारे लिए यह संभव नहीं है, तो कोई बात नहीं, मैं इस काम को बखूबी कर सकती हूं, और देखो ब्रेक तेजी से मत लगाना, वरना मेरा हथगोला गिरकर फट जायेगा।

चालक डर गया और उसने विमान को धीमे से उतारा।

विमान के रुकते ही लैला ने मुसाफिरों से कहा कि आप लोग फौरन विमान खाली कर दीजिये। यह सुनना था कि मुसाफिरों में भगदड़ मच गयी और वे हर संभव रास्ते से बाहर भागे। उसके बाद लैला खालिद और उसके साथी ने अपने हथगोलों से विमान उड़ा दिया। विमान में से लपटें उठने लगीं। यात्रियों तथा कर्मचारियों में से किसी को भी किसी प्रकार की चोट नहीं आयी।

लैला जब मुसाफिरों के बीच से गुजरी, तो यूनानी तरुण ने बहुत बेपनाह निगाह से उसकी ओर देखा। लैला उसकी मजबूरी समझ गयी। बोली—"मैं अभी तुम्हारी मां को समुद्री तार भिजवाती हूं कि वे परेशान न हों।" फिर उसने अन्य यात्रियों से कहा—"आप लोग हमें अपराधी और दस्यु समझते होंगे, लेकिन हम हरगिज वैसे नहीं हैं। हम तो अपने देश और उसकी आजादी के लिए लड़ रहे हैं।"

यह किस्सा तो यहीं खत्म हो गया और लैला सोचने लगी कि मालूम नहीं मुझे विमान-अपहरण का कोई दूसरा मौका मिलेगा या नहीं। वह अपने जन्मस्थान हैफा के ऊपर से दुबारा उड़कर अपने घर का सही-सही पता लगाना चाहती थी। उसके मन में मातृभूमि के दर्शनों की बहुत तीव्र लालसा थी।

लैला की एक इच्छा तो पूरी हो गयी कि उसे एक अन्य विमान के अपहरण का अवसर जल्दी ही मिल गया; लेकिन उसकी दूसरी इच्छा पूरी नहीं हो सकी कि वह उस विमान की नयी कप्तान बनकर हैफा पर से उड़ान भर सके।

६ सितंबर १९७० की बात है। उस रोज रविवार था। तीसरे पहर के समय लैला खालिद और उसका एक साथी हालैंड की राजधानी एमस्टरडम के हवाई अड्डे पर इजरायली विमान-कंपनी 'एल अल' की उड़ान नं. २१९ के बोइंग-७०७ पर चढ़े। उन्हें पूरी उम्मीद थी कि उनके तीन अन्य साथी उन्हें विमान में ही मिलेंगे। मगर 'एल अल' के सुरक्षा-अधिकारियों ने उन तीनों को संदिग्ध मानकर पहले ही विमान पर चढ़ने से रोक दिया था।

लैला ने जब यह देखा कि विमान पर उसका एक ही साथी है, तो वह पहले तो बहुत परेशान हुई, लेकिन वह कोई मामूली हौसले की लड़की नहीं है। उसने जल्दी ही स्थिति की गंभीरता को भांप लिया और यह

शस्त्र-प्रेम

फैसला कर लिया कि इस बार भी मैं केवल एक साथी की मदद से यह काम करूंगी।

विमान के आकाश में पहुंचते ही लैला और उसका साथी युद्ध की ललकार देते हुए अपनी सीटों पर से उठे। लैला ने हथ-गोले संभाल रखे थे तथा उसके साथी के पास बंदूक थी। दोनों गेरिल्ले विमान-चालक के कैबिन की तरफ लपके। इसी समय उनकी मुठभेड़ एक परिचारक और एक सुरक्षा-अधिकारी से हो गयी। चालक ने विमान को ऐसी तजी से झटका दिया कि लैला और उसका साथी संतुलन खो बैठे। ठीक इसी समय यात्रियों ने लैला को धर दबोचा और नेकटाइयां निकालकर उसे बांध दिया।

इजरायली सुरक्षा-अधिकारी ने पहले तो लैला के साथी के हाथ से बंदूक छीनने के लिए हाथापाई की, लेकिन बाद में उसे गोली मार दी, जिससे वह फौरन ढेर हो गया। लैला के साथी ने भी मरने से पहले कुछ गोलियां चलायीं, जिनमें से एक तो परिचारक के पेट में लगी और दूसरी चालक के पांव में। कुछ अन्य लोग भी घायल हुए।

अब चालक ने निश्चित होकर विमान को लंदन के हीथ्रो हवाई अड्डे पर उतारा। वहां पुलिस ने लैला को गिरफ्तार कर लिया और उसके साथी का शव भी अपने कब्जे में कर लिया।

इस बार फिलस्तीनी गेरिल्लों ने एक साथ कई विमानों का अपहरण करने की योजना तैयार की थी। लैला की गिरफ्तारी के कोई पौन घंटे बाद जर्मनी के फ्रैंकफुर्त नगर से रवाना होने वाली ट्रांस-वर्ल्ड एयर लाइंस की उड़ान नं. ७४१ के विमान बोइंग-७०७ को उत्तरी सागर पर गेरिल्लों ने अपने कब्जे में ले लिया।

लगभग इसी समय फिलस्तीनी अरब गेरिल्लों ने स्विट्जरलैंड की कंपनी स्विस-एयर के डी. सी. ८ विमान का फ्रांस के आकाश में अपहरण कर लिया। वह विमान जूरिख से न्यूयार्क जा रहा था। अपहरण-कर्त्ताओं की सरदार एक लड़की थी। अपहरण करने के पश्चात् उसने संदेश प्रसारित किया—"स्विस-एयर उड़ान-१०० पूरी तरह हमारे नियंत्रण में है। हमारा संकेत-चिह्न हैफा-१ है।" उधर अमरीकी विमान के अपहरणकर्ताओं ने ७४१ वीं उड़ान के विमान का संकेत-चिह्न गाजा-१ बताया।

हैफा-१ और गाजा-१ जोर्डन की राजधानी अम्मान के २५ मील उत्तर-पूर्व में डाउसन हवाई-पटरी की ओर बढ़ चले। इस पटरी का निर्माण अंग्रेजों ने द्वितीय विश्व-

युद्ध के समय अपने उपयोग के लिए किया था। रात घिर आयी थी। पहले गाजा-१ उतरा। उसका मार्गदर्शन पटरी पर चल रही एक जीप की रोशनी ने किया। इस पटरी पर इससे पहले इतना भारी विमान नहीं उतरा था। गाजा-१ का वजन करीब नौ सौ क्विटल था। विमान के चालक वुड ने विमान को बहुत कुशलता से उतारा। चालीस मिनिट बाद हैफा-१ विमान भी उतरा और गाजा-१ विमान से केवल पचास गज की दूरी पर रुका।

लैला के जो तीन साथी एमस्टरडम में ही छूट गये थे, वे चुप बैठने वाले न थे। उन्होंने पैन-अमरीकन कंपनी की उड़ान नं. ९३ के क्लिपर-७४७ में प्रथम श्रेणी के टिकट खरीद लिये और उस पर सवार हो गये। ज्यों ही विमान उड़ान भरने को हुआ, त्यों ही 'एल अल' के अधिकारियों की चेतावनी गूंज उठी कि जिन तीन यात्रियों को हमने शंकावश अपने विमान से उतार लिया था, वे ९३ वीं उड़ान में यात्रा कर रहे हैं और हो सकता है कि वे विमान का अपहरण कर लें।

विमान के कप्तान जैक प्रिडो ने जब यह सुना, तो वह विमान रोककर यात्रियों के कक्ष में पहुंचा और उसने लैला के तीनों साथियों के शरीर तथा सामान की पूरी तलाशी ली, मगर उसे कुछ आपत्तिजनक सामग्री न मिली। इतना ही नहीं, वे शरीफ लोगों की तरह विमान से उतरने के लिए तैयार हो गये। यह देखकर प्रिडो को लगा कि 'एल अल' की शंका निर्मूल है और उसने उन तीनों यात्रियों को लेकर उड़ान भरी।

लैला के साथियों के पास शस्त्र थे, मगर तलाशी से पहले ही वे उन्हें अपनी सीटों में छिपा चुके थे और उन शस्त्रों के बल पर वे २८,००० फुट की ऊंचाई से २,५०० क्विटल भार वाले उस क्लिपर विमान का अपहरण करके उसे बेरुत ले गये और बेरुत से काहिरा, जहां उन्होंने विमान को बारूद से उड़ा दिया।

इस तरह उस दिन लैला खालिद तो विमान का अपहरण न कर सकी, लेकिन
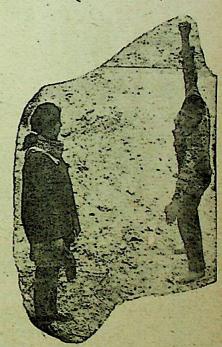
विध्वंस का प्रशिक्षण
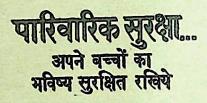
पारिवारिक सुरक्षा...
अपने बच्चों का
भविष्य सुरक्षित रखिये
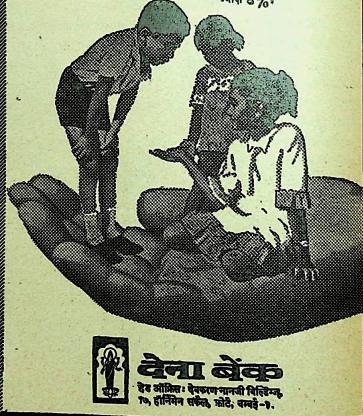
फिलस्तीनी गेरिल्लों ने तीन अन्य विमानों का अपहरण कर लिया। उनके यात्रियों को कैद कर लिया गया। उन्हें रिहा करने की यह शर्त रखी गयी कि लैला खालिद तथा इजरायल, स्विट्जरलैंड और यूरोप के अन्य देशों में बंदी बनाये गये अरबों को छोड़ दिया जाये। लेकिन मुश्किल यह थी कि इन बंदियों में ब्रिटिश नागरिकों की संख्या नगण्य थी। उधर ब्रिटिश सरकार का रुख बहुत कड़ा था और वह लैला की रिहाई के लिए किसी भी तरह तैयार न थी।

फिलस्तीनी अरब गेरिल्लों के सामने इसके सिवा कोई रास्ता नहीं रह गया था कि वे लैला की रिहाई की सौदेबाजी में अपने हाथ मजबूत करने की खातिर किसी ब्रिटिश विमान का अपहरण करें। उन्होंने इसके लिए बहुत जल्दी योजना बना ली और ९ सितंबर को जब ब्रिटिश विमान-कंपनी वी. ओ. ए. सी. का एक वी. सी-१० विमान बहरीन हवाई अड्डे से उड़ा, त्यों ही तीन फिलस्तीनी गेरिल्लों ने उसका अपहरण कर लिया।

यह विमान उस दिन सवेरे बंबई के सांताक्रुज हवाई अड्डे से रवाना हुआ था और लंदन जा रहा था। बहरीन से चलते समय विमान पर यात्री और कर्मचारी मिलाकर कुल ११४ व्यक्ति थे, जिनमें से १४ अरब, २ सिंहली और १९ भारतीय यात्री भी थे।

यह विमान भी डाउसन हवाई पट्टी पर उतारा गया, जहां पहले से ही दो अन्य अपहृत विमान खड़े थे।

अब डाउसन हवाई पटरी पर तीन विशाल विमान खड़े थे। लेकिन उनके यात्रियों को आपस में संपर्क स्थापित करने की अनुमति नहीं दी गयी थी। मुसाफिरों ने रात बेचैनी से बितायी। अगले दिन सवेरे उन्हें नीचे उतारा गया और विमान की सफाई की गयी। शाम के समय विमान के सिंहली, भारतीय और पाकिस्तानी यात्रियों को पहरे में जर्का पहुंचाया गया और वहां जोर्डन की सेना के हवाले कर दिया गया। सेना उन्हें सैनिक-क्लब ले गयी और वहां से १२ सितंबर को रात में अम्मान के इंटरकांटिनेंटल होटल में। बाहर जोर्डन की सेना और गुरिल्ला दस्तों के बीच घमासान युद्ध हो रहा था और भीतर तिल रखने की जगह न थी। बाद में इन लोगों को निकोसिया (साइप्रस) और वहां से लंदन ले जाया गया, जहां से वे भारत वापस आ गये।

इस बीच स्विट्जरलैंड ने ७ सितंबर को फिलस्तीनी गेरिल्लों की मांग स्वीकार कर ली। देश की संघीय मंत्रि-परिषद् ने चार घंटे की आपत्कालीन बैठक में यह निश्चय किया कि गत दिसंबर १९६९ में जूरिख कैंटन न्यायालय ने जिन तीन फिलस्तीनी अरबों को 'एल-अल बोइंग–७२० बी' पर गोली चलाने के अपराध में बारह-बारह वर्ष के कठोर कारावास का दंड दिया था, उन्हें रिहा कर दिया जायेगा। मंत्रि-परिषद् ने अंतर्राष्ट्रीय रेडक्रास से प्रार्थना की कि वह फिलस्तीनी गेरिल्लों से इस बारे में बातचीत करे और स्विट्जरलैंड का

चाँदनी साबुन
का प्रयोग कर
समय बचाइये
—कपड़े जल्दी साफ़ होते हैं।
CHANDNI
BERAR OIL INDUSTRIES AKOLA
CHANDNI SOAP
BOIAKOLA
अधिक स्वच्छ
अधिक सफेद
अधिक उजले
बॅरार ऑईल इन्डस्ट्रीज़, अकोला
ASP/C-13 HIN

विमान तथा उसके नागरिक वापस दिलाये।

उसी दिन जर्मन सरकार ने भी घोषणा कर दी कि वह उन तीनों फिलस्तीनी अरब गेरिल्लों को रिहा कर देगी, जिन्हें फरवरी १९६९ में 'एल अल' हवाई कंपनी की बस पर म्यनिख में हमला करने के अपराध में सजा देकर जर्मनी की जेलों में रखा गया था।

दो शर्तें तो मान ली गयीं, लेकिन फिलस्तीनी गेरिल्ले इतने से संतुष्ट होने वाले न थे। उन्होंने घोषणा कर दी कि जब तक ब्रिटेन लैला को उसके साथी की लाश समेत अम्मान नहीं लौटा देता, वे विमानों और उनके यात्रियों को नहीं लौटायेंगे।

गेरिल्लों ने धमकी दी कि यदि लैला खालिद को रिहा नहीं किया गया, तो वे यात्रियों समेत तीनों विमानों को बारूद से उड़ा देंगे। इस धमकी के बावजूद उन्होंने ७ सितंबर की रात को दोनों विमानों (तीसरे विमान का अपहरण ९ सितंबर को किया गया था) के १२७ मुसाफिरों को रिहा कर दिया। इनमें अधिकांश स्त्रियां और बच्चे थे, बीस भारतीय भी।

८ सितंबर को ब्रिटेन के प्रधान मंत्री हीथ ने अपने मंत्रिमंडल की आपत्कालीन बैठक बुलायी और इस प्रश्न पर विचार किया कि क्या फिलस्तीनियों के हाथों में पड़े हुए १८० व्यक्तियों की जान बचाने के लिए लैला खालिद की रिहाई की मांग मान ली जाये। उधर संयुक्त राष्ट्रसंघ के महामंत्री ऊ थां ने विमानों के अपहरण की कठोर शब्दों में निंदा की। इस बीच रेडक्रास ने
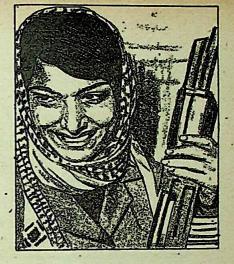
लैला—आज

भगाये गये विमानों के यात्रियों के लिए भोजन आदि की व्यवस्था की और समझौते के लिए प्रयास शुरू कर दिये। अमरीका, ब्रिटेन, जर्मनी और स्विट्जरलैंड के राजनयिक प्रतिनिधि बर्न पहुंच गये और उन्होंने एक समाधान-समिति का निर्माण किया।

गेरिल्लों ने विमानों के यहूदी यात्रियों की अलग सूची बना ली तथा यह ऐलान किया कि जब तक इजरायल फिलस्तीनी गेरिल्लों को नहीं छोड़ेगा, तब तक ये यहूदी बंदी रिहा नहीं किये जायेंगे। उधर इजरायल ने ब्रिटेन से कहा कि लैला खालिद ने इजरायली विमान भगाने की कोशिश की थी, जिसमें नाकाम रही, अतः उसे इजरायल के सुपुर्द किया जाना चाहिये, ताकि उस पर इजरायली अदालत में मुकद्दमा चलाया जा सके। येरुशलम के एक मजिस्ट्रेट ने लैला खालिद के विरुद्ध एक वारंट भी जारी कर दिया,

KORES (INDIA) PRIVATE LIMITED

Manufacturers of CARBON PAPERS, TYPEWRITER RIBBONS, "DRYTYPE" STENCILS, DUPLICATING INKS

छाती, फेंफडे और गले को निरोग रखने के लिए

ज़ेफ्रस गोलियाँ

छाती और फेंफड़ों में जमा बलगम साफ़ करती है।
गले की खराश से आराम दिलाती है।
सर्दी-जुकाम, खाँसी, ब्रांकाइटिस तथा गले की तकलीफ़ों से छुटकारा दिलाती है।
गलेकी गिल्टीयोंकी सूजन, फेरंगाइटिस, बैठी आवाज़ वगैरह का यह शर्तिया बढ़िया इलाज है।

एक ज़ेफ्रस गोली चूसिए और खुलकर गहरा साँस लीजिए।

ज़ेफ्रस की १० गोलियाँ
एक पट्टी (स्ट्रिप) में पैकबन्द मिलती है।

झण्डु
फार्मास्यूटिकल
वर्क्स लिमिटेड
गोखले रोड दक्षिण, बम्बई २८ डी डी

ताकि लैला को इजरायल लाने की मांग को बल मिल सके।

९ सितंबर को ब्रिटिश विमान के अपहरण के बाद बंदियों की संख्या ३०० से अधिक हो गयी, अतः संयुक्त राष्ट्रसंघ की सुरक्षा-परिषद की एक संकटकालीन बैठक बुलायी गयी, जिसमें गेरिल्लों से कहा गया कि वे चारों विमानों के यात्रियों को रिहा कर दें। गेरिल्ले इस ओर ध्यान देने के लिए बाध्य न थे, उन्होंने अपनी मांग को और अधिक स्पष्ट करते हुए कहा कि जब तक इजरायल प्रत्येक बंदी यहूदी-यात्री के बदले में सौ फिलस्तीनी गेरिल्लों को रिहा करने के लिए तैयार नहीं होगा, हम किसी के साथ कोई समझौता नहीं करेंगे। ब्रिटेन ने यह मांग अस्वीकार कर दी और कहा कि हम लैला खालिद को इस शर्त पर ही रिहा कर सकते हैं कि फिलस्तीनी गेरिल्ले कर्मचारियों और यात्रियों समेत तीनों विमान सही-सलामत लौटायें।

ऐसा लगने लगा कि संकट गहरायेगा। ११ सितंबर को मालूम हुआ कि अमरीका और इजरायल सैनिक कार्रवाई के जरिये अपने नागरिकों को छुड़ाने की योजना पर गंभीरता से सोच रहे हैं। यह देखकर फिलस्तीनी अरब गेरिल्लों ने रेडक्रास के प्रतिनिधियों को डाउसन हवाई पटरी से खदेड़ दिया और मुसाफिरों को विमानों में बैठाकर पंखों के नीचे बारूद भर दी।

सारे वातावरण में तनाव था और संसार भर के लोग नरमेध की इस संभावना से स्तंभित और क्षुब्ध थे। विमानों के भीतर बैठे हुए यात्रियों की स्थिति तो बलि के बकरे जैसी थी। उनका भविष्य अनिश्चित था और वे प्रत्येक क्षण मृत्यु की पदचाप सुन रहे थे। लेकिन मौत उलटे पांव लौट गयी और फिलस्तीनी गेरिल्लों को ईश्वर ने सुमति दी। उन्होंने इन यात्रियों में से ३५ इजरायली पुरुषों, पांच युवतियों, ८ ब्रिटिश नागरिकों और ६ जर्मनों को युद्धबंदी बना लिया और वे उन्हें किसी अज्ञात स्थान को ले गये। शेष यात्रियों को जोर्डन की सेना के संरक्षण में अम्मान भेज दिया गया।

यात्रियों को विमानों से हटा लेने के बाद गेरिल्लों ने तीनों विमानों को बारूद से उड़ा दिया। विमानों में से उठने वाली लपटों और धुंए को बीस मील दूर तक के लोगों ने देखा। विमानों की यह होली अप्रत्याशित थी; क्योंकि गेरिल्लों ने लैला खालिद की रिहाई के लिए १३ सितंबर के सवेरे साढ़े सात बजे तक का समय निश्चित किया था। १२ सितंबर की शाम को विमानों का दहन इस दृष्टि से न्यायसंगत नहीं माना जा सकता। इस आरोप का उत्तर देते हुए गेरिल्ला प्रतिनिधियों ने कहा कि साम्राज्यवादी और इजरायली तत्त्व मिलकर हमारे विरुद्ध षड्यंत्र कर रहे थे। अतः हमने क्रांति के हित में जो उचित समझा, वही किया। हमारे सामने इसके सिवा दूसरा कोई रास्ता न था। विमानों का यह दहन हमने इसलिए किया है कि पश्चिमी देश इस बात को अच्छी तरह समझ लें कि यदि हमारी शर्तें न मानी गयीं,

तो हम जो ठीक समझेंगे, वही करेंगे।

लैला खालिद को गिरफ्तारी के बाद जेल नहीं पहुंचाया गया। उसे लंदन के देहाती क्षेत्र इयरलिंग के थाने में नजरबंद रखा गया और उस पर सिवा इसके कोई आरोप नहीं बचा कि उसने अवैधानिक रूप से ब्रिटेन में घुसने की चेष्टा की। ब्रिटेन की सरकार लैला के मामले में बहुत सतर्क रही। वह जानती थी कि यदि लैला को जेल भेज दिया गया, तो फिलस्तीनी गेरिल्ले अधिक उत्तेजित हो जायेंगे। वह यह भी समझती थी कि गेरिल्लों का समर्थन करने वाले ब्रिटिश अरब लैला को जेल से उड़ाने की कोशिश कर सकते हैं। वह लैला के स्वभाव को भी समझ गयी थी, और उसे जेल भेजकर उत्तेजित नहीं करना चाहती थी।

ब्रिटेन को इस सिलसिले में सबसे बड़ा डर था कि यदि लैला पर इजरायली विमान के अपहरण की चेष्टा और सशस्त्र कार्रवाई का आरोप लगाया गया तो इजरायल उससे लैला की मांग कर सकता है; क्योंकि उसने इजरायल के प्रति अपराध किया है। उस स्थिति में ब्रिटेन की हालत बहुत संकटपूर्ण हो जाती; क्योंकि अंतरराष्ट्रीय कानून के अनुसार उसे लैला खालिद को इजरायल के हवाले करना पड़ता, और जिससे सभी अरब देशों की जनता ब्रिटेन की कट्टर शत्रु बन जाती।

लैला खालिद अरबों के लिए जोन ऑफ आर्क बन गयी है, वह उनके स्वतंत्रता-संग्राम की प्रतीक और प्रतिनिधि है। तभी तो ब्रिटेन ने उसे रिहा कर दिया और वह 1 अक्टूबर १९७० को मिस्र के भूतपूर्व राष्ट्रपति नासिर की शवयात्रा में शामिल होने के लिए काहिरा पहुंच गयी। ब्रिटेन ने उसे ब्रिटिश रायल एयर फोर्स के कामेट विमान में भेजा और काहिरा हवाई अड्डे पर मिस्र की विशेष पुलिस ने उसको अपने पहरे में फिलस्तीनी गेरिल्ला मुख्यालय पहुंचाया। फिलस्तीन-मुक्ति जनमोर्चे ने भी भगाए हुए विमानों के समस्त यात्रियों को रिहा कर दिया।

मोर्चे की सबसे बड़ी सफलता यह रही कि उसने ब्रिटेन, जर्मनी और स्विट्ज़रलैंड में बंदी फिलस्तीनी गेरिल्लों को रिहा करा लिया।

★

दलील एकदम गलत न थी

यह किस्सा हमने सुना था, मगर कहां तक सच है, हम नहीं जानते। जब पिछले साल अरब गेरिल्ले धड़ाधड़ विमानों का अपहरण कर रहे थे, एक महिला बेरुत जाने के लिए रोम के हवाई अड्डे पर पहुंची। मगर वह जब तक पहुंची, बेरुत का विमान उड़ान भर चुका था। वह निराश नहीं हुई, पंद्रह मिनिट बाद न्यूयार्क को रवाना होनेवाले विमान पर चढ़ने की कोशिश करने लगी। उसकी दलील थी—"क्या पता, शायद अरब विमान-दस्यु इसे बेरुत ही ले जायें।"

★

गेरहार्ट हाउटमन् (१८६२-१९४६) आधुनिक जर्मन साहित्य के दिग्गजों में थे। १९१२ में वे अपने नाटकों के लिए नोबेल पुरस्कार से सम्मानित हुए; परंतु मूलतः वे कवि थे। और कवित्वगुण उनके गद्य में भी भरपूर है—वही कोमलता, वही भाव-प्रवाह। दो उपन्यास उन्होंने लिखे। एक था 'देर केत्सर फान सोआना', जिसमें उन्होंने धार्मिक जड़ता व संकुचितता पर प्रहार किया है। काव्यमय कथा और सशक्त शिल्प वाले इस मार्मिक उपन्यास का सार प्रस्तुत किया है रमेश उपाध्याय ने।

था तो यह स्विट्जरलैंड का एक प्रांत, पर यहां आबादी इतालवी लोगों की थी। यह इलाका टिश्शीनो कहलाता था और यहां मोंते गेनेरोसो नामक एक पर्वत था। मोंते गेनेरोसो की चोटी पर पहुंचने के यों तो कई रास्ते थे, पर सोआना होकर जाने वाला रास्ता सबसे अधिक दुर्गम था। फिर भी लोग वहां जाते, क्योंकि सोआना प्राकृतिक सौंदर्य के लिए विख्यात था।

मोंते गेनेरोसो की ऊंचाइयों पर चढ़ने वालों को अक्सर एक अजीव गड़रिया अपनी बकरियां चराता हुआ मिलता था। वह आंखों पर चश्मा लगाता था और धूप में संवलाये चेहरे के बावजूद पढ़ा-लिखा मालूम होता था। उसके काले, घुंघराले, लंबे बाल कंधों पर बिखरे रहते और शरीर पर कपड़े की जगह वह केवल बकरी की खाल पहने रहता।

अजनबी सैलानियों का कोई समूह उसके पास से गुजरता, तो उनके मार्गदर्शक उस गड़रिये को देखकर हंसने लगते, फब्तियां कसते और चिढ़ाते; लेकिन वह उनकी ओर बिलकुल ध्यान नहीं देता था। कभी-कभी यह भी होता कि सैलानियों के मार्गदर्शक उसके पास जाते और देर तक उससे बातें करते। लौटने पर जब सैलानी लोग उनसे पूछते कि यह कौन था, तो वे चुपचाप आगे चल देते और दूर निकल जाने पर बताते कि इस व्यक्ति का इतिहास किसी को मालूम नहीं है। बस, यही मालूम है कि लोग इसे 'सोआना का पापी' कहते हैं, इससे नफरत भी करते हैं, डरते भी हैं और अंधश्रद्धा [illegible] वशीभूत हो इसका आदर भी करते हैं।

अपनी जवानी के दिनों में मैं भी सोआ[illegible] जाया करता था और वहां के प्राकृ[illegible] सौंदर्य का आनंद लेता हुआ कुछ सप्ताह [illegible] विताया करता था। सोआना में रहते [illegible] गेनेरोसो पर चढ़ना-उतरना तो होता [illegible] इसलिए एक दिन मैंने भी सोआना के पा[illegible] को देखा। एक बार देखने के बाद [illegible] व्यक्ति की आकृति भुलायी नहीं जा सकत[illegible] और जब मैंने सोआना में लोगों से उस[illegible] बारे में तरह-तरह की बातें सुनीं, तो मे[illegible] इच्छा हुई कि एक बार जाकर उससे मिल[illegible]

सोआना के एक जर्मन चिकित्सक [illegible] बातों ने मुझे और उकसाया। उसने बता[illegible] कि पहाड़ पर रहने वाले उस झक्की आद[illegible] को पढ़े-लिखे लोगों से मिलने में एतरा[illegible] नहीं है। एक बार तो चिकित्सक स्वयं उ[illegible] मिलकर आया था। चिकित्सक ने कहा- "वैसे तो मुझे उस पर गुस्सा आना चाहिये क्योंकि वह मेरे पेशे में दखलंदाजी कर[illegible] है। लेकिन खुदा का शुक्र है कि ज्यादा लो[illegible] उस शैतान से इलाज कराने नहीं जाते। [illegible] यह बात आप अच्छी तरह समझ लीजि[illegible] कि लोग उसे शैतान का पुजारी मानते [illegible] और चर्च वाले इस धारणा का खंडन न[illegible] करते, क्योंकि यह बात उन्हीं ने फैलायी है [illegible] कहते हैं कि शुरू में वह बड़ा नेक आदमी [illegible] और किसी जादू-टोने का शिकार हो ग[illegible] था, लेकिन अब वह खुद बदमाश और ना[illegible] कीय जादूगर बन गया है। हालांकि मुझे [illegible]

आगे

एसा नहीं लगा। न तो उसकी उंगलियों पर मुझे लंबे नाखून दिखाई दिये, न सिर पर सींग।"

मैंने चिकित्सक की बातें सुनीं और उस व्यक्ति से मिलने की सोचने लगा। फिर एक दिन संयोगवश अचानक ही उससे भेंट हो गयी।

हुआ यह कि जब मैं एक दिन पहाड़ पर चढ़ रहा था, मैंने देखा कि एक बकरी ने रास्ते में एक बच्चे को जन्म दे दिया है और दूसरे को देने वाली है। निरीह बकरी ने मुझे ऐसी दृष्टि से देखा, जैसे मदद मांग रही हो। इस विचार से कि बकरी उसी गड़रिये की होगी, मैं जल्दी-जल्दी उसकी तलाश में चला और कुछ दूर पर बकरियां चराते गड़रिये को बुला लाया। इस बीच बकरी दूसरा बच्चा दे चुकी थी।

गड़रिये ने चिकित्सक की-सी होशियारी से बकरी और बच्चों को संभाला। बड़े प्यार से उन्हें साफ किया और दोनों बच्चों को उठाकर धीरे-धीरे चल दिया। गड़रिये ने मुझे सिर्फ धन्यवाद ही नहीं दिया, बड़े हार्दिक सत्कार के स्वर में अपने साथ चलने का निमंत्रण भी दिया। पहाड़ पर उसने पत्थर के ढोंकों से अपने और अपनी बकरियों के रहने के लिए मकान बना रखे थे। बकरियों का बाड़ा बाहर से तो अनगढ़ पत्थरों का एक ढेर ही लगता था, लेकिन अंदर से वह काफी अच्छा, गर्म और साफ-सुथरा था।

गड़रिये ने बकरी और उसके बच्चों को वहां छोड़ा और मुझे कुछ ऊंचाई पर बनी झोंपड़ी में ले गया, जो अंगूर की लताओं से छाये हुए चबूतरे पर बनी थी। पास ही एक पहाड़ी झरना बह रहा था, जिसका पानी चट्टान में प्राकृतिक रूप से बने हौज में एकत्र होता था। हौज के पास ही एक गुफा थी, जिसके मुंह पर लोहे का दरवाजा लगा था। गुफा अंदर जाकर मेहराबदार तहखाने का रूप ले लेती थी।

इस स्थान से घाटी में देखने पर लगता कि हम अगम्य ऊंचाई पर पहुंच गये हैं। चारों ओर इतना सौंदर्य बिखरा पड़ा था कि मैं अवाक् देखता रह गया। गड़रिया थोड़ी देर के लिए गुफा में गया और वापस आ गया। मेरी इच्छा हो रही थी कि उसके बारे में सब कुछ जान लूं, पर मैं अपनी उत्सुकता दिखाकर कोई खतरा मोल लेना नहीं चाहता था। वह मुझे अपनी झोंपड़ी की ओर ले चला।

मुझे आज भी याद है। अंगूर-लताओं से छाये हुए उस चबूतरे पर पत्थर की एक गोल मेज थी और उस मेज पर सोआना के उस पापी ने खाने-पीने की तमाम अच्छी चीजें जुटा दी थीं। जब हम आमने-सामने बैठ गये, तो उसने मेरी आंखों में आंखें डालकर देखा और मेरा दायां हाथ कसकर पकड़ लिया—मानो वह इस प्रकार अपना स्नेह और नैकटच प्रकट कर रहा हो।

पहली भेंट में बातें क्या-क्या हुईं, यह मुझे पूरी तरह याद नहीं। बस इतना याद है कि उसने अपना नाम लुडोविको बताया

और अर्जेंटाइना के बारे में कुछ बातें कीं। कुछ बातें स्विट्ज़रलैंड की राजनीति पर भी उसने कही और फिर मुझसे जर्मनी के बारे में कई प्रश्न पूछे, क्योंकि मैं जर्मन था। जब मैं चलने लगा, तो उसने कहा—"फिर आइयेगा।"

हालांकि मैं उसकी कहानी मालूम करने के चक्कर में ही था, लेकिन कई बार मिलने पर भी मैंने अपनी इच्छा प्रकट नहीं की। लोगों ने मुझे एक कहानी सुना रखी थी कि लुडोविको सोआना का पापी क्यों कहलाता है, पर मैं उसी के मुंह से सुनकर जानना चाहता था कि उस कहानी में कितनी सचाई है। और यह भी कि वह इस अवस्था तक कैसे पहुंचा, उसकी यह दशा क्यों हुई, किस जीवन-दर्शन के आधार पर उसने यह परित्यक्त, एकाकी, वन्य जीवन स्वीकार किया। मेरे मन में बहुत-से प्रश्न थे, पर मैंने पूछे नहीं और यह अच्छा ही हुआ।

लुडोविको मुझे प्राय: अकेला ही मिलता—कभी अपनी बकरियां चराता हुआ और कभी अपनी कोठरी में बैठा हुआ। बकरियों से उसे बहुत प्यार था और उनके बीच वह खूब खुश रहता। कभी-कभी वह मुझे बांसुरी बजाता हुआ मिलता। संगीत का पशुओं पर क्या प्रभाव होता है, इस बात को वह अच्छी तरह समझता था और मैंने अपनी आंखों से भी देखा कि उसकी बांसुरी की एक तान सुनकर बकरियां उसके पास दौड़ आतीं, दूसरी तान सुनकर खड़ी हो जातीं। किसी स्वर को सुनकर इधर-उधर फैलकर चरने लगतीं और किसी को सुनकर चुपचाप लुडोविको के पीछे-पीछे चल देतीं।

कई बार ऐसा हुआ कि मैं उससे मिला चुपचाप बैठा रहा और चला आया। कई बार उसने मुझसे तरह-तरह की बातें कीं और बातों के दौरान वही अधिक बोलता। उसकी बातों में कई तरह के संदर्भ रहते—पौराणिक-कथाओं के, देवी-देवताओं के, ईसाई धर्म के ...... और इसी तरह जब एक दिन पशुओं पर बात चल रही थी, तो उसने ईसा मसीह के बारे में ऐसी बात कही, जिसे सुनकर मेरे कान खड़े हुए और मुझे लगा कि लोग इसे पापी क्यों कहते हैं।

उसने कहा—"मेरा बस चलता तो मैं सूली पर लटकाये गये आदमी को पूजने के बजाय किसी जिंदा बकरे को पूजता।" फिर उसने बताया कि यूनानी देवी-देवताओं में अधिकांश ऐसे हैं, जिनका कोई-न-कोई अंग पशु का है। फिर बोला—"सच तो यह है कि इस युग में लोग इंसान को नहीं, जानवर को ही पूजते हैं।"

इसी तरह की और-और बातें करता हुआ वह मुझे अपने घर में ले गया। घर के अंदर का वह हिस्सा चौकोर और साफ-सुथरा था और उसमें रखी हुई यूनानी और लातीनी

पुस्तकें, कागज-कलम आदि देखकर मुझे लगा, यह लुडोविको का अध्ययन-कक्ष है और यह भी कि वह काफी विद्वान आदमी होगा। मेरी धारणा को पुष्ट करते हुए लुडोविको ने कहा—"आपसे क्या छिपाना। मैं एक अच्छे परिवार में पैदा हुआ हूं, मुझे अच्छी शिक्षा मिली है और जवानी के दिनों में मैं गलत रास्ते पर चला गया था। आप शायद जानना चाहेंगे कि फिर मैं अस्वाभाविक से स्वाभाविक, बंदी से मुक्त, दुःखी और विकृत मनुष्य से सुखी और संतुष्ट व्यक्ति कैसे बना, और मैंने समाज और ईसाइयत से नाता क्यों तोड़ लिया?" इतना कहकर वह जोर से हंसा। फिर बोला—"किसी दिन मैं अपने इस परिवर्तन की कहानी लिखूंगा।"

मुझे लगा, मेरी जिज्ञासाओं के समाधान का समय आ गया है, लेकिन लुडोविको ने आगे की बात हंसी में उड़ा दी और मुझे खिलाने-पिलाने में लग गया। उस समय मैंने उसे गौर से देखा, तो मुझे लगा, वह अपने धूप-तपे, संवलाये, बकरी की खाल से ढंके अर्धनग्न शरीर और आंखों पर चढ़े चश्मे के बावजूद काफी खूबसूरत है।

थोड़ी देर बाद उसने कमउम्र लड़कों की तरह मुस्कराते हुए स्वयं ही कहा—"पता नहीं क्यों, मैं आपके सामने इस तरह खुल गया हूं कि जो बातें मैंने किसी को नहीं बतायीं, वे भी आपको बताये जा रहा हूं......दरअसल मैं कभी-कभी कुछ पढ़ता-लिखता रहता हूं और इधर अपने फालतू वक्त में मैंने एक कहानी लिखी है। यह कहानी मैंने सोआना के आस-पास के रहने वालों से सुनी थी और बेहद सीधी-सादी होते हुए भी मुझे अच्छी लगी। कहते हैं, उस कहानी की घटनाएं यहीं कहीं घटी थीं और सच्ची हैं। मैं वह कहानी आपको सुनाना चाहता हूं, आप सुनना चाहेंगे? उसे लिखने में मेरा बहुत समय नष्ट हुआ है—अगर आप सुन लेंगे, तो मुझे लगेगा कि मेरी मेहनत सफल हुई, वरना मैं उसे फाड़कर फेंक दूंगा।"

मैंने खुशी-खुशी उसकी कहानी सुनना स्वीकार कर लिया। लुडोविको ने लाल अंगूरी शराब का पात्र उठाया और मुझे साथ लेकर मकान के भीतरी भाग में पहुंचा। वहां उसने मोटे कागज पर लिखी हुई कहानी की पांडुलिपि निकाली और मेरे सामने बैठकर सुनाने से पहले साहस बटोरने के लिए एक जाम पिया। फिर अपनी सुरीली आवाज में कहानी शुरू की :

लुगानो झील के ऊपर वाली पहाड़ी ढलान पर चढ़ती हुई सर्पाकार सड़क लगभग एक घंटे में उस जगह पहुंचा देती है, जहां एक छोटी-सी बस्ती पहाड़ी चोटियों के बीच बसी हुई है। इस गांव के मकान अन्य इतालवी गांवों के मकानों की तरह ही भूरे

पत्थर और चूने से बने हुए हैं और उनके एक ओर गहरी घाटी है तथा दूसरी ओर मोंते गेनेरोसो नामक विशाल पर्वत की ऊंची और विस्तृत ढलान है। यह घाटी जहां बंद होती है, वहां एक गहरा कुंड है, जिसमें एक पहाड़ी झरना गिरता है, जिसका संगीत घाटी में गूंजा करता है। यहां एक गिरजाघर भी है।

बहुत दिन हुए, इस गिरजाघर में एक नया पादरी आया। उसकी उम्र लगभग पच्चीस वर्ष थी और उसका नाम राफेलियो फ्रांसेस्को था। उसका जन्म प्रांत टिश्शीनो के लिगोर्नेत्तो में उस परिवार में हुआ था, जिसमें संयुक्त इटली के सबसे महान् मूर्तिकार ने जन्म लिया था। खैर, मूर्तिकार की तो मृत्यु हो चुकी।

फ्रांसेस्को की प्रारंभिक शिक्षा मिलान में रहने वाले संबंधियों के पास रहकर हुई और बाद में उसने स्विट्जरलैंड और इटली के कई विद्यालयों में अध्ययन किया। उसकी मां कुछ कठोर और कट्टर धार्मिक स्वभाव की थी, इसलिए फ्रांसेस्को का झुकाव बचपन से ही धर्म की ओर हो गया। उसकी आंखें कमजोर थीं, इसलिए वह बचपन से ही चश्मा पहनता था। पहले तो वह चश्मे के कारण अपने सहपाठियों में कुतूहल का विषय बना, फिर अपनी मेहनत, नियमित दिनचर्या और पवित्रता के कारण बड़ा माना जाने लगा।

आगे चलकर उसे पादरी बनना था, इसलिए वह पहले से ही नियमित और कठोर जीवन का अभ्यस्त होने की कोशिश में था। यहां तक कि एक-आध बार तो उसकी मां को भी उससे कहना पड़ा कि पादरी बनने से पहले वह चाहे तो जीवन का थोड़ा-बहुत सुख भोग ले। लेकिन फ्रांसेस्को पर इस बात का कोई असर नहीं हुआ। और जब वह पादरी बन गया, तो उसने इच्छा प्रकट की कि उसे किसी ऐसे गिरजाघर में भेजा जाये, जो नागरिक सभ्यता से दूर हो, जहां वह किसी निष्पाप संत की तरह रह सके और ईश्वरोपासना कर सके।

इसीलिए जब वह सोआना के गिरजे में आया तो आस-पास रहने वालों ने देखा कि यह नया पादरी पहले वाले पादरी से बिल्कुल भिन्न है। पहले वाला पादरी मोटे सांड जैसा देहाती था और उसके कब्जे में कई सुंदर औरतें और लड़कियां रहती थीं, जबकि यह नया पादरी दुबला-पतला और एकांतप्रिय था। गांवों में आज भी चश्मा लगाने वालों को ज्यादा पढ़ा-लिखा और कठोर स्वभाव का माना जाता है, सो गांव के लोगों ने उसके विषय में कई धारणाएं बना लीं। शुरू-शुरू में उसके इस गंभीर स्वभाव को लोगों ने पसंद नहीं किया, लेकिन चार-पांच सप्ताह बाद ही उसने उन्हें प्रभावित कर लिया और वे पिछले पादरी को भूल गये।

जल्दी ही फ्रांसेस्को वेला का नाम आस-पास के इलाके में फैल गया। जब भी वह अपने आश्रम से निकलकर गलियों में आता, स्त्रियां और बच्चे उसे घेर लेते और श्रद्धा

पूर्वक उसका हाथ चूमते। ईसाइयों में परंपरा है कि जाने-अनजाने कोई पाप हो जाये, तो पादरी के सामने उसे स्वीकार लेते हैं। पाप की यह आत्मस्वीकृति पादरी के सामने एकांत में होती है। सोआना गांव के बारे में यह प्रसिद्ध था कि वहां बड़े भ्रष्ट लोग रहते हैं, किंतु जब से नया पादरी आया, आत्म-स्वीकृति के लिए बहुत लोग आने लगे।

फ्रांसेस्को जल्दी ही सोआना का संत माना जाने लगा। उसके अनुयायी भी बहुत हो गये, क्योंकि वह धार्मिक अनुष्ठानों के अलावा चर्च से संबद्ध स्कूल में बच्चों को स्वयं पढ़ाने भी लगा।

आश्रम में फ्रांसेस्को के सिवा, बस एक वृद्धा रहती थी, जिसकी उम्र लगभग सत्तर वर्ष होगी। वही आश्रम की देखभाल करती और फ्रांसेस्को का काम-काज करती।

मार्च मास की शुरूआत में एक रात वृद्धा ने सुना, बाहर से कोई जोर-जोर से आश्रम की घंटी बजा रहा है। लालटेन लेकर वह दरवाजा खोलने आयी, तो उसने देखा कि एक विचित्र व्यक्ति खड़ा है और पादरी से मिलना चाहता है। वृद्धा ने घबराकर दरवाजा बंद कर लिया और फ्रांसेस्को के पास जाकर सूचना दी। फ्रांसेस्को ने नियम बना रखा था कि उसके दरवाजे से कोई भी निराश नहीं लौटेगा, इसलिए उसने धर्मग्रंथ से नजर उठाकर कहा—"उसे बुला लाओ, पेट्रोनिला।"

और थोड़ी देर बाद वह विचित्र व्यक्ति पादरी के सामने खड़ा था। उसकी उम्र चालीस के करीब होगी। वह नंगे पांव था, कपड़े उसके फटे-पुराने थे और बारिश में भीगे हुए थे। कमीज आगे से खुली हुई थी, जिससे उसकी बालों वाली भूरी छाती दिखाई दे रही थी। चेहरे पर घनी, काली, बेतरतीब दाढ़ी-मूंछें थीं और बालों के बीच उसकी आंखें मशाल की तरह जलती दिखाई देती थीं।

फ्रांसेस्को ने उससे आने का कारण पूछा, तो उसने अपने वन्य हावभावों के साथ ऐसी भाषा में धाराप्रवाह बोलना शुरू किया, जिसे समझना मुश्किल था। थी तो वह उसी प्रदेश की कोई बोली, पर इतनी विचित्र कि जन्म से ही सोआना में रहने वाली वृद्धा को भी लगा कि वह जैसे कोई विदेशी भाषा बोल रहा है। काफी कठिनाई से कई सवाल पूछने के बाद फ्रांसेस्को इतना समझ पाया कि आगंतुक सात बच्चों का पिता है और उनमें से कुछ को वह चर्च के स्कूल में भरती कराना चाहता है।

"कहां से आये हो?" फ्रांसेस्को ने पूछा।

"सोआना से।" आगंतुक ने उत्तर दिया।

"यह कैसे हो सकता है! सोआना में रहने वाले हर परिवार को मैं जानता हूं, तुम्हें तो मैंने कभी नहीं देखा।"

यह सुनकर आगंतुक ने अपने निवास-स्थान का लंबा-चौड़ा विवरण दिया, जिसे फ्रांसेस्को समझ नहीं सका। फिर भी उसने कहा—"अगर तुम सोआना के ही रहने वाले हो और तुम्हारे बच्चों की उम्र पढ़ने-लिखने की है, तो उन्हें अब तक तुमने भरती क्यों नहीं कराया ? मैंने तो तुम्हें या तुम्हारी पत्नी को कभी चर्च में प्रार्थना के लिए आते हुए भी नहीं देखा।"

आगंतुक की आंखों में अजीब-सा भाव आया और उसने ओंठ भींच लिये। उत्तर देने के बजाय उसने एक ठंडी गहरी सांस ली, जैसे उसके सीने पर भारी बोझ रखा हुआ हो।

"खैर, ठीक है, तुमने आकर अच्छा किया। मैं तुम्हारा नाम लिखे लेता हूं और पता लगाऊंगा कि अभी तक तुम्हारे बच्चों को स्कूल में दाखिला क्यों नहीं मिला।"

इतना सुनना था कि अजनबी आगंतुक की आंखों से आंसू बह चले। फ्रांसेस्को की समझ में कुछ नहीं आया, पर उसने सांत्वना देते हुए कहा—"रोओ नहीं भले आदमी, मैं सारे मामले की जांच करूंगा। बस, तुम अपना नाम बता दो और जाकर कल अपने बच्चों को मेरे पास भेज दो।"

आगंतुक चुप हो गया और कुछ देर हताश, पीड़ित दृष्टि से फ्रांसेस्को की ओर देखता रहा। फिर उसने मेज पर से कागज-कलम उठाया और खिड़की की ओर चला गया। वहां अंधेरे में ही उसने कागज पर कुछ लिखा और पादरी को पकड़ा दिया। फ्रांसेस्को ने उसे विदा देने के बा[illegible] उसका नाम पढ़ा—लुकिनो स्कारावोटा लेकिन यह नाम उसे एक बार भी सुना हु[illegible] नहीं लगा।

अगले दिन सुबह-सुबह ही फ्रांसेस्[illegible] गांव के मुखिया सिंडाको से मिलने ग[illegible] और रात की सारी घटना, आगंतुक के ना[illegible] सहित, उसे सुनाकर पूछा कि यह आद[illegible] कौन है और कहां रहता है। सिंडाको [illegible] पादरी को ऊपर ले जाकर पहाड़ों की ओ[illegible] इशारा करते हुए कहा—"देखिये, स्का[illegible] वोटा वहां रहता है।" सिंडाको की उंग[illegible] काफी ऊंचाई पर अनगढ़ पत्थरों से बने ए[illegible] मकान की ओर संकेत कर रही थी, [illegible] पहाड़ के ऊपर एकदम अलग और अके[illegible] दिखाई देता था।

इसके बाद सिंडाको ने कहा—"आश्च[illegible] है फादर, अभी तक आपने उसके बारे [illegible] कुछ नहीं सुना। वह कोई गरीब आद[illegible] नहीं है और उसका जन्म भी अच्छे खानदा[illegible] में हुआ है, लेकिन उसका परिवार.... फादर, ये बड़े घृणित लोग हैं। पिछ[illegible] दस वर्षों से इन्होंने सोआना को बदनाम क[illegible] रखा है। दुर्भाग्य से जिस जगह वे रहते [illegible] वहां हमारा कोई अधिकार नहीं......उसक[illegible] जो औरत है न, उस पर अदालत में मु[illegible] दमा भी चल चुका है। लेकिन वह कहती [illegible] कि उसके बच्चे इस आदमी के नहीं [illegible] जिसके साथ वह रहती है। बताइये, इस[illegible] ज्यादा बेहूदी और क्या बात होगी ? उस[illegible] अदालत में कहा कि ये सातों बच्चे गर्मी [illegible]

दिनों में मोंते गेनेरोसो पर आने वाले सैलानियों के हैं।

"एक बार को मान भी लिया जाये कि वह वेश्या है और उसके बच्चे बाहरी लोगों के ही हैं, लेकिन क्या वेश्या ऐसी होती है?

न शक्ल, न सूरत, निहायत गंदी और बदसूरत, जैसे पाप की प्रतिमा!

"इसलिए लोग ठीक ही कहते हैं कि बच्चे उसी आदमी के हैं, जो कल रात आपके पास आया था। लेकिन खास बात तो यही है—वह आदमी उन बच्चों का बाप भी है और उस औरत का सगा भाई भी!"

युवा पादरी का चेहरा फक हो गया।

सिडाको ने आगे कहा—"इन मामलों में लोकमत बहुत कम गलती करता है और इसलिए इस पापी परिवार से सब ने नाता तोड़ लिया है। लोगों की दृष्टि में ये लोग पापी ही नहीं, अपराधी भी हैं। इसलिए जब भी उनका कोई बच्चा गांव के आस-पास दिखाई देता है, लोग पत्थर बरसाने लगते हैं। ये लोग जिस चर्च में जाते हैं, उसे अपवित्र माना जाता है। एक बार तो उन्हें चर्च में घुसने का ऐसा मजा चखाया गया कि वे चर्च की ओर रुख करना ही भूल गये।

"आप ही बताइये, क्या ऐसे लोगों को चर्च में घुसने देना चाहिये? क्या इनके पाप की संतानों को सच्चे ईसाइयों के बच्चों के साथ बैठकर पढ़ने देना चाहिये? क्या हम लोग इन नीच, पापी, जंगली जानवरों के साथ उठें-बैठें?"

पादरी फ्रांसेस्को का चेहरा पीला पड़ गया था और उस पर कोई भाव आसानी से नहीं पढ़ा जा सकता था कि सिडाको के कथन की उस पर क्या प्रतिक्रिया हुई है। उसने धन्यवाद दिया और जिस गंभीरता से आया था, उसी गंभीरता से लौट गया। लेकिन वह परेशान था और उसने गिरजे में लौटते ही अपने बिशप को स्काराबोटा के मामले की सारी बातें लिख भेजीं।

एक सप्ताह बाद उत्तर आया। बिशप ने लिखा था कि फ्रांसेस्को खुद ही जाकर उन लोगों से मिले और सारी बातें मालूम करे। बिशप ने फ्रांसेस्को की प्रशंसा भी की थी—"जानकर हर्ष हुआ कि तुममें इतनी आध्यात्मिक लगन है। यह अच्छी बात है कि इन भूल करने वालों और गलत रास्तों पर जाने वालों के लिए तुम्हारे मन में करुणा है और तुम उनकी मुक्ति के लिए चिंतित हो। चाहे कोई कितना भी बड़ा पापी हो, चर्च की ओर से उसे आशीर्वाद और सांत्वना मिलनी ही चाहिये।"

स्काराबोटा का घर सांताक्रोचे नामक चोटी पर था। वह चोटी काफी ऊंचाई पर थी और रास्ता फ्रांसेस्को का देखा हुआ नहीं था; इसलिए उसने एक ग्रामीण मार्ग-

दर्शक को अपने साथ लिया और अपने आध्यात्मिक अभियान पर चल दिया। रास्ते में मोंते गेनेरोसो की पर्वतश्री फैली हुई थी। वृक्ष और झाड़ियां, घास और चट्टानें, झरने और चरागाह ...... लेकिन फ्रांसेस्को प्रकृति-प्रेमी नहीं था। उसने चारों ओर फैली प्राकृतिक सुषमा को देखा जरूर, तन-मन में एक वासंती उत्फुल्लता भी महसूस की, लेकिन उसका मस्तिष्क धार्मिक समस्याओं में उलझा हुआ था। प्रकृति से अधिक उसे उन भग्न मंदिरों ने आकृष्ट किया, जो निर्जन में बनाकर खंडहर होने के लिए छोड़ दिये गये थे।

फ्रांसेस्को की इच्छा हुई कि उन सब उपेक्षित गिरजों का जीर्णोद्धार कराये। उसे बर्बर प्रकृति की भयंकर शक्तियों के समक्ष जगह-जगह बने ये छोटे-छोटे गिरजे और उपासनागृह वातावरण में पवित्रता की सृष्टि करते हुए-से लगे। लेकिन उसे दुःख भी हुआ कि रोमन कैथोलिक चर्च की इन पावन संस्थाओं के प्रति अधिकांश लोगों के मन में सच्ची, सक्रिय और जीवंत आस्था नहीं है, इसलिए ये उपेक्षित पड़ी हैं।

आगे चलकर फ्रांसेस्को ने देखा कि झील के किनारे सोआना का एक चरवाहा औंधा लेटा हुआ जानवरों की तरह अपनी प्यास बुझा रहा है। पानी पीने के बाद चरवाहा उठा और अपने जानवरों को घेरने लगा। कुछ बकरियां झील के ढालू किनारे तक चली गयी थीं, जहां से फिसलने पर वे सीधी पानी में जातीं। चरवाहे ने सीटी बजाकर, पत्थर फेंककर उन्हें किनारे से हटाया। यह देखकर फ्रांसेस्को के मन में विचार आया कि वह स्वयं भी तो चरवाहा ही है, अंतर यही है कि वह पशुओं की नहीं, मनुष्यों की देखभाल करता है......और जब पशुओं को सुरक्षित रखना इतना कठिन और उत्तरदायित्वपूर्ण काम है, तो मनुष्यों को रखना तो बहुत ही कठिन है, जो हरदम शैतान के प्रलोभनों में आने को तैयार रहते हैं।

यही सब सोचता हुआ फ्रांसेस्को मार्गदर्शक के पीछे-पीछे चलता सांता क्रोचे की चोटी पर पहुंच गया। लुकिनो के घर के पास पहुंचकर उसने ग्रामीण मार्गदर्शक को वापस भेज दिया, क्योंकि वह उन लोगों से एकांत में बातें करना चाहता था और लौटते समय अकेला रहना चाहता था।

लुकिनो के घर के आस-पास पशुओं की फैलायी हुई काफी गंदगी थी और स्वच्छ पहाड़ी हवा में भी बकरियों की हीक महसूस की जा सकती थी। घर के दरवाजे से धुआं बाहर निकल रहा था और अंदर अंधेरा था। उसे आते हुए देखकर कुछ बच्चों ने उत्सुकता से बाहर झांका और फिर भीतर हो गये। फ्रांसेस्को भीतर पहुंचा तो उन्होंने मूक अभिवादन किया, जिसे वह देख नहीं पाया। एक बकरी उसके पास आयी, धीरे-से मिमियायी और उसे सूंघने लगी।

धीरे-धीरे फ्रांसेस्को की आंखें अंधेरे की अभ्यस्त हो गयीं और उसने देखा कि वह जहां खड़ा है, वह जानवरों का बाड़ा है। दायीं ओर एक चौकोर कमरा था, जो

पहाड़ के अनगढ़ पत्थरों से बनाया गया था। परिवार का भोजन बनाने का चूल्हा उसी में था और धुआं निकलने का कोई रास्ता न होने के कारण छत और दीवारें इस कदर काली हो गयी थीं कि वह कमरा न लगकर गुफा-जैसा लगता था। चूल्हे के पास बिना पुश्त की, लकड़ी की एक बेंच पड़ी थी, जो घिस-घिसकर इतनी चिकनी हो गयी थी कि चिकने संगमरमर की बनी लगती थी।

फ्रांसेस्को यह सब देख ही रहा था कि लुकिनो स्कारावोटा अंदर दाखिल हुआ। वह हांफ रहा था—सिर्फ इसलिए नहीं कि पादरी को आते देख वह एक दूर की चोटी से दौड़ता हुआ आया था, बल्कि इसलिए भी कि पादरी का उसके घर आना बहुत बड़ी घटना थी। उसने फ्रांसेस्को का अभिवादन किया और उसे बेंच पर बैठाया। फिर उसने फूंक मार-मारकर चूल्हे की आग को प्रज्ज्वलित किया और पादरी के सामने दूध, रोटी और पनीर ला-लाकर रखने लगा। लेकिन फ्रांसेस्को ने चढ़ाई चढ़ने के बाद लग आयी भूख के बावजूद कुछ भी खाने से इन्कार कर दिया—इस तरह किसी के घर जाकर कुछ खाना धार्मिक दृष्टि से वर्जित जो था!

उस घुटन-भरे माहौल से जल्दी निकलने के लिए फ्रांसेस्को ने कहना शुरू किया—"लुकिनो स्कारावोटा, तुम्हें पावन गिरजाघर में आने से नहीं रोका जायेगा और अब तुम्हारे बच्चे भी ईसाई समाज से बहिष्कृत नहीं माने जायेंगे। लेकिन दो शर्तें हैं—एक तो यह कि तुम्हारे बारे में जो बुरी अफवाहें फैली हुई हैं, वे गलत सिद्ध हो जायें, या फिर तुम ईमानदारी से अपने पाप को स्वीकार करो, प्रायश्चित करो और ईश्वर के बनाये रास्ते पर चलना शुरू करो। इसलिए निडर होकर सब कुछ सच-सच मुझे बता दो।"

यह सुनकर लुकिनो एकदम चुप हो गया। उसके गले से कुछ आवाजें निकलीं भी, पर फ्रांसेस्को उनका अर्थ नहीं समझ पाया। फ्रांसेस्को ने फिर से समझाना शुरू किया, तो वह घबरा गया। उसने पादरी के पांव पकड़ लिये और अपने ओंठों से उसके जूतों को चूमने लगा। फ्रांसेस्को को बहुत बुरा लगा। यह तो मूर्तिपूजकों का ढंग है, ईसाइयों का नहीं। उसने लुकिनो को परे ठेलते हुए, कुछ गुस्से में आकर, स्पष्ट शब्दों में उस जघन्य पाप की बात शुरू की, जिससे लुकिनो की संतानें जनमी थीं और धर्म तथा ईश्वर के विषय में बताने लगा।

लुकिनो पादरी की बातें समझ नहीं सका, क्योंकि उसे नहीं मालूम था कि ईश्वर क्या है, और कौन है। अब तक वह एक काष्ठ-प्रतिमा को ईश्वर मानकर पूजता आया था। पादरी के मुंह से बार-बार धर्म और ईश्वर सुनकर वह उठा और अंधेरे में से उस काष्ठ-प्रतिमा को उठा लाया। प्रतिमा देखकर फ्रांसेस्को सिहर उठा। उसने पढ़-सुन रखा था कि मूर्तिपूजक लोग विधर्मी होते हैं और मूर्तियां ईश्वर-विरोधी, लेकिन अपने स्वाभाविक धार्मिक भय के बावजूद वह प्रतिमा को निकट से देखे बिना नहीं रह सका। उसने लुकिनो से प्रतिमा ले ली।

लेकिन देखकर उसे अजीब-सी अनुभूति हुई। प्रतिमा और कुछ नहीं, लकड़ी पर खोदी हुई एक अश्लील, कामोत्तेजक आकृति थी, जिसे प्राचीन ग्रामीण लोग प्रजनन का देवता कहकर पूजते थे। अचानक उसके मन में पुण्य-प्रकोप जाग उठा और उसने प्रतिमा को आग में फेंक दिया। लेकिन लुकिनो यह देखकर कुत्ते की तरह दौड़ा और जलती आग में से प्रतिमा को उठा लाया, जो तब तक आग पकड़ने लगी थी। लुकिनो ने अपने खुरदरे हाथों से ही आग बुझा दी और प्रतिमा को ऐसे पकड़ लिया, जैसे उसे खतरा उत्पन्न हो गया हो।

फ्रांसेस्को ने यह देखकर प्रतिमा और लुकिनो दोनों को ही बुरा-भला कहना शुरू किया। पादरी की आवाज ऊंची थी। शायद उसी को सुनकर लुकिनो की बहन वहां आ पहुंची। पीले-से रंग की वह एक अनाकर्षक स्त्री थी। गंदी इतनी जैसे वर्षों से नहायी न हो। फटे हुए कपड़ों से उसकी नग्नता झांक रही थी। पादरी जब काफी कुछ कह चुका और थोड़ी देर के लिए रुका, तो स्त्री ने धीमे स्वर में अपने भाई को पुकारा। लुकिनो आज्ञाकारी कुत्ते की तरह एकदम उठकर बाहर चला गया। तब वह पादरी के पास आयी, अभिवादन किया और फूट-फूटकर रो पड़ी।

रोते-रोते उस स्त्री ने बताया कि उसने पाप तो किया है, लेकिन वह पाप नहीं, जिसका दोष उस पर लगाया जाता है। उसका कहना था कि पाप उस अकेली ने किया है, उसका भाई निष्पाप है और ये बच्चे सचमुच यहां से गुजरने वाले अजनबी लोगों के हैं। फिर बोली—"इन बच्चों को इस निस्सहाय अकेलेपन में जन्म देकर मैंने काफी कष्ट उठाया है। कुछ बच्चे तो जन्म लेने के तुरंत बाद ही मर गये, उन्हें मैंने अपने ही हाथों से इस पहाड़ी धरती में दफनाया है। आप मुझे क्षमा करें या न करें, पर ईश्वर ने मुझे क्षमा कर दिया है, क्योंकि मैंने बड़ी तकलीफें और परेशानियां झेली हैं।"

फ्रांसेस्को सुनता रहा, लेकिन स्त्री के आंसू उसे द्रवित नहीं कर सके। उसे लगा, स्त्री झूठ बोल रही है। उसने कहा—"म तुमसे बहस नहीं करना चाहता कि तुममें से किसका दोष कितना है, लेकिन एक बात तय है—अगर तुम चाहती हो कि तुम्हारे बच्चे जंगली जानवरों की तरह नहीं, सभ्य और सुसंस्कृत आदमियों की तरह विकसित हों, तो तुम्हें अपने भाई से अलग होना पड़ेगा। जब तक तुम उसके साथ रहोगी, लोग यही मानते रहेंगे कि तुम उस भयंकर पाप में डूबी हुई हो।"

यह सुनकर स्त्री बिफर उठी—"नहीं, मैं अपने भाई को नहीं छोड़ सकती। वह मेरे बिना जिन्दा नहीं रह सकता। जैसे-तैसे मैंने उसे अपना नाम लिखना तो सिखा दिया है, पर न वह किसी से ढंग से बात कर सकता है, न बाजार में जाकर चीजें बेच सकता है। उसे सिक्कों तक का ज्ञान नहीं, रेलों और शहरों और लोगों से उसे डर लगता है। उसका सारा काम मैं करती हूं। अगर मैं

कहीं चली गयी, तो या तो वह कुत्ते की तरह मेरे पीछे-पीछे दौड़ा आयेगा या मर जायेगा। और फिर मेरे बच्चों का क्या होगा ? जब तक मैं यहां हूं, किसी में हिम्मत नहीं कि मेरे भाई को यहां से ले जाये......"

स्त्री जब ये बातें कर रही थी, तभी एक चौदह-पंद्रह साल की लड़की अंदर आयी और घर के काम-काज इस तरह करने लगी जैसे फ्रांसिस्को की उपस्थिति से उसे कोई सरोकार न हो। लेकिन उस अंधेरे में देखी हुई एक झलक से ही फ्रांसेस्को ने जान लिया कि लड़की बहुत सुंदर है।

उसे देखकर नौजवान पादरी के मन में एक ऐसी भावना उठी, जिसे वह समझ नहीं पाया। उसे लगा, हालांकि इस लड़की का जन्म जघन्यतम पाप से हुआ है, फिर भी संभव है, इसमें पवित्रता का कोई अंश शेष हो, या हो सकता है इसे पता भी नहीं हो कि इसे शैतान ने दुनिया में भेजा है......हां, उसकी चाल-ढाल में ऐसी शांत सहजता थी कि उसे देखकर कोई यह नहीं कह सकता था कि इसका दिमाग परेशान है या इसकी आत्मा पर कोई बोझ है। इसके विपरीत ऐसा लगता था, जैसे वह एक सलज्ज आत्मविश्वास से भरी हुई है।

अभी तक उसने फ्रांसेस्को की ओर नजर उठाकर भी नहीं देखा था, जबकि फ्रांसेस्को अपने चश्मे के भीतर से चोरी-चोरी लगातार उसकी ओर देखता जा रहा था। उसे अपने भीतर एक परिवर्तन-सा होता महसूस हुआ और थोड़ी देर पहले उस बंद, धुएं से भरी जगह में, जहां उसका दम घुट रहा था, उसे ऐसा लगा जैसे एक सुगंध व्याप्त हो गयी है, मानो किसी जादू के जोर से वह अंधेरी, दमघोटू जगह स्वर्ग बन गयी है। कुछ देर बाद लड़की सीढ़ी पर चढ़कर ऊपर की दुछत्ती में गायब हो गयी। तब फ्रांसेस्को को अपने काम का ध्यान आया।

स्त्री कह रही थी–"मैंने अपने भाई को आपके पास इसलिए भेजा था कि आप हम पर दया करें, इसलिए नहीं कि हमारा दुःख और बढ़ायें। मैं एक अच्छी कैथोलिक हूं, लेकिन अगर चर्च किसी को ठुकराता है तो उसे पूरा अधिकार है कि वह शैतान के पास जाये। इसलिए अगर चर्च हमारी नहीं सुनता, तो हो सकता है कि मैं वह पाप सचमुच कर बैठूं, जिसका इल्जाम मुझ पर लगाया जाता है, पर जो मैंने अभी तक नहीं किया है।"

फ्रांसेस्को स्त्री की बातें सुन रहा था, लेकिन साथ-साथ ऊपर से आती हुई आवाजें भी– जहां जाकर लड़की गायब हो गयी थी। एक मधुर गीत, जो कभी ऊंचे स्वर में गाया जाता और कभी बेहद हौले-से ली जानेवाली सांस की तरह। इसलिए फ्रांसेस्को का ध्यान स्त्री के रुदन और क्रंदन की ओर कम, और उस श्रुतिमधुर ध्वनि में अधिक था। और उसके भीतर एक गर्म लहर दौड़ गयी–एक चिंता के साथ, जो उसने पहले कभी महसूस नहीं की थी।

वह उठकर बाहर निकल आया। बाहर आकर उसने साफ पहाड़ी हवा में सांस ली

और वह ताजगी से भर उठा। दूर-दूर तक मनोहारी प्राकृतिक सुषमा का विस्तार और नीचे दिखाई देता संत अगाता का उपासना गृह। उसे देखकर फ्रांसेस्को के मन में आया कि इन लोगों के आध्यात्मिक उद्धार के लिए वह इन्हें इसी उपासना-गृह में बुलाये। उसे लगा, शायद यह स्त्री मेरे सामने—एक आदमी के सामने—अपना पाप स्वीकारना नहीं चाहती, पर हो सकता है, वहां ईश्वर के सामने स्वीकार ले।

स्त्री उसके पीछे-पीछे चली आयी थी और अब अपने घर के दरवाजे में ठिठकी हुई खड़ी थी। फ्रांसेस्को ने उससे कहा—"देखो, सोआना के चर्च में तो तुम लोग आ नहीं सकते, क्योंकि वहां तुमसे घृणा करने वाले लोग तुम पर पत्थर बरसायेंगे, इसलिए तुम लोग किसी दिन संत अगाता के उस उपासना गृह में आओ और आत्म-स्वीकृतियों से अपनी आत्माएं शुद्ध करो।"

स्त्री की आंखों में फिर आंसू भर आये, लेकिन उसने पादरी की बात मान ली और पादरी ने उन लोगों के लिए एक दिन निश्चित कर दिया।

वहां से चलकर फ्रांसेस्को जब काफी दूर निकल आया तो धूप में एक चट्टान पर बैठ गया और सोचने लगा कि अभी-अभी उसे जो विचित्र-सी अनुभूति हुई थी, उसका कारण क्या था। कुछ समझ में नहीं आया तो उसे भय-सा लगने लगा। मैं तो अच्छा-भला चलकर ऊपर आया था और जो काम मुझे करना था, वह मैंने किया है, फिर ऐसा क्यों लग रहा है, जैसे कोई चीज छूट गयी है या मैं कोई काम करना भूल गया हूं। वह सोचता रहा, पर कोई बात पकड़ में नहीं आयी। आखिर उसने जेब से प्रार्थनाओं की पुस्तक निकाल ली और पढ़ने लगा। पर प्रार्थनाएं भी नौजवान पादरी की उस अजीब-सी बेचैनी को दूर नहीं कर सकीं।

नीचे की ओर जाती हुई सड़क पर आंखें लगाये वह इस तरह बैठा था, जैसे उसे किसी के आने की प्रतीक्षा हो और इस प्रत्याशा में वह उठकर चल देने का साहस नहीं जुटा पा रहा था। न जाने कब तक वह यों ही बैठा रहता, यदि आस-पास चरती हुई बकरियां उसे घेर न लेतीं। अचानक एक बकरी पीछे से उसके कंधों पर चढ़ आयी और वह उछलकर खड़ा हो गया। तभी दूसरी बकरी उसके हाथ से प्रार्थनाओं की पुस्तक ले भागी, जैसे पुस्तक कोई खाने की चीज हो।

फ्रांसेस्को फंस गया। उसने पुस्तक को बकरी के मुंह से छुड़ाने का यत्न किया, पर सफल नहीं हो सका। लेकिन उसी समय उसकी सहायता के लिए एक जवान लड़की आ गयी। दौड़कर वह प्रार्थनाओं की पुस्तक बकरी के मुंह से छुड़ा लायी। फ्रांसेस्को पहचान गया कि यह वही लड़की है, जिसे लुकिनो के घर में देखा था। लड़की की बड़ी-बड़ी भोली आंखें हंस रही थीं और उसके कपोलों पर लाली दौड़ रही थी। फ्रांसेस्को ने उसे धन्यवाद देकर हंसते हुए कहा—"वाकई कैसी अजीब बात है, पादरी होकर भी मैं तुम्हारी बकरियों के सामने कितना

निरुपाय और असहाय हो गया!"

उसका मन था कि लड़की के सामने खड़ा देर तक इसी तरह बातें करता रहे, लेकिन तभी उसे ध्यान आ गया कि वह पादरी है और पादरी को जवान लड़की से इस तरह आमने-सामने खड़े होकर ज्यादा बातें नहीं करनी चाहियें। जल्दी ही वह वहां से चल दिया, लेकिन उसे लगा कि उससे पाप हो ही गया है और वह जल्दी ही इसका प्रायश्चित करेगा। थोड़ी दूर उतरने पर उसे सुरीले नारी-कंठ में गाया जाता हुआ एक गीत सुनाई दिया। वह ठिठक गया, लेकिन गाने वाली जब काफी देर देखते रहने के बाद भी नजर नहीं आयी, तो वह फिर उतरने लगा।

पापी परिवार में फ्रांसेस्को का चर्च के काम से जाना, अपने आपमें कोई खास बात नहीं थी, लेकिन नौजवान पादरी को लगा कि वह पहाड़ी यात्रा उसके जीवन की एक विशिष्ट घटना बन गयी है। उसे महसूस होने लगा कि उसके अंदर कुछ बदलाव हो रहा है और उसे संदेह हुआ कि इस बदलाव के पीछे शायद शैतान का हाथ है। लेकिन साथ ही उसे यह भी लगा कि वह पार्वत्य प्राकृतिक सौंदर्य अब उसके लिए नये ढंग से सार्थक हो उठा है। और उसने अपनी नियुक्ति इस रमणीय स्थान में होने के कारण स्वयं को धन्य अनुभव किया।

लेकिन उस पापी परिवार में जाकर लौटने के दिन से ही फ्रांसेस्को ने अनुभव किया कि अब उसके मन में पहले जैसी निर्विकल्प शांति नहीं रही है। पहले उसे सपने नहीं आते थे, अब आने लगे थे, और धार्मिक दृष्टि से यह कोई अच्छी बात नहीं थी। फ्रांसेस्को ने अपने इस परिवर्तन के बारे में सोचा तो उसे लगा, हो न हो, यह उस काष्ठ प्रतिमा को छूने के कारण हुआ है, जिसे उसने हाथ में लेकर आग में फेंक दिया था।

उसे पता था कि पुराने लोग ऐसे प्राकृतिक प्रतीकों की पूजा करते थे और ईसाई धर्म ने उन अश्लील प्रतीकों के खिलाफ जेहाद छोड़कर ईसा के क्रास की स्थापना की थी, प्रतीक रूप में क्रास का ही ध्यान करने का विधान किया था। किंतु फ्रांसेस्को को स्वयं पर आश्चर्य होता कि अब वह जब भी क्रास का ध्यान करता है, उसकी आंखों में वह अश्लील और जुगुप्साजनक काष्ठ-प्रतिमा नाचने लगती है।

फ्रांसेस्को ने गांव के मुखिया को सारी बात बता दी थी और संत अगाता के उपासना-गृह में लुकिनो के परिवार को बुलाने की अपनी योजना बिशप को लिख भेजी थी। बिशप का उत्तर आया कि फ्रांसेस्को ने जो सोचा है, वह उचित है और यह अच्छा ही है कि कोई लोकापवाद न उठे। लेकिन बिशप की स्वीकृति से भी फ्रांसेस्को के मन को शांति नहीं मिली। उसे यह लगता ही रहा कि उस पर कोई जादू कर दिया गया है, जिसके कारण उसका चित्त अशांत है और उसके मन में बुरे विचार आते हैं।

जिस गांव में फ्रांसेस्को का जन्म हुआ था, उसमें वह बूढ़ा पादरी अब भी रहता था,

जिसने फ्रांसेस्को को धर्म-शिक्षा दी थी और पादरी बनने को प्रेरित किया था। एक दिन फ्रांसेस्को तीन घंटे की पदयात्रा करके वहां जा पहुंचा।

बूढ़े पादरी ने फ्रांसेस्को का स्वागत किया और पूछा—"कैसे आना हुआ?" और यह जानकर कि फ्रांसेस्को किसी पाप की आत्मस्वीकृति के लिए आया है, बूढ़ा स्पष्ट ही विचलित हो उठा। लेकिन वह उसकी आत्मस्वीकृति सुनकर उसे पापमुक्त करने

के लिए तुरंत तैयार हो गया।

फ्रांसेस्को ने सारी कहानी सुनायी और फिर कहा—"जब से मैं उन अभागे पापियों के यहां से लौटा हूं, अपने ऊपर किसी तरह के सम्मोहन का अनुभव कर रहा हूं। जब मैं सोआना के झरने की आवाज सुनता हूं, तो मेरी इच्छा होती है कि घंटों तक ऊपर से गिरते पानी के नीचे बैठा रहूं और तन-मन से स्वच्छ-स्वस्थ हो जाऊं। जब मैं चर्च में या अपने बिस्तर के ऊपर क्रास देखता हूं, तो मुझे हंसी आती है।

"पहले मैं मसीह के कष्टों का स्मरण कर-करके रोया करता था, अब नहीं रो पाता। बल्कि अब तो उन घटनाओं की कल्पना करते समय मुझे और ही और चीजें दिखाई देती हैं, जो लुकिनो की उस काष्ठ-प्रतिमा से मिलती-जुलती होती हैं। प मैं धर्मग्रंथों में डूबे रहने के लिए कमरे खिड़कियों पर परदे खींच देता था, अब मैं परदे हटा दिये हैं। पहले मुझे पक्षियों कलरव, झरनों की कल-कल और फूलों सुगंध से स्वाध्याय में विघ्न अनुभव हो था और अब मैं दोनों खिड़कियां पूरी त खोल देता हूं और ललचायी दृष्टि से प्र की ओर देखता रहता हूं।

"इस सबसे मुझे बड़ी चिंता होने लगी; लेकिन इससे भी बुरी बात यह है कि मे मन पाप की ओर उन्मुख रहने लगा है। मु ऐसा लगता है, जैसे किसी काले जादू शैतान मुझ पर हावी हो गया है। मैं खिड़कियां खोलकर बाहर देखता हूं, तो वृक्षों गाते पक्षी मुझे अपवित्रता का बोध करा हैं। वृक्षों की छालों और पहाड़ों की रेखा में मुझे ऐसी आकृतियां दिखाई देती जो मुझे नारी-शरीर की याद दिलाती हैं सारी प्रकृति मुझे उस काष्ठ-प्रतिमा की पू करती हुई लगती है ......

"पहले मैं पापियों को सही रास्ते लाने के लिए धार्मिक उत्साह से भरा र था, वह उत्साह मैं आज भी अनुभव कर हूं और स्वयं को शैतान से लड़ने वाला यो मानकर उस पापी परिवार का उद्धार कर की सोचता हूं; लेकिन वह उत्साह मु पहले की तरह शुद्ध और पवित्र नहीं लगता रात को सोते-सोते मैं जाग उठता हूं, औ चेहरा आंसुओं से भीगा हुआ होता है औ मेरा मन उस पहाड़ पर रहने वा

आगे

भटकी हुई आत्माओं के लिए करुणा से भर उठता है। लेकिन 'भटकी हुई आत्माओं' की बात सोचते समय मेरे दिमाग में लुकिनो और उसकी बहन नहीं, उनके पाप से जन्मी वह लड़की घूमती रहती है ......"

फ्रांसेस्को के गुरु ने सारी बात सुनी और कहा –"डरने की कोई बात नहीं। तुमने जो कठिन मार्ग अपने लिए चुना है और जिस पर तुम हमेशा चलते रहे हो, उसी पर चलते रहो। शैतान को वश में करने के लिए तुम्हें इन सबका सामना करना हीं पड़ेगा। हो सकता है, शैतान तुम्हारे द्वारा पराजित होने तक तुम्हें बहुत शक्तिशाली और सुरक्षित लगे। लेकिन जीतोगे तुम ही।"

फ्रांसेस्को ने राहत-सी महसूस की और वहां से लौट पड़ा। लौटते समय वह उस मकान के सामने से गुजरा, जिसमें उसका चाचा–प्रसिद्ध मूर्तिकार–रहा करता था। कला में फ्रांसेस्को की कोई विशेष अभिरुचि नहीं थी और वह अपने चाचा को सिर्फ एक बड़ा आदमी और उसकी कला को उस बड़े आदमी के द्वारा किये गये काम से ज्यादा अहमियत नहीं देता था। लेकिन उस दिन न जाने किस प्रेरणा से उसकी इच्छा हुई कि उस मकान में जाये और अपने स्वर्गीय चाचा की कलाकृतियां देख।

पहले से परिचित, पड़ोसी किसानों से चाबी लेकर फ्रांसेस्को उस सूने मकान में पहुंचा। अंदर हर चीज पर धूल जमी हुई थी और अजीब खामोशी छायी हुई थी। फ्रांसेस्को ने अपने शरीर में हल्की-सी सिहरन मससूस की। वह आगे वढ़ गया। दायीं ओर दिवंगत कलाकार का पुस्तकालय था, जिसमें प्रसिद्ध लेखकों की पुस्तकें भरी पड़ी थीं और दीवारों पर उस्ताद चित्रकारों के वनाये हुए चित्र लगे थे। आगे चलकर वह स्थान था, जहां बैठकर कलाकार मूर्तियां बनाया करता था।

फ्रांसेस्को सूने मकान में अपने कदमों की गूंज सुनता हुआ आगे वढ़कर उन मूर्तियों के पास पहुंचा, जो उसके चाचा ने बनायी थीं। दांते और माइकेलेंजिलो आदि की मूर्तियों के बाद उसे तीन नग्न नारी-प्रतिमाएं दिखाई पड़ीं। उनमें से एक की उम्र बारह, दूसरी की पंद्रह और तीसरी की सत्रह रही होगी। फ्रांसेस्को उन्हें देखता ही रह गया। अवाक्, आत्मविस्मृत। ध्यान आया तो उसने पाया कि उसका हृदय धड़क रहा

है। उसने चारों ओर देखा। कोई देख नहीं रहा था, पर उसे लगा कि एकांत में भी ऐसी मूर्तियों को देखना पाप है।

उसने वहां से तुरंत चल देने का निश्चय किया, ताकि कोई सचमुच ही आकर उसे इस स्थिति में देख न ले, पर वह दरवाजे तक

क्या आपकी
कार के टायर
फायरस्टोन के

अत्यंत
मज़बूत

टायर से होड़
ले सकते हैं!

यह टायर ड्राइविंग की कठोर से कठोर ज़रूरतों को ध्यान में रख कर बनाया गया है। यह टायर ऊबड़-खाबड़ सड़कों पर भी सरलता से चलता है, गर्मी का ताप सह सकता है और बारिश में गीली सड़कों पर आवश्यक सुरक्षा प्रदान करता है। बार-बार रोकने और चालू करने से होने वाली घिसाई-पिटाई को सह सकता है।

फ़ायरस्टोन टायर में आपको ये तमाम मज़बूती मिलती है, क्योंकि इसकी तीन तरह से मज़बूती देने वाली खास बनावट होती है। इस टायर के साथ 'ट्रेड' को ख़ास तरीके से जोड़ते हैं, टायर का बाज़ूवाला भाग ज़्यादा मज़बूत बनाते हैं और हरेक 'कार्ड' को 'इंसुलेट' कर देते हैं।

यदि आप अपने पैसे के बदले में ज़्यादा किलोमीटर तथा ज़्यादा सुरक्षा चाहते हैं तो फ़ायरस्टोन का अत्यंत **मज़बूत** टायर ही खरीदिये।

भारत में सब जगह मिलते हैं-आज ही
अपने फायरस्टोन विक्रेता से मिलिये।

आया और उसका इरादा बदल गया। उसने दरवाजा अंदर से बंद किया और वापस उन मूर्तियों के पास लौट आया।

उसका हृदय और ज्यादा जोर से धड़कने लगा और एक भयमिश्रित पागलपन उस पर सवार हो गया। किसी अज्ञात आग्रह से उसने सबसे बड़ी मूर्ति के बालों को थपथपा दिया। हालांकि यह काम वैसे भी, और उसकी अपनी नजर में भी पागलपन जैसा ही था, फिर भी किसी हद तक धर्माचार्योचित तो था। लेकिन दूसरी मूर्ति को उसके हाथों कुछ ज्यादा सहना पड़ा। फ्रांसेस्को ने दूसरी मूर्ति का कंधा थपथपाया और बांह पर हाथ फिराया......गोल कंधा...... एक गोल और सुडौल बांह, जो एक नाजुक और मुलायम हाथ पर आकर खत्म होती थी। तीसरी मूर्ति तक पहुंचकर तो फ्रांसेस्को बिलकुल ही पागल हो उठा। उसने मूर्ति को छुआ, सहलाया और अंततः झिझकते हुए उसके नग्न, संगमरमरी वक्ष को चूम लिया। तब एकाएक उसे ध्यान आया कि वह क्या कर बैठा है और पाप की चेतना से अभिभूत वह वहां से भागा—इस तरह जैसे कोई उसका पीछा कर रहा हो।

इस घटना के बाद के कुछ दिन फ्रांसेस्को ने अपने चर्च में प्रार्थनाएं और प्रायश्चित करते हुए बिताये। उसका खयाल था कि उपासना और प्रायश्चित के द्वारा वह नारी शरीर के आकर्षण से मुक्त हो जायेगा। लेकिन ऐसा हुआ नहीं।

एक रात—उसे पता नहीं, वह जाग रहा था या सो रहा था— उसने देखा, चांदनी में नहायी हुई वे तीनों नग्न मूर्तियां उसके कमरे में आयीं और उसके बिस्तर की ओर बढ़ने लगीं। निकट से उसने उन तीनों का चेहरा देखा। तीनों चेहरे उसे एक नजर आये और वह एक चेहरा सांता क्रोचे की चोटी पर बकरियां चराने वाली किशोरी का था।
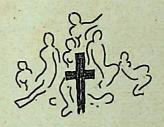
अब उसे कोई संदेह नहीं रहा कि उस पर जादू कर दिया गया है। और फिर तो उसे अपने आस-पास की हर चीज में वही चेहरा दिखाई देने लगा। वह पुस्तक पढ़ रहा होता और पुस्तक के पृष्ठों पर उसे लल-छौंहे भूरे बालों से घिरा वह मासूम चेहरा दिखाई देने लगता, जो अपनी बड़ी-बड़ी काली आंखों से उसकी ओर ताकता। वह पृष्ठ पलट देता, तो चेहरा दूसरे पृष्ठ पर उभर आता। पुस्तक बंद कर देता, तो वह चेहरा उसे दीवारों, दरवाजों, खिड़कियों और परदों पर दिखाई देने लगता। और फ्रांसेस्को बड़ी बेचैनी से उस दिन की प्रतीक्षा करने लगा, जिस दिन संत अगाता के उपासना-गृह में लुकिनो सपरिवार आने वाला था।

आखिर वह दिन भी आया।

फ्रांसेस्को ने परम आनंद की अवस्था में प्रकृति के सौंदर्य-दर्शन का अद्‌भुत सुख अनुभव करते हुए पहाड़ की चढ़ाई पूरी की और उस छोटे-से उपासना-गृह में पहुंचा, जिसके आंगन में खड़े चेस्टनट वृक्ष के नीचे लुकिनो और उसकी वहन पहले से ही आकर वैठे हुए थे। फ्रांसेस्को ने जल्दी से इधर-उधर देखा— वह लडकी कहीं दिखाई नहीं दी। वह घवरा गया, पर उसने अपनी घवराहट को प्रकट नहीं होने दिया।

अंदर छोटे-से चर्च में एक सेवक ने सारी तैयारियां कर रखी थीं। न जाने कव से जल-कुंड सूखा पड़ा था। फ्रांसेस्को अपने साथ एक वोतल में पवित्र जल लेता आया था। जलकुंड में वह जल उंडेला गया और लुकिनो तथा उसकी वहन ने अपने पापी हाथों की खुरदरी उंगलियां उसमें डवोयीं, जल अपने ऊपर छिड़का और घुटनों के वल देहरी पर वैठ गये।

फ्रांसेस्को उत्तेजित था। रहा नहीं गया तो वह वाहर आया और थोड़ी ही दूर चलने पर उसने देखा कि घास में खिले छोटे-छोटे नीले फूलों पर वह लड़की वैठी सुस्ता रही है, जिसकी उसे तलाश थी। फ्रांसेस्को ने पुकारा— "अंदर चलो, मैं तुम्हारी राह देख रहा हूं।"

लड़की उठ आयी। फ्रांसेस्को ने पूछा— "तुम्हारा नाम क्या है?"

"अगाता।" लड़की ने कोयल की तरह कुहुक कर रहा।

"पढ़ना-लिखना आता है?"

"नहीं।"

"चर्च, ईश्वर और उपासना का को[illegible] मतलब समझती हो?"

लड़की चुप होकर फ्रांसेस्को की ओ[illegible] देखने लगी। फ्रांसेस्को की आंखें उन आं[illegible] से मिलीं। कुछ भी पूछना शेष नहीं रहा। लड़की आकर माता-पिता के पास वैठ ग[illegible] और फ्रांसेस्को ने विधिवत् उपासना आर[illegible] करायी और महसूस किया कि उसका का[illegible] नीरस, शुष्क और व्यर्थ नहीं है — उसमें [illegible] है और सार्थकता है, और यह काम सचमु[illegible] ईश्वरीय है। उसने मन-ही-मन ईश्वर [illegible] प्रति अगाध प्रेम का अनुभव किया और [illegible] प्रेम उसे एक धारा के रूप में ईश्वर से अपन[illegible] ओर और स्वयं से संपूर्ण सृष्टि की ओ[illegible] वहता प्रतीत हुआ।

लेकिन उपासना के वाद जव [illegible] सोआना के चर्च में लौटकर आया, तो उस[illegible] मन में फिर द्वंद्व शुरू हो गया। उसे लगा [illegible] वह संत अगाता के चर्च में अपने पापपू[illegible] इरादे ही पूरे करने गया था और वह अशां[illegible] हो उठा। उसे याद आया, वह एक सप्ता[illegible] वाद फिर उन लोगों से संत अगाता के च[illegible] में आने के लिए कह आया है और यह कह[illegible] समय उसका ध्यान लुकिनो या उसकी वह[illegible] की पाप-शांति की ओर नहीं, वल्कि कहीं और ही था.........

एक सप्ताह फ्रांसेस्को को वहुत लं[illegible] महसूस हुआ। इस वीच मई का महीना शु[illegible] हो गया। चर्च में मेरी की पूजा होने लगी। गांव भर की स्त्रियां और लड़कियां मां मे[illegible]

की प्रार्थना करने चर्च में आतीं और पवित्र कुमारी मां मेरी के गीत गातीं। फ्रांसेस्को मेरी के सम्मान में प्रार्थनाएं करता; लेकिन उन प्रार्थनाओं के दौरान उसे लगता कि वह मेरी की जगह अपने मन की देवी को बैठाये हुए है......दूर पहाड़ पर रहने वाली उस लड़की को, जिसका नाम अगाता है......

आखिर वह सप्ताह भी बीता और फ्रांसेस्को निश्चित समय पर संत अगाता के गिरजे में लुकिनों के पापी परिवार की उपासना कराने पहुंचा। आज के दिन की उसने बड़ी बेचैनी से प्रतीक्षा की थी और सुबह सोकर उठने पर मारे खुशी के ऐसा अनुभव किया था, जैसे वह सब कुछ पा गया है। लेकिन संत अगाता की चोटी पर पहुंचकर उसे निराशा ही हाथ लगी। लड़की आज नहीं आयी थी। फ्रांसेस्को के पूछने पर उसकी मां ने बताया कि घर के काम में व्यस्त रहने के कारण वह नहीं आ सकी।

फिर उपासना कराने में फ्रांसेस्को का मन नहीं लगा। जल्दी-जल्दी बेगार-सी टालकर उसने उन लोगों को विदा किया और स्वयं बाहर आकर बिना कुछ सोचे-विचारे एक ओर चल दिया। किधर जाना है, यह उसके सामने स्पष्ट नहीं था। लेकिन उसे भय किसी प्रकार का नहीं था। खुशी भी नहीं थी। प्रकृति अब भी अपनी जगह उतनी ही सुंदर थी, लेकिन फ्रांसेस्को के लिए इस समय उसमें कोई आकर्षण नहीं था। उसके मन में गुस्सा उबल रहा था और गुस्सा इसलिए था कि अगाता नहीं आयी थी। अगाता के न आने के बीस कारण हो सकते थे, लेकिन फ्रांसेस्को को एक ही कारण नजर आया कि अगाता किसी से प्यार करती है और चर्च में न आकर कहीं अपने प्रेमी के आलिंगन में होगी।

पहाड़ की चढ़ाइयों पर चढ़ता-उतरता, गीले-चिकने पत्थरों पर फिसलता, झाड़-झंखाड़ों में फंसता-उलझता फ्रांसेस्को हांफने लगा। उसकी पोशाक कई जगह से फट गयी, घुटने और हथेलियां छिल गयीं, चेहरे पर खरोंचें आ गयीं, लेकिन वह रुका नहीं। अचानक एक जगह उसे धुआं उठता दिखाई दिया और वहां जाकर उसने देखा कि एक सुनहरे बालों वाला लड़का आग जलाकर एक बर्तन में कुछ पका रहा है।

फ्रांसेस्को को देखकर वह सहम गया, लेकिन पोशाक से पादरी को पहचानकर उठा और विनम्रता से झुककर उसने फ्रांसेस्को का हाथ चूमा। सफाई देना जरूरी नहीं था, लेकिन अपनी हालत देखकर फ्रांसेस्को ने झूठ बोला—"मैं ऊपर एक आदमी को देखने गया था, लौटने में राह भटक गया।"

लड़के की समझ में नहीं आया कि क्या कहे। पादरी के सामने अकेले होने में उसे न जाने कैसा संकोच अनुभव हो रहा था।

कुछ बोला नहीं, पर उसने अपनी बास्कट पत्थर पर बिछाकर पादरी को आसन दिया, आग में कुछ लकड़ियां डालीं और फिर ऊंचे स्वर में किसी को पुकारा। उसकी पुकार पहाड़ियों में गूंजती चली गयी। अनुगूंज ज्यों ही शांत हुई, फ्रांसेस्को ने कुछ आवाजें अपनी ही ओर आती हुई सुनीं। शायद कुछ बच्चे हंसते और किलकारियां भरते आ रहे थे और उनमें कोई स्त्री भी थी। फ्रांसेस्को के हाथ-पांव सुन्न होने लगे, लेकिन साथ ही उसे एक अद्भुत मुक्ति की-सी अनुभूति भी हुई। एक उत्तेजना की अनुभूति भी।

थोड़ी देर बाद फ्रांसेस्को ने एक अजीब तमाशा देखा। आगे-आगे एक बकरी पर सवारी गांठे हुए अगाता आ रही है और पीछे-पीछे बच्चों का एक झुंड हंसता-चीखता चिल्लाता आ रहा है। अगाता ने बकरी के सींग पकड़ रखे हैं और बकरी की पीठ पर सवार होने के बावजूद वह पैरों पर चल रही है। शायद यह सवारी उसने बच्चों के मनोरंजन के लिए चुनी थी, लेकिन पहाड़ी रास्ते पर तेज दौड़ने वाली बकरी को एकदम छोड़कर उतर पड़ना गिरने के डर से संभव नहीं था, इसलिए वह फ्रांसेस्को के पास आकर ही रुक पायी।

उस अद्भुत सवारी से उसके वस्त्र अस्त-व्यस्त हो गये थे, जिन्हें ठीक करने का ध्यान उसे तभी आया, जब उसने पादरी को देखा। हंसी भी उसकी तभी रुक पायी। फ्रांसेस्को उस अल्हड़-मस्त लड़की को देखता ही रह गया। फिर जब वह पास आ खड़ी हुई, उठते हुए बोला—"आज तुम चर्च में क्यों नहीं आयीं?"

उसके स्वर और चेहरे से लगा, जैसे वह बहुत गुस्से में है, लेकिन फ्रांसेस्को के मन में उस प्रश्न का अर्थ ही कुछ और था। लड़की चुप रही तो वह उसे जोर-जोर से डांटने लगा। शब्द और शब्द ...... जिनका आत्मा से कोई सरोकार नहीं। लेकिन उसे अपने भीतर एक अद्भुत शांति अनुभव हुई। उसे लगा, जैसे वह पादरी नहीं, गड़रिया है और एकदम जंगली ढंग से अपनी भावनाएं व्यक्त कर रहा है। और यह सच भी था—उसका वास्तविक रूप उसके सामने आ गया था और अब वह इस खयाल से बचना भी नहीं चाहता था कि उसके अंदर कितना परिवर्तन हो चुका है।

यह बेतहाशा पागलपन से भरी तलाश पादरी की तो नहीं हो सकती। चर्च ने तो उसे यह काम नहीं सौंपा कि वह इस तरह भटकता हुआ किसी लड़की को खोजे और खोजकर इस तरह डांटे। जीवन में पहली बार फ्रांसेस्को ने अनुभव किया कि उसके कदम ही नहीं, उसकी आत्मा भी किसी शून्य में निकलकर भटक गयी है। वह ऐसी जगह आ पहुंचा है, जहां वह आदमी की तरह खड़ा नहीं है, बल्कि पत्थर की तरह लुढ़क रहा है, बूंद की तरह गिर रहा है, तूफान में पत्ते की तरह उड़ रहा है।

गुस्से में बोला गया प्रत्येक शब्द उसे बता रहा था कि अब अपने आप पर उसका कोई वश नहीं रहा और अगाता पर वह

किसी भी कीमत पर अधिकार कर लेना चाहता है। शब्दों से ही सही, उसने अगाता को अपने अधिकार में कर लिया है। वह उसे जितना ही अपमानित करता, उतना ही सुख उसे अनुभव होता। अगाता के चेहरे पर झलकने वाली प्रत्येक पीड़ा उसके मन में एक उन्माद जगा जाती और अगर दूसरे लड़के-बच्चे वहां न होते, तो शायद उसी उन्माद में वह लड़की के पैरों पर गिर-कर मन की सच्ची भावना व्यक्त कर देता।

आग पर रखे बर्तन में उबलता हुआ खाद्य पदार्थ पक चुका था और बच्चे पादरी के सामने उसे न खा सकने के विचार से उठा-कर चलने लगे, तो फ्रांसेस्को ने अगाता से कहा—"तुम सोआना में मेरे स्कूल में आना। वहां मैं तुम्हें लिखना-पढ़ना सिखाऊंगा। सुबह और शाम की प्रार्थनाएं करना सिखा-ऊंगा। ईश्वर की आज्ञाएं तुम्हें सुनाऊंगा और बताऊंगा कि पाप से कैसे बचा जाये। फिर तुम हर सप्ताह मेरे सामने आत्म-स्वीकार (कन्फेशन) किया करोगी।"

लेकिन इतना कहने के बाद ज़ब फ्रांसे-स्को चला आया—एक बार भी मुड़कर पीछे देखे बिना—तो सबसे पहले उसे स्वयं आत्म-स्वीकार की इच्छा हुई। उस पाप का स्वीकार जो उसने कर डाला था। लेकिन निकट के एक चर्च में जाकर आत्मस्वीकृति कर आने के बाद भी उसे शांति नहीं मिली। उलटे, उसे आपने आप पर, चर्च पर और सब चीजों पर ग़ुस्सा आने लगा। फिर उसे लगा कि अब सचमुच वह गंदे, बेहूदे, अश्लील शैतान की गिरफ्त में आ गया है। अगाता याद आने लगी। क्या वह सोआना आयेगी? उसके हाथों से खींची हुई डोरी से चर्च की घंटियां बजेंगी?

वह प्रतीक्षा करने लगा। तरह-तरह के विचार मन में आये। पाप की वह संतान सोआना के चर्च में आयेगी, तो लोग क्या कहेंगे?

दोपहर के समय फ्रांसेस्को ने गांव के चौराहे की ओर से उठता हुआ एक शोर सुना। एक भीड़ का शोर। पुरुषों की दबी-दबी-सी किसी चीज का विरोध करती हुई आवाजें, लेकिन स्त्रियों की चीखें, चिल्ला-हटें और गालियां ऊंचे स्वर में सुनाई पड़ीं। फ्रांसेस्को ने खिड़की से झांककर देखा और आतंक से जड़ हो गया। आगे-आगे अगाता और पीछे-पीछे लोगों की भीड़। मर्द, औरतें और बच्चे—सब इस तरह पत्थर फेंकते और शोर मचाते हुए, जैसे वह सुंदर लड़की कोई खूंख्वार जंगली जानवर हो और वे उसे गांव से भगा देना चाहते हों।

फ्रांसेस्को की चेतना तब लौटी, जब चर्च की घंटी जोर-जोर से बजी। उसने जल्दी से दरवाजा खोला और अगाता को अंदर खींच लिया। पादरी को देखकर शोर थम गया और पत्थर फेंकते हुए हाथ रुक गये। लेकिन दरवाजा बंद कर लेने के बाद भी कुछ बचकाने हाथों से फेंके हुए पत्थर दरवाजे से टकराते रहे।

लड़की बेहद डरी हुई थी। फ्रांसेस्को स्वयं भी उत्तेजित हो उठा था। लेकिन

उसने अगाता को अपने पीछे आने का इशारा किया और उसे चर्च से अपने निवास-स्थान में ले आया। सीढ़ियों पर पेट्रोनिला खड़ी थी और उन दोनों को इस दृष्टि से देख रही थी, जैसे हर संभव सहायता करने को तैयार हो। लेकिन अगाता उसे देखकर अपनी अपमानजनक स्थिति के प्रति सचेत हो गयी।

ऊपर पहुंचकर फ्रांसेस्को ने अगाता से बैठने के लिए कहा। वह बैठ गयी और बताने लगी कि गांव वालों ने किस तरह उस पर हमला किया। 'किस तरह' पर ही उसका ध्यान था, 'क्यों' पर नहीं। क्रुद्ध भीड़ के उस आक्रमण का कोई कारण भी हो सकता है, वह नहीं समझ पायी, क्योंकि बचपन से प्रकृति के बीच रहते-रहते उसे ऐसे अनेक अनुभव हुए थे कि आदमी अगर बर्र या ततैयों के छत्ते के पास या चींटियों के बिल के पास चला जाये, तो वे आक्रमण कर देती हैं और काटती हैं। उसकी दृष्टि में यह आक्रमण एकदम प्राकृतिक था।

लेकिन बर्र-ततैयों से भी तो आखिर निपटना ही पड़ता है। उनके आक्रमण से कभी हमें नफरत होती है, कभी गुस्सा आता है, कभी कष्ट होता है और हम उन पर क्रुद्ध होते हैं, या उन्हें गालियां देते हैं या रोने लगते हैं। जब जैसी परिस्थिति हो। इस-लिए अगाता सोआना के निवासियों के आक्रमण से क्षुब्ध तो थी, लेकिन रो नहीं रही थी। उसने जो कुछ बताया, या तो गुस्से में, या खुलकर हंसते हुए। और जब वृद्धा पेट्रोनिला उसके पास बैठकर उ[illegible] फटे हुए कपड़े सीने लगी, तो वह भी [illegible] गयी और अपने बिखरे हुए सुनहरे बालों [illegible] संवारने लगी।

फ्रांसेस्को के जीवन में यह पहला अव[illegible] था, जब उसने अगाता की पूरी, गूंजती [illegible] शानदार सुरीली आवाज सुनी। साथ [illegible] उसने पेट्रोनिला की उपस्थिति के का[illegible] अपनी प्रेयसी से अलंघ्य दूरी महसूस [illegible] इतनी निकटता और इतनी दूरी! उ[illegible] इच्छा हो रही थी कि अगाता को सीने [illegible] लगा ले।

आखिर उसे एक उपाय सूझा। वह ए[illegible] दम उठकर गांव के मुखिया सिंडाको के [illegible] चल दिया। सिंडाको ने बड़े ध्यान से [illegible] बात सुनी और अगाता को चर्च में [illegible] देने की बात का समर्थन किया। ईसाई [illegible] के अनुसार यह बिलकुल ठीक था कि स[illegible] से बहिष्कृत और सताये हुए लोग भी [illegible] प्रभु की शरण में आयें, तो उन्हें शरण [illegible] जाये। सिंडाको ने यह वादा भी किया [illegible] वह गांव वालों की इस हरकत के खि[illegible] कड़ी कार्रवाई करेगा।

फ्रांसेस्को के चले जाने के बाद सिंडा[illegible] की पत्नी ने कहा—"यह नौजवान पा[illegible] किसी दिन कार्डिनल बनेगा—हो सकता [illegible] पोप भी बन जाये। उसका चेहरा दे[illegible] कैसा हो गया है! मुझे लगता है, यह भट[illegible] हुई आत्माओं को पाप-पंथ से हटाकर [illegible] मार्ग पर लाने के लिए बड़ी कठिन तप[illegible] कर रहा है—शायद उपवास और जाग[illegible]

करते हुए यह हर समय प्रार्थनाएं किया करता है। पर मुझे डर लगता है, क्योंकि शैतान सबसे ज्यादा पवित्र लोगों पर ही अपने हथकंडे आजमाता है। ईश्वर करे, पादरी अपनी तपस्या में शैतान से बचा रहे।"

लेकिन रास्ते में फ्रांसेस्को का सामना जिन स्त्रियों से हुआ, उनकी आंखों में अलग-अलग भाव थे। श्रद्धा के भी, भय के भी और व्यंग्य तथा उपहास के भी। फ्रांसेस्को नजरें झुकाये चर्च में लौट आया।

चर्च में मां मेरी के सामने घुटनों के बल बैठकर वह प्रार्थना करने लगा—"मां मेरी, सहायता करो।" लेकिन इस प्रार्थना का अर्थ यह बिलकुल नहीं था कि वह अगाता के आकर्षण से छूट जाये; बल्कि वह तो यह कहना चाह रहा था कि माता मरियम उसके मन की बात समझें, उसे क्षमा करें और उसके इरादों पर अपनी स्वीकृति दें। अचानक उसने प्रार्थना अधूरी छोड़ दी। उसे लगा, अगाता चली न गयी हो। लेकिन कमरे में आकर उसने देखा, अगाता पेट्रोनिला के साथ मौजूद है।

आते ही फ्रांसेस्को ने घोषणा की—"मैंने सब ठीक कर दिया है। चर्च और पादरी तक आने का रास्ता सबके लिए खुला है। मुझ पर विश्वास रखो। आज की-सी घटना भविष्य में नहीं होगी।" उसके बाद उसने बड़े बिशप के लिए एक संदेश लिखा और पेट्रोनिला को देते हुए कहा—"इसे अभी-अभी पहुंचाना है। तुम स्वयं चली जाओ—तुरंत।" फिर बोला—"और देखो, रास्ते में कोई मिले तो कहना, अगाता चर्च में मेरे पास है और मैं उसे ईसाई धर्म की शिक्षा दे रहा हूं। अगर किसी ने बाधा पहुंचायी तो वह हमेशा के लिए नरक का भागी होगा। कहना, अगाता पर पत्थर मारा गया तो वह पत्थर अगाता को नहीं, पादरी को लगेगा। जाओ, अंधेरा होने पर मैं खुद ही अगाता को उसके घर पहुंचाने जाऊंगा।"

वृद्धा चली गयी, तो कमरे में कुछ देर अटूट खामोशी छायी रही। अगाता कुर्सी पर बैठी थी—अपने दोनों हाथ गोद में रखे हुए। अब तक वह काफी स्वस्थ हो चुकी थी; लेकिन फ्रांसेस्को के सहानुभूतिपूर्ण शब्द सुनकर उसकी आंखों से आंसू बह-बहकर उसके कपोलों को भिगोने लगे। फ्रांसेस्को की समझ में नहीं आया कि क्या करे, क्या कहे। वह खिड़की से बाहर देखने लगा। पहाड़ों पर शाम उतरने लगी थी। न जाने कितने क्षण यों ही बीत गये।

फ्रांसेस्को को लगा, वह सपना देख रहा है। यह यथार्थ नहीं हो सकता कि उसके एकांत कमरे में उसकी चिरप्रतीक्षित प्रेयसी बैठी हो। वह अभी मुड़ेगा और पायेगा कि अगाता नहीं है। और अगाता मौजूद हुई तो क्या होगा? क्या यह मुड़कर देखना फ्रांसेस्को के संपूर्ण पार्थिव अस्तित्व का निर्णायक नहीं हो जायेगा? बल्कि पार्थिव अस्तित्व के आगे का भी?

इन प्रश्नों में खोया वह काफी देर खड़ा रहा। इस बीच सारी ईसाइयत का पौराणिक इतिहास उसकी आंखों में घूम गया।

सारे परिचित लोगों के चेहरे उसे दिखाई दे गये। अपनी मां दिखाई दी। सोआना के लोग दिखाई दिये और अंततः उसने अपना भावी रूप अपनी आंखों से देखा; समाज से बहिष्कृत लुकिनो स्कारोबाटा का रूप। उसने अपनी आंखें बंद कर लीं और दोनों हाथों से कनपटियों को जोर से दबाया। और तब वह अगाता की ओर मुड़ा।

अगाता चौंक उठी। फ्रांसेस्को का चेहरा विकृत हो रहा था, मानो मृत्यु की उंगली उसे छू गयी हो। वह धीरे-धीरे लड़खड़ाता हुआ अगाता की ओर आया और अचानक घुटनों के बल उसके सामने बैठकर उसने अगाता का चेहरा अपने हाथों में ले लिया। उसे लगा, गांव वाले कितने क्रूर हैं कि उन्होंने सौंदर्य की देवी अफ्रोदिते जैसी रूपवती इस लड़की पर इतना अत्याचार किया है! यदि यह इसी तरह असुरक्षित रही तो इसका क्या होगा? आज वह न होता तो, लोग पत्थर मार-मारकर शायद उसे मार ही डालते......

और यह सोचकर फ्रांसेस्को ने लड़की पर एक अधिकार-भाव अनुभव किया और अपनी उस भाव-विह्वल दशा में उसने तय किया कि अब वह उसे असुरक्षित नहीं छोड़ेगा। हर स्थिति में वह अगाता का साथ देगा, भले ही सारी दुनिया उसके सामने आ जाये—भले ही ईश्वर भी।

शायद और कोई स्थिति होती, और कोई व्यक्ति होता तो अगाता डर जाती, लेकिन फ्रांसेस्को से वह नहीं डरी। ऐसा लगा, जैसे वह भूल गयी है कि फ्रांसेस्को एक अजन[illegible] आदमी है, पादरी है। उसे लगा, फ्रांसे[illegible] अचानक उसका भाई बन गया है और उ[illegible] फ्रांसेस्को की पकड़ से छूटने के बजाय स्[illegible] ही सिसकते हुए अपना चेहरा उसके सीने[illegible] छिपा लिया।

और अब अगाता को लगा, जैसे व[illegible] नन्ही-सी बच्ची है और फ्रांसेस्को उस[illegible] पिता है। वह उससे लिपट गयी। लेकि[illegible] फ्रांसेस्को ने किसी स्त्री को इससे पहले अ[illegible] निकट अनुभव नहीं किया था। कुछ देर व[illegible] अगाता का चेहरा हाथों में लिये एकट[illegible] देखता रहा, फिर झुककर अचानक उस[illegible] आंसुओं से भीगे चेहरे पर अपने पागल ओं[illegible] रख दिये। सारी सृष्टि उस परमानंद [illegible] क्षण में स्थिर हो गयी।

कुछ क्षण उसी तरह बीते। फिर फ्रांसे-स्को ने स्वयं को अगाता के आलिंगन [illegible] मुक्त करते हुए कहा—"चलो, तुम्हें तुम्हा[illegible] घर पहुंचा दूं। तुम अकेली सही-सलाम[illegible] नहीं जा सकतीं।"

बाहर अंधेरा घिर आया था। वे दोन[illegible] चर्च से निकल आये और पहाड़ की ओ[illegible] चल दिये। फ्रांसेस्को ने एक बार मुड़क[illegible] चर्च की ओर देखा और अनुभव किया [illegible] अब कभी यहां लौटना नहीं होगा। लेकिन उसे इस बात पर खेद नहीं था। वह पूरी तरह परिवर्तित हो चुका था। परि-वर्तित ही नहीं, उदात्त और मुक्त।

सुहावनी रात। फूलों की मादक गंध। झरनों की मधुर कलकल ध्वनि। शीतल

पवन का सुखद स्पर्श। एक-दूसरे को पकड़े हुए, सहारा देते हुए वे चले जा रहे थे। दोनों ही जैसे नशे में हों। वे चुप थे। बोलने की जैसे आवश्यकता ही नहीं रह गयी थी। अगाता और फ्रांसेस्को। फ्रांसेस्को और अगाता। वे भूल गये थे कि कौन क्या है। न वह पादरी था और न वह पापी परिवार में जनमी लड़की। बस, वे थे स्त्री और पुरुष। आदम और ईव। और कैसा सुख......!

फ्रांसेस्को ने जीवन में पहली बार ईश्वर से सच्ची निकटता अनुभव की। पाप-पुण्य की भावनाएं पीछे छूट गयी थीं। फ्रांसेस्को के मन में चलने वाला द्वंद्व समाप्त हो गया था। हमेशा के लिए।
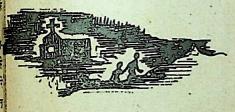
इतना सुनाकर लुडोविको चुप हो गया। उसकी कहानी की पांडुलिपि वहीं समाप्त हो गयी थी। मैं आगे की कहानी भी सुनना चाहता था; लेकिन लुडोविको ने कहा—"कहानी यहीं खत्म होती है और वास्तव में होनी भी चाहिये।"

"लेकिन आप तो कह रहे थे कि आपने यह कहानी सोआना के लोगों से सुनी है, क्या उन्होंने इसके आगे कुछ नहीं सुनाया?" मैंने पूछा।

"सोआना के लोगों ने मुझे यह कहानी नहीं सुनायी थी, उन्होंने मुझे एक सच्ची घटना सुनायी थी कि करीब छः वर्ष पहले सोआना के लोगों ने एक पादरी को चर्च में घुसकर लाठियों और पत्थरों से मारा था और भगा दिया था। यह घटना सच्ची है, इसका सबूत यह है कि जब मैं अर्जेंटाइना से यूरोप आया और इस क्षेत्र में आकर बसा, तो यहां मोंते गेनेरोसो पर वह पापी परिवार रहता था—हालांकि उसका नाम कहानी में कल्पित है। उसी तरह अगाता भी मेरा गढ़ा हुआ नाम है—पर यह सच है कि उस परिवार में एक जवान लड़की थी और लोग कहते हैं कि पादरी से उसके अवैध संबंध थे। और कहते हैं कि पादरी ने असलियत को छिपाने की कोशिश भी नहीं की और न अपने पाप का प्रायश्चित करने की ही कोशिश की।"

मैंने देखा कि लुडविको आगे कुछ नहीं सुनाना चाहता तो मैंने विदा मांगी। काफी देर हो चुकी थी। सूरज डूब चुका था और पहाड़ पर शाम उतर आयी थी। लौटते समय की एक ही बात मैं आपको बताऊंगा कि पहाड़ से उतरते हुए मैंने किसी नारी-कंठ से आते हुए मधुर गीत के स्वर सुने और फिर उसे देखा भी। वह पानी का घड़ा सिर पर उठाये हुए ऊपर आ रही थी। उसके पीछे-पीछे एक बच्चा था, जिससे वह शांत, मधुर स्वर में बातें करती आ रही थी। मैं उसका सौंदर्य देखता ही रह गया।

वे दोनों लुडोविको की झोंपड़ी की ओर ही जा रहे थे।

★

सिंधु-स्मरण

इंदुलाल गां

किशोरावस्था की कोमल उमंग और उम्र की पहली पचीसी के आविर्भाव का वह पहला परिभ्रमण था। जिसे वेद में 'समुद्र-नंदिनी' कहा गया है, उस पुण्यसलिला सिंधु के किनारे-किनारे लगातार बारह महीने तक घूमने का शारीरिक और मानसिक सौभाग्य मुझे मिला था। या यों कह लीजिये कि यह तरुणावस्था के प्रारंभ काल की एक अत्यंत मुग्धमंगलकारी यात्रा थी। जैसे टूटा हुआ दर्पण अपने अनेक टुकड़ों में हमारे मुखड़े के भिन्न-भिन्न भागों का खंडित होते हुए भी दर्शन कराता है, उसी तरह अनेक जलखंडों में फैली हुई बहुरूपिणी सिंधु का अपूर्ण-पूर्ण दर्शन मुझे मिला था।

कैलास से उत्पाती तरुणी की तरह सरसराती नीचे उतरती हुई और पार्वती के चरणों की वंदना करके ससुराल जाती हुई गंभीर-गर्वीली, चतुर कन्या-सी सिंधु पश्चिमोत्तर की ओर शरमाती-शरमाती आगे बढ़ती है। पर ससुराल जा रही कन्या को सखियों का साथ तो चाहिये ही न? इसलिए आगे रुककर वह दूसरी सहेलियों के साथ दक्षिण-पश्चिम की ओर इस तरह चलती है, जैसे कोई अभिसारिका प... पकड़े जा रही हो।

तपःशोभना सिंधु हजारों वर्षों से अ... इस ससुराल में है, लेकिन मन यहां होने... बावजूद उसकी आंखें पार्वती के चरणों... ही स्थिर हो गयी हैं। वेद में 'कारुण्य... कहकर जिसकी प्रशस्ति की गयी है, ... पितृप्रदेश कैलास का वरदहस्त तो सिं... मस्तक पर से कभी हटा ही नहीं। ... शैलाधिराज-तनया पार्वती आज भी क... हैं—"मैं यहां हूं बहन, तेरे पास हूं। ... यहां आये; वेदों की पूजा-अर्चना के फूल... जूड़े में गूंथे; तेरी सहस्रमुखों से प्रशस्ति... गायी गयीं; तेरे कारण हमें भी ऋ... मुनियों का अर्घ्य प्राप्त हुआ।

"तू बार-बार पीछे मुड़कर क्या देख... है बहन? जिसकी तू है, उसी की मैं। आ... वर्त का आंगन छोड़कर मैं कहीं जाने वा... नहीं; किसी और की होने वाली नहीं।"

वर्चस्वी आर्य-संस्कृति का बीज ... रोपा गया था। वरुण और अग्नि, इंद्र ... हिरण्यगर्भ सविता के प्राणोत्तेजक ... प्रेरणाप्रद स्तवनों से सिंधु का प्रदेश ... और

शुद्ध और चारित्र्यशुद्ध बना था। अत्रि, अंगिरा, भारद्वाज, वशिष्ठ और विश्वामित्र जैसे समर्थ तपस्वियों की कल्याणमयी छाया के नीचे यहां की प्रजा निर्भीक और संस्कारवान बनी थी। देवताओं द्वारा निर्मित और रक्षित इस प्रदेश की सात नदियों में सिंधु और सरस्वती आर्यों को अत्यंत प्रिय थीं।

सिंधु के विषय में तो कहा जाता है कि साक्षात् वरुणदेवता ने इसके लिए मार्ग प्रशस्त किया था। यह पृथ्वी का सहारा लेकर धीरे-धीरे आगे बढ़ती थी, परंतु जब इसमें बाढ़ आती, तो इसके हाथ आकाश को छू लेने के लिए ऊपर उठ जाते। इसका पानी हमेशा श्वेत, स्वच्छ और तेज से झिलमिलाता रहता था। अन्य नदियों का पानी जब इसमें मिलता, तो इसका प्रयाण शान के साथ आगे बढ़ती हुई समर-सेना जैसा लगता। पृथ्वी के सरिता-समूह में सिंधु सर्वाधिक वेगवती है। इसका प्रवाह स्वस्थ युवती के सौष्ठवपूर्ण शरीर जैसा सप्रमाण रहता। इसके तट पर उत्तम अश्व उत्पन्न होते और बढ़िया अनाज उगता।

उन दिनों मुझे सिंधु से अजीब-सा लगाव हो गया था। सारे-सारे दिन सिंधु के किनारे-किनारे फिरता, और चांदनी रातों में कभी-कभी आधी रात तक किसी ऊंची शिला पर बैठकर उसके अस्खलित प्रवाह को देखा करता। मेरी कल्पना में ऋषि-मुनियों के आश्रम घूमते रहते। मुझे ऐसा लगता, जैसे मैं उनकी पर्णकुटियों के द्वार पर खड़ा उनकी याज्ञिक क्रियाओं को देख रहा हूं और उनके हवन में आहुतियां डाल रहा हूं। मेरा मन होता कि मिट्टी के कलश लिये रूपवती तेजस्वी ऋषि कन्याएं सिंधु में जल भरने आयें और मैं उनकी आंखों में आंखें डालकर देखूं, बातें करूं।

किशोरावस्था के बाद की पहली पचीसी का यह मेरा अद्भुत रमणीय स्वप्न था।

सिंधु को मैंने जहां भी देखा है, हमेशा भिन्न स्वरूप में ही देखा है। मुझे लगता है, जिस प्रकार प्रकृति प्रभात, मध्यान्ह, संध्या और मध्य रात्रि को नये और अनोखे रूप धारण करती है, उसी प्रकार सिंधु के एक-एक प्रवाह का रूप उसके दूसरे रूपों से एकदम भिन्न होता जाता है। सक्खर के निकट 'साधुवेला' के मंदिरों के समूह के पास बहती सिंधु मुझे खेल में खोयी हुई छोटी-सी लड़की लगी थी।

मंद-मंद मुस्कराता गर्वीला चेहरा, उठती-गिरती पलकों जैसी तरंगें और प्रवाह ऐसा, जैसे उठते कदमों के साथ उछलती हुई साड़ी की चुन्नटें। पानी की सतह इस तरह थरथराती जैसे खेतों में खड़ी कोई कृषक-कन्या धीरे-धीरे अनाज की ओसाई कर रही हो। पूर्व दिशा में सूर्य कुछ ऊपर चढ़ आया था, इसलिए एकदम छोर तक

पहुंचते उसके प्रवाह-पथ पर स्वर्णरज-सी विखरी हुई थी और वह हिरण्यवर्णा सिंधु ऐसी लगती थी, जैसे कोई ऋषि-कन्या कोई गीत गाती हुई सोने के पांसों से खेल रही हो। संपूर्ण जल-विस्तार अभिनव सौंदर्य से भरा-भरा लगता था—आंखों को भला लगने वाला, स्वच्छ, तेजस्वी और शांत।

'देवलबंदर' के पास ताड़ के झुंडों के बीच से निकलती रूपगर्विता सिंधु के यौवन को देखकर तो मैं तट पर स्तंभित खड़ा रह गया था। पानी में पैर डालते ही पूरे शरीर को खींच लेने वाला वेगवान प्रवाह और ऐसा समृद्ध जल-सौंदर्य मैंने और कहीं नहीं देखा। उस समय मुझे लगा कि यदि इस जल-सुंदरी को रास्ते में ही रोक लिया जाये, तो......? मैंने जरा आगे पग बढ़ाकर अतृप्त जिज्ञासा से उसके प्रवाह का स्पर्श किया, तो ऐसा लगा, मानो उसका उत्तरीय मेरे हाथ में आ गया हो—जैसे पुरूरवा के साथ में उर्वशी का उत्तरीय। लेकिन तभी पानी के प्रवाह ने मेरा पैर अपनी ओर खींचा और मैं डगमगा गया। घबराकर मैं अलग हट गया। मेरी इस पराजय पर किनारे खड़े वृक्ष खिल-खिलाकर हंस पड़े।

सिंधु की ऐसी उग्र, मनोरम विलक्षणता देखकर मुझे लगा, शायद ऐसे ही प्रचंड प्रवाह में महिवाल के प्रेम में पागल सोहनी किसी अंधेरी रात में कूद पड़ी होगी। एक जलोन्मत्त जलसुंदरी और दूसरी प्रणयोन्मत्त प्रेमिका। दोनों की अधीरता एक जैसी।

सोहनी ? हां, शाह अब्दुल लतीफ की यह तेजस्विनी नारी सृष्टि भी उस ... मेरी कल्पना में थी। रोज रात सिं... धारा में तैरकर वह अपने प्रियतम ... वाल से मिलने जाती थी। उसके प्रेम-... के सामने सिंधु के जल-प्रवाह की ... बिसात! सिंधु सोहनी के मनोवेग को ... चानती और सोहनी को सिंधु के ... पानी में तैरना अच्छा लगता। कहते ... सोहनी सिंधु के ममतालु वक्ष पर तै... नहीं थी, पैरों से चलती हुई पार हो ... थी। चलने की अपेक्षा तैरना उसके ... अधिक आसान था।

सोहनी तो सिंधु-तट की राधा है। ... तट विहारिणी राधा के जीवन में ... मिलन की मधुर तृप्ति का सात्विक ... है, लेकिन सिंधु की सुहागन सोहनी ... तन अतृप्ति की वेदनामयी, किंतु ... प्रतिमा है। गिरिधर की बावरी मीरा ... तरह उसने भी पार्थिव बंधनों को ... दिया है। अपनी अनेक व्यवहार कुशल ... घरेलू सहेलियों की तरह वह गृहिणी ... बन सकी।

वह तो आदर्श के ध्रुवतारे पर ... गड़ाये सत्य की सीमा लांघने निकल ... है। किधर ? जहां जल-चक्र विनाश ... तांडव-नृत्य करते हैं, जहां कभी सैकड़ों ... णियों की देहलताएं इस तरह लुप्त हो ... कि उनका नाम-निशान भी नहीं रहा, ... मृत्यु के मंझधार में जीवन-ज्योति की ... लगाये, प्यार की पुकार पर दौड़ती सो... अपने प्रियतम के पदचिन्ह खोजती ...

बढ़ती जाती है। उन्मत्त सिंधु भी यहां से उसी प्रकार आगे बढ़ती जा रही थी।

'ब्राह्मनावाद' के पश्चिम में बहती सिंधु म मुझे मां के वात्सल्य के दर्शन हुए। अथाह पानी जैसे स्वयं को समेटे हुए शांत बैठा हो। तट पर फैली वनश्री ने भी अद्‌भुत मौन धारण कर रखा था। यहां की सिंधु मुझे ऐसी लगी, जैसे कौरवों से युद्धरत पांडवों की चिंताकातर माता कुंती उस संकट-काल में क्रंदन कर रही हो और उसकी आंखों से झरने वाली अश्रुधारा ही मानो सिंधु के रूप में बह रही हो। सिंध तो एकदम ही सूखा प्रदेश है। वर्षा न हो, तो सिंधु रूपी इस मां के अलावा इस रेतीले प्रदेश को बारहों महीने हरा-भरा और उपजाऊ कौन बनाये रखेगा?

इतिहास ने सिंधु-तट पर कई बार करवट बदली है। कौन जाने इच्छा से या अनिच्छा से, पर लक्ष्मी-लोलुप विदेशियों को सिंधु ने ही अपने सीने पर से गुजारकर भारत की धरती पर उतारा था। आखिर जननी तो जननी है। उसमें अपने-पराये का भेद नहीं। उसके द्वार पर जो भी आये, उसे आश्रय देना उसका धर्म है। भारत पर अधिकांश आक्रमण इसी मार्ग से हुए हैं। शक और हूण, सिकंदर और बाबर इसी मार्ग से भारत की धरती पर आये थे।

महीनों तक मैं वहां घूमा हूं, पर यहां की सिंधु को मैंने उछलते हुए नहीं देखा। अत्यंत शांत प्रवाह—मां की गोद जैसा। अथाह जल होते हुए भी ब्राह्मनाबाद की इस सिंधु में इतना आकर्षण था कि मुझे उसमें स्नान करने की इच्छा हो आयी थी।

एक बार आधी रात के समय मैंने एक अविस्मरणीय कौतुक देखा। रोहरी के उत्तर में पंद्रह मील दूर सिंधु का पानी सुलगता हुआ-सा दिखायी दिया। पानी में भयंकर कंपन और धारा मानो उलटी बहती हुई। आकाश एकदम शून्य। एक भी तारा नहीं। चंद्रमा भी नहीं। रात्रि की गोद में पृथ्वी अचेत पड़ी हुई थी और धुंधली दिशाएं धुएं के वस्त्र पहने चुपचाप बैठी हुई थीं।

दूर-दूर तक सिंधु के पानी को चीरकर छेड़े हुए भुजंग के फूत्कारों जैसी आग बाहर निकली। ऐसी लपटें उठीं, जैसे शेषनाग के फन लपलपा उठे हों। बहुरंगी आग का वह फव्वारा ऊंचा, और ऊंचा उठता गया। युगों-युगों से भूखा वडवानल सिंधु के पानी को पी नहीं रहा था, घास की तरह चबा रहा था। चरड़-चरड़ की आवाज—जैसे पानी जल रहा हो। उस आवाज से वातावरण में भय व्याप्त हो गया। सिंधु के जल-अश्वों की लगाम हाथों में पकड़े विकराल अग्नि तट की ओर बढ़ती आ रही थी।

सिंधु का यह अत्यंत भयावह और रोमांचक दर्शन था। वडवानल से लिपटी, जलती हुई सिंधु को तभी मैंने पहली बार देखा और पार्वती के असंख्य नूपुरों जैसी चपल-चंचल, किंतु दुर्धर्ष व्यक्तित्व वाली उस सिंधु का बहुविध दर्शन मेरे मन में कविता की मालाएं गूंथ रहा था।

अनुवाद : गिरिजाशंकर त्रिवेदी

★

हंसने में हर्ज क्या!

• शरद राकेश •

यह किस्सा लेखक जी.के. चेस्टरटन सुनाया करते थे। बहुत ही उदास चेहरे वाले एक सज्जन से उनकी मुलाकात हो गयी। कारण पूछा, तो वे अपना दुखड़ा रोने लगे—"क्या बतायें साहब, मेरी एक कुंआरी नौजवान बहन है। वह अपने को मुर्गी समझ बैठी है और कुकड़ूं कूं—कुकड़ूं कूं करती रहती है।" चेस्टरटन ने सहानुभूतिपूर्वक कहा—"तो आप किसी अच्छे मानस-चिकित्सक को क्यों नहीं दिखा देते। वे इस रोग का इलाज कर देंगे।" इस पर वे सज्जन और भी उदास और परेशान हो गये और बोले—"इलाज तो हो जायेगा साहब, मगर हमें अंडों की भी जरूरत रहती है न?"

ooo

रोगी बार-बार ताली बजा बैठता था। मानस-चिकित्सक ने उससे पूछा कि ऐसा क्यों करते हो। रोगी बोला—"इससे शेर पास नहीं आते।" मानस-चिकित्सक ने कहा—"मगर यहां तो कोई शेर नहीं है?" उत्तर मिला—"देख लिया न आपने मेरी तालियों का असर।"

ooo

एक पार्टी में एक मशहूर सांडयोद्धा का पाला प्राणिदया संघ की एक उत्साही कार्यकर्त्री से पड़ गया। वे देवीजी इस सुनहरे मौके को हाथ से नहीं जाने देना चाहती थीं। उन्होंने सांडयुद्ध की क्रूरता पर लंबा लेक्चर पिलाना शुरू किया। बेचारा सांडयोद्धा शिष्टाचारवश सुनता रहा, सुनता रहा। आखिरकार जब वे चुप हुईं, तब उसने बड़ी विनम्रता से कहा—"माना सांड की जान लेना क्रूरता है, मगर देवीजी हम एक क्रूरता कभी नहीं करते — हम उन्हें कभी 'बोर' करके नहीं मारते।"

ooo

बॉस ने नये चपरासी से पूछा—"क्या मेरी सेक्रेटरी ने बताया कि 'लंच' के बाद तुम्हें क्या करना है?"

"जी हां! उन्होंने कहा कि आप जैसे ही आफिस में वापस आयें, मैं उन्हें जगा दूं।"

ooo

एक बार एक बहुत मोटे आदमी ने प्रसिद्ध रूसी चिकित्सक से पूछा कि मुटापे के लिए
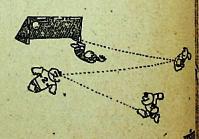
कोई अचूक दवा है क्या ?"

"क्यों नहीं," डाक्टर ने कहा—"सारा दिन एक रूबल पर ही गुजार दो और वह भी स्वयं कमाकर।"

०००

पति—"क्या खयाल है, आज शाम मजे से गुजारी जाये ?"

पत्नी—"बिलकुल ठीक! और अगर मेरे पहले तुम लौट आओ, तो राहदरी की वत्ती जलती छोड़ देना।"

०००

एक शिक्षिका ने क्लास के बच्चों से कहा कि बड़े होकर वे जो बनना चाहते हैं, उसका चित्र बनायें। सब चित्र बनाने में जुट गये। किसी ने सिपाही बनाया, किसी ने डाक्टर, किसी ने कुछ, तो किसी ने कुछ। एक बच्ची चुपचाप बैठी थी। शिक्षिका ने यह देखकर पूछा—"क्यों अन्नु, बड़ी होकर तुम क्या बनना चाहती हो, यह नहीं मालूम ?"

अन्नु ने कहा—"मालूम है, लेकिन उसका चित्र कैसे बनाऊं यह नहीं मालूम। बड़ी होकर मैं बीवी बनना चाहती हूं।"

०००

एक अंग्रेज गाइड ने एक कमरा दिखाते हुए कहा—" इसी कमरे में लार्ड वेलिंग्टन को पहला 'कमीशन' मिला था।

अमरीकन पर्यटक ने पूछा—"कितना ?"

०००

"आह! निर्दय मूर्तिकार!"

सैनिक ने अपने अफसर के सामने छुट्टी की अर्जी पेश करते हुए कहा—"सर, मकान-मरम्मत के काम में अपनी पत्नी की मदद करने के लिए घर जाना चाहता हूं।" अफसर ने उत्तर दिया—"छुट्टी देने में मुझे कोई एतराज नहीं है। लेकिन अभी-अभी मुझे तुम्हारी पत्नी का खत मिला है कि काम पूरा हो गया, आने की कोई जरूरत नहीं।"
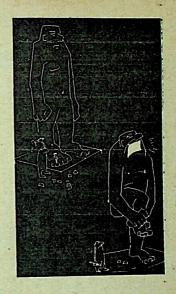
अफसर को सेल्यूट बजाकर वापस जाते-जाते दरवाजे पर मुड़कर सैनिक बोला—"सर! इस रेजिमेंट में दो ही आदमी हैं, जो तथ्यों के साथ खिलवाड़ करते हैं। उनमें एक मैं हूं, मेरी अभी शादी ही नहीं हुई है।"

०००

लड़का—"हम लोगों ने 'आपसी-प्रशंसा संस्था' की स्थापना की है। मैं तुम्हारी आंखों की प्रशंसा करता हूं। और तुम ?"

लड़की—"तुम्हारी अच्छी रुचि की।"

★

गर्मी के त्रास से छुटकारा पाने के लिए कैसल्स
कैसल्स के सुप्रसिद्ध पंखों में से
मनपसंद पंखा चुनिए।
सुपर-डीलक्स सीलिंग पंखा : वर्षों तक
बढ़िया काम देने वाला।
ब्रीज़मास्टर टेबल पंखा : दिखने में सुंदर,
चलने में उत्तम।
और विशिष्ट ज़रूरतों के लिए विशेष पंखे :
पैडस्टल, एयर सर्कुलेटर्स व कैबिन।
साथ ही—
बजाज ब्यूटी पंखे : ३ खूबसूरत मॉडल—
२२५ एम.एम. ४०० एम.एम. ५०० एम.एम. स्वीप
bajaj
MEMBER
FAIR TRADE PRACTICES ASSOCIATION
बजाज इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड
४५-४७ वीर नरिमान रोड, बंबई-१.
शाखाएं भारत में सर्वत्र
heros'-BE-81 HIN

वार्षिक मूल्य रु. १४] [एक प्रति का मूल्य रु. १-३०

जुलाई

नवनीत

[हिन्दी डाइजेस्ट]

१९७०

सिर्फ 5 पैसे में आप अपने परिवार को छोटा रख सकते हैं !

परिवार नियोजन के लिये बढ़िया किस्म का रबड़-कण्डोम

15 पैसे में 3

(सरकारी रियायती मूल्य)

बच्चों के जन्म में समयान्तर लाने के लिये

आज बच्चे का जन्म इत्तफाक की बात नहीं रही। अब बच्चे का जन्म आपकी मर्जी पर निर्भर है। 'निरोध' के इस्तेमाल से आपके यहाँ बच्चा तभी होगा, जब आप चाहेंगे।

माँ और बच्चे की भलाई के लिये

डाक्टरों का कहना है कि बच्चे के जन्म के बाद शुरू के तीन-चार वर्षों में उसे अच्छे पालन-पोषण की बहुत जरूरत होती है। इसके साथ माँ को भी अपना स्वास्थ्य सुधारने के लिये कुछ समय की जरूरत होती है। निरोध का इस्तेमाल करके आप अपने अगले बच्चे के जन्म को कुछ समय के लिये टाल सकते हैं।

निरोध यानी कण्डोम बहुत ही बढ़िया किस्म के रबड़ से बना गर्भ निरोधक है। दुनिया भर के पुरुष इसका इस्तेमाल करते हैं क्योंकि यह बहुत ही आसान और कारगर तरीका है। इसके इस्तेमाल से स्वास्थ्य पर भी कोई बुरा असर नहीं पड़ता। निरोध अब हर जगह मिलता है।

परचून और किराना की दुकानों के अलावा दवाफरोशों, जनरल मर्चेन्ट्स तथा पान की दुकानों पर भी मिलता है।

davp 70/67

लन्दन
के लिए
१५ सर्विसें
LONDON
एअर - इंडिया
सहयोगी : बी. ओ. ए. सी. और कैण्टस
दिन में ८ सर्विस
रात को ७ सर्विस

दो दिल मिले
दो फूल खिले
कितना मधुर मिलन है। दो दिलों का, भावनाओंका, बातों और पहनावे का। जैसी शर्ट, वैसी साड़ी। हवा-सी हलकी शीतल, कोमल और मनभावन। सेन्चुरी की १००% शुद्ध सूती कपड़ों की परंपरा का सुंदर रूप।
दि
सेन्चुरी
स्पि. एन्ड मेन्यु. कं. लिमिटेड
बम्बई-२५ डी.डी.
१००% सूती कपड़ों के लिए-सेन्चुरी
ADROIT/CM/27

देना बेंक
हेड ऑफ़िस : देवकरण नानजी बिल्डिंग्ज़,
१७, हॉर्निमेन सर्कल, फ़ोर्ट, बम्बई -१.

तमाम गाड़ियों के टायरों में सेन्चुरी रेयॉन

आप बस में बैठे हों या टैक्सी में, कार की सवारी कर रहे हों या लॉरी की, स्कूटर चला रहे हों या बाईसिकल, यह टायर कॉर्ड है जो आपको सुगमता और सुरक्षा के साथ तेज़ी से आगे ले जाता है। सभी टायर-निर्माताओं ने एक स्वर से कहा है कि सेन्चुरी रेयॉन टायर-कॉर्ड दुनिया के बेहतरीन टायर-कॉर्ड का मुक़ाबला करता है। हलके या भारी, किसी भी तरह के काम के टायरों के लिये सेन्चुरी रेयॉन के टायर-कॉर्ड का इस्तेमाल होता है।

भारत में टायरों की मांग जिस तेज़ी से बढ़ती जा रही है उसको ध्यान में रखकर सेन्चुरी रेयॉन ने टायर-कॉर्ड के अपने उत्पादन को दुगुना कर दिया है। जहाँ पहले २३ लाख किलोग्राम टायर-कॉर्ड का उत्पादन किया जाता था, वहाँ अब ४६ लाख किलोग्राम टायर-कॉर्ड का उत्पादन किया जाने लगा है। हिन्दुस्तान में बननेवाले ५० फ़ी सदी टायरों का निर्माण इसी टायर-कॉर्ड से होता है। अब जब कभी आप किसी गाड़ी पर सवार हों तो याद रखें कि आप सवार हैं—सेन्चुरी रेयॉन टायर-कॉर्ड पर।

सेन्चुरी रेयॉन

इंडस्ट्री हाउस, चर्चगेट रिक्लमेशन
बम्बई-२०.

संचालक
श्रीगोपाल नेवटिया

प्रधान संपादक
सत्यकाम विद्यालंकार

संपादक
नारायण दत्त

सहकारी
गिरिजाशंकर त्रिवेदी
सुरेश सिन्हा

सज्जाकार
ठाकोर राणा

प्रबंध-संचालक
हरिप्रसाद नेवटिया

विज्ञापन-व्यवस्थापक
महेंद्र मेहता

नवनीत

[हिन्दी डाइजेस्ट]

वर्ष १९ जुलाई १९७० अंक ७

इस अंक में

★

आवरण चित्र : चेतन

चित्रसज्जा : देवीप्रसाद रायचौधरी, महेंद्र प्रसाद महापात्र, क्राकर, नागराजराव, सियाओ-यू, शेणै, ओके, राणा।

संपादकीय पत्र-व्यवहार का पता : नवनीत प्रकाशन, लिमिटेड, ३४१ ताडदेव बंबई ३४

फोन : ३७२८४७

व्यवस्था-संबंधी पत्र-व्यवहार का पता : नवनीत प्रकाशन लिमिटेड, अशीष बिल्डिंग, ३३५ वेलासिस रोड, बंबई—३४.

श्री हरिप्रसाद नेवटिया द्वारा नवनीत प्रकाशन लि०, ३४१ ताडदेव, बंबई—३४ के लिए प्रकाशित तथा श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, ३६।४८ खेतवाड़ी बैक रोड, बंबई में मुद्रित।

खतरों पर खेलता सौंदर्य

क्या इस जीवन से भी बढ़कर 'क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति....' नाम की कोई वस्तु है ! एक बार क्रांति के बीहड़ दिनों में होशंगाबाद के नर्मदा घाट से बुधनी गांव होकर कोई सत्रह मील विंध्य के जंगलों में, एक पहाड़ी नाले के किनारे बबूल के दरख्त के नीचे मैं लेटा था। मन में कुछ ध्रुपद-सा उठ रहा था। मैं तालियां बजाकर उसे गुनगुना रहा था। दायीं तरफ ऊंचे उठे आकाश से बातें करता पहाड़ और रास्ता न देने वाले घने जंगल, और मैंने जरा बायें देखा, एक बहुत गहरा गड्ढा। उसमें एक गुलबांस फूल रहा था और एक नाग-नागिन का जोड़ा आपस में खिलवाड़ कर रहा था। झरने के रूप में जीवन और नागों के रूप में मरण गुलबांस के फूलों के पास कितने पास-पास बैठे थे! मैं ध्रुपद की चौकड़ी भूल गया। मन में यही बोला—"संपूर्ण जीवन को कितने सुंदर रूप में यहां आकर देखा है !" खतरों पर जो खेल न सके, वह भी क्या कोई सौंदर्य है ?

— माखनलाल चतुर्वेदी

हीरक-कण

मुनि चित्रभानु

अजात और अभय के पिता ने दोनों को एक-एक रुपया देकर कहा—"कोई ऐसी चीज खरीदकर लाओ, जिससे पूरा घर भर जाये।"

विचारहीन लड़के ने एक गाड़ी सूखी घास खरीदी और लाकर घर-भर में बिखेर दी। विचारशील दूसरे लड़के ने मोमबत्ती खरीदी और जलाकर घर में रख दी, जिसका प्रकाश घर के कोने-कोने में भर गया।

निस्संदेह दोनों लड़कों ने अपनी चीज से घर भर दिया; किंतु एक ने कूड़े-करकट से और दूसरे ने प्रकाश से।

जीवन-भार

* * *

किसी जिज्ञासु ने एक ज्ञानी से प्रश्न किया—"शरीर के सर्वोत्तम अंग कौन-से हैं?"

ज्ञानी ने अविलंब उत्तर दिया—"हृदय और जिह्वा।"

जिज्ञासु ने फिर पूछा—"और सबसे अधम अंग आप किन्हें मानते हैं?"

"हृदय और जिह्वा को।" ज्ञानी ने उसी तत्परता से उत्तर दिया।

आश्चर्यचकित जिज्ञासु तुरंत बोल उठा—"कैसे?"

ज्ञानी ने समझाया—"हृदय प्रेम से परिपूर्ण होता है और जिह्वा सदा सत्य बोलती है। अतः ये सर्वोत्तम अंग हैं। किंतु कोई हृदय निर्दयता से भी भरा होता है और कोई जिह्वा सदा असत्य भाषण करती है, तब ये ही सबसे अधम अंग हो जाते हैं।"

* * *

उस युवक को मैंने तीन वर्ष पहले देखा था। तब वह सीनियर बी. ए. में पढ़ता था। कल उससे मेरी भेंट फिर हो गयी। बातचीत से पता चला कि हाल ही में उसने अपना जीवन-बीमा कराया है। मैंने यों ही पूछ लिया—"अभी तो तुम्हारी उम्र बहुत कम है, बीमा कराने की जल्दी क्या थी?"

उसने उत्तर दिया—"जीवन का कोई भरोसा नहीं। यदि असमय में ही मेरी मृत्यु हो गयी, तो मेरी पत्नी के लिए कुछ सहारा तो रहेगा।"

उसकी बात का समर्थन करते हुए मैंने कहा—"तुम ठीक कहते हो, जीवन बिलकुल अनिश्चित है और कांच-सा कमजोर,

पता नहीं कब टूट जाये। चूंकि तुमने यह समझ लिया है, अत: तुम कुछ समय चिंतन-मनन और सत्कर्म में अवश्य लगाते होगे।"

मेरे इस प्रश्न से वह कुछ उत्तेजित-सा हो गया और तपाक-से बोला—"क्या मेरी उम्र इतनी अधिक हो गयी है कि मैं ऐसी गंभीर बातों पर विचार करूं? इन सबके लिए तो अभी काफी समय पड़ा है।"

* * *

कमरे के एक आले में मोमबत्ती और दूसरे में अगरबत्ती जल रही थी। एक अपने मृदुल प्रकाश से, दूसरी अपनी मधुर गंध से रात्रि को सुहानी बनाये हुए थी।

न जाने किस बात को लेकर मोमबत्ती विगड़ पड़ी। वह अगरबत्ती से बोली—"तू इतनी काली, पतली और बदसूरत है कि कोई भी व्यक्ति तेरी ओर दुबारा देखना पसंद न करेगा।" अगरबत्ती चुप ही रही। इससे मोमबत्ती और अधिक खीझकर बोली—"तुझमें केवल कुरूपता का ही अवगुण नहीं है, बल्कि बुद्धिहीनता भी है, तभी तो मेरी बात का उत्तर भी नहीं दे सकती।"

अगरबत्ती फिर भी मौन रही। मोमबत्ती फिर तड़पी—"देख, मुझमें कितना सौंदर्य और प्रकाश है। मैं कमरे को वैभव प्रदान करती हूं। तू क्या देती है?"

इतने में हवा का एक तेज झोंका आया। मोमबत्ती बुझ गयी, उसका कड़वा धुंआ मंडराता रहा। अगरबत्ती पहले की तरह ही कमरे को सुगंध से भरती हुई जल रही थी।

★

प्रात:काल पादरी समुद्र को आशीर्वाद देने गया, तो देखा—फेन की शैया पर तरुण नाविक अपनी मुर्दा भुजाओं में जलपरी के शव को कसे पड़ा है। मैं समुद्र को आशीर्वाद नहीं दूंगा—पादरी चीख उठा—इन दोनों लाशों को कब्रिस्तान के किसी गंदे कोने में गाड़ दो। उनका जीवन अनुचित प्रेम से कलुषमय था। लोगों ने वैसा ही किया। कब्रिस्तान के एक उजाड़ कोने में गड्ढा खोदकर उन्हें गाड़ दिया। तीन साल बीत गये। एक धार्मिक त्योहार था। पादरी गिर्जे में गया। वेदी के सामने झुका, तो देखा कि वेदी विचित्र फूलों से ढंकी है। उनका सौंदर्य अद्वितीय था। उनका सौरभ पादरी की शिराओं में अपूर्व रस का संचार कर रहा था। उसके बाद पादरी ने धूपदानी में धूप डाला, पवित्र जल छिड़का और उपदेश आरंभ किया। वह आज यह बताने जा रहा था कि किस प्रकार पापियों पर ईश्वर का क्रोध उतरता है। किंतु पीछे पड़े हुए फूलों का सौरभ उसके विचारों को अस्त-व्यस्त कर रहा था। लेकिन वह उस ईश्वर के बारे में बताने लगा, जिसका स्वभाव क्रोध नहीं, प्रेम है, अनंत प्रेम। ऐसा क्यों हुआ? उसे स्वयं मालूम नहीं था। जब उसने अपना भाषण बंद किया, लोग रोने लगे, पादरी का भी गला भर आया। उसने नौकरों से पूछा—"वेदी पर चढ़ाये गये ये फूल कौन-से हैं? कहां से आये हैं ये फूल?" "कौन-से फूल है हमें नहीं मालूम, किंतु वे कब्रिस्तान के कोने में उगे थे।" उत्तर मिला। —आस्कर वाइल्ड

(प्रेषक : राणा प्रताप सिंह)

★

आज का प्रश्न :

दिशाहीन पीढ़ी नयी या पुरानी?

डा० धर्मवीर भारती

इतिहास साक्षी है कि संसार की अधिकांश प्रगति हर युग के स्वयं असंतुष्ट और दूसरों में और भी ज्यादा असंतोष पैदा करने वाले युवा-वर्ग के ही कारण हुई है। यह स्वाभाविक भी है। जो लोग जीवन में आजीविका, गृहस्थी और व्यवस्था के पोषक बन गये हैं, या बनने की प्रक्रिया में हैं, उनके लिए उन सबसे असंपृक्त होकर सोच पाना, या किसी अत्यंत नये पथ पर चलने का खतरा उठा पाना सहज नहीं रह जाता।

सब जोखिम में डालकर, बड़े-से-बड़े बलिदान निस्संग भाव से कर डालने का साहस अपेक्षाकृत युवा पीढ़ी में अधिक होता है। अगर युवा पीढ़ी यथास्थिति को समस्त विकृतियों सहित स्वीकृत कर संतुष्ट होकर बैठी रहे, तो वह चिंता और दुःख की बात है। अगर वह उससे असंतुष्ट है और विद्रोह का स्वर बुलंद करती है, तो इसका अर्थ यह है कि आशा की क्षीण रेखा कहीं शेष है।

लेकिन यह आशा फलीभूत तभी होती है, जब वह असंतोष और विद्रोह विवेक-सम्मत हो, स्थितियों में अंतर्निहित विकृतियों को पहचानकर उनके विरुद्ध हो, सोद्देश्य हो। तभी उस विद्रोह और असंतोष का एक रचनात्मक, ऐतिहासिक, शुभ परिणाम निकलता है; वरना वह विपथगामी और आत्मघाती हो जाता है।

इस संदर्भ में भारत की युवा पीढ़ी के असंतोष और विक्षोभ के कारणों और दिशाओं की जांच करना जरूरी है।

दूसरे महायुद्ध के खत्म होते-होते जब भारत को स्वतंत्रता मिली, वह एक ऐसा समय था, जिसमें अंदर-ही-अंदर बहुत कुछ ध्वस्त हो चुका था। वे अनेक पथ और सिद्धांत, जिन्होंने बीसवीं शती के आरंभ में मनुष्य के अंदर यह विश्वास पैदा किया था कि एक स्वर्ण-युग आने ही वाला है, नकली साबित होने लगे थे। उनके द्वारा संचालित व्यवस्थाएं, चाहे वे दीवार के इस ओर हों या उस ओर, अपने परिणामों में मानव-विरोधी सिद्ध होने लगी थीं। फलतः जो शून्य पैदा हो रहा था, उसके प्रति पुरानी पीढ़ी का मोहभंग भले न हुआ हो, लेकिन नयी पीढ़ी उन खोखले पड़ चुके आदर्शों और वादों से संतुष्ट नहीं हो पा रही थी।

पिछले दस वर्षों में यह असंतोष सारे संसार में बहुत स्पष्ट रूप से उभरकर आया। सारे संसार का छात्र-वर्ग, या यों कह लें कि नयी पीढ़ी आज विक्षुब्ध और खुले विद्रोह

के रास्ते पर है। इंडोनेशिया हो या अमरीका, जापान हो या फ्रांस, चेकोस्लोवाकिया हो या जर्मनी, हर जगह छात्र तिलमिलाकर उठ खड़े हुए हैं। उनके विद्रोह के नारे, झंडे और संदर्भ भले अलग हों, लेकिन मन:स्थिति समान है।

लेकिन मन:स्थिति समान है, इसीलिए हर प्रकार की समानता उनमें आरोपित कर लेना भूल होगी। भारत में नयी पीढ़ी का विक्षोभ हमारे सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक जीवन के शून्य से उत्पन्न एक वात्याचक्र है, जिसे भ्रष्ट और विगलित राजनीति के झूठे तनावों ने वार-बार गलत दिशाओं की ओर मोड़ देने में सफलता पायी है।

उसी राजनीति ने पिछले बीस साल में हमारे सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन को घुन की तरह खाकर खोखला और शून्य वनाया है। जिन कड़ियों से युवावर्ग अपने देश-काल से स्वस्थ रूप से जुड़ा था, उसे उसी राजनीति ने पिछले बीस वर्षों में सतत प्रयास करके तोड़ा है; परंतु आज वही राजनीति छात्रों की अनुशासनहीनता की आलोचना करने में भी सबसे ज्यादा मुखर है।

उदाहरण के लिए, विश्वविद्यालयों का सवाल उठायें। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पहले इस देश के सांस्कृतिक जीवन में विश्वविद्यालयों का एक विशिष्ट स्थान था। विश्वविद्यालयों ने केवल ब्रिटिश कचहरियों और दफ्तरों के लिए क्लर्क ही पैदा किये हों, यह बात नहीं थी। क्लर्क से लेकर उच्चतम स्तर के आई. सी. एस. प्रशासक भी पैदा किये, तो दूसरी ओर साहित्य, इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र, दर्शनशास्त्र, गणित और विज्ञान के क्षेत्रों में उच्चकोटि के मौलिक स्वतंत्र चिंतक भी पैदा किये।

अगस्त क्रांति का स्मारक, पटना सचिवालय—देवीप्रसाद रायचौधरी

स्वाधीन चिंतन का एक वातावरण विश्वविद्यालयों में था और खूब था। महामना मदनमोहन मालवीय जैसे कुलपति और डा० अमरनाथ झा जैसे उपकुलपति एक नहीं अनेक थे, जिन्होंने अपने समय के छात्र-वर्ग में एक विशिष्ट चारित्र्य का निर्माण किया था। छात्रों का हित और विकास उनके लिए सर्वोपरि था।

सन १९४२ में गांधीजी की गिरफ्तारी के बाद छात्र-वर्ग ने जिस साहस से आगे बढ़कर देश के नियति-सूत्र अपने हाथों में ले लिये थे, उसे ब्रिटिश शासन सहज क्षमा नहीं कर पाया था। उस समय सरकारी कोप की परवाह किये बिना, अनेक साहसी उपकुलपतियों ने जिस तरह अपने छात्रों की रक्षा की थी, वह कथा क्या भुलायी जा सकेगी?

लेकिन स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद विश्वविद्यालयों का वह स्वाभिमान-भरा स्वतंत्र अस्तित्व धीरे-धीरे बड़ी निर्ममता से समाप्त किया जाने लगा। अनुदान देने वालों ने विश्वविद्यालय पर अपनी शनि-दृष्टि डाली। अध्यापकों, बुद्धिजीवियों और विद्वानों के स्थान पर ग्राम-पंचायत से लेकर राजधानी तक में राजनीति के कुटिल खेल खेलने वाले, शिक्षा और संस्कारों से रहित, तृतीय श्रेणी की बुद्धि वाले नेता और उनके नुमाइंदे धीरे-धीरे सिनेट, एकैडेमिक कौंसिल और एग्जिक्युटिव कौंसिलों में नजर आने लगे। अध्यापक का व्यक्तित्व भ्रष्ट किया गया। विद्वानों की जगह चाटुकारों का सम्मान बढ़ा।

और आज बीस साल में अध्यापक का व्यक्तित्व क्या-से-क्या हो गया है? कुंठित, भयभीत, असुरक्षा की भावना से ग्रस्त, क्लास रूम के बजाय कचहरियों और पाठ्यक्रम की जगह स्थानीय नेताओं के अभिनंदन-ग्रंथों के संपादन में व्यस्त, जाति और क्षेत्र के आधार पर किलेबंदी और स्वाधीन चिंतन की जगह कुंजी-लेखन में संलग्न, ऊपर वालों से अपमान और उपेक्षा पाता हुआ और बदले में छात्रों को उपेक्षा देता हुआ!

शिक्षा के क्षेत्र में पुरानी और नयी पीढ़ी के बीच यह कड़ी कैसे टूटी, इसकी कथा सचमुच बड़ी दुःखद है। इसके जिम्मेदार कौन हैं? ...वही, जो नयी पीढ़ी में अनुशासनहीनता का रोना सबसे ज्यादा रोते हैं।

असंतोष का एक बहुत बड़ा कारण आर्थिक असुरक्षा भी है। युवा पीढ़ी का कोई भविष्य नहीं। लेकिन हमें यह भी नहीं भुलाना चाहिये कि आर्थिक असुरक्षा पहले भी थी। लेकिन पहले इस आर्थिक असुरक्षा का एक बहुत बड़ा कारण था विदेशी शासन। लेकिन विदेशी शासन के चले जाने के बाद देशी शासन क्या उन्हें सुरक्षामय भविष्य दे पाया है? पिछले बीस वर्षों में शिक्षा का प्रसार बहुत तेजी से हुआ; लेकिन साक्षरता और शैक्षणिक उपाधियों के अनुपात में आजीविका और उपार्जन की सुविधाएं नहीं बढ़ीं।

हमारी शिक्षा-पद्धति हमारी युवा पीढ़ी को एक ऐसी जीवन-दृष्टि भी नहीं दे पायी, जो उन्हें भारतीय विरासत के श्रेष्ठ संस्कार

देती और समकालीन भारतीय यथार्थ को गहराई से समझने का विवेक देती। गांव हमारे देश की बुनियादी इकाई हैं। नयी पीढ़ी गांवों से विरक्त होती गयी। शहर, जिनकी ओर वह दौड़ी, स्वयं संस्कारच्युत थे। गांधीजी ने सलाह दी थी कि गांवों की ओर लौटो। हमारे बीस वर्ष के स्वातंत्र्योत्तर इतिहास ने प्रेरणा दी, शहरों की चमक-दमक की ओर भागो। गांवों से नयी पीढ़ी उखड़ी। शहर उन्हें ठीक तरह बसा नहीं पाया। अतः आज वे मानसिक रूप से बुरी तरह उखड़े हुए और दिग्भ्रमित हैं।

पुरानी पीढ़ी या तो गांवों में पुराने खंडहरों की तरह धीरे-धीरे धूल में मिलती जा रही है, और गांवों से उखड़ा युवा वर्ग उसे भूल जाना चाहता है, क्योंकि उसके लिए वह असंगत हो चुकी है। शहरों में पुरानी पीढ़ी में जो सफल और प्रतिष्ठित हैं, जिनकी चर्चा और प्रचार है, वे चिंतक, मनीषी, साहित्यकार, अध्यापक और वैज्ञानिक नहीं हैं। चर्चित और प्रचारित हैं वे, जो आर्थिक या राजनीतिक क्षेत्रों में सफलता पा चुके हैं। जिन पदों या स्थितियों को वे हस्तगत कर चुके हैं, उन्हें अपने पास सुरक्षित रखने के लिए उन्हें कोई भी मुखौटा, कोई भी दल, कोई भी वक्तव्य क्षण-भर में बदल लेने में कोई संकोच नहीं।

इसका भयानक दुष्प्रभाव नयी पीढ़ी पर पड़ा है। उसके समक्ष सफलता के ये दूषित प्रतिमान हैं और इसीलिए निष्ठा, साहस, ईमानदारी और सतत प्रयास, ये प्रेरणाएं उसके चरित्र का आधार नहीं बन पायीं।

आज का युवक त्वरित सफलता चाहता है, त्वरित वैभव चाहता है, त्वरित सुरक्षा चाहता है और न मिलने पर हिंसात्मक और आक्रामक हो उठता है। चाहे परीक्षा में उत्तीर्ण होने की बात हो, या नौकरियां मिलने की बात—यहां तक कि बस के किराये और सिनेमा के टिकट की बात हो—उसे जो भी सरलतम आंदोलनात्मक मार्ग दीखता है, वह उधर दौड़ पड़ता है।

निष्ठा, ईमानदारी और सच्चाई के रास्ते के बजाय, अनैतिक हथकंडों के द्वारा त्वरित सफलता हस्तगत कर ली जाये और फिर उससे भी कुटिल हथकंडों के द्वारा उसे सुरक्षित रखा जाये, यह उसने पुरानी पीढ़ी से सीखा है और उसी गलत रास्ते पर वह भी आंख मूंदकर चल देता है। उसके पास पुरानी पीढ़ी का वृद्ध जरद्गव जैसा अनुभव नहीं है; अतः वह समूह-शक्ति का भोंडा उपयोग करता है—पथराव, तोड़फोड़ और बदले में गोलियां।

कैशोर्यावस्था अत्यधिक संवेदनशीलता, साहसपूर्ण सक्रियता और सहज उत्तेजना की अवस्था होती है। स्वाधीनता-संग्राम के युग में हमारे राष्ट्र-निर्माताओं ने इस बात पर हमेशा विशेष ध्यान दिया था कि इन तमाम क्षमताओं का रचनात्मक उपयोग हो। राजा राममोहन राय, महर्षि दयानंद, स्वामी विवेकानंद, लोकमान्य तिलक और अंत में महात्मा गांधी—इन्होंने देश की संज्ञा खोजी थी, उसे एक चेहरा दिया था, और

उनके जमाने का युवा उस कल्पना को निष्ठापूर्वक साकार करने में जुट गया था।

बुद्धिजीवियों और लेखकों ने उसे भावात्मक संपन्नता दी थी। मगर जो पीढ़ी स्वतंत्रता के वाद पैदा हुई और विकसित हुई, उसके समक्ष यह रूप धूमिल पड़ते-पड़ते विलीन हो गया। उसके चरित्र को वे संस्कार नहीं मिले, जो उसे देश की नियति के साथ सही विंदुओं पर आवद्ध करते।

इसलिए यह परिस्थिति बड़ी विचित्र है। युवा पीढ़ी में असंतोष जागा है, वे कुछ कर गुजरना चाहते हैं; उनमें अपनी बात उठाने और उसे यथास्थान पहुंचाने का साहस और वल जागा है। यह एक बड़े सुख की बात है। लेकिन उस असंतोष के साथ स्थिति की सही समझ, देश की नियति के साथ सही आवद्धता और जनतांत्रिक पद्धति के अनुरूप शांतिपूर्ण वैधानिक संघटन और अहिंसात्मक आंदोलन का सामंजस्य नहीं जुड़ पाया है, यह उतने ही दु:ख की बात है।

असल में इसी सामंजस्य की चेष्टा करनी चाहिये। पुरानी पीढ़ी के साथ सामंजस्य की वात कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में कुछ महत्त्व रखती हो; लेकिन देश के संपूर्ण विकास के संदर्भ में पुरानी पीढ़ी ने पिछले वीस वर्षों में जो किया है, उसके वाद उससे सामंजस्य स्थापित करना किसी रचनात्मक स्तर पर उपयोगी होगा, इसमें संदेह है। लेकिन पुरानी पीढ़ी में जो तत्त्व असफल होकर पीछे फेंक दिये गये हैं—क्योंकि वे कतिपय मूल्यों को महत्त्व देते थे, केवल सत्तालोभ को नहीं—उन मूल्यों को नये ऐतिहासिक संदर्भ में पुनर्जीवित कर सत्तालोभ के खोखले जीवन-दर्शन को पीछे फेंकने का कार्य तो युवा पीढ़ी को अवश्य करना होगा, ताकि उनका असंतोष केवल एक आकस्मिक विस्फोट न वनकर एक सफल सामाजिक क्रांति की भूमिका वन सके।

डा० भारती

हमने जनतंत्र स्वीकार किया है और जनतांत्रिक पद्धति हमें इस बात की सुविधा देती है कि हम अपनी नियति पर विवेकपूर्ण ढंग से विचार करें और संघटित होकर शांतिपूर्ण उपायों से व्यवस्था को प्रभावित करें। विवेक, वैधानिकता, विचार और शांति का रास्ता थोड़ा लंवा है, उसमें 'शार्टकट' नहीं होते। युवा पीढ़ी उस धैर्य, सर्वांगीण विकास, राष्ट्रीय चारित्र्य-निर्माण और वैज्ञानिक मार्ग के अवलंवन से अपने असंतोष और विक्षोभ का सामंजस्य वैठा सके, तो वह अपनी ऐतिहासिक भूमिका का सही-सही निर्वाह कर सकेगी।

हमें उसी सामंजस्य की खोज करनी चाहिये। उसी सामंजस्य के फलस्वरूप पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी के झूठे तनावों की समाप्ति होगी और वे एक दूसरे की पूरक वन सकेंगी।

★

बदलती धाराएं उजड़ते नगर

वीरेंद्र कुमार सिंह

नदियों को सभ्यता की माताएं कहा गया है। विश्व की प्राचीनतम सभ्यताएं नील, दजला-फरात, सिंधु व गंगा और ह्वाङ्-हो की घाटियों में पनपी हैं। नदियों को प्राकृतिक सीमा भी माना जाता है। परंतु नदियां बहुधा अपना पुराना पाट छोड़कर नयी राह बना लेती हैं। तब जनभरित नगरियां और शस्यभरित कृषिभूमियां नामावशेष हो जाती हैं। पुरातत्त्व और भूविज्ञान सरिताओं के इस स्वैराचार के गवाह हैं।

सरस्वती नदी का इतिहास अत्यंत रोचक है। वैदिक साहित्य में गंगा तथा सिंधु से भी प्रमुख नदी के रूप में इसका उल्लेख हुआ है। आज तो यह हाकरा या सोतार के नाम से अत्यंत छोटी नदी के रूप में बहती है। स्थानीय लोग इसे अभी भी सरस्वती कहते हैं। इसका प्राचीन मार्ग बीकानेर में लगभग २०० किलो मीटर तक ५-७ किलो मीटर की चौड़ाई में देखा जा सकता है। इसके पुराने पाट में काली, उर्वर दुमट मिट्टी है, जबकि इसके दोनों किनारों पर बलुआही मिट्टी। खेती-बाड़ी के कारण यह मरुभूमि के आक्रमण से अभी भी सुरक्षित है।

नदी के दोनों तटों पर, विशेषत: बीकानेर में, अनेक टीले देखने योग्य हैं, जिनमें प्रागैतिहासिक और ऐतिहासिक काल के भग्नावशेष सुरक्षित हैं। ये टीले हनुमानगढ़ के निकट तो छोटे-छोटे हैं, किंतु सुतारगढ़ एवं सुदूर पश्चिम में बड़े हैं और कम संख्या में हैं। इन टीलों में अनेक मंदिर, भवन और बर्तन आदि मिले हैं। सर औरेल स्टाइन ने सरस्वती-तट की सभ्यता को मोहंजोदड़ो के समकालीन या उसके थोड़ा बाद का बताया है।

सरस्वती का प्राचीन मार्ग मीरमठ, दिलावर, बहावलपुर होते हुए कच्छ के रण तक देखा जा सकता है। जब सरस्वती जीवंत नदी थी, तो निश्चय ही वह लगभग उस १८,००० वर्ग किलो मीटर भूमि की सिंचाई करती होगी, जो अब थार की मरु-

चित्र : महेंद्र प्रसाद महापात्र

भूमि का अंग बन गयी है। केवल दो-तीन हजार साल पहले तक राजस्थान एक उर्वर वन-प्रांतर था। इतिहास के पन्नों पर यह अंकित है कि बाबर ने आगरा के वन में बाघ का शिकार किया था। यह मरुभूमि पूर्व की ओर आज भी बढ़ती ही जा रही है, और मथुरा तथा अलीगढ़ तक इसका उल्लेखनीय प्रभाव पड़ा है। संबंधित राज्य सरकारों के वन-विभाग वन-रोपण द्वारा इसका फैलाव रोकने में संलग्न हैं।

महाभारत काल (ईसा से ३,००० वर्ष पूर्व) तक सरस्वती का ऊपरी मार्ग शुष्क हो चुका था। संभवतः यमुना के पूर्व की ओर धारा-परिवर्तन ने सरस्वती को लघु बना दिया। सरस्वती का निचला जलमार्ग ईसा से सवा तीन सौ वर्ष पूर्व, सिकंदर के आक्रमण के समय और ९ वीं शताब्दी में अरबों के आक्रमण के समय कायम था। उस समय कच्छ के रण की जगह पर एक गहरा मुहाना था, जिससे होकर जहाज नदी में पहुंचते थे। टॉड ने 'एनल्स आफ राजस्थान' में लिखा है कि घाघर या हाकरा बीकानेर में सर्वप्रथम १०४४ ई० में शुष्क हुई।

यूनानी तथा अरब साहित्य में १२०० ई० तक सतलज का पंजाब की नदी के रूप में उल्लेख नहीं है। १३ वीं शताब्दी में यह अपना दक्षिणी मार्ग अंतिम रूप से छोड़कर पश्चिम में व्यास नदी से जा मिली। इस प्रकार सरस्वती तथा उसकी सहायक नदी घाघर अंतिम रूप से १३ वीं शताब्दी के मध्य में शुष्क हो गयीं। उसी समय एक भयंकर अकाल पड़ा, जिसके कारण बड़ी संख्या में नर-नारियों के स्थानांतरण का उल्लेख मिलता है। सतलज के बिछुड़ने से सरस्वती की शेष मर्यादा भी समाप्त हो गयी।

सिंधु की मुख्य धारा १८०० ई० तक थाल के मध्य से होकर बहती थी। उसी वर्ष यह दो भागों में विभक्त हो गयी। इसकी मुख्य धारा खेदवाड़ी १८१९ ई० में भूकंप द्वारा अवरुद्ध हो गयी। तत्पश्चात् कैकईवाड़ी मुख्य धारा बनी रही; पर वह भी १८६७ में अवरुद्ध हो गयी। १९०० ई० में मुख्य मार्ग हजामड़ो था। इन द्रुत धारा-परिवर्तनों के कारण लोगों ने भी स्थान-परिवर्तन किये और तट पर के अनेक फलते-फूलते नगर उजड़ गये, या बाढ़ में नष्ट हो गये। इन नगरों में घोड़ावाड़ी, केती तथा भीमंजोपुरा उल्लेखनीय हैं।

मोहंजोदड़ो सिंधु की एक सहायक नदी से ५ किलो मीटर और हड़प्पा सिंधु की एक दूसरी सहायक नदी रावी से १० किलोमीटर दूर हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि ये दोनों नगर उपर्युक्त नदियों के किनारे बसे थे और इन नदियों की प्रलयंकारी बाढ़ ने ही दोनों नगरों को ध्वस्त किया होगा।

सन १२४५ ई० में जेहलम (वितस्ता), चेनाब (चंद्रभागा या असिक्नी) तथा रावी (इरावती या परुष्णी) नदियों का संगम मुलतान के निकट था। मुलतान से १८ किलो मीटर दक्षिण इन तीनों नदियों का जल उच्च में व्यास से मिलता था। परंतु १४ वीं शताब्दी के अंत तक चेनाब ने अपनी

धारा बदल दी और मुलतान के पश्चिम वर्तमान मार्ग से बहने लगी।

गंगा नदी-तंत्र की नदियों में भी अनेकों बार धारा-परिवर्तन हुए हैं। १८ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में कोशी नदी पूर्णिया से होकर बहती थी; लेकिन आज यह ५० मील पश्चिम हटकर बहती है। पहले यह गंगा से मनिहारी घाट के निकट मिलती थी; लेकिन अब २० मील पश्चिम हटकर मिलती है।

केवल दो शताब्दी पहले बंगाल में गंगा नदी भागीरथी एवं हुगली इन दो शाखा-नदियों से होकर बहती थी। किंतु आजकल हुगली एक गौण शाखा रह गयी है, और पूर्वी बंगाल से बहने वाली पद्मा नदी प्रमुख शाखा-नदी हो गयी है। भागीरथी प्रारंभ में सरस्वती नदी (पूर्व वर्णित सरस्वती से भिन्न) के मार्ग से बहती थी, और वह प्राचीन मार्ग आधुनिक हुगली शहर के पश्चिम में है। १५ वीं शताब्दी में सरस्वती प्रमुख व्यापारिक जलमार्ग थी और उसके तट पर बसा सप्तग्राम बंगाल की राजधानी एवं समुद्री व्यापार का महान केंद्र था। सरस्वती के धारा-परिवर्तन ने सप्तग्राम का महत्त्व समाप्त कर दिया।

केवल डेढ़ शताब्दी पहले तिस्ता गंगा की सहायक नदी थी। १७८७ ई० की प्रलयंकारी बाढ़ के पश्चात् इसने अपनी धारा बदल दी और ब्रह्मपुत्र की सहायक नदी हो गयी। स्वयं ब्रह्मपुत्र नदी मधुपुर वन के पूर्व से बहती थी; किंतु अब वह पद्मा नदी के साथ बहुत पश्चिम हटकर मिलती है।

मौर्य तथा गुप्त सम्राटों की राजधानी पाटलिपुत्र ५ वीं शताब्दी तक एक महत्त्वपूर्ण नगर था। यहां गंगा, गोगरा, गंडक, सोन तथा पुनपुन इन पांच नदियों का संगम था। गंगा के साथ इन नदियों का संगम अब

गंगा : १२ वीं सदी की प्रस्तर-मूर्ति
अनुकृति : ओके

अन्यान्य स्थानों पर होता है। इन नदियों में आयी बाढ़ों की शृंखला ने पाटलिपुत्र को धरती के गर्भ में पहुंचा दिया। प्राचीन पाटलिपुत्र वर्तमान पटना के नीचे चिर-निद्रा में विश्राम कर रहा है। यत्र-तत्र खुदाई से मौर्य तथा गुप्त काल के अनेक भग्नावशेष प्राप्त हुए हैं।

लगभग १,००० वर्ष पहले सोन नदी गंगा से पटना के पूर्व में मिलती थी। तब से यह लगातार पश्चिम की ओर हटती जा रही है। १७५० ई० में इसका संगम मनेर में था; किंतु अब वहां से भी १० मील पश्चिम हट गया है। यों तो दक्षिण तथा पूर्व में सोन नदी भोजपुरी प्रदेश की सीमा निर्धारित करती है, तथापि सोन के पूर्व में स्थित मनेर में भोजपुरी ही बोली जाती है। पटना सचिवालय के पश्चिम में स्थित खाइयों की लंबी शृंखला वस्तुतः सोन नदी की पुरानी धारा है।

गंगा का डेल्टा गौड़ नामक प्राचीन ऐतिहासिक नगर से प्रारंभ होता है। ५ वीं एवं १६ वीं शताब्दी के बीच यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण नगर था। इस शहर के चारों ओर दलदल का निर्माण हो गया और १५७५ ई० में भीषण महामारी फैली, जिसके कारण लोग गौड़ नगर खाली करके भाग खड़े हुए।

हुगली पहले कलकत्ता के दक्षिण-पश्चिम में बहती थी और समुद्र से सागर-द्वीप के समीप मिलती थी। उसका वह जलमार्ग अब आदिगंगा के नाम से विख्यात है, जो अब २४ परगना जिले के बीच से सागर-द्वीप तक तालाबों एवं जलाशयों की शृंखला के रूप में दीखती है। इसके तट पर कालीघाट का पवित्र मंदिर तथा अनेक तीर्थ-स्थान विद्यमान हैं।

यह बात उल्लेखनीय है कि उत्तर भारत की नदियां ही अधिक चंचला रही हैं। दक्षिण भारत की नदियों में अपेक्षाकृत अधिक स्थिरता रही है और प्रागैतिहासिक एवं ऐतिहासिक काल में उनकी धाराओं में नगण्य परिवर्तन हुए हैं।

नदियों की बदलती धाराओं ने अनेक बार नगरों को उजाड़ा है और उन्हें धरती के गर्भ में ढकेल दिया है; परंतु उन्होंने नगरों को उजाड़कर इतिहास को संवारा भी है। उदाहरणार्थ, यदि मोहंजोदड़ो की नगर-प्रधान सभ्यता न उजड़ती, तो आर्यों की कृषि-प्रधान सभ्यता को पनपने का अवसर शायद न मिल पाता।

यदि आज का अभिशाप कल का वरदान हो, तो उसे उपेक्षणीय कैसे कहा जा सकता है!

★

नये बंदरगाह का उद्घाटन करने के लिए बादशाह पधारे थे। मार्ग में बहुत-से बच्चे हाथों में झंडियां उठाये खड़े थे और उनसे सारा रास्ता भर गया था। यह देख बादशाह ने साश्चर्य अपने वजीर से पूछा—"इतने सारे बच्चे कहां से आ गये?" उत्तर मिला—"हुजूर, आपकी प्रजा बरसों से आपके स्वागत की तैयारी में लगी हुई है।"

★

एक अनूठा संग्रहालय

अमलेंदु बोस

विख्यात देशभक्त इंजीनियर-राजनेता डा॰मोक्षगुंडम् विश्वेश्वरय्या की जन्म-शताब्दी १९६० में बेंगलूर में मनायी गयी थी। तभी समारोह की आयोजक-समिति ने विश्वेश्वरय्या के आदर्शों के प्रचार के लिए समुचित स्मारक बनवाने के प्रश्न पर विचार करके फैसला किया कि बेंगलूर में उनके नाम पर एक औद्योगिक एवं उद्योग-तंत्रीय संग्रहालय की स्थापना की जाये।

इसी उद्देश्य से विश्वेश्वरय्या औद्योगिक संग्रहालय समिति नाम की एक समिति स्थापित की गयी। बेंगलूर के विख्यात एवं सुरम्य कब्बन पार्क के निकट कस्तूरबा मार्ग पर संग्रहालय का सुंदर भवन बनाया गया। समिति ने संग्रहालय को राष्ट्रीय रूप देने के लिए भवन को भारतीय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान कौंसिल (सी. एस. आई. आर.) के सुपुर्द कर दिया और कौंसिल ने ही संग्रहालय का आयोजन किया। इससे पूर्व कौंसिल कलकत्ता में बिड़ला संग्रहालय का संघटन कर चुकी थी।

संग्रहालय की पहली गैलरी जुलाई १९६५ में खुली। इस गैलरी का संबंध 'इलेक्ट्रानिक्स' से है। अगले वर्षों में 'चालक शक्ति' और 'सुगम विज्ञान' की गैलरियां भी खुल गयीं।

संग्रहालय में प्रवेश करते ही सबसे पहले 'चालक शक्ति गैलरी' आती है। इसमें यह दिखाया गया है कि किस प्रकार शक्ति के विविध रूपों का विकास हुआ। आरंभ मनुष्य और पशुओं की मांसपेशीय शक्ति से होता है। फिर वायु और पानी की शक्ति का और अंत में बाष्पशक्ति का वर्णन है, जिसने पश्चिम में औद्योगिक युग की नींव डाली।

आधुनिक संग्रहालय चीजों के नन्हे प्रति-रूप (माडल) ही नहीं प्रदर्शित करते, अपितु जहां तक संभव हो, असली वस्तु लाकर रखने का प्रयत्न करते हैं। विश्वेश्वरय्या

स्वयंचलित नल से पानी लेते हुए दर्शक

गैसों में बिजली के डिस्चार्ज का प्रात्यक्षिक

यांत्रिक रूप से चालित साइकल का पहिया चल पड़ता है।

चंद क्षणों में भाप के इंजिन का पहिया भी घूमने लगता है। पहले दोनों पहियों से इसकी चाल ज्यादा तेज है; क्योंकि यह भाप से चलता है। और अंत में हम इंटर्नल कंबश्चन इंजन से चलने वाले स्कूटर के पहिये को घूमते देखते हैं।
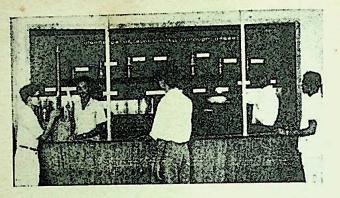
संग्रहालय में दर्शक असली पनचक्की देख सकता है, जैसी पनचक्कियां कभी यूरोप में काम में लायी जाती थीं। इससे उसे पता चलता है कि किस प्रकार ऊपर से गिरती छोटी-सी जलधारा विशाल चक्के को चला सकती है।

भारत भी जल की शक्ति के उपयोग में पीछे नहीं है। 'डायोरामा' टेक्नीक द्वारा भारत के प्रथम पनबिजली केंद्र 'सर के० शेषाद्रि अय्यर बिजली केंद्र' का जो कि 'शिवसमुद्रम् बिजली केंद्र' नाम से विख्यात है, प्रदर्शन किया जाता है।

पहियों को अधिकाधिक तीव्रता से चलाने की साध ने अंत में इंटर्नल कंबश्चन इंजन को जन्म दिया। इसी बात को स्पष्ट करने के लिए इंटर्नल कंबश्चन इंजन की गैलरी के प्रवेश-द्वार पर अनेक पहिये क्रम से लगाये गये हैं।

बटन दबाते ही रथ का चक्र ठाठ से, किंतु मंद गति से लुढ़कने लगता है, जिसके पीछे

अनेक आकर्षक माडलों के जरिये डीजल इंजन और पेट्रोल इंजन का अंतर समझाया गया है। चिरे हुए खोल वाले पूरे आकार के माडलों की सहायता से समझाया गया है कि क्रैंक शैफ्ट वास्तव में कैसे काम करते हैं। इस विभाग की सबसे नयी दर्शनीय वस्तु है आधुनिक जेट इंजन।

इलेक्ट्रानिक्स गैलरी के आरंभ में एक अजूबा है। बटन दबाते ही १३,००० वोल्ट के विद्युत्-स्रोत से एक स्फुलिंग निकलता और गायब हो जाता है। विद्युत्-संबंधी तरह-तरह के परीक्षणों से यहां हाईस्कूल का विद्यार्थी ओरस्टेड, फैराडे, टेल्सा तथा अन्य वैज्ञानिकों के बिजली-संबंधी प्रयोगों को समझ सकता है। उसे आनंद तो आता ही है, साथ ही अपनी पाठ्य पुस्तक में बतायी हुई बातें भी अधिक स्पष्टता से उसकी समझ में आ जाती हैं।

टेलिफोन खंड में दिखाया गया है कि जब हम टेलिफोन का रिसीवर उठाकर बातचीत शुरू करते हैं, तो टेलिफोन कैसे काम करता है। एक टेलिफोन का दूसरे से कैसे संबंध जोड़ा जाता है, यह भी दिखाया गया है। और अंत में स्वयंचलित टेलिफोन की कार्यविधि समझायी गयी है।

इलेक्ट्रानिक्स खंड में दरशाया गया है कि रेडियो-नियंत्रण-व्यवस्था, जिसका अंतरिक्ष-यानों के विकास में महान योगदान रहा है, कैसे काम करती है। एक नन्हे-से बंदरगाह में एक नन्ही-सी किश्ती तट पर स्थित ट्रांसमिटर द्वारा रेडियो-नियंत्रण विधि से चलाकर दिखायी जाती है। यथार्थता का पुट देने के लिए एक नन्हा प्रकाश-स्तंभ रोशनी के सिग्नल भी देता जाता है।

'सुगम विज्ञान' की गैलरी मई १९६९ में खुली। यहां सुबोध शैली में माप-जोख, गणित, प्रकाश और दृष्टि, परमाणु-भौतिकी आदि की मूल धारणाएं और संवाद-प्रेषण के साधनों के विकास की कहानी समझायी गयी है।

माप-जोख के विकास में प्राचीन मिस्र की देन काफी बड़ी है। वहीं पहले-पहल यह विचार उपजा कि मानव-शरीर के विभिन्न अवयवों को मपाई की बुनियादी इकाई माना जा सकता है। इस गैलरी में इसका परिचय दिया गया है। 'डायोरामा' विधि की सहायता से यह भी दिखाया गया है कि किस प्रकार वहां पिरामिड की परछाईं की मदद से ऊंचाई मापी जाती थी।

अन्य भी अनेक रोचक वस्तुएं यहां रखी हैं और नाना प्रकार के दिलचस्प प्रात्यक्षिक (डेमान्स्ट्रेशन) यहां होते हैं, जिनसे दर्शक का मन खूब रमता है।

दर्शकों की संख्या तेजी से बढ़ती जा रही है—विशेषतः स्कूल के बच्चों की। १९६७ में ४,२९,८८८ बच्चे इसे देखने आये थे, १९६८ में उनकी संख्या ७,२८,८९६ रही और पिछले साल तो ८,८२,२८२ पर पहुंच गयी।

इससे सिद्ध होता है कि देश इस प्रकार के संग्रहालयों की आवश्यकता कितनी तीव्रता से अनुभव करता है। ('हिन्दु' से साभार)

★

नवीनतम सूचनाओं के अनुसार भारत की जनसंख्या ५२ करोड़ ६० लाख के लगभग है, जो देश के तीन हजार नगरों और पांच लाख साठ हजार गांवों में फैली हुई है। विश्व की आवादी का १४ प्रतिशत भारत में ही निवास करता है, जब कि भूमि की दृष्टि से भारत के हिस्से में विश्व का २.४ प्रतिशत ही आता है। यहां हर डेढ़ सेकेंड में एक बच्चा और साल-भर में दो करोड़ से भी अधिक नये बच्चे पैदा हो जाते हैं। इनमें से लगभग अस्सी लाख बच्चे काल के ग्रास बन जाते हैं और देश की जनसंख्या लगभग एक करोड़ तीस लाख के हिसाब से बढ़ती जाती है। अनुमान है अगले पच्चीस वर्षों में भारत की आबादी सौ करोड़ तक पहुंच जायेगी।

★

सुख

एक हवा का झोंका आया,
घास-पात, सब–
लरज गये ।

वर्षा के अंतिम बादल,
बिन मांगे ही–
बरस गये ।

कोई आया था,
बिन कहे गया;
हम, तरस गये ।

– शंकरलाल मिश्र

फिर आयी बरखा

शरमीली पलकों पर
बही एक कथकली
फिर आयी बरखा
बेनामी दस्तकें
छत-मुडेर
छौंक गयी
आलतई यादों की टेर
वंशलोचनी करवट-कसी
गुलबकावली
तिर आयी बरखा
पीकर चरणोदक
नम हुईं उसासें
मिली अनायास
सोनभद्र
तमसा से
दग्ध शिलाजीती
मनुहार बनी मखमली
घिर आयी बरखा ।

– रामचंद्र चंद्रभूषण

केजिता

नयी दिशाएं, नये आयाम

आस्ट्रेलिया में प्रैक्टिस करने वाले अंग्रेज डाक्टर लैंडन कोर्टिने ने ऐसी एक बात कह दी है, जिससे फैशन की दुनिया में खलबली मच जायेगी। उनकी राय है कि लगातार मिनिस्कर्ट पहनते रहने से टांगों के छोटा रह जाने का खतरा रहता है।

सो कैसे? मिनिस्कर्ट पहनने वाली लड़कियों को अन्य लड़कियों की तुलना में ज्यादा वक्त एक-पर-एक टांग चढ़ाकर बैठना पड़ता है। रेल या बस में यात्रा करते समय उन्हें अपनी टांगें मोड़कर बैठना पड़ता है। टांगों की इस जरूरत से ज्यादा क्रासिंग से, अभिवर्तनी (एबडक्टर) पेशियां सिकुड़ जाती हैं और परिणामस्वरूप संभव है, टांगें हमेशा के लिए छोटी रह जायें।

इन्हीं डाक्टर का यह भी कहना है कि मिनिधारी लड़कियों को समाज के रुख को देखकर एक खास किस्म की घबराहट होती रहती है। जाहिर है, इससे उनमें स्नायविक तनाव रहता है, जो मांसपेशियों में भी तनाव पैदा कर देता है। इसके कारण अभिवर्तनियों में और भी अधिक तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जो टांगों के सही विकास में बाधक सिद्ध हो सकती है।

तंग पाजामा

'स्मार्ट' नजर आने का जो नुस्खा फैशन-विशेषज्ञों ने खोजा वह है—तंग व कसी पतलूनें और पाजामे। लगता है, ये पोशाकें पहनी नहीं, शरीर पर मढ़ी जाती हैं। अमरीकी डाक्टर लिंडा एलेन ने 'सायंस डाइजेस्ट' के एक ताजा अंक में चेतावनी दी है कि शरीर को छूती तंग कसी पोशाकें किशोर तथा युवा व्यक्तियों में चर्मरोगों को जन्म दे सकती हैं। उन्होंने रक्त-त्वचा, खुजली और पपड़ीदार त्वक्शोथ, 'विन्टर इच' तथा इसी प्रकार के अन्य रोगों को इस सिलसिले में गिनाया है। अमेरिकन मेडिकल एसोसियेशन से संबंधित डा० लिंडा एलेन का कहना है—"यांत्रिक दाब और रगड़ से उत्पन्न ये चर्मरोग काफी खतरनाक तो होते ही हैं, इनमें से कुछ तो एकदम असाध्य तक हो सकते हैं।"

जरा हटकर

कैमरा हाथ में हो और आप मौके पर मौजूद हों, तो फोटो जरूर खींची जा सकती है, इसमें कोई शुबह नहीं। मगर आप दफ्तर

में बैठे हैं और आपका कैमरा आपसे एक मील दूर खेल के मैदान में अकेला रखा है, तो फोटो लेने की बात सोचना भी खाम-खयाली ही होगा। लेकिन नहीं।

टोकियो में हाल में एक ऐसे कैमरे का विकास किया जा चुका है। इसकी सहायता से आप मनचाही गति के (अधिकतम तीन फोटो प्रति सेकेंड) ढाई सौ तक फोटो, एक मील दूर बैठे-बैठे बखूबी खींच सकते हैं।

खेल-कार्यक्रमों को अच्छी तरह से 'कवर' किया जा सके, इस खयाल से तैयार किये गये इस कैमरे में एक विद्युत्-चालित मोटर रहती है, जो 'शटर' का नियंत्रण करती है। दूर से नियमन रखने के लिए इसमें एक फिल्म की बड़ी रील, एक वायरलेस रिसीवर तथा एक ट्रांसमिटर रहता है।

प्रेस-जगत के लिए यह नया कैमरा विशेष उपयोगी सिद्ध हो सकेगा।

गोला भी दूर से

प्रदर्शनकारियों को तितर-बितर करने के लिए पुलिस आये दिन अश्रुगैस के गोले दाग देती है। और यह सिलसिला चलता ही रहता है। बाज दोनों में से कोई नहीं आता—न प्रदर्शनकारी, न पुलिस।

इस तरीके में एक खामी भी है। जो पुलिसमैन गोला छोड़ता है, वह खुद भी घिर जाता है, जबकि उसका मकसद होता है दूसरों को घेरना। इस मुश्किल को अब दूर कर दिया है फिल्लौर (पंजाब) स्थित, पुलिस ट्रेनिंग कालेज के प्रिंसिपल श्री जे. आर. छाबड़ा ने। उन्होंने एक ऐसे 'लांचर' का विकास किया है, जिसकी सहायता से दो सौ मीटर दूर से अश्रुगैस का गोला दागा जा सकेगा। यानी भीड़ में भगदड़, सिपाही सलामत।

आविष्कारक का कहना है कि इस लांचर की सहायता से खाई, 'डेड ग्राउंड' अथवा इमारत की छत पर, जहां भी आवश्यकता हो, अश्रुगैस का गोला दागा जा सकता है और हल्का होने के कारण एक अकेला आदमी लांचर को आसानी से ला-ले जा सकता है। भारत सरकार ने इसके पूरे परीक्षण का आदेश दिया है।

न आग, न गलन

बात जापान की है, भारत देश महान की नहीं। वहां के वातानुकूलन इंजीनियरों ने कुछ इस प्रकार के तकनीकी विकास किये हैं, जिनकी सहायता से पूरे शहर की जलवायु बदली जा सकती है। अर्थात् अब कुबेरों की कोठियां ही नहीं, आम आदमी की कुटिया भी वातानुकूलित हो सकेगी। टोकियो महानगर प्रशासन ने इस योजना को अपने हाथ में लेने का निश्चय किया है और टोकियो गैस कंपनी ने इस पर काम भी शुरू कर दिया है।

टोकियो के एक मोहल्ले में ३६,००० रेफ्रिजरेशन टन क्षमता वाला एक केंद्रीय गैस संयंत्र तैयार किया जायेगा। यह संयंत्र १४,७७,५०० वर्ग मीटर क्षेत्रफल वाले लगभग एक दर्जन मकानों को वातानुकूलित रख सकेगा। मकानों में चिमनी, कूलिंग-टावर अथवा तेल की टंकी आदि

भी नहीं लगानी पड़ेगी। नतीजा यह होगा कि इससे नगर को सुंदर रखने में सहायता मिलेगी, आग लगने का खतरा कम रहेगा, इमारतों के निर्माण पर अपेक्षाकृत कम खर्च होगा और वातानुकूलन की व्यवस्था बिना किसी झंझट और कम कीमत पर हो जायेगी। टोकियो गैस कंपनी ने इस व्यवस्था का नामकरण किया है—डिस्ट्रिक्ट एअर-कंडिशनिंग सिस्टिम।

पीने का पानी बर्फ से

धरती की दो तिहाई सतह पर पानी का राज्य, फिर भी पीने योग्य पानी का अभाव। बाढ़-सी बढ़ती आबादी और कल कारखानों ने पेय जल और शुद्ध हवा का भी टोटा पैदा कर दिया है।

पेय जल की समस्या को सुलझाने के लिए समुद्री जल का निर्लवणीकरण करने के कई तरह के संयंत्र काफी समय से उपयोग में लाये जा रहे हैं। मगर उनसे पूरी तसल्ली अभी तक नहीं हो सकी है।

अब तक प्रचलित यंत्रों में प्रायः पानी को उबालकर पहले भाप बनाया जाता है, फिर ठंडा करके पानी में परिवर्तित किया जाता है। यह प्रक्रिया खर्चीली है। इसके अलावा लवणयुक्त पानी को ऊंचे ताप पर गर्म करने से बायलरों की भीतरी सतह पर नमक और दूसरे पदार्थों की जो पपड़ी जम जाती है, उससे छुटकारा पाना एक कठिन काम है। इससे बायलरों की ताप-संचालन क्षमता कम हो जाती है और आंच ज्यादा देनी पड़ती है।

इन मुश्किलों पर अब अंग्रेज इंजीनियरों ने फतह पा ली है। सस्ता पेय जल प्राप्त करने के लिए इन लोगों ने ब्यूटेन नामक एक कार्बनिक गैस का प्रयोग किया है। इस गैस की सहायता से समुद्री जल को बर्फ के स्वच्छ मणिभों (क्रिस्टल) के रूप में जमा लिया जाता है, फिर इस बर्फ को पिघलाकर पानी तैयार कर लिया जाता है।

शोधकर्ता इस विधि के कई लाभ बताते हैं। ब्यूटेन गैस इस प्रक्रिया में मात्र 'एजेंट' का काम करती है, उसका खुद का उपयोग नहीं होता। यानी उसी को बार-बार इस्तेमाल किया जा सकता है। इसमें बड़े-बड़े हीटरों की जरूरत नहीं पड़ती। संक्षारण नहीं ही होता या अपेक्षाकृत कम होता है। इस तरह खर्चा बच जाता है। इस संयंत्र को कहीं भी लगाया जा सकता है, जब कि बायलरयुक्त संयंत्र बिजलीघर के आसपास ही लगाने पड़ते हैं, ताकि उससे प्राप्य गर्म पानी का सदुपयोग किया जा सके।

फिलहाल १०,००० गैलन पानी प्रतिदिन तैयार कर सकने वाले एक प्रयोग-संयंत्र पर काम जारी है। आगामी छः महीनों में इस विधि को व्यापारिक पैमाने पर अपनाया जा सकेगा, ऐसी आशा है।

प्लास्टिक कार्निया

नयी दिल्ली के आल इंडिया इंस्टिटयूट आफ मेडिकल सायंसेज का 'डा० राजेंद्र-प्रसाद नेत्र-चिकित्सा-विज्ञान केंद्र' कार्निया-प्रतिरोपण (कार्निया-ग्राफ्टिंग) के लिए पूरे देश में प्रसिद्ध है। अब तक यहां लगभग २८०

कुष्ठ-विशेषज्ञ डा० धर्मेंद्र

कार्निया-प्रतिरोपण किये जा चुके हैं, जिनमें से २०५ मामले सफल रहे हैं। समस्या उन मामलों की रही, जिनमें कार्निया-प्रतिरोपण से काम नहीं बन पाता। चर्चा है, अब इस गुत्थी को भी सुलझा लिया गया है।

केंद्र के डाक्टरों ने एक प्लास्टिक का कार्निया तैयार किया है, जो असली कार्निया की तरह ही काम दे सकता है। इस कृत्रिम कार्निया के जो परीक्षण खरगोशों पर किये गये हैं, उनके परिणाम आशावर्धक रहे हैं और अब आदमियों पर इनका प्रयोग करने की तैयारी शुरू हो गयी है।

डा० धर्मेंद्र का सम्मान

सत्तर वर्षीय भारतीय डाक्टर धर्मेंद्र को विश्व के एक सबसे बड़े चिकित्सा-पुरस्कार द्वारा सम्मानित किया गया है। पुरस्कार है—डैमीन-डटॉन एवार्ड। यह अमरीकी पुरस्कार कुष्ठरोग के क्षेत्र में विशेष कार्य के लिए प्रदान किया जाता है।

डाक्टर धर्मेंद्र चेंगलपुट (तमिलनाडु) के केंद्रीय कुष्ठरोग संस्थान से संबंधित हैं तथा 'इंडियन कौंसिल आफ मेडिकल रिसर्च' के सम्मानित चिकित्सा-विज्ञानी हैं। पिछली चार दशाब्दियों से इन्होंने अपने आपको कुष्ठरोग-चिकित्सा के लिए समर्पित कर रखा है। केयर विल (लुइजिआना) में 'यू. एस. पब्लिक हेल्थ सर्विस हास्पिटल' में हाल ही में डा० धर्मेंद्र को इस वर्ष का यह पुरस्कार प्रदान किया गया।

कल की मेज

मेज भी न जाने कितने तरह की होती है—क्लर्क की, असिस्टेंट की, छोटे अफसर की, बड़े अफसर की। मगर हम जिस मेज की बात कर रहे हैं, यह अनोखी है। ब्रिमेन (पश्चिम जर्मनी) में तैयार की गयी यह नयी मेज किसी हवाई जहाज या स्वचालित फैक्टरी के कंट्रोल पैनल से कम नहीं है।

इस मेज में टाइपराइटर, डिक्टाफोन, कापिइंग-यंत्र तथा फाइलिंग-व्यवस्था और न जाने ऐसे ही कितने कार्यालयोपयोगी यंत्र जरा-सी जगह में सजा दिये गये हैं। कल जो सचिव इस मेज पर बैठेगा, वह कागज पर न लिखकर फिल्म पर इलेक्ट्रानिक तरीके से लिखेगा, किसी भी आवश्यक दस्तावेज की नकल इलेक्ट्रो-फोटोग्राफिक विधि से बना लेगा। उसकी फाइलें कागजों का ढेर न होकर टेपों और माइक्रोफिल्मों का छोटा-सा सेट होंगी और उसे टेलिफोन करने के लिए कुर्सी पर लगे 'माइक्रोफोन-युक्त हैडरेस्ट को उठाना भर होगा।

★

माकोंडे-शिल्प

आबनूस की ये काष्ठमूर्तियां मोजांबीक एवं तांजानिया की माकोंडे जाति के कलाकारों की सृष्टि हैं। इनमें प्रेत-पुराण है, कौतुक है, अफ्रीकी यथार्थ और यांत्रिक सभ्यता पर टिप्पणी है। दारेस्सलाम की दुकानों से माकोंडे मूर्तियां धड़ाधड़ पश्चिम के दीवानखानों में पहुंच रही हैं।

अनुकृतियां :
टी. ए. राणा

कुमार गंधर्व

लोक-संगीत की लोकोत्तरता

'संगीतकारों के संगीतकार' कुमार गंधर्व ने कुछ समय पूर्व बंबई के संगीत-रसिकों के समक्ष मालवा के चौबीस लोकगीत उनकी मूल धुनों में प्रस्तुत किये थे। उस अवसर पर प्रकाशित परिचय-पुस्तिका में गायक ने लोकसंगीत के विषय में ये मननीय विचार व्यक्त किये थे।

कलाकार जिस सुंदरता के दर्शन करता है, जिस सौंदर्य की आभा से प्रभावित होता है, उसे अपने श्रोताओं (अथवा दर्शकों) के समक्ष प्रस्तुत करने, स्वयं के आनंद में हिस्सा बंटाने के लिए उन्हें भी निमंत्रित करने की उसकी इच्छा होती है। राग-संगीत, या जिसे शास्त्रीय संगीत कहा जाता है, उसकी महफिलों में भी यही तो होता है। फर्क सिर्फ एक है। सामान्य राग-संगीत में लक्षित होने वाली सुंदरता परंपरागत अनुशासन के चौखटे से सीमित होती है; जबकि लोक-धुनों का सौंदर्य के इस चौखटे से बाहर का है।

इस मुद्दे को स्पष्ट करने के लिए एक-दो उदाहरण लें। जैसे यमन है, या मालकौंस है, या अन्य कोई स्थापित राग है। ऐसे प्रत्येक राग का न सिर्फ ढांचा ही निर्धारित है, बल्कि स्वरों के लगाव एवं उनके मुहावरों का भी सांचा-सा बन गया है। निश्चय ही विभिन्न कलाकारों द्वारा प्रस्तुत मालकौंस में अंतर होता है; परंतु वह अंतर सांचे का नहीं होता। यह अंतर होता है कंठ की मधुरता, तान की तैयारी, घराने की तालीम या कलाकार के प्रतिभा-स्तर का। ऐं

लोक-गायक (चित्र : एम. भट्ट)

सांचों में ढले संगीत की अभिव्यक्ति में वही-वही बातें बार-बार नजर आती हैं, सुनाई देती हैं। और जब हमारा मस्तिष्क इन सांचों से जकड़ जाता है, तो नये-नये स्वर-संबंधों के सौंदर्य के आविष्कार से अपने को वंचित रखता है।

जिस चौखटे अथवा जिन सांचों की बात मैं अभी कर आया हूं, उन्हें हम शास्त्रीय संगीत का अनुशासन भी कह सकते हैं। यह अनुशासन और उसकी उपयोगिता मुझसे छिपी नहीं है। प्रत्येक कला के आविष्कार के प्रारंभ में यह आवश्यक होता है ही।

लेकिन बात यहीं समाप्त नहीं होती, न समाप्त होनी चाहिये। हमारी सौंदर्य-संवेदनशक्ति यदि भोंथरी हो जाती है, तो इसीलिए कि हम उक्त सांचों से, उस चौखटे से आगे बढ़ने से इन्कार कर देते हैं। फिर होता यह है कि उन्हीं-उन्हीं स्वरबंधों से कुछ राहत पाने के लिए कभी कोई राग कुछ समय के लिए चल पड़ता है, तो कभी अन्य कोई राग विशेष लोकप्रियता पा लेता है। आपमें ऐसे अनेक लोग हैं, जिन्होंने कभी पटदीप, कभी दुर्गा, कभी चंद्रकौंस के जमाने देखे होंगे।

परंतु ये सारे स्रोत अस्थायी हैं, क्योंकि इनका सौंदर्य जिन सांचों पर निर्भर रहा है, वे सारे उक्त चौखटे के भीतर वाले ही हैं। कभी बसंत में शुद्ध ऋषभ प्रयोग कर लेना एक प्रकार की भिन्नता अवश्य है; परंतु फिर भी मात्र इतने से ही सांचा तो नहीं बदलता, ढांचा वही परंपरागत चौखटे

कुमार गंधर्व

वाला ही रहता है।

आज मेरा प्रयास होगा कि मैं आपको उस सौंदर्य का साक्षात्कार कराऊं, जो शास्त्रीय संगीत के चौखटे की सीमा के बाहर माने-जाने वाले सांचों में ढाला गया है और जिसने मुझे अभिभूत किया है। यह एक ऐसी असीम संपदा है कि जिसकी विविधता का कोई अंत नहीं है। लेकिन इसकी ओर अभी तक किसी का ध्यान नहीं गया है, यहां तक कि लोकगीत एवं लोक-साहित्य की खोजबीन करने वालों का भी नहीं। उन्होंने केवल साहित्यिक पक्ष ही देखा-परखा है। सांगीतिक पक्ष उपेक्षित ही रहा है।

जब आप इन चौबीस लोकधुनों को सुनेंगे, तो उनके स्वरबंध, उनके सांगीतिक मुहावरे, उनके मनोहारी लयप्रकारों का लास्य आपको रुचेगा और सांगीतिक संभावनाओं का एक नया विश्व आपको नजर आयेगा।

★

मेरे पांच महाभय

श्रीप्रकाश

ढाई हजार वर्ष हुए, जब भगवान बुद्ध ने मानव-जाति को सदाचार और नैतिक उत्थान की शिक्षा देते हुए पंचशील का प्रवर्तन किया था। दस वर्ष पूर्व जब 'चीनी-हिन्दी भाई-भाई' के नारे देश में लग रहे थे, तब अंतर्राष्ट्रीय शांति के उद्देश्य से पंचशील के नाम से पांच सिद्धांतों की घोषणा की गयी थी। आज मैं अपने 'पंच महाभयों' के प्रदर्शन की धृष्टता कर रहा हूं। मेरे मस्तिष्क व हृदय को ये कुछ दिनों से व्याकुल कर रहे हैं।

जब मैं अपने चारों तरफ के दृश्य को देखता हूं, जब उन घटनाओं पर ध्यान देता हूं, जो दिन-प्रतिदिन घटित हो रही हैं, तब मेरा हृदय भविष्य के लिए चिंतित हो उठता है और मैं अपने विचारों और भावों को स्पष्ट भाषा में व्यक्त करना अपना कर्तव्य समझता हूं।

पहला भय :

मेरा प्रथम महाभय यह है कि दस वर्षों के भीतर-भीतर देश पंद्रह अथवा इससे भी अधिक छोटे, दुर्बल, दरिद्र, स्वतंत्र राज्यों में विभक्त हो जायेगा। विभाजन के आधार भाषागत अथवा सांप्रदायिक भाव हो सकते हैं। जब हमने स्वेच्छा से देश का विभाजन सांप्रदायिक आधार पर मान लिया, तो हम इस विष को फैलने से कैसे रोक सकते हैं? भले ही हमने कहने को अपने को भौतिक अथवा लौकिक (सेक्युलर) राष्ट्र का रूप दिया हो, पर हम देखते हैं कि नाना प्रकार के सांप्रदायिक और जाति-गत आंदोलन भिन्न-भिन्न प्रदेशों में हो रहे हैं, जिससे कि भावी दुःखदायी संभावनाओं के चिन्ह स्पष्ट रूप से दीख पड़ रहे हैं।

हम देखते हैं कि हमने गल्ले के वितरण के लिए मंडल स्थापित किया है। जिन राज्यों में पर्याप्त खाद्य सामग्री है, वे भी अपना अतिरिक्त गल्ला दूसरे ऐसे राज्यों को नहीं जाने देते, जहां उसकी कमी है।

नदी के पानी और सीमाओं पर के छोटे-छोटे भूमि के अंचलों के लिए देश के अंतर्गत पड़ोसी राज्यों में भयंकर संघर्ष हो रहा है। ऐसा प्रतीत होता कि वे अपने को परस्पर विदेशी मानते हैं और एक ही देश का नहीं समझते। भिन्न-भिन्न राज्यों में विविध प्रकार की 'सेनाओं' का निर्माण हुआ है, जो कि बल-प्रयोग करके ऐसे लोगों को बाहर निकाल रही हैं, जो कि दूसरे राज्यों से आकर वहां पर बस गये हैं।

हमने अपने संविधान में भाषा के आधार पर राज्यों का पृथक्-पृथक् संघटन स्वीकार कर लिया है। दक्षिण का एक राज्य केंद्र की आज्ञाओं की अवहेलना कर रहा है। दूसरे ने उत्तर के विरुद्ध संग्राम-सा ही छेड़ दिया है। एक राज्य ने केंद्र से नियुक्त किये गये राज्यपाल को वीभत्स रूप से अपमानित किया और केंद्र के आदेशों की इस प्रकार अवहेलना की, जैसे कोई स्वतंत्र राष्ट्र ही दूसरे स्वतंत्र राष्ट्र से व्यवहार कर सकता है। केंद्र ने हर प्रकार से हार मानी और संसार के सामने वह पराजित के ही रूप में प्रकट हुआ।

इस सबसे स्पष्ट है कि हमारा यह भय निर्मूल नहीं है कि थोड़े ही दिनों में देश पर्याप्त संख्या में स्वतंत्र खंडों में विभक्त हो जायेगा। यदि केंद्र दुर्बल होता गया, तो प्रदेशों का अपने को स्वतंत्र घोषित करना अनिवार्य-सा हो जाता है।

दूसरा भय :

मेरा दूसरा महाभय यह है कि हमारे देश में सैनिक अनन्याधिकार भी हो सकता है। हमें स्वराज्य प्राप्त किये हुए बीस वर्ष से अधिक हो गये। देश की शांति और सु-व्यवस्था का प्रबंध संतोषजनक नहीं है। उत्तर के प्रदेशों से जमींदारी की प्रथा उठा देने से जो इनका दबदबा था, वह जाता

मैं यह अच्छी तरह अनुभव करता हूं कि वृद्धावस्था में जिस प्रकार शरीर शिथिल हो जाता है, उसी प्रकार मस्तिष्क भी संकीर्ण हो जाता है। मुझे श्री प्रेमचंद्र के 'गोदान' के शब्द याद आते हैं–"वृद्धों के लिए अतीत के सुखों, वर्तमान के दुःखों और भविष्य के सर्वनाश से ज्यादा मनोरंजक और कोई प्रसंग नहीं होता।" यह बात इतनी सत्य है कि मुझे अपने मन के भावों को प्रकट करने में अवश्य संकोच होता है। पर मैं समझता हूं कि मेरे लिए यह उचित होगा कि सार्वजनिक रूप से मैं उन बातों को कह दूं, जो मेरे मन में उठ रही हैं। —श्रीप्रकाश

रहा। शांति-रक्षा के लिए गांवों में कोई विशेष प्रबंध नहीं किया गया है। वहां पर लोग दुष्टों से भयभीत रहते हैं। सरकारी कर्मचारियों की तरफ से कोई सहायता का भरोसा नहीं कर सकता।

हम देखते हैं कि अंग्रेजों के समय जन-समुदायों पर जितनी बार गोली चली थी, उससे कहीं अधिक बार स्वराज्य में चली। सारे देश में सभी समय हर प्रकार के हड़ताल, तालाबंदी, उपद्रव, घेराव, हिंसा आदि होते दीख पड़ रहे हैं।

अव्यवस्था से त्रस्त होकर आवश्यकतानुसार लोग सैनिक एकाधिकारी को भी स्वीकार कर लेते हैं। हम देख रहे हैं कि मिस्र से लेकर इंडोनेशिया तक एक के बाद एक पूर्वीय देश ऐसे ही शासन के अधीन होता चला जा रहा है।

निस्संदेह मैं यह मानता हूं कि ऐसा शासन तभी संभव होता है, जब देश की सारी सेनाएं किसी एक सेनापति के प्रति श्रद्धा और भक्ति रखती हों और उसमें पूर्ण रूप से विश्वास करके वे उसकी आज्ञा पालने के लिए प्रस्तुत हों। हमारी सेनाओं का जिस प्रकार का संघटन है, उसमें ऐसी स्थिति का होना बहुत कठिन प्रतीत होता है। पर उसकी संभावना अवश्य है, यदि वर्तमान आंतरिक स्थिति चलती रही।

तीसरा भय :

मेरा तीसरा महाभय यह है कि हमारे ऊपर विदेशी आक्रमण भी हो सकता है। हमारी 'निरपेक्षता' की नीति के कारण संसार में हमारा कोई मित्र नहीं है। जब हम किसी के मित्र नहीं हैं, तो कोई दूसरा भी हमारा मित्र नहीं है। हमारे ऊपर न कोई विश्वास करता है, न कर सकता है। चीन और पाकिस्तान का जब हमारे ऊपर आक्रमण हुआ, तब हमें इसका प्रमाण मिल गया। हमारी सहायता के लिए कोई नहीं आया।

जहां तक मैं देख सकता हूं, पाकिस्तान की कूटनीति हमारी कूटनीति से कहीं अधिक सफल हुई है। अमरीका, रूस और चीन जैसे परस्पर विरोधी भावों और आदर्शों से प्रेरित देशों से उसने मित्रता स्थापित कर ली है। यह तो शासकों की तरफ से भी माना गया है कि चीन और पाकिस्तान की निकट मैत्री के कारण हमें भय लगा हुआ है।

चौथा भय :

मुझे अपने चौथे महाभय को प्रकट करते हुए विशेष रूप से कष्ट और असमंजस हो रहा है। मुझे यह भय है कि एक शताब्दी में जिस मानव-व्यवस्था को हम हिन्दू धर्म के नाम से जानते हैं, वह लुप्त हो जायेगी। उसके साथ-साथ हमारी पुरातन, परंपरागत संस्कृति, जीवन-क्रम, विचार-शैली सब गायब हो जायेगी।

आज हम राजनीतिक दृष्टि से स्वतंत्र हैं। पर मैं देखता हूं कि हमारे ऊपर कभी भी विदेशों के उतने प्रभाव नहीं पड़े थे, जितने आज पड़ रहे हैं। मुझे ७० वर्षों की स्मृतियां हैं। मुझे स्मरण आता है कि मेरे

पिताजी की पीढ़ी के लोग अंग्रेजी भाषा का अध्ययन वड़ी ही सावधानी से करते थे; वे कितने ही अंग्रेजों से अंग्रेजी भाषा पर अधिक अधिकार रखते थे। उस समय के शिक्षित लोग यूरोपीय साहित्य, दर्शन, इतिहास, विज्ञान और विचार-शैली से निकट रूप से परिचित रहते थे।

परंतु उनका व्यक्तिगत, कौटुंबिक और सामाजिक जीवन पूर्ण रूप से परंपरागत हिन्दू प्रथा के ही अनुकूल होता था। वे सदा प्रयत्न करते थे कि हमारा पुरातन विचार जीवित रहे। अतः वे ऐसी शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना करते थे, जिनमें बालक-बालिकाएं अपने धर्म की शिक्षा पायें और अपने पूर्वजों पर गर्व करें। यही लोग थे, जिन्होंने उस पीढ़ी को जन्म दिया, जिसने स्वतंत्रता के लिए संग्राम किया।

व्यवहार रूप में ऐसा देख पड़ता है कि लौकिकता का अर्थ है—हिन्दूधर्म का निष्कासन। जहां तक मुझे मालूम है, ईसाईअथवा इस्लाम धर्म के अनुयायी अपने घरों में धार्मिक वातावरण को बनाये रखते हैं। उनके बच्चों को अपनी धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन कराया जाता है। वे अपने धार्मिक संस्कारों और उत्सवों को मानते हैं। हिन्दू इस सबके बिलकुल विरुद्ध हो गया है। शायद ही कोई हिन्दू घर ऐसा हो, जहां २४ घंटे में किसी भी समय सब कुटुंबी जन एकत्र होकर किसी धार्मिक कृत्य में भाग लेते हों अथवा सामूहिक रूप से प्रार्थना करते हों।

यद्यपि अंग्रेजी भाषा का ज्ञान दिन-प्रति-दिन कम होता जा रहा है, पर हमारे जीवन और विचारों में 'अंग्रेजियत' अधिकाधिक बढ़ती जा रही है। इसे अपने घरों की सजावट, अपने भोजन और वस्त्र के प्रकार में हम देख सकते हैं। पहले हम अपनी परंपरा-प्राप्त बौद्धिक संपत्ति में गर्व रखते थे, अपने को महान मानते थे; पर अब हम अपने को अवनत और अर्ध-उन्नत के नाम से घोषित करने में बड़ी शान मानते हैं और भिक्षुकों की झोली लेकर विदेशियों के पास जाते हैं। उनसे भोजन ही नहीं मांगते, विचारों की भी भिक्षा की अपेक्षा उनसे करते हैं। हमारी मानसिक दासता पूर्ण हो गयी है।

यह भी हमें देखना है कि हम अपनी गलतियों से कुछ सीखते नहीं। आश्चर्य की बात है कि एक बड़े सुंदर धर्म के नाम पर जिस समाज रूपी संघटन का निर्माण हुआ है, वह बड़ा ही निष्ठुर है। इसमें केवल थोड़े से विद्वानों, बलवानों और धनवानों की पूछ है। इसमें दरिद्र, अनाथ, विधवा, पंगु आदि के लिए कोई स्थान नहीं है। दुःखियों को परित्याग करने और भाइयों को जाति से निष्कासित करने में हम निपुण हैं।

जब हम अपने ही शत्रु हो गये, अर्थात् जब शत्रु ही हमारे हृदयों और घरों में आ बसा, तो अंत समय दूर नहीं समझा जा सकता। जिसे हम घोर विरोधों और संघर्षों के बीच पांच हजार वर्षों से बचाये हुए थे, उसे हम अपनी ही बनायी हुई वर्तमान अवस्था में सौ वर्ष के भीतर खो देंगे।

पांचवां भय :

मेरा पांचवां महाभय—यदि इसे भय कहा जा सकता है—यह है कि जब हिन्दू धर्म लुप्त हो जायेगा, तो एशिया और अफ्रीका के महाद्वीप इस्लाम और कम्यूनवाद में बराबर-बराबर विभक्त हो जायेंगे।

किसी जाति का धर्म संसार में उसके धार्मिक ग्रंथों से नहीं परखा जा सकता ; उसके वास्तविक दिन-प्रतिदिन के जीवन से जाना जाता है। वेद, उपनिषद् और भगवद्गीता के नाम से हिन्दू की परीक्षा नहीं हो सकती। वह किस प्रकार से रहता है, किस प्रकार से संसार में व्यवहार करता है—इससे उसका धर्म परखा जायेगा। एक तिहाई हिन्दू लोगों ने दूसरे धर्म का आश्रय लिया, यही इस बात का प्रमाण है कि नर-नारी के रूप में हिन्दू में अवश्य कुछ त्रुटि है।

इस्लाम संसार में फैल रहा है। स्वराज्य में भी बहुत-से हिन्दू मुसलमान हो रहे हैं। अफ्रीका और अन्य प्रदेशों में भी यह तेजी से फैल रहा है। जब इस्लाम व्यवहार्य रूप से मानव मात्र के भ्रातृत्त्व का उपदेश देता है और उसके अनुसार आचरण करता है, जब वह मनुष्य की दिनचर्या के संबंध में सरल नियम निर्धारित करता है, जिसे कि साधारण लोग समझ सकते हैं और जिसके अनुसार वे जीवन-निर्वाह कर सकते हैं, तो अवश्य ही उसका विस्तार होगा।

फिर हम जरा कम्यूनवाद पर ध्यान दें। पूर्वीय देश दरिद्र हैं। वहां करोड़ों स्त्री-पुरुष भूखे हैं। कम्यूनवाद प्रतिज्ञा करता है, और संभव है उसके अनुकूल कार्य भी करता है कि उसके अधीन सबको भोजन, वस्त्र, निवासस्थान और उपयुक्त व्यवसाय मिलेगा। अवश्य ही गरीब और दुःखी लोगों के मन को वह आकर्षित करता है, अभागों के हृदयों में आशा-संचार करता है।

कम्यूनवाद को पूर्वी देशों में बढ़ने से रोकने के लिए अमरीका हर प्रकार से प्रयत्नशील है। वीयतनाम में उसकी नीति से यह सिद्ध होता है। पर इतना अधिकार और प्रभाव रखते हुए और वर्षों से सतत प्रयत्न करते रहने पर भी वह सफल नहीं हो रहा है।

जब हिन्दू धर्म भारत से लुप्त हो जायेगा तब सारा ही पूर्वी जगत अर्थात् अफ्रीका और एशिया इस्लाम और कम्यूनवाद में बंट जायेंगे। ऐसा यदि कोई कहे, तो कदापि अनुचित नहीं है।

रक्षा के उपाय

१. देश के खंड-खंड में विभक्त हो जाने का जो मेरा पहला महाभय है, वह तो तब दूर हो सकता है, जब हम अपने देश के सब बालक-बालिकाओं, स्त्री-पुरुषों को सच्ची देशभक्ति की शिक्षा दे सकें।

२. सैनिक एकाधिकार का जो मेरा दूसरा महाभय है, उसका निराकरण तो लोकतंत्रात्मक भावनाओं का सबके मस्तिष्क में संचार करने से हो सकता है। जब हम सब सच्चे लोकतंत्री हो जायेंगे, तभी हम किसी के भी अनन्याधिकार से अपनी रक्षा कर सकेंगे। यदि ये गुण हममें आ जायें, तो

हम अपने मतों का प्रयोग समुचित रूप से करेंगे और हम अपने उत्तमोत्तम और योग्य-तम नर-नारियों को नियोजित और निर्वाचित करेंगे और उन्हें ही अधिकार और शासन के पदों पर रखेंगे, जिससे कि जन-साधारण को 'स्वशासन' और 'सुशासन' दोनों ही मिलें और सब लोग अपने कर्तव्यों को अच्छी तरह समझकर उनका पालन करें।

३. हमारे तीसरे महाभय अर्थात् विदेशी आक्रमण से हमारी रक्षा तभी हो सकती है, जब सबको यह ठीक प्रकार से समझा दिया जाये कि आधुनिक युद्ध केवल सीमाओं पर ही नहीं लड़े जाते, वरन प्रत्येक नगर और गांव में, यहां तक कि प्रत्येक घर में उसकी आंच पहुंचती है। बम रणक्षेत्रों में ही नहीं गिरते, शांतिमय सड़कों और खेतों में भी वे गिरते हैं। सारे जनसमूह को हमें सिखाना होगा कि जब कोई खतरा आये, तो उसका कैसे सामना किया जा सकता है। जब उन्हें इसकी शिक्षा मिलेगी, तब वे शत्रु को कहीं भी आने नहीं देंगे।

४. मेरा चौथा महाभय जो है कि जिसे हम हिन्दू आचार-विचार, हिन्दू सभ्यता और संस्कृति कहते हैं, वह लुप्त हो जायेगी, उससे यदि हिन्दू-जन बचना चाहें, तो उन्हें दंभ और अहंमन्यता छोड़नी चाहिये। ऐसा नहीं समझना चाहिये कि जो स्थिति है, वह सब ठीक है। ऐसा संतोष भयावह है। उन्हें वास्तविकता का सामना करना चाहिये। उनके लिए उचित है कि वे अपने संपूर्ण धार्मिक ढांचे का पूर्ण सुधार करें और अपने सामाजिक संघटन को नया रूप दें। उन्हें चाहिये कि इस्लाम से वे व्यावहारिक मानवीय भ्रातृभाव सीखें और ईसाई मत से सुव्यवस्थित परोपकार और दानशीलता की प्रथा को अपनायें।

सार्वजनिक सरकारी संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा की अब मनाही हो गयी है। पर इसके कारण यदि कोई अपनी संतति को धार्मिक शिक्षा दे, तो वह दंडित नहीं हो सकता। शासन को जो कुछ धन मिलता है, वह हम करदाताओं से ही मिलता है। अवश्य ही जब हम शासन को इतना अधिक धन देते रहते हैं, तब थोड़ा धन आपस में एकत्र कर ऐसी पाठशालाएं और विद्यालय अवश्य स्थापित कर सकते हैं, जहां धार्मिक शिक्षा दी जाये।

५. जो हमारा पांचवां महाभय है, अर्थात् अफ्रीका और एशिया के भूखंड इस्लाम और कम्यूनवाद में बंट जायेंगे, उससे बचने का उपाय तो हमने ऊपर बतलाया है, उसकी पुनरावृत्ति करना व्यर्थ है। यदि हम पूर्वीय लोग अधिक संख्या में दरिद्र बने रहेंगे और हममें से थोड़े ही लोग अत्यधिक धनी होते हुए ऐशआराम में रहेंगे, तो अवश्य ही कम्यूनवाद का प्रसार होगा; क्योंकि कम्यूनवाद का यह दावा कि मनुष्य-मनुष्य के बीच में जो अत्यधिक अंतर है, उसे वह मिटायेगा और सबको लौकिक स्तर में समानता प्रदान करेगा। हमारे समाज में दरिद्र और धनी के बीच में बहुत अंतर है। इसे दूर करना अत्यंत आवश्यक है।

★

चित्र : म० प्र० महापात्र

नानजीभाई कालिदास मेहता

शीतला माता के बेटे

रावलगांव उन दिनों जामनगर राज्य के अंतर्गत था। उसमें अपने माता-पिता के स्मरण में एक कन्या पाठशाला और एक अंग्रेजी स्कूल बनवाने का मेरा विचार था। इसके लिए १९२४ में मैं जामनगर गया और वहां के तत्कालीन शिक्षाधिकारी श्री भगवानजीभाई दोशी के साथ स्व० महाराजा रणजीतसिंहजी बापू से मिला। वे प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—"अच्छा स्कूल बनवायें। कालावड में झरिया के कोयले के व्यापारी नंदवाणा ब्राह्मण की बनवायी हुई कन्या-पाठशाला भी देख आयें।"

अगले दिन श्री भगवानजीभाई के साथ राज्य की मोटर में मैं कालावड पहुंचा। शीतला माता का स्थान प्रसिद्ध होने से यह "शीतला माता का कालावड" कहा जाता है। नदी-किनारे शीतला का मंदिर, विशाल प्रांगण, प्रांगण में छायादार वृक्ष।

अंदर जाते ही गढ़ जैसा दरवाजा आया। चौकी पर पुलिस बैठी थी। हिन्दू-मुसलमान दोनों ही उसमें थे। हम दरवाजा लांघकर अंदर गये। रास्ते में हमें दो-चार मुस्लि… भाई मिले। मुझे वहां का वातावरण देखकर… भय-सा लगा। मन में आया, कोई षड्यं… तो नहीं है।

थोड़ा आगे चला। मंदिर लगभग पचा… कदम दूर था। वहां पर भी मुसलमान बै… थे, बड़ी मालाएं पहने हुए। दो बंदूकवाले… दो फकीर। इन सबको देखकर मेरी शं… बढ़ी, मैं खड़ा हो गया। मैंने श्री भगवानजी… भाई से पूछा—"यह क्या, हिन्दू मंदिर … मुसलमान चक्कर लगा रहे हैं! कोई धोखा… तो नहीं है?"

श्री भगवानजीभाई ने कहा— "यहां प… सब भाइयों की तरह रहते हैं। आप शं… न करें।" फिर उन्होंने यह हकीकत सुनायी…

"अलाउद्दीन के समय हम पर ब… हमले हुए थे। कितने ही मंदिर तोड़ डा… गये। उस समय कालावड पर भी आक्रम… हुआ। यहां रहने वाले कुछ मुसलमान भा… आक्रांता सेनापति के पास गये और उस… बोले— शीतला माता को हिन्दू और ह…

दोनों ही मानते हैं। शीतला सभी को निकलती है। इसलिए आप कृपा कर मंदिर को न तोड़ें।

"सेनापति ने कहा—इस मंदिर में दोनों पूजा करो तो न तोड़ूं। गांव के हिन्दू और मुसलमान अगुवा मिले, उन्होंने राय-बात की, निश्चय किया कि छः-छः मास दोनों पूजा करें। सेनापति ने मंदिर नहीं तोड़ा। इस तरह कालावड का शीतला मंदिर दोनों के लिए समान पूजास्थल बना हुआ है।"

आज भी दोनों पूजा करते हैं। आय को दोनों समान रूप में बांट लेते हैं। हजारों यात्री वहां आते हैं, चांदी का छत्र धरते हैं, भोजन देते हैं। बहुत-से अनाथों को सहायता दी जाती है।

यहां हिन्दू-मुसलमान एक पंक्ति में बैठकर भोजन करते हैं। फकीर के हाथ का प्रसाद हिन्दू लोग लेते हैं; हिन्दू पुजारी से मुसलमान लोग लेते हैं। ऐसी एकता देखकर मैं आश्चर्य में पड़ गया। यदि समस्त भारत में इसी प्रकार की ऐक्य-भावना होती, तो भारतमाता के टुकड़े न होते।

★

चरित्र-सौरभ

हजरत अबूबकर सिद्दीक जब खलीफा हुए, तो उन्होंने आम मुसलमानों को संबोधित करते हुए कहा :

"ऐ लोगों! मेरे कंधों पर हुकूमत की भारी जिम्मेदारी डाल दी गयी है। मैं तुम्हारे बीच सर्वोत्तम आदमी नही हूं। मुझे तुम्हारे मशवरों और हर तरह की मदद की जरूरत है। अगर मैं ठीक-ठीक काम करूं, तो मेरा साथ दो; अगर कोई गलती करूं, तो टोक दो। जिस शख्स को तुमने हुकूमत की जिम्मेदारी सौंपी है, उससे सच-सच बात कह देना वफादारी का सच्चा तकाजा है। और सच्चाई को छिपाना गद्दारी है। मेरी निगाह में ताकतवर और कमजोर बराबर हैं। मैं दोनों के साथ इंसाफ से पेश आऊंगा। जब तक मैं अल्लाह व उसके रसूल के हुक्म को मानता रहूं, मेरा हुक्म मानो और अगर मैं अल्लाह व उसके रसूल के हुक्म को भूल जाऊं, तो मुझे तुमसे अपना हुक्म मनवाने का कोई हक नहीं।"

° ° °

अब्दुल्ला नाम के एक संत थे। एक बार वे कपड़ा खरीदने के लिए अपने पुत्र के साथ बाजार गये। दुकानदार ने कपड़ा दिखाया। उन्होंने कीमत में कुछ कमी चाही, लेकिन लेकिन वह न माना। दुकानदार का पड़ोसी उन्हें जानता था, कहने लगा—"जानते हो ये कौन हैं? अब्दुल्ला है?" अब्दुल्ला यह सुनते ही उठ खड़े हुए और अपने बेटे का हाथ पकड़ा और कहने लगे—"मियां चलो! हम यहां कपड़ा पैसों से खरीदने आये हैं! अपने दीन से नहीं!" और वे कपड़ा लिये बिना चल गये।

—हसन जमाल छीपा

★
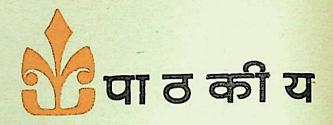
नवनीत नये विषयों के प्रति कितना जागरूक है, इसका प्रमाण है मई ७० के अंक में छ
प्रताप कुमार माथुर का लेख 'असाधारण पानी'। मेरे खयाल से भारतीय पत्र-पत्रिका
में केवल 'सायन्स टुडे' ने आपसे पहले इस विषय पर लेख छापा है। मगर असाधारण पानी
के अस्तित्व पर ही संदेह करने वाला कुछ शोधकार्य अमरीका में हुआ है, जिसका समा-
चार आपने 'टाइम्स आफ इंडिया' में देखा होगा। वह सूचना भी संक्षेप में आपके
छपनी चाहिये। हाल में बिनौले के तेल से संभावित हानि को लेकर काफी बहस छिड़ी है
उस पर भी नवनीत में लेख की प्रतीक्षा है।

—अब्दुल रजाक, कोहिम

* * *

क्या आप सचमुच 'चौबीस गुरुओं का शिष्य' जैसी पोंगापंथी के धर्मकथाओं से आ
पाठक-वर्ग को आकृष्ट करने की आशा करते हैं? सारी कथा का स्वर इहलोक-विरो
है ही, उसमें अवैज्ञानिक बातें भी हैं, जैसे कि भय से भृंगी का स्मरण करते-करते
का भृंगी बन जाना। यह वेदांत 'वेदांत' पाठकों को भले रुचे, पर उगती-बढ़ती पीढ़ी
बिलकुल नापसंद करती है।

—आरुमुगम पिल्ले, तिरुचिरपल्ल

* * *

जून का नवनीत पढ़कर वही संतोष, जो नवनीत पढ़ने सदा से मिलता आया है, पु
मिला। विशेषत: 'कंबोडिया की आग', 'असली प्रकाश तो भीतर है', 'हर्जाना',
रक्तरंजित रात', 'खामोशी और आवाजें' एवं 'विगलित प्रश्न' (धर्मेंद्र मुंधा का
मुक्तक) पसंद आये। देश को आज ऐसे ही (नवनीत जैसे) साहित्य की सबसे अधि
आवश्यकता है।

—जगदीश मिश्र 'अरुण', मुराद

* * *

लेनिन का अच्छा-सा ऐतिहासिक मूल्यांकन और नकशालपंथियों (सही उच्चार
यही है) की कारस्तानियों पर एक सशक्त लेख अपने प्रिय नवनीत में पढ़ने को उत्सुक
निराश तो नहीं होना पड़ेगा?

—चंद्रिका महाजन, पु

प्राथमिक उपचार टूटते विवाहों का

डा० नार्मन विन्सेंट पील

अधिकांश घरों में विशेष संकट के मौकों पर प्राथमिक उपचार के लिए कुछ दवाएं रखी जाती हैं। इन दवाओं की बदौलत साधारण बीमारियों, या छोटे-मोटे जख्मों के लिए कई बार डाक्टर के यहां जाने की जरूरत ही नहीं पड़ती। शारीरिक चोटों और जख्मों की तरह विवाहित स्त्री-पुरुष भावात्मक चोटों और जख्मों का भी शिकार होते रहते हैं। ऐसी चोटों के प्राथमिक उपचार के लिए भी घर में कुछ साधन जुटाकर रखने चाहिये।

विवाह-संबंधों में दुराव पैदा करने वाले खतरनाक कारण शुरू में बहुत छोटे और नगण्य से प्रतीत होते हैं, हल्की-सी खराश के निशान की तरह या कोई छोटी-सी फुंसी की तरह शुरू में ही अगर इनका इलाज न किया जाये,तो बाद में भयंकर नतीजे निकल सकते हैं।

गत कई वर्षों से एक पादरी के रूप में, मैंने सैकड़ों दंपतियों के टूटते संबंधों को जोड़ने के प्रयत्न किये हैं। मेरे तरीके में कुल मिलाकर दस प्रश्न हैं,जिनमें से तीन बीमारी का पता लगाने के लिए हैं, तीन छोटे-मोटे जख्मों के इलाज के लिए, और बाकी चार विवाह-संबंधों को स्वस्थ रखने के लिये।

पहले तीन प्रश्न ऐसे हैं, जो उन दंपतियों को स्वयं से पूछना चाहिये, जिनके विवाह-संबंधों में कोई बहुत बड़ी गड़बड़ी तो नहीं है, लेकिन वे यह महसूस करते हैं कि उनके संबंधों में किसी हद तक कटुता पैदा होने लगी है और पहले की स्निग्धता और अपनत्व की भावना कम होती जा रही है। दंपति को चाहिये कि इन प्रश्नों से स्वयं को परखें।

* क्या आप सचमुच प्यार करते हैं ?

किसी ने कहा है कि प्यार दूसरे की जरूरत का सही अनुमान लगाने और उसे पूरा करने में है। परंतु इसके विपरीत हममें से अधिकांश व्यक्ति, शुरू में अपने साथी को प्यार देने के बजाय उससे पाना चाहते हैं। जब दंपति में प्यार पाने के बजाय देने की

भावना जड़ जमायेगी, तभी उनके पारस्परिक संबंधों की नींव गहरी होगी।

*** क्या आप पाने की ही लालसा रखते हैं?**

अक्सर ऐसा होता है कि हममें से अधिकांश ने विवाहित जीवन संबंधी इतने अधिक भावुक और रोमांटिक विचार बना लिये हैं कि हम लगातार आनंद की ही अपेक्षा करते हैं; और जब अपेक्षित आनंद नहीं मिलता, तो उदास हो जाते हैं।

एक बार मैंने एक स्त्री को अपने पति के खिलाफ बहुत-सी शिकायतों की सूची बनाते हुए देखा। मैंने उससे कहा—"सबसे बड़ी शिकायत तुम्हें खुद से होनी चाहिये कि तुमने देवता के बजाय, एक मनुष्य से विवाह किया है।"

"विवाहित जीवन में हम दोनों ही समान हैं," उस स्त्री ने कहा—"हमें एक दूसरे को ५० प्रतिशत देना चाहिये, तभी यह संबंध टिक सकता है।"

"नहीं, यह ५० प्रतिशत का हिसाब ठीक नहीं। कुछ मौकों पर तुम्हें ३० प्रतिशत पाने के लिए और ७० प्रतिशत देने के लिए तैयार रहना होगा। कभी तुम्हें शायद २० प्रतिशत ही देना पड़े और बदले में ८० प्रतिशत मिल जाये। अपने पति से किसी करामात की आशा छोड़कर उसे खुश रखने का प्रयत्न करो। बदले में तुम्हें जो खुशी मिलेगी, वह किसी करामात से कम नहीं होगी।"

*** क्या आपने कान बंद कर लिये हैं?**

कई बार एक की दूसरे के प्रति कई सही शिकायतें होती हैं, लेकिन दूसरे को अपनी शिकायतें सुनाने से ही फुर्सत नहीं मिलती। दोनों ही एक दूसरे की शिकायतों की ओर ध्यान नहीं देते। नतीजा-वे एक दूसरे से दूर होते जाते हैं, उनके संबंध में तनाव पैदा हो जाता है, और वे एक दूसरे के लिए अनजान बनते चले जाते हैं।

एक बार मैं एक दंपति की शिकायतें सुनने के बाद पति को कमरे से बाहर ले गया और उससे कहा कि वापस कमरे में जाने पर जब भी मैं सिर हिलाऊंगा, वह पत्नी से कहेगा—"शायद तुम ठीक कहती हो।"

कमरे में जाने पर जब पत्नी ने पहले की तरह ही शिकायतें शुरू कीं, तो पहली ही शिकायत पर मैंने सिर हिलाया। पति ने कहा—"शायद तुम ठीक कहती हो।"

यह सुनना था कि पत्नी ने तैश में आकर दूसरी शिकायत की। मैंने फिर सिर हिलाया और पति ने कहा—"शायद तुम ठीक कहती हो।" और जब उसने तीसरी बार भी यही वाक्य दोहराया, तो उसकी पत्नी ने आश्चर्य से उसे देखा और उसके मुंह से निकला—"अरे! आज तो तुम बिल्कुल बदले हुए लगते हो! मैं यह क्या सुन रही हूं।" फिर वह अपने पति पर बरसने के बजाय किसी हद तक ठंडी पड़ गयी। उसे लगा कि उसका पति उसकी शिकायतें सुनने लगा है। यह एहसास होते ही वह खुद भी पति की शिकायतें सुनने लगी।

उपरोक्त तीन प्रश्नों के बाद अब मैं तीन सुझाव आपके सामने रखता हूं।

* **साथी की दृष्टि से सोचिये।**

इसके लिए थोड़ी-सी कल्पना-शक्ति का सहारा लेना पड़ता है, किसी भी समय–दफ्तर या बाजार से घर आते समय, फुर्संत के समय, आराम करते समय, या किसी और ऐसे मौके पर–खुद को अपने साथी के रूप में ढालकर पूछिये–"रोज-रोज की खिटखिट मिटाने के लिए मुझे क्या करना चाहिये?" आपका मन जवाव देगा–"कोई छोटी-सी हमदर्दी भरी हरकत, प्रशंसा का एक शब्द, छोटा-सा कोई उपहार और मुस्कराहट-भरी नजर।"

* **समझौते के लिए तैयार रहिये।**

समझौते का मतलब है कि आप मानसिक तौर पर इसके लिए तैयार हो चुके हैं कि हर सवाल के दोनों पहलू देख सकें। डा० रेमंड कोर्सिनी ने इस "लेन-देन" का एक वड़ा ही दिलचस्प तरीका वताया है।

वह एक दूसरे से नाराज पति-पत्नी को अपनी-अपनी शिकायतें लिखने के लिए कहता है। फिर लेन-देन के लिए उन्हें अपने सामने वैठाता है। पति अपने पर आरोपित शिकायतों में से एक दूर करने का वादा करता है–"मैं सिगरेट पीना कम कर दूंगा।" बदले में पत्नी भी एक शिकायत दूर करने का वादा करती है–"मैं वच्चों को डांटना-फटकारना छोड़ दूंगी।"

एक हफ्ते के वाद पति-पत्नी की सफलता पर डा० कोर्सिनी उन्हें दो-दो शिकायतों को दूर करने का सुझाव देते हैं। इस प्रकार पति-पत्नी को आपस में समझौता करने की आदत पड़ने लगती है; फलस्वरूप वे एक दूसरे को समझने लगते हैं और उनके टूटते संवंध फिर से जुड़ने शुरू हो जाते हैं। साथ ही उनकी वुरी आदतें भी छूट जाती हैं।

* **प्रशंसा और प्यार के वोल वोलिये।**

विवाह के असमतल धरातल को समतल वनाने का यह वहुत कारगर तरीका है। हम सव प्रशंसा के भूखे हैं। और प्रशंसा पाकर हम उस पर खरा उतरना चाहते हैं। मानव-स्वभाव की एक वहुत ही सूक्ष्म और शक्तिशाली प्रवृत्ति है कि वह वही वनना चाहता है, जो लोग उसके वारे में सोचते हैं। इसीलिए हममें प्रशंसा पाने की इतनी भूख है।

वीमारी की खोज और इलाज के वाद अव अंत में ये चार टानिक, जो विवाहित जीवन को स्वस्थ वनाये रख सकते हैं।

* **एक साथ काम कीजिये।**

काम, उपचार के सर्वोत्तम साधनों में है। पति दफ्तर में काम करता है, पत्नी घर में काम करती

नाग-दंपति
अनुकृति : ओके

है; लेकिन कुछ काम ऐसे भी हैं, जो वे एक साथ मिलकर कर सकते हैं। इस प्रकार मिलकर काम करने का एक अलग ही आनंद है, जिसकी वदौलत पति-पत्नी में अपनत्व की भावना और गहरी होती है। ऐसे अनेकों काम हैं, जो पति-पत्नी मिलकर कर सकते हैं। मसलन घर में रंग करना, वगीचा लगाना, मोटर को धोना आदि।

* **साथ खेलिये।**

यह एक अजीब बात है कि मनुष्य किसी चीज का अकेले ही मजा लेना चाहता है। किसी-न-किसी बहाने अपने साथी को उसमें शरीक करना नहीं चाहता। वह अपने साथी को छोड़कर अकेला ही आनंद उठाता है, इसलिए उसके मन में अपने अपराधी होने की भावना भी आती है। वस, वह उसका आनंद भी नहीं उठा पाता है। यदि पति-पत्नी कुछ खेलों में साथ भाग लें, तो उनका आनंद दुगुना-तिगुना हो सकता है। दोनों को चाहिये कि वे ऐसे खेल अवश्य खेलें, ताकि अपने को अपराधी होने की भावना से मुक्त रखने के साथ-साथ दोनों सम्मिलित आनंद का मजा उठायें।

* **साथ प्रार्थना कीजिये।**

अपने विगत कई वर्षों में मैंने एक साथ प्रार्थना करने वाले ऐसे पति-पत्नी को कभी नहीं देखा, जिनके वैवाहिक संबंध में कोई बहुत वड़ी मुश्किल पेश आयी हो।

एक साथ मिलकर प्रार्थना करने से विवाहित जीवन में संतुलन आता है, क्योंकि पति-पत्नी महसूस करते हैं कि दोनों ही ईश्वर को एक-से प्रिय हैं। ईश्वर के सम्मुख दोनों में नम्रता आयेगी और उनकी आपस की कटुता मिटेगी। वे अपनी कई गलतियों को मन-ही-मन स्वीकार भी करेंगे।

* **साथ सोइये।**

एक साथ सोने का यह अर्थ नहीं कि संभोग ही किये जायें। पति-पत्नी की निकटता एक दूसरे पर जादू-सा असर करती है। अंधेरे में धीरे-से अपने साथी का हाथ पकड़ने में एक ऐसी क्षमा-याचना है कि जिससे आपसी तनाव मिट जाता है, झगड़ा खत्म हो जाता है।

विवाह की गाड़ी को लीक पर चलाते जाना कई बार बहुत मुश्किल लगता है, लेकिन इसमें भी एक अलग ही आनंद है। अगर विवाह की गाड़ी बिना किसी रुकावट के अपने आप चलने लगे, तो विवाह जिंदगी की सबसे बड़ी उकताहट बन जाये और उसका सारा रोमांस जाता रहे।

★

नैतिकता का महारहस्य है प्रेम, अर्थात् अपनी प्रकृति में से बाहर निकलना, दूसरों के विचार, कार्य या देह के सौंदर्य के साथ अपने को तदात्म करना। उत्तम बनने के लिए मनुष्य को बड़ी तीव्र और व्यापक कल्पना करनी होगी, अपने को दूसरे व्यक्ति के स्थान पर, अनेक व्यक्तियों के स्थान पर रखकर देखना होगा; मानव-जाति के सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख बना लेना होगा। नैतिक कल्याण का महान साधन तो कल्पना है। —शे

★

मेरा भाग्यशाली सितार

काका कालेलकर

ठेठ बाल्यावस्था का धुंधला स्मरण है कि मेरे पिताश्री कभी-कभी एक सितार लेकर बजाते थे। उस समय वे क्या गाते थे, इसका खयाल तो कैसे हो? पर एक वार उनके मुंह से जो शब्द सुने थे, वे अव भी याद हैं। उनका अर्थ आज भी समझ नहीं सका हूं। शायद सुनने में गलती हो। ये रहे शब्द—चतुरंग बनाबनीला।

फिर तो मालूम नहीं, वह सितार कहां भाग गया। उसके बाद अपने जीवन में मैंने पिताश्री को गाते या सितार बजाते देखे-सुने का स्मरण नहीं है। हमारे घर में संगीत का वातावरण था ही नहीं।

बाद में मेरी पढ़ाई हुई। हाईस्कूल से कालेज में गया। उस अरसे में पिताजी सेनानिवृत्त होकर घर पर बैठे थे। फिर उन्हें सांगली राज्य के ट्रेजरी आफिसर की जगह पर काम करने के लिये निमंत्रण मिला।

मिरज और सांगली दक्षिण महाराष्ट्र के दोनों शहर पास-पास हैं। दोनों राजधानी के शहर हैं। दोनों राजदरबारों में संगीत की कद्र अच्छी थी। खास बात तो यह कि दोनों जगह सितार, बीन, रुद्रवीणा वगैरह तंतुवाद्य बनाने वाले उत्कृष्ट कारीगर बहुत थे। मिरज-सांगली के सितार की प्रसिद्धि दूर-दूर तक थी।

पिताजी सांगली रहने लगे, तो उनके साथ मेरे भाई गोविंदराव गये। उन्हें सितार बजाने का शौक हुआ। कालेज की छुट्टियों में जब मैं घर जाता, उनका टयांउ-टयांउ सुनना पड़ता और रागदारी की गतों का दिडदा-दिडदा भी सुनना पड़ता। ऊबते हुए मुझमें संगीत का रस पैदा हुआ। इस दरम्यान गोंदु (गोविंदराव) ने अच्छी प्रगति की।

हमारे यहां एक वृद्ध पेंशनर देवल आते थे। वे रोज मेरे साथ अनेक विषयों की चर्चा करते थे। वृद्ध-युवा के बीच दोस्ती जम गयी। उनके मुंह से संगीतशास्त्र के बारे में बहुत-कुछ सुना। फिर मन हुआ कि संगीत खूब सुनना भी चाहिये।

अपने छुटपन का संगीत-रस मुझमें पैदा

हुआ देखकर पिताजी मेरे लिए सांगली के अच्छे-अच्छे पेशेवर गायकों को बुलाने लगे। पिताजी ठहरे राज्य के अफसर। इसलिए गवैये और बजवैये खुशी से दौड़कर आते। मुझे खूब सुनने को मिला। फिर एक दिन मन हुआ कि गोंदु की तरह हम भी सितार बजाना क्यों न सीखें?

मेरी इच्छा जानते ही पिताजी ने सांगली के एक अच्छे कारीगर को सितार बनाने का आर्डर दिया।

उस कारीगर ने पिताजी को खुश करने के लिए अच्छे-से-अच्छा सितार बना दिया। पिताजी स्वभाव से कंजूस थे। परंतु उस वक्त उन्होंने खुश होकर कारीगर को मुंह-मांगे दाम दिये।

यों एक बढ़िया सितार लेकर मैं कालेज पहुंचा। पर वहां सितार बजाना कौन सिखायेगा? समय कहां से निकालूं? और सितार के तार पर उंगली घुमाते उंगली कट जाये, उसे सहन करने का धीरज किसके पास था? इसलिए कालेज के अपने कमरे में मेरा सितार तो था, परंतु कभी बजाता नहीं था।

वाद्य हो तो बजाने वाले आकर्षित होंगे ही। विद्यार्थियों में से जो अच्छे बजाने वाले थे (दो-तीन ही थे), उन्होंने मुझसे दोस्ती की और वे कमरे में आने लगे। सितार कमरे के बाहर नहीं जायेगा, यह मेरा नियम था। इसलिए सितार सुनने की मेरे लिए अच्छी सुविधा हो गयी। शहर में आने वाले मित्रों के मित्र भी मेरे यहां आते और मुझे सुनाते।

एक किस्सा यहां दर्ज करने लायक है—मेरे सामने के कमरे में भाई चित्रे रहते थे। उन्हें सितार का शौक बहुत था। इसलिए उनसे मेरी जान-पहचान बढ़ी। एक दिन चित्रे कहने लगे—"कालेलकर, सितार अच्छा बजाने वाले एक भाई आपके यहां आते हैं। उनके पास कुछ अच्छी गतें हैं। मैंने वे सुनी हैं, लेकिन वे किसी को सिखाते नहीं। आप मेरी मदद करें, तो मैं चोरी से सीख लूं।"

बात मेरी समझ में न आयी। समझाते हुए उन्होंने कहा—"आपके वाद्य पर वे खुश हैं, इसलिए बार-बार आते हैं। वे जब आयें तब मेरे दरवाजे पर टक-टक आवाज करना, फिर उन्हें देशराग की वही-की-वही गत बार-बार सुनाने को कहना। मैं अपना सितार लेकर चुपचाप आपके कमरे के बाहर अंधेरे में खड़ा रहूंगा। अपने सितार के तार के नीचे रूमाल रखूंगा, ताकि आवाज न निकले। आपके कमरे में वे गत बजाते रहेंगे। मैं बाहर से सुनता जाऊंगा और अपने सितार पर उंगलियां चलाता जाऊंगा। कान और उंगलियों की मदद से वह गत ग्रहण करने में मुझे देर नहीं लगेगी। फिर मैं अपने आप रियाज करूंगा। इतनी चोरी में यदि आप मदद करेंगे, तो मेरा काम बन जायेगा।" मैं परोपकार करने को तैयार हो गया और भाई चित्रे ने दो-चार गतें अपनी कर लीं।

अंत में बी. ए. होकर एल-एल. बी. का टर्म भरने के लिए मैं बंबई पहुंचा। वहां भी मेरे सितार के कारण बजाने वाला कोई-न-कोई मेरे यहां आता ही था और बढ़िया संगीत सुनाता था।

परंतु ऐसे 'मुफ्त' के भाग्य का अंत तो आना ही चाहिये न? मैं खुद जिसे न बजाऊं, वह वाद्य कब तक मेरे यहां रहेगा?

लोकमान्य तिलक पर बंबई में राजद्रोह का मुकद्दमा सरकार ने चलाया। लोकमान्य ने खुद अपना मुकद्दमा लड़ा। बहुत से बैरिस्टर निःशुल्क मदद करने को तैयार थे। परंतु उन्होंने कहा—"सरकार सजा देने वाली है ही। फिर आप लोगों को नाहक तकलीफ क्यों दूं? आप देखें तो सही मैं कैसे मुकद्दमा लड़ता हूं।" वे स्वयं एल-एल. बी. थे, इसलिए कोई बाधा न आयी। मुजरिम अगर खुद मुकद्दमा लड़े, तो हाईकोर्ट उसे सब तरह की सहूलियत देता है। लोकमान्य ने छः दिन तक अपना बचाव किया। न्यायमूर्ति अकुलाये, परंतु कैसे रोक सकते थे?

हमारे नेता पर सरकार खफा हुई है, यह जानकर बंबई की मिलों के मजदूर उत्तेजित हो उठे। छः दिन तक उन्होंने बंबई में दंगा चलाया। पुलिस की मदद के लिए लश्कर के गोरे सिपाहियों को बुलाना पड़ा।

उन दिनों हम अहिंसावादी नहीं थे। हम विद्यार्थियों के झुंड-के-झुंड (पुलिस की नजर चुराकर) मजदूर-इलाके में घूमते और मजदूरों को उकसाते रहते थे। यह प्रवृत्ति सस्ती नहीं थी। पुलिस और सोल्जर गोलियां छोड़ते थे और मजदूर घायल होते थे। उन्हें उठाकर अस्पताल ले जाना पड़ता था। जरूरत पड़ने पर घायलों के जख्मों पर पट्टी बांधने के लिए हमें अपनी धोती की किनारी या दुपट्टा फाड़कर उसकी पट्टियां इस्तेमाल करनी पड़ती थीं।

घायलों की मदद के लिए चंदा इकट्ठा करने की जरूरत हुई। मैंने सोचा, लोगों से पैसा मांगने से पहले अपना हिस्सा देना चाहिये। मुझे अपना सितार याद आया। पिताजी के इतने प्रेम और हौसले से दिये हुए सितार को बेच डालने को जी नहीं करता था। अंत में अपने मन पर चिढ़ा और कहा—"यही तेरी देशभक्ति है? वहां मजदूरों को उकसाता है, वे अपने प्राण न्योछावर करने को तैयार हैं और तू एक है जो अपना सितार छोड़ना नहीं चाहता।"

निश्चय हो गया। मुझे उसके काफी पैसे मिले। वे मैंने मजदूरों के चंदे में दे दिये। उस रात मुझे अच्छी नींद आयी।

★

मैं उस प्रदेश का रहने वाला हूं, जहां के छत्रपति शिवाजी ने हिन्दी को 'हिन्दवी स्वराज्य' की भाषा घोषित करके एक समकालीन तेजस्वी स्वराज्यनिष्ठ हिन्दी कवि को अपना राजकवि बनाया। राष्ट्रभाषा हिन्दी ने तुलसीदास, सूरदास, कबीर, मैथिलीशरण जैसे असंख्य श्रेष्ठ कवि भारत को दिये हैं। लेकिन हम महाराष्ट्री लोग तो 'शिवा बावनी' लिखने वाले कवि भूषण को ही अपने हृदय में प्रथम स्थान देंगे। क्योंकि इसी कवि ने राष्ट्रभाषा के तेजस्वी कवित्त महाराष्ट्र के स्वराज्य-संस्थापक छत्रपति शिवाजी को महाराष्ट्र की राजधानी में गौरव के साथ सुनाये थे। —काका कालेलकर

★

पृथ्वीनाथ शास्त्री

सैम्युअल बेकेट

छोटा-सा देश है आयरलैंड; लेकिन उसके साहित्यकार अपनी विशिष्ट साहित्यिक प्रतिभा के लिए सारी दुनिया में समादृत हुए हैं। पिछले दिसंबर में जब सैम्युअल बेकेट को लगभग पांच लाख रुपये का नोबेल साहित्य-पुरस्कार दिया गया, तो कहा गया था—"उपन्यास और नाटकों की नयी रूप-सर्जनाओं में इनके लेखन ने आधुनिक मानव के ध्वंस से अपनी उच्चता पायी है।"

बात कुछ अजीब-सी लगती है, किंतु एकदम सच है। बेकेट का कृती व्यक्तित्व और साहित्यिक कर्तृत्व बीस वर्ष तक अजीब-सा ही लगता रहता था; लेकिन जब उनका प्रसिद्ध नाटक 'गादों का इंतजार' फ्रेंच भाषा में प्रकाशित हुआ, फिर विश्व की बाईस भाषाओं में अनूदित हुआ और सभी प्रसिद्ध रंगमंचों पर खेला गया, तो सार्वभौम ख्याति का सेहरा बेकेट के माथे बंध ही गया।

दुबला-पतला छरहरा शरीर, हरी आंखें, लंबोतरा चेहरा, चील की चोंच जैसी नाक, खूब चुस्त कपड़े, चाल-ढाल एकदम फ्रांसीसियों-जैसी, उम्र चौंसठ वर्ष। बहुत कम लोग हैं, जो पहली बार में बेकेट के परमाकर्षक व्यक्तित्व से चमत्कृत नहीं होते।

जन्म से आयरिश, पेशे से पहले अंग्रेजी के और बाद में फ्रेंच के अध्यापक, फिर अंग्रेजी और फ्रेंच के लेखक बेकेट भी जां पाल सार्त्र की तरह पिछले विश्वयुद्ध में नात्सी-प्रतिरोधियों में शामिल थे। १९४२ में जब उनकी टोली को धोखा दिया गया, तो उसके ठीक आधा घंटा पहले वे पत्नी समेत अपने घर से गायब हो गये। गेस्टापो के गुर्गे हाथ मलते रह गये। बेकेट एक फार्म में चार वर्ष तक मेहनती मजदूर का जीवन बिताकर १९४५ में पेरिस वापस आये और तब से वहीं साहित्य-साधना में निरत हैं।

आत्मप्रचार और दिखावे से उन्हें एक तरह की आंतरिक वितृष्णा है। इतनी कि विपक्षी कहते हैं–"यह भी एक तरह का 'वेकेटियन पोज' है।" किंतु विश्वविदित कलाकृतियों और कलाकारों की शौकीन धनी महिला पेगी गगेनहाइम ने १९३५ में कहा था–"बेकेट ने मुझे यह अच्छी तरह यकीन दिला दिया कि कला वास्तव में हमारा दिन-प्रतिदिन का जीवन है; अतः पुराने महान कलाकारों की कृतियां जुगाड़ने के वजाय इसे तरजीह दो।......"

पेगी ने और भी कुछ कबूल किया है– "मैं उस पर वुरी तरह मरती थी और वह तय नहीं कर पा रहा था कि मुझे स्वीकारे या त्यागे......" वेकेट के सान्निध्य के लिए लंदन से पेरिस के चक्कर काटती हुई वेचारी पेगी तव हाल में तलाक लेकर मुक्त हुई थी और बेकेट भी अविवाहित थे। पेगी कहती है कि वेकेट से संलाप करना बहुत कठिन होता था; "चूंकि वह रौ में बहुत देर में आ पाता था......घंटों तक अंगूरी पीने के वाद।" पेगी वेकेट को देवता की तरह पूजती थी; उसे वे अत्यंत वौद्धिक और अमूर्त-से व्यक्ति लगते थे।

वेकेट को जेम्स जायस पर इतनी श्रद्धा रही कि वे उसकी लड़की से शादी के लिए तैयार हो गये थे। किंतु शादी हुई सूजान से, जो वेकेट को समझने का पूरा दावा कर सकने वाली एकमात्र व्यक्ति हैं। पति-पत्नी में बहुत ही गहरी पारस्परिक समझ है। पति की सफलता में पत्नी का भी गहरा हाथ है, वही प्रकाशकों से निपटती हैं।

वेकेट दुनियादारी में कतई चतुर नहीं हैं। ट्रीनिटी कालेज (केम्ब्रिज विश्वविद्यालय) की प्राध्यापकी उन्होंने सिर्फ इसलिए छोड़ दी कि उन्हें यह बहुत ही निरर्थक लगता था कि जो चीज वे खुद नहीं समझ पाये हैं, उसे दूसरों को समझाने का प्रयत्न करें। 'गोल्ड मेडलिस्ट' स्नातक और परमाकर्षक अध्यापक होने पर भी वे अध्यापन से संन्यास ले चुके हैं।

अपनी पुस्तकों के प्रकाशकों के दिवालिया होने का अंदेशा उन्हें हमेशा ही बना रहता है। वे प्रायः अपने नाटक नहीं देखते, यद्यपि उनके प्रस्तुतीकरण में पूरी मदद करते हैं। अंग्रेजी में वे इसलिए नहीं लिखते कि उनकी राय में वह बहुत ही अमूर्त और वायवीय भाषा बनती जा रही है। फ्रांसीसी में लिखना इसीलिए ज्यादा पसंद करते हैं कि वह उनकी अपनी मातृभाषा नहीं है और उसमें अभिव्यक्ति की पूर्णता पाने के लिए उन्हें अधिकाधिक परिश्रम करना पड़ता है।

दस प्रकाशकों ने उनके तीन उपन्यासों को छापने से इन्कार कर दिया था। अंत में प्रकाशक जेरोम लिंडन तैयार हुआ। मार्च १९५१ में पहला उपन्यास निकला, तो बेकेट को डर था कि पुस्तक की 'अनैतिकता' के कारण वेचारे प्रकाशक को गहरा नुक्सान न उठाना पड़ जाये। क्योंकि यही हाल हुआ था उनके प्रथम और विश्वविख्यात नाटक का जो अब तक २२-२३ भाषाओं में अनूदित होकर सारी दुनिया के मुख्य-मुख्य

नगरों में खेला जा चुका है।

'गादो की प्रतीक्षा' को कितने ही नाटच-गृहों ने नामंजूर कर दिया था। दलील यह दी जाती थी कि न इसमें कोई औरत है, न कम्युनिस्ट, न पादरी; इसे कौन देखेगा? ...... लेकिन अंत में १९५३ में यह पहली वार खेला गया और सफल हुआ।

प्रशंसकों और मित्रों का कथन है कि वेकेट में विनय और आभिजात्य का सुंदर सामंजस्य है, स्पष्टवक्तृत्व और सदाशयता का अद्‌भुत मेल है। "इतने खरे, इतने महान, इतने अच्छे" बहुत कम लोग हो पाते हैं।

वेकेट एक गुणी और कृती संगीतज्ञ भी हैं। यह मार्सेल मिहालोविच ने स्वीकारा है कि उनमें आश्चर्यकारी जन्मजात सांगीतिक प्रतिभा है। दृश्यात्मक भाव-संप्रेषण में वे वेजोड़ हैं। उनकी स्वतंत्रता अनुशासन की सहचरी है। नाटच-रूपायन में वे सर्वोत्तम अभिनय, रूपसज्जा, आलोकपात और निर्देशन के आग्रही हैं और द्वितीय कोटि की चीजें कभी पसंद नहीं करते। परंतु वे किसी की आविष्कारिणी कल्पना एवं उद्‌भावना-शक्ति की अवहेलना नहीं करते, वशर्ते वह उनके नाटकों की मूल वस्तु को एकदम विकृत या विपरीत न कर डाले।

वे हर वात में वहुत ही विशिष्टता के पक्षपाती हैं। उनके साथ काम करना लोग सौभाग्य समझते हैं। (यह यश हमारे यहां केवल सत्यजित राय को प्राप्त है।) वे प्रत्येक व्यक्ति के अंतर्निहित कृतित्व को खोज निकालते और जागृत कर देते हैं, जिससे कि वह व्यक्ति प्रायः स्वयं अनभिज्ञ होता है।

यूरोप और अमरीका आदि की नयी पीढ़ी में वेकेट की निरंतर वढ़ती लोकप्रियता के तीन कारण हैं—मानवीय परिस्थितियों के प्रति उनमें असीम करुणा है; व्यक्ति की नवनवोन्मेषित अतिसंत्रासक समस्याओं की उन्हें संपूर्ण जानकारी है; वे जीवन के रहस्यों में गहरे पैठकर मर्म स्पर्श कर पाते हैं और अस्तित्व को ज्यादा सहनीय वनाने की भर-पूर कोशिश करते हैं। जीवन के प्रति प्रति-वद्धता और जीवन की अच्छाइयों के प्रति सतत जागरूकता वेकेट की सबसे वड़ी विशे-षता है। धैर्य और सहिष्णुता ने उनका कभी साथ नहीं छोड़ा।

विना चाहे भी वे यूरोपीय मंच के आयामों और नाटच-संभावनाओं के विकास के अगुआ वन गये हैं; क्योंकि उनमें अपूर्व प्रतिभा है, कल्पना-शक्ति है और वे अत्यंत उत्कृष्ट अभिरुचि से संयुत हैं। कविता की एक-एक पंक्ति में वे कई अर्थ, समाजगत और वैयक्तिक संदर्भ, वर्णन और प्रतीक, सुनी बातों के टुकड़े, भौगोलिक निर्देश आदि कुशलता से पिरो देते हैं। उनके शब्दों में रहस्य और उद्‌भावना अनायास छलकने लगते हैं।

प्रहसन-प्रतिभा के धनी हैं, किंतु उसका उपयोग सकरुण होकर करते हैं, निर्दयता से निरंकुशता से नहीं। वे हमेशा द्रष्टा और जिज्ञासु का 'रोल' अपनाते हैं; सोचना-समझना चाहते हैं उस जिंदगी को, जिसे प्रतिक्षण उनके चहुं ओर जिया जा रहा है।

बेकेट ने कभी किसी दर्शन की प्रस्तुति का दावा नहीं किया। उनकी रचनाएं महान मानवीय कारुण्य से संपूरित हैं। स्त्रियों को वे बड़ी आंतरिकता से समझ पाते हैं। प्रेम और निश्छलता को वे एक ही स्तर पर लेते हैं।

सार्त्र ने उन्हें फ्रांसीसी भाषा का एक अगुआ शैलीकार माना है। उनकी शब्द-योजना संक्षिप्तता और गांभीर्य से परिपूर्ण रहती है। प्रांतीयता उन्हें कभी नहीं भरमाती। किसी वर्ग-विशेष और स्थान-विशेष के रीति-रिवाज भी उनकी रचनाओं में नहीं रहते। वे एक साथ ही यूरोप और समस्त विश्व को प्रिय हो सकती हैं, हुई हैं, हो रही हैं।

बेकेट के सारे पात्र किसी-न-किसी क्षण 'वाचक' या 'लेखक' वनते हैं। सभी कृतियों में उनके पात्र सर्जक या रहस्योद्घाटक हो जाते हैं; उनके कार्यों और शब्दों से अव्यक्त या अनुद्घाटित सामने आ जाता है। इस प्रकार बेकेट छिपे और खुले के विरोध को चरम-विंदु तक ले जाकर 'स्व' से 'स्व' का स्वीकार या निषेध कराते हैं, 'हां' और 'ना' के बीच अंतर्विरोध उपजाते हैं। 'मैं' कहीं अन्यत्र रहता-सा लगता है और स्थिति असहनीय हो जाती है। आदमी की सत्ता या उसके अस्तित्व के आधार की कमी महसूस होती है, 'ना' का चाकू 'हां' के घाव में हमेशा घुसा-घुसा लगता है, द्वंद्वात्मक प्रक्रिया का अहसास होने लगता है।

इसीलिए सबके सब बेकेटियन पात्र अंतर्मुखी प्रवृत्ति के होते हैं।

बेकेट किसी रहस्यमय ईश्वरीय या सर्वोपरि सत्ता की वकालत नहीं करते। वे जीवन के उन ट्रैजिक पक्षों की व्याख्या करते हैं, जो मौन, एकाकिता और अस्तित्व या होने की असंभाव्यता के असह्य विरोधों से भरे हैं।

बेकेट कहते हैं—"व्यक्त करने को कुछ भी नहीं है, व्यक्त करने की कोई शक्ति नहीं है, व्यक्त करने की कोई इच्छा नहीं है, लेकिन साथ ही व्यक्त करने का दायित्व भी है।"

बेकेट की राय में मानव का खंडित व्यक्तित्व जीवन, सत्य, अस्तित्व का एहसास, आत्म या स्व, अपनी विस्मृत संज्ञा और सहज निर्वाक् स्थिति की अहर्निश तलाश में परेशान है; परंतु उसकी सारी कोशिशें व्यर्थ हो जाती हैं, चूंकि सारे संप्रेषण प्रायः व्यर्थ रहा करते हैं। अतएव परंपरागत रूप और शिल्प की मान्यताएं छोड़कर बेकेट ने अपने कथानक-विहीन नाटकों और उपन्यासों में वर्तमान मानव-जीवन और मानवीय अस्तित्व की झाकियां किसी भी लाग-लपेट के बिना पेश की हैं।

किंतु वे अस्तित्ववादी विचारों के अमूर्त प्रत्ययों से मुक्त हैं, न उनमें अन्य अस्तित्ववादियों जैसे अंतर्विरोध हैं। निषेधवाद के अतिरेक से भी बेकेट सर्वथा मुक्त हैं। बेकेट के साहित्यिक पात्र आवारागर्द विचक्षण हैं, प्रतिभाशाली हैं।

बेकेट के व्यक्तित्व और कृतित्व की 'अग्राह्यता' स्फटिक मणि पर पड़ती रोशनी की तरह व्यंग्य के अनेक पहलुओं में अपनी

छटाएं दिखाती है। बेकेट कहते हैं—"जिंदगी एक आदत है; सांस लेना भी एक आदत है। आदत ही वह 'बैलस्ट' है, जिससे वह कुत्ता बंधा है, जो अपना ही उगला खाने के लिए मजबूर है।" आदतों की कारा तोड़कर मुक्त होना ही गादो की प्रतीक्षा का अंत है। व्यक्ति इस आदत-सांकल को तोड़ भी ले तो क्या, सारी सभ्यता तो इसी से चिपकी-बंधी है और कुत्ते की तरह अपना ही उगला चाट रही है।

अपनी लंबी कविता 'ह्वोरोस्कोप' [उच्चारण ह्वोर (वेश्या) और होर (नक्षत्र) दोनों का एक-सा होता है।] में बेकेट ने दिखाया है कि केवल द्रव्य (मैटर) और आत्मा या चेतन (स्पिरिट) की पृथक्ता साबित करने से ही आदमी को देवता नहीं बनाया जा सकता, चूंकि उसे अपनी मर्त्यता से अभी तक छुटकारा नहीं मिला ...... स्पिरिट उसे हमेशा छलती रही है। आधुनिक मानव की जन्मपत्री उसे देवता नहीं, 'वेश्या' ही साबित करती है!

अपनी और एक कविताओं की पुस्तिका में उन्होंने यही विषय और भी परिष्कृत रूप में रखा है। एक नमूना देखिये:

मूर्ख, तुझे उम्मीद है कि
भगवान तेरी दर्द-गांठ
खोल देगा?
वह विषादी क्राइस्ट तो
बहुत करुण-हृदय था।
अरे हां, मेरा खयाल है कि
शायद वह बहुत कम झुका था
अत्यधिक-सी
आत्म-सजगता की ओर......

कोरे यथार्थवादी लेखन को बेकेट "रेखाओं और सतहों का दयनीय वक्तव्य" मानते हैं। उनकी दृष्टि में नैतिकता से विच्युत दुनिया में सौंदर्य और कला के एकत्व या सामंजस्य की बात भी मात्र ढोंग है......

बेकेट के नाटक और उपन्यास 'अद्भुत' (विचित्र नहीं, अननुभूतपूर्व) रस से लबालब हैं। उनके प्राकृतिक वर्णन भी अश्रुतपूर्व हैं। जैसे—"सूरज निकला, और कोई चारा नहीं था उसके पास, वह किसी नयी चीज पर नहीं चमका।"

बेकेट ने आडंबरपूर्ण नैतिक उपदेशों का तीखी और अभूतपूर्व दृश्यात्मक पद्धति से मखौल उड़ाया है। कभी उन्होंने अपनी सारी वाक्य-रचना उलट दी है, तो कभी शब्दों के अक्षरक्रम उलट-पुलट दिये हैं, ताकि साहित्यिक रूप-विधान से भी निरर्थकता की स्थिति का एहसास हो जाये। मानव का मनोमान्द्य (आन्वी) कितना व्यापक है, दुर्भेद्य है, वह अपनी अहं-कारा में कैद है, मिथ्या सम्मान के भाव उसके संप्रेषण को असंभव कर देते हैं, केवल वाक् ही नहीं आज के इलेक्ट्रानी तरीके भी फेल हो चुके हैं—बेकेट ने यह भली भांति प्रदर्शित कर दिया है।

बेकेट की कृतियों के रसास्वादन एवं उनकी साहित्यिक उपलब्धि के मूल्यांकन के लिए पाठकीय प्रयत्न और मेधा आवश्यक हैं।

★

सलाह नहीं, सुझाव :

हृदय में पैठने का द्वार

अनूप शर्मा

हम, आप सब यह चाहते हैं कि लोग हमें पसंद करें, हम अधिक-से-अधिक लोकप्रिय हों। और यह बिलकुल स्वाभाविक है। मानव-स्वभाव की गहनतम प्रवृत्तियों में एक होती है लोकप्रियता व प्रशंसा पाने की चाह। कभी-कभी यह इच्छा इतनी बलवती हो उठती है कि लोग किसी भी तरह इसकी पूर्ति में जुट जाते हैं, चाहे तरीका गलत ही क्यों न हो।

लोकप्रियता जन्मजात नहीं होती। वह हासिल करनी पड़ती है—कुछ को अपनी आंतरिक प्रवृत्तियों के कारण कम प्रयास करना पड़ता है और कुछ को अधिक। लेकिन इन सबके पीछे एक ही बात छिपी रहती है। और वह है—आप लोक-व्यवहार में कितने कुशल हैं। ये छः मंत्र हैं; इनका मनन कीजिये और लोकप्रियता प्राप्त कीजिये :

१. **आपकी हुलिया :** बहुत ज्यादा तो नहीं, लेकिन लोकप्रियता पर इसका असर कुछ तो पड़ता ही है कि आप दिखते कैसे हैं। दिखने का अर्थ शक्ल-सूरत से नहीं, आपकी हुलिया से है।

आपकी हुलिया से यह पता चल जाता है कि आप कितने सफाई-पसंद हैं, आपकी रुचि कैसी है, आपका दृष्टिकोण कलात्मक है या नहीं और आप कितने सावधान हैं।

पहनने-ओढ़ने के विषय में हमेशा एक बात का खयाल रखना पड़ेगा कि आप उन्हीं चीजों का व्यवहार करें, जो आपके व्यक्तित्व को आकर्षक बनाती हों, न कि उस पर हावी होने वाली चीजों का। यह तो आप जानते ही हैं कि 'पहला प्रभाव' काफी महत्त्वपूर्ण होता है।

२. **प्रसन्नता :** पहली छाप के बाद तुरंत

एक प्राचीन असीरियन प्रस्तर-कृति

जो चीज असर करती है, वह यह कि आप कितने हंसमुख हैं, कितने प्रसन्न वदन हैं। बेशक यह इस पर भी निर्भर है कि आप किससे और किस सिलसिले में मिल रहे हैं। अगर कामकाजी भेंट है, तो आप गंभीर ही रहेंगे। लेकिन तब भी आपके चेहरे से प्रसन्नता टपकनी चाहिये।

देवताओं के प्रभामंडल की तरह हम सबके साथ एक 'मंडल' होता है—किसी के गिर्द उदासी और दुःख का, तो किसी के प्रसन्नता, चुहल और विनोद का। लोकप्रिय बनना हैं, तो आपको इस दूसरी तरह का वातावरण अपने चारों ओर पैदा करना होगा। कौन-सी चीज लोगों में प्रसन्नता का संचार करेगी, उसका अपने स्वभाव और व्यवहार में समावेश करना होगा।

आपकी प्रसन्नता, आपका उत्साह लोगों पर यथेष्ट प्रभाव डालेगा और आप लोकप्रिय बनने की दिशा में और आगे बढ़ेंगे।

३. शालीनता : अक्सर देखा गया है कि जो ऊटपटांग हांकते हैं, दूसरों को तुच्छ समझते हैं, आत्मप्रशंसा में लीन रहत हैं और सदा काल्पनिक दुनिया में खोये रहते हैं, वे शायद ही लोकप्रिय बन पाते हैं। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि आप स्वाभिमानी न हों, आपके हाथों जो अच्छे काम अच्छी तरह हुए हैं, उन पर फक्र न करें। मगर साथ ही दूसरों से सीखने के लिए तैयार भी रहिये, अपनी गलतियों को स्वीकार कीजिये, जिससे भविष्य में आप और भी अच्छे ढंग से कामों को अंजाम दे सकें।

अक्खड़पन जीवन में कभी काम नहीं आता। विनम्र बनकर शालीनता से दूसरों से सीखिये। इससे दूसरों को अनुभव होगा कि उनमें भी कुछ ऐसा है, जिसे आप स्पृहणीय, अनुकरणीय समझते हैं। यह अनभूति आपको उनके लिए स्पृहणीय बना देगी।

शालीनता का यह अर्थ नहीं कि हमेशा दूसरों की हां में हां मिलायी जाये। विरोध कीजिये, लेकिन ढंग से, संयम से। विरोध नम्रता से भी किया जा सकता है। नम्रता और संयम विरोधी को आपकी बात इज्जत के साथ सुनने की प्रेरणा देगी और उसके मन में आपके लिए सद्‌भाव जगायेगी।

४. विश्वास कीजिये, विश्वास पाइये: किसी को यह अनुभव कराना कि उस पर हमें विश्वास नहीं है, उसे अपने से विमुख करने का सबसे आसान तरीका है। हर कोई चाहता है कि उस पर विश्वास किया जाये। हममें से किसी को यह जरा भी अच्छा नहीं लगता कि कोई हम पर संदेह-भरी नजर जमाये हुए है। किसी पर अविश्वास करके हम उसकी दबी बुराई को उभार देते हैं, जब कि विश्वास करके हम उसका विश्वास ही नहीं, श्रद्धा भी पाते हैं।

सत्यनिष्ठा बनाये रखने के लिए ये तीन बातें आवश्यक हैं :

क. हम वचन-पालन करें। कुछ लोग मिलने का समय तय करके भी नहीं आते और आते भी हैं, तो देर से। ऐसे लोग अगर हंसमुख होने के बावजूद अपनी लोकप्रियता कम कर लेते हैं, तो क्या आश्चर्य।

ख. जो कुछ कहना हो, सामने कहिये यदि लोग मानते हैं कि हम पीठ पीछे कुछ नहीं कहते, तो यह हमारी सत्यनिष्ठा का प्रमाण है। एक दूसरे के बारे में सुनी-सुनाई बातों की चर्चा भले बिना दुर्भावना के की गयी हो, लोकप्रियता की जड़ें काट देती हैं।

ग. लोगों को यह विश्वास होना चाहिये कि आप उनकी गोपनीय बातों को गोपनीय रखेंगे। "यह बात किसी से न कहियेगा," कह देने के बाद वक्ता को विश्वास होना चाहिये कि सचमुच यह बात आप किसी से कहेंगे नहीं।

इस तरह से विश्वास कीजिये और विश्वास पाइये। बिना इसके लोकप्रियता जड़ नहीं जमा पायेगी।

५. मुक्त हृदय से बढ़ावा दीजिये : एक विदेशी लेखिका फिलिस डब्ल्यू० यंग ने कहा है—"लोकप्रियता की मंजिल पर पहुंचने की एक राह है, जिस पर हर कोई चल सकता है, जो अपने व्यक्तित्व को अनाकर्षक समझता है, वह भी। अपने को आगे बढ़ाने का प्रयत्न नहीं, अपितु दूसरों को आगे बढ़ाने का प्रयत्न ही यह राह है।"

इसका यह अर्थ नहीं कि हमें अपनी उन्नति के लिए कुछ नहीं करना चाहिये। जब हम दूसरों को अनुभव करायेंगे कि वे अच्छे आदमी हैं, गुणी आदमी हैं, तो सहज ही वे हमारे स्नेही बन जाते हैं। अगर हरदम किसी की आलोचना ही की जाये, तो उस में हीनता की भावना आयेगी, जो अंततः हमारे प्रति दुर्भावना में बदल जायेगी।

हम सभी दूसरों से शाबाशी, बढ़ावा और सांत्वना चाहते हैं। तो दूसरों को भी हमसे उसकी आशा करने का अधिकार है।

६. मदद देने के लिए तत्पर रहिये : परोपकार की खिल्ली उड़ाना बहुत आसान है। यह भी कहा जा सकता है कि परोपकारी प्रवृत्ति का लोग नाजायज फायदा उठाते हैं। लेकिन इस भय से हम जीवन की अमूल्य निधि से अपने को वंचित रखें, यह बुद्धिमानी की बात नहीं। "विश्वास कीजिये, विश्वास पाइये" की भांति "मदद कीजिये, मदद पाइये" भी जीवन का सत्य है।

हां, कभी-कभी एक कठिनाई सामने आ खड़ी होती है—आपकी इस प्रवृत्ति का नाजायज फायदा उठाये जाने की समस्या नहीं, बल्कि आप जिनकी मदद करने जाते हैं, उन्हें बुरा लगने की समस्या। इसलिए हम उद्घाटक का जामा पहनकर न घूमें, लोगों को यह न अनुभव करायें कि हम उनके मामलों में टांग अड़ा रहे हैं।

सहज भाव से, जो सहायता का हाथ बढ़ाया जाता है, उसका स्वागत होता है। दधीचि अपनी हड्डियों की फेरी लगाने नहीं गये थे; देवताओं ने मांगी और दधीचि ने सहज भाव से दे दी।

एक होती है छिछली लोकप्रियता, जिसके कारण आदमी पार्टियों और पिकनिकों में बुलाया जाता है। लेकिन हम जिसकी बात कर रहे हैं, वह अधिक गहरी लोकप्रियता है, जो दिल को दिल से जोड़ती है, हमें एक दूसरे के सुख-दुःख का साथी बनाती है।

★
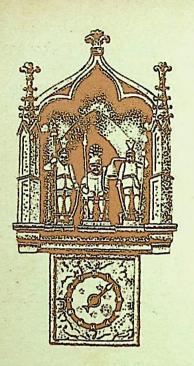
समय बड़ा विचित्र

चंद्र कुमार मिश्र

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद्, बंबई द्वारा प्रेषित

विचित्र है समय, जिसे न कोई देख सकता है, न सुन सकता है, फिर भी जिसका प्रभाव सब पर है। मानव, मानव की रची वस्तुएं, प्रकृति तथा उसके सब पदार्थ समय से प्रभावित हैं। समय पाकर बालक युवक होता है और पौधा वृक्ष में परिवर्तित होता है। दोनों प्रौढ़ अवस्था पाकर कालग्रसित हो जाते हैं। इसीलिए भारतीय दर्शनों में काल अर्थात् समय को समस्त पदार्थों का सामान्य धर्म माना गया है।

समय के सही मापन में मनुष्य की सदा दिलचस्पी रही है और यह आज के वैज्ञानिक युग में तो अत्यंत आवश्यक है। उसके मापने में सेकेंड के शतांश का भी हेरफेर हो जाये, तो अंतरिक्ष-यात्री अपनी मंजिल से सैकड़ों मील दूर उतरे, उसका यान अपने निश्चित मार्ग से हट जाये तथा टोह लेने वाले यान कहीं-के-कहीं पहुंचकर महायुद्ध भड़का दें।

समय क्या है, यह बतलाना अत्यंत कठिन है; किंतु यह सर्वविदित है कि समय बीतने पर वस्तुएं परिवर्तित हो जाती हैं और समय पर घटनाएं घटती हैं। दूसरे शब्दों में, घटी घटनाओं तथा वस्तुओं के परिवर्तन से समय का आभास होता है।

समय के तीन मुख्य प्रकार हैं:

१. नक्षत्र-समय, २. सूर्य-समय (आभासी सौर समय), ३. माध्य सौर समय।

विष्णु पुराण के अनुसार वैदिक काल में समय की सबसे छोटी इकाई निमेष थी। एक मात्रा वाला अक्षर बोलने में जितना काल लगता है, वह निमेष है। पंद्रह निमेषों की

एक काष्ठा होती थी और तीस काष्ठाओं की एक कला। १५ कलाओं की एक नाडिका होती थी तथा दो नाडिकाओं का एक मुहूर्त होता था। ३० मुहूर्तों का एक अहोरात्र (दिन-रात) होता था। ३० अहोरात्रों का एक मास और १२ मास का एक वर्ष होता था। वैसे इस मापक्रम का कोई वैज्ञानिक आधार न था।

वैज्ञानिक आधार की दृष्टि से समय मापने का सबसे सरल उपाय यह है कि किसी ऐसी नियत-कालिक भौतिक घटना या किसी चक्रीय प्रक्रिया का उपयोग किया जाये, जिसकी अवधि स्थिर हो। गति के सिद्धांतों के अनुसार, कोई भी घूमती हुई गोलाकार वस्तु निरंतर एक ही गति से घूमती रहेगी, बशर्ते उस पर बाहर से बल न लगे। इसका अर्थ यह हुआ कि उसे एक चक्कर पूरा करने में हमेशा समान समय लगेगा। पृथ्वी पूर्णतया गोलाकार तो नहीं है, फिर भी वह अपने अक्ष पर सदैव लगभग एक-सी गति से घूमती है। अतः पृथ्वी से घड़ी का काम लिया जा सकता है। उसके घूमने में समय का जो बहुत थोड़ा-सा विचरण होता है, गणना करके उसका संशोधन किया जा सकता है।

सिद्धांत के रूप में तो यह बात ठीक है। परंतु इसमें एक कठिनाई है। पृथ्वी की गति का अनुमान, पृथ्वी पर रहकर या पृथ्वी पर की वस्तुओं की दृष्टि से नहीं किया जा सकता है; क्योंकि पृथ्वी के साथ उस पर स्थित समस्त वस्तुएं भी घूमती रहती हैं। अतः पृथ्वी से अलग किसी नक्षत्र जैसी वस्तु को स्थिर मानकर उसकी अपेक्षा से पृथ्वी की गति का अनुमान करना पड़ेगा।

इसके लिए मुख्यतया दो वस्तुओं को आधार बनाया जा सकता है—१.नक्षत्र, और २. सूर्य। इस कारण समय के दो मुख्य प्रकार हैं—१. नक्षत्र-समय और २. सूर्य-समय (जिसे आभासी सौर समय भी कहा जाता है)।

हमने देखा कि नक्षत्र को स्थिर मानकर पृथ्वी की गति का अनुमान किया जा सकता है। परंतु कठिनाई यह है कि नक्षत्र और पृथ्वी दोनों विशालकाय हैं। अतः हमें दोनों पर या कम-से-कम एक पर ऐसी किसी रेखा या स्थान की कल्पना करनी पड़ेगी, जिसे आधार मानकर पृथ्वी की गति की गणना की जा सके। इसीलिए पृथ्वी पर उत्तर ध्रुव से दक्षिण ध्रुव की ओर जाने वाली काल्पनिक रेखाएं सोची गयीं, जिन्हें 'यामोत्तर' कहा जाता है।

समझ लीजिये, इस समय कोई नक्षत्र किसी खास यामोत्तर पर है, वह दुबारा उसी यामोत्तर पर तभी आयेगा, जब पृथ्वी अपने अक्ष पर एक चक्कर पूरा कर लेगी। इस बीच जो समय लगेगा, अर्थात् जितने समय में नक्षत्र दुबारा उस यामोत्तर पर आ जायेगा, उसे 'नक्षत्र-दिन' कहते हैं। यह २३ घंटे ५६ मिनिट ४.०९९ सेकेंड का है।

यह हमारा आपका रोज का अनभव है, किसी भी वृक्ष या ऊर्ध्वाकार वस्तु की छाया सवेरे लंबी तथा पश्चिमाभिमुख होती है।

दोपहर को वह छोटी हो जाती है और उसकी दिशा उत्तर-दक्षिण हो जाती है। अपराह्न में वह फिर लंबी हो जाती है, किंतु उसका रुख पूर्व की ओर होता है। और ऐसा होता है सूर्य की दैनिक गति के कारण। छायाघड़ियों का निर्माण इसी के आधार पर हुआ है।

सूर्य-दिन वह कालावधि है, जिसमें छाया एक निश्चित विंदु को दुवारा स्पर्श कर लेती है। इस समय को 'आभासी सौर समय' भी कहते हैं; क्योंकि यह समय काल्पनिक रूप से ही ठीक है। वात यह है कि यह समय भी एक समान नहीं रहता; क्योंकि सूर्य की गति सदा एक समान नहीं रहती।

जव पृथ्वी सूर्य के समीप होती है, तो सूर्य का वेग बढ़ जाता है और सूर्य-दिन में लगने वाला 'समय' कुछ कम हो जाता है। इसके विपरीत, जव पृथ्वी सूर्य से दूर होती है, तो वेग घट जाता है, जिससे 'समय' अधिक लगता है। चूंकि सूर्य-समय सदा एक-सा नहीं रहता है, इसलिए एक काल्पनिक 'माध्य सूर्य' की वात सोची गयी, जो सदैव एक ही वेग से गति करता है।

कल्पना की गयी है कि यह सूर्य पूर्व से पश्चिम की ओर चलता है और उतने समय में ही एक चक्कर पूरा कर लेता है, जितना समय वास्तविक सूर्य को एक चक्कर पूरा करने में लगता है। अर्थात् ३६५.२४२४ दिनों में माध्य-सूर्य का एक चक्कर पूरा हो जाता है।

'माध्य दिन' और 'सूर्य दिन' दोनों मध्य-रात्रि से आरंभ होकर मध्यरात्रि में ही समाप्त होते हैं, ऐसा माना जाता है।

जैसा कि हमने आरंभ में देखा, समय की गणना के लिए किसी निश्चित स्थल या रेखा (यामोत्तर) की कल्पना की गयी और उसी की दृष्टि से समय-गणना की गयी। अतः ये समय उन निश्चित स्थलों के लिए ही ठीक होते हैं। इसलिए उन्हें 'स्थानीय समय' भी कह सकते हैं। किन्हीं दो नगरों के स्थानीय समयों में अंतर हो सकता है और अगर देश के सव नगर अपना-अपना समय रखें, तो केवल उन्हीं नगरों के समय समान होंगे, जो एक समान देशांतर पर स्थित हैं। पृथ्वी २४ घंटे में ३६० अंश घूम जाती है। इसलिए यदि किन्हीं दो स्थानों के देशांतर में १५ अंश का अंतर है, तो उनके स्थानीय समयों में एक घंटे का अंतर होगा। किसी भी एक निश्चित देशांतर को लें, तो पूर्व में समय वढ़ता जायेगा और पश्चिम में घटता जायेगा।

जव तक यातायात के साधन बहुत विक-सित नहीं थे, स्थानीय समयों के अंतर का खास महत्त्व नहीं था। मगर अव जव कि यातायात के साधनों में चमत्कारी प्रगति हो गयी है, स्थानीय समय काफी गड़बड़ी फैला सकते हैं। इसी बात को ध्यान में रख-कर सन १८८४ में हुए अंतर्राष्ट्रीय सम्मे-लन ने ब्रिटेन की राजधानी लंदन के समीप

स्थित ग्रीनविच को देशांतर का आरंभ स्थान माना और संसार को २४ समय-कटिवंधों में विभाजित करके यह निश्चित कर दिया कि प्रत्येक कटिवंध के मध्यवर्ती यामोत्तर का जो समय है, वही उस पूरे कटिवंध का समय माना जाये।

कटिवंधों के समय में घंटों का ही अंतर होता है, मिनिटों तथा सेकेंडों का नहीं। इस प्रकार ग्रीनविच की अपेक्षा न्यूयार्क का समय ५ घंटे और सानफ्रांसिस्को का ८ घंटे कम होगा, जबकि कलकत्ते का ५ घंटे और टोकियो का ९ घंटे अधिक होगा। मध्य प्रशांत महासागर में अंतर्राष्ट्रीय दिनांक रेखा पर ये धन तथा ऋण मिलकर पूरे २४ घंटे का अंतर पैदा कर देंगे।

परंतु समय-कटिबंधों से भी आज के तकनीकी जमाने का काम पूरा नहीं हो पाता। उदाहरण के लिए, लंदन से कलकत्ते तक की उड़ान भरने वाले जेट वायुयान को इस उड़ान में वास्तव में कितना समय लगता है, यह जानने के लिए लंदन के समय पर आधारित घड़ी का उपयोग करना होगा। इसी प्रकार उपग्रह-संचालन इत्यादि में ऐसे समय का उपयोग करना होगा, जो संपूर्ण विश्व में मान्य हो। इन कठिनाइयों के निवारण के लिए एक अंतर्राष्ट्रीय समय माना गया है। यह अंतर्राष्ट्रीय समय ग्रीनविच माध्य समय पर आधारित है और उससे अभिन्न है।

पूछा जा सकता है कि ग्रीनविच समय को ही अंतर्राष्ट्रीय समय क्यों माना गया? इसके उत्तर के लिए हमें पीछे की ओर लौटना पड़ेगा।

आदिकाल में समय का पता लगाने के लिए मनुष्य सूर्य की ओर देखता था और उसके उतार-चढ़ाव से समय का हिसाब रखता था। आज भी गांवों में कहा जाता है, सूरज एक लाठी चढ़ चुका है। धीरे-धीरे सूर्य का स्थान वृक्षों की परछाइं ने लिया तथा परछाईं की लंबाई से समय का अनुमान किया जाने लगा। फिर आयी सूर्य-घड़ी।

मिस्र में एक और नवीन विधि खोजी

यांत्रिक घड़ी के चार पूर्वज—१. मिस्र की जल-घड़ी, २. धूप-घड़ी, ३. रेत-घड़ी और ४. मोमवत्ती-घड़ी। भारत में प्रचलित घटिका-यंत्र भी जल-घड़ी का ही एक रूप था।
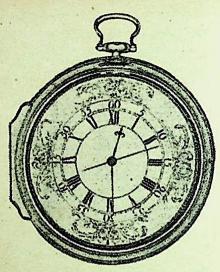
जान हैरिसन की घड़ी, जिस पर उसे २०,००० पौंड पुरस्कार दिया गया।

गयी। एक सछिद्र पात्र में पानी या बालू भर देते थे। पात्र में से पानी या बालू निकलने लगती थी। कितनी निकल गयी है, इसके हिसाब से समय का ज्ञान होता था। इस बालू-घड़ी के विकसित संस्करण आज भी सजावट के लिए बैठकों में रखे जाते हैं।

हमारे देश में भी समय-मापन के लिए सछिद्र पात्र का उपयोग होता था। निश्चित आकार और आयतन का धातु का एक लोटा (घटिका), जिसकी पेंदी में छिद्र होता था, पानी के कठौते में तैरा दिया जाता था। छिद्र में से होकर पानी लोटे में भरने लगता था और अंत में लोटा डूब जाता था। जितना समय पानी भरने और डूबने में लगता, उसे एक इकाई माना जाता था। घटिका शब्द का ही विकार घड़ी शब्द है, जिसका उ-योग हम यांत्रिक घड़ी के लिए भी करते हैं। यूरोप में रात में समय ज्ञात करने के लिए जलती मोमबत्ती का सहारा लि- जाता था।

धीरे-धीरे समय-मापन में प्रगति हुई और सन १३०० के आस-पास प्रथम यांत्रिक घ- बाजार में आयी। परंतु इन यांत्रिक घड़ि- से शुद्ध माप नहीं हो पाती थी। कुछ सम- पश्चात् जब यूरोपीय देशों ने नवीन समु- मार्गों का अन्वेषण आरंभ किया, तब अनुभ- किया गया कि जहाज किस स्थान पर है, ज- जानने के लिए उस स्थान के देशांतर त- अक्षांश दोनों का ज्ञान होना आवश्यक है।

अक्षांश को तो उत्तर ध्रुव का उत्था- ज्ञात करके पता लगा लिया जाता है, परं- देशांतर ज्ञात करने के लिए त्रुटिहीन घड़ि- जरूरी थीं। क्योंकि तब तक यह ज्ञात हो चु- था कि यदि किन्हीं दो स्थानों के देशांतरों में १५ अंश का अंतर हो, तो उनके समयों में एक घंटे का अंतर होगा; अर्थात् यदि दो स्थानों के समयों का ठीक-ठीक अंतर ज्ञात हो, तो देशांतरों का अंतर पता लग सकता है तथा इससे शुद्ध देशांतर ज्ञात किया जा सकता है।

इसलिए शुद्ध समय बताने वाली प्रामा-णिक घड़ियों की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी। इंग्लैंड के राजा चार्ल्स द्वितीय ने ऐसी घड़ी के आविष्कार के लिए २०,००० पौंड का पुरस्कार घोषित किया। सन १५८- में गैलिलियो ने यह ज्ञात किया कि सरल

पेंडुलम का आवृत्ति-काल सदैव एक समान रहता है और उस पर पेंडुलम के विस्थापन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

सन १६५६ में हाइगेन्स ने शुद्ध समय ज्ञात करने के लिए सरल पेंडुलम का उपयोग किया। लगभग इसी समय यह भी ज्ञात हुआ कि 'बैलेंस व्हील' का आवृत्ति-काल भी स्थिर रहता है। पेंडुलम के उपयोग से दीवार-घड़ी तथा बैलेंस व्हील के उपयोग से हाथघड़ी, जेबघड़ी इत्यादि बनायी गयीं।

अत्यंत शुद्ध घड़ी का आविष्कार करने का श्रेय जान हैरिसन को है। घड़ी-निर्माण में उसे शुरू से रुचि थी। सन १७२६ में उसने ऐसी घड़ी बना ली, जिसमें एक मास में कुछ सेकेंडों की त्रुटि होती थी। इस सफलता से उत्साहित होकर उसने २०, ००० पौंड का पुरस्कार जीतने का निश्चय किया और सन १७६१ में ऐसी घड़ी बना डाली, जिस पर तापमान, आर्द्रता तथा समुद्री तूफानों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता था।

जान हैरिसन का पुत्र विलियम इसकी क्षमता को जांचने के लिए १७६१ के नवंबर में पोर्टस् माउथ से जमैका की समुद्र-यात्रा पर चल पड़ा। यात्रा में उसे दो मास का समय लगा, परंतु घड़ी में केवल ५ सेकेंड का समायांतर आया।

इस प्रकार जान हैरिसन ने अपने जमाने की सर्वोत्तम घड़ी बना ली; परंतु पुरस्कार-समिति को उसके कार्य पर विश्वास न हुआ और वह पुरस्कार देने को तैयार नहीं हुई। बारह वर्ष पश्चात् (उसकी मृत्यु से ३ वर्ष पूर्व) राजा जार्ज तृतीय की आज्ञा पर उसे पुरस्कार दिया गया। तब से हैरिसन की घड़ी की अनुकृतियां समुद्र-यात्रा में उपयोग की जाने लगीं और नाविकों की कठिनाई समाप्त हो गयी।

लेकिन भूमि पर विभिन्न समयों की समस्या बनी ही रही। अतः सन १८८४ में वाशिंगटन में एक सम्मेलन हुआ। इसमें २४ देशों ने भाग लिया और अमरीका के प्रस्ताव को स्वीकार करके यह फैसला किया कि ग्रीनविच माध्य समय को अंतर्राष्ट्रीय समय मान लिया जाये और यह समझा जाये कि मूल यामोत्तर रेखा ग्रीनविच से पार होती है।

ग्रीनविच को चुनने का कारण इतना ही था कि ब्रिटेन तब जहाज-कंपनियों का केंद्र था तथा सर्वोत्तम घड़ी भी ब्रिटेन में ही बनी थी।
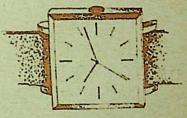
स्विस क्वार्ट्‌ज
(दुनिया की सर्वाधिक शुद्ध समय देने वाली हाथघड़ी।)

ग्रीनविच की प्रयोगशाला को राजा चार्ल्स द्वितीय ने सन १६७५ में बनवाया था। प्रयोगशाला की निचली मंजिल में

एयरो-ट्रान्सिट नामक यंत्र है। इस यंत्र के मध्य में पीतल की एक इंच लंबी पट्टी है। इस पट्टी से ही मूल यामोत्तर का गुजरना माना गया है।

उन्नीसवीं शताब्दी तक ग्रीनविच माध्य समय को ज्ञात करने के लिए दूरदर्शी की सहायता से कुछ नक्षत्रों का नक्षत्र-समय ज्ञात किया जाता था। फिर उसे गणना के द्वारा ग्रीनविच माध्य समय में परिवर्तित कर लिया जाता था। सन १९५७ से ससेक्स (ब्रिटेन) में रोज रात को ३० निश्चित नक्षत्रों के चित्र लिये जाते हैं और इन चित्रों की सहायता से ग्रीनविच माध्य समय ज्ञात किया जाता है।

कुछ मणिभों में यह विशेषता होती है कि यदि उन पर विद्युत-विभव (पोटेंशियल) लगाया जाये, तो उनका आकार परिवर्तित हो जाता है। इस गुण का उपयोग करके आक्सिलेटर बनाये जाते हैं। इससे उत्पन्न धारा की आवृत्ति स्थिर रहती है। इस धारा का उपयोग विद्युत्-घड़ी की मोटर को संचालित करने में करते है। इस मोटर से घड़ी की सूइयां चलती हैं और शुद्ध समय वतलाती हैं।

आप जानते हैं रेडियोधर्मी पदार्थ ताप-क्रम तथा दाब से प्रभावित हुए बिना ही कुछ अन्य पदार्थों में परवर्तित होते रहते हैं। जितने समय में रेडियोधर्मी पदार्थ का आधा भाग क्षय हो जाता है, उसे अर्द्ध-आयु कहते हैं। इस काल की लंबाई पर पदार्थ की मात्रा का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसका उ- योग समय ज्ञात करने के लिए किया जा सकता है। इसी सिद्धांत का उपयोग करके अमरीकी वैज्ञानिक लिब्बी ने कार्बन-डेटिंग विधि ज्ञात की, जिसके उपयोग से अनेक पुरानी वस्तुओं का निर्माण-काल इत्यादि ज्ञात किया गया है।

कुछ परमाणु तथा अणु स्थिर आवृत्ति के विद्युत-चुंबकीय विकिरण छोड़ते हैं। अतः यह सोचा गया कि यदि किसी प्रकार इनकी आवृत्ति की गणना की जा सके, तो परमाणु घड़ी बन सकती है। वैसे प्रकाश भी विद्युत-चुंबकीय विकिरण ही है। तथापि उसका उपयोग इस काम के लिए नहीं किया जा सकता; क्योंकि प्रकाश की आवृत्ति अत्यधिक होती है। मगर माइक्रो-तरंगी विकिरणों का उपयोग संभव है। अतः माइक्रो-तरंगें उत्पन्न करने और उनकी आवृत्ति की गणना करने के लिए उपकरण बनाने का निश्चय किया गया। उपकरण तो १९४० में ही तैयार हो गये थे, परंतु प्रथम परमाणु घड़ी सन १९४९ में अमरीका में बनी। यह अमोनिया-नियंत्रित थी।

१९५४ में मेसर किरणों का उपयोग करके घड़ी बनायी गयी और अगले साल ब्रिटेन में सेजियम का उपयोग करके घड़ी बनायी गयी। इन घड़ियों से सेकेंड के एक अरबवें भाग तक सही-सही समय मापा जा सकता है। किंतु सामान्यतः इतने शुद्ध समय की आवश्यकता नहीं होती।
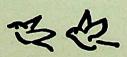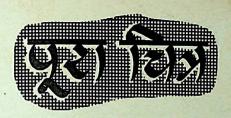
लाओ-त्से के पास ऊंची नस्ल का एक सुंदर घोड़ा था। एक दिन वह खो गया। गांव के लोग सहानुभूति दरशाने उसके पास गये। उन्हें उत्तर मिला—"यह सच है कि घोड़ा खो गया, पर यह अच्छा हुआ या बुरा मैं कह नहीं सकता। क्योंकि पूरा चित्र मेरे सामने नहीं है।"

कुछ दिन बाद घोड़ा चार-पांच जंगली घोड़ों के साथ वापस आ गया। लाओ-त्से के लड़के ने सभी घोड़ों को बाड़े में बंद कर दिया। यह खबर पाकर गांव के लोग प्रसन्नता व्यक्त करने आये। लाओ-त्से ने कहा—"घोड़ा लौट आया है और साथ में दूसरे कई घोड़े भी लेकर आया है, यह सही है; पर यह अच्छा हुआ या बुरा, मुझे मालूम नहीं। क्योंकि पूरा चित्र मेरे पास कहां है?"

लाओ-त्से का लड़का जंगली घोड़ों को सधाते हुए गिर पड़ा और उसका पैर टूट गया। गांव के लोग दुःख प्रकट करने आये। लाओ-त्से ने कहा—"लड़के का पैर टूट गया है और वह बिस्तर पर पड़ा है, मैं भी यह देख रहा हूं। पर यह अच्छा हुआ या बुरा, कैसे कहा जा सकता है? क्योंकि पूरा चित्र तो हम देखते नहीं।"

लाओ-त्से जहां रहता था, उस राज्य पर शत्रु ने आक्रमण कर दिया। जवानों की जबरन भरती शुरू हुई। लाओ-त्से का लड़का बिस्तर पर होने के कारण भरती से बच गया। गांव के वृद्ध माता-पिता और परिवारों के बुजुर्ग इकट्ठे होकर फिर आये और लाओ-त्से के भाग्य की सराहना करने लगे।

लाओ-त्से ने उनसे कहा—"यह सही है कि लड़ाई में जाने से लड़का बच गया; पर यह अच्छा हुआ या बुरा, कहा नहीं जा सकता। क्योंकि पूरा चित्र मेरे सामने है ही कहां?"

जीवन के अच्छे या बुरे प्रसंगों को जो अलग-अलग नजरों-से देखते हैं, वे इस पल सुख के और अगले पल दुःख के थपेड़े खाया करते हैं। उन्हें शांति कहां? किंतु जो सभी अवसरों में अपनी दृष्टि को समग्र जीवन पर केंद्रित रखते हैं, वे ज्ञानी हैं, शाश्वत शांति के अधिकारी हैं।

★

जो अपनी आत्मा के प्रति पाप करे, उसकी हिमायत कौन करेगा? जो अपने जीवन का अपमान करे, उसका आदर कौन करेगा?

—एक्लीसियास्टिक

★

मूक माताओं की ममता

प्रो० के० टी० विजयमाधवन्

हर स्तनपायी प्राणी का अपना-अपना ढंग है संतान को पालने-पोसने का। जिस प्रकार ये प्राणी अपनी संतान की देख-भाल और परवरिश करते हैं, उसमें कई मानवीय प्रवृत्तियां भी देखने को मिलती हैं। आखिर वे मनुष्य के निकटतम बंधु जो ठहरे!

मगर शिशुओं का पालन-पोषण स्तनपायियों में प्राय: माता का ही काम होता है। पिता तो जैसे गर्भाधान करके छुट्टी पा लेता है। एक-आध अपवाद भी होता है, जैसे कि गुरिल्ला। उनके दांपत्य को मौत ही

मुसीबत है ओपोसम की! एक साथ एक दर्जन बच्चे पीठ पर, एक दर्जन पेट में।

तोड़ सकती है। वरना नर तो सुलतान की तरह हरम जुटाकर बस ऐश करते हैं। जैसे कि वालरस और सील में देख सकते हैं।

इने-गिने प्राणी एक मौसम के लिए एक पत्नी व्रत निभा लेते हैं। मगर उनमें भी नर अपनी संतान के प्रति पिता की जिम्मेदारियां नहीं निभाता। काम-वासना की तृप्ति और संतानोत्पत्ति होते ही वह बच्चों की परवरिश और प्रशिक्षण का सारा भार माता पर डालकर मुक्त हो जाता है।

मगर माताओं का वात्सल्य भी कितना गजब का होता है! आपने उस हथिनी का किस्सा सुना होगा, जो मरे हुए बच्चे को तीन दिन तक सूंड में उठाये घूमती रही और अंत में निराश होकर जमीन में खुद गढ़ा खोदकर उसे दफना दिया। या मिंक माता को लीजिये। दूध कम पड़ जाने पर उसके बच्चे ही उसे नोचकर खा जाते हैं और संतान के लिए वह अपने आपको कुर्बान कर देती है।

या देखें अलास्का के समूर-युक्त सील को। माता सील खुले सागर में चली जाती है, ताकि उसके थनों में दूध बढ़ जाये और बिलानागा हफ्ते में एक बार वह अपने बच्चे को दूध पिलाने आ पहुंचती है। वह हजारों बच्चों में से अपने बच्चे को ढूंढ़ लेती है और

उसे भरपेट दूध और जी भरकर प्यार देती है।

मगर माता डाल्फिन की कर्तव्य-भावना की कथा सुनकर तो आप चौंक उठेंगे। वह अपनी संतान को कामशास्त्र की दीक्षा भी स्वयं देती है, सो भी जब बच्चा कुछ ही हफ्ते का होता है तब। बात यह है कि उसके थन योनि-प्रदेश के दोनों ओर होते हैं। जब बच्चा दूध के लिए मुंह मारता है, वह उत्तेजित हो उठती है और बच्चे को भी उत्तेजित करती है। फिर माता-पुत्र नर-मादा बन जाते हैं। मानवीय मानसशास्त्र की दृष्टि से तो प्रत्येक नर डाल्फिन को एडिपस-ग्रंथि से पीड़ित होना चाहिये।

जोयी के लिए उसकी मां जीती-जागती हाथ-गाड़ी भी है।

स्तनपायियों में सबसे आदिम हैं अंडे देने वाले स्तनपायी, जो केवल आस्ट्रेलिया और न्यूगिनी में पाये जाते हैं। कीटभक्षी एचिड्ना एक बारी में एक ही अंडा देती है और उसे अपने पेट पर बने थैले में सेती है। अंडा फूटते ही नन्हा बच्चा थैले में स्थित स्तन-विवर से निकलकर बालों के दो गुच्छों में से रिसने वाले दूध को पीने लगता है।
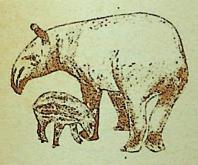
मलायावासी तापीर माता-शिशु......रूप नहीं है तो क्या प्रेम भी न होगा !

जब बच्चा कुछ बड़ा हो जाता है, मां उसे जब-तब थोड़ी देर के लिए बाहर निकालकर हवा खिलाती है। कहीं भी आते-जाते वक्त वह बच्चे को थैले में उठाये फिरती है। जब बच्चा बड़ा होकर बोझ बन जाता है, तो उसे किसी बिल में छोड़ आती है, जहां वह कीड़े मारने-खाने की कला सीख जाता है।

बत्तख की-सी चोंच वाला प्लैटिपस अंडे देने वाला एक और स्तनपायी प्राणी है। मां अपने पति के साथ एक कमरे में सोती है और अंडे दूसरे कमरे में देती है। एक बारी में दो अंडे होते हैं। वह उन्हें बाकायदा सेती है।

['आकाशवाणी' से साभार]

नवजात प्लैटिपस अपने शयन-कक्ष में

अंडे से निकले बच्चे मां के पेट से रिसने वाले दूध को चाटा करते हैं। इसके लिए वह प्रायः पीठ के बल लेट जाती है। बच्चे उस पर चढ़कर ऊधम मचाते हैं और अपना पेट भी भरते हैं।

थैली वाले प्राणियों की सबसे बड़ी समस्या है, अपरिपक्व बच्चे का जन्म। उदाहरण के लिए, कंगारू माता गर्भाधान के पांच ही हफ्ते बाद एक इंच लंबे, लाल और लगभग पारदर्शक बच्चे को जन्म देती है। यह बच्चा या कहिये कि यह भ्रूण, जिसे आस्ट्रेलियावासी 'जोयी' कहते हैं, अपने सहज ज्ञान के बल पर टटोलता-टटोलता माता के पेट पर बनी हुई थैली में जा घुसता है। अन्यथा उसका बचना असंभव है और जोयी के अंदर घुसते ही थैले का पेशीयुक्त द्वार अपने आप जोर से बंद हो जाता है।

थैले में जोयी टटोलकर मां के थनों से मुंह लगा लेता है। मगर अभी वह इतना निर्बल होता है कि दूध को खींच नहीं सकता। माता विशेष मांसपेशियों की मदद से दूध को उसके मुंह में पंप करती है। दूध कहीं बच्चे की श्वास-नलिका में न घुस जाये इसलिए प्रकृति ने उसका स्वरयंत्र लगभग नासा-रंध्र में रखा है।

चार महीने तक इस प्रकार स्तनपान करके जोयी गुदगुदा रोयेंदार नन्हा कंगारू बन जाता है और थैली में से मुंह निकालकर बाहरी दुनिया का नजारा देखने लगता है जैसे कि हाथगाड़ी में बैठा हो। शीघ्र ही वह छलांग मारकर थैले में से निकल और घास पर मुंह मारकर वापस थैले में आ बैठना सीख जाता है। जब उसका बोझ असह्य हो उठता है, तो मां उसे थैले में नहीं आने देती; तब से उसे अपनी व्यवस्था खुद करनी पड़ती है।

नन्हे भालू जैसी दिखने वाली काओला मां अपने बच्चे को थैली में तो ज्यादा दिन नहीं रखती, मगर तब तक उसे पीठ पर चढ़ाये घूमती है, जब तक बच्चा उसके शरीर के आधे के बराबर बड़ा नहीं हो जाता।

अमरीकी ओपोसम एक बात में कंगारू और काओला से भिन्न है। माता ओपोसम एक साथ बारह-बारह बच्चे जनती है। आधे-आधे इंच के ये परिपक्व बच्चे मां के पेट पर तंग थैले में सटकर रहते हैं। फिर वे मां की पीठ पर चढ़ना शुरू कर देते हैं। वह अपनी पूंछ पीठ के समानांतर तान लेती है। बच्चे उस पर अपनी नन्ही पूंछें लपेट

कर और दांतों से पीठ के बालों को पकड़-कर बैठ जाते हैं और सवारी गांठते हैं।

मगर यह सुख उन्हें ज्यादा दिन तक नसीब नहीं हो पाता; क्योंकि तब तक उनके भाई बहनों की अगली टीम मां के पेट से निकलकर थैले में पहुंच चुकी होती है। अंत में मां खीजकर बड़े बच्चों को भगा देती है।

स्तनपायियों के उच्चतम वर्गों में स्थिति इससे भिन्न है। कुछ में तो बच्चे जन्म के समय ही इतने बढ़ चुके होते हैं कि पैदा होने के कुछ समय के भीतर ही मां के पैरों के आस-पास फिरने लगते हैं। सेई की तरह कुछ प्र ाणियों के बच्चे तो दो दिन के भीतर ही मां का दूध पीना बंद करके घास कुतरना शुरू कर देते हैं।

मगर मांसभोजी शेर-चीते और कुतरने वाले जीव चूहे आदि के बच्चे जन्म के समय अंधे और इतने कमजोर होते हैं कि कई दिन तक सुरक्षित स्थान पर मां का प्यार और परिवरिश मिले, तभी वे आंखें खोलने और चलने-फिरने के लायक हो पाते हैं।

एक साथ जितने ज्यादा बच्चे हों, दूध पिलाने और देख-रेख का काल भी उतना ही छोटा होता है। अकेले बच्चे का स्तन्य-पान काल लंबा होता है। ह्वेल का बच्चा छः महीने तक दूध पीता है। समुद्री ओटर और बीवर को एक साल तक माता का संरक्षण प्राप्त होता है। शेर और बाघ के बच्चों की देखभाल मां दो वर्ष तक करती है। गैंडा छः वर्ष तक मां की देखरेख में पलता है। बंदर आदि तो सात-आठ साल की उम्र में

काओला मां अपने से आधे वजन के बच्चे को पीठ पर चढ़ाये पेड़ पर चढ़ा करती है।

जब तक प्रजननक्षम नहीं हो जाते, मां तथा अपने झुड के बड़ों की देखरेख में रहते हैं।

कुछ स्तनपायी माताएं बच्चों के पालन में मौसियों की भी मदद लेती हैं। प्रायः ये मौसियां टोली की वृद्ध मादाएं होती हैं। उदाहरण के लिए शेरनी बच्चों को सिर्फ दूध पिलाती है और शिकार सिखाती है। बच्चों की देखभाल और हिफाजत की जिम्मे-दारी मौसी पर होती है, जो प्रायः मां से अधिक खूंखार होती है।

पार्पिस के संतान होते ही एक और मादा पार्पिस बच्चे की देखभाल के लिए आ पहुं-चती है। हथिनियां भी प्रसव के समय टोली की बूढ़ी मौसियों की मदद लेना जानती हैं। ज्यों ही बच्चा अपने पैरों पर खड़ा हो जाता है, मां, मौसी और बच्चा चल पड़ते हैं और अपने यूथ में जा मिलते हैं।

★

सौ बरस पहले का सफरनामा

कैलाश नारद

शोरगुल से भरे शहर की दहलीज जहां खत्म होती है, वहीं से गढ़ा-अमानपुर शुरू होता है—म्लान और खामोश-सा उपनगर, मुगलिया सल्तनत के बुलंद सितारे अकबर के अहंकार से टक्कर लेने वाली दुर्गावती का सिद्धपीठ। टूटी मुंडेरों और खंडित अवशेषों के बीच आज भी चार सौ साल पुरानी दास्तान अतीत का कफन फाड़कर झिल-मिलाती-सी दिख जाती है।

इसी अमानपुर की धरती पर कभी भारतेंदु हरिश्चंद्र भी रहे थे। सुदूर वाराणसी से अक्सर वे जबलपुर आते रहते थे। उनकी यादों के गुलाब आज भी जिंदा हैं। मेरे घर से चंद कदमों के फासले पर बनी वह पुख्ता इमारत आज भी मौजूद है, जहां अपनी प्रियतमा माधवी को लेकर भारतेंदु हरिश्चंद्र साल में तीन या चार बार जबलपुर का मुकाम किया करते थे।

'श्यामास्वप्न' के रससिद्ध कृतिकार ठाकुर जगमोहनसिंह और अमानपुर के जमींदार गोंटिया अमानसिंह काशी में विद्याध्यन किया करते थे। भारतेंदु से उनकी मित्रता गाढ़ी हुई, तो उनका जबलपुर आने का सिलसिला चल निकला।

ठाकुर जगमोहनसिंह विजयराघव[illegible] के राजकुमार थे। पिता ने फिरंगी [illegible] के खिलाफ बगावत की और फलत: [illegible] अपने राज्य से हाथ धोना पड़ा। शिक्षा [illegible] लिए जगमोहनसिंह काशी वार्ड्स इंस्टि[illegible] भेजे गये। गोंटिया अमानसिंह की जा[illegible] भी कोर्ट आफ वार्ड्स में थी और वे भी [illegible] दिनों काशी में पढ़ रहे थे।

तब तक—यह सन १८६९-७० का [illegible] है—भारतेंदु हरिश्चंद्र काशी में एक प्रभंज[illegible] जैसे छा चुके थे। उनकी प्रतिभा प्रखर[illegible] हो चली थी और अपने व्यक्तित्व के इर्द-गिर्द वे जैसे प्रभामंडल लिये चलते थे। ठाकुर जगमोहनसिंह की डायरी में भारतेंदु [illegible] प्रशंसात्मक उल्लेख जगह-जगह आया है। उनकी हस्तलिपि में अंग्रेजी में भारतेंदु [illegible] बारे में पृष्ठ के पृष्ठ भरे हैं। अपने इन अं[illegible] रंग मित्रों के आग्रह पर भारतेंदु हरिश्[illegible] कई बार जबलपुर आये।

जबलपुर के अपने पहले सफर का [illegible] भारतेंदु ने बड़ी तफसील से दिया है। [illegible] साल पहले का जमाना, मानो आंखों [illegible]

सामने करवट बदलने लगता है। उनके यात्रा-वर्णन से एक ओर जहां यह पता लगता है कि उन दिनों की यात्रा बड़ी कष्टसाध्य थी, वहीं दूसरी ओर रेलों की हालत, स्टेशनों के नाम, उनकी दुरवस्था तथा साधनों के अभाव का खासा चित्र सामने आता है।

जबलपुर में तब अंग्रेजी सिक्के बट्टे से चलते थे और इस अन्याय के खिलाफ कोई आवाज नहीं उठा सकता था। भारतेंदु में बड़ा साहस था और उस युग में फिरंगियों की मक्कारी के विरुद्ध स्वर बुलंद करना बड़े ही जीवट और जोखिम का काम था। तब के जबलपुर शहर में छोटे तांगे चलते रहे होंगे, जिन्हें भारतेंदु ने 'एक्का' लिखा है। वैसे, जबलपुर में इक्का कभी भी नहीं चला।

भारतेंदु हरिश्चंद्र का यात्रा-वर्णन सौ साल पहले का है—१८७० और १८७२ के जबलपुर का। तब जबलपुर नगरपालिका के प्रेसिडेंट बाबू बीरेश्वरदत्त ई. ए. सी. थे। विजयराघवगढ़ के राजकुमार जगमोहन-सिंह उन दिनों पंद्रह वर्ष के थे और काशी से शिक्षा प्राप्त कर जबलपुर वापस लौटे थे।

'एक मध्यप्रदेशीय यात्री' के छद्मनाम से जबलपुर का अपना सफरनामा भारतेंदु ने सौ साल पहले की 'कविवचनसुधा' के २० जुलाई १८७२ के अंक में प्रकाशित कराया था। उस जमाने के ही हिज्जों में अविकल रूप में वह इस प्रकार है। (पढ़ने की सुविधा के लिए केवल पैराग्राफ अलग किये गये हैं।)

श्रीयुत कविवचनसुधा-सम्पादक समीपेषु,

भारतेंदु हरिश्चंद्र

महाशय,

मेरी इच्छा है कि मैं अपनी मध्यदेशीय और बम्बई की यात्रा का सविस्तार समाचार लिखकर आपके पत्र द्वारा अपने देश-वालों पर विदित करूं जिसमें वे लोग इसे पढ़कर विज्ञ हो जायें और आशा रखता हूं कि आपको स्थान देने में असमंजस नहीं होगा।

मैंने आपकी पवित्र नगरी से दूसरी तारीख की संध्या समय दस बजे प्रस्थान किया और जिस समय राजघाट पहुंचा। गाड़ी छूटने को केवल पांच मिनट का विलंब था। झट टिकट लेकर आरोहण किया और थोड़े समय में मुगलसराय में पहुंचा, वहां पर दूसरी गाड़ी में चढ़ा और निरन्तर चला तो सूर्योदय होते-होते नयनी के स्टेशन पर पहुंचा और वहां उतर पड़ा क्योंकि वह गाड़ी इलाहाबाद जाती थी और मुझे आना

था जबलपुर।

वहां हम लोगों ने, क्योंकि हमारे एक मित्र भी साथ थे, नित्यशौच किया और चाहा था कि कुछ खायं, पर वहां काहे को कुछ मिलता। दूध के लिये एक मनुष्य को पैसा दिया तो वह मुंह बनाये हुए आया और बोला कि अभी दूध नहीं आया। फिर हम लोगों ने पूछा कि भला यहां पर जलेबी मिलेगी तो उसने कहा, हां। पैसा देकर भेजा तो वह तेल की जलेबी उठा लाया, परन्तु वैसे तेल की न समझिये जैसी बनारस में बनती है और टके के भाव विकती है। यह तो उससे बढ़कर थी। हम लोगों ने अपना माथा ठोंका और इस द्रव्य को उसी मनुष्य के अर्पण किया और इतने में ९ बजा और गाड़ी आयी। फिर हम लोग चढ़े और जसरा, शिवराजपुर, बरगढ़, दबौरा, माणिक्यपुर, मारकुण्डी, मझगावां, जैतवरा, सतना, उचैरा, मैहर, अधरा, जोखई, कटनी, सलीमनाबाद रोड, सिहोरा रोड, देवरी नाम स्टेशनों को पार करते हुए सवा आठ बजे रात को जबलपुर पहुंचे।

मार्ग में जो क्लेश हुआ, वह अकथनीय है। एक तो मार्तण्ड की प्रचण्ड किरण से गाड़ी ऐसी उत्तप्त हो रही थी कि यदि शरीर स्पर्श हो जाये तो यह भ्रम होता था कि कहीं शरीर में फफोला तो नहीं पड़ गया। किसी प्रकार से चैन नहीं मिलता था। यदि एकाध बार खिड़की खुल जाती थी तो मुंह मानो प्रज्ज्वलित अग्नि की ज्वाल से झोंस जाता। प्यास के मारे कंठ सूख जाता था और मुंह से आखर नहीं निकलते थे। जो कहीं पानी मिले तो अदहन के सहस। उदर-क्षुधा अ[illegible] सता रही थी। आते-आते सतना पहुंचे[illegible] थोड़ी-सी जलेबी लेकर खायी, तब [illegible] आंखें खुलीं। फिर मैहर में पक्का आम [illegible] होता था, वह लिये। इसी भांति ज्यों[illegible] करके जबलपुर उतरे।

अब यहां-वहां टिकने का ठिकाना [illegible] मिले। थोड़ी दूर पर सुना कि एक स[illegible] है। वहां गये तो पता लगा कि एक ब[illegible] मैदान है और उसके किनारे-किनारे छा[illegible] बनी है। पर वह क्या था मालूम नहीं। [illegible] कि यात्री सब उसी मैदान में विस्तरा ल[illegible] पड़े थे। चौधरी के पास गये, क्योंकि [illegible] भटियारे नहीं हैं, तो वह मारे मिजाज[illegible] किसी की कुछ सुनता नहीं था। खैर, [illegible] देर के बाद जब हम लोगों ने पूछा कि [illegible] चारपाइयां इत्यादि मिलेंगी कि नहीं, [illegible] उसने कहा कि जाकर बनिये से पूछो [illegible] वहां कहीं बनिये की सूरत भी नहीं दिख[illegible] थी। अंत को वहां अशक्त होकर, एक ह[illegible] वाई था उससे कुछ लेकर क्षुधा शांत कि[illegible] फिर एक एक्के वाले को बुलाकर पुल[illegible] पंडित गोपालराव, एक्स्ट्रा असिस्टेंट क[illegible]श्नर, नरसिंहपुर के घर आ गये।

परंतु इसके पूर्व यह प्रकाश करना उ[illegible] है कि यहां पैसा साढ़े पंद्रह आने विकता है[illegible] अन्नी, दोअन्नी और चोअन्नी भुंजाने में [illegible] पैसा ही लगता है। ऐसा अंधेर हमने [illegible] कहीं पर भी नहीं देखा। एक्के वाले को [illegible] अन्नी दिया तो बोला कि यह तो पन्द्रह[illegible]

ही हुए। एक पैसा और चाहिये। एक और लड़के को सात पैसे के वदले दोअन्नी दिया। हम नहीं जानते कि सरकार इन वातों को जानती है या नहीं। जान कर सर में तेल डालकर बैठी है।

अभी तक जवलपुर मैंने भली भांति देखा नहीं था। पर दो-तीन वातें यहां पर नई देखने में आईं। एक, प्रत्येक चौराहे पर लालटेन एक-एक झाड़ पर टंगे हैं। जो सड़क उस स्थान पर मिलती है, उतनी ही लालटेन एक खंभे में लगी है। दूसरे यह कि सड़क वहुत परिष्कृत और प्रशस्त है। फिरती वार ईश्वर चाहेगा तो नगर भली-भांति देखकर आपके पास लिखूंगा। रात भर तो उन महाराजजी, उस महाशय के साले साहव के यहां, रहे। दूसरे दिन उन्होंने वड़े आतिथ्य के साथ भोजन कराया और आदर-पूर्वक विदा किया।

फिर हम लोगों ने तीन रुपया साढ़े तीन आने दे देकर ग्रेट इंडियन पेनिनसुला रेलवे के कंपनी गाड़ी पर सवार हुए। यह गाड़ी विचित्र प्रकार की होती है। ईस्ट इंडियन रेलवे की गाड़ी में कई विभाग होते हैं। परंतु वहां पर सरासर एकी रही है और उसमें छह वेंच लगे हैं। तीन द्वार के एक ओर और तीन द्वार के दूसरी ओर। इन गाड़ियों के एक कोने में एक गृह भी वना रहा है और गाड़ी की सूरत भी वहुत भद्दी होती है। यहां तो यह तीसरी क्लास की गाड़ी है। यहां पर एक लोकल गाड़ी भी होती है जिसमें कुली आदि नीच लोग भेड़-वकरी की भांति भर दिये जाते हैं। वैठने के लिये उसमें कुछ भी स्थान वने नहीं रहते। किराया उसमें एक पैसा कोस है।

यह तो गाड़ी की प्रशंसा है। स्टेशन का प्रवन्ध ऐसा है कि खाने की वस्तु का नाम न लेना। लोग पानी-पानी पुकारा करते हैं, कोई सुनता नहीं। एक वेर दो-तीन मनुष्य मेरी गाड़ी में चिल्ला रहे थे कि एक गार्ड आया तो एक पारसी ने कहा, "सर, दे आर कम्प्लेनिंग वैरी मच फार वाटर", तो गार्ड ने उत्तर दिया, "कान्ट हेल्प।" अब कहिये, ज्येष्ठ की दुपहरी, यदि कोई पानी विना मर जाये तो कंपनी क्या पकड़ी नहीं जायेगी?

जवलपुर की जो तस्वीर भारतेंदुजी ने खींची थी, उसकी धज अभी तक वाकी है।

इस उत्तर से तो यही प्रगट होता है।

जबलपुर और इटारसी के बीच सात स्टेशन हैं, छिंदवारा, नरसिंहपुर, गदावरा, वाकेड़ी, सोहागपुर, बाग्रा और इटारसी पड़ते हैं। परंतु रेल-पथ के दोनों ओर जंगल और पहाड़ों के सिवा कुछ दृष्टि नहीं पड़ता। कोसों पर्यंत कोई गांव नजर नहीं आता। इससे आप समझ लीजिये कि यह कैसा देश है।

इटारसी और बाग्रा के बीच यहां भी सुरंग है जिसके भीतर से गाड़ी जाती है परंतु सुरंग जमालपुर के सुरंग से बड़ा है। क्योंकि इसमें जिस समय गाड़ी जाती है तो किंचित अंधकार हो जाता है। परंतु इसमें इधर से उधर तक बराबर प्रकाश रहता है। परंतु अनेक लोग कहते हैं कि यही बड़ा है।

इटारसी के स्टेशन के बाहर आकर मैंने एक बार दृष्टि फेरी तो स्पष्ट ज्ञात हुआ कि कैसे देश में आया हूं। क्योंकि चतुर्दिक मैदान और जंगल दीख रहा था इसके आगे मार्ग ऐसी है कि केवल सग्गड़ और घोड़े के [illegible] कुछ नहीं जा सकती। हम लोगों ने भी [illegible] गाड़ी पांच रुपये पर भाड़े की और चढ़ [illegible] चले। आगे का समाचार दूसरे पत्र में लिखूं [illegible]

—एक मध्यप्रदेशीय [illegible]

* * *

इस सफर को मुद्दतें गुजरीं। आज [illegible] भी शेष नहीं है। न तो भारतेंदु और [illegible] उनके प्राणसखा गोंटिया अमानसिंह [illegible] ठाकुर जगमोहनसिंह ही। लेकिन [illegible] धूसर जबलपुर की तस्वीर उन्होंने [illegible] थी, उसकी धज अभी तक बाकी है। गलि[illegible] में टंगी लालटेनें और पत्थरों पर सोते [illegible] फिर। मकड़जाल-सी एक-दूसरे में [illegible] बेरौनक गलियों में बेहिसाब धुंआ फें[illegible] चिमनियां सौ बरस बाद भी बदस्तूर [illegible] हैं। सब कुछ बुहार देने वाला वक्त भी [illegible] उस धुंएं में जज्ब हो गया है। वह उस [illegible] पन को पोंछ नहीं पाया। शहर का [illegible] चेहरा यह भी है।

★

भारतेंदु : विद्यासागर की दृष्टि में

"यहां पर यह उल्लेख करना आवश्यक है कि वाराणसी निवासी श्रीयुत बाबू हरिश्चंद्र का सौजन्य नहीं पाने से, मैं किसी भी क्रम से अभिज्ञान-शाकुन्तल का संस्करण-कार्य संपन्न नहीं कर पाता। मुझे 'अभिज्ञान-शाकुंतलम्' पुस्तक का प्रयोजन है, इतना अवगत होते ही इस सौम्य मूर्ति, अमायिक, निरहंकार, विद्योत्साही, देशहितैषी महोदय ने जिस सौजन्य और उत्साह के साथ मेरे हाथ में पुस्तक विन्यस्त किया था, उसे मैं किसी काल में भी विस्मृत नहीं कर सकता।"

—श्री ईश्वरचंद्र शर्मा

(श्री ईश्वरचंद्र विद्यासागर द्वारा संपादित एवं कलकत्ता लाइब्रेरी द्वारा प्रकाशित 'अभिज्ञान-शकुन्तलम्' के विज्ञापन में। प्रेषक : कलाप्रसाद उपाध्याय

★

डा० जोसेफ डी. वासरसेग एम. डी.

लगभग पचास वर्ष पूर्व जब इन्सुलिन का आविष्कार हुआ, तो अनेक डाक्टरों को पक्का विश्वास हो गया था कि मधुमेह की समस्या अब समस्या नहीं रह गयी। वैज्ञानिकों ने देखा था कि पैंक्रिया ग्रंथि से द्रवित होने वाला हारमोन इन्सुलिन रक्त में शर्करा का स्तर नियंत्रित रखता है। जब पैंक्रिया ग्रंथि पर्याप्त मात्रा में इन्सुलिन नहीं पैदा करती, तब रक्त में शर्करा का स्तर बढ़ जाता है और मनुष्य मधुमेही हो जाता है।

सारी बात इतनी सीधी मालूम पड़ती थी। डाक्टरों का तब खयाल था कि इन्सुलिन के रासायनिक स्वरूप के विषय में तनिक शोध और होने की देर है कि मधुमेह की समस्या हमेशा के लिए हल हो जायेगी।

लेकिन समय ने सिद्ध कर दिया है कि ये कोरी आशाएं थीं। मधुमेह का रासायनिक पहलू इन्सुलिन और रक्त-ग्लूकोज का जोड़-घटा भर नहीं है, उससे कहीं अधिक जटिल है।

आज के मधुमेह-विशेषज्ञ को श्रेष्ठ अकार्बनिक रसायनज्ञ ही नहीं, दक्ष शरीर-क्रियाशास्त्री, आहारशास्त्री, एंजाइम-विशेषज्ञ भी होना आवश्यक है। यही नहीं, उसे इलेक्ट्रान अणुवीक्षण यंत्र से काम लेना भी आना चाहिये; शरीर की वसा (चर्बी), वसायुक्त एसिडों व जटिल कोशिकाओं के भीतर की रचनाओं की भी जानकारी होनी चाहिये; साथ ही यह पता लगाने की क्षमता होनी चाहिये कि ऊतक किन गुप्त विधियों से नानाविध हारमोनों और एंजाइमों को अपने भीतर जमा रखते और बाहर भेजते रहते हैं। प्रसन्नता की बात यह है कि इन सब जटिलताओं के बावजूद मधुमेह का मसला सुलझाया जा रहा है।

हालांकि इन्सुलिन से मधुमेह की सारी गुत्थी तो नहीं सुलझती, फिर भी सुलझाव का मुख्य सूत्र तो वही है।

इन्सुलिन एक खास किस्म की कोशिकाओं (बीटा कोशिकाओं) में निर्मित होता है और उन्हीं कोशिकाओं में स्थित बीटा कणों (ग्रैन्यूल) में जमा होता रहता है। यह बड़ा ही तीव्र रसायन है। सामान्यतः निराहार आदमी के रक्तरस (प्लाज्मा) में अरब के पीछे एक अंश के हिसाब से घुला रहता है। भोजन के बाद इसकी मात्रा बढ़कर पांच

अंश प्रति अरब हो जाती है। इतनी अल्प मात्रा में रहने के कारण रक्त में विद्यमान इन्सुलिन को मापने की कोई सरल रासायनिक विधि डाक्टर खोज नहीं पाये हैं।

विस्तृत शोधकार्य के बावजूद अभी तक डाक्टर यह ठीक-ठीक नहीं जान पाये हैं कि इन्सुलिन रक्त-प्रवाह में किस तरह संचरित होता है और शरीर के ऊतकों पर विभिन्न शरीरक्रिया-शास्त्रीय असर किस प्रकार डालता है। कतिपय वैज्ञानिकों की राय है कि इन्सुलिन रक्त के कुछ अन्य प्रोटीनों से बंधा रहता है और इसी कारण रक्त में इन्सुलिन के स्तर को मापने की कोई सरल रासायनिक विधि विकसित नहीं हो पा रही है।

अभी तक जो हिसाब लगाये गये हैं, उनके अनुसार साधारण स्वस्थ मनुष्य के शरीर में प्रति २४ घंटों में अधिक-से-अधिक दो मिलिग्राम इन्सुलिन बनता है और रक्त में उसका 'अर्द्ध-जीवन' १० मिनिट से अधिक का नहीं होता; इसके बाद इन्सुलिन के अणु (मालिक्यूल) टूट जाते हैं और वह निकम्मा हो जाता है। इसलिए उन दस मिनिटों के भीतर ही इन्सुलिन को रक्त में शर्करा का नियंत्रण, मांसपेशियों और जिगर में ग्लाइकोजन का जमाव, खनिजों की क्षति की रोकथाम, जमा की हुई चर्बियों को दूषित होकर चर्बीदार एसिड में परिवर्तित हो जाने से बचाना और नये प्रोटीनों के संश्लेषण में सहयोग—यह सब काम करना पड़ता है।

अर्थात इन्सुलिन है तो प्रोटीन का एक छोटा-सा कण; मगर शरीर में उसका का[illegible] वार कितना विशाल है! और सामान्यतः [illegible] अपना कारोबार सचमुच बड़ी खूबी से नि[illegible] हता है।

इन्सुलिन की रासायनिक रचना [illegible] कार्बोहाइड्रोन (ग्लूकोज) की शारीरि[illegible] क्रियाविधि को समझने की दिशा में हाल[illegible] जबर्दस्त प्रगति हुई है और मधुमेह की चि[illegible] त्सा के लिए नयी और अधिक असरकार[illegible] दवाइयां डाक्टरों को उपलब्ध हैं। यों [illegible] उम्र के मधुमेहियों के लिए अभी भी इन्[illegible] लिन ही सर्वोत्तम दवा है; परंतु वयस्कों [illegible] विशेषतः ४५ से ऊपर के रोगियों के [illegible] की गोलियां और कैप्सूल अधिक कार[illegible] दवा हैं। आज डाक्टरों के पास कोई आ[illegible] दर्जन रासायनिक सम्मिश्रण हैं, जिनसे अ[illegible] कांश वयस्क रोगियों के मधुमेह का नियं[illegible] हो सकता है। और कुछ मामलों में तो [illegible] इन्सुलिन से अधिक संतोषजनक पाये गये [illegible]

खाने की मधुमेह-निरोधक गोलियां [illegible] आविष्कार की पहली मुख्य कुंजी १९४[illegible] वैज्ञानिकों के हाथ लगी। वैज्ञानिकों [illegible] ध्यान इस ओर गया कि जिन रोगियों [illegible] इन्फेक्शन से उबारने के लिए सल्फा वर्ग [illegible] दवाइयां दी जा रही थीं, उनके रक्त में शर्क[illegible] की मात्रा घट गयी थी। इस सूत्र के आधा[illegible] पर वे क्रमशः गंधक (सल्फर) के रास[illegible] यनिक यौगिकों का विकास करने में सफ[illegible] हुए। ये यौगिक जीवाणु-नाशक के रूप में [illegible] कम प्रभावशाली थे, लेकिन मधुमेह में अधि[illegible] गुणकारी थे।

आजकल डाक्टर मधुमेह में चार दवाइयों का व्यवहार करते हैं—ओरिनेज, डायाबिनिज, डाइमेलर और तोलिनेज। चारों ही संश्लेषित औषध हैं। हालांकि इनकी रासायनिक संरचना परस्पर भिन्न है, फिर भी माना जाता है कि वे मुख्यत: पैंक्रिया ग्रंथियों पर असर करती हैं, जिससे पैंक्रिया रक्तप्रवाह में अधिक इन्सुलिन छोड़ती है।

लेकिन इन दिनों डाक्टर एक और मधुमेह-निरोधक मिश्रण के प्रति आकृष्ट हैं। यह कोई सल्फा औषध नहीं, वल्कि फ्नेफार्मिन (डी. बी. आइ.) है। रासायनिक संरचना और शारीरिक क्रिया दोनों दृष्टियों से यह अन्य दवाओं से भिन्न है। सल्फा औषधों की अपेक्षा इन्सुलिन से इसका अधिक साम्य है और यह थकी-हारी पैंक्रिया ग्रंथियों पर जोर डालकर उनसे ज्यादा काम लेने के वजाय, मांसपेशियों में ग्लूकोज का जमाव करने में सहायता करता है। इस प्रकार अतिरिक्त ग्लूकोज रक्त से निकल जाता है और रक्त में उसका स्तर पुन: सामान्य हो जाता है।

इस शारीरिक क्रिया के कारण स्थूलकाय वयस्क मधुमेहियों की चिकित्सा में डी. बी. आइ. का विशेषत: उपयोग होने लगा है।

मधुमेह-विशेषज्ञ डा० सी. वेलर और डा० एम. लिंड का कहना है—"अधिकांश मधुमेह के रोगियों में इन्सुलिन की कमी नहीं होती है।" वे तथा अन्य कई विशेषज्ञ ऐसा मानते हैं कि (वयस्क रोगी में) पैंक्रिया
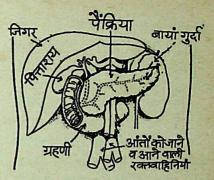
ग्रंथियां तो सामान्य मात्रा में इन्सुलिन का स्राव करती हैं; लेकिन शरीर के ऊतक उस इन्सुलिन का उपयोग कर पायें, इससे पहले ही कहीं अड़चन पैदा हो जाती है।

वल्कि कई वैज्ञानिकों ने तो यह भी दिखाया है कि ऐसा भी हो सकता है कि वयस्क मधुमेही के रक्तप्रवाह में सामान्य से अधिक ही इन्सुलिन पहुंच रहा हो। ऐसे मामलों में रक्त में ग्लूकोज की मात्रा इसलिए वढ़ जाती है कि मांसपेशियां पर्याप्त शर्करा नहीं ग्रहण करतीं।

जब ऐसा होता है, तो बेचारा शरीर खतरनाक चक्कर में पड़ जाता है। जब मांसपेशियां ग्लूकोज का जमाव नहीं कर पातीं, तो रक्त में शर्करा बढ़ जाती है। जब शर्करा वढ़ती है, तो इन्सुलिन का अधिक स्राव होने लगता है। इन्सुलिन का स्राव वढ़ने से भूख बढ़ती है, भोजन अधिक किया जाता है और अधिक शर्करा चर्बी के रूप में जमा हो जाती है। इस प्रकार स्थूलकाय मधुमेही और भी स्थूल हो जाता है। जो चीज लंबे अरसे से चिकित्सकों को चकित

कर रही थी, उसका इस प्रकार खुलासा हो जाता है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि हर पांच के पीछे चार मधुमेही मोटे क्यों होते हैं।

फ्नेफार्मिन मधुमेही की मांसपेशियों में ग्लूकोज की खपत बढ़ाकर इस समस्या का निराकरण करता है। पैंक्रिया ग्रंथियों या चर्वीदार जमाव ऊतकों पर इसका नाममात्र का असर पड़ता है या पड़ता ही नहीं। फ्नेफार्मिन लेने वाले किसी-किसी मधुमेही का तो वजन क्रमशः घट भी सकता है। उदाहरणतः, ओहायो विश्वविद्यालय (अमरीका) के अस्पताल में १७ रोगियों का फ्नेफार्मिन द्वारा इलाज किया जा रहा था। तब देखा गया कि न केवल उनका वजन बढ़ना रुका है, अपितु उनके रक्त में शर्करा और कोलेस्टेरोल की मात्रा में भी काफी कमी हुई।

और आज तो मधुमेह रोगियों के चिकित्सकों को ऐसे कई उपचार उपलब्ध हैं, जैसा पहले कभी नहीं था। उनके पास तरह-तरह के इन्सुलिन हैं– इनमें कई तेज और अल्पकालिक असर वाले हैं, तो दूसरे मंद गति से– लेकिन दीर्घकाल तक असर करते हैं। अब गोलियां भी कई प्रकार की हैं। कौन-सी गोली दें, यह इस पर निर्भर है कि रोगी की जरूरतें दीर्घकालिक असर वाली दवा से पूरी होंगी या अल्पकालिक असर वाली से, अथवा पेशियों पर असर करने वाली दवा से या पैंक्रिया ग्रंथियों पर असर करने वाली से।

आहार मधुमेह-चिकित्सा का मुख्य स्तंभ है। आहार संबंधी तालिकाओं तथा श[…] रहित खाद्यों एवं पेयों के सुलभ हो जाने[…] कारण अब संतुलित भोजन की व्यवस्था[…] अधिक आसानी से हो जाती है।

फिर भी यह स्वीकार करना पड़ता[…] कि पिछले दशक की विशाल उपलब्धियों[…] बावजूद अभी भी कई मुख्य समस्याएं ब[…] ही हुई हैं। पहली समस्या है आरं[…] मधुमेह, पूर्व मधुमेह और रासायनिक म[…] मेह जैसे शब्दों की कोई सर्वमान्य परिभा[…] न होना। सभी मानते हैं कि जब रक्त[…] शर्करा अधिक होती है, तब मधुमेह हो[…] है। विशेषज्ञों का सिरदर्द तो यह है कि […] कौन-सा बिंदु है, जहां इस अधिकता [...] 'सामान्यतः अधिक' या 'असामान्यतः अधि[…] कहा जाये। यह तो इसका निर्णय करने[…] चेष्टा की तरह है कि आदमी कितने इं[…] लंबा हो, तो उसे लंबा कहा जाये।

शिकागो के डा० क्लेयरेन्स कोहन [...] राय है कि खाली पेट (नाश्ते के पहले[…] आदमी के रक्त में शर्करा की 'सामा[…] मात्रा प्रति १०० सी. सी. के पीछे ७[…] १०५ मिलिग्राम तक होती है। खाली [...] रक्त-शर्करा परीक्षण बहुत संवेदनशील परी[…] क्षण नहीं है; इसलिए आजकल बहुत[…] डाक्टर नाश्ते (या भोजन) के दो घंटे [...] रक्त का नमूना लेना पसंद करते हैं। अ[…] जांच का परिणाम १५० मिलिग्राम प्र[…] १०० सी. सी. हो, तो साधारणतः मधुमे[…] का फैसला दिया जा सकता है।

लेकिन डा० कोहन का कहना है कि य[…]

भी सावधानी बरतने की आवश्यकता है। क्योंकि रक्त में शर्करा का जमाव केवल मधुमेह की अवस्था में ही नहीं बढ़ता। रक्त में आक्सिजन की न्यूनता, संज्ञाशून्यकों का उपयोग, मृगी जैसे दौरे, कई मस्तिष्क विकार, कोर्टिको स्टेरायड रसायनों का प्रभाव और यकृत-रोग—इनसे भी ऐसा हो सकता है।

अत: रोगी को मधुमेह ही है यह फैसला करने के पूर्व डाक्टर को और भी बहुत-सी बातों पर ध्यान देना चाहिये। चिकित्सा शुरू करने के पहले कई बार रक्त-शर्करा की जांच कराना आवश्यक हो सकता है। बोस्टन के कार्नी अस्पताल के निदानशास्त्री और प्रयोगशाला-निदेशक डा० हावर्ड जे० क्रिश्चियन का कहना है—"एक ही शर्करा-परीक्षण के आधार पर रोगी को मधुमेह है या नहीं है, यह फैसला करते हुए बहुत सावधानी बरतनी चाहिये। दरअसल, कुछ मामलों में तो काफी समय तक, विभिन्न शारीरिक दिशाओं में कई प्रकार की जांच करना आवश्यक हो सकता है।"

वैसे, आजकल डाक्टर सिर्फ मधुमेह के सुनिश्चित मामलों का पता लगाने और उनकी चिकित्सा करने से ही संतुष्ट नहीं हैं। भूख-प्यास बढ़ जाना, वजन गिरना, क्लांति और खुजलाहट आदि सुनिश्चित मधुमेह-लक्षणों के प्रकट होने से पहले ही मधुमेह का पता लगा लेने की चेष्टा की जा रही है। आशा है कि यदि इस प्रकार पूर्वावस्था में ही रोग का पता चल जाये, तो बाद में उससे होने वाली क्षति की पहले से रोकथाम की जा सकेगी।

★

पहला—"वे गजब के भुलक्कड़ व्यक्ति थे। यहां तक कि भुलक्कड़पन ही उनकी मृत्यु का कारण बना।"
दूसरा—"भला भूलने की आदत से मरने का क्या संबंध?"
पहला—"अरे भाई, वे एक दिन सांस लेना भूल गये और उनका दम निकल गया।"

* * *

"आखिर मैंने उसके दांत खट्टे कर ही दिये।"
"अच्छा, भला कैसे! वह तो तुमसे बलवान था?"
"मैंने उसे शरबत के बहाने पानी में नीबू निचोड़कर पिला दिया।"

* * *

"कहिये, क्या हो रहा है आजकल?"
"जुकाम।"

* * *

पिता—बेटा, अब तुम्हें अपने पैरों पर खड़ा होना चाहिये।
पुत्र—परंतु पिताजी, मैं तो शुरू से ही पैरों पर खड़ा होता आया हूं। —एस. कुमार मेहता

★

बिना जंतरी और जन्मपत्री की सहायता से
अचूक भविष्यवाणियां करने वाला

भविष्यवक्ता

वसंत कार्डिले

सन १९४५ में एक आदमी ने लिखा था कि तार, टेलिफोन, टेलिविजन के लिए जमीन पर और समुद्र के भीतर तारों के जाल की क्या आवश्यकता? राकेट की सहायता से एक कृत्रिम उपग्रह पृथ्वी से बाईस हजार मील की ऊंचाई पर अंतरिक्ष में स्थापित करने से सारा काम आसानी से हो सकता है। आवश्यकता बस इस बात की है कि इस कृत्रिम उपग्रह को १७,००० मील की गति प्राप्त करा दी जाये, ताकि वह पृथ्वी के साथ एक नियत कक्षा में भ्रमण करता रहे। तब पृथ्वी पर से देखने पर वह एक ही जगह स्थिर-सा दिखाई देगा।

राकेटशास्त्र का १९४५ में अभी आरंभ ही हुआ था। अंतरिक्ष-यात्रा में उसका प्रयोग होगा, यह भी अनिश्चित था। 'कृत्रिम उपग्रह' शब्द भी सिवा चंद वैज्ञानिकों के किसी को मालूम नहीं था। पूर्णतः उस आदमी की भविष्यवाणी के अनुसार काम करने वाला टेलिस्टार कृत्रिम उपग्रह बेल टेलिफोन कंपनी ने जुलाई १९६२ में अंतरिक्ष में प्रक्षेपित किया। १८६० में इंग्लैंड की रानी द्वारा समुद्री केबल के जरिये भेजा गया संदेश अमरीकी राष्ट्रपति को १८॥ घंटों में प्राप्त हुआ था, जबकि अमरीकी राष्ट्रपति केनेडी का संदेश टेलिस्टार उपग्रह के जरिये चंद सेकेंडों में यूरोप के विभिन्न राष्ट्रप्रमुखों तक पहुंच गया। उसके बाद तो टाइरॉस, अर्लीबर्ड आदि उपग्रहों की एक शृंखला ही बन गयी।

उसी आदमी ने सन १९५८ में सुझाव रखा कि अटलांटिक, प्रशांत और हिन्द महासागरों के ऊपर तीन उपग्रह स्थापित किये जायें। उनकी सहायता से पृथ्वी पर के ही नहीं, अन्य ग्रहों के भी टेलिविजन कार्यक्रम संपूर्ण पृथ्वी के लोग देख सकेंगे। तब अभी दो स्टेज वाले राकेटों का उपयोग शुरू हुआ ही था और ५–१० पौंड के छोटे उपग्रह

आकाश में भ्रमण करने लगे थे।

लेकिन आज हम देख रहे हैं कि उस आदमी के सूचित किये हुए इंटेलसैट उपग्रह स्टेशन अब महासागरों के ऊपर अंतरिक्ष में स्थित किये जा रहे हैं। उनके माध्यम से ही १९६९ के जुलाई में मनुष्य के चंद्रावतरण को केवल डेढ़ सेकेंड में अमरीका, यूरोप और एशिया के १०० करोड़ लोग अपने घरों में बैठकर टेलिविजन पर देख सके।

उसी आदमी ने १९५९ में दृढ़ता के साथ यह भी कहा था कि १९६९ के जून में पहला मानव चंद्र पर कदम रखेगा। १९६१ में यूरी गागारिन ने पहली बार अंतरिक्ष में पृथ्वी-प्रदक्षिणा की और यह उससे दो साल पहले की बात है। जब दस वर्ष बाद यह भविष्यवाणी चरितार्थ हुई, तो केवल बीस दिन का फर्क था। ३० जून के बदले २० जुलाई को पहला मानव चंद्र पर पहुंचा। १९६६ में यदि अग्निकांड के कारण अपोलो कार्यक्रम छः मास आगे न कर दिया जाता, तो शायद यह बीस दिन का अंतर भी न पड़ता।

बिना जंतरी और जन्मपत्री की सहायता के ऐसी अचूक भविष्यवाणियां करने वाला यह आदमी है आर्थर चार्ल्स क्लार्क—आज का एक विशिष्ट विज्ञानी और साहित्यकार।

भविष्य का पूर्वाभास करने की अद्भुत शक्ति में क्लार्क की तुलना यदि किसी से की जा सकती है, तो मशहूर फ्रेंच लेखक जूल वर्न से। जूल वर्न स्वयं वैज्ञानिक नहीं थे; अन्य वैज्ञानिकों के शोध-कार्य पढ़कर उनके आधार पर अपनी चमत्कारी लेखनी चलाते थे। लेकिन क्लार्क स्वयं एक प्रतिष्ठित विज्ञानी हैं।

इंग्लैंड में १९१८ में जनमे आर्थर सी. क्लार्क को बचपन से ही तंत्रविज्ञान तथा हवाई-संचार में रुचि थी। हवाई उड़ान को जमीन पर से नियंत्रित करने के लिए अमरीकी वैज्ञानिकों ने जो उपकरण विकसित किये, उनकी जांच करने वाले वैज्ञानिक दल के वे अध्यक्ष थे। १९४५ में इन उपकरणों के विकास के लिए किये गये प्रयत्नों में इनका भी हाथ था। इन्हीं उपकरणों की सहायता से अंतरिक्ष-यान का नियंत्रण पृथ्वी पर से करना संभव हुआ। द्वितीय विश्वयुद्ध में वे ब्रिटिश वायुसेना में टेक्निकल अधिकारी के नाते ऊंचे पद पर थे।

उन्हीं दिनों उन्होंने ब्रिटेन की अंतर्ग्रह-यात्रा संस्था की स्थापना की और उसके प्रथम अध्यक्ष चुने गये। अंतरिक्ष-यात्रा के विषय में इस संस्था में जो विचार-परामर्श होता था, उससे उन्हें कई नयी-नयी कल्पनाएं सूझीं।

अंतरिक्ष-विज्ञान पर आर्थर क्लार्क ने चालीस से अधिक ग्रंथ लिखे हैं, जिनमें से कुछ विवरणात्मक हैं, कुछ कल्पना-मूलक। उनकी लिखी एक कहानी पर आधारित फिल्म '२००१ अंतरिक्ष-नाटय' (२००१, स्पेस ओडेसी) गत वर्ष भारत में प्रदर्शित हो चुकी है।

क्लार्क की लेखन-शैली अत्यंत रोचक है। भाषा उनकी सुबोध तथा ललित है, कहने

अनुवाद : यशवंत पंडित

का ढंग इतना आकर्षक है कि पाठक उसे उपन्यास की तरह औत्सुक्यपूर्वक पढ़ता चला जाता है। हर नये अध्याय का प्रारंभ किसी उद्धरण से या काव्य-पंक्ति से होता है। जटिल तांत्रिक बातें भी क्लार्क के मुंह से बड़ी सुबोध प्रतीत होने लगती हैं।

सम्मानित अमरीकी मासिक पत्रिका 'सैटर्डे रेव्यू' ने उनकी पुस्तक 'एक्स्प्लोरेशन आफ आउटर स्पेस' की समीक्षा में लिखा था :

"रात का समय है। आकाश निरभ्र है। तुम आकाश के सितारों का निरीक्षण कर रहे हो। तुम्हारा मन विस्मय से भर गया है। अब यह ग्रंथ पढ़ो। तुम्हारे सपनों की उड़ान चरम सीमा तक पहुंच जायेगी।"

क्लार्क सविश्वास कहते हैं—"मैं अपने जीवन-काल में ही छुट्टियों में आराम करने के लिए चंद्र पर जरूर जा सकूंगा।" और यदि श्रोता के मुंह पर अविश्वास का भाव झलकता है, तो वे कह उठते हैं—"अच्छा, तुम मेरी बात को हंसी में उड़ा दे रहे हो। यदि तुम्हारे दादा जी उठें और धरती पर लौट आयें और लंदन या शिकागो के हवाई-अड्डों पर व्यस्त घंटों में दुनिया के नाना भागों से आये जेट विमानों के झुंड को देखें, तो वे क्या समझेंगे? तुम्हारे दादा और प्रथम हवाई जहाज के बीच समय का जितना अंतर था, उससे कई गुना कम अंतर है हमारे और चंद्र-उपनिवेश के बीच।" पृथ्वी के इर्द-गिर्द अंतरिक्ष-स्टेशन बनाने की क्लार्क की कल्पना एक-दो वर्षों के भीतर ही कार्यान्वित होगी, ऐसा प्रतीत हो रहा है।

अंतरिक्षी मानव
चित्रकार : क्राकर

प्रकृति की सर्वोपरिता के संबंध में क्लार्क का क्या विचार है, यह '२००१ अंतरिक्ष-नाटच' के आरंभ और अंत के दृश्यों से स्पष्ट हो जाता है। करोड़ों वर्ष पहले का एक बंदर-जैसा मानव पृथ्वी पर एक पत्थर से कान सटाकर कुछ सुनने की चेष्टा कर रहा है। पत्थर से विचित्र-सी आवाज निकल रही है। मानव सोचता है, इस आवाज का क्या राज है? यह है इस फिल्म की शुरुआत। और फिल्म के अंतिम दृश्य में हम देखते हैं कि सन २००१ का अत्यंत समुन्नत मानव गुरु ग्रह के एक उपग्रह पर विद्यमान है। वहां भी एक विशाल चट्टान है। उसमें से भी विचित्र-सी ध्वनि निकल रही है। और वह समुन्नत मानव उस शिला से कान सटाकर बैठा है और अपनी विकसित बुद्धि के द्वारा उसके

राज को समझने का भरपूर प्रयत्न कर रहा है।

क्लार्क का तो कहना है कि विश्व का रहस्य जानने के कितने भी प्रयत्न क्यों न किये जायें और प्रकृति पर चाहे कितनी भी विजय क्यों न प्राप्त कर ली जाये, विश्व तो एक रहस्य ही बना रहेगा।

किंतु वे मानते हैं कि मानव का भविष्य बहुत उज्ज्वल है। वे कहते हैं– "क्या मानव अपने दुर्गुणों को साथ लेकर अंतरिक्ष में परिभ्रमण कर सकेगा? मेरा तो यह विश्वास है कि सुदीर्घ अंतरिक्ष-यात्रा पर जाने वाला मानव धर्म, नस्ल, राष्ट्र आदि के भेदभाव की दीवारें तोड़ डालेगा; क्योंकि निर्वात अंतरिक्ष में राष्ट्रध्वजा फहरा ही नहीं सकती। इसीलिए राष्ट्रीय श्रेष्ठता की कल्पना गल जायेगी।

"अंतरिक्ष की परिस्थिति से जूझते समय आपसी झगड़े और जातीय या धार्मिक वैमनस्य का नामोनिशान मिट जायेगा। चंद्र, मंगल, गुरु या अन्य ग्रह-उपग्रहों पर पैर रखने वाली हमारी संतान की समस्याएं हमारी आस्थाओं से सर्वथा भिन्न तथा नयी होंगी। यूरोप के नाना राष्ट्रों से आये हुए विभिन्न धर्मों के लोगों ने सैकड़ों वर्ष पूर्व अमरीका के संयुक्त राज्य की संस्थापना की; उसी प्रकार अगले कुछ सौ वर्षों के भीतर ब्रह्मांड के मानवों का एक संयुक्त ग्रहराज्य (युनाइटेट प्लैनेट्स) भी स्थापित होगा।"

इससे स्पष्ट है कि क्लार्क मानते हैं कि ब्रह्मांड में अन्यत्र भी जीवों का अस्तित्व है। इस संबंध में अपनी आस्था उन्होंने विख्यात विज्ञानी वान ब्राउन के शब्दों में इस प्रकार व्यक्त की है –" मैं इस बात पर विश्वास नहीं कर सकता कि जिस रहस्यमयी चित्-शक्ति ने जीव का निर्माण किया और उसके लिए समुचित प्रबंध भी किया, उस शक्ति ने संवेदनशील जीव का निर्माण केवल पृथ्वी जैसे क्षुद्र ग्रह पर ही किया होगा। हमारा सूर्य हमारी आकाशगंगा के अनगिनत तारों में से एक सामान्य-सा तारा है; और ब्रह्मांड की करोड़ों आकाशगंगाओं में से हमारी आकाशगंगा एक है। इनके अलावा शायद अनगिनत प्रतिविश्व भी हैं। ऐसी अवस्था में, मानव का यह कहना कि इस विराट् और असीम आकाश में केवल हम ही जीव हैं, अत्युक्तिपूर्ण तथा अहंकार का सूचक है।"

जो लोग कहते हैं कि मानव चंद्रमा पर पहुंच गया यह पर्याप्त है, अब इस पर और पैसा न फूंका जाये और अगर खोज जारी रखनी ही हो, तो यह काम यंत्रों तथा यांत्रिक-मानव (रोबो) को सौंप दिया जाये, उनसे क्लार्क का कहना है –"चंद्र तो मानव का पहला तथा सबसे निकट का पड़ाव है। वहीं से लौट पड़ना सरासर मूर्खता होगी। अमरीका के मार्ग में ही यदि कोलंबस जहाज पर से अपने साथियों से कहता कि "मित्रो! समुद्र के छोर देखो वह क्षितिज है। वहीं पर जमीन है। चलो, अब हम लौट चलें।" तो उसके लौटने से मानव की प्रगति में रुकावट पैदा हो जाती। वैसी ही परिस्थिति में

हम हैं। यदि हमने गलत निर्णय किया, तो हमारी संतान हंसी उड़ाते हुए कहेगी—"उन्नति से मुंह मोड़ने वाले अनाड़ी!"

अंतरिक्ष की छानबीन में मशीन और मानव दोनों में अद्वैत होना चाहिये। उसी अद्वैत द्वारा अंतरिक्ष के अनगिनत ज्योति-पुंजों को वश में लाना है। उचित उपकरण उचित समय पर आविष्कृत होते ही हैं। ट्रांजिस्टर की खोज भी यही सिद्ध करती है। आवश्यकता है प्रयत्न की।

कई लोगों का कहना है कि अंतरिक्ष-खोज पर जो अपार धन खर्च किया जा रहा है, उसका उपयोग दुनिया से गरीबी तथा भुखमरी मिटाने के लिए क्यों न किया जाये? क्लार्क इन्हें यह उत्तर देते हैं—"क्या अंतरिक्ष-यात्राओं के खर्च का हिसाब मांगने वालों ने वियतनाम के निरर्थक युद्ध पर प्रति दिन होने वाले करोड़ों रुपयों के अपव्यय के संबंध में कभी सोचा है? यंत्र-विज्ञान के विकास पर खर्च होने वाले धन से तुरंत ठोस लाभ की मांग करना सरासर गलत है।

"यदि हमने लाभ-हानि का इसी ढंग से हिसाब लगाया होता, तो १९४० में अणु-शक्ति संबंधी शोधकार्य पर उतनी बड़ी रकमें खर्च न होतीं और संशोधन भी आगे न बढ़ता। केवल वर्तमान पर दृष्टि गड़ाये रहने वाले राष्ट्र को उज्ज्वल भविष्य की आशा नहीं करनी चाहिये। उसका भविष्य घने अंधकार से ही भरा रहता है। वही राष्ट्र उन्नतिशील कहा जाता है, जो उपलब्ध संपत्ति का विनियोग आज की मांग तथा कल की आवश्यकता को ध्यान में रखकर संतुलित रूप में करता है।"

आर्थर चार्ल्स क्लार्क को जो अनेक पुरस्कार और पदक मिले हैं, उनमें 'कलिंग' पुरस्कार भी एक है। आजकल वे श्रीलंका की राजधानी कोलंबो में अपनी पत्नी डाट और बच्चे जिम और फ्रेड के साथ शांत-स्वस्थ जीवन बिता रहे हैं। अंतरिक्ष संबंधी शोधकार्य और लेखन तो जारी है ही।

★

संसार के सबसे समृद्ध देश

वार्षिक उत्पादन एवं सेवाओं के वितरण में प्रतिवर्ष प्रत्येक नागरिक का क्या हिस्सा है, इसकी दृष्टि से इस समय संसार के सबसे अधिक समृद्ध देश १२ हैं। क्रमानुसार वे हैं—अमरीका, स्वीडन, स्विट्जरलैंड, कनाडा, न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया, डेन्मार्क, फ्रांस, नार्वे, पश्चिम जर्मनी, बेल्जियम और ब्रिटेन। इस दृष्टि से पूर्व जर्मनी का स्थान १४ वां है, रूस का २० वां तथा जापान का २१ वां। यह निष्कर्ष वर्ल्ड बैंक के एक प्रकाशन में निकाला गया है। अमरीका में प्रतिवर्ष लगभग २५,००० रुपये का उत्पादन एवं वितरण प्रत्येक व्यक्ति के हिस्से में आता है। स्वीडन में, जिसका नंबर क्रमानुसार दूसरा है, १६,००० रुपये प्रत्येक व्यक्ति के हिस्से में आते हैं। ये आंकड़े सन १९६८ के आरंभ तक के हैं। पिछले दो वर्षों में पश्चिम जर्मनी और जापान में बड़ी प्रगति हुई है। इस कारण सूची में संशोधन हो सकता है।

★

गुजराती कहानी :

विजय शास्त्री

मैंने नीलू को चूम लिया और उसने मीठी मुस्कान विखेर दी—संतोष-भरी और सलज्ज मुस्कान।

"अब तो मेरा नंबर पीछे हो गया ना?" मैंने सद्यजात शिशु की ओर इशारा करते हुए कहा।

नीलू तकिये से लिपटी रेशमी हंसी हंसती रही। उसने बच्चे के मस्तक पर हाथ फेरते हुए कहा—"आज तक तो आपको इसके हिस्से का भी प्रेम देती आयी हूं, पर अब से अपने हिस्से का उपयोग यह स्वयं करेगा।"

नीलू पहली बार मां बनी थी। उसकी बगल में एक मांसल बालक सो रहा था। लगता था कि उसमें मैं सो रहा हूं, नीलू भी थी उसमें। दोनों ही कोई तीसरा बनकर चौंधियायी आंखें मूंदें, लार टपकाते हुए सो रहे थे।

एक नन्हा कोमल शरीर बिना किसी तरह के बोझ के सो रहा था। यही बड़ा होगा, तब प्रतिस्पर्धा, द्वेष, अपमान, प्रेम, निराशा, हास्य, आंसू आदि से बिंध जायेगा। इस सबको ढोते हुए उसे भविष्य में दौड़ना होगा, पर अभी कितना निश्चित सो रहा है।

* * *

अब वह कमरे में इधर-उधर खिलौने बिखेरने लायक हो गया है, अटपटे बोल बोलकर शोर मचाने लायक हो गया है, मेरी कमीज और नीलू की साड़ी का पल्लू अपने छोटे-छोटे हाथों से खींचने लायक हो गया है। चाबी वाला मोर दौड़ने लग गया, चरखी नाचने लग गयी, बाबागाड़ी निर्बाध होकर महले पर चढ़ गयी, चाकलेटों के रैपर उखाड़े जाने लग गये। हमारी नजर में यद्यपि वह छोटा ही रहा, पर नजर के बाहर बड़ा होता गया। सवाल पूछने लायक हो गया :

चित्र : शेणै

"मेला नाम क्या है, पापा ?
"सितांशु।" मैंने वताया
"छितांशु ?" फिर पूछा।
"हां।"
"कितने बलस का हो गया हूं मैं ?"
"चार।" मां प्रसन्न होकर बताती।

* * *

नीलू उसे गोद में लिये दवा पिलाने जा रही थी; क्योंकि उसे बुखार आने लग गया था। चलते-चलते वह लड़खड़ा जाता, कई बार हांफने लगता। कुछ हो-सा गया था उसे। नीलू के पिता ब्लडप्रेशर के मरीज थे और एक बार तो मुझे भी अपनी पसली निकलवा देनी पड़ी थी। लगता था, हमारी यातना ही उसे विरासत में मिल गयी है। वह दवा पी नहीं रहा था।

"मेला लाजा बेटा बड़ा समझदाल है!" नीलू उसे फुसला रही थी।

"............"

"देखूं, हां, पी जा तो! फिर पापा आइस-क्रीम की कैंडी दिलवायेंगे।"

"ना", कहकर सितांशु ने मुंह फिरा लिया।

"देख बेटे, मेरी आंख में तुझे अपना फोटो

अनुवाद : गि० शं० त्रिवेदी

दिखाई देगा।" नीलू ने नई तरकीब आजमायी।

सितांशु मां की काली-काली पुतलियों में टकटकी बांधकर देखने लगा। उसे सचमुच उनमें अपनी रोती हुई छवि नजर आयी। उसने तुरंत रोना बंद कर दिया।

"दिखती है ना?" अपनी तरकीब की कामयाबी समझकर स्नेह-भरे उत्साह से नीलू ने पूछा।

सितांशु ने सिर हिलाया स्वीकृति में।

"रोता है, तो कितना खराब दिखता है! चल पी तो जा भला, नहीं तो मैं पी जाऊं? जल्दी कर।" कहकर नीलू ने धीरे-धीरे कांच की दवा की प्याली उसके ओंठों से लगा दी ...... और सितांशु पी गया।

दूसरे दिन सितांशु ने वही दवा पीते हुए पूछा—"मम्मी मेला फोतो देखने दे ना।"

"कौन-सा फोटो?" नीलू को याद न रह गया था।

"तेरी आंखों में है, वह!"

"बदमाश!" कहकर नीलू ने अपनी बड़ी-बड़ी आंखें उस पर स्थिर कर दीं। सितांशु ने उनमें अपना चेहरा देखा, जीभ निकाली। आंखों में भी जीभ नजर आयी। थोड़ा मुस्कराया। आंखों वाला सितांशु भी हंसा। वह तरह-तरह के हाव-भाव करता रहा।

"पापा!"

"हां!"

"आप मेला फोतो देखेंगे?"

"हां, कहां है?"

"मम्मी के पास चलो।"

हम दोनों नीलू के पास गये। वह दी... जला रही थी।

"मम्मी!"

नीलू कुछ न बोली।

"मम्मी!" पहले की अपेक्षा थोड़ी ... आवाज लगायी।

"हूं!"

"पापा को मेला फोतो बताओ, वे भी ... फोतो देखेंगे।"

"आप भी बच्चे के साथ......"

"देखो, देखो, पापा!" कहकर सि... मम्मी की आंखों में देखने लगा। "... पापा।"

"अरे हां, हां, बहुत अच्छा!" क... मैं नीलू की आंखें देखने लगा। नीलू ... खीझ दरशाती हुई बोली—"बाप-बेटा ए... ही तरह के हो!

"दिखता है ना पापा?" सितांशु ... रहा था।

मैं हंसा। नीलू शरमा-सी गयी। ... मेरे सामने मुस्कराती कि उसके पहले ... झट-से खड़ी हो गयी।

"पर नीलू......" मैं बोला।

"आये बड़े......" कहती हुई वह रसो... घर में चली गयी। "चोर"...... रसोई... से उसकी शरमायी-सी आवाज आ... इशारा मेरी ओर था।

फिर तो सितांशु के लिए यह नया ... सा हो गया। जो भी आता, उसे ही मम... की आंख में अपना फोटो दिखाता। पर ...

अब उसके इस खेल से तंग आ गयी थी।

* * *

"कितना है?" नीलू ने पूछा।

"तीन।" मैंने छोटा-सा उत्तर दिया।

"हाय, दस दिन हो गये। क्या हो गया मेरे लाल को, किसी की नजर तो ......" कहते-कहते उसने सितांशु के बुखार से तप रहे शरीर को कई बार चूमा।

तीन कमरों की छोटी-सी आयताकार दुनिया में उदासी छा गयी।

* * *

आज कुछ ठीक था, इसलिए सितांशु को लेकर मैं डा० शाह के यहां स्क्रीनिंग कराने के लिए ले गया।

दवाखाने में भीड़ थी। तमाम औरतें अपने बच्चों को लेकर आयी हुई थीं। डा० शाह चाइल्ड स्पेश-लिस्ट थे। उनका निदान सही होता था। वे कहते—"चिंता करने की कोई बात नहीं है," तो माताएं प्रसन्न होकर वापस लौटतीं। वे स्पष्टवक्ता के रूप में भी विख्यात थे। किसी को झूठी आशा बंधाना उचित नहीं समझते थे। पिछले महीने ही एक अफसर के तीन साल के बच्चे को डिप्थीरिया हो गया था। उसे देखकर उन्होंने कह दिया था—"यह रात नहीं गुजार पायेगा।" और सचमुच ...... डा० शाह सही निकले।

तभी से डा० शाह के शब्द ब्रह्मवाक्य समझे जाने लगे थे। सभी माताएं अपने बच्चों के साथ दवाखाने की बेंचों पर बैठी भगवान से मन-ही-मन प्रार्थना करती रहतीं कि डाक्टर उनके बच्चों के बारे में अच्छा ही बोलें। तीन-तीन, चार-चार साल के निर्दोष बालक, अपने शरीर के भयंकर रोगों से अनजान बालक, मृत्यु शायद उनमें से किसी-न-किसी के गिर्द चक्कर काटती होती, फिर भी बकरी को देखकर हंसते बालक, उन्हें देखकर मातृप्रेमवश दुःखी हो जाती माताएं, ये सब डा० शाह के दवाखाने की छोटी, निःस्पृह दुनिया की रोज की घटनाएं-सी हो गयी थीं।

चित्र : एन. वी. नागराजराव

* * *

"अरुण मेहता!" कंपाउंडर ने आवाज लगायी।

मैं और नीलू सितांशु को लेकर अंदर गये। सितांशु ज़रा कमजोर था, उसे नीलू ने उठा लिया। बुखार था। नीलू के शरीर को बुखार की गर्मी ने स्पर्श किया। वह मन-ही-मन बेचैन होने लगी।

"हलो, मि० मेहता!" डा० शाह ने मीठी मुस्कान बिखेरते हुए पूछा—"अब कैसा है बुखार, नार्मल ......" कहते हुए
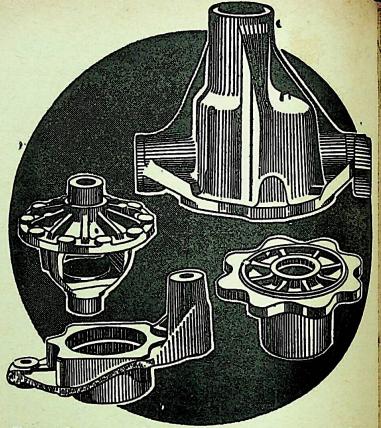
थर्मामीटर लगाया।

"स्क्रीनिंग कर लें।" डा० शाह ने खड़े होते हुए कहा।

सभी उठ गये। नीलू बैठी रही। उसे देखकर मैं भी बैठ गया।

"क्यों?" आंखों-ही-आंखों में उसने पूछा।

"तू जा अंदर," कहकर मैंने उसे अंदर भेजा।

* * *

"क्या है डाक्टर, चेस्ट में कुछ ......"

डाक्टर शाह कुछ न बोले। कुछ लिखने लगे। फिर बोले—"एक्स-रे ले लिया है, शाम को रिपोर्ट......"

"अच्छी बात है, पर कुछ......?"

"अभी कुछ भी नहीं कहा जा सकता।"

हम दोनों सितांशु को लेकर दवाखाने से बाहर निकल आये और रिक्शे वाले को बुलाया।

"मम्मी, मैं तुम्हारी गोद में......!" सितांशु जिद करके नीलू की गोद में जा बैठा। घर तक हम एक-दूसरे से कुछ भी नहीं बोले।

"रिपोर्ट में क्या है?" शाम को आफिस से आते ही मैंने नीलू से पूछा। पर उसके उत्तर देने के पहले ही टेलिफोन की घंटी बज उठी।

"हलो डाक्टर, ह्वाट इज द मैटर?"

"उसके हृदय में एक वाल्व ही नहीं है। फेफड़े की तीन पसलियां सड़ गयी हैं। ऐसा मामला मैंने आज तक नहीं देखा था।"

"अच्छा, पर कैसा लगता है?" मैंने तबीयत के बारे में पूछा।

"केस बहुत बिगड़ा हुआ है, छः या आठ महीने मुश्किल से...... यानी इससे ज्यादा वह जी नहीं पायेगा......" डाक्टर बोलते जा रहे थे। उन्हें स्पष्टवक्ता होने का हौसला था, मैंने यह देख लिया। "परंतु, निराश न हों" डाक्टर बोलते जा रहे थे। रिसीवर कब रख दिया, मुझे याद न रहा। मैंने नीलू की ओर देखा। उसे सब कुछ मालूम था ही। हम दोनों मेकैनो की मोटर-बस बनाते हुए सितांशु को फटी-फटी आंखों से निहारते रहे।

"छः या आठ महीने मुश्किल से......" वाक्य ने सितांशु को घेर लिया था, तो भी वह बालकृष्ण की तरह कालिय नाग के फनों पर नृत्य कर रहा था। इतने में वह उठकर नीलू के पास आया। कमजोर हो गया था, फिर भी कूदता हुआ आया। नीलू ने उसे गोद में बैठा लिया।

"मम्मी, मुझे अपना फोतो देखना है।" कहता हुआ वह नीलू की आंखों में टकटकी लगाकर देखने लगा। नीलू की हालत मैं जानता था। डर लग रहा था कि कहीं वह सितांशु से लिपटकर रो न पड़े। पर ऐसा नहीं हुआ। उसने आंसू छिपा लिये थे, पर आंखें जल से भीग गयी थीं।

"मम्मी, मेला फोतो दिखाई क्यों नहीं देता?" सितांशु ने पूछा। उसे आश्चर्य लगा।

"पापा, मम्मी की आंखों में मैं क्यों नहीं दिखाई पड़ता?" मुझसे जवाब नहीं दिया गया मैंने हाथ बढ़ाकर उसे बांहों में भर लिया और चूमता रहा कितनी देर तक......।

★

श्री वासुदेवाय

मनोज बसु

पराशर संगमरमर की दुकान करता है। कमलाक्ष राय एक दिन उस दुकान पर पधारे।

"पराशर, एक मार्बल-स्लैब पर 'श्री वासुदेवाय' लिख देना।"

"किसलिए रायजी ?"

"दरवाजे पर लगवाऊंगा। घर और दूसरी जमीन-जायदाद भगवान के नाम लिख दी है। जितने दिन जिंदा हूं, उतने दिन तो भगवान की सेवा करूं। क्या कहते हो पराशर ?"

पराशर ने परमोत्साह से सिर हिलाया। नश्वर संसार में ईश्वर की उपासना से श्रेष्ठ कार्य और क्या हो सकता है?

आर्डर के अनुसार पराशर 'श्री वासुदेवाय' लिखा हुआ मार्बल पत्थर दरवाजे पर लगा आया। पास ही मंदिर में श्री वासुदेव प्रसन्न होकर मुस्करा रहे थे।

* * *

तीन वर्ष बाद।

कमलाक्ष राय फिर दुकान पर आये। ड्राइवर ने गाड़ी से शिलालेख उतारा।

"पराशर, अब इसकी जरूरत नहीं है। इसी आकार के एक और पत्थर पर 'नंदन-कानन' लिख देना।"

"जी!"

उत्फुल्ल कंठ से कमलाक्ष वोले-'पु
हुआ है। गृहिणी ने नाम दिया है—नंददुला
पुत्र जब हुआ है, तब भगवान के नाम सा
जमीन-जायदाद दान कर देने का कोई म
लब नहीं होता। नंददुलाल बड़ा होकर क्
कहेगा ?'

पराशर ने सिर हिलाकर समर्थन किया।

'आर्डर' के मुताविक वुधवार को परा-शर 'नंदन-कानन' लिखा हुआ मार्बल पत्
लगा आया।

मंदिर में श्री वासुदेव प्रसन्न होकर नव-जात शिशु को आशीर्वाद दे रहे थे।

* * *

बीस साल बाद।

पलितकेश कमलाक्ष राय दुकान में फि
देखे गये। शोफर ने गाड़ी से पत्थर को
उतारा।

"इससे अव काम नहीं चलेगा, पराशर! एक नये मार्बल पर 'नंद-निर्मला-निकेतन' लिख दो।"

टूटे हुए चश्मे को नाक पर ठीक करते हुए पराशर ने जिज्ञासा से उनकी ओर देखा।

बंगला से अनुवाद : सुशील कुमार सोमानी

"नंददुलाल का विवाह अट्ठाईस को निश्चित हुआ है। लड़की बहुत सुंदर है। हमें बहुत पसंद आयी। नाम है निर्मला। मेरी सारी संपत्ति का अब वे भोग करेंगे। वर-वधू के गृह-प्रवेश करने के पहले शिलालेख लगवाना चाहता हूं। निर्मला अपना नाम देखकर खूब खुश होगी।"

पराशर ने स्वीकृति में सिर हिलाया।

* * *

तीन दिन बाद।

कमलाक्ष राय फिर दुकान पर आये। विपर्यस्त चेहरा, आंखें धंस गयी हैं। तीन दिन में मानो तीस साल और बूढ़े हो गये हैं।

"पराशर, क्या तुमने नये पत्थर पर लिख डाला है। अब उसकी जरूरत नहीं रह गयी।"

"क्यों ? क्या हुआ रायजी ? "

दीर्घ निश्वास छोड़कर कमलाक्ष बोले– "नंददुलाल चल बसा, पराशर ! रात में हैजा हुआ, सांझ के पहले सब शेष हो गया। श्री वासुदेव ने उसे अपने पास बुला लिया।

अब तुम 'श्री वासुदेवाय' ही लिख दो।"

वर्जित पत्थर एक कोने में पड़े थे। पराशर ने उनमें से एक पुराना धूल से भरा पत्थर निकाला। "पुराना शिलालेख मौजूद है रायजी। पोंछ लेने से ठीक हो जायेगा।"

दरवाजे पर वह शिलालेख फिर से लगा दिया गया।

श्री वासुदेव कौतुक दृष्टि से उस ओर देख रहे हैं।

★

चंद साल पहले न्यूयार्क में भारतीय पर्यटन-कार्यालय के निर्देशक ने मुझसे लपककर हाथ मिलाया और कहा –"मैंने सुना है, आपने 'द गाइड' लिखा है। अजीब बात है कि आज तक यह किताब मेरी नजर में नहीं आयी। उसमें सारा भारत 'कवर' किया गया है, या उसका कुछ ही हिस्सा ?" मैं बोला–"मैंने सब कुछ समेटने की कोशिश की है, हालांकि ज्यादा जोर मालगुडी पर है।" बोले–"वह भारत के किस हिस्से में है? कभी उसका नाम सुनने में नहीं आया ! मुझे विश्वास है, अवश्य ही वह टूरिस्टों के लिए दिलचस्प जगह होगी। आशा है, आपने सारे दक्षिण भारतीय मंदिर, वन्य पशुओं के संरक्षित वन और उस प्रदेश के पनबिजली केंद्रों का उसमें समावेश किया होगा। अगर आप नमूने की चंद कापियां भेजें, तो हमारे विभाग के उपयोग के लिए एकमुश्त काफी प्रतियां खरीदने पर विचार करने में मुझे खुशी होगी।" –आर० के० नारायण ('इलस्ट्रेटेड वीकली' में)

★

अमरीकी कहानी :

फिर बुलाना

जान ओ' हारा

उसके छोटे-छोटे कदम, जो देखने वाले का ध्यान हमेशा उसके छोटे कद-काठ की ओर खींचा करते थे, अब इस बात को छिपा रहे थे कि उसकी चाल धीमी थी। अब इस अधेड़ उम्र में, जवानी का कोई चिन्ह उसमें शेष नहीं रह गया था। उसकी छोटी-सी काली टोपी सिर्फ इतना आभास कराती थी कि उसने टोपी पहनी हुई है।

दरवान ने उसे 'गुडमार्निंग' नहीं कहा, बल्कि नपे-तुले शब्दों में पूछा—"टैक्सी लेंगी, मिस हैम्फर्ड ?" दरबान होने के नाते टैक्सी के लिए पूछना उसका कर्तव्य था, लेकिन उसे इस काम के लिए 'टिप' मिलने की आशा नहीं थी।

"टैक्सी ? हां। वैसे, मैं पैदल भी जा सकती हूं।"

"जैसी आपकी मर्जी।"

"खैर टैक्सी ले ही लेती हूं। वह रही।" उसने कुछ आगे बढ़कर कहा। वह हमेशा ऐसा ही करती। वह नहीं चाहती थी कि दरवान उसके लिए टैक्सी ढूंढ़कर लाये और उसे टिप देनी पड़े। कभी-कभी वह टैक्सी न भी लेती और यह कहती हुई आगे बढ़ जाती—"जरा सैर करने जा रही हूं।" और कुछ आगे जाकर बस-स्टाप पर खड़ी हो जाती। लेकिन आज वह टैक्सी में ही जाना चाहती थी, ताकि नौकरी के संबंध में बात करते समय थकान महसूस न हो। हां, आज वह नौकरी के लिए जा रही थी और उसने अपने हीरे-मोतियों वाले पिन पहने हुए थे जिन्हें प्रायः वह होटल की तिजोरी में रखे रहती थी।

टैक्सी कुछ ही दूर आगे गयी थी कि ड्राइ-वर ने उसकी ओर जरा-सा मुंह मोड़कर पूछा—"अगर मैं गलती नहीं कर रहा हूं तो आप मिस हैम्फर्ड हैं ना ?"

"हां" मिस हैम्फर्ड ने खुश होकर कहा।

"आप पहले भी कई बार मेरी टैक्सी में बैठ चुकी हैं— उन दिनों, जब आप नदी के पास रहती थीं। याद है ना ?"

चित्र : शेणै

"ओह ! उस बात को तो एक जमाना हो गया है।"

"आपको शायद लुई याद होगा ?"

"लुई ?"

"हां, लुई जैफी। यानी मैं। आपको मैं हफ्ते में चार-पांच बार टैक्सी में ले जाया करता था। फिल्मों में आपने बहुत नाम कमाया। शायद आज भी आप फिल्म या टेलिविजन में काम करने जा रही हैं।"

"नहीं बल्कि एक नाटक में, जो ब्राडवे पर खेला जायेगा।"

"तो आप फिल्मों में काम करना बहुत अरसे से छोड़ चुकी हैं ?"

"हां, इस अरसे में मैंने लंदन में भी कुछ नाटकों में काम किया।"

"उसके बारे में तो मैंने नहीं सुना। लेकिन फिल्में आपकी कई देखी हैं। इतने साल बीत चुके फिर भी आपका नाम लोगों को याद है, जबकि नयी पीढ़ी के लोग पुरानी ऐक्ट्रेसों के बारे में कुछ भी नहीं जानते। आप टेलिविजन पर आती हैं, सो आपके चेहरे को आज भी लोग भूले नहीं। दो साल पहले आपने टेलिविजन पर जो लेडी डाक्टर का रोल किया था, वह मेरी बेटी को बहुत पसंद आया था। भला आप जैसी ऐक्ट्रेसों को नाटकों-वाटकों में काम करने की क्या जरूरत है ?"

"मुझे नाटकों में काम करना बहुत अच्छा

अनुवाद : सुखबीर
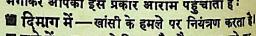
लगता है।"

"खैर, जैसा आपको अच्छा लगे। मैं घर जाकर अपनी बेटी को बताऊंगा कि आज आप मेरी टैक्सी में बैठी थीं। वह बहुत खुश होगी। सच पूछिये तो टेलिविजन के ही द्वारा आप लाखों लोगों तक पहुंच सकती हैं। ब्राडवे में खेले जाने वाले नाटकों को कितने लोग देखते हैं भला? वहां तो वही ऐक्टर-ऐक्ट्रेसें जाती हैं, जिन्हें टेलिविजन में काम न मिले। यह लीजिये, यहीं उतरना है न आपको?"

"हां। लो, यह रख लो।"

"पांच डालर!"

"पुराने दिनों की याद में।"

"धन्यवाद! बहुत धन्यवाद, मिस हैम्फर्ड। मैं तो फिर यही कहूंगा कि आपको टेलिविजन में ही काम करना चाहिये।"

फिर हैम्फर्ड एक इमारत में दाखिल हुई। फिर एक दफ्तर में कदम रखते ही उसने अपनी सारी शक्ति बटोरी और ओंठों पर मुस्कराहट लाकर रिसेप्शनिस्ट के पास गयी।

"मिस्टर सैंडर्सन आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, मिस हैम्फर्ड।" रिसेप्शनिस्ट ने कहा।

"गुडमार्निंग राल्फ!" मिस हैम्फर्ड बोली।

सैंडर्सन उठा। "गुडमार्निंग जोन, बैठो। हां तो, क्या उस नाटक के बारे में तुम कुछ जानती हो?"

"बस वही कुछ, जो इस बारे में मैंने पढ़ा है।"

"तो शायद तुम अपने रोल के बारे में कुछ नहीं जानतीं।"

"यही समझो। मैंने उपन्यास पढ़ा है, लेकिन नाटक का रूप देते समय तुमने शायद उसमें कुछ परिवर्तन किये होंगे।"

"उपन्यास को गोली मारो। उसमें से हमने सिर्फ लड़के और उसके चाचा को ही लिया है।"

"और लड़के की चाची?......क्या वह नाटक में नहीं है? तो फिर मेरे लिए कौन-सा रोल होगा?"

"अध्यापिका का। याद है तुम्हें?"

"अध्यापिका? जरा सोचने दो। हां, शुरू-शुरू में एक अध्यापिका का जिक्र आता है?"

"वही।"

"तो उसके रोल को तुमने बढ़ाया होगा नाटक में?"

"नहीं। नाटक के पहले अंक के एक ही दृश्य में वह आती है?"

"तो क्या यह रोल तुम मुझे करने को कहोगे? मैं इतना नीचे तो नहीं उतर सकती। टेलिविजन पर मैंने लेडी डाक्टर का काफी रोल किया था, और उसके मुझे ढाई हजार डालर मिले हैं।"

"वह तीन साल पहले की बात है, जोन। उसके बाद तुमने कोई रोल नहीं किया है, बीच का समय बेकारी में ही काटा है। इसीलिए अध्यापिका के रोल के लिए मुझे तुम्हारा ध्यान आया। इसके मैं साढ़े तीन सौ डालर दे सकता हूं।"

"यह तो बड़े शर्म की बात होगी मेरे लिए।"
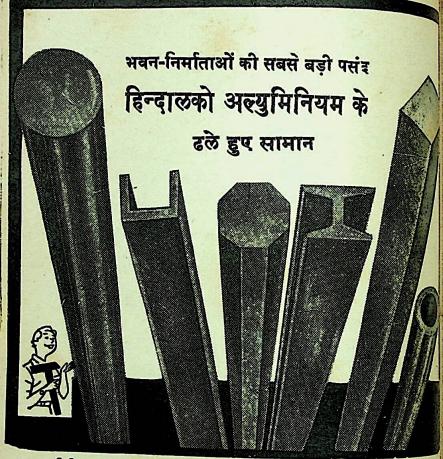
"खैर, इस बारे में सोच लो। मैं बस यही कुछ कर सकता हूं। वैसे यह नाटक लंबे अरसे तक चलेगा। तुम्हारे नाम का जिक्र होता रहेगा। शायद तुम्हें फिर से काम मिलने लगे। बेकार रहने से तो यह कहीं अच्छा है।"

"नहीं, यह मैं नहीं कर सकूंगी।"

"मैं चार सौ डालर तक दे सकता हूं।"

"क्या यह संभव नहीं है कि नाटक के दूसरे और तीसरे अंक में भी मेरा रोल हो?"

"नहीं, बिलकुल नहीं।"

"तो फिर रहने दो। तुमने मेरे लिए कोशिश की, इसके लिए मैं आभारी हूं।"

"कोशिश करना मेरा फर्ज था।"

"अच्छा, तो मुझे पांच डालर दो—टैक्सी के लिए।"

"जोन, क्या तुम्हारी हालत इतनी बुरी हो गयी है?"

"नहीं, इतनी बुरी नहीं। लेकिन यहां आने में मेरा इतना खर्च हुआ।"

सैंडर्सन ने उसे दस डालर देते हुए कहा—"अगर यहां आने में पांच डालर खर्च हुए तो जाने में भी पांच डालर खर्च होंगे।"

"मुझे पांच की ही जरूरत थी। खैर, दस ही रख लेती हूं। पुराने दिनों में तुम इससे ज्यादा तो मेरे साथ होटल में खाने पर खर्च कर दिया करते थे।"

"लेकिन मैं वसूल भी तो कर लिया करता था।"

"मैं इसे अपनी तारीफ ही समझूंगी। क्या आज भी मुझे होटल ले जाकर खाना नहीं खिलाओगे?"

"नहीं, जोन। आज संभव नहीं है।"

"तो फिर एक चुंबन तो दे सकते हो?"

"बेशक।" सैंडर्सन मेज के दूसरी ओर से उसके पास आया और उसके गिर्द अपनी बांहें फैलायीं।

"ओंठों पर।" मिस हैम्फर्ड ने कहा।

सैंडर्सन ने उसके ओंठों को चूमा।

"धन्यवाद! फिर भी कभी बुलाना।"

"जरूर।" वह दफ्तर से निकलकर अपने होटल की ओर चल दी।

★

रोटी में दर्शन

एक बार गांधीजी सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री वियोगी हरि के साथ किसी हरिजन-बस्ती का अवलोकन कर रहे थे। जब वे भोजनालय के पास से गुजरने लगे तो वियोगी हरि ने देखा कि भोजनालय में एक युवक रोटी बनाने में इतना तल्लीन है कि गांधीजी का उधर गुजरना उसके लिए कोई विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं। उनसे युवक की यह उपेक्षा नहीं देखी गयी। वे तुरंत युवक के पास गये और बोले—"अरे भाई, देखता भी नहीं। बापू आये हैं। उनके दर्शन तो कर ले।"

युवक उत्तर के लिए मुंह खोले, इससे पहले गांधीजी बोले—"वह तो रोटी में ही मेरे दर्शन कर रहा है।" और आगे बढ़ गये।

—दुर्गाप्रसाद नौटियाल

★
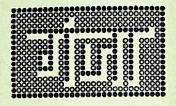
सूफी गुलाम मोहम्मद

भाग्य की बात। उस गंजे को भी जैसे कोई और स्थान न मिला था। जैसे ही मेम साहव की दृष्टि उसके तांबे-से चमकते सिर पर पड़ी, उसे उबकाइयां-सी आने लगीं थीं। पानी में थूकते हुए वह हाउस-बोट के अंदर घुस गयी। उसका सारा शरीर कांप रहा था। अंदर सबूरा नाश्ते के लिए मेज लगा रहा था और साहब नर्म रेशमी लिहाफ ओढ़े हुए गहरी नींद में सो रहे थे।

"सबूरा!" मेम साहब ने घबराकर पुकारा। सबूरा के हाथ से वह प्याली गिर गयी, जिसे वह मेज पर सजाने जा रहा था।

"क्या बात है मेम साहब?"

"देखो इधर, इस गंजे को ...... मैं इसे हर रोज सुबह अपने गंजे सिर पर हाथ फेरते हुए देखती हूं, मुझे बड़ा खराब लगता है। इसे देखकर मुझे उबकाइयां आने लगती हैं। मेरा मूड खराब हो जाता है। सुनो, अगर यह आदमी फिर इस तरफ आया, तो फिर हम तुम्हारा हाउस-बोट खाली कर दें

"मेम साहब...... मैं इसे जड़ से
कर दूंगा।" सबूरा ने हाथ हिलाकर
इस तरह कहा, जैसे वह गंजे को कच्चा
जायेगा। उसने उसी क्षण खिड़की से
गंजा नहा रहा था, उसका सिर पा
उभरता-डूबता दिखाई पड़ रहा था।
को गुस्सा आया। उसने सोचा कि
पत्थर उस गंजे के सिर पर मारकर
खोपड़ी खोलकर रख दे और उसे लहू
कर दे। वह हाउस-बोट के आखिरी
पर आया और घूर-घूरकर उसे देखने
उसकी आंखें लाल अंगारे-सी हो रहीं
वह दिल-ही-दिल में सोच रहा था
सीजन के पहले खरीदार थे मेम और
...... विलायती मेम और साहब।
जो खूब ज्यादा खर्च करते हैं। मेरे यहां
परी आयी है—जलपरी। और मैं क्या
जाने दूंगा। नहीं, हर्गिज नहीं।"
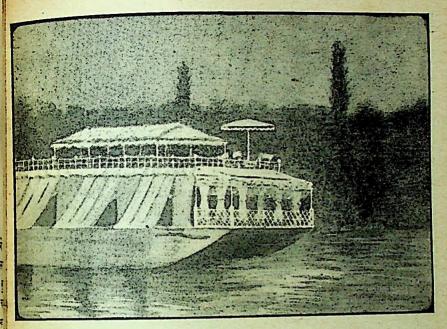
चित्र : शेणै

वह चिल्लाया—"अबे, ओ गंजे, चला जा यहां से, वरना इसी झील में डुबो दूंगा।"

गंजे ने सुना, परंतु चुप रहा। उसकी खामोशी को देखकर सबूरा को ताव आ गया और वह उसे गालियां देने लगा। आस-पास बहुत-से लोग जमा हो गये। उन्हें देखकर वह मोटी-मोटी गालियों पर उतर आया और हाउस-बोट से शिकारे में आ गया। गंजा पानी से किनारे पर आया, लोग उसे नंगा देखकर भाग गये।

सबूरा का शोर सुनकर अब साहब भी जाग पड़ा था।

मेम साहब और साहब को सबूरा के हाउस-बोट में आये थोड़े ही दिन हुए थे। पतिपत्नी स्थान-स्थान पर घूम-घूमकर अब कश्मीर आये थे। और सबूरा के हाउस-बोट 'डल क्वीन' में ठहरे थे, जो डल के एक किनारे दुल्हन के समान सजा खड़ा था। उसके साथ छोटा-सा बगीचा था, जिसमें रंग-बिरंगे फूल खिले थे।

एक ओर सफेदे के पेड़, जिनकी छाया में बैठकर ऐसा महसूस होता था कि जैसे किसी ने जख्मों पर मरहम रख दिया हो। डल झील के पानी से अठखेलियां करती हुई हवा, सोने के समान किरणें फेंकता हुआ सूरज, कतारों में तैरते हुए हंस, ऊंचाई से

अनुवाद : शम्सुल हसन

पालन पोषण सही कीजिए; बच्चों को बोर्नविटा दीजिए!

स्वादिष्ट और पौष्टिक बोर्नविटा कोको, दूध, माल्ट और शक्कर का सन्तुलित मिश्रण है।

शक्ति, उत्साह और स्वाद के लिए— *कॅड्बरिज* बोर्नविटा!

गिरती हुई पानी की धार—दिल को लुभाने वाला एक सुंदर दृश्य था। सामने सुलेमान पर्वत की घाटी में विलवाड़ रोड पर सुवह-शाम मोटरों का आना-जाना। इस सड़क के कुछ आगे अनगिनत मकान और उसमें रहने वाले लोग, एक अजीव जिंदगी। दूर पहाड़ों की एक लंवी श्रेणी और उनके ऊपर वादलों का तैरना, नदी-नाले, झरने—यह सुंदरता, यह शराव, यह सव कुछ देखकर दिल मचल-मचल जाता।

इन सुंदर दृश्यों और हाउस-वोट 'डल क्वीन' में वड़ा गहरा संवंध था। यही कारण था कि दूसरे हाउस-वोटों की ओर देखते हुए जब किसी विदेशी सैलानी की निगाह सवूरा के हाउस-वोट पर पड़ती थी, तो एक क्षण के लिए उसकी निगाह ठिठक अवश्य जाती थी। विदेशी घुमक्कड़ तो जैसे सवूरा के हाउस-वोट पर मोहित हो गये थे।

विलायती मेम साहव और साहव को अभी एक महीना ही वीता था और सवूरा ने केवल इस एक महीने में इतनी आमदनी कर ली थी, जिससे वह एक साल अपना खर्च चला सकता था।

मगर यह गंजा......।

मेम साहव को यह गंजा पहले दिन ही दिखाई पड़ा था। वह दूर पहाड़ी पर प्राकृतिक दृश्यों में डूवी हुई थी और यह सव कुछ उसे वहुत अच्छा लगा था। अनोखा, प्यारा ......। अचानक उसकी आंखों ने एक अजीब-से आदमी को देखा। वह पानी में डुवकियां लगा रहा था और वार-वार अपने तेज नाखूनों से अपने सिर को खुरच रहा था। यह देखकर उसे मितली-सी होने लगी थी। उसके देश में अगर किसी कुत्ते को भी ऐसी हालत में देखा जाता तो उसे सावुन से धोया जाता और टीके लगाकर इस जहर को उसके शरीर से वाहर निकाल दिया जाता। लेकिन यह देश...... यहां गंजा पानी में नहाकर सारे पानी को गंदा करता है; इसके कीड़े पानी में फैल जाते हैं और इसी पानी पर यह हाउस-वोट खड़ा है।

"ओ गाड! मैं कहां आ गयी हूं? यहां शायद आदमी नहीं, वल्कि जंगली जानवर रहते हैं। उसे हाउस-वोट में विछे कालीनों से घृणा-सी होने लगी। रंग-विरंगे फूलों से नफरत हो गयी। आस-पास की सारी चीजों से नफरत हो गयी।

वह चार दिनों से यह सव देख रही थी। पहले दिन उसने सोचा था कि अव गंजा नहीं दिखाई पड़ेगा। लेकिन जव दूसरे दिन वह सुलेमान की पहाड़ियों की फोटो लेने लगी, तो उसका सिर पानी से उभर आया और मेम साहव उसे देखकर डर गयी। उसे अपने चारों ओर वही गंजा दिखायी पड़ता महसूस हुआ। गंजे की आंखें अंदर को धंसी हुई थीं और मुंह की हड्डियां उभर आयी थीं।

और आज मेम साहव गंजे को देखकर दबी-दबी-सी आवाज में चीख-सी पड़ी थी। सवूरा ने गंजे को भगा दिया; लेकिन अब भी मेम साहव को उसकी शक्ल चारों तरफ घूमती दिखाई पड़ रही थी। उसका जिस्म थरथर कांप रहा था।

दोनों पति-पत्नी उस दिन शापिंग के लिए बड़े बाजार की ओर निकल पड़े। वे बड़े बाजार पहुंचे। इधर-उधर घूमने के बाद वे एक 'वुड कार्विंग' की दुकान में घुस गये। वे बहुत शौक से कारीगरों को काम करता हुआ देखते रहे। काम देखकर वे चकित रह गये। बुद्ध की मूर्ति, बत्तख, हंस, चिनार का पत्ता ...... ऐसा मालूम होता था, जैसे सब जानदार हैं और अभी बोल पड़ेंगे।

"वाह, कितनी सुंदर है यह कला, यह कारीगरी!" मेम साहब ने साहब की तरफ देखते हुए कहा —"एक-से-एक बढ़कर अखरोट की लकड़ी के बने हुए ये फूल, ये पत्ते। क्या ये सब चीजें इन्हीं लोगों ने बनायी हैं? नहीं, शायद नहीं! बदसूरत और मैले आदमी इन चीजों को कैसे बना सकते हैं? इनमें इतनी अनुभूति कहां से होती है? यह कलाकारी तो अमर है। यह इनका बनाया हुआ नहीं मालूम होता।"

फिर वे एक कढ़ाई तथा बुनाई की दुकान में आ गये। सुई और धागा...... मामूली चीजें हैं; लेकिन इसके साथ आदमी की उंगलियों का यह कमाल। यह कढ़ा हुआ काम! फूलों का यह सुंदर बगीचा सफेद कपड़ों पर किसने बिखेर दिया? इसमें यह रंग किसने भरा है? कौन हो सकता है? किसके हाथ हैं ये, किसकी उंगलियां हैं?

साहब एक जैकेट देखने लगा। एक हरे रंग का जैकेट, जिसके दोनों कंधों पर फूलों की क्यारियां बहुत सुंदरता से काढ़ी गयी थीं। इस जैकेट का दामन जैसे फूलों से भरा था।

स्केच : राणा

साहब ने हैंगर से जैकेट उतारकर पहन लिया। उसे पहनकर साहब का मुंह ऐसा दिखाई पड़ने लगा, जैसे हरी-भरी पत्तियों में गुलाब का फूल दिखायी देता है।

इसके आगे एक और दुकान थी। इस दुकान के बाहर एक बोर्ड लगा था। उस पर लिखा था—"पेपरमाशे स्टाल"। मेम साहब और साहब जब इस दुकान के अंदर गये तो उन्हें ऐसा महसूस हुआ, जैसे वे किसी जादू के महल में आ गये हों। उन्हें बिलकुल यकीन न आया कि ये चीजें किसी आदमी ने बनायी होंगी। दुकान सामान से भरी हुई थी। दायें-बायें, ऊपर-नीचे, हर तरफ एक जादू की नगरी थी। पेपरमाशे की चीजें थीं कि जिन्हें देखकर आदमी दांतों तले उंगली दबा लेता और सोचने लगता कि क्या वास्तव में यह सब किसी आदमी के हाथ की ही कारीगरी है?

यह आदमी का काम नहीं हो सकता, यह कोई दूसरी ताकत है। यह कला, यह कारीगरी, क्या इस हद को भी छू सकती है? यह सिगारकेस, साबुनदानी, फूलदान, सिगरेटकेस, कलमदान, तस्वीरों का फ्रेम—यह किसका कमाल है ?

मेम साहब ने अपने लिए बहुत-सी चीजें खरीदी। इस पर भी वह सोच रही थी कि और क्या-क्या खरीदूं। हर चीज बेमिसाल थी, सुंदर थी, अनोखी थी।

"कितना ऊंचा होगा वह कलाकार, जिसने रंगों से बेजान वस्तुओं में जान डाल दी ? हमें उस कारीगर की सराहना करनी चाहिये।" साहब ने कहा।

"मैं उस कारीगर को देखना चाहती हूं, जिसने ऐसी सुंदर-सुदर चीजें बनायी हैं।" मेम साहब ने कहा।

साहब ने दुकानदार की ओर देखा। दुकानदार ने सोचा तथा इस लालच में कि वे उससे और अधिक चीजें खरीदेंगे शायद और उस गरीब कारीगर को कुछ मिल भी जाये। उसने कहा—"ठीक है चलिये, मैं उस कारीगर को दिखा दूं। वह दुकान के पिछले भाग में काम करता है।"

मेम साहब और साहब दुकानदार के पिछले भाग की ओर चल दिये। वे कमरे में घुसे। कमरे में घुसते ही मेम सा अपनी आंखें मलने लगी। बाहर रोशनी और अंदर अंधेरा। कुछ देर उसे कुछ न दिखाई पड़ा। अब वह खिड़की के खड़ी थी। एक कोने में चार आदमी बैठे उनके चारों तरफ रंग के डिब्बे और कु सामान पड़ा था।

दुकानदार ने एक कारीगर की त इशारा करते हुए कहा—"मेम साहब, हमारा कारीगर है...... इन कलाकृ को सिरजने वाला कलाकार।"

मेम साहब की निगाह जब उस पर पड़ तो फिर अपनी आंखें मलने लगी और घूर-घूरकर उसे देखने लगी। उसके मुं कोई आवाज न निकली।

साहब ने मेम के कंधे पर हाथ रखा उस कलाकार को देखने लगे। यह- यह तो वही था, जो उनके हाउस-बोट सामने रोज आकर नहाता था। और गंजे की चांद पर हल्की-हल्की रोशनी कर उसकी गंजी चांद को और अ चमका रही थी।

★

हिटलर ज्योतिष में गहरा विश्वास रखता था। एक बार उसने एक विश्ववि ज्योतिषी को हाथ दिखाते हुए पूछा—" मेरी मृत्यु किस दिन होगी ?"

"यहूदियों के किसी त्योहार के दिन।"

"यह आप कैसे कहते हैं ?"

"जिस दिन आपकी मृत्यु होगी, वह दिन यहूदियों के लिए किसी त्योहार से क महत्त्वपूर्ण न होगा।" ज्योतिषशास्त्री ने आत्मविश्वास के साथ कहा। —प्रेमप्रकाश

★

अमिट रेखाएं

कुछ दिन पूर्व हमारे यहां अमरीका से एक मित्र आये थे। वैसे तो वे भारतीय हैं, लेकिन वर्षों से अमरीका में अध्यापक हैं। ये सज्जन अपने एक अमरीकी मित्र के साथ दिल्ली में घूमते-घामते गर्म कपड़े की एक दुकान पर आ पहुंचे, जिसका मालिक नेपाली था। अमरीकी ने कुछ गर्म कपड़ा खरीदा और बिल पढ़कर नाराजी से कहा— "अभी तक तो मेरा कुछ ऐसा विचार था कि भारत के लोग भिखारी होते हैं; परंतु ऐसा लगता है कि भारत के लोग धूर्त और नीच भी हैं।"

नेपाली व्यापारी सब कुछ समझ गया। कुछ दलील न देकर उसने कीमतों की सूची अमरीकी के हाथ में दे दी। पढ़कर अमरीकी शरमाया और अपना विजिटिंग कार्ड आगे बढ़ाते हुए बोला—" मैं समझता था कि मुझे विदेशी समझकर आपने कुछ अधिक कीमत लगायी होगी। मुझे शाम को मिलिये, मैं कुछ ज्यादा कपड़े खरीदूंगा।" लेकिन नेपाली ने कार्ड हाथ में न लेकर बड़ी विनम्रता से कहा—"श्रीमान्‌जी, मैं आपसे नहीं मिल सकूंगा, आपने मेरे देश का अनादर किया है।"

अमरीकी ने उसे समझाने की कोशिश की—"आपका देश तो नेपाल है और मैंने तो व्यक्तिगत तौर से आपकी निंदा की नहीं है? आपको हजार-दो हजार का फायदा होगा।"

उत्तर मिला—"नेपाल मेरी जन्मभूमि है। पर मैं भारत की भूमि का अन्न खाता हूं। भारत में मैं कमाता हूं। मेरे लिए भारत और नेपाल एक ही है। मिलने वाले हजार-दो हजार रुपयों से मैं अपने देश के सम्मान की तुलना नहीं कर सकता।"

अमरीकी को क्षमा मांगनी पड़ी।

—चंद्रकांत त्रिवेदी, अजमेर

* * *

तब हार्लिक्स कठिनाई से मिलता था। जिस दुकान से प्रायः सामान खरीदता था, उस पर गया, अगली पर गया, उससे अगली पर गया। एक ही उत्तर मिला— "नहीं है।" "हार्लिक्स चाहिये ही। अपने लिए नहीं, रोगी के लिए। रोगी सामने के अस्पताल में है, जनरल वार्ड, बेड नंबर २१ पर, जरा देखिये, शायद एक शीशी निकल आये।" मैं कहता। किंतु उत्तर वही मिलता—"नहीं है।" एकदम स्वस्थ उत्तर। निराश हो मैं अस्पताल लौट आया। समझ नहीं पा रहा था, कैसे प्रबंध किया जाये?

मैं सोच ही रहा था कि एक अपरिचित सज्जन हार्लिक्स की शीशी के साथ आते दिखाई दिये। मेरे निकट आकर रुक गये। बोले—"आप मुझे नहीं पहचानते। जब आप

दुकानदार से रोगी के लिए हार्लिक्स मांग रहे थे, मैं वहीं पर खड़ा था। मैंने हार्लिक्स कल रात ही खरीदा था, अभी उसे खोला नहीं। आपकी आवश्यकता अधिक है, इसी-लिए मैं हार्लिक्स ले आया हूं!"

उस अपरिचित की सहानुभूति ने मान-वीय मूल्यों में मेरी आस्था घनी कर दी।

—सत्य स्वरूप दत्त, रांची

* * *

पड़ोसिन सूबेदारनी हर मंगलवार को बेल के दो पत्ते गली के शिवजी के मंदिर में चढ़ाया करती थी। बेल का वृक्ष हमारे आंगन में था, पर उसकी एक लंबी टहनी उसके आंगन में झुकी हुई थी। मैंने कई बार आग्रह किया कि वह बेल की पत्तियां हमारे यहां से ले जाये; किंतु उसे उसी टहनी से लगाव था। "दीदी, जब तक यह हरी है, मेरी हर कामना पूरी होती रहेगी।" उसने बड़े प्रेम से कहा था।

दो महीने के अवकाश में बाहर रहने के पश्चात् जब हम लौटे, तो वह कहीं और जा चुकी थी। दफ्तर से आकर एक दिन उन्होंने मुझसे कहा—"सुना है, सूबेदार राम-जीत बार्डर पर शहीद......।" अनजाने मेरी दृष्टि खुली खिड़की में से बेल की टहनी पर पड़ी। वह सूखकर आंगन की दीवाल पर गिरी हुई थी। मैं चौंक गयी।

—मोहिनी दत्त, आगरा

* * *

बी० ए० द्वितीय वर्ष में हमारी एक लेक्चरार थीं। जब भी वे आतीं, शरारती लड़कियां उन्हें बहुत तंग करतीं। कोई सीटी बजाती, कोई ऊटपटांग प्रश्न पूछती, ऐसी कोई-न-कोई बात जरूर करतीं, जिससे उनका दिल दुःखे। फिर भी वे उन्हें प्यार से समझातीं, उनकी कठिनाइयां पूछतीं। पर उन शरारती लड़कियों पर कोई प्रभाव न होता। एक दिन अचानक विद्या-र्थियों तथा डी. टी. यू. कर्मचारियों के बीच संघर्ष होने से शहर में बसें बंद हो गयीं। लड़कियां घर जाने के लिए परेशान हो उठीं, क्योंकि क्रुद्ध विद्यार्थी हमारे कालेज के आगे भी जुलूस पर जुलूस निकाल रहे थे।

तभी वे लेक्चरार उधर से गुजरीं। उन्होंने लड़कियों को बड़े प्यार से बुलाकर कहा—"तुम लोग कहां जाओगी? आओ, मैं तुम्हें छोड़ दूं।" पहले तो लड़कियां चकित हो एक-दूसरे की ओर देखती रहीं, फिर झिझकती-शरमाती हुई कार में बैठ गयीं।

फिर तो वे शरारती लड़कियां कक्षा की सबसे शांत और आज्ञाकारिणी छात्राएं बन गयीं।

—लीला सजवान, दिल्ली

★

कुछ लोग दूसरों की प्रशंसा, उनकी प्रशंसा करने के लिए नहीं, बल्कि उनसे प्रशंसा प्राप्त करने के लिए करते हैं। —फ्रैंक मैकिनी हब्बर्ड

तनिक-से प्रोत्साहन का अभाव पर्वत-सी प्रतिभा को भी निष्प्रभाव बना सकता है। —एस० स्मिथ

★

माओ के सहाध्यायी की पुस्तक 'माओ त्से-तुंग एंड आई वर बेगर्स' का कु० स्नेहप्रभा रस्तोगी द्वारा प्रस्तुत सार

जब माओ और मैं भिखारी बने

सियाओ-यू

"चीन को तभी जीता जा सकता है, जब हुनान प्रांत के सब निवासियों को मार डाला जाये"—यह एक प्रसिद्ध चीनी कहावत है। लगभग दो हजार वर्ष पूर्व हुनान प्रांत को 'चू' कहते थे; तब यह बहुत शक्तिशाली था। इसके पास ही वह 'चिन' प्रदेश है, जिसके नाम पर समूचा देश चीन कहलाया। चीन के साथ चू का परंपरागत वैर था। चीन में आज भी कहावत है—"यदि चू के तीन कुनबे भी जीवित रह गये, तो वे चिन को अवश्य जीत लेंगे।"

हुनान का तीसरा नाम 'सियांग' है। यह नाम इसी प्रदेश की सबसे बड़ी नदी सियांग-क्यांग के नाम पर पड़ा है। यह प्रांत तुंग-तिंग झील के दक्षिण में होने के कारण हुनान कहलाया—हु अर्थात् झील और नान अर्थात् दक्षिण। हुनान की राजधानी चांगशा है। ८० हजार मील में फैला यह प्रांत नैसर्गिक सौंदर्य के लिए प्रसिद्ध है। दूर तक फैले पहाड़, विस्तृत घाटियां तथा चार बड़ी-बड़ी नदियों की सुषमा ने इस प्रांत में अनेक कवियों और चित्रकारों को जन्म दिया है। साथ ही, ये पहाड़ियां और घाटियां शताब्दियों से डाकुओं को भी आश्रय देती रही हैं और यहां डाकुओं की संख्या सिर के बालों की तरह अनगिनत रही है।

हुनान के निवासी आज भी बड़े गर्व से कहते हैं कि हम शैतान तक से नहीं डरते। वे आज भी चीन-भर में दृढ़ निश्चय और साहस के लिए प्रसिद्ध हैं। यहां के निवासियों को मिर्च से बहुत लगाव है। शायद यही कारण है कि इस प्रांत में जनमा माओ

इतना तीखा है।

हुनान के यिन-तियेन-शिह क्षेत्र में दो पहाड़ों के बीच शाओ-शान घाटी पड़ती है, जिसमें कमल जैसा एक सुंदर फूल खिलता है। इन्हीं पहाड़ियों में से एक पर १९ नवंबर १८९३ को चीन के वर्तमान अधिनायक माओ-त्से-तुंग का जन्म हुआ।

शाओ-शान घाटी में माओ के पिता की धान की थोड़ी-सी खेती थी और पहाड़ी के किनारे एक छोटा-सा घर। पिता-पुत्र दोनों स्वभाव से बहुत झगड़ालू थे और हद दर्जे के जिद्दी। वे कभी किसी विषय पर भी एक-दूसरे से सहमत नहीं हो सके। माओ ने गांव के स्कूल में कुछ अक्षर सीखे, पहाड़े रटे, फिर उसे घर पर बैठा लिया गया। पिता को खेत पर एक आदमी की आवश्यकता थी। अक्षर जोड़-जोड़कर माओ कुछ-कुछ पढ़ने लगा था। इसी समय उसके हाथ दो उपन्यास लगे—'शुई हू' और 'सान-कुओ-चिह-येन'। पहले में १०८ डाकुओं की कहानियां थीं और दूसरे में चीन के तीन राज्यों की लड़ाई का इतिहास। माओ को दोनों उपन्यास बहुत रुचे। जब भी उसे अवकाश मिलता, वह उन्हें पढ़ने बैठ जाता।

माओ जल्दी ही काफी लंबा हो गया। शरीर उसका खूब गठा हुआ था। चौदह-पंद्रह वर्ष की उम्र में वह अपने पिता के बराबर लगता था। चौड़े कंधों पर खाद की दो भारी बालटियां एक साथ उठाकर वह घर से खेत के कई चक्कर लगा लेता। पिता इस बात से बहुत खुश था। मगर माओ कुछ और ही सोच रहा था। खेत के काम से छुट्टी पाकर वह किसी पेड़ या चट्टान के पीछे छिपकर बैठ जाता और दोनों पुस्तकें पढ़ता रहता। डाकुओं के साहसपूर्ण कार्य और राजवंशों के युद्ध-कौशल तथा व्यूह-रचना के प्रसंग उसे बहुत प्रभावित करते।

एक दिन माओ एक कब्र की ओट में बैठा पढ़ रहा था, खाद की खाली बालटियां पास पड़ी थीं। पिता ने यह देख लिया और माओ को डांटा कि सिर्फ पांच-छः बालटी खाद से खेत का काम नहीं चलेगा। इस तरह रोजी नहीं कमायी जा सकती। दोपहर तक कम-से-कम १५ बालटी खाद तो खेत में पड़ ही जानी चाहिये। पिता को लग रहा था कि माओ को न परिवार से लगाव है और न उसके मन में दायित्व अथवा कृतज्ञता की भावना ही है।

यह ताड़ना माओ से सही न गयी और

चीनी किसान

उन्हें चुप रहने का आदेश देकर वह घर चला गया।

शाम को ५ बजे माओ फिर ड्यूटी से गायब था। इस बार पिता ने उसको जल्दी ही खोज लिया। झगड़ा फिर शुरू हुआ। माओ ने उपेक्षा-भाव से पिता से आंखें मिलायीं। लेकिन जब पिता को पता चला कि बेटा दोपहर बाद खेत में १५ बालटी खाद डाल चुका है, तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। अब पिता को उससे कोई शिकायत न थी।

दिन बीतते गये। एक दिन माओ ने निश्चय कर डाला कि उसे आगे पढ़ना है। उसने सुन रखा था कि ईसाई मिशनरी कुछ स्कूल चलाते हैं। उसने इन्हीं में से किसी स्कूल में पढ़ने का निश्चय किया। जब पिता ने यह सुना, उसे संदेह होने लगा कि बेटे का सिर तो नहीं फिर गया है। कुछ समय तक पिता-पुत्र की बातचीत बंद रही।

लेकिन माओ पर इसका कोई प्रभाव न हुआ। वह मन-ही-मन योजना बनाता रहा और फिर अपने संबंधियों आदि से कुछ पैसा उधार लेकर एक दिन खाने के समय पिता से बोला—"मैं तुंगशान प्राइमरी स्कूल में पढ़ने जा रहा हूं।" पिता को आश्चर्य हुआ और क्रोध भी आया, मगर माओ ने सिर्फ इतना ही कहा कि मैं परसों चला जाऊंगा। पिता ने पूछा कि तुम्हें कोई वजीफ़ा मिला है, या तुमने कोई लाटरी जीत ली है?

माओ के चेहरे पर व्यंग्यात्मक हंसी दौड़ गयी और उसने उत्तर दिया कि आप पैसे की चिंता मत कीजिये। पिता को तो कुछ और ही चिंता थी। उसने कहा कि तुम चले गये तो खेत पर काम करने वालों में से एक की कमी हो जायेगी और मेरे पास मज-दूर रखने के लिए पैसा नहीं है, तब खेत का काम कैसे होगा?

माओ ने इस पहलू पर पहले नहीं सोचा था। मगर उसे फौरन अपने दूर के संबंधी वांग ची-फान की याद आयी। वांग होन-हार बच्चों की पढ़ाई-लिखाई में बहुत रुचि लेता था और उनकी सहायता भी किया करता था। माओ उसके पास गया। फान ने माओ के उत्साह से प्रभावित होकर उसे आर्थिक सहायता देना स्वीकार कर लिया। लौटकर माओ ने पिता से पूछा कि एक मज-दूर को क्या मजदूरी देनी पड़ती है? पिता ने सोचकर रक़म बतायी और माओ ने चुप-चाप एक थैली पिता को थमाकर कहा कि मैं कल सवेरे तुंगशान के लिए चल दूंगा।

अगले दिन सवेरे ही माओ एक डंडे के एक सिरे पर एक छोटी-सी गठरी लटका-कर स्कूल के लिए चल पड़ा। गठरी में एक

नीली मच्छरदानी, दो चादरें और पहनने के कुछ पुराने कपड़े थे। डंडे के दूसरे सिरे पर एक छोटी-सी टोकरी बंधी थी, जिसमें उसकी दोनों अमूल्य पुस्तकें थीं। मां-बाप से एक भी शब्द बोले बिना निर्मोही माओ घर से निकल पड़ा।

मार्ग में कई परिचित लोग माओ को मिले। उन्होंने विदेशी स्कूल में पढ़ने जाने के विचार की खिल्ली उड़ायी। माओ बिना परवाह किये, क्रोध में पैर पटकता हुआ आगे बढ़ता गया। चलते-चलते उसके पैरों में छाले पड़ गये।

पहाड़ी से नीचे उतरने पर माओ को एक छोटा-सा विद्यार्थी मिला। नाम था लियेन-पिंग। माओ उसके पास बैठ गया और उससे तरह-तरह के प्रश्न पूछने लगा। लियेन ने उसे अपने स्कूल और पढ़ाई के बारे में बहुत-सी बातें बतायीं। माओ को यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि शिक्षक कभी-कभी विद्यार्थियों को छड़ी से पीटते भी हैं। वह सोच में पड़ गया—शिक्षक अकेला होता है और विद्यार्थी बहुत सारे; वे सब मिलकर उसकी मरम्मत क्यों नहीं कर देते।

यही सब सोचते हुए माओ ने नदी पार की। दो किलोमीटर चलने पर उसे एक शानदार इमारत दिखाई दी। यही तुंग-शान स्कूल था। डरते-डरते माओ अंदर घुसा। विद्यार्थियों ने समझा कि कोई कुली किसी शिक्षक का सामान लाया है; परंतु जब उन्हें पता चला कि किसान का बेटा माओ स्कूल में पढ़ने के लिए आया है, तो वे ठहाका मारकर हंसने लगे और बोले—यहां किसानों और मजदूरों को नहीं पढ़ाया जाता।

बाधाओं के बावजूद वह हेडमास्टर से मिलने में सफल हो गया और स्कूल में भरती होने की अनुमति मांगी। उसकी उत्सुता से प्रभावित होकर हेडमास्टर ने उसे परीक्षण के तौर पर पांच महीने के लिए स्कूल में बैठने की अनुमति दे दी। माओ ने इस अवधि में अथक परिश्रम किया और आगे पढ़ने की अनुमति प्राप्त कर ली।

परंतु तीन राज्यों की कहानी वाली पुस्तक ने माओ को इतना प्रभावित किया था कि वह उसे सच्चा इतिहास मान बैठा था और उसे साहित्यकार की कल्पना मानने को बिलकुल तैयार न था। इस बात को लेकर वह अपने शिक्षकों और सहपाठियों

माओ की प्रेमिका काई-हुई
माओ को पत्र लिखते हुए

से झगड़ बैठा तथा वातावरण इतना कटु हो गया कि आखिर उसे स्कूल छोड़ना पड़ा। अपनी चीजें समेटकर एक दिन वह चांगशा की ओर रवाना हो गया।

उधर १९११ की गर्मियों में वचांग राज्य में क्रांति भड़क उठी। हुनान प्रांत के बहुत से छात्र क्रांतिकारियों में शामिल होने के लिए चल दिये। माओ भी गया; परंतु क्रांतिकारियों ने उसे अपनी सेना में भरती नहीं किया। (बेचारा उस समय भयंकर आर्थिक संकट में था।) शीघ्र ही नानकिंग

में राष्ट्रीय गणतंत्र की स्थापना हो गयी।

१९१२ में माओ चांगशा के नार्मल स्कूल में भरती हुआ। वह लंबा और अट-पटा तो था ही, बहुधा गंदे कपड़े और फटे जूते पहने घूमा करता। वह धीरे-धीरे चलता, धीरे-धीरे बोलता। यहीं उससे मेरा परिचय हुआ। मैं भी हुनान प्रांत का ही रहने वाला था और ऊंची कक्षा का विद्यार्थी था। निबंध-लेखन में मैं हर सप्ताह प्रथम स्थान प्राप्त करता था और मेरे निबंध छात्रों के पढ़ने के लिए विद्यालय में रखे जाते थे। माओ इन निबंधों को बहुत चाव से पढ़ता था। कभी-कभी तो उसका निबंध भी प्रति-योगिता में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करता और मैं उसे पढ़ता। इस प्रकार निबंधों के आदान-प्रदान से हमारी मित्रता प्रारंभ हुई।

माओ अंग्रेजी में कमजोर था, गणित में उससे भी कमजोर, और ड्राइंग में तो वह केवल अंडा खींच सकता था। मगर अच्छा निबंध लिख लेने के कारण वह अच्छे छात्रों में गिना जाता था। धीरे-धीरे हम दोनों की मित्रता घनिष्ठता में परिणत होती गयी। हम प्रायः व्यालू के पश्चात् बातें करते-करते बहुत दूर घूमने निकल जाते। पहाड़ियों पर बैठते और मिलकर कविताएं लिखते।

चांगशा के नार्मल स्कूल में हम दोनों मित्रों पर एक विद्वान शिक्षक यांग हुई-चुंग का बहुत प्रभाव पड़ा। वे दर्शन के विद्वान थे। उन्होंने ब्रिटेन, जापान, जर्मनी आदि देशों में शिक्षा पायी थी। उनकी विद्वत्ता और वक्तृत्व-शक्ति के कारण लोग उन्हें कन्फ्यूशियस कहने लगे थे। मैं और माओ उनके प्रिय शिष्यों में से थे।

सन १९१९ में उनकी मृत्यु हो गयी और इसके कोई एक वर्ष पश्चात् माओ ने उनकी बेटी काई-हुई से विवाह कर लिया। उससे माओ को दो बच्चे हुए। बड़ा लड़का आज भी 'राजकुमार' माओ कहलाता है। साम्य-वादी माओ त्से-तुंग की पत्नी होने के कारण १९२७ में काई-हुई को गिरफ्तार करके गोली से उड़ा दिया गया। माओ उसकी रक्षा नहीं कर सका।

माओ को साम्यवादी वनाने का श्रेय त्साई हो-शेन को है। साम्यवादी सिद्धांतों को स्वीकार करने वाला वह प्रथम चीनी था। वह और मैं नार्मल स्कूल में सहपाठी थे।

चीनी गणतंत्र की स्थापना के आधी शताब्दी पश्चात् दो व्यक्तियों ने उसे उखाड़ फेंकने का प्रयास किया। दोनों ही अपनी-अपनी योजना में सफल हुए। आश्चर्य की बात यह थी कि दोनों ही हुनान प्रांत के सियांगतान जिले के रहने वाले थे। उनमें एक था यांग-तू और दूसरा माओ त्से-तुंग।

जब १९२६ में सेनापति चांग त्सा-लिन ने पीकिंग में नयी सरकार का गठन किया, तो यांग-तू को उसमें शिक्षा-मंत्री का पद दिया गया। यांग-तू ने इस कार्य में मुझसे सहायता मांगी। उन दिनों मैं क्रांतिकारी विचारों का था और मुझे हरदम गिरफ्तारी का भय लगा रहता था। अत: मैंने यांग-तू का निमंत्रण खुशी से स्वीकार कर लिया। इससे मुझे सुरक्षा का आश्वासन मिल गया। यांग-तू मेरे साथ अक्सर साम्यवाद पर चर्चा किया करता था। चांग की सरकार साम्यवादियों को निर्दयतापूर्वक कुचल डालने की कोशिश कर रही थी। माओ इस समय छिपा हुआ था और मुझे भी उसके बारे में मालूम न था।

एक दिन यांग-तू ने मुझसे माओ के बारे में विस्तार से पूछा। वह जानना चाहता था कि क्या माओ में सचमुच कोई योग्यता, प्रतिभा अथवा क्षमता है? मैंने माओ की कुछ प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख करते हुए बतलाया कि सर्वप्रथम माओ में किसी भी कार्य को योजनाबद्ध तरीके से करने की बहुत अधिक क्षमता है; उसमें संघटन और योजना की अपरिमित शक्ति है। दूसरे, वह अपने शत्रु की शक्ति का एकदम सही अनुमान लगा सकता है। तीसरे, वह श्रोताओं को सम्मोहित कर सकता है। अपनी बात को प्रभावशाली रीति से प्रतिपादित करने की उसमें अपार शक्ति है। उसकी एक विशेषता और है—उसकी बातों से सहमत होने वाला उसका मित्र होता है, और

असहमत होने वाले को वह शत्रु मानता है। मगर यह सब तो बाद की बात हुई।

भिक्षाटन की योजना

१९१६ का वर्ष था। मैं चू-यी स्कूल में शिक्षक हो गया था और माओ अभी पढ़ रहा था। हम लोग ग्रीष्मावकाश का कार्यक्रम बना रहे थे। मैंने माओ को बताया कि इस बार मेरी योजना भिखारी बनकर देशाटन करने की है। एक भी पैसा साथ में लिये बिना, भीख मांगकर खाते-पीते, जहां-तहां ठहरते हुए मैं समाज का मनो-

वैज्ञानिक अध्ययन करना चाहता हूं।

सुनकर माओ चकित रह गया। उसे सबसे अधिक चिंता इस बात की थी कि भूख लगने पर यदि कहीं से खाने को कुछ भी न मिला, तो क्या होगा ? और मेरे लिए यही स्थिति सबसे अधिक रोमांचकारी थी। मगर मुझे विश्वास था कि आज तक कोई भी भिखारी भूख से नहीं मरा है। इतना ही नहीं, इस पृथ्वी पर सबसे अधिक सुखी और स्वतंत्र जीव भिखारी ही होता है। पहले भी मैं दो बार एक तथा तीन दिन भिखारी का जीवन व्यतीत कर चुका था। अपने उस अनुभव के आधार पर मैंने माओ को बतलाया कि भिखारी के कंधों पर कोई दायित्व नहीं होता और वह पूरी तरह स्वतंत्र रहता है। इससे माओ की उत्सुकता बढ़ी। वह मेरे भिखारी-जीवन की कहानी सुनने के लिए बेचैन हो उठा।

मैंने उसे बतलाया कि चार-पांच वर्ष पूर्व एक दिन मैं भिखारियों की स्वतंत्रता और अनौपचारिकता के बारे में सोच रहा था कि एकाएक मेरे मस्तिष्क में यह विचार कौंधा कि क्यों न मैं स्वयं यह अनुभव प्राप्त करूं। मैंने भिखारी बनने का निश्चय कर लिया और एक दिन बहुत सवेरे घर से निकल गया। और दिन में दो बार भीख से पेट भर-कर रात को चंद्रमा के उदय होने के साथ वापस घर पहुंच गया।

दूसरी बार मैं तीन दिन के लिए भिखारी बना। इस बार मुझे अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, क्योंकि सोने के लिए स्थान भी खोजना था। पर गर्मी का मौसम था, रातें बहुत ठंडी नहीं थीं, आकाश में चंद्रमा चमक रहा था। एक उजाड़ स्थान पर मैं धीरे-धीरे चला जा रहा था। नगर का कोलाहलमय जीवन दूर, बहुत दूर था। सारी रात चलने का निश्चय किया। सवेरा होने पर घास पर लेट गया और दोपहर तक गहरी नींद में सोता रहा। उठकर भिक्षा मांगने निकल पड़ा।

दूसरी रात अंधेरी और फीकी थी। एक ऊंची पहाड़ी पर चढ़ता चला जा रहा था कि दूर कहीं रोशनी दिखाई दी। मैं रोशनी के सहारे आगे बढ़ने लगा। दरवाजे पर पहुंचकर कुंडी खटखटायी। सत्रह वर्ष की

एक यायावर

एक लड़की ने भीतर से झांककर देखा और दरवाजा खोलने से पहले अपने वृद्ध पिता को अपने संग ले आयी। वृद्ध ने कुछ प्रश्न पूछे। संतोषजनक उत्तर मिलने पर दरवाजा खुला। यह एक किसान परिवार था। लड़की ने चाय पिलायी, फिर चावल बनाकर ले आयी। पूरी आवभगत हुई। थका होने के कारण मैं शीघ्र ही सो गया। अगले दिन दोपहर का खाना खिलाकर ही बाप-बेटी ने मुझे विदा किया।

इस आपबीती ने माओ को बहुत प्रेरणा दी। वह भी मेरे साथ चलने को तैयार हो गया। तिथि निश्चित कर ली गयी। गर्मी की एक सुहानी सुबह माओ फटी-पुरानी निकर और कमीज पहनकर आ गया। मैंने भी इस अवसर के लिए एक भोंडी वास्केट हाथ म ली, निकर और कपड़े के जूते पहने। एक-एक जोड़ी कपड़े, छाता, लिखने के लिए ब्रुश, स्याही और कागज आदि लेकर हम चल पड़े।

चांगशा के पश्चिमी दरवाजे से निकलकर हम चंद मिनिटों में स्यांग-क्यांग के किनारे पहुंच गये। यहां नदी पांच-छः सौ मीटर चौड़ी है। उस पार पहुंचने के तीन तरीके थे। पहला था तैरना; लेकिन दोनों में से कोई भी तैरना नहीं जानता था। दूसरा था करीब आधा मील पैदल चलकर नाव से मुफ्त में नदी पार करना। पर यह तरीका बहुत आसान था। तीसरा उपाय था, जहां हम खड़े थे, वहीं से चलने वाली किराये की छोटी नाव में तांबे के दो सिक्के देकर पार उतरना। अधिकांश यात्री यही कर रहे थे। हम दोनों मित्र सचमुच कंगाल थे; मगर हमने सोचा, मजा तो इसमें है कि विना पैसे खर्चे ही किराये की नाव से पार पहुंचा जाये।

नावें दस-दस मिनिट पर फेरा लगा रही थीं। दोनों भिखारी तट पर बैठे-बैठे उनका आना-जाना और यात्रियों का कोलाहल देख रहे थे। पर बैठे-बैठे तो पार नहीं पहुंचा जा सकता था। सो माओ ने मांझी के पास जाकर उसे पटाने की कोशिश की। पर मांझी ने साफ इंकार कर दिया। माओ निराश होकर वापस आ गया। मुझे एक युक्ति सूझ गयी। हम उठे और भीड़ को चीरते हुए आगे बढ़कर नाव के अगले हिस्से में जा बैठे।

नाव भर गयी। मांझी ने पूरी ताकत लगाकर लंबी पतवार से नाव को आगे की ओर धकेला। जब नाव बीच धारा में पहुंच गयी, पांच-छः वर्ष की एक छोटी बालिका उतराई वसूल करने के लिए आगे बढ़ी। छन-छन की आवाज के साथ उसकी तश्तरी सिक्कों से भर गयी। अंत में लड़की ने तश्तरी हम भिखारियों के आगे बढ़ा दी। माओ ने कहा–"हमारे पास पैसे नहीं हैं। क्या आप हमें पार उतारने की कृपा नहीं करेंगी।"

मांझी ने सुना, तो एकदम सशंक होकर चिल्ला उठा–"क्या कहा, पैसे नहीं है? तब इस नाव पर क्यों सवार हुए? जल्दी से पैसे निकालो।" मैंने उसे विश्वास दिलाना चाहा कि हमारे पास सचमुच एक भी पैसा नहीं है। एक माह बाद हम इसी रास्ते से लौटेंगे, तब ब्याज सहित किराया दे देंगे। मांझी तैयार नहीं हुआ। बोला–"अगर पैसा नहीं है, तो तुम दोनों में से एक अपना छाता मेरे पास छोड़ जाये।" लेकिन माओ इसके लिए कतई तैयार न था। यात्रा में छाता बहुत जरूरी था। और यों भी उसकी कीमत भाड़े से कई गुना ज्यादा थी।

झुंझलाकर मांझी नाव को वापस ले जाने की तैयारी करने लगा। इस पर अन्य यात्री जो अब तक हमारी नोंक-झोंक में रस ले रहे थे, चिल्लाये–"नाव वापस नहीं जायेगी। हम लोग जल्दी में हैं, हमने किराया दिया है।" यात्रियों में एक वृद्ध दयालु सज्जन भी थे, वे आगे आये और एक भिखारी का भाड़ा चुकाकर बोले कि अन्य सब यात्री मिलकर दूसरे का भी किराया चुका दें। कई यात्री इसके लिए तैयार हो गये। परंतु हम तैयार नहीं थे। वृद्ध सज्जन ने मांझी को आश्वासन दिया कि किनारे पर पहुंचकर मामला सब ठीक हो जायेगा।

नाव किनारे पर पहुंची। यात्री उतरने लगे। परंतु दोनों भिखारियों के उतरने से पहले मांझी नाव को तट से लगभग २० फुट दूर पानी में वापस ले गया। वृद्ध सज्जन ने दोनों का किराया चुपचाप देना चाहा, लेकिन माओ ने इंकार कर दिया और एक मास बाद वापसी यात्रा में किराया चुकाने का वादा दोहराया। मैंने भी नम्रतापूर्वक कहा–"श्रीमान्‌जी! यह तो हमारे मुंह पर चपत लगाने जैसी बात होगी कि आप किराया चुकायें।"

मांझी इस नाटक से चिढ़कर बोल उठा–"यदि तुम लोग किराया नहीं चुकाओगे, तो मैं चपत से भी कुछ ज्यादा दूंगा।" माओ उत्तेजित होकर बोला कि यदि तुम लड़कर मामले को तय करना चाहते हो, तो हम उसके लिए भी तैयार हैं।

अब तक किनारे पर नाव की प्रतीक्षा में बहुत लोग इकट्ठे हो चुके थे। पीछे-पीछे एक दूसरी नाव भी बीच धारा में आ चुकी थी। मांझी ने सोचा, झगड़े में पड़े रहने से तो वापसी का फेरा भी खाली चला जायेगा सो इस मामले को जहां-का-तहां छोड़कर वह नाव किनारे पर ले आया। हम दोनों ने एक मंद-मंद मुस्कराहट के साथ मांझी

तथा दयालु वृद्ध सज्जन को धन्यवाद दिया और विदा ली।

कविता ने भूख मिटायी

सड़क के दोनों ओर धान के खेत थे। धूप बहुत तेज थी। सड़क पर पत्थर चिकने व गर्म थे। मगर सामने सीधी लंबी सड़क हमें चुंबक की तरह खींच रही थी। हम दोनों बातचीत करते चले जा रहे थे। दोनों में से किसी के भी पास घड़ी न थी। धूप की छाया से अनुमान लगाया कि दो बज रहे होंगे और एकाएक ध्यान आया कि सवेरे से कुछ भी तो पेट में नहीं पहुंचा है। जोरों से भूख सताने लगी।

शीघ्र ही सड़क के किनारे एक ढाबा दिखाई दिया और हम जाकर उसकी ठंडी छाया में बैठ गये। थके-हारे तो थे ही, तुरंत गहरी नींद आ गयी। जब आंखें खुलीं, तो ढाबा चलाने वाली महिला कौतूहल से हमें निहार रही थी। शायद सोच रही थी, इतने थके होने पर भी इन्होंने खाने-पीने की कोई चीज नहीं खरीदी। आखिरकार उसने हमसे चाय के लिए पूछा।

हम भूख से बेहाल थे। वह स्त्री बहुत दयालु जान पड़ती थी और लगता था कि मांगने पर एक प्याला चावल तुरंत दे देगी। परंतु यह सोचकर कि इस तरह भोजन मांगकर पेट भरना तो बहुत आसान काम है, हमने उससे कुछ नहीं मांगा। मगर वह शायद ताड़ गयी। दो प्याली चाय ले आयी और बोली, इसका पैसा नहीं लगेगा। हमने चाय तुरंत घुटक ली; मगर इससे तो भूख की ज्वाला और तीव्र हो गयी।

माओ ने आग्रह किया, चलो भीख मांगने निकलें। इस पर मैंने कहा कि चार-पांच घरों से मांगने पर थोड़ा-थोड़ा भोजन मिलेगा। उससे अच्छा किसी बुद्धिजीवी परिवार की खोजकर वहीं भाग्य आजमायें। ढाबे वाली महिला से पता चला कि वहां से कोई आधा किलो मीटर की दूरी पर डाक्टर वांग रहते हैं, जिनके दो बेटे चांगशा में पढ़ रहे हैं। और सराय के पीछे पहाड़ियों में एक वृद्ध कला-विशेषज्ञ ल्यू रहता है। उसके कोई बेटा नहीं है। बेटियां कई हैं और सब विवाहित। मैं खुशी से चिल्ला उठा कि आज ल्यू हमारे मेजबान होंगे।

हमने कविता के माध्यम से अपना संदेश ल्यू के पास पहुंचाने की ठानी। दोनों ने मिलकर पहली पंक्ति रची—"पर्वत-शिखरों को लांघते हुए, कलकल नाद करती नदियों के किनारे चलते-चलते आखिर हम अपनी मंजिल पर पहुंच ही गये।" उसमें मैंने दूसरी पंक्ति जोड़ी—"बांस की छड़ी लिये तथा घास के जूते पहने हम बहुत दूर से महान विद्वान का अभिनंदन करने आये हैं। हमारा मार्ग सफेद बादलों के बीच सागर की भांति गहरा था।" माओ ने अंतिम पंक्ति जोड़ी—"और हमारे भीगे कपड़ों से रिसती हुई ओस हमारे भूखे शरीर को भीतर तक भिगो रही है।"

मैंने अपनी गठरी खोलकर ब्रुश, स्याही, कागज और लिफाफा निकाले। फिर कविता को सुंदर अक्षरों में लिखकर लिफाफे में

रखा। सराय वाली स्त्री ने सोचा शायद हम अपने घर पत्र लिख रहे हैं। बोली कि यहां डाकखाना नहीं है, पत्र पोस्ट करने के लिए तुम्हें निंग स्यांग जाना होगा।| उसे धन्यवाद देकर हम सड़क पर बायीं ओर मुड़े और सराय के पीछे ढाल पर चढ़ने लगे।

सफेद ईंटों का एक विशाल मकान पहाड़ी की तलहटी में दिखाई दे रहा था। उसी को ल्यू का निवास-स्थान समझकर हम आगे बढ़े। लकड़ी के दरवाजे पर बहुत सुंदर अक्षरों में लिखा था—"शरद की चांदनी हमारा मार्ग आलोकित करे।" और बायीं ओर अंकित था—"मुझे वासंती बयार दे दो"...... हमें आशा बंधी कि ल्यू सुलेख और कविता का पारखी है, अवश्य ही वह हमारे प्रयास से प्रसन्न होगा।

बाहर के दरवाजे पर ताला जड़ा था। दरार में से झांकने पर भीतर एक बड़ा-सा आंगन दिखाई दिया, जिसमें दरवाजे और खिड़कियां खुले नजर आ रहे थे। दरवाजा खटखटाया, तो कई बड़े-बड़े कुत्तों के भौंकने की तेज आवाज सुनाई दी। थोड़ी देर बाद एक बूढ़ा आदमी धीरे-धीरे दरवाजे की ओर आता हुआ दिखाई दिया। उसके पीछे भिन्न-भिन्न रंगों के आधा दर्जन शिकारी कुत्ते बुरी तरह भौंकते आ रहे थे।

मुख्यद्वार पर आकर वह रुका और रूखी आवाज में पूछने लगा, क्यों आये हो? माओ ने बताया कि हम लोग राजधानी से ल्यू के लिए पत्र लाये हैं और मैंने दरार में से लिफाफा सरका दिया। बूढ़े आदमी ने अब

बड़े नम्र स्वर में तनिक-सी प्रतीक्षा करने को कहा। कुछ देर बाद बूढ़े ने आकर दरवाजा खोला और हमें अंदर आने को कहा। कई दरवाजे और आंगन पार करने के बाद हम ल्यू के कमरे में पहुंचे।

वह दुबला-पतला, नाटा, झुकी पीठ वाला बूढ़ा व्यक्ति था। दाढ़ी और सिर पर गिनती के बाल थे, जो सफेद हो गये थे। वह लंबी सफेद पोशाक पहने खड़ा था और उसके हाथ में रेशम का सफेद पंखा था। हमने झुककर अभिवादन किया, तो चकित होकर उसने पूछा—"क्या कोई दुर्घटना हो गयी है? इस तरह के कपड़े क्यों पहने हो? क्या तुम्हें रास्ते में डाकू मिल गये थे? कहां से आ रहे हो? कहां जा रहे हो?" उसने प्रश्नों की झड़ी लगा दी। मैंने बताया कि हम विद्यार्थी हैं; चांगशा से आ रहे हैं और निंग स्यांग जायेंगे।

ल्यू ने हमारी कविता और सुलेख की बहुत प्रशंसा की। हम प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन कर रहे हैं, यह जानकर तो वह खुशी से उछल पड़ा। बड़ी आत्मीयता से

उसने दोनों के परिवारों के बारे में पूछा और उठकर भीतर चला गया। थोड़ी देर बाद लौटकर उसने अपनी जेब से लाल कागज में लिपटा हुआ एक पैकेट निकाला और मुस्कराते हुए हमारी ओर बढ़ा दिया। परंतु खाने का कोई जिक्र नहीं किया।

आभार प्रकट करके हम दोनों बाहर आये और जल्दी से पेड़ के पीछे छिपकर पैकेट खोला। उसमें तांबे के चालीस सिक्के थे। ढाबे में लौटकर हमने भरपेट भोजन किया। चावल, सोयाबीन, सब्जी—सब केवल आठ सिक्कों में। बत्तीस सिक्के अब भी हमारे पास शेष थे।

थोड़ा विश्राम करके हम चल दिये। शाम घिर आयी, तो सड़क के किनारे एक छोटी-सी धर्मशाला में रात बिताने का निश्चय किया। अगले दिन का कार्यक्रम बनाते हुए एकाएक अपने मित्र हो शु-हेंग का स्मरण हो आया। उसका घर इसी जिले में था, धर्मशाला से ७० किलो मीटर दूर। पता भी मेरी डायरी में मिल गया।

दूसरे दिन सवेरे जल्दी नहा-धोकर हम हो के घर की ओर चल दिये। नाश्ते से पहले दस किलो मीटर चल लेना हमारी आदत हो गयी थी। रास्ते में खाना खाया और कई स्थानों पर भटकते हुए बड़ी कठिनाई से शाम तक हो के घर जा पहुंचे। हो की खुशी की तो कोई सीमा ही नहीं थी। वह हमारे गले लिपट गया। हमारे भिखारी जीवन पर उसे आश्चर्य हुआ। अंगूर की शराब पीकर सब लोग सोने चले गये। दिन-भर की यात्रा के बाद हम गहरी नींद में खो गये।

हो एक संपन्न कृषक परिवार का था। दूसरे दिन प्रातः उसने हमें फार्म दिखलाया। उसके पिता ने बहुत-से पशु पाल रखे थे और उसका सब्जी का एक बहुत बड़ा बगीचा था। हो ने हमें बड़ा बढ़िया भोजन कराया और जिद करके उस दिन वहीं रोक लिया। अगले दिन नाश्ते के बाद हमने विदा ली। हो बहुत दूर तक हमारे साथ आया और हमें धन देने की कोशिश करता रहा; पर मैंने और माओ ने स्वीकार न किया।

हम दोनों तेजी से निगस्यांग शहर की ओर बढ़े। दोपहर में भूख लगने पर एक बड़े से घर में जाकर भिक्षा मांगी, तो गृहस्वामिनी एक छोटे-से प्याले में चावल भर लायी। हम भूख से व्याकुल थे, बिना सब्जी के ही सब चावल खा गये। और मांगा, तो उसने बताया कि प्रतिदिन वह इतना ही भोजन भिक्षुकों के लिए बचाकर रखती है। अब हमें पता लगा कि भिक्षा मांगकर पेट भरना रेस्तरां में भोजन का आर्डर देने जैसा नहीं है। दूसरे दरवाजे पर हमें भिक्षा में कच्चा चावल दिया जाने लगा। लेने से कोई लाभ न था, हम आगे बढ़ गये। सौभाग्य से तीसरे दरवाजे पर एक बड़ा प्याला भरकर चावल व सब्जी मिली, और दोनों तृप्त हो गये।

निगस्यांग शहर में हमारे कई सहपाठी रहते थे। लेकिन हमने सोचा मित्रों के घर जाने से भिखारी जीवन का महत्त्व नहीं रह जायेगा। अतः शहर के बाहर ही नदी के किनारे जाकर बैठ गये। कई छोटी-छोटी

नावें पानी पर बंधी थीं। दूर एक छोटी-सी पहाड़ी शिह-कु-शान थी, जिसके ढलवानों पर चीड़ के वृक्षों का सुंदर जंगल था। दोनों उस सौंदर्य का रसपान करते रहे।

वहीं बैठे-बैठे हमारे मन में विचार आया कि वे-शान चला जाये। वहां प्राकृतिक सुषमा थी ही, एक विशाल बौद्ध मठ भी था, जो तांग-वंश के समय (६१८-९०५) से ही संपन्नता के लिए प्रसिद्ध रहा है। उसका मठाधीश फांग-चांग बड़ा विद्वान था। दो कारणों से हम यह बौद्ध मठ देखना चाहते थे–१. बौद्ध भिक्खुओं के जीवन को निकट से देखना और २. मठाधीश फांग-चांग का परिचय प्राप्त करना। हमें मठ पहुंचने की जल्दी न थी।

घूमते, बातें करते, प्राकृतिक दृश्यों को निहारते हम एक पहाड़ी पर पहुंचे और देवदार की शीतल छाया में बातें करते-करते सो गये। मैं तो आधे घंटे में ही जग गया, माओ मुंह खोले देर तक गहरी नींद में सोता रहा और बहुत जगाने पर ही जागा। अब भूख महसूस हो रही थी। पहाड़ी के नीचे एक बड़ा-सा मकान दिखाई दे रहा था। दोनों के पैर उसी ओर उठ गये।

वहां पूर्णतः शांति थी। कुत्ते भी न थे। दरवाजा खटखटाया, तो एक वृद्ध व्यक्ति बाहर आया। उसने न केवल भोजन देने से इंकार किया, वरन हमें बाहर ढकेलने भी लगा। मगर हम दोनों दहलीज में जमकर बैठ गये, ताकि वह दरवाजा बंद न कर सके। हमने उसे बताया कि हम सारे प्रांत में इसी प्रकार घूमे हैं, और कहीं किसी परिवार ने हमें भिक्षा से इंकार नहीं किया। आप हमें यह बतलायें कि आप भिखारियों को भिक्षा क्यों नहीं देते? या फिर आप हमें भोजन करा दें। तभी हम हिलेंगे।

इस पर वह सूखी-सी हंसी हंसा और बोला कि मेरे पास पका हुआ चावल नहीं है। क्या तुम कच्चा चावल लेकर यहां से चले जाओगे? माओ ने कहा कि यदि आप वादा करें कि भविष्य में आप द्वार पर आये भिखारियों के साथ अच्छा व्यवहार करेंगे, तो हम चले जायेंगे। बार-बार कहने पर अंत में वृद्ध ने स्वीकृति में गर्दन-भर हिला दी और हम दोनों अपनी-अपनी गठरी उठाकर अत्यंत नम्र शब्दों में धन्यवाद देकर बोले–"अब कुछ दिन बाद हम इधर से वापस आयेंगे, तब फिर खाना मांगेंगे।"

कोई आधा किलो मीटर जाने पर एक दयालु वृद्ध दंपति ने हमें भरपेट भोजन खिलाया और आत्मीयतापूर्वक बातचीत भी की। वृद्ध पुरुष चकित था। कि हमें भिक्षा मांगने की आवश्यकता क्यों पड़ी? माओ ने समझाया कि हम लोग गरीब हैं,

FERRADOL
A VITAMIN NUTRITIVE TONIC
STANDARDIZED
PARKE-DAVIS

पर भ्रमण करना चाहते हैं, अतः हमारे लिए भिक्षा के सिवा और कोई चारा न था। वृद्ध ने भी मान लिया कि भीख मांगने में कोई बुराई नहीं। फिर हमने वृद्ध दंपति से विदा ली। हमारा लक्ष्य वे-शान पर्वत बादलों की भांति दूर दिखाई दे रहा था।

बौद्ध मठ में

शाम होते-होते हम वे-शान पहुंच गये। चारों ओर वृक्षों से घिरा बौद्ध मंदिर था। द्वार पर ही दो भिक्खु हम आगंतुकों का स्वागत करने के लिए आगे बढ़े और हमें अंदर ले गये। वे शायद इस भ्रम में थे कि हम तीर्थयात्री हैं, बहुत दूर से चलकर बुद्ध की पूजा करने आये हैं। मगर हमने शुरू में ही कह दिया कि हम तो केवल भिक्षा लेने आये हैं। भिक्खुओं ने हमें आश्वस्त किया कि बुद्ध-पूजा तथा भिक्षा एक ही बात है।

जब हम मठ के अंदर आंगन में पहुंचे, तो वहां हजारों भिक्खु इधर-उधर आ-जा रहे थे। सामान एक कमरे में रखवाकर हमारे नहाने-धोने की व्यवस्था कर दी गयी। भिक्खु चाहते थे कि हम बुद्ध की प्रतिमा के आगे धूपबत्ती जलायें। पर हमने कहा कि हम पूजा करने नहीं, मठाधीश फांग-चांग से मिलने आये हैं। इस पर हमें बतलाया गया कि फांग अभी नहीं मिल सकते; जब वे प्रवचन देंगे, तभी उनके दर्शन किये जा सकते हैं। परंतु हम तो दर्शनों के अलावा उनसे बातचीत भी करना चाहते थे, और वह भी उसी रात।

मैंने सुंदर अक्षरों में लिखकर एक पत्र

अंदर भेजा। लगभग दस मिनिट के बाद फांग-चांग ने हमें भीतर बुला लिया। वे लगभग ५० वर्ष के थे, चेहरे पर तेज था। कमरे में चारों ओर बौद्धधर्म के ग्रंथों के साथ-साथ लाओ-त्जू और चुआंग-त्जू के ग्रंथ भी रखे थे। एक घंटे तक हमारी वार्ता होती रही। फांग-चांग बहुत ही प्रसन्न हुए। और उन्होंने हमें अपने साथ ब्यालू के लिए निमंत्रित किया।

अगले दिन दोपहर को फांग-चांग ने हमें फिर बुला भेजा। इस बार बौद्धधर्म पर चर्चा हुई।

इस मठ के साधुओं में पांच बहुत छोटी उम्र के थे—लगभग चौदह वर्ष के। उनमें से एक था फायी। उसका इतिहास कुछ विचित्र ही था। जब वह एक साल का था, तभी उसे कोई मठ में छोड़ गया था। चीन में यह बहुत साधारण बात थी। फायी बौद्धधर्म के अतिरिक्त कन्फ्यूशियस और तांग राजकुल के जमाने की प्रसिद्ध कविताएं आदि साहित्य भी पढ़ना चाहता था। हमने उसे सलाह दी कि तुम मठ छोड़ दो; लेकिन फिर हमें भय-सा हुआ कि कहीं फांग-चांग

यह न सोचें कि हमने फायी को बहका दिया। अगले दिन सवेरे ही हम दोनों मठ से चल दिये। फायी बहुत रोया; पर हम लोग कुछ नहीं कर सकते थे। बेचारा भावुक फायी!

हम चीन के तीन धर्मों—कन्फ्यूशियसवाद, ताओवाद और बौद्ध धर्म के बारे में विस्तार से बातें करते हुए चले। दोपहर ढल रही थी और भूख सता रही थी। चाय की दुकान पर चावल और सब्जी खाकर दीवार की छांव में आराम करने को लेट गये। उठे तो चार बज चुके थे।

रात का भोजन एक छोटे-से किसान के घर से मांगकर किया और कुछ देर तक नदी के किनारे घूमते रहे। थोड़ी देर बाद चंद्रमा निकल आया और रेत पर चांदनी छिटकने लगी। हमें न तो किसी धर्मशाला का अता-पता था और न पास में पैसा ही बचा था। अत: निश्चय किया कि आज की रात रेत ही बिस्तर होगा और नीला आकाश ओढ़ावन। अपनी गठरियां हमने पास के पुराने पेड़ पर टांग दीं। माओ ने तकिये के लिए दो बड़े चपटे पत्थर खोज लिये।

माओ तो पड़ते ही गहरी नींद सो गया। पर मुझे एकाएक खयाल आया कि यदि चांदनी रात में कोई राहगीर पेड़ पर से हमारी गठरियां उतारकर चलता बना तो? मैंने माओ को जगाने की बहुत कोशिश की, खूब झिंझोड़ा, मगर सब बेकार! गालों पर चांटे लगाये, तब कहीं उसने आंखें खोलीं और "चोरों की चिंता मत करो" कहकर करवट बदलकर फिर सो गया। उसे जगाकर ले जाना असंभव समझकर मैं अकेला ही गठरियां लेकर दूसरे किनारे चला गया।

सवेरे के एक घंटे तक नदी के साथ-साथ चलने पर एक पुल पर पहुंचे, जहां संकेत था कि अन्हवा शहर दायीं ओर है। हमने पुल पार किया, दायीं ओर घूमे और एक पहाड़ी रास्ते से चल दिये। मार्ग में हमने एक दुकान से मांगकर चावल खाया और चियूपांग का मंदिर देखा।

अन्हवा में हमने अनुभव किया कि हम सचमुच घर से बहुत दूर निकल आये हैं। वहां की भाषा, आचार-विचार सब अनजाने लगे। उस नगर में हमारे कई सहपाठी रहते थे; लेकिन हम उनके पास नहीं गये। अब हमारे पास एक भी पैसा नहीं था, हम सचमुच भिखारी बन गये थे।

दिन चढ़ आया था। भूख परेशान कर रही थी। और अभी हमने नाश्ता भी नहीं किया था। हम चाय की एक दुकान में घुसे और सामान रखकर एक मेज के सामने बैठ गये। चाय और नाश्ते का आर्डर दे दिया। जब पेट भर गया, तो सोचने लगे कि बिल कैसे चुकायें। दो ही रास्ते थे—भीख मांगकर

पैसा जुटायें, या मजदूरी करें। मैं माओ को अपनी डायरी लिखने को कहकर वाहर निकला। मुझे तुरंत पता लग गया कि भिखमंगों के लिए इस नगर में कोई स्थान नहीं है। मैं जहां भी जाता, दुत्कार दिया जाता।

डेढ़ घंटे वाद मैं किसी तरह २१ सिक्के जुटाकर लौटा। लेकिन उससे तो खाने की आधी कीमत भी नहीं चुकायी जा सकती थी। समस्या यह थी कि अव उस दुकान से वाहर कैसे निकला जाये। अव मुझे डायरी लिखने के लिए कहकर माओ भीख मांगने निकला। पर अंत में मैंने योजना वनायी कि भीख में प्राप्त पैसों से कागज खरीदा जाये और उस पर सुलेख में कविता लिखकर वेंचा जाये, जैसा कि सुंग सियेन शेंग किया करते हैं। शेंग वुद्धिजीवी मंगते होते हैं। वे सीधे नहीं मांगते, वरन सुलेख में कविता लिखकर दुकानदारों को भेंट करते हैं, वदले में उन्हें कुछ पैसे मिल जाते हैं।

माओ स्याही तैयार करने में लग गया और मैं कागज खरीद लाया। मैंने अपने सुंदर लेख में बड़ी दुकानों के नाम लिखे। पहली हीं दुकान पर मालिक ने चार सिक्के दिये। थोड़ी देर वाद एक दूसरा व्यक्ति वाहर आया और उसने चार सिक्के और दिलवाये और मुझसे पूछा कि तुम कहां से आये हो और इतने गरीब कैसे हो गये? मैं उसे धन्यवाद देकर लौटा। अब मेरे पास काफी पैसा था, मुझे लगा कि शिक्षा का कितना आदर होता है! उसके वाद हम लोग कुछ अन्य दुकानों पर गये और कुछ सिक्के वटोरकर हमने चाय की दुकान के विल का भुगतान किया।

जिलाधीश का आतिथ्य

अन्हवा से चलकर हम यियांग पहुंचे। वहां वाजार में से गुजरते हुए एकाएक मेरी निगाह दीवार पर चिपके एक पोस्टर पर पड़ी। यह जिलाधीश का आदेश था। उस पर चांग कांग-फांग के हस्ताक्षर देखकर मैं चौंक पड़ा। उन्होंने मुझे रसायनशास्त्र पढ़ाया था और मैं उनका प्रिय शिष्य रहा था।

माओ ने मुझसे आग्रह किया कि हमें उनसे अवश्य मिलना चाहिये। पहले तो मुझे इस पर हंसी आ गयी। फिर सोचा कि अभी तक हम किसी अफसर के पास नहीं गये हैं, क्यों न यह अनुभव भी ले लिया जाये। सो हम दोनों जिलाधीश के दरवाजे पर जा पहुंचे। वहुत कहा-सुनी के बाद दरबान मेरा कार्ड लेकर भीतर गया। चांग कांग-फांग ने तुरंत हम दोनों को अपने अध्ययन-कक्ष में वुला लिया।

चांग कांग-फांग ने आश्चर्य-भरी आवाज में मुझसे पूछा कि तुम्हें क्या हो गया है? तुम कहां से आ रहे हो, और किस परेशानी में हो? मैंने बताया कि हम चांगशा से आ रहे हैं और भिखारी बनकर छुट्टियां बिताने को निकले हैं। फिर उन्हें माओ का परिचय दिया और उन्होंने बड़े प्रेम से माओ से हाथ मिलाया।

नहा-धोकर हम लोग कई घंटे तक बातें करते रहे और उस रात उन्हीं के साथ खाना खाया। उनसे पता चला कि मेरे कई सह-

पाठी यहां भिन्न-भिन्न पदों पर नियुक्त हैं– एक स्थानीय शिक्षा-बोर्ड का अध्यक्ष है, एक हाईस्कूल में मुख्याध्यापक है, कुछ स्थानीय शिक्षा-विभाग में पढ़ते हैं। चांग कांग-फांग उन सबको सूचना देकर बुलाना और हमारा स्वागत कराना चाहते थे। पहले तो हमने अनिच्छा प्रकट की, पर बाद में राजी हो गये। लेकिन स्वागत-आयोजन से पहले हम उन सब पुराने साथियों से मिल आये।

लड़की की भविष्यवाणी

तीन दिन राजकीय अतिथि रहने के बाद हम लोग युआन कियांग की ओर निकल पड़े। चांग कांग-फांग ने हमें कुछ धन दिया। शाम को हम एक सराय में भोजन करने के लिए ठहरे। फिर सोचा, रात वहीं बितायी जाये। और कोई यात्री नहीं था; इसलिए सराय की मालकिन हमारे साथ बात करने बैठ गयी।

वह एक सुंदर युवती थी, लगभग बीस वर्ष की। मैंने उसे बताया कि हम भिखारी हैं, पर उसे विश्वास ही न हो रहा था। वह एकदम चकित थी। माओ ने अविश्वास का कारण पूछा, तो उसने उत्तर दिया– "क्योंकि तुममें से कोई भी भिखारी-जैसा नहीं दीखता।"

उसने क्षण-भर हमें ध्यान से देखा और कहा कि मैं समझ गयी हूं, कि तुम दोनों महान व्यक्ति हो। मैंने पूछा कि महान व्यक्ति क्या होता है? क्या तुम्हें आकृति विज्ञान आता है? उसने सिर हिलाकर 'हां' कहा और बताया कि उसे यह विद्या उसके

सराय की मालकिन माओ का हाथ देख रही है। (सियाओ-यू द्वारा निर्मित चित्र की अनुकृति।)

दादा ने सिखायी थी। वे कवि थे, उनकी कृतियों का एक संकलन भी प्रकाशित हुआ है। उसके पिता भी विद्वान थे। लेकिन तीन साल के भीतर ही दादा और पिता दोनों उसे और उसकी मां को अकेला छोड़कर चल बसे, फिर हारकर आजीविका के लिए उन्हें यह सराय खोलनी पड़ी।

माओ ने उससे कहा कि तुम हमारे चेहरे पढ़कर हमारे बारे में कुछ बताओ। उसे क्षण-भर के लिए थोड़ा संकोच हुआ, फिर बोली–"अच्छा बताऊंगी, पर वायदा करो कि

अगर कुछ बुरा कहूं तो बुरा नहीं मानोगे।" उसकी मां ने सुना, तो उसे अंदर बुलाकर डांटा कि यह बकवास बंद करो, कुछ और बातें करो। लेकिन माओ ने बड़े आग्रह से कहा कि हम लोग तनिक भी बुरा नहीं मानेंगे, जो भी तुम्हें लगता हो, सब कुछ सच-सच बताओ।

उसने हम दोनों के पारिवारिक नाम पूछे। माओ ने दोनों के नाम बताये। वह बोली—"श्रीमान् माओ, आपका नाम अच्छा नहीं है। माओ का अर्थ है बंदर।" माओ तो अपना भविष्य जानने को छटपटा रहा था। वह झुंझलाकर बोला कि नाम से मेरे भविष्य का क्या संबंध? तुम मेरा चेहरा देखो और मेरा भविष्य बताओ, मेरे नाम की आलोचना बाद में करना।

लड़की ने शांतिपूर्वक उत्तर दिया—"आपका नाम भी महत्त्वपूर्ण है। आपकी आकृति बताती है कि आप एक बड़े अधिकारी बन सकते हैं—प्रधान मंत्री, या डाकुओं के सरदार। नाम के आधार पर आप चांग माओ अथवा माओ होन्त्जू के समान शक्तिशाली बन सकते हैं। आप बहुत साहसी और महत्त्वाकांक्षी हैं। आप में भावुकता तनिक भी नहीं है, मगर धीरज अखूट है। आप हजारों लोगों को बिना चूं किये मरवा सकते हैं।

"और सुनिये, यदि ३५ वर्ष की उम्र तक आपके दुश्मनों ने आपको मार नहीं डाला, तो ५० वर्ष की उम्र तक आपका कोई कुछ न बिगाड़ सकेगा और आप दिन-प्रतिदिन और भी अधिक शक्तिशाली हो जायेंगे। आपकी कम-से-कम छः पत्नियां होंगी, पर बच्चे बहुत नहीं होंगे। आपका अपने परिवार के साथ कोई संबंध नहीं होगा। आप अपने जन्मस्थान पर कभी नहीं रहेंगे और आपका कोई निश्चित घर भी नहीं होगा।"

इतना कहकर वह चुप हो गयी। फिर मेरी ओर मुड़ी और उसने मेरे बारे में बहुत-सी बातें कहीं। काफी रात हो गयी थी। अतः हम लोग बातें बंद करके सो गये।

अगले दिन सवेरे नाश्ता करके चलने की तैयारी करने लगे। लड़की ने बहुत आग्रह किया कि वहां हम एक दिन और रुक जायें। वह कमरे का किराया लेने को भी तैयार नहीं हुई। उसका नाम कुमारी हुयु-यिंग था।

मैंने उससे कहा कि जब भविष्य में माओ किसी दिन प्रधान मंत्री या डाकुओं का सरदार बनेगा, तो तुम्हें सलाहकार बनाने के लिए बुलायेगा। इस मजाक पर वह जोर से हंसी और बोली— "माओ तो एकदम भावना-शून्य व्यक्ति है। तब तक वह मुझे बिलकुल भूल जायेगा और उसे इस बातचीत का ध्यान भी नहीं रहेगा।"

हम लोग रुके नहीं और कोई तीन घंटे तक पैदल चलने के बाद युआन कियांग शहर के द्वार पर जा पहुंचे, जो हमारी यात्रा का आखिरी पड़ाव था। यहां से हम स्टीमर पर चढ़कर चांगशा लौट गये। स्टीमर का भाड़ा चुकाने के लिए हमारे पास अब काफी धन था।

★

मैट हैरीसन

रसोईघर में रीछ

भूमंडल पर इंसान शिकारी भी है और शिकार भी। आपने दोनों रूपों में उसकी असंख्य कहानियां पढ़ी होंगी, जिनमें पेशेवर शिकारी शेर और चीतों को गोली से उड़ाते हैं; और इस शिकार में देहात के भोले-भाले और अनुभवहीन लोग जंगली जंतुओं का शिकार वनते हैं। पर जो कहानी मैं आपके सामने पेश करने वाला हूं, उन कहानियों से एकदम अलग है, जो वंद कमरों में वैठकर लिखी जाती हैं। और जिनके लिखने वाला राइफल चलाना तो क्या, उसे उठाना भी नहीं जानता।

एक वात शुरू में ही वता दूं, मैं पेशेवर शिकारी नहीं। यों कहना चाहिये कि किसी सिरे से शिकारी नहीं। बचपन में गुलेल की मदद से कुछ चिड़ियां अवश्य मारी थीं, लेकिन जैसे ही होश संभाला, पेट का नरक भरने के लिए सौ तरह के पापड़ बेलने पड़े। इसलिए कहानियों में जिन शिकारियों का जिक्र किया जाता है, उनकी तरह न मैं देश-विदेश की सैर कर सका और न ग्रामीणों ने कभी मेरे पांव पकड़े कि साहब, अमुक इलाके में शेर ने तंग कर रखा है, आप चलकर हमें उस जंतु से मुक्ति दिलाइये।

मैं तो एक सीधा-सादा नवयुवक हूं, जो गरीवी के कारण शिक्षा नहीं प्राप्त कर सका। पहले एक होटल में बैरा बना। फिर उस होटल के रसोईघर में बर्तन धोने पर

नौकर हुआ और बूढ़े रसोइये की तन-मन से सेवा की, तो उसने खाना पकाना सिखा दिया। पांच-छः वर्ष की मेहनत के बाद एक अन्य होटल में पहले रसोइया और फिर हेड-रसोइया बन गया। उन्हीं दिनों मेरी मुलाकात लोरीटा से हुई। लोरीटा मेरी ही तरह एक मजदूर लड़की थी और किसी दफ्तर में क्लर्क थी; लेकिन उसकी वातचीत और उठने-वैठने में अजीव रौव और शान थी।

उसकी इस शान ने मुझे उसकी ओर आकृष्ट किया। वाद में जव लंवी मुलाकात हुई, तो पता चला कि वह एक वहुत धनी परिवार से संबंध रखती है। माता-पिता और नजदीकी संबंधियों में कोई जिंदा नहीं। नारनोक के आस-पास उसके पिता की एक फार्म पर लेनदारों ने कब्जा कर रखा था। उसका पिता लंवी बीमारी के वाद मरा था और खासा धन उसके इलाज में उठ गया। कुछ कर्ज उसने पहले ही ले रखा था। उसकी आंखें वंद होते ही, फार्म लोरीटा से छिन गया। वह यहां नौकर थी, तो इसलिए कि अधिक-से-अधिक रुपया जमाकरे और किसी तरह अपना फार्म वापस ले सके।

एक साथ ही उसने तीन दफ्तरों में नौकरियां कर रखी थीं। हमारी मुलाकात एक नाइट क्लव में हुई। वह वहीं टाइपिस्ट की एक खाली जगह का विज्ञापन पढ़कर आयी थीं। सारांश यह कि हम दोनों ने एक दूसरे को न केवल मानसिक रूप में स्वीकार कर लिया; वल्कि मुंह से एक शब्द निकाले विना मैंने यह निश्चय कर लिया कि अधिक-से-अधिक काम करके रुपया जमा करूंगा ताकि उसकी मदद कर सकूं। अतः हर किस्म की फिजूलखर्ची वंद कर दी और एक-एक पैसा जमा करने लगा।

लेकिन आप स्वयं समझ सकते हैं, मामूली नौकरी से इंसान तीस हजार डालर तो नहीं जमा कर सकता। इसलिए अंत में यह निश्चय किया कि रसोइये का काम छोड़कर कोई अन्य धंधा करूं, ताकि फार्म जल्द ही छुड़ाया जा सके। उसके वाद मैं और लोरीटा अपनी नौकरी छोड़कर फार्म पर चले जावें और वहीं किसी देहाती गिरजे में हम विवाह कर लें। मैं इन्हीं विचारों में था कि एक अखबार में एक छोटा-सा विज्ञापन छपा:

"उत्तर ध्रुव पर जाने वाले एक दल को एक रसोइये और उसके सहायक की आवश्यकता है। छः माह के लिए १२ हजार डालर वेतन और ओवर-टाइम के अलावा, आने-जाने का किराया और खाना निःशुल्क।"

उत्तर ध्रुव के आस-पास एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला के लिए छोटा-सा कस्वा बनाया जाने वाला था। यह दल इसी अभिप्राय से जा रहा था। इसमें १२० आदमी थे–१०० मजदूर और २० अफसर। दल का नेता था जान डयूरांट नामक एक इंजीनियर वैज्ञानिक। और १२ हजार डालर अच्छा-खासा धन था।

मैंने फौरन प्रार्थना-पत्र भेज दिया। अगले ही दिन मुझे इंटरव्यू के लिए बुलाया गया। उम्मीदवारों में मैं सवसे मोटा-ताजा और स्वस्थ था, इसलिए चुन लिया गया। जाद

ड्यूरांट ने नियुक्ति-पत्र देते हुए कहा –"अब तुम अपनी इच्छा से एक सहायक रसोइया रख लो। हम उसे काम के अंत में छः हजार डालर देंगे। दो वेटर भी ढूंढ़ लो, उन्हें भी पांच-पांच हजार डालर दिये जा सकते हैं।"

छः हजार डालर का जिक्र सुनते ही मेरे दिमाग में सहसा एक विचार आया। जान ड्यूरांट खासा दयालु अफसर दिखाई देता था। लोरीटा का किस्सा सुनाने के बाद मैंने निवेदन किया कि मैं अकेला काम करने को तैयार हूं। सहायक रसोइये के ६ हजार डालर के बजाय ४ हजार डालर भी मुझे दे दिया जाये।

मैंने उसकी बहुत मिन्नत की और अंत में वह इस बात पर राजी हो गया कि अपने खास अधिकारों से काम लेकर वह मुझे रसोइया और सहायक रसोइया, दोनों पदों पर नियुक्त कर देगा और कुल १६ हजार डालर वेतन मिलेगा। दो वेटर अवश्य रखे जायेंगे, क्योंकि १२० आदमियों को दिन में चार समय खाना पेश करना आसान काम नहीं। मैंने जान ड्यूरांट को धन्यवाद दिया, और तैयारियों में जुट गया। उत्तर ध्रुव के लिए रवाना होने के समय लोरीटा हवाई अड्डे तक मुझे छोड़ने आयी और मेरी रक्षा के लिए प्रार्थना करती रही।

बर्फ की जिस सतह पर हम काम कर रहे थे, वह उत्तर ध्रुव से एक सौ बीस मील दूर थी; लेकिन वहां सर्दी इतनी थी कि पहले कुछ सप्ताह हर समय मजदूरों के दांत बजते और वह थोड़ी-थोड़ी देर बाद ही रसोईघर की ओर दौड़ते थे, ताकि अपने हाथ-पांव गर्म कर सकें। मैं मजे में था, क्योंकि दिन-रात आग के सामने बैठने के कारण सर्दी का एहसास भी न होता था। रसोईघर लकड़ी के केबिन में बनाया गया था और उसकी चौड़ाई पंद्रह फुट और लंबाई बीस फुट थी।

मेरे पास गैस और तेल के तीन बड़े-बड़े चूल्हे थे। सुबह नाश्ते में हर व्यक्ति दर्जन-भर अंडे खा जाता। दोपहर के खाने के बाद शाम की चाय और फिर रात का खाना। मुझे पल-भर की भी फुरसत नहीं मिलती थी। पर काम की अधिकता के कारण मैं खुश था। यह खयाल कि छः माह बाद १६ हजार डालर मिलेंगे, मेरी सारी थकान दूर कर देता। अच्छा-खासा समय कट रहा था कि वह मनहूस दोपहर आ पहुंची, जब मुझे जीवन में पहली बार एक महान संकट का सामना करना पड़ा।

उस दिन मेरा मूड सुबह से ही खराब था। जान ड्यूरांट ने नाश्ते की मेज पर बुलाकर मुझे सुबह ही खूब डांटा था। वह बोला–"मैंने तुमसे कई बार कहा है कि रसोईघर की खिड़की से बची-खुची सब्जियां और सालन बाहर न फेंका करो। पर तुमने फिर वही हरकत की। तुम्हें पता है कि मैं नियम व अनुशासन में लापरवाही नहीं सह सकता। यदि फिर कूड़ा-कर्कट खिड़की से बाहर फेंका, तो तुम्हें नौकरी से जवाब देकर वापस भेज दूंगा। तुम्हारी इस हरकत से कैंप वाले बैठे-बिठाये किसी संकट में फंस सकते हैं।"

मैंने अपनी गलती मानते हुए भी पूछा—"जनाब ! कूड़ा-कर्कट और सब्जियां वर्फ की तह में दब जातीं हैं। और बर्फ हर रोज गिरती है। ऐसी हालत में वची-खुची सब्जियां या सालन प्लास्टिक के थैले में डालकर उसके साथ वजन बांधना और फिर झील में फेंकना या वर्फ में गहरा 'गढ़ा खोदकर दवाना, समय नष्ट करने के ......" पर वह मेरी वात सुनने के वजाय कमरे से वाहर चला गया।

मैं वोझिल कदमों से रसोईघर में वापस आया। समझ में न आता था कि जान ड्यूरांट, जिसे मैं बहुत दयालु, और मेहरवान-इंसान समझता था, इतने गुस्से में क्यों है। तीनों चूल्हे जलता छोड़कर गया था। एक पर वर्तन धोने के लिए पानी गर्म हो रहा था। वाकी दो पर वड़े-वड़े पतीलों में दोपहर के लिए शोरवा पक रहा था। मैं वापस आकर वंद डिब्बों में से सब्जियां निकालने लगा। आज खाना जल्दी चाहिये था, क्योंकि मजदूर अस्थायी हवाई-अड्डे से कैंप तक एक सड़क वनाने में व्यस्त थे और दोपहर के खाने पर रसोईघर तक नहीं आ सकते थे। मैंने दोनों वैरों को उनके साथ भेज दिया, ताकि जो लोग काम पर हैं, उनसे वर्तन वापस ले आयें और तेजी से मैं काम में मग्न हो गया।

दिन के ग्यारह वजे थे और मैं शोरवा तैयार कर चुका था। इधर वर्तन धोने का पानी भी खौलने लगा था। सहसा दरवाजे पर कुछ खटका-सा हुआ। मैंने समझा, वैरे वापस आ गये हैं। पर अगले ही क्षण दरवाजा खुला, तो मेरे पांव तले से जमीन निकल गयी। लगभग वारह मन का एक वर्फानी सफेद रीछ दरवाजे पर खड़ा गुर्रा रहा था।

मैंने जीवन में वहुत रीछ देखे हैं; पर विश्वास कीजिये, वर्फानी रीछ दुनिया में अपनी नस्ल का सवसे वड़ा जानवर है। लंबी थूथनी, जिस्म पर सफेद वाल, सुर्ख-सुर्ख जवान और शोले उगलती हुई नीली आंखें। मेरे लिए उसका एक ही पंजा काफी था। उसे देखते ही जो पहला खयाल दिल में आया, पिस्तौल के वारे में था। मेरे पास एक छोटा-सा पिस्तौल था, जिसे केवल अपनी रक्षा के लिए अपने पास रखा था; पर जान ड्यूरांट की उसूलपसंदी ने उसे भी मुझसे छीन लिया था। यहां आने से पहले उसने पिस्तौल अपने अधिकार में लेते हुए कहा था—"नियम और अनुशासन के अनुसार कैंप के इलाके में किसी को भी अस्त्र रखने की इजाजत नहीं।"

मैं विवशतः उस समय चुप रह गया, पर जैसे-जैसे वह मूंजी रीछ धीरे-धीरे मेरी ओर वढ़ रहा था, तो जी में आया, जान ड्यूरांट सामने हो, तो उसका मुंह नोच लूं और पूछूं-"वह १२० युवक अव कहां गये, जो मेरी रक्षा पर नियुक्त थे ?"

सोचने का समय नहीं था। अव रीछ विलकुल मेरे सामने खड़ा था और वीच में तेल और गैस के तीन चूल्हे थे। मैंने आवाज देकर लोगों को वुलाना चाहा; पर खयाल आया, कैंप में कोई मौजूद नहीं है। सव काम पर गये हुए हैं। दूसरा खयाल फरार होने का

था, पर उस एक दरवाजे के सिवा, जिसमें से रीछ अंदर आया था, कमरे में कोई दूसरा दरवाजा न था। दायीं ओर एक खिड़की जरूर थी, जिसमें से मैं कूड़ा-कर्कट बाहर फेंकता था। दरवाजे के अलावा उस खिड़की तक पहुंचना भी संभव न था, क्योंकि रीछ मेरे सामने था और मुझ पर हमला करने के लिए उसने दोनों अगले पंजे वायुमंडल में ऊंचे कर लिये थे।

देखते-ही-देखते उसने दोनों पंजों से मेरे सिर को निशाना बनाया। अनजाने में मैं फौरन झुका और चूल्हों के पीछे छिप गया। रीछ का एक पंजा जलते हुए चूल्हे पर गिरा और साथ ही उसके गले से एक भयानक आवाज निकली। बाल और मांस जलने की गंध मेरे नथुनों में आयी। रीछ डरकर पीछे हटा और दोनों जलते हुए पंजों को पेट पर मारने लगा। शायद वह अपनी जलन दूर करना चाहता था। इसी समय एक बड़ा मजबूत चिमटा मेरे हाथ आ गया। मैंने वह चिमटा पूरी शक्ति से रीछ पर दे मारा, पर उस पर रत्ती-भर असर न हुआ। बालों की मोटी तह के कारण उसे जरा भी चोट न आयी।

मसाले से भरा हुआ एक डिब्बा उस पर फेंका। फिर एक दूसरे मजबूत चिमटे से सिर को निशाना बनाया, पर सब व्यर्थ। वह गुस्से में चीखता हुआ पुनः मुझ पर हमलावर हुआ। मेरे पास अपने बचाव के लिए सिवा इसके कोई उपाय न था कि चूल्हे के नीचे छिप जाऊं; पर रीछ सचेत हो गया था। मेरे झुकने से पूर्व उसने दायें पंजे से मेरा कंधा जख्मी कर दिया। पीड़ा से मेरी चीख निकल गयी और मैं जमीन पर गिर पड़ा।

सहसा रीछ बड़े जोर से चीखा। उसका एक पंजा उबलते हुए पानी में जा पड़ा था। उसने फौरन वह पंजा निकाला और उसके बाद उसके एक ही झटके से वह बर्तन उलट गया। खौलता हुआ पानी मुझ पर गिरा। और मेरे सिर से लेकर बायें कंधे और कमर के एक भाग पर जैसे जहर में बुझी हजारों सूइयां चुभ-चुभकर फर्श पर टपकने लगा, मेरी आंखों के आगे अंधेरा छा गया। सोचने-समझने की शक्ति जवाब दे गयी। यों महसूस हुआ, सारी दुनिया घूम रही है। जल्दी से तौलिया उठाकर शरीर के जलते हुए भागों पर से गर्म पानी सुखाया और सिसकियां भरता हुआ उठा।

रीछ जब उस चूल्हे को गिराने के लिए जोर लगा रहा था, जो मेरे और उसके बीच में दीवार बना हुआ था, सहसा मुझे एक
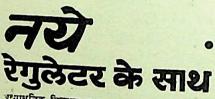
- अत्याधुनिक व शोभनीय आकार प्रकार।
- पूर्णरूपेण डाई-कास्ट तथा कम भारी।
- आधुनिकतम उत्पादन साधनों के प्रयोग के कारण दोष-युक्त क्वालिटी व कार्यक्षमता।
- सरलता से पूर्णतः खोला जा सकता। तथा उसी सरलता से वापिस एसेम्बल भी किया जा सकता है।

- अत्याधुनिक डिज़ाइन व स्वरूप।
- दीवाल के भीतर की तार-प्रणाली के लिये बहुत ही उपयुक्त।
- विशेष प्रकार का रोटेरी स्विच जो दोनो दिशा में घूम सकता है।
- चोक क्वॉयल यूनिट की वजह से गर्म नहीं होता।

ASP/OGI—2/70

दो वर्षों की गारंटी

ओ रि य न्ट ज न र ल इ ण्ड स्ट्री ज लि०,
क ल क त्ता - ५४

तदवीर सूझी। मैंने रीछ पर वही तरीका आजमाने का निश्चय किया, जो वह मुझ पर आजमा चुका था और अगले ही क्षण मैंने शोरबे का देगचा उस पर उलट दिया। वह बिदका अवश्य, पर लंबे बालों ने उसे बचा लिया। मैं पीछे हटता चला गया और दीवार के साथ जा लगा। यहां मेज पर नमक, मिर्च और मसालों के डिब्बे थे। एक-एक करके सब डिब्बे उठाये, उनके ढक्कन खोले, और रीछ के चेहरे पर फेंकने लगा।

रीछ अब जिच होने लगा था। शायद नमक और काली मिर्च का पाउडर उसकी आंखों में पड़ गया था; वह बार-बार उछलता और चूल्हे को एक ओर हटाने का प्रयास करता। पर सब चूल्हे सीमेंट की मदद से फर्श में गड़े हुए थे और उन्हें उठाना संभव न था। तपते हुए लोहे और शोलों से उसके पंजे हर बार झुलस जाते थे। उसका गुस्सा और झुंझलाहट बढ़ती जा रही थी। आखिर मैंने तीसरे चूल्हे पर की शोरबे की देगची भी उस पर उलट दी।

अब वह बुरी तरह उछल रहा था। और उसकी आधी से ज्यादा खाल झुलस गयी थी, पर साथ-ही-साथ मुझे इस बात का एहसास था कि उसके लिए चूल्हों के ऊपर से पोकर मुझ तक पहुंचना आसान हो गया है; क्योंकि अब खौलते हुए पानी या शोरबे के देगचे बीच में नहीं रहे। आखिर वही हुआ, जिसका डर था। उसने पूरी ताकत से एक चूल्हे को उखाड़ दिया और गुर्राता हुआ मुझ पर टूट पड़ा। उसका एक पंजा मेरी बायीं बांह का मांस उखाड़ता हुआ बायीं जांघ तक आ पहुंचा।

ऐन उसी वक्त मेरे हाथ में सब्जी काटने का तेज चाकू आ गया। मैंने आव देखा न ताव, चाकू उसके पेट में उतार दिया। फिर क्रमशः चाकू के वार करने लगा। इधर रीछ ने पंजे मार-मारकर मेरा सारा शरीर खून में डुबा दिया था। चीख वह भी रहा था और मैं भी। आखिरी दृश्य जो मेरी आंखों ने देखा, वह बैरों के कमरे में प्रवेश का था, फिर मैं बेहोश हो गया।

× × ×

आजकल मैं नोरनोक के अस्पताल में पड़ा हूं। रीछ से हाथापाई में सीने की दायीं ओर की पांच पसलियां टूट गयी थीं। उस मूंज़ी ने कंधों, कमर और जांघों पर से गोश्त के लोथड़े उड़ा दिये थे और बायां कान जड़ से उखाड़ दिया था। डाक्टरों का कहना है, मुझे कम-से-कम चार महीने अस्पताल में रहना पड़ेगा।

इतनी तकलीफों के बावजूद मैं खुश हूं कि लोरीटा मेरे पास है और अभियान-दल की ओर से मुझे १६ हजार डालर वेतन के अलावा उतना ही धन बीमे का भी मिल गया है। लोरीटा ने अपना फार्म छुड़ा लिया है और अस्पताल से निकलकर मैं सीधा वहां जाऊंगा। अब मेरी समझ में आ गया है कि जान डयूरांट मुझे सब्जी के छिलके बाहर फेंकने से क्यों रोकता था। नियम और अनुशासन उल्लंघन की मुझे खासी बड़ी सजा मिल चुकी है।

अनुवाद : सुरजीत

★

लेडी लागिन

कुछ स्मृति-चित्र पिछली सदी के
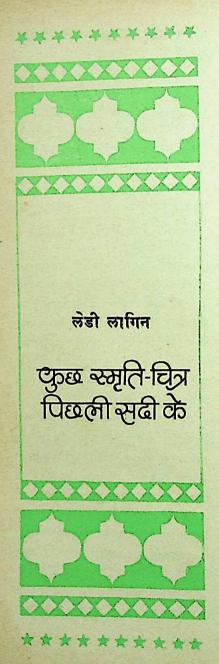
मेरी यादों की कहानी १८४२ से शुरू होती है। मेरे माता-पिता की मृत्यु हो चुकी थी। वड़े भाई चार्ल्स कैम्पवेल ने मुझे भारत के पश्चिमोत्तर क्षेत्र के सरहदी इलाके में अपने साथ रहने के लिए बुलाया था। मैं उस समय २२ वर्ष की थी। मेरे साथ मेरी एक वहन और एक सहेली भी इंग्लैंड से भारत के लिये विदा हुए थे।

हमने कलकत्ता जाने वाले जिस जहाज पर केबिन सुरक्षित किया, वह वाहर से नया लगता था; नये रंग-रोगन से चमक-दमक रहा था। उसका एक कप्तान प्रौढ़, किन्तु अविवाहित आदमी था। जहाज पर मुसाफिर वहुत थोड़े थे। कप्तान सभी से हिल-मिलकर बात करता था। खासकर महिलाओं के प्रति तो उसका व्यवहार बहुत ही शालीन और विनम्र होता था।

यह सब देखकर दिल-ही-दिल में हम खूब खुश थीं। लेकिन जैसे ही जहाज टेम्स के बंदरगाह से विदा हुआ और लंदन की जगमगाती रोशनी धुंधली हुई कि हमें भावी संकट के संकेत मिलने लगे। जहाज के इंजन रूम से भयंकर घरड़-घरड़ की आवाज आने लगी। यह आवाज पूरी यात्रा में हमारे कानों में गूंजती रही। बीच में अटलांटिक के आंधी-तूफानों ने भी खूब जोर पकड़ा। नतीजा यह था, हमने किसी भी क्षण अपने को निरापद अनुभव नहीं किया।

दैवकृपा से कई भीषण तूफानों को पार करने के बाद हमारा जहाज जब सागर के शांत कक्ष पर पहुंचा, तो हमें वताया गया

डाक्टर लागिन अवध के नवाब मुहम्मद अली और वाजिद अली के घरेलू चिकित्सक थे। बाद में महाराजा रणजीतसिंह के दरबार में भी रहे। उनकी पत्नी लेडी लागिन महारानी विक्टोरिया के आदेश पर महाराजा रणजीत-सिंह के पुत्र महाराजा दिलीपसिंह की अभिभाविका बनीं। लेडी लागिन ने मृत्यु से पूर्व अपने संस्मरणों में भारत के गदर से पहले की अनेक रोचक घटनाओं का उल्लेख 'लेडी लागिन्स कलेक्शन' में किया था।

कि हम कलकत्ता पहुंचने के बजाय अटलांटिक के दूसरे किनारे रियोडिजनीरो पहुंच गये थे। आंधी का वेग हमारे जहाज को बिलकुल दूसरी दिशा में खींच ले गया था। 'रियो' में हम केवल एक दिन रहे। जमीन पर उतरने का अवसर भी न मिला। बंदरगाह की जलसीमा से बाहर ही जहाज खड़ा रहा। वहीं जहाज की मरम्मत होती रही। उस ठोका-पीटी की आवाज से हमारे कान भर्रा गये।

हमने वहां से अचानक विदा ली। विदा होने के एक घंटे बाद हमें जहाज के बूढ़े कप्तान ने बड़ी दबी जबान में बताया कि यह जहाज पुराना है और इसके तले में पहले से ही एक मोटा सूराख है। जहाज लंबी यात्रा के योग्य पहले से ही नहीं था—जहाज मालिक ने नाजायज तरीकों से सर्टिफिकेट प्राप्त कर लिया था।

रास्ते में कई बार भीषण समुद्री आंधियों से जूझना पड़ा। मारीशस के निकट तो एक बार जहाज डूबने ही वाला था। मुसाफिरों का ज्यादा समय ईश्वर से प्राणरक्षा की प्रार्थना करने में ही बीतता था।

कलकत्ता में कप्तान की गिरफ्तारी:

आखिर एक दिन हम 'सुंदरवन' होते हुए हुगली पहुंच ही गये। वहां जाते ही बंदरगाह के अधिकारियों ने जहाज के कप्तान को गिरफ्तार कर लिया। उसका अपराध यह था कि उसने इतने जरा-जीर्ण जहाज पर मुसाफिरों को बैठाकर उन्हें ठगा था, उनकी जान खतरे में डाली थी। वहां यह देखने को भारी भीड़ जमा हो गयी थी कि ऐसा कौन-सा जहाज है, जो इतना जर्जर होकर भी यात्रियों को इतनी लंबी यात्रा करवा लाया है।

इस दिल दहलाने वाली विचित्र यात्रा की एक रोमांचकारी बात मुझे मानव के विस्मयपूर्ण स्वभाव की याद अब भी दिला देती है।

उस बूढ़े जहाज का बूढ़ा कप्तान स्वयं तो नौजवान लड़कियों से हंसने-खेलने में बड़ा रस लेता था, लेकिन जब उसके युवक सहायक अधिकारी ने हमसे जरा-सी बात करने में रुचि दिखायी, तो उसने उस युवक को जहाज के निचले तहखाने में कैद कर दिया। अभियोग यह लगाया कि वह लड़कियों को

रेशान करता है। हमने पूरे बल से युवक को निर्दोष प्रमाणित करने का यत्न किया; लेकिन कप्तान हमारी गवाहियों से और भी उबल उठा। यात्रा के तीन-चौथाई दिनों में उसने युवक को कैद ही नहीं रखा, अनेक यातनाएं भी दीं।

तहखाने में बंद युवक के भीषण रूप से चिल्लाने पर एक दिन जब हम बूढ़े कप्तान की नजर से बचकर युवक के पास गये और पूछा कि उसे क्या चाहिये, तो उसने केवल एक दरखास्त की—"मुझे मेरा वायलिन दे दिया जाये।" वायलिन मिलने के बाद वह बहुत शांत प्रतीत होता था। यात्रा के शेष दिनों में वायलिन की आवाज भी टूटे जहाज की घड़घड़ाहट के साथ आती रही। बीच-बीच में युवक के कराहने की आवाजें भी दिल दहला देती थीं।

लेडी लागिन

कलकत्ता पहुंचकर हमें दूसरे साथी मिल गये। मेरी एक विवाहिता बहन भी कलकत्ता में थी। मैं अपनी बहन श्रीमती होपडिक के साथ उत्तर भारत चली आयी।

विवाहों के प्रस्ताव:

उन दिनों भारत में अंग्रेज परिवार विचित्र स्थिति में थे। अंग्रेज स्त्रियां बहुत कम थीं—और कुंआरी लड़कियां तो बहुत ही कम। भारत में रहने वाले अंग्रेज विवाह के लिए तरसते थे और इंग्लैंड में मित्रों से पत्राचार द्वारा प्रेम-संबंध बनाने की कोशिशें करते रहते थे।

अभी मुझसे भेंट नहीं हुई थी कि एक जनरल ने मेरी बहन के साथ मेरा फोटो देखकर विवाह-प्रस्ताव रख दिया। मैं किसी अनजाने आदमी से शादी करना नहीं चाहती थी, इसलिए मैंने उसका प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया।

मेरी एक सहेली थी। एक रात नाचघर जाने के बाद उसे शादी के छः प्रस्ताव मिले थे। एक भारी-भरकम देह के मेजर ने तो यह गुस्ताखी भी की कि जिस पालकी में वह घर वापस आने को बैठी थी, उसे बहकाकर अपने घर की ओर ले चला। रास्ते में बंद पालकी में नोट भेजकर उसने विवाह के प्रस्तावों की झड़ी लगा दी।

असल में मेजर ने पालकी-वाहकों को रिश्वत देकर उलटे रास्ते डाल दिया था। लड़की को जब इस षड्यंत्र का संदेह हुआ, तो उसने पालकी वालों को पालकी अपने घर ले जाने को कहा। मेजर ने वहां भी पीछा किया। मेजर का शरीर बहुत भारी था। दौड़ते-दौड़ते हांफकर बेचारा नीचे गिर गया। तब कहीं बेचारी लड़की को छुटकारा मिल सका।

मैं लखनऊ में अपनी बहन के घर सुरक्षित पहुंच गयी थी। वहां मेरे पहुंचते ही मेरे पास विवाह के प्रस्ताव आने लगे। आखिर मैंने २८ जुलाई १८४२ को शादी कर ली। हनीमून लखनऊ के बीबीपुर महल में मनाया। यह महल उन दिनों अवध के नवाब मुहम्मदअली शाह ने कुछ दिनों के लिए हमारे ही अधिकार में दे दिया था।

अवध के नवाबों में :

मेरे पति उन दिनों लखनऊ में रेसिडेंसी सर्जन—शाही डाक्टर थे। अवध के नवाब का इलाज करना उनका ही काम था। नवाब की बेगमों का इलाज भी उन्हें करना होता था। इस लिए शाही हरम में भी वे बेरोक-टोक जा सकते थे।

अवध के नवाब मुहम्मदअली शाह की सबसे प्रिय बेगम मलिका गेती मुझ पर बड़ी मेहरबान थी। समय-असमय मुझे बढ़िया तोहफे देने में उन्हें बड़ा संतोष मिलता था। धीरे-धीरे मेरे बच्चों के जन्म-दिनों पर उन्होंने सोने-चांदी से मढ़ी हुई इतनी पोशाक दे दीं कि मेरे पास उन पोशाकों का ढेर-सा जमा हो गया। मलिका गेती हमारे लखनऊ छोड़ने के बाद भी मेरे पति को चिट्ठियां लिखती रहीं। उनकी उर्दू अक्षरों की लिखावट बहुत सुंदर थी। नवाब के हरम की दूसरी लड़कियां भी चुस्त और होशियार थीं।

डा० लागिन

मुझसे वे सब इतना हिल-मिल गयी थीं कि मुझे सदा अपना खैरख्वाह मानती रहीं और समय-समय पर मैंने भी उनकी पूरी सहायता की। मलिका गेती ही मशहूर-बदनाम नवाब वाजिदअली की मां थी। १८५७ के गदर के बाद वे इंग्लैंड भी पहुंची थीं। मुझे तब उनके और महारानी के बीच माध्यम का काम करना पड़ा। आखिर महारानी विक्टोरिया ने उन्हें और उनके लड़के वाजिदअली शाह को ७० हजार पौंड वार्षिक पेंशन देना कबूल कर लिया था।

सच पूछो तो मुझे वाजिदअली शाह से कोई हमदर्दी नहीं थी; क्योंकि मैं जानती कि वह इस धन का दुरुपयोग निकृष्टतम विलास-लीला में करता था। मगर मुझे मलिका के स्नेह का बदला देना पड़ा और वाजिदअली की सिफारिश करनी ही पड़ी।

नवाबी जमाने की बातें :

नवाबी जमाने की कुछ बातें मुझे आज भी बखूबी याद हैं। मेरे पति डा० लागिन जब बेगम के इलाज के लिए बुलाये जाते थे, तो बेगमें सामने नहीं आती थीं। परदे के पीछे बैठी बेगमों का ही इलाज करना पड़ता था।

डाक्टर को कभी बेगम का पूरा चेहरा देखने की इजाजत नहीं थी। वह परदे के पीछे से निकले हाथ या जीभ को ही देख सकता था। महल की बांदियों की मदद से बेगमें अपनी जीभ परदे के पीछे से आगे निकालती थीं, तो अंदर जनाना हंसी के फव्वारे छूटते थे।

मेरे पति ने कई बार बेगमों की जान बचायी थी। एक बार बेगम वजीरुलनिसा को तपेदिक हो गया। देशी हकीम ने उसे लाइलाज कह दिया। बेगम के शरीर पर कई मलहमों की परतें जम गयी थीं। डा० लागिन ने गर्म पानी से नहलाने को कहा, तो वजीर साहब बहुत बिगड़े। बेगम भी बहुत बिगड़ीं; लेकिन अंत में मान गयीं।

तब मैं और एक परिचारिका सुगंधित साबुन एवं स्पंज साथ लेकर जनाने गुसलखाने में गयीं। इससे पहले उन्होंने साबुन और स्पंज नहीं देखा था। स्पंज जब पानी से भरकर फूल उठा, तो जनानखाने की सब लड़कियां चीख पड़ीं। उन्होंने उसे कोई जानवर समझा। बाद में वे उससे खेलती रहीं। सौभाग्य से बेगम अच्छी हो गयी। इसके बाद डा० लागिन का सिक्का चारों ओर माना जाने लगा।

विचित्र तोहफे:

वजीर ने तोहफे के तौर पर एक मोरपंख-सजी ७ घोड़ों वाली बग्घी दी। एक हाथी का बच्चा भी तोहफे में दिया। साथ में दो नीग्रो लड़के भी खिदमत के लिए भेजे। दो बड़ी-बड़ी पर्शियन बिल्लियां भी दीं। ये बिल्लियां चीते की तरह खूंख्वार थीं। नवाब ने एक बार १४ जोड़ी घोड़ों से खींची जाने वाली बग्घी भी तोहफे में भेजी थी। एक हाथी भी उनसे तोहफे में हमें मिला था। मुझे उसे खूराक खिलाना बहुत अच्छा लगता था। दारोगा अलीबख्श के साथ गन्ने लेकर मैं हाथी को खिलाने जाती थी।

अवध के नवाब मुहम्मदअली शाह के बाद उनका लड़का नवाब वाजिदअली गद्दीनशीन हुआ था। जब तक गद्दी पर नहीं बैठा था, तब तक तो वाजिदअली भी बड़ा चुस्त रहा। खेलों में भी वह भाग लेता रहा। मगर गद्दीनशीन होते ही उसने हिलना-डुलना बंद कर दिया।

एक बार मैंने देखा कि वह रेसिडेंट के घर हाथी पर चढ़कर आने की तैयारी कर रहा था, तब चोबदारों ने उसे कुर्सी समेत हाथी के हौदे पर बैठाने की कोशिश की। दो बार वह कुर्सी समेत नीचे गिर गया। आखिर तंग आकर वह खुद रस्सी पकड़कर दौड़ता हुआ ऊपर चढ़ा और हौदे पर सवार हो गया। खाने के समय उसके चारों ओर सात नौकरों का घेरा रहता था। एक मोरपंखी चौरी हिलाने वाला, एक हुक्का वाला, एक चिलमची-लोटा वाला, एक तौलिया वाला, जो हर ग्रास के बाद जूठा मुंह पोंछता था, प्याले वाला और एक रूमाल वाला, जिसका काम मिर्च-मसाला खाते हुए नाक से बहते पानी को पोंछना होता था।

एक बार वाजिदअली ने मेरे पति को खिलअत (सम्मानसूचक पोशाक) और 'बहादुर' की पदवी दी थी।

नवाब वाजिदअली

खिदमतगारों की यादें :

मेरी खिदमत में बहुत से नौकर थे—सभी अपनी-अपनी जगह बड़े दिलचस्प थे। एक अल्लाबख्श खलीफा था। वही बाद में गरीबखाना का दारोगा बना। वह मेरे पति डा० लागिन के साथ अफगानिस्तान भी गया था। मि० लागिन हिरात मिशन के साथ हिरात गये थे।

अल्लाबख्श ने हिरात जाकर एक हिराती बीबी से शादी कर ली। उसने आकर अपनी नयी बीबी की खूबसूरती का बयान करते हुए कहा कि वह विलायती मेम जैसी लगती है। हिराती बीबी बड़ी बहादुर थी। पीठ पर अपना बच्चा बांधे वह जंगलों में भी हमारे साथ रही। एक बार हिरात के जंगली लोगों ने हमारे कैंप पर हमला कर दिया। तब उसने बड़ी बहादुरी से हमारे जरूरी कागजात बचाये थे।

मदमस्त हाथियों की लड़ाई का खेल :

हिरात में एक अनाथ लड़का हिंगन खां मेरे पति के पास आश्रय के लिए आ गया था। यह लड़का हमारे साथ कंदहार, काबुल, कोहिस्तान आदि नगरों में भी गया था। हिंगन खां ने एक बार मदमस्त हाथी से हमारे बच्चों को बचाया। अवध के नवाबों का शौक था कि वे कुछ हाथियों को मदमस्त बनाकर आपस में लड़ाते थे। मदमस्त हाथियों की लड़ाई देखना उनके आमोद प्रमोद का सर्वाधिक उत्तेजक खेल था।

एक दिन हिंगन खां ने देखा कि उससे कुछ दूरी पर ही एक मस्त हाथी ने महावत पर हमला करके उसके चिथड़े-चिथड़े कर दिया है। पागल होकर वह हाथी फीलखाने से निकलकर लखनऊ के बाजार में आ धमका। यह हाथी कितने ही शेरों के शिकार पर जा चुका था। उसने आज सड़क पर ही रौद्र रूप धारण कर लिया। हिंगन खां ने उस मस्त हाथी के आगे-आगे दौड़ते हुए, हाथी को एक संकरी गली में घेर लिया। गली का दरवाजा बंद करने के बाद हाथी कैद हो गया।

इतना बहादुर हिंगन खां एक दिन अचानक गायब हो गया। उसका हिराती चाचा यह बरदाश्त न कर सका कि एक अफगान बच्चा किसी हिन्दुस्तानी नवाब का गुलाम बनकर रहे। उसने एक दिन हिंगन खां को मजबूर कर दिया कि वह अंग्रेजों की नौकरी छोड़कर अपने वतन लौट जाये। और हमें उस दिन के बाद कभी हिंगन खां
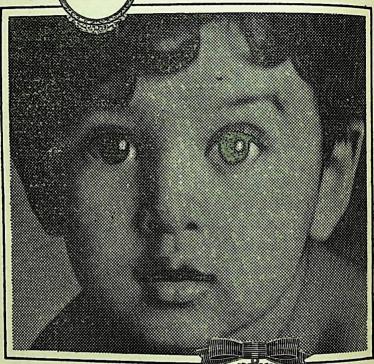
की खबर नहीं मिली।

भेड़ियों का खतरा :

एक दिन हमारे २०० आदमियों के कैंप में शोर मच गया कि एक भेड़िया कैंप में रहने वाली औरत की गोद से बच्चे को छीनकर ले भागा है। दो दिन की खोज के बाद बच्चे की खोपड़ी ही जंगल में मिली। हम उसे नहीं बचा सके।

अवध और नेपाल की तराई वाले इलाकों में भेड़िये बहुत थे। बच्चों को उठा ले जाना और खा जाना उनका काम था। मगर कई बच्चों को वे पालते भी थे। मैंने भेड़ियों में पले एक बच्चे को देखा था। उसके शरीर पर घने बाल थे। वह चार पैरों से चलने का आदी था। उसे फिर से इंसान बनाने की बहुत-सी कोशिशें की गयीं; मगर सफलता न मिली। उसे पहरे में भी रखा; मगर वह किसी तरह जंगलों में भाग ही गया।

डाकुओं का शोर :

इन जंगलों में डाकुओं की भरमार थी। एक दिन महाराजा दिलीपसिंह दिल्ली से बहुत-से जेवरात खरीदकर लाये। जेवरों को शाही खजाने में पहुंचाने में वे आलस्य कर गये। जेवरों का बक्स मुझे सौंप दिया। मैं उसे अपने पलंग के नीचे रखकर सो गयी।

आधी रात को डाकुओं ने हमला कर दिया। आंख खुलते ही मैंने देखा कि जेवरों का बक्स गायब था। मेरे सामने ही तेल की लीपापोती किये एक नंग-धडंग आदमी दौड़ता हुआ अंधेरे में खो गया। मगर कुत्ते की होशियारी से वह जेवरों का बक्स कैंप से बाहर न ले जा सका। कुत्ते ने उसका रास्ता रोक लिया था।

मनचला हाथी :

मुझे हाथियों के कटघरे में जाकर हाथियों की आदतें देखने का भी बड़ा शौक था। एक दिन मैंने देखा कि महावत की ७-८ साल की लड़की सोयी हुई है और पास ही हाथी अपनी सूंड में वृक्ष की पत्तेदार टहनी से पंखा झलकर मक्खियां उड़ा रहा है। कभी-कभी वह लड़की के पैर में सूंड की नोंक से गुदगुदी भी कर देता था। लड़की चौंक उठती, तो वह खूब खुश होता था।

ऐसे समय हाथी की नजर पास ही बने चौके में पड़ी चपातियों पर रहती थी। उसे मालूम था कि ये चपातियां उसे ही मिलने वाली हैं। हाथी की इस खुशामद-भरी चाल को देखकर मुझे यकीन हो गया कि जानवर भी बड़े चालाक-चतुर होते हैं। मगर कई जानवर निहायत मूर्ख भी होते हैं।

शैतान घोड़ा :

हमारा घोड़ा वैसा ही मूर्ख और शैतान भी था। मेरे पति मि० लागिन अपने ब्लैक सेटिन (काला शैतान) नामके घोड़े को मिसरी मिला चारा खिला रहे थे कि उसने उंगली के साथ डा० लागिन का अंगूठा भी जबड़े में जकड़ लिया। लागिन चिल्लाये, मगर घोड़े ने अंगूठा न छोड़ा। मिसरी की डली के साथ अंगूठा भी चबा लिया। लागिन की चिल्लाहट सुनकर मैं दौड़ी आयी।

मैंने घोड़े के मुख पर तमाचे मारे; मगर

उसने मुख ऊपर उठा लिया। तब मैंने अपने हाथ की परवाह न करके पूरा हाथ कोहनी समेत घोड़े के मुख में डाल दिया और उसकी जीभ इतनी जोर से मरोड़ी कि घोड़े को जवड़ा ढीला करने को मजबूर होना पड़ा।

घोड़ा चाहता, तो मेरे पूरे हाथ को चबा जाता। वह घोड़ा जीभ की ऐंठन बरदाश्त न कर सका और तिलमिलाकर उसने अपना शैतानी इरादा छोड़ दिया। मगर मेरे सभी घोड़े ऐसे नहीं थे। मेरे पास एक अरबी घोड़ा 'सुलतान' भी था। उसने एक बार संकट के समय मेरी और मेरे बच्चों की जान बचायी थी।

मैं मसूरी गयी हुई थी। हमने मसूरी के एक ऊंचे शिखर पर एक कोठी खरीदी थी। कोठी से नीचे उतरते हुए एक तंग पगडंडी आती थी। इस पर कठिनाई से एक घोड़ा ही चल सकता था। अचानक मैंने देखा कि सामने एक घोड़ा अपने सवार के साथ बेतहाशा दौड़ता हुआ आ रहा है।

यह घोड़ा शैतानी के लिए मशहूर था। उस पर पागलपन सवार होता था, तो वह अपनी मौत की परवाह न करके सवार को खड्ड में गिरा देता था। उसे पागलों की तरह अपनी तरफ दौड़ता आता हुआ देखकर मेरे होश उड़ गये। अभी मैं उतरकर संभल भी न पायी थी कि पागल घोड़े ने मेरे घोड़े सुलतान की गर्दन पकड़ ली और झकझोरने लगा। मैंने भी चाबुक से पागल घोड़े को पीटने का साहस किया। मगर मेरी चाबुक का उस पर कोई असर न हुआ।

दोनों घोड़े जिंदगी और मौत की लड़ाई में जूझ गये। उस समय सुलतान के दाव-पेंच देखने योग्य थे। उसने बड़ी कठिनाई से अपनी गर्दन उसके खूनी जवड़े से छुड़ायी और उस पागल घोड़े पर इतनी जोर का प्रहार किया कि उसके पैर न टिक सके। मुंडेर पर लगे पत्थर से टकराकर वह गहरी खाई में गिर गया। सुलतान की बहादुरी और वफादारी ने हमें उसका आज तक ऋणी बना दिया है।

हमने लखनऊ से लौटते हुए सुलतान को एक अंग्रेज अफसर जनरल हिटलर की लड़की की सवारी के लिए दे दिया था। बाद में उसकी मृत्यु कानपुर के सैनिक विद्रोह में हो गयी।

कोहेनूर की कहानी :

मेरे जीवन में जो नाटकीय घटनाएं घटित हुईं, उनमें कोहेनूर की घटना भी अविस्मरणीय रहेगी।

१८४८ में मेरे पति लखनऊ से विदा होकर द्वितीय सिक्खयुद्ध के घायलों की चिकित्सा में लगे। और पंजाब में गुजरात भी गये।

गुजरात की एक घटना मुझे याद है। मि० लागिन जब युद्धक्षेत्र के एक कैंप में एक सिपाही का आपरेशन कर रहे थे, बंदूक की गोली उनके पास से गुजरकर दीवार पर लगी। सब लोग भागने लगे; मगर मेरे पति ने जब तक आपरेशन पूरा नहीं कर लिया, स्थान नहीं छोड़ा।

उसी वर्ष नवंबर में मैं अपने तीन बच्चों के साथ इंग्लैंड के लिए रवाना हो गयी।

इंग्लैंड में अपने बच्चों को क्लिफटन में छोड़कर मैं फिर अपने पति के पास फतहगढ़ वापस आ गयी।

थोड़े दिनों बाद मेरे पति की नियुक्ति सिक्ख-युद्ध में परास्त महाराजा रणजीतसिंह की फौज से संधि की शर्तें तय करने के लिए हुई। बाद में उन्हें कुंवर महाराजा दलीपसिंह का गार्जियन-गवर्नर (अभिभावक) भी बनाया गया। पदच्युत महाराजा के खजाने की रक्षा का दायित्व भी उन्हें ही सौंपा गया।

इसी तोशखाना या खजाने में कोहेनूर हीरा था। पहले तो मेरे पति लाहौर की रेसिडेंसी में रहते थे; मगर बाद में उन्हें शाही महल में जगह दी गयी। इस महल में संगमरमर की पांच बारादरियां थीं। इनकी बनावट लखनऊ के शाही मंजिल जैसी ही थी।

मेरे पति को खजाने की फेहरिस्त बनवाने का काम भी सुपुर्द किया गया। कई मुंशी, मुत्सद्दी उनकी सहायता करते रहे। जवाहरात का महकमा उस समय मिशरंमकरज के हाथ था, जो तीन पुश्तों से उनके ही वंश में चला आ रहा था। मि० लागिन का अनुमान था कि कोहेनूर को छोड़कर अन्य जेवर-जवाहरात का दाम लगभग १० लाख पौंड होगा। कोहेनूर को अलग से कड़े पहरे में रखा जाता था।

मिशरंमकरज ने मुझे कोहेनूर की लंबी कहानी सुनायी। सबसे पहले मालवा के राजाओं ने इसे गोलकुंडा से पाया था। १५२६ में यह मुगलों के हाथ लगा। १७३९ में नादिरशाह ने इसे चालाकी से हथिया लिया। अफगानिस्तान का शाह शुजा काबुल से भागते हुए इसे फिर भारत ले आया और राजा रणजीतसिंह को प्राण-रक्षा के मूल्य में दे दिया।

रणजीतसिंह के वंशजों की पराजय के बाद यह मेरे पति डा० लागिन के हाथ में ३ मई १८४९ में आया। कुछ महीने यह डा० लागिन की देखरेख में रहा। बाद में २ जनवरी १८५० को लार्ड डलहौजी इसे स्वयं अपने कमर के पट्टे में बांधकर इंग्लैंड ले गये। इस पट्टे को सीने का काम मेरे पति ने ही किया था। डाक्टर होने की वजह से उन्हें चमड़ा सीने का अभ्यास था। वह अभ्यास इस समय बड़ा काम आया।

कोहेनूर हीरा जब महारानी विक्टोरिया को दिया गया, उस समय पंजाब के राजा रणजीतसिंह का लड़का दिलीपसिंह बहुत छोटा था। रणजीतसिंह को गद्दी से उतारकर अंग्रेजों ने बहुत छोटी उम्र के दिलीपसिंह को गद्दी पर बैठा दिया था। दिलीपसिंह के नाम से ही पंजाब का राज्य चल रहा था।

थोड़े दिनों बाद बालक दिलीपसिंह अंग्रेज शिक्षकों की अभिभावकता में बड़ा हुआ, तो उसने ८ मार्च १८५३ में ईसाई धर्म अपना लिया। उसका रहन-सहन अंग्रेजी ढंग का था, खान-पान भी अंग्रेजी था; मगर पोशाक में पूरी अंग्रेजियत नहीं आयी थी। सिर पर पगड़ी बांधना और गले

में वेशकीमती मोतियों की माला पहनना उसे वहुत पसंद था। जब कभी वह क्रोध में आता था, तो झुंझलाकर मोतियों की माला को झटक देता था। माला के दाने फर्श पर विखर जाते थे। उन्हें वीनने के लिए चारों ओर से नौकर झपट पड़ते थे। टूटी हुई माला के विखरे हुए दानों से नौकरों की जेवें भर जाती थीं।

महाराजा दिलीपसिंह वर्षों तक मेरे संरक्षण में रहा। मुझे वह अपनी मां की तरह मानता था। उनकी असली मां रानी जिंदा नेपाल के राजा राणा जंगवहादुर की लड़की थी। राजा रणजीतसिंह की पराजय के बाद वह नेपाल चली गयी थी। दिलीपसिंह के दिल में अपनी असली मां के लिए कोई आदर नहीं था। ईसाई होने के बाद तो उसने मां-वाप को याद करना भी छोड़ दिया था।

अब वह महारानी विक्टोरिया को ही राजमाता मानता था और अंग्रेज परिवारों में इतना हिल-मिल गया था कि उसने लंदन को ही अपनी मातृभमि मान लिया था।

महारानी विक्टोरिया भी दिलीपसिंह में वड़ी दिलचस्पी लेती थीं। एक वार उसने दिलीपसिंह को प्रेरणा दी कि वह एक अंग्रेज कलाकार मिस्टर विंटर साल्टर द्वारा अपना चित्र वनवाये। चित्रकार के सामने दिलीपसिंह को प्रतिदिन कई घंटे वैठना होता था। यह क्रम लगभग एक महीने तक चला। इस वीच महारानी विक्टोरिया खुद भी कई वार राजमहल के कलाकक्ष में वैठकर चित्र

महारानी विक्टोरिया

वनता हुआ देखती थीं। मुझे तो वहां दिलीपसिंह के साथ सारे समय उपस्थित रहना ही पड़ता था। इसलिए उन दिनों महारानी विक्टोरिया से प्रायः रोज ही भेंट हो जाया करती थी।

महारानी विक्टोरिया और कोहेनूर :

एक दिन अचानक ही महारानी विक्टोरिया मेरे पास आयीं, मैं घवराकर उठ वैठी। मेरे कंधे पर हाथ रखते हुए महारानी ने कहा—"तुम दिलीपसिंह से एकांत में यह पूछना कि उसे कोहेनूर हीरा छिन जाने का कोई दुःख तो नहीं है।" महारानी ने यह भी कहा कि इस बात का जवाब एक सप्ताह के अंदर ही मिल जाना चाहिये।

मैं रोज दिलीपसिंह से यह प्रश्न पूछने की वात सोचती थी; मगर जवान से कह नहीं पाती थी। इसी ऊहापोह में छः दिन वीत गये। सातवें दिन जब दिलीपसिंह और

मैं मोटर पर बैठकर राजमहल की ओर आ रहे थे, तो मैंने आखिर यह प्रश्न पूछ ही लिया –"तुम्हें कोहेनूर हीरे का महारानी विक्टोरिया के पास चले जाने का दुःख है या नहीं ?"

मेरा सवाल सुनकर दिलीपसिंह के चेहरे पर जो भाव आये, उन्हें मैं पूरी तरह समझ नहीं पायी। मुझे चिंता यह थी कि अगर कोहेनूर का नाम सुनकर उसके मन में विद्रोह जाग उठेगा और वह नाराजगी जाहिर करेगा, तो मैं महारानी को क्या जवाब दूंगी और उस जवाब से महारानी अप्रसन्न तो नहीं हो जायेंगी।

मेरे प्रश्न का उत्तर देते हुए दिलीपसिंह ने कहा–"दुःख तो मुझे अवश्य है।" यह सुन-कर मेरा मन और भी कांप गया कि आगे न जाने वह क्या कहने वाला है। लेकिन आगे उसने जो बात कही, उससे मेरी चिंता ही दूर नहीं हुई, बल्कि खुशी की लहर भी दौड़ गयी।

दिलीपसिंह ने कहा–" मुझे दुःख इस बात का है कि जब यह हीरा महारानी को भेंट किया गया था, तो मैं बहुत छोटा था, अभी होश में भी नहीं आया था; केवल संधि-पत्र पर दस्तखत करवाकर मुझे मज-बूर किया गया था कि मैं हीरा महारानी को समर्पित कर दूं। किंतु अब मैं बड़ा हो गया हूं। अब मैं पूरे होश-हवास में यह हीरा अपने हाथों महारानी को भेंट करूंगा।"

उस दिन जब महारानी कलाकक्ष में आयीं, तो अपने साथ कोहेनूर हीरा भी काले मखमली कपड़े में लपेटकर लायीं और दिलीपसिंह को देते हुए पूछा–"यह हीरा पहचानते हो ?"

दिलीपसिंह ने हीरा अपने हाथ में लिया, बड़े ध्यान से देखा और पास की खुली खिड़की की ओर गया। वहां उसने सूर्य की किरणों में कोहेनूर की आभा देखी। मेरा दिल धड़क रहा था कि कहीं कोहेनूर की निराली चमक देखकर दिलीपसिंह के मन में अपनी खोयी हुई चीज फिर हथिया लेने का लोभ न जाग जाये।

लेकिन ऐसा नहीं हुआ। दिलीपसिंह बड़े स्वस्थ चित्त से महारानी के पास गया और कहा –"महारानी, बड़ी खुशी है कि आपने मुझे स्वयं आपकी सेवा में यह अनमोल भेंट देने का अवसर दिया।" महारानी को यह सुनकर अपार हर्ष हुआ। उस दिन से दिलीप-सिंह और महारानी के संबंध और भी प्रगाढ़ हो गये।

★

उदास आदमी दफ्तर में अपने सहयोगी को बता रहा था–"अपनी घर वाली से मेरा खूब जोर से झगड़ा हुआ और उसने बच्चों की कसम खाकर कहा कि वह तीस दिन तक मुझसे नहीं बोलेगी।"

"तब तो तुम्हें खुश होना चाहिये।"

"खुश होऊं ? आज तीसवां दिन है।"

अंतरिक्ष में उपद्रव

ली एडसन के एक लेख पर से आधारित

"श्यामल, स्तब्ध गगन में, द्योतित शांत सितारे"......इस काव्य-पंक्ति को आप सुंदर कहेंगे या घिसी-पिटी, यह इस पर निर्भर है कि आप पुरानी कविता से प्यार करते हैं या नयी कविता से। किंतु खगोल-शास्त्री को यह पंक्ति सर्वथा नहीं रुचेगी; क्योंकि वह जानता है कि नक्षत्रों की दुनिया न निःस्तब्ध है न प्रशांत; बल्कि उसमें हर-दम भीषण उथल-पुथल मची रहती है।

क्रीमिया से लेकर अरेसिबो तक की वेध-शालाओं और प्रयोगशालाओं ने दूरबीनों से लेकर कंप्यूटरों तक विविध साधनों के द्वारा ब्रह्मांड का जो नया चित्र खींचा है, वह बड़ा भीषण है। उसमें तारों का जन्म, तारों की मृत्यु, तारों का विस्फोट, सभी कुछ भीषण हिंसा के साथ घटित होता रहता है। कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के खगोलज्ञ ज्योफ्री बर्बिज इन्हें हिंसात्मक घटनाएं कहते हैं और इनमें कई तो इतनी विशाल और इतनी भीषण होती हैं कि कई वैज्ञा-निकों का कहना है कि उन्हें पूरी तरह समझ पाने के लिए सर्वथा नये भौतिक सिद्धांत आवश्यक होंगे।

कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के सैद्धांतिक खगोल प्रतिष्ठान के अध्यक्ष प्रो० फ्रेड हाय्ल का कहना है—"आज हम वैसी ही बड़ी क्रांति के द्वार पर खड़े हैं, जैसी कि कोपर्निकस के वाद हुई थी।"

विक्षुब्ध और अशांत ब्रह्मांड की इस कल्पना की पुष्टि करने वाली नवीनतम खोज है पल्सर—अंतरिक्ष का वह दोलायमान पिंड, जिसकी खोज को एक बड़े वैज्ञानिक ने "१९६८ का वैज्ञानिक बम-विस्फोट" कहा है। सचमुच पल्सर वैज्ञानिकों के लिए बड़े आश्चर्य का विषय था। क्योंकि एक तो, किसी भी ताराभौतिकी सिद्धांत से उनके अस्तित्व की भविष्यवाणी नहीं हुई थी। और दूसरे, उनकी विचित्र लयपूर्ण गति ने सृष्टि-विज्ञानियों को अचंभित कर दिया है। वे सर्वथा सुनिश्चित अवधि के अंतर से १/३० सेकेंड से लेकर ३ सेकेंड तक अतितीव्र रेडियो-तरंगें छोड़ते हैं।

वैज्ञानिकों ने जब इन कंपनों के स्रोतों के स्वरूप का विश्लेषण किया, तो और भी विस्मयकारी चीजें सामने आयीं। सिद्ध हुआ कि खगोलीय दृष्टि से पल्सर बहुत ही छोटे पिंड हैं, सिर्फ दस मील व्यास के, अर्थात् ब्रह्मांड के अधिकांश ज्ञात पिंडों से छोटे। लेकिन इतने छोटे होते हुए भी वे बहुत विशाल मात्रा में ऊर्जा बाहर फेंक रहे हैं। ३७ पल्सरों की तालिका अब तक बन चुकी है और वे आकाश के सबसे तीव्र रेडियो-स्रोत हैं।

ये रेडियो-स्रोत क्या हैं, और कहां से आये? इनका शेष विश्व से क्या संबंध है? प्रथम चार पल्सर कैम्ब्रिज की मुलार्ड रेडियो वेधशाला ने खोजे थे। उसी वेधशाला के एक वैज्ञानिक एंटनी ह्यूइश ने पहले यह धारणा व्यक्त की थी कि लोकांतरवासी जीव ये संकेत भेज रहे हैं। उड़न-तश्तरियों के भक्त इससे पुलकित हो उठे। पर शीघ्र ही वैज्ञानिकों ने और खुद ह्यूइश ने भी इस व्याख्या को असंतोषजनक कह दिया। एक तो इस रेडियो-प्रसारण से दक्षता का अभाव प्रकट होता था, फिर उसका कोई अर्थ भी नहीं निकलता था। जैसा कि एक खगोलज्ञ ने कहा है, सचमुच अगर लोकांतरों में बुद्धिमान जीव हैं, तो क्या वे बस 'बीप-बीप' कहते रहेंगे?

अगली कल्पना यह थी कि पल्सर ऐसे तारे हैं, जो भीषण विस्फोट के दौरान तेजी से चक्कर काट रहे हैं। इस कल्पना से प्रेरित होकर वैज्ञानिक आकाश के उन प्रदेशों की छान-बीन करने लगे, जहां ऐसे विस्फोट के खंडहर मिलने की ज्यादा संभावना थी। और उनकी खोज सफल हुई।

सन १९६८ सर्वप्रथम एरिजोना विश्वविद्यालय (अमरीका) के खगोलशास्त्री प्रकाशीय दूरबीन से पल्सर देखने में सफल हो गये। इसके कुछ समय बाद कैलिफोर्निया (अमरीका) की लिक वेधशाला के खगोलज्ञों ने पल्सर की सेकेंड में तीस बार जलने-बुझने वाली किरणों की तस्वीर लेने में सफलता प्राप्त की। उन्होंने देखा कि पल्सर की रेडियो नब्ज और प्रकाशीय नब्ज की रफ्तार एक ही है।

और यह धड़कता हुआ रहस्यमय पिंड मिला कहां पर? क्रैब्र नीहारिका के केंद्र में, जो कि एक तारा-विस्फोट (सूपर नोवा) का अवशेष है। यह विस्फोट इतना बड़ा था कि सन १०५४ में उससे मध्यान्ह में सारा आकाश चकाचौंध हो उठा था और चीनी खगोलज्ञों का ध्यान उसकी ओर गया था। आज भी वह ६,५०० प्रकाश-वर्ष की दूरी से पृथ्वी पर ऊर्जा भेज रहा है।

यह पल्सर केवल प्रकाश ही नहीं, बल्कि गामा-किरणें और 'क्ष' किरणें भी पृथ्वी पर भेज रहा है और संभव है, ब्रह्मांड-किरणें भी भेज रहा हो।

आजकल ऐसा माना जा रहा है कि पल्सर अपनी धुरी पर घूमता हुआ न्यूट्रान-तारा है। अर्थात् वह नाभिकीय द्रव्य का ठंडा और बहुत ही ठोस पिंड है। उसका निर्माण तब होता है, जब तारे का संपूर्ण

ईंधन, जो उसे गर्म और चमकीला रखे हुए था, बिलकुल समाप्त हो जाये।

तारों की मृत्यु के प्रमुख अध्येता किप थोर्न कहते हैं कि पल्सर "भीमकाय आकाशीय लट्टू है, जो अपने आखिरी चक्कर काट रहा है।" उनका खयाल है उसकी घूमती हुई काया पर कोई देदीप्यमान स्थल हैं, और वही उस धड़कते हुए संकेत का कारण है।

तारों के जन्म-मरण के सामान्य सिद्धांतों की उद्भावना १९३० वाले दशक में हुई। वैज्ञानिक उन दिनों परमाणु-ऊर्जा के विकास में दिलचस्पी ले रहे थे और उन्होंने देखा कि हमारा सबसे निकटवर्ती तारा सूर्य मानो एक कढ़ाई है, जिसमें २ करोड़ फारनहाइट के भीषण तापमान पर नाभिकीय प्रक्रियाएं चल रही हैं।

सन १९३८ में कार्नेल (अमरीका) के हान्स बीथ ने सूर्य की इस रसोई का सिलसिलेवार वर्णन किया। उन्होंने बताया कि किस प्रकार हाइड्रोजन ईंधन से हीलियम उत्पन्न होता है और फिर अति विशाल मात्रा में ऊर्जा निकलती है, जो कि पृथ्वी तथा अन्य ग्रहों को गर्म और प्रकाशित करती है। उन्होंने यह भी दिखाया कि किस प्रकार ताप-उत्पादन का यह चक्र अपने को चालू रखता है। तीस साल बाद इस खोज के लिए बीथ को नोबेल पुरस्कार मिला।

तारे को देदीप्यमान बनाये रखने वाली नाभिकीय प्रक्रिया का पता चल जाने पर और भी बहुत-से राज खुलने लगे। उदाहरणार्थ, अब यह पता चला कि जिन तत्त्वों से विश्व का सारा द्रव्य बना है, उन सबका निर्माण तारों के गर्भ में हुआ है, जहां तापमान इतना ऊंचा है कि उनमें हल्के तत्त्व भारी तत्त्वों में परिणत हो सकते हैं।

कितनी विचित्र बात है कि गुरुत्वाकर्षण-शक्ति, जो कि विश्व की सबसे कमजोर शक्ति है, तारों के जन्म में धाय का काम करती है! हाइड्रोजन सृष्टि का आदि द्रव्य है। गुरुत्वाकर्षण अपरिमेय हाइड्रोजन परमाणुओं पर प्रभाव डालता है और उन्हें समीप लाता है, जिससे वे भंवरदार बादल का रूप धारण करते हैं। इसमें बड़ा लंबा समय लगता है।

फिर जब परमाणु बादल के केंद्र की ओर खिंचने लगते हैं, वे रफ्तार पकड़ लेते हैं। वे आपस में टकराते हैं और ताप उत्पन्न करते हैं। बादल जब और सिकुड़ता है, तो ज्यादा टक्करें होती हैं और ज्यादा ताप पैदा होता है। होते-होते अंत में प्रकाश निकलने लगता है और बादल चमकदार हो उठता है। लीजिये, तारे का जन्म हो गया।

पिछले कुछ वर्षों में लिवरमोर (कैलिफोर्निया, अमरीका) के विशाल कंप्यूटर की सहायता से इसका पूरा नक्शा बनाया जा सका है कि किस प्रकार विविध प्रक्रियाओं में से तारे का उद्भव, विकास और अंत में ह्रास होता है। लिवरमोर के इसी कंप्यूटर की मदद से वैज्ञानिकों ने हाइड्रोजन बम के विस्फोट में होने वाली घटनावली के सिलसिले को समझा।

इस कंप्यूटर से 'गुरुत्वाकर्षणीय निपात' (ग्रैविटेशनल कोलैप्स) की प्रक्रिया की तहकीकात की गयी और उससे तारे की मृत्यु का पूरा-पूरा कार्यक्रम बन गया, जिसे अधिकांश वैज्ञानिकों ने प्रामाणिक माना है।

कोई बड़ा तारा लीजिये, हमारे सूर्य से कम-से-कम १.४ गुना बड़ा तारा। जब यह अपना सारा न्यूक्लीय ईंधन जला चुकेगा, तो जिस गुरुत्वाकर्षण के कारण तारे का जन्म हुआ था, उसी गुरुत्वाकर्षण के कारण परमाणु एक-दूसरे पर ढहने लगेंगे और तारे का द्रव्य अधिकाधिक घना होता जायेगा। इससे तारा सिकुड़ने लगेगा, उसकी रफ्तार बढ़ती जायेगी, उसके परमाणुओं में अधिकाधिक टक्करें होने लगेंगी, और बहुत ऊंचा—शायद एक अरब डिग्री का—तापमान पैदा होगा। अंत में इलेक्ट्रानों और नाभिकों का घना प्लाज्मा बन जायेगा।

फिर गुरुत्वाकर्षण की प्रचंड शक्ति प्लाज्मा के नाभिकों को भी तोड़कर उन्हें न्यूट्रानों और प्रोटानों में बांट देगी। ढहने का सिलसिला तभी बंद होगा, जब तमाम न्यूट्रान एक विराट नाभिक में सिमट जायेंगे, यही न्यूट्रान तारा है। संभव है, ढहने के दौरान उपजी शक्तियां तारे के बाहरी खोल को सुलगा दें और उससे नाभिकीय विस्फोट या तारा-विस्फोट हो जाये। विस्फुटित होता हुआ तारा इतनी अधिक रोशनी उत्पन्न करता है कि वह आकाश के किसी भी पिंड से शायद एक अरब गुना अधिक चमकीला हो उठता है।

कुछ अवस्थाओं में संभव है कि न्यूट्रान तारा और भी सिकुड़ता चला जाये और ऐसी स्थिति में पहुंच जाये, जिसमें अत्यंत प्रबल गुरुत्वाकर्षण के कारण न्यूटन के गति-नियम भी बेकार हो जायें। प्रकाश की तरंगें तब कैद होकर रह जायेंगी और बाहर नहीं निकल सकेंगी। उस हालत में तारा ज्ञात ब्रह्मांड से विलुप्त हो जाता है और मानो आकाश में एक काला छेद बन जाता है।

तारा-विस्फोट तो बस अंतरिक्ष की एक हिंसात्मक घटना है, जो खगोलज्ञों के परिचय में आयी है, जबकि दिगंत में ऐसी अनेक प्रकार की घटनाएं घट रही हैं। १९५० के दशक में खगोलशास्त्री वाल्टर बाड पालोमार वेधशाला में थे। यह जानकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ कि रेडियो-खगोलज्ञों ने अंतरिक्ष में कितने सारे रेडियो-स्रोतों का पता लगा लिया है! उन्होंने इनमें से सबसे अधिक सशक्त स्रोतों की ओर पालोमार की दूरबीन मोड़ी और उसमें से देखा, तो एकदम खुशी से उछल पड़े। ये स्रोत दूरबीन से देखे जा सकने वाली आकाशगंगाओं से संबंधित थे।

दो आकाशगंगाओं की नाभियों को एक दूसरे के निकट देखकर बाड ने अनुमान लगाया कि यह दो आकाशगंगाओं के टकराने और एक-दूसरे में घुस जाने का दृश्य है। दूसरे कई खगोलज्ञों ने इसे आमने-सामने से आती हुई दो कुंतलाकार आकाशगंगाओं की भिड़ंत माना। मगर ये मान्यताएं ज्यादा दिन तक नहीं टिकीं; क्योंकि

ऐसी भिड़ंत से इतने प्रवल रेडियो-संकेत नहीं उपज सकते थे।

जब रेडियो-आकाशगंगाओं को लेकर यह सब गहमागहमी चल रही थी, तभी एक और अतिरहस्यमय वस्तु के अस्तित्व का पता चला। यह था एक तारोपम पदार्थ (क्वेसी-स्टेलर), जिसे अब 'क्वासर' कहा जाने लगा है। पहले पहल इसे अमरीका और आस्ट्रेलिया के खगोलज्ञों ने देखा और १९६३ में कालटेक विश्वविद्यालय (अमरिका) के मार्टेन श्मिट ने कहा कि यह एक सर्वथा नये किस्म का आकाशीय पिंड है।

इस सारे मामले की शुरूआत इस तरह हुई। कुछ अजीबो-गरीब रेडियो-संकेत काफी समय से आ रहे थे और ऐसा समझा जाता था कि वे हमारी आकाशगंगा के छोर पर स्थित अत्यंत क्षीण तारों से आ रहे हैं। इनमें से एक-दो की टोह दूरबीन से बड़ी सावधानी से ली गयी और उनसे आने वाले प्रकाश का विश्लेषण वर्णक्रम-दर्शक (स्पेक्ट्रम) द्वारा किया गया।

शुरू में ऐसी धारणा बनी कि यह प्रकाश किसी तारा-विस्फोट के अवशेषों से आ रहा है, जिनमें बड़े विचित्र रासायनिक तत्त्व हैं। लेकिन बाद में स्पष्ट हो गया कि हैं तो उसमें भी वही हाइड्रोजन और आक्सिजन आदि सुपरिचित तत्त्व, मगर वर्णक्रम-दर्शक में वे नीले छोर से लाल छोर की ओर सरक गये हैं, जिधर तरंगें दीर्घतर होती हैं।

लाल छोर की ओर इस संसरण (रेड शिफ्ट) ने मानो समस्याओं का पिटारा ही

क्रैब नीहारिका

खोल दिया। वर्णक्रम-दर्शक में इस प्रकार के स्थान-परिवर्तन (शिफ्ट) तब होते हैं, जब प्रकाश की तरंगें या तो दर्शक से दूर हट रही हों, या दर्शक की ओर बढ़ी आ रही हों। इस तथ्य का पता उन्नीसवीं सदी में क्रिश्चियन डाप्लर ने लगाया था। इसलिए इसे 'डाप्लर प्रभाव' कहा जाता है।

जब किरणें दर्शक की ओर अग्रसर हो रही होती हैं, तो तरंगें निकट आ जुटती हैं और यह दर्शक को तरंगों की दीर्घता के ह्रास (अथवा ब्लू-शिफ्ट) के रूप में दिखाई देता है। जब प्रकाशमान पदार्थ दर्शक से परे हट रहा होता है, तरंगें दूर-दूर हो जाती हैं, और दर्शक को लगता है कि तरंगों की लंबाई बढ़ गयी है। यही 'रेड शिफ्ट' है।

खगोलज्ञों के लिए इस 'रेड शिफ्ट' का विशेष महत्त्व है। क्योंकि इससे पता चलता है कि दूरवर्ती पदार्थ कितने वेग से हमसे परे हट रहा है। वास्तव में आकाशगंगाओं की 'रेड शिफ्ट' से ही हमें इस तथ्य का पता चलता है कि आकाशगंगाएं बाहर की ओर भागती जा रही हैं, अर्थात् ब्रह्मांड का

विस्तार हो रहा है।

क्वासारों का 'रेड शिफ्ट' बेहद अधिक पाया गया। इसका यह अर्थ था कि ये पिंड इतनी दूरी पर और इतनी अधिक तेजी से हमसे परे हट रहे हैं, जिसकी अब तक कल्पना भी नहीं की गयी थी। एक क्वासार २८,००० मील प्रति सेकेंड की रफ्तार से हमसे हट रहा है और वह पृथ्वी से १।। अरब प्रकाश वर्ष की दूरी पर होगा। अन्य कई क्वासार तो इससे भी अधिक दूर हैं और इससे भी अधिक तेजी से हमारी आकाश-गंगा से दूर भागे जा रहे हैं। यदि यह सच है, तो हम अभी उनका जो प्रकाश देख रहे हैं, वह १० अरब पूर्व जब सृष्टि बनी, उसके कुछ समय पश्चात् ही उत्पन्न हुआ होगा।

श्मिट ने जब क्वासारों की खोज की, उसके बाद से क्वासारों के संबंध में काफी अध्ययन और पर्यवेक्षण हो चुका है। फिर भी न उनका रहस्य खुला है, न विवाद समाप्त हुए हैं। विवाद इस बात का है कि क्या रेड शिफ्ट डाप्लर प्रभाव के कारण है? यदि वैसा है, तो सचमुच क्वासार अत्यंत दूरवर्ती पदार्थ हैं। यदि रेड शिफ्ट का कारण और कुछ है, तो संभव है, क्वासार उतने दूरस्थ न हों, बल्कि हमारी ही आकाश-गंगा के सदस्य हों।

क्वासार की गुत्थी सुलझाने के लिए खगोलशास्त्रियों को नयी खोजों की राह देखनी पड़ेगी। मगर कुछ साहसी विज्ञा-नियों ने इनकी मदद से "सृष्टि कैसे बनी? इसका अंत कैसे होगा?" जैसे यक्ष-प्रश्नों के उत्तर खोजने की चेष्टा की है।

सृष्टि-निर्माण के संबंध में दो ही सिद्धांत अधिक प्रचलित हैं। एक सिद्धांत लेमेत्र ने सुझाया था और बाद में जार्ज गैमोव ने उसका पूर्ण विकास किया। इसके अनुसार, सृष्टि १० अरब साल पहले एक विशाल अग्नि-गोले के विस्फोट से आरंभ हुई। इसे 'महाविस्फोट सिद्धांत' कहते हैं।

इसके विरुद्ध प्रो० फ्रेड हाय्ल ने 'सतत-सृष्टि' का सिद्धांत विकसित किया। इसके अनुसार सृष्टि सदा लगभग ऐसी ही रही है, जैसी अब दीखती है। जो पिंड दूर सरक-कर ओझल हो जाते हैं, उनका स्थान लेने के लिए नया-नया पदार्थ निर्मित होता रहता है। सृष्टि कोई एक घटना नहीं है, जो किसी निश्चित समय पर हुई। वह तो एक सतत चल रही निर्माण प्रक्रिया है।

क्या यह भी संभव है कि हमारी आकाश-गंगा भी एक दिन फट पड़े या दूसरी आकाश-गंगा से टकरा जाये।

अधिकांश खगोलज्ञ मानते ह कि यह संभव है, मगर अत्यंत सुदूर भविष्य में कभी। ब्रह्मांड में बहुत खाली स्थान है और विस्फोट की तैयारी में इतना ज्यादा समय लगता है, जो पृथ्वी के जीवों के आयुष के हिसाब से बेहद लंबा है। सो घबराने की आवश्यकता नहीं। टक्कर तो और भी विरली घटना है।

इसलिए अंतरिक्ष में चलने वाली हिंसा से हमें उतना घबराने की आवश्यकता नहीं। पृथ्वी पर जो हिंसा चलती है, उसकी चिंता हम करें, यह अधिक जरूरी है।

★

चोर और चोरियां

लेखक दीर्घकाल तक पुराने मैसूर राज्य के उच्च कर्मचारियों में रहे। अनुभवों की विविधता और शैली की सरसता के लिए उनकी आत्मकथा 'केलवु नेनपुगलु' (कुछ स्मृतियां) कन्नड साहित्य की विशिष्ट कृति समझी जाती है। पुलिस और प्रशासन विभाग में अपने कार्यकाल में चोरों के विषय में प्राप्त रोचक अनुभवों के आधार पर उन्होंने अपने जीवन के अंतिम दिनों में प्रस्तुत लेख लिखा था।

नवरत्न रामराव

चोरी बहुत पुराना धंधा है। पदार्थों के स्वामित्व और स्तेय इन दोनों को जुड़वां प्रथाएं कह सकते हैं। यह रिवायती बात है न कि इस संसार की वस्तुओं को अपना समझना अज्ञान है। अपने भाइयों के इस अज्ञान को कृपापूर्वक निवारण करने वाला गुरु है चोर।

चोरी एक कला है। चौंसठ विद्याओं में प्राचीन काल से ही इसका प्रतिष्ठित स्थान है। इस कला का प्राण है, पराया समझे जाने वाले माल को मालिक की अनुमति के बिना अपना बना लेना। वह इसे चोरी कहता है, यह इसे कमाई—अपने साहस का पारिश्रमिक मानता है। नाम में क्या रखा है!

सभी धंधों की भांति इसमें भी निपुणता का तारतम्य है। देखिये न, भूखे बालक का दुकानदार की नजर बचाकर एक रोटी उठाकर भाग जाना और किसी करोड़पति का बैंक को डुबाकर, हजारों लोगों द्वारा पेट काटकर वक्त-जरूरत के लिए रखवाया हुआ सब-कुछ स्वाहा कर जाना—इन दोनों में कितना फर्क है!

चोरों में भी पेशेवर, शौकिया—ये दो भेद होते हैं। अकस्मात्, अथवा मनोविनोद के लिए या लाचारी में कोई काम करने वाले में और उसी पेशे वाले कुल में जन्म लेकर गुरुजनों से प्रशिक्षण पाकर उन्हीं के चरण-चिन्हों पर चलने वाले कलाधर में अपार अंतर होता है। संगीत, हुनर, प्रशासन—सभी कलाओं में यह अंतर स्पष्ट दिखाई देता है। चोरी में भी यही बात है। उसमें निपुणता और मनोवृत्ति की विशेषताओं को दिखाने वाले कुछ किस्से सेवा में प्रस्तुत करना चाहता हूं।

उत्तम वर्गीय चोर को धीरोदात्त चोर कह सकते हैं। अगर वह दो-तीन सदी पहले किसी अच्छे नक्षत्र में जनमा होता, तो शायद जागीर या रियासत की नींव डालकर एक कुल का मूलपुरुष बन गया होता। उसकी सिंहगति होती है। उसके बसाव में भी एक

नीति-नियम होता है। अनावश्यक रूप से हिंसा नहीं करनी चाहिये। उपकार को भूलना नहीं चाहिये। अपकार को क्षमा नहीं करना चाहिये। सिर्फ धनियों को लूटना चाहिये। गरीवों पर रहम खाना और मुसीवत में उनकी मदद करनी चाहिये। जो अपने आश्रित हैं, उनका अपने प्राणों की भांति रक्षण करना चाहिये। भाग्य के वंटवारे में भगवान के पक्षपात से जो अन्याय हुआ है, उसे यथाशक्ति सुधारना ही वह अपना उद्देश्य मानता है।

प्रायः जब यह अधिकारियों के हाथ में पड़कर रस्सी के रास्ते परमधाम को सिधारता था, अनेक जन इसके लिए आंसू वहाते थे। अथवा यह अंत में दुनियादारी छोड़कर संन्यासी वनकर परलोक पर धावा बोलने की कोशिश करता था। इंग्लैंड का राविनहुड इसी वर्ग का था।

हमारे देश में भी ऐसे वहुत-से थे। इनमें से एक की कथा मैंने वचपन में वड़े आदर के साथ सुनी थी। उसका नाम था गंगेनहल्ली मार नायक। ('गंगेनहल्ली' उसके गांव का नाम था।) आदमी आजानुवाहु था; अंग-प्रत्यंग ऐसे कि जैसे काले चंदन को तराशकर बनाये गये हों। गरीवों पर इसे वड़ी करुणा थी; वृद्धों और स्त्रियों पर आदर था; वच्चों पर प्यार था। अंत में जब मैसूर में अंग्रेजी राज्य के दिनों में गोरों ने इसे पकड़कर सूली पर चढ़ाया, तो सुनते हैं सारी तहसील रो पड़ी थी। मैंने उसे नहीं देखा था। मेरे जन्म से पहले ही उसका कैलासगमन हो चुका था। मगर जिन्होंने उसे देखा था, उनसे उसके किस्से सुन चुका हूं। उनमें से एक किस्सा सुनिये :

हमारा स्वस्थान है देवनहल्ली। हैदर अली को ख्याति दिलाने वाले स्थान व टीपू सुलतान के जन्मस्थान के रूप में यह प्रसिद्ध है। जब मैं गोटी खेलने वाला छोकरा था, यह छोटा-सा कस्वा था; और यह किस्सा उससे भी पचास वरस पहले का है। देवनहल्ली के किले में गोपालकृष्णजी का मंदिर है; मंदिर का प्रवेश-मार्ग ही कस्वे का राजमार्ग था। उसके दोनों वाजू वैदिक-वृत्ति के व्राह्मणों के घर थे। पीने का पानी शहरपनाह के बाहर तालाब से लाना पड़ता था। जो बहुत नैष्ठिक थे, छुआछूत मानते थे, सवेरे मुंहअंधेरे ही तालाब पर जाकर स्नान करके पूजा और पकाने-पीने के लिए पानी ले आते थे।

जब का यह किस्सा है, तब देवनहल्ली में पांडुरंगी केशवाचार और तुलसाबाई नाम के निर्धन व्राह्मण दंपति थे। ऐश्वर्यवंतों से विहीन उस बस्ती में उनसे बढ़कर गरीब कोई भी न था। अपना यौवन, अन्योन्य-अनुराग, अल्प में संतोष—यही उनकी संपदा थी। केशवाचार यहां-वहां पूजा-पुरोहिताई, भिक्षा करके जो कुछ लाते, तुलसाबाई पास-पड़ोस में कुटाई-पिसाई करके कमाये हुए चार पैसे उसमें मिलातीं और इज्जत के साथ उनका गुजारा हो जाता था। सब यही कहते—"कितने भले हैं बेचारे!"

दोनों बहुत आचारनिष्ठ थे, इसलिए

प्रतिदिन तुलसाबाई मर्गे के बांग देने से पहले ही उठतीं, तालाब पर भीड़ जुटने से पहले ही वहां पहुंचकर बर्तन मांजकर, कपड़े धोकर घर पानी ले आया करतीं। एक दिन वे नित्य की भांति मुंहअंधेरे ही तालाब पर गयी हुई थीं कि उन्होंने एक आदमी को आपाधापी में भागकर आते देखा। वह "आदमियों से अंगुल भर ऊंचा" आजानुबाहु था; मगर थकान से, प्राणभय से उस समय बेहाल था। तालाब के किनारे आते ही वह पानी में कूदकर वहां गले तक पानी में डूबकर सिर्फ सिर बाहर निकाले पानी में घास की ओट में छिप गया।

तुलसाबाई बेहद डर गयीं। मांजने के लिए पसारे हुए बर्तनों को छोड़कर भाग जाने का खयाल मन में आया। मगर उन गरीबों के लिए बर्तन बहुत बड़ी मिल्कियत थी। फिर वे नहाने के लिए फटी साड़ी का टुकड़ा पहने हुए थीं; सो भागें भी तो कैसे? वे यह सब सोच ही रही थीं कि सरपट आते हुए घोड़ों की टाप सुनाई दी। सिर उठाकर जो देखा, तो चार घुड़सवार, जिनका मुखिया फिरंगी था, घोड़ों समेत आकर तालाब के बंद पर खड़े हो गये और जैसे कुछ खोज रहे हों, ऐसे इधर-उधर झांकने लगे। कुछ देर बेकार ढूंढ़ने के बाद फिरंगी हिन्दुस्तानी में तुलसाबाई से कुछ पूछने लगा। एक सवार ने उसका अनुवाद किया—कप्तान साहब पूछते हैं, क्या अभी यहां कोई दौड़कर आया?

बेचारी बड़ी समस्या में फंस गयीं। हाथ-पांव कांपने लगे। जीभ तालू से चिपक गयी। अव्वल उनसे बातें कैसे करें? मारे डर के मुंह सूख रहा था। यों भी कोर्ट-कचहरी और सरकार से उस गरीब ब्राह्मणी का क्या लेना-देना? यों भी शायद ये उस गरीब को मारने ही आये हों। वे क्यों इस पाप में साझीदार बनें? प्राणभय से, बेहद थकान से विकृत उसका चेहरा उनकी आंखों के सामने घूम गया। इस पसोपेश के कारण वे चुप ही रहीं।

स्व० नवरत्न रामराव

कप्तान ने उतावली में गुस्से में कुछ पूछा। ये बेचारी कुछ न सूझने के कारण लगीं रोने। रोना ही औरतों का आखिरी आधार होता है न! एक सवार बोला—"इस बुढ्ढ औरत को कुछ नहीं पता है।" तो फिर वक्त क्यों बरबाद किया जाये, शायद यह सोचकर सवारों की वह टुकड़ी सरपट आगे बढ़ गयी। तुलसाबाई अपनी घबराहट को जैसे-तैसे काबू में करके स्नानादि से निबटकर घर पहुंचीं और सारा वाकया पतिदेव को सुनाया। वे भी बोले—"खैर सही-सलामत आ तो गयी! सरकार के टंटे में हम क्यों

पड़ें! अब किसी से यह बात न कहना।"
और बात खत्म हो गयी।

इसके दो-तीन दिन बाद सारे कस्बे में लोगों की जबान पर यह बात थी कि गंगेन-हल्ली मार नायक ने शिड्लघट्टा में भयंकर डाका डाला था, उसे पकड़ने के लिए घुड़-सवार फौज हमारे कस्बे की ओर आयी थी; मगर वह उनके हाथ नहीं लगा।

दो-तीन महीने बीत गये। फिर एक रात पांडुरंगी दंपति के घर किसी ने सेंध लगायी। सुबह तक इस ओर किसी की नजर नहीं गयी थी। देखा तो कुछ भी सामान चोरी में नहीं गया था, था ही क्या उस सुदामा के घर चोरी करने योग्य! लोग हंस रहे थे—कैसा अभागा चोर था, जो इनके घर सेंध लगायी! कुछ ने यह भी मजाक किया—"क्यों केशवाचारजी, कहीं आपने खुद ही तो सेंध लगाकर तमाशा नहीं खड़ा किया है?"

उस दिन दोपहर को रसोई के लिए चावल निकालने के लिए जब तुलसाबाई ने कुठले में हाथ डाला, तो किसी चीज से हाथ टकराया। उठाकर देखा, तो सोने का कंठा था, पचास तोले का रहा होगा। जैसे सांप छू गया हो, इस तरह चौंक उठीं वे, और आवाज देकर पति को बुलाकर कंठा उन्हें दिखाया। चिटखनी चढ़ाकर पति-पत्नी ने विचार-विमर्श किया।

"भगवान ने दिया है, रख लें"—वे कह रही थीं। "पराया गहना है; अवश्य चुराया गया है; उसके मालिक का कलेजा जल रहा होगा। भगवान का दिया भगवान को भोग चढ़ाकर प्रतिदिन पूजा करके गुजारा करने वाले लोग हैं हम। रख लेंगे तो क्या पाप नहीं लगेगा? यों आसानी से पचेगा भी नहीं। सरकार को सौंप देना ही ठीक रहेगा"—यह केशवाचार की दलील थी। अंत में उन्हीं की बात रही। कंठे को पीतांबर में लपेटकर तहसीलदार के घर ले जाकर उनके हवाल कर दिया और उसकी प्राप्ति का विचित्र किस्सा भी उन्हें सुना दिया।

तहकीकात से सिद्ध हुआ कि यह कंठा वडगेनहल्ली नामक गांव के एक साहूकार के घर से चोरी हुए माल में से था। संदेह तो यही था कि यह काम गंगेनहल्ली मार नायक का है; मगर सबूत कुछ नहीं था। सरकार ने माल साहूकार को सौंप दिया और साहूकार ने कृतज्ञतापूर्वक पांडुरंगी दंपति को सौ रुपये का पुरस्कार भी दिया।

इसके दो महीने के भीतर उस निर्धन दंपति के घर फिर सेंध लगायी गयी। इस बार उनकी कोठरी में एक टोकरी रखी थी, जिसमें आधे तोड़े हुए नारियलों की वाटियां रखी थीं और उन पर बेडौल अक्षरों में यह कुरेदा हुआ था—"आपकी किस्मत में बस यही लिखा है।" (दक्षिण भारत के मंदिरों में भगवान पर नारियल चढ़ाने पर उसे फोड़कर आधा प्रसाद के रूप में भक्त को लौटाकर आधा पुजारी अपने पास रख लेता था।)

यह किस्सा खुद तुलसाबाई हमें सुनाया करती थीं। तब वे पकी-झुकी बुढ़िया थीं।

× × ×

जब मैं शिवमोगा जिले में मजिस्ट्रेट पद

पर था, दो प्रकार के चोर वहां प्रायः शिकार के लिए आया करते थे। चोरी उनका पेशा था, उनके कुल का संप्रदाय था। एक दल को 'गंटी चउडी' कहते थे; दूसरे का नाम 'पामलोरु कुरच' के रूप में पुलिस और अदालत के दस्तावेजों में दर्ज है। दोनों का परम सिद्धांत तो चोरी ही था; मगर दोनों की रीति-नीति अलग थी।

गंटी चउडी सियार-संप्रदाय के थे, पामलोर भेड़िया-वृत्ति के। शरीर को थकाये विना, दूसरों को सताये विना चतुराई से, सब्र से, पराये माल को जैसे फल चुन रहे हों, इस तरह हथिया लेने की सूक्ष्म कला गंटी चउडियों की थी। गाज की तरह अचानक ऊपर गिरकर, आड़े आने वालों को लाठी, फरसे, गंडासे आदि से मार-काटकर जो कुछ हाथ लगे लूट ले जाना पामलोरों का भयंकर ढर्रा था।

गंटी चउडी से मेरी पहली मुलाकात तब हुई, जब मैं होन्नाली में पड़ाव डाले पड़ा था। पुलिस तीस-पैंतीस वर्ष के एक निरीह आदमी को पकड़ लायी और दरख्वास्त की कि इससे नेकचलनी का मुचलका लिखवाया जाये। पुलिस का कहना था कि अपने गांव, काम-धाम आदि के बारे में वह ठीक से कोई जवाब नहीं देता है और इस कस्बे में उसका कोई जान-पहचान वाला नहीं है, इसलिए उस पर मामला दायर किया गया है।

मैंने पूछा तो वह मराठी में बोला—"मुझे कन्नड नहीं आती; जाने इन्होंने क्या पूछा और मैंने क्या जवाब दिया! मेरा नाम रामजी है और मंदिर के दर्शन करने होन्नाली आया हूं।" बाहर के आदमी से महज चोरी के शक में नेकचलनी का मुचलका लिखाना कानूनन बहुत कठोरता है। मैंने सोचा, यह जामीन कहां से जुटायेगा? और पुलिस से कहा कि इस पर नजर रखना और अगर कोई प्रमाण मिले, तो हाजिर करना।

दो दिन बाद पुलिस इंस्पेक्टर ने कहा—"वह आसामी लापता हो गया है। पता चला कि वह गंटी चउडी था।" मैंने तुनककर जवाब दिया कि भले वह गंटी चउडियों का आदिपुरुष क्यों न हो, आप प्रमाण पेश न करें, तो दंड नहीं दिया जा सकता। फिर उनके कुलाचार के बारे में काफी कुछ पता चला।

एक दिन शिकारीपुर की पेंठ में छोटी-मोटी चोरियां करने के इल्जाम में बारह साल के एक छोकरे को पकड़कर लाया गया। उसकी जेब में आठ-दस जगह से चुरायी हुई डिबियां, कंघी, पान-सुपारी का थैला, तागे का गोला, गोटी वगैरह थीं। उस छोटे लड़के को सजा देना या उस पर जुर्माना करना बेमानी था। माता-पिता का नाम पूछो, तो वह मुंह नहीं खोलता था।

उन दिनों बाल-अपराधियों के लिए शिक्षणालय नहीं थे। बेंत लगवाकर छोड़ दें, यही रास्ता था। और बेंत लगवाने से मुझे बड़ी नफरत थी। इतने में उसकी मां जोरों से रोती-कलपती हुई आयी और कहने लगी—" सरकार, यह मेरा इकलौता बेटा है, भोला-भाला बच्चा। अभी कल ही पूजा कराकर हाथ हल्का करने के लिए हाट-

बाजार करने भेजा था। उसे सजा-वजा न दीजिये। जड़ा भी मार वह सह नहीं सकेगा सरकार!" उनकी कुल-परंपरा में वह पाटी-पूजन करके 'अ आ इ ई' सीखना शुरू किया हुआ बाल-विद्यार्थी था। ग्रहों की कृपा, बुजर्गों के आशीर्वाद, और मां के पुण्य से शायद कुशल चोर बनकर कुल की कीर्ति बढ़ाता।

एक बार गंटी चउडियों का उपद्रव बहुत बढ़ा और चोरी के माल समेत कई चोर पकड़कर मेरे सामने हाजिर किये गये। सामान्यत: वे अपना बचाव नहीं करते थे। सजा को दीर्घश्रम के बाद मिला विश्रामकाल मानकर चुपचाप उसका स्वागत करते थे। इसमें एक-दो को अपनी कला-मर्मज्ञता का घमंड भी था। एक का नाम शायद ईरिग्या था और किसी के घर के सहन में सूखने डाली हुई साड़ी चुराने के आरोप में उसे लाया गया था। चमकते चेहरे और सुंदर काठी का युवक था वह।

अभियोग सुनते ही उसका चेहरा लाल हो गया और आंखों से अंगारे बरसने लगे। जब पूछा कि क्या तुमने यह काम किया है, तो बोला—"छोड़िये सरकार, वह तो छोकरों का काम है। मैं भला क्यों करूंगा? मेरी इज्जत खराब करने के लिए इंस्पेक्टर ने यह केस चलाया है। कहते हैं, कपड़े की चिंदी चुरायी है। मैं तो बाघ मारकर उसकी खाल ओढ़ने वाला आदमी हूं।"

मैंने मुंह पर प्रसन्नता का भाव लाकर पूछा—"यह बाघ मारना क्या चीज है रे! लाठी मारकर सिर फोड़ना?" वह बोला—"हुजूर, हम कोई लुटेरे हैं जो सिर फोड़ें? हम तो नफीस काम करते हैं। सोती हुई बहुरिया की लौंग, करनफूल और करधनी उतार लेना, असली कारीगर का काम होता है।"

उसे अपनी कुशलता की डींग हांकने के जोश में देखकर मैंने छेड़ा—"क्या गप्पें हांक रहे हो? सोती हुई औरत की लौंग को हाथ लगाओगे, तो वह चौंककर उठ न बैठेगी?"

"सरकार, यह कारीगरी ही दूसरी है। सुनिये, पहले बाल का एक टुकड़ा नाक से छुआते हैं। दो-एक बार हाथ झाड़ती है। फिर चुप हो जाती है। बस, अब जैसे मक्खी बैठी हो, ऐसे हल्के-से उंगली नाक पर रख दी। इसी तरह सफाई से, आहिस्ते से पट्ठा लौंग निकाल लेता है। बस!"

"वाह गुरु! कहां से सीखी, यह विद्या? किस उस्ताद ने सिखायी?"

"सरकार, मैं कहां का गुरु! उस रोज हुजूर ने होन्नाली में मेहरबानी करके रिहा कर दिया था न रामजी नाम का आदमी, हम तो उसका नाम लेकर जीते हैं।"

वाह, क्या कमाल की प्रशंसा मिली। अधिक प्रशंसा के लालच में न पड़कर मैंने ईरिग्या को रिहा नहीं किया।

× × ×

अब पामलोरों की बात। यह हल्के-फुल्के विनोद की कथा नहीं है। वे निशाचरों की भांति रात्रिचर्या के प्रेमी होते हैं। वे किसी घर में घुस जायें, तो वहां सर्वनाश का तांडव होकर रहता है। उनकी गणना चोरों के बजाय डाकुओं में करना अधिक ठीक होगा।

★

एडो बेर्ज्समा
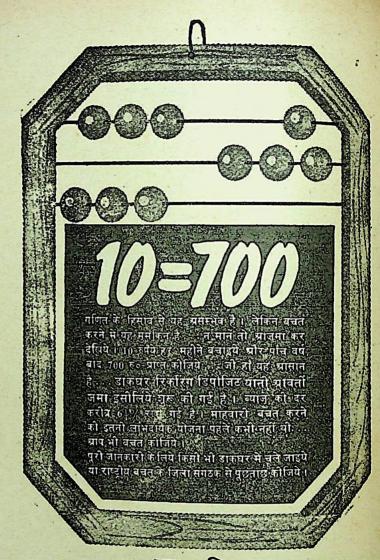
"किराये के लिए खाली" के बोर्ड पर नजर पड़ते ही वह जान गयी, बस यही है। जिंदगी उसकी नीरस और बेरौनक हो गयी थी। लेकिन एक बैंक के सामने रहना—वह भी एक सुनसान गली की एक बैंक के सामने—सचमुच रोमांचकारी होगा। वह अखबार रोज पढ़ा करती थी और उसे इसमें बिलकुल भी शक नहीं था कि ऐसा बैंक डाकुओं को अवश्य आकर्षित करेगा, जैसे शहद चींटियों को आकर्षित करता है। साथ लगा हुआ कोई मकान नहीं। सब ओर अलग-अलग सड़कें, टूटी-फूटी इमारत—आदर्श डाके के लिए आदर्श परिस्थिति।

मिस ट्रुइडा टाम ७४ वर्ष की थी। कभी मोजों की किसी निर्यात कंपनी में सेक्रेटरी थी। ६५ वर्ष की उम्र में रिटायर हुई, फिर जल्दी ही लोगों के ध्यान से उतर गयी। अब सिर्फ मृत्यु की प्रतीक्षा कर रही थी। और निश्चय ही मृत्यु उसे भूलने वाली नहीं थी। बहुत मामूली-सी पेंशन पर जीती थी। और उसकी 'हाबी' थी टेविलिजन, अखबार और कभी-कभार कोई फिल्म। लेकिन अब उसकी जिंदगी में एक नया आयाम जुड़ रहा था, कम किराये का एक कमरा, ठीक उस बैंक के सामने। रोमांच का, एडवेंचर का संभावित सूत्र ...... इसीलिए बिना झिझके उसने तुरंत वह कमरा किराये पर ले लिया और प्रतीक्षा करने लगी......

सचमुच इससे बढ़िया चुनाव नहीं हो सकता था। अपने घर के बंद परदों के पीछे से वह सब कुछ देख सकती थी। कुछ भी उसकी नजरों से छिपा नहीं रह सकता था। मैनेजर मि० हेजबॉस सवेरे ९ बजे से काफी पहले आ जाते हैं और अन्य चार कर्मचारियों—तीन लड़कियों और खजांची—के लिए अपने हाथों दरवाजा खोलते हैं और सबसे अंत में ५.३० बजे दरवाजा ठीक से बंद करके जाते हैं। खजांची बातून युवक है। वह ठीक ११.३० बजे १५ मिनिट के लिए बाहर जाता है। शायद एक कप काफी पीने घर जाता होगा। उससे भी

महत्त्व की बात, वह हमेशा ठीक ४.३० बजे, एक थैला—निश्चय ही बैंक की दिन-भर की आमदनी—लेकर बैंक से साइकल पर रवाना हो जाता है। वे दो लड़कियां—बातून कमसिनें—निरी टाइपिस्ट हैं। रह गयी सहायक मैनेजर—सदा बीमार रहने वाली अधेड़ महिला।

एक-दो सप्ताह में ही वह इन सबको खूब अच्छी तरह जान गयी, उनकी छोटी-से छोटी आदतें, उनके 'मूड', सब कुछ ......। बात अजीब है, पर जाने क्यों उसे ऐसा लगने लगा कि वह भी उनके परिवार की एक सदस्य है। और बैंक में आने-जाने से—हां, उसने वहां अपना खाता जो खोल लिया था—इस भावना को और बल मिला। उसकी तेज निगाहों से कुछ भी नहीं बचा रहता था। परदे के पीछे बैठे-बैठे ही वह छोटे-छोटे संकेतों से जान जाती थी कि सामने क्या कुछ हो रहा है।

लेकिन कुछ भी हुआ नहीं; महीना गुजर गया, साल गुजर गया। बैंक की डकैतियों के बारे में वह अखबारों में अक्सर पढ़ा करती थी। ये डाके कहीं ज्यादा विकट परि-स्थितियों में डाले गये होते थे। वह सारे ब्योरे का अध्ययन करती, लंबे-चौड़े नोट्स लेती, दिलचस्प तुलनाएं करती और उनमें काम में लाये गये अलग-अलग तरीकों पर गौर करती। लेकिन उसकी अपनी गली में कुछ भी नहीं हो रहा था। कैसी घोर लापरवाही बरत रहे थे पेशेवर डाकू!

क्योंकि यह बिलकुल स्पष्ट था कि डाका डालना बहुत ही आसान होगा। साल-भर के दैनिक अध्ययन ने यह बिलकुल स्पष्ट कर दिया था। स्वभाव से ही वह बड़ी साव-धान थी, सो उसने लंबे समय तक स्थिति का अध्ययन किया। हां, डाकुओं के हाजिर होने के लिए सर्वोत्तम समय होगा ४.२५। मैनेजर अपने आफिस में होगा, दोनों लड़-कियां घर जाने की तैयारी कर रही होंगी, खजांची अपना बैग तैयार कर रहा होगा। कई कारणों से शुक्रवार ज्यादा ठीक रहेगा; खासकर जब कि सहायक मैनेजर फिर बीमार हो। साधारणतः उस वक्त कोई ग्राहक नहीं आता, गली भी और समयों से ज्यादा सूनी होती है—डोएवस्टार्ट की पैंठ के कारण।

× × ×

शुक्रवार, जुलाई १४। ४ बजकर २५ मिनिट......

मिस टाम ने बड़ी शांति से नकाब और बंदूक लिया।

और वह चुपचाप चल पड़ी।

★

हम लोग बहुत गरीब थे। फिर भी ऐसी बहुत चीजें हमारे पास थीं, जो पैसे से नहीं खरीदी जा सकतीं। जैसे, भुगतान न किये गये बिल।

—बार्बरा स्ट्रैसैंड (फिल्म अभिनेत्री)

★

चाँदनी साबुन
का प्रयोग कर
समय बचाइये
—कपड़े जल्दी साफ़ होते हैं!
CHANDNI
BERAR OIL INDUSTRIES AKOLA
CHANDNI
SOAP
BOI
BOIAKOLA
अधिक स्वच्छ
अधिक सफेद
अधिक उजले
बरार ऑईल इन्डस्ट्रीज़, अकोला
ASP/C-13 HIN

हमारे राजनीतिक नेता अनुदार भी हैं, उदार भी। अपने पैसे के मामले में अनुदार, सार्वजनिक पैसे के मामले में उदार।

***

सख्त प्रतिस्पर्धा के बावजूद नेताजी उपचुनाव जीत गये, तो वहां से पत्नी को ट्रंककाल से समाचार देते हुए बोले—"मैं जीत गया।" पत्नी ने अविश्वास-भरे स्वर में कहा—"ईमान से ?" नेताजी झल्ला उठे—"ईमान का सवाल उठाने की क्या जरूरत है? क्या अब तुम भी विरोधी पार्टी की हो गयी हो ?"

***

नयी पीढ़ी की बुद्धिमत्ता पर लोग व्यर्थ ही संदेह करते हैं। मैट्रिक के हिन्दी पर्चे में एक प्रश्न था अपने देखे हुए सुंदरतम स्थान का वर्णन करो। एक परीक्षार्थी ने लिखा—"कश्मीर का सौंदर्य वर्णनातीत है।"

***

स्त्रियों के अधिकारों के लिए जब इंग्लैंड में उग्र आंदोलन चला हुआ था, एक अधेड़ आंदोलनकर्त्री को जेल में डाल दिया गया। उसी शाम एक किशोरी भी आंदोलन के सिलसिले में पकड़ी जाकर जेल लायी गयी। रात को वह घबराकर रोने लगी। उसकी सिसकियां सुनकर अधेड़ स्त्री-नेता ने आश्वासन दिया—"भगवान से प्रार्थना करो बहन! वे तुम्हें बल देंगी।"

***

यूरोप में आजकल यह लतीफा बहुत प्रचलित है। द' गोल साहब देहांत के बाद

स्वर्ग पहुंचते हैं। नेपोलियन वहां उनसे बड़े प्रेम से हाथ मिलाता है और बताता है, दो-चार मिनिट में भगवान आने वाले हैं और जनरल, आप यहां नये हैं इसलिए बता रहा हूं, भगवान के आने पर आपको खड़ा होना चाहिये।

"मैं तो किसी के भी आने पर खड़ा नहीं होता। मैं चार्ल्स द' गोल हूं।"

तभी पीछे से आवाज आयी—"मैं सीजर हूं, तो भी शिष्टाचार का पालन करता हूं।"

द' गोल अड़े रहे—"मैं तो नहीं उठूंगा।"

इतने में चर्चिल वहां आ पहुंचे। उन्होंने नेपोलियन और सीजर से कहा कि मामला मैं संभाल लूंगा, निश्चित रहिये और ऊंची आवाज में कहा—"तैयार हो जाइये। स्वर्ग का फोटोग्राफर आ रहा है।" इस पर द' गोल चट से तनकर खड़े हुए और मंद-मंद मुस्कराने लगे। तभी भगवान ने वहां प्रवेश किया। बोले—"स्वागत द' गोल! मैं जरा चिंतित था कि तुम्हारा रवैया यहां पर पता नहीं कैसा रहेगा। मगर चर्चिल ने मुझे आश्वासन दिया कि वह तुम्हें समझा लेगा।"

★

अनुपम सुंदरता के लिए

टैल्क पाउडर

इस्तेमाल कीजिये

नवनीत
[हिन्दी डाइजेस्ट]

मई १९७०

बेडेकर के अचार, पापड तथा मसाले आपके परिवार की पसन्द है। साफ सुथरी और शुद्ध सामग्री, उत्पादन की वैज्ञानिक पद्धति तथा विशेष रुचि के कारण उनको सभी लोग हमेशा पसन्द करते हैं।
बेडेकर मसालेवाले
बम्बई-४ पुना-३०
यहीं तो हैं वे
मसाला
सुपारी
बेडेकर
पापड
बेडेकर
मसाला

महिलाओं के लिए
कुछ दिन बड़ी ही बेचैनी और
तकलीफ़ के होते हैं।
ऐसी हालत में सेरिडॉन से
न सिर्फ़ आराम
मिलता है बल्कि
बदन में एक नयी
चुस्ती और फ़ुर्ती भी
आ जाती है!
सेरिडॉन
HTA-VT-8433

तीन के बाद
कभी नहीं

davp 69/475

देखिये....
यह
अनुभवी
राजनीतिज्ञ
हर
नये सफ़र
से पहले
नया
ग्वालियर
सूटिंग
बदल
लेते
हैं
GOOD FOR WEAR
ROUND THE YEAR

अब... ...विशाल कुटुंबों और कॅटर्रस् के लिए
मार्लेक्स
१५
लीटर का
प्रेशर कुकर
स्टेनलेस स्टील के बर्तनों के साथ
भारत में
पहलीबार
marlex
PRESSURE COOKER
WITH STAINLESS STEEL CONTAINERS & A SPANNER
इसके अलावा
५.५ लीटर
दम्पति के लिए
७ लीटर तथा
८.५ लीटर
छोटे परिवारों
के लिए
१० लीटर
नियोजित कुटुंबों
के लिए
१२ लीटर
अविभक्त कुटुंबों के लिए
इमर्जेन्सी लाइट :
मार्लेक्स इमरजेन्सी लाइट से अचानक अंधकार में अपनी जान-माल, जोखिम से बचायें। यह कारखानों, अस्पताल, सिनेमा-गृह, बैंक, दुकान, तथा होटलों के लिए उपयुक्त है।
म्युजिकल बेल
हर दफ्तरों तथा घरों के लिए
२३० वोल्ट्स ए. सी.
विजयज ट्रेडिंग कॉरपोरेशन
४९/५१ लोहार चाल, अहमद बिल्डिंग, बम्बई-२
फोन : ३१९०४८ ग्राम : LAXELEC
भारत के सभी प्रमुख स्टोरों में प्राप्य

संचालक
श्रीगोपाल नेवटिया

प्रधान संपादक
सत्यकाम विद्यालंकार

संपादक
नारायण दत्त

सहकारी
गिरिजाशंकर त्रिवेदी
सुरेश सिन्हा

सज्जाकार
ठाकोर राणा

प्रबंध-संचालक
हरिप्रसाद नेवटिया

विज्ञापन-व्यवस्थापक
महेंद्र मेहता

नवनीत
[हिन्दी डाइजेस्ट]

वर्ष १९ मई १९७० अंक ५

इस अंक में

★

आवरण चित्र : दीनानाथ वाली

चित्रसज्जा : राफेल, रुआ जोन सेक्स्टन, ओके, शेणै,

संपादकीय पत्र-व्यवहार का पता : नवनीत प्रकाशन, लिमिटेड, ३४१ तारदेव, बंबई ३४.
व्यवस्था-संबंधी पत्र-व्यवहार का पता : नवनीत प्रकाशन लिमिटेड, अशीष बिल्डिंग, ३३५, वेलासिस रोड, बंबई ३४.

श्री हरिप्रसाद नेवटिया द्वारा नवनीत प्रकाशन लि०, ३४१ ताडदेव, बंबई–३४ के लिए प्रकाशित तथा श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, ३६।४८ खेतवाड़ी बैक रोड, बंबई में मुद्रित।

मई
१९७०

संसार के नूतन-पुरातन ज्ञान-विज्ञान का प्रतिनिधि मासिक

ताजमहल

परमात्मा को पूजने के लिए तुम चाहो तो प्रतिमा घड़ सकते हो; परंतु उससे बढ़िया प्रतिमा पहले से मौजूद है—जीता-जागता मनुष्य। परमात्मा को पूजने के लिए तुम चाहो तो मंदिर रच सकते हो और वह मंदिर अच्छा भी हो सकता है; परंतु उससे बढ़िया, उससे अधिक ऊंचा मंदिर पहले से मौजूद है—मनुष्य-शरीर।...... जीता-जागता परमात्मा तुम्हारे भीतर है, फिर भी तुम गिरजे और मंदिर खड़े कर रहे हो और तमाम मनघड़ंत बकवास में विश्वास करते हो! पूजने लायक एक ही परमात्मा है—मानव-शरीर में मानव-आत्मा। निःसंदेह पशु-प्राणी भी मंदिर हैं; परंतु मनुष्य सबसे ऊंचा है, मंदिरों का ताजमहल। यदि मैं उसमें पूजा नहीं कर सकूंगा, तो दूसरे किसी मंदिर से कोई लाभ नहीं। जिस क्षण मैं प्रत्येक मानव-शरीर में विराजमान परमात्मा का साक्षात्कार कर लूंगा, जिस क्षण मैं प्रत्येक मनुष्य के समक्ष भक्ति-भाव से खड़ा हूंगा और उसमें परमात्मा के दर्शन करूंगा, उसी क्षण मैं बंधनों से मुक्त हो जाऊंगा, मेरे सब बंधन लुप्त हो जायेंगे, मैं स्वतंत्र हो जाऊंगा।

—स्वामी विवेकानंद

पावन-प्रसंग

किशोरलाल घ० मशरूवाला

एक वार सहजानंद स्वामी काठियावाड में वोटाद के पास सारंगपुर में ठहरे हुए थे। लगातार तीन दिनों से वर्षा की झड़ी लगी हुई थी। गांव के कई मकान गिर गये थे। उनमें एक व्राह्मण का भी घर था। उसके छप्पर की थूनी के नीचे दस-वीस जानवर दव गये। व्राह्मण दौड़ता हुआ सहजानंद स्वामी के पास गया और सहायता की गुहार लगायी। स्वामीजी ने अपने पास वैठे लोगों से मदद के लिए जाने को कहा, पर कोई न उठा। तव स्वामीजी स्वयं गये और थूनी को कंधे से ऊपर उठा लिया और जानवरों को वाहर निकलवाया।

× × ×

जूनागढ़ इलाके के पंचाणा नामक गांव के ठाकुर झीणाभाई सहजानंद स्वामी के प्रिय शिष्यों में से एक थे। अंतिम बीमारी में स्वामीजी उन्हें देखने गये और उन्हें उपदेश दिया कि शांतिपूर्वक देहत्याग करें। फिर स्वामीजी ने झीणाभाई की मां को एक ओर वुलाकर निम्नलिखित वातचीत की:

स्वामीजी : आपके झीणाभाई के एक ही गांव है—पंचाणा। उसमें भी दो हिस्से हैं—झीणाभाई का और गगाभाई का। उसके वदले में यदि आपके झीणाभाई को जूनागढ़ का राज्य मिले, तो आप प्रसन्न होंगी।

माता : तव तो मैं वहुत प्रसन्न होऊंगी"

स्वामीजी : जूनागढ़ की अपेक्षा वड़ौदा का राज्य वड़ा है, यदि वह झीणाभाई को मिल जाये तो?

माता : तव ...... तव तो मैं वहुत खुश होऊंगी।

स्वामीजी : वड़ौदा की अपेक्षा अंग्रेजों का राज्य अधिक वड़ा है। यदि वह झीणाभाई को मिल जाये, तो ...... ?

माता : तव तो मैं अत्यंत प्रसन्न हो जाऊंगी।

स्वामीजी : पूरी दुनिया का राज्य झीणाभाई को मिल जाये, तो आप खुश होंगी कि नहीं?

मई

माता : तब तो पूछना ही क्या होगा मेरी प्रसन्नता का !

स्वामीजी : झीणाभाई को इंद्र का राज्य मिल जाये, तो आप खुश होंगी या नहीं ?

माता : तब मैं बहुत ही खुश होऊंगी।

स्वामीजी : पूरे ब्रह्मांड का राज्य मिल जाये तो ...... ?

माता : तब तो वह मेरी प्रसन्नता की चरम सीमा होगी।

स्वामीजी : पर झीणाभाई वहां राजगद्दी पर बैठे हों, और आपको यहां न दिखाई पड़े, तो ......'?

माता : मुझे केवल इतना जानकर ही परम सुख होगा कि मेरा बेटा बड़ी राजगद्दी पर बैठा है।

स्वामीजी : तब तो हमने झीणाभाई को सबसे बड़ा राज्य और बड़ा सुख दे दिया है और वे वहां आपको भी बुला लेंगे।

ऐसा कहकर सहजानंद स्वामी माता को झीणाभाई के शव के पास ले गये और उन्हें शांत किया। अनुवाद : गि० शं० त्रिवेदी

[नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद के सौजन्य से]

★

उपनिषदों में मानव-जाति के लिए एक अद्भुत उक्ति है—अमृतस्य पुत्राः। इसका तात्पर्य है कि प्रत्येक मनुष्य, जो इस पृथ्वी तल पर जन्म धारण करता है, वह चाहे जहां का निवासी हो, अथवा चाहे जो उसकी मान्यताएं हों, उसमें वही दिव्य ज्योति जगमगाती है, जो संपूर्ण ब्रह्मांड में व्याप्त है। इस दृष्टिकोण से मनुष्य अणुओं की आकस्मिक गठरी नहीं, बल्कि एक दिव्य सिद्धांत की साकार अभिव्यक्ति है। केवल ईश्वर की दिव्यता का नारा अब पर्याप्त नहीं है। ईश्वर यदि है, तो दिव्यता तो उसमें निहित ही है, और इसके लिए प्रमाण प्रस्तुत करने अथवा इसे दोहराने की आवश्यकता ही नहीं। आज तो हमें मानवीय दिव्यता के सिद्धांत की ओर अग्रसर होना है, जो मानव-महत्ता की अनुभूति को उसका जन्मसिद्ध अधिकार बना देती है।

इस प्रकार, हमारी संस्कृति के दार्शनिक आधार के रूप में मानव-व्यक्तित्व के प्रति एक आध्यात्मिक दृष्टिकोण रहा है। यह सत्य है कि कुछ बौद्ध और हिन्दू दार्शनिकों ने भौतिकवादी सिद्धांतों का प्रतिपादन किया; किंतु प्रमुखतया हमारी दार्शनिक विचारधारा जगत के प्रति एक आध्यात्मिक दृष्टिकोण की दिशा में उन्मुख होती रही है।

—डा० कर्णसिंह

★

हृदय-तारुण्य

सुमित्रानंदन पंत

तन का यौवन नहीं, हृदय का
यौवन रे यह आज उच्छ्वसित,
फिर जग में सौंदर्य पल्लवित
प्राणों में मधु स्वप्न जागरित !

आम्र मंजरित, मधुप गुंजरित,
गंध समीरण अंध संचरित !
प्राणों में पिक बोल उठा फिर
दिशि-दिशि में कर ज्वाल प्रज्वलित!

आम्र मंजरित, मधुप गुंजरित,
गंध समीरण, मंद संचरित !
प्राणों का पिक बोल उठा फिर
अंतर में कर ज्वाल प्रज्वलित !

डाल-डाल पर दौड़ रही वह
ज्वाल रंग रंगों में कुसुमित,
नस-नस में कर रुधिर प्रवाहित
उर में रस वश गीत तरंगित

तथ्यों के पीछे छिपे चिरंतन सत्यों की खोज
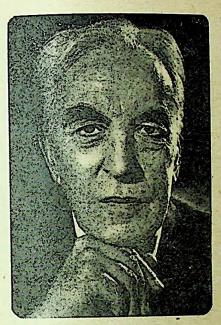
आर्नाल्ड टायन्बी

स्कूली बच्चे के रूप में प्रेरणा की जो पहली एड़ मैंने महसूस की, वह चिंता की एड़ थी। मुझे सदा इसकी चिंता लगी रहती थी कि यूनानी और लातीनी के जिन गद्य-खंडों का अर्थ आगे चलकर क्लास में मुझसे पूछा जा सकता है, उनका अर्थ अभी से जान लूं। आज भी जब रेल या हवाई जहाज पकड़ना हो, वक्त रहते पहुंच जाने की मुझे बड़ी चिंता रहती है। इसमें नुकसान भी है। इसमें स्नायुओं की काफी शक्ति खप जाती है, जिसका दूसरा लाभप्रद उपयोग हो सकता है।

कभी-कभी तो मैं वक्त से पहलेपन की अति कर देता हूं और खुद फंस जाता हूं। जब मैं गाड़ी छूटने के चालीस मिनिट पहले ही स्टेशन पहुंच जाता हूं, कुली ट्रेन के प्लैटफार्म पर आने तक इंतजार करने को तैयार नहीं होता, और अपना सामान मुझे ही ट्रेन में चढ़ाना पड़ता है।

ऐसी ही बात एक बार क्लास में हुई।

मुझे थ्यूसिडाइडिस के एक कठिन हिस्से का अर्थ बताने को कहा गया। मैंने बड़ी सावधानी से तैयारी की थी; पर इस बीच कई हफ्ते गुजर चुके थे; और जब क्लास वहां तक पहुंची, तो मैं इतना आगे निकल चुका था कि उस प्रकरण की मेरी पंडिताई पर धूल जम चुकी थी। अगर मास्टर साहब को मेरे तौर-तरीकों का पता न होता, तो शायद वे यही समझते कि मैंने पढ़ाई नहीं की है।

एक और एड़ जो मुझे टोंचती रही है और आज भी टोंचती रहती है, वह है अंत:करण। हरदम पूरी शक्ति से काम करता रहूं, यह नियम अंत:करण ने मेरे लिए बांध दिया है। काम की खातिर काम करने की यह गुलामी, मैं समझता हूं अतर्कसंगत है; मगर ऐसा सोचने मात्र से मुझे इससे छुटकारा नहीं मिल जाता। जहां मैंने जरा भी आलस किया या ढील दी कि अंत:करण कचोटने लगेगा और मैं बेचैन व दु:खी हो उठूंगा। अत: ऐसा लगता है, जब तक मुझमें काम करने की कुछ भी शक्ति बाकी रहेगी, यह एड़ मुझे टोंचकर आगे बढ़ाती रहेगी।

चिंता और अंत:करण बड़े शक्तिशाली जुड़वां डायनेमो हैं। उन्होंने यह व्यवस्था कर दी है कि मैं मेहनत करता रहूं; मगर वे इसकी व्यवस्था नहीं कर सकते कि यह मेहनत किसी उपादेय काम में ही की जाये। वे अंधशक्तियां हैं, जो आगे अवश्य खदेड़ती हैं, मगर मार्ग नहीं दिखातीं।

सौभाग्य से एक तीसरा उद्देश्य भी मुझे प्रेरित करता रहता है। चीजों को देखने और समझने की चाह। बहुत बचपन से ही यह चीज मुझे प्रेरित करती रही होगी।

जिज्ञासा, निश्चय ही क्रिया के प्रेरक तत्त्वों में से है और साथ ही वह मानवप्रकृति के विशेष लक्षणों में से एक है, जो उसे पशुओं से जुदा करती है। प्रत्येक मनुष्य में किसी-न-किसी मात्रा में जिज्ञासा रहती ही है; और हम सभी को ऐसी चीजों के बारे में जिज्ञासा होती है, जिनका कोई भी उपयोग नहीं है, या कम-से-कम जब हमारी जिज्ञासा जागी, तब कोई उपयोग नहीं था।

मगर यह सर्वसामान्य मानवगुण कुछ लोगों में दूसरों से अधिक तीव्र होता है। यह एक चीज है, जिसमें मनुष्यों में परस्पर बहुत भिन्नता होती है। और मुझमें जिज्ञासा की बिजली ज्यादा भर दी गयी है। यह देवताओं का प्रसाद है, और इसके लिए मैं हार्दिक रूप से कृतज्ञ हूं।

जिज्ञासा सर्वभक्षी होती है। ब्रह्मांड में इतिहास के अलावा भी असंख्य वस्तुएं हैं, जो मानव में जिज्ञासा उत्पन्न कर सकती हैं। मेरी जिज्ञासा इतिहास पर ही केंद्रित क्यों हुई? यह एक सवाल है, जिसका उत्तर निश्चित रूप से मुझे मालूम है। मैं इसीलिए इतिहासकार हूं कि मेरी मां भी इतिहासकार थी। मुझे ऐसा कोई समय याद नहीं आता, जब मैंने यह न माना हो कि मैं अपनी मां के पदचिह्नों पर चलूंगा।

जब मैं चार वर्ष का हो गया, पिताजी ने कहा कि अब मेरे लिए नर्स रखना उनके बिसात के बाहर ही बात है। मेरी मां ने

मई

उनसे पूछा कि अगर मैं एक किताब लिख-कर नर्स के बारह महीने के वेतन जितनी रकम कमा लूं, तो क्या आप मुझे एक साल तक और नर्स रखने देंगे? पिताजी सहमत हो गये। मुझे अब भी याद है कि जब 'टेल्स फ्राम स्काटिश हिस्टरी' के प्रूफ आये, तो कैसा संभ्रम मचा था। मां को लेखिका के नाते २० पौंड मिले, जितना कि १८९३-९४ में नर्स का साल-भर का वेतन होता था।

जब साल पूरा हो गया और पैसा खर्च हो गया, नर्स विदा कर दी गयी और मुझे सुलाने का काम मां ने खुद संभाला-प्रति-दिन थोड़ा-थोड़ा करके उन्होंने आरंभ से लेकर १८९५ तक का इंग्लैंड का इतिहास सुना डाला। मैं बड़ी खुशी से सुनता।

निश्चय ही मुझे इतिहासकार बनने के लिए प्रेरित करने वाली तो मेरी मां ही थीं। परंतु अपनी मां के रुझान का अनुकरण मैंने स्थूल रूप में ही किया है। मुझे लगता है, मां को इतिहास के ठोस तथ्य केवल इस-लिए प्रिय थे कि वे इतिहास के तथ्य हैं। बेशक मुझे भी तथ्य प्रिय हैं। जो तथ्यों से प्यार न करता हो, वह इतिहासकार कभी नहीं बन सकता। तथ्य तो इतिहासकार का उपादान हैं और उसे इतने बड़े पैमाने पर तथ्यों का संग्रह करना पड़ता है कि अगर तथ्यों से उसे प्रेम न हो, तो उनसे नफरत होने लग जायेगी।

मुझे इतिहास के तथ्यों से प्रेम है; परंतु इसलिए नहीं कि वे तथ्य हैं। मुझे उनसे प्रेम इसलिए है कि वे अपने से परे किसी चीज के संकेत हैं—वे उस रहस्यमय ब्रह्मांड के स्वरूप और अर्थ के संकेत हैं, जिसमें प्रत्येक मनुष्य चैतन्य की अनुभूति करता है। हम ब्रह्मांड को जानना चाहते हैं, ब्रह्मांड में अपना स्थान जानना चाहते हैं। हम जानते हैं कि ब्रह्मांड का हमारा ज्ञान एक झलक से अधिक कुछ नहीं होगा; लेकिन इतने से हम हताश नहीं होंगे —जितना प्रकाश अर्जित किया जा सकता है, उतना प्रकाश पाने के लिए प्रयत्न करते ही रहेंगे।

जिज्ञासा ब्रह्मांड की किसी भी वस्तु पर केंद्रित की जा सकती है; परंतु इस समस्त नाम-रूप के पीछे जो आध्यात्मिक सत्य है, वह मेरी राय में समस्त जिज्ञासा का चरम लक्ष्य है और इसी कारण जिज्ञासा किसी अंश तक दिव्यता की भागी है। अपनी मां के प्रभाव के कारण इस चरम उद्देश्य को मैं मानवीय वृत्तांतों के अध्ययन के द्वारा पाना चाहता हूं। भौतिकशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, भूविज्ञान या दूसरा कोई शास्त्र भी इसी मानवीय लक्ष्य की प्राप्ति के दूसरे मार्ग हैं।

मैं समझता हूं, मानवीय वृत्तांतों का अध्य-यन मुझे इतना अधिक प्रिय इसलिए है कि ब्रह्मांड को देखने-समझने के लिए यही एक झरोखा मेरे लिए खुला है। जिस भूमि-भाग में मानवीय इतिहास की कोई महत्त्व-पूर्ण घटना नहीं घटित हुई है, उसमें से गुजरते हुए भूविज्ञानी या वनस्पतिशास्त्री को वहां भगवान का हाथ उसी तरह सुस्पष्ट दिखाई देगा, जैसे कि बोधगया अथवा यरू-शलम में मुझे दिखाई देता है।

★

कभी बर्फ न बनने वाला

असाधारण पानी

डा० प्रताप कुमार माथुर

पानी गये न ऊवरें मोती, मानुष, चून। पर पानी की महिमा केवल इतनी ही नहीं है। विश्व में सर्वाधिक मात्रा में पाया जाने वाला यह द्रव प्रकृति का सबसे महत्त्व-पूर्ण पदार्थ है। जीवन का आविर्भाव जल में हुआ और जीवन स्वयं एक जलीय प्रक्रिया है। सभी पेड़-पौधों तथा जीव-जंतुओं का जीवन पानी पर निर्भर है। मौसम के वदलने में तथा सभ्यता के विकास में इस द्रव का वड़ा योगदान है। विज्ञान की तीन मूलभूत मापन-इकाइयों का आधार भी पानी ही है :

क. एक घन सेंटिमीटर पानी की ४ डिग्री सेंटिग्रेड तापमान पर जो मात्रा होती है, उसे १ ग्राम कहा जाता है।

ख. वायुमंडल के दवाव पर पानी के उवलने तथा जमने के तापक्रमों के वीच के अंतर के सौवें भाग को १ डिग्री सेंटिग्रेड कहा जाता है।

ग. एक ग्राम पानी का तापमान १ डिग्री सेंटिग्रेड जितना वढ़ाने के लिए जितनी ऊष्मा की आवश्यकता होती है, उसे १ कैलोरी ऊष्मा कहा जाता है।

अव तक हम इस भुलावे में रहे हैं कि पानी के स्वरूप को हम पूरी तरह जानते हैं। लिहाजा, वहुतायत से मिलने वाले इस सामान्य द्रव के संवंध में जव किसी नये वैज्ञानिक आविष्कार की चर्चा होती है, तो उसे संदेह की दृष्टि से देखा जाता है। परंतु हाल के वर्षों में कुछ ऐसी खोजें हुई हैं, जिन्होंने वैज्ञानिकों को पानी के संवंध में फिर से सोचने को विवश कर दिया है। यही नहीं, इन आधुनिक खोजों से पानी की प्रकृति के संवंध में विज्ञान की कई वद्धमूल धारणाएं खटाई में पड़ गयी हैं।

हाल में पाकिस्तानी भौतिकशास्त्री श्री एम० कुरेशी तथा उनके सहयोगियों के उत्तम अनुसंधान-कार्य से यह ज्ञात हुआ है कि वर्फ के पिघलने से प्राप्त होने वाले पानी में वर्फ के गुण कई घंटों तक विद्यमान रहते हैं। मानो, पानी कुछ समय तक अपने अतीत को पूरी तरह विसरा नहीं पाता।

इससे भी कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण और उपयोगी खोज है, पानी के एक नये तथा असामान्य रूप के अस्तित्व का पता लगना।

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद्, बंबई, द्वारा प्रेषित

इस नये प्रकार के पानी के गुण सामान्य पानी के गुणों से बहुत भिन्न पाये गये हैं। यह भी देखा गया है कि ये विशिष्ट गुण काफी लंबे समय (लगभग एक महीने) तक कायम रहते हैं।

इस नये पानी की खोज लगभग तीन वर्ष पूर्व एक रूसी वैज्ञानिक एन. एन. फेदयाकिन ने की। वे रूसी विज्ञान अकादमी के तत्त्वावधान में प्रोफेसर देरयागिन के सहयोगी के रूप में अनुसंधान कार्य कर रहे थे। वे यह जानना चाहते थे कि कांच की संकीर्ण नलियों में रखे हुए पानी तथा चौड़े मुंह वाले कांच के वर्तनों में रखे हुए पानी के सामान्य गुणों में क्या अंतर होता है। उन्होंने देखा कि इन दोनों परिस्थितियों में श्यानता, धरातलीय खिचाव, घनत्व तथा संतृप्त वाष्प-दाव आदि सामान्य गुण भिन्न नहीं थे।

अगले प्रयोगों में उन्होंने लगभग २० माइक्रोन (१ माइक्रोन = १ सेंटिमीटर का दस हजारवां भाग) व्यास वाली कांच की अतिसंकीर्ण नलियों को एक विशेप पात्र में रखकर निर्वात पंप द्वारा पूरी तरह वायु-मुक्त करके उनमें सामान्य पानी के स्तंभ (कालम) संघनित किये और उन्हें काफी लंबे समय तक उन (लगभग चार-पांच दिन) संकीर्ण नलियों में रहने दिया।

फिर जब उन्होंने सूक्ष्मदर्शक द्वारा निरीक्षण किया, तो पाया कि सामान्य पानी के स्तंभ ने कुछ नये स्तंभों को जन्म दे दिया है। निर्वात-पंप द्वारा वे इन 'शिशु स्तंभों

संकीर्ण नली में सामान्य पानी का 'माता स्तंभ'

'माता स्तंभ' के साथ-साथ 'शिशु स्तंभों' का जन्म
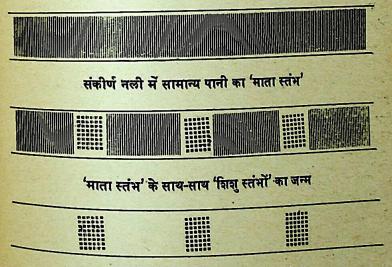
निर्वात पंप द्वारा 'माता स्तंभ' को निकाल लेने के पश्चात् संकीर्ण नली में बचे हुए 'शिशु स्तंभ'

को 'माता स्तंभ' से अलग भी कर सके।

'शिशु स्तंभों' के जन्म तथा 'माता स्तंभ' से उनके अलग किये जाने की प्रक्रिया को पिछले पृष्ठ के चित्रों में समझाया गया है।

फेदयाकिन ने कहा कि 'माता पानी' की तुलना में 'शिशु पानी' पर संतृप्त वाष्प-दाव का कम होना 'शिशु स्तंभों' के जन्म का मुख्य कारण है। देरयागिन तथा फेदयाकिन के सम्मिलित प्रयासों से कई महत्त्वपूर्ण प्रयोग सफल हुए और इस क्षेत्र में कई नयीं खोजों का सूत्रपात हुआ। इन वैज्ञानिकों ने यह भी पाया कि 'शिशु स्तंभों' का पानी 'माता स्तंभों' के पानी की तुलना में दसियों गुना अधिक गाढ़ा है।

पानी के इस नये रूप के अस्तित्व के समाचार ने तहलका-सा मचा दिया। कई बड़े वैज्ञानिकों ने इस आविष्कार को शक की दृष्टि से देखा और जब प्रोफेसर देरयागिन १९६७ के गोर्डन शोध सम्मेलन में अपने नये आविष्कार की रिपोर्ट पढ़ने अमरीका गये, तो पानी की संरचना के विषय में कार्यरत एक जाने-माने अमरीकी वैज्ञानिक ने उनकी हंसी उड़ाते हुए इसे शेखचिल्ली का सपना कह डाला।

कई वैज्ञानिकों ने यह संदेह व्यक्त किया कि शायद पानी ने कांच की संकीर्ण नलियों में से क्षार को जज्ब कर लिया था, और इसी कारण 'शिशु पानी' का जन्म हुआ; क्योंकि पानी में क्षार के घुलने के कारण भी उस पर संतृप्त वाष्प-दाव में कमी आ सकती है।

इन सब संदेहों के निवारण के लिए आगे का अनुसंधान कार्य स्फटिक कांच (क्वार्ट्ज) की संकीर्ण नलिकाओं में किया गया। इन नलिकाओं में से पानी में क्षार के घुलने की कोई संभावना नहीं थी। और जब स्फटिक कांच की संकीर्ण नलियों में भी 'शिशु स्तंभ' पैदा हो गये, तो अविश्वास और संदेह का मुंह सदा के लिए बंद हो गया। फिर तो असामान्य पानी की खोज को प्रामाणिक माना जाने लगा।

प्रो० देरयागिन

प्रोफेसर देरयागिन की अध्यक्षता में एम. वी. तलायेव, वी. वी. जेलेजनी, आई. जी. येरेशोवा तथा वी. बी. करासोव आदि वैज्ञानिकों ने अनुसंधान शुरू किया। उन्होंने पाया कि वाष्प के संघनन के समय यह असामान्य पानी संकीर्ण नलियों में ही नहीं, अपितु स्फटिक कांच के समतल तथा उत्तल (कान्वेक्स) धरातलों पर भी बनाया जा सकता है। विश्व के वैज्ञानिकों के सम्मिलित प्रयासों से यह भी ज्ञात हो सका कि इस असामान्य पानी के असामान्य गुणों का कारण कुछ ऐसे अणुओं की उपस्थिति है, जो सामान्य पानी की तुलना में कहीं कम वाष्पशील हैं।

पानी के इस नये रूप की आणविक सं-

रचना अभी तक ठीक-ज्ञात नहीं हो पायी है। अनुमान है कि इन सामान्य अणुओं के साथ-साथ जुड़वां अणु या उनसे जटिल भी संयोग हो सकते हैं। हो सकता है, ये रासायनिक बंधों जैसी शक्तियों से परस्पर से बंधे रहते हों।

हाल ही में प्रोफेसर ई. आर. लिपिनकाट ने मेरीलैंड विश्वविद्यालय (अमरीका) में अपने अनुसंधान-कार्य से निष्कर्ष निकाला है कि पानी का यह नया रूप सामान्य पानी का एक बहुलक (पालिमर) है। कुछ वैज्ञानिकों ने इसे चतुष्टीय बहुलक बताया है। (बहुलक सामान्य पानी की एकल इकाइयों से मिलकर बनता है)।

पानी के इस नये रूप के रामन वर्णपट (रामन स्पेक्ट्रम) से पता चलता है कि इस पदार्थ की मूल इकाई तीन परमाणुओं से बना हुआ वर्ग है – आक्सिजन-हाइड्रोजन-आक्सिजन। इस वर्ग में आक्सिजन के दो परमाणु एक दूसरे से २.३ आंगस्ट्रम (१ आंगस्ट्रम=१ सेंटिमीटर का दस करोड़वां भाग) की दूरी पर स्थित हैं, जबकि सामान्य पानी में यह दूरी २.८ आंगस्ट्रम पायी गयी है। बहुलक पानी में आक्सिजन-हाइड्रोजन-आक्सिजन बंध काफी मजबूत होता है; क्योंकि इसकी बंध ऊर्जा सामान्य पानी की बंध ऊर्जा की तुलना में २५ गुना अधिक पायी गयी है।

प्रो० लिपिनकाट

असामान्य पानी का घनत्व १.०१ से लेकर १.४ ग्राम प्रति घन सेंटिमीटर तक पाया गया है। अर्थात् असामान्य पानी साधारण पानी की तुलना में एक तिहाई गुना अधिक सघन है। देखने में यह साधारण पानी की तरह नहीं, अपितु पेट्रोलियम जेली जैसा दिखाई देता है। यदि कोई पैनी धार वाला चाकू इसमें से गुजर जाये, तो उसके गुजरने का रास्ता काफी समय तक घाटी की तरह खुला रहता है।

असामान्य पानी की असामान्यता ० डिग्री सेंटिग्रेड तापमान से नीचे बिलकुल स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। सामान्य पानी की तरह वह ० डिग्री सेंटिग्रेड पर जमता नहीं, अपितु –४० डिग्री सेंटिग्रेड तक तरल बना रहता है। –४० से–५० डिग्री सेंटिग्रेड तक ठंडा किया जाने पर कड़ा होना शुरू करके वह कांच जैसा हो जाता है; फिर भी मणिम (स्फटिक) के रूप में नहीं जमता। कड़ा होते समय इसका आयतन उतना नहीं फैलता, जितना कि सामान्य पानी बर्फ बनने पर फैलता है।

इसी तरह सामान्य पानी १०० डिग्री सेंटिग्रेड के बजाय २०० डिग्री सेंटिग्रेड पर उबलता है तथा लगभग ५०० सेंटिग्रेड के तापमान तक उसकी आणविक संरचना स्थिर रहती है। ६०० से ७०० डिग्री सेंटिग्रेड के बीच इसे भभके की क्रिया द्वारा सामान्य पानी में बदला जा सकता है। असा-

असाधारण पानी अथवा बहुलक पानी के इस माडल में आक्सिजन परमाणुओं (काले) के ठीक बीच हाइड्रोजन परमाणुओं (सफेद) की स्थिति दिखायी गयी है। यही विशिष्ट स्थिति असाधारण गुणों का कारण है।
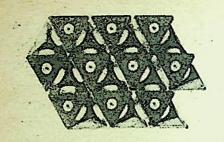
मान्य पानी का वर्तनांक १.५ है, जो कि सामान्य पानी की तुलना में कहीं अधिक है और कांच के वर्तनांक के बराबर है। (वर्तनांक या रिफ्रैक्टिव इंडेक्स प्रकाश के आवागमन के लिए माध्यमों की आपेक्षिक सघनता तथा तरलता का द्योतक होता है।)

प्रश्न उठता है कि इस तरह अत्यधिक स्थायी होने पर भी यह असाधारण पानी पृथ्वी पर साधारण पानी के साथ प्राकृतिक रूप में क्यों नहीं पाया जाता ? कुछ भूगर्भशास्त्रियों का अनुमान है कि शायद कुछ विशेष प्रकार की खनिज मृत्तिकाओं में यह विद्यमान है; क्योंकि इन मृत्तिकाओं में स्थित पानी का घनत्व साधारण पानी के घनत्व से कहीं अधिक होता है।

दूसरा प्रश्न है, क्या असाधारण पानी पेड़-पौधों तथा जीव-जंतुओं में पाया जाता है, और यदि पाया जाता है, तो जैविक प्रक्रियाओं में उसका महत्त्व क्या है ?

डा० लिपिनकाट को विश्वास है कि असामान्य पानी प्रकृति में अवश्य पाया जाता होगा, और जैविक तथा भूगर्भीय प्रक्रियाओं में उसका महत्त्व शीघ्र पता लग जायेगा।

कुछ वनस्पतिशास्त्रियों और प्राणिशास्त्रियों का यह भी अनुमान है कि असामान्य पानी बंधे हुए पानी के रूप में गेहूं के दानों में विद्यमान है और वही दाने को कड़ाके की सर्दी में कड़ा होने व जम जाने से रोकता है। दो और स्थलों पर भी वैज्ञानिकों को असामान्य पानी के योगदान की संभावना नजर आ रही है—१. पानी के जमनांक से नीचे के तापमान में भी कीटाणुओं का जीवित रहना; और २. शीतनिद्रा में मेंढ़क, भालू आदि कुछ प्रकार के जीवों का अपने वदन के तापमान को बहुत घटाकर भी जमे बिना जीवित रहना।

तीसरा प्रश्न है, क्या असामान्य पानी के अस्तित्व का पता लग जाने से अब मापने की मूलभूत इकाइयों में कोई हेरफेर करना पड़ेगा, क्योंकि उनका आधार पानी ही है? इस संबंध में भी अनुसंधान चल रहे हैं।

असामान्य पानी अब तक बहुत ही कम मात्रा में बनाया जा सका है। इसके विविध उपयोगों का पूरा अध्ययन करने के लिए आवश्यक है कि प्रचुर मात्रा में इसका निर्माण किया जा सके। अमरीकी सेना-विभाग ने हाल में इस कार्य के लिए ७५,००० डालर का ठेका टाइको प्रयोगशाला को दिया है।

★

महामंत्री की कुर्सी के उम्मीदवार

हरिकृष्ण बहादुर

राष्ट्रसंघ इस साल अपने जीवन के पच्चीस वर्ष पूरे कर लेगा। लेकिन राष्ट्रसंघ के सदस्यों का ध्यान इस समय जिस बात पर विशेष रूप से केंद्रित है, वह यह है कि ३१ दिसंबर १९७१ को ऊ थां महामंत्री के रूप में अपना दूसरा कार्यकाल पूरा कर लेंगे। हालांकि ऊ थां ने ऐसी कोई घोषणा नहीं की है कि उस तारीख के बाद वे कार्य से संन्यास ले लेंगे, किंतु उनके उत्तराधिकारी के विषय में अभी से ऊहापोह किया जाने लगा है।

ऊ थां ने राष्ट्रसंघ के महामंत्री-पद को संसार की सबसे कठिन नौकरी कहा है। किंतु विष का प्याला पीने के लिए कई शिव तैयार हैं और अपनी ओर से छिपे तौर पर प्रचार भी करने लगे हैं।

महामंत्री का पद दुनिया की सबसे बड़े वेतन वाली नौकरी है; वह बड़े कष्ट से दी जाती है और बड़े कष्ट देती है।

नार्वे के ट्रिग्वेली राष्ट्रसंघ के प्रथम महामंत्री थे। १ फरवरी १९४६ को उन्होंने कार्य संभाला। जब सोवियत रूस ने उनका बहिष्कार आरंभ कर दिया, तो नवंबर १९५२ में वे त्यागपत्र देकर अलग हो गये।

स्वीडन के हैमरशोल्ड उनके उत्तराधिकारी बने। नौ वर्ष बाद जब वे कांगो में विमान-दुर्घटना में मर गये (या बहुतों की मान्यता के अनुसार मार डाले गये), रूसियों को उनसे खास प्रेम नहीं रह गया था और फ्रांस व ब्रिटेन तो स्पष्ट ही उनके विरुद्ध हो गये थे।

सवाल था कि उनका रिक्त स्थान किसे दिया जाये? रूस ने 'ट्रोयका' का प्रस्ताव पेश किया। प्रस्ताव यह था कि एक की जगह तीन सम्मिलित महामंत्री मिलकर राष्ट्रसंघ की गाड़ी को खींचें—एक अमरीकी गुट का हो, दूसरा रूसी गुट का, तीसरा बिना गुट का।

तीन घोड़ों वाली गाड़ी 'ट्रोयका' रूसियों के लिए सुपरिचित है। परंतु शेष सदस्यों को यह सुझाव बड़ा अटपटा लगा; और एक ही घोड़ा चुना जाये, यह आवश्यक हो

गया। उम्मीदवार के चुनाव में जोर 'नेति-नेति' का रहा। वह अमरीकी न हो, रूसी न हो, गोरा न हो, विवादास्पद न हो, और सबसे बढ़कर हैमरशोल्ड जैसा दबंग न हो।

यही सब बातें सोचकर ट्यूनीसिया के मोंगी स्लिम के बजाय बर्मा के ऊ थां पसंद किये गये, जो राष्ट्रसंघ में अलग-थलग रहने वाले अल्पभाषी राजदूत के रूप में प्रसिद्ध थे।

मगर महामंत्री बनने के बाद ऊ थां ने दिखा दिया कि आवश्यकता पड़ने पर पर्याप्त बोल सकते हैं और पर्याप्त कठोरता से भी बोल सकते हैं। और अपने अधिकारों और कर्तव्यों से अलग-अलग रहने वाले व्यक्ति तो वे कतई नहीं है। यह बात और है कि पिछले दशक में स्वयं राष्ट्रसंघ की महिमा वह नहीं रही, जो पहले थी। इसका एक कारण तो यह है कि अब वह १२६ राष्ट्रों की चौपाल बन गया है।

फर्ज कर लें कि ऊ थां तीसरी अवधि के लिए महामंत्री बनना स्वीकार नहीं करेंगे, तो उनके उत्तराधिकारी बनने के लिए उम्मीदवार में क्या-क्या गुण होने चाहिये?

अव्वल वह अमरीकी और रूसी दोनों गुटों को स्वीकार होना चाहिये। संभवतः 'विकासशील देश' (सीधे शब्दों में, आर्थिक दृष्टि से पिछड़े देश) कोशिश करेंगे कि उन्हीं में से किसी का निवासी चुन लिया जाये, ताकि आर्थिक विकास के रथ को आगे बढ़ाने में उससे सहायता मिल सके।

दूसरी बात यह आवश्यक है कि जो भी चुना जाये, उसे राष्ट्रसंघ की कार्यप्रणाली का अच्छा अनुभव हो। इसलिए कई राजदूत अभी से मन के मोदक खाने लगे हैं।

शायद भौगोलिक दृष्टि से भी विचार किया जायेगा। प्रथम दो महामंत्री यूरोपीय थे, तीसरे एशियाई हैं। उत्तर अमरीकी का तो सवाल ही नहीं उठता। बाकी रहते हैं दक्षिण अमरीकी और अफ्रीकी। दक्षिण अमरीका रूस की दृष्टि में संयुक्त राज्य अमरीका का पिछलग्गू है।

अफ्रीकी राष्ट्रों में से अरब राष्ट्रों की बारी नहीं आ पायेगी, इस्रायली प्रचार के कारण। शेष राष्ट्रों में ज्यादातर या तो ब्रिटेन के पीछे हैं, या फ्रांस के और इन दोनों राष्ट्रों के आपसी संबंधों को देखते हुए ऐसा लगता है कि वे इसकी चेष्टा करेंगे कि अगर हमारा अनुयायी नहीं आ पाता, तो दूसरे का अनुयायी भी न आ पाये।

इस तरह हो सकता है कि इस बार भी फिर एक स्कैंडिनेवियाई देश की बारी आ जाये। स्वीडन के गुन्नार यारिंग की अंतर्राष्ट्रीय ख्याति काफी है, हालांकि अरब-इस्रायल विवाद में राष्ट्रसंघीय मध्यस्थ के रूप में वे विफल रहे हैं। फिलहाल वे मास्को में अपने देश के राजदूत हैं।

दूसरे संभावित स्वीड हैं सुविख्यात अर्थशास्त्री डा० गुन्नार मर्डल, जिनकी पत्नी श्रीमती आल्वा मर्डल हमारे यहां स्वीडन की राजदूत रह चुकी हैं।

नार्वे के राजदूत एडवर्ड होम्ब्रो का भी नाम आ सकता है। राष्ट्रसंघ के रजत जयंती अधिवेशन के अध्यक्ष पद के लिए अभी से मई

उनका नाम लिया जाने लगा है। मगर रूस को नार्वे पश्चिमी गुट का सदस्य जान पड़ता है। इसलिए शायद वह फिनलैंड के राजदूत मास्क जैकोब्सन को अधिक पसंद करेगा। परंतु अरब राष्ट्र निश्चय ही होम्ब्रो और जैकोब्सन दोनों का विरोध करेंगे; क्योंकि दोनों यहूदी हैं।

आस्ट्रिया भी तटस्थ राष्ट्र है और कहते हैं कि उसके विदेश-मंत्री डा० कुर्ट वाल्ड-हीम महामंत्री बनने को काफी उत्सुक हैं। कुछ लोग यह सोचकर उत्सुक हैं कि शायद रूमानिया के विदेश-मंत्री कार्नेलियू मानेस्कू भी उम्मीदवारी करें। १९६७ में उन्होंने राष्ट्रसंघ की महासभा का अध्यक्ष निर्वाचित होकर संसार को चकित कर दिया। अब तक अध्यक्ष पद पर बैठने वाले एकमात्र साम्यवादी हैं वे।

बड़े देश कुछ भी सोचें, अफ्रीका और दक्षिण अमरीका का दावा यों ही नजर-अंदाज तो नहीं किया जा सकता। दक्षिण अमरीकियों में से जिनके नाम प्रस्तावित हो सकते हैं, उनमें से मुख्य ये हैं :

कोलंबिया के डा० कार्लोस सांज दे सांता-मारिया, अर्जेंटाइना के डा० राउल प्रेबिश, चिली के एडुआर्डो फ्रेई और कोलंबिया के कार्लोस लेरास रेस्त्रोपो (इनमें से अंतिम दोनों सज्जन अपने देशों के राष्ट्रपति-पद से निवृत्त होने वाले हैं)।

और अफ्रीकियों में से जिनके नाम आ सकते हैं, वे हैं घाना के रावर्ट गार्डिनर, जो इस समय अफ्रीकी आर्थिक आयोग के महामंत्री हैं।

★

माओ त्से-तुंग की लाल सेना निर्भयतापूर्वक आगे बढ़ी आ रही थी। वह लान्चाउ पहुंच गयी थी। अमोय संकट में था। लाल सेना ने कैंटन की रेल्वे लाइन काट दी, जहां च्यांग काई-शेक के मंत्रिमंडल की आपाधापी में बैठक हुई। न चीनियों को, न विदेशियों को इस बात में कोई संदेह रह गया कि चीन के गृहयुद्ध में राष्ट्रवादी हार गये हैं।

ऐसे समय में उरुम्ची (सिंक्यांग) के राष्ट्रवादी कमांडर जनरल ताओ शिह-येह के पास से कैंटन में च्यांग काई-शेक के मंत्रिमंडल को एक संदेश मिला। ताओ ने लिखा था कि उरुम्ची स्थित रूसी कान्सल जनरल उसके पास एक प्रस्ताव लेकर आया था कि बाहरी मंगोलिया की तरह सिंक्यांग भी अपने को स्वतंत्र राष्ट्र घोषित कर दे। रूस इस नये राज्य को तुरंत मान्यता देगा और चीनी कम्युनिस्ट सेनाओं को, जो कि सिंक्यांग के निकट आ पहुंची हैं, आगे न बढ़ने का आदेश देगा। राष्ट्रवादी मंत्रिमंडल ने रूसी प्रस्ताव पर काफी विचार किया, पर वह किसी एक फैसले पर नहीं पहुंच पाया। अंत में जनरल ताओ ने अपनी फौजी टुकड़ियों को बर्खास्त कर दिया। कुछ ताइवान चले गये और कुछ ने उसके साथ ही साम्यवादियों को आत्मसमर्पण कर दिया। माओ को सिंक्यांग से वंचित रखने का रूस का आखिरी क्षण का प्रयत्न विफल हो गया।

—हैरिसन ई० सैलिसबरी

★

नेपोलियन की नारियां

एलैं डीको के लेख के आधार पर

"स्त्री पुरुष को इसलिए दी गयी है कि उसके वच्चे जने......स्त्री हमारी संपत्ति है, हम उसकी संपत्ति नहीं। हमें स्त्री को यह सिखाना ही चाहिये कि अपने

धुलाई-सिलाई से बेटों का पालन करके आगे लाने वाली लेंतिजिया अपने बेटे के सम्राट् बन जाने के बाद भी कहा करती थी– "जब तक चलता है, ठीक है।"

कुटुंब की अधीनता छोड़ने के बाद, वह अपने पति के अधीन होती है।"

नारी के लिए यह शाश्वत भाग्यविधान करने वाला पुरुष और कोई नहीं, नेपोलियन बोनापार्ट था, जिसने अपने अच्छे दिनों में कितने ही राज्यों और साम्राज्यों का भाग्य बनाया और बिगाड़ा था।

ये कठोर विचार उसने सोच-विचारकर घड़े नहीं थे। ये तो कोर्सिका की हवा में घुले-मिले हुए थे, और सांस के साथ बचपन में ही उसमें बस गये थे। कोर्सिका में मां के रूप में तो नारी सर्वोपरि गौरव की अधिकारिणी समझी जाती थी; परंतु पत्नी के रूप में वह पति की तावेदार होती थी।

क्या ये नेपोलियन के विचार-भर थे, या उसने जीवन में इन्हें चरितार्थ भी किया?

स्त्रियों की खासी बड़ी फौज नेपोलियन के जीवन में से गुजरी और इनमें से हर-एक को नेपोलियन की अदम्य इच्छा के आगे झुकना ही पड़ा। इसके सिर्फ दो अपवाद थे। एक, उसकी मां; और दूसरी उसकी पहली पत्नी जोसेफीन।

चित्रों में मां सिन्योरा (श्रीमती) लेंति-

मई

जिया एक नियम-परायण, कठोर महिला जान पड़ती है। वास्तविकता भी यही थी। जब कभी बालक नबुलियो बेअदबी या हुक्मउदूली करता, मां के करारे हाथ उसके गालों पर पड़ते ही थे। जब भी आवश्यकता होती, मां सख्ती से काम लेती।

यह सिलसिला नेपोलियन के सम्राट् बन जाने के बाद भी बंद नहीं हुआ। जब नेपोलियन और उसके भाई लूसिरान में अनबन हुई, तो सारे परिवार ने नेपोलियन का पक्ष लिया। मगर सिन्योरा लेतिजिया ने नहीं। अपनी नाराजगी जगजाहिर करने के लिए वह सरेआम रोम को रवाना हो गयी। नेपोलियन के राजतिलक के समय वह नोत्रदाम में अनुपस्थित थी, हालांकि डेविड ने अपने सुविख्यात चित्र में उसे वहां दिखाया है।

नेपोलियन का आदेश था कि उसके परिवार के सब सदस्य, चाहे वे पुरुष हों या स्त्रियां, राजदरबार में उसके हाथ चूमकर अभिवादन करें। जब सिन्योरा लेजितिया पहली बार दरबार में पधारी, नेपोलियन ने उसके आगे भी हाथ बढ़ाया। मगर सिन्योरा ने न तो उसका हाथ अपने हाथ में लिया, न चूमा। नेपोलियन ने कहा – "मगर, मैं सम्राट् हूं।" गर्वीली मां का उत्तर था–"फिर भी तुम मेरे बेटे हो।" और उसने अपना हाथ पुत्र की ओर बढ़ा दिया। सम्राट् को झुककर उसे चूमना ही पड़ा।

मां नेपोलियन के जीवन की पहली महिला थी–सभी के जीवन की पहली

नेपोलियन की मुंहलगी बहन पाउलीन पहले एक जनरल की, फिर प्रिंस बारहेस की पत्नी रही और अनेकों की प्रेयसी भी। राजनीति से कभी वास्ता न रखा, मगर पदच्युत भाई के साथ निर्वासन में चली गयी।

महिला मां ही होती है। परंतु पुरुष के जीवन में नारी का प्रवेश जिसे कहते हैं, उस रूप में जो पहली नारी नेपोलियन के जीवन में आयी, वह थी मारी एगियेर–एक स्विस साहित्यकार, उम्र में नेपोलियन से काफी बड़ी। उनकी पहली मुलाकात लियोन्स में अगस्त १७८६ में हुई थी। नेपोलियन तब सत्रह वर्ष का था।

यह श्रीगणेश था। फिर तो नवयुवा नेपोलियन लगातार प्रणय के चक्रव्यूहों में पैठता और निकलता रहा। जब आक्सोन में

वह लेफ्टिनेंट था, एक धनी काष्ठ व्यापारी की सौतेली बेटी मानेस्का पिलेत से उसने प्राणिग्रहण का प्रस्ताव किया। पर लड़की के पिता ने यह कहकर धिक्कार दिया— "टोपी और तलवार के सिवा क्या है उसके पास ?" मामला वहीं खत्म हो गया।

मगर मामलों की क्या कमी थी। कोर्सिका में एक साथ उसने दो लड़कियों से प्रेम निभाने की कोशिश की। एक लड़की की ईर्ष्या भड़क उठी। उसने नेपोलियन को विष खिला दिया। सौभाग्य से मां सिन्योरा लेतिजिया को सूचना मिल गयी। वह भागी चली आयी और उसने बेटे को कै करायी। जहर बाहर निकल गया।

कोर्सिकी ललनाओं की भूमिका यहीं समाप्त होती है और अब महाद्वीपीय महिलाएं रंगमंच पर आने लगती हैं। नेपोलियन का रुख भी हम बदला हुआ पाते हैं। अब वह नारी और प्रणय की प्रशंसा करते नहीं अघाता— विशेषतः पति-पत्नी के प्रणय की। "बिना नारी के न सुख है, न स्वास्थ्य।" और कुंआरेपन का मौज-मजा ? "वह नकली चीज है।" "मनुष्य की पशु-प्रकृति के लिए नारी आवश्यक है।"

और इस आवश्यकता की पूर्ति तूलोन में एक जनरल की पत्नी 'नागरिका' कार्तो बड़े चाव से करती रही। फिर आयी संविधान परिषद के सदस्य की पत्नी 'नागरिका' रेकोर्द। इन्हीं महाशया के पति 'नागरिक' रेकोर्द की सहायता से ही नेपोलियन राबस्पियर का कृपा पात्र बना।

फिर कुछ दिन रोमांस चला नीस की एमिली लारेन्ती से। उससे नेपोलियन की मुलाकात १७९४ में हुई। मगर लड़की के माता-पिता ने विवाह की अनुमति नहीं दी। उन्हें नेपोलियन बिलकुल भी होनहार नहीं जान पड़ा। मगर सौभाग्य से एक और सरकारी अफसर की पत्नी 'नागरिका' फेलिसिती तुरु को नेपोलियन के भविष्य के बजाय उसका वर्तमान ज्यादा दिलचस्पी लेने योग्य प्रतीत हुआ। शीघ्र वे प्रेमी-प्रेमिका बन गये।

सम्राज्ञी जोसेफीन, राबर्ट लेफेव्र रचित चित्र में। नेपोलियन के हृदय-साम्राज्य की उसने कभी चिंता नहीं की।

फेलिसिती तब चौबीस की थी। उन दिनों के सौजन्य का प्रतिफल फेलिसिती को आगे भी मिलता रहा; सम्राट् बनने के बाद नेपोलियन उसकी अच्छी आर्थिक सहायता करता रहा।

फेलिसिती से मन भरा नहीं था कि डेजरी मिल गयी। हाल में ही अर्थात् १७९५ में नेपोलियन के भाई जोसेफ बोनापार्ट ने मार्सलीज के एक धनी व्यापारी की बेटी जूली क्लारी से शादी की थी। डेजरी इसी जूली की बहन थी। पहली बार देखते ही नेपोलियन उसे दिल दे बैठा, और सचमुच दिल दे बैठा। नेपोलियन के हाथ के लिखे हुए खत इसके प्रमाण हैं, और प्रमाण है एक उपन्यास की रूपरेखा, जिसे नेपोलियन लिखना चाहता था। डेजरी ने भी नेपोलियन को हृदय दे डाला ...... केवल हृदय ही नहीं, सेंट हेलेना में नेपोलियन ने मार्शल बर्नार्ड के आगे कबूल किया था कि डेजरी हर मानी में उसकी हो चुकी थी। वह श्रीमती बोनापार्ट बनने को आतुर थी; किंतु भाग्य अनिच्छुक था।

पेरिस में बोनापार्ट को गृह-सेना का प्रधान बना दिया गया। और उसका चित्त मुफस्सिल शहर की लड़की डेजरी पर से हटकर पेरिस की एक रमणी के इर्द-गिर्द चक्कर काटने लगा।

जैसा कि आप कल्पना कर ही चुके होंगे, यह थी जोसेफीन दे बूहार्नेस। ऐसा प्रेम नेपोलियन ने शायद ही किसी स्त्री से किया होगा और शायद ही किसी प्रेमी ने ऐसे प्रेम-पत्र लिखे होंगे, जैसे नेपोलियन ने जोसेफीन को लिखे थे। जोसेफीन विधवा थी, उम्र में उस जमाने के लिहाज से काफी बड़ी थी – तैंतीस साल की – और सुंदर भी खास नहीं थी। वह दो बच्चों की मां थी, तंगी में थी, और कइयों की प्रेयसी थी।

जब नेपोलियन उसके प्रेमपाश में पड़ा, तब जोसेफीन बारास की उपपत्नी थी। बारास तब फ्रांस की राज्य-संचालन समिति का सदस्य था। जोसे-

पोलिश सुंदरी मारी वालेव्स्का, जिसके जीवन पर बने चलचित्र में ग्रेटा गार्बो का अभिनय आज भी याद किया जाता है।

यह थी डेजरी, जैसा कि इसाबे ने उसे चित्रित किया था। अब तो डेजरी कहते ही आड्रे हेपबर्न का चेहरा याद आ जाता है।

फीन ने नेपोलियन से प्रेमवश विवाह नहीं किया था। बारास ने नेपोलियन को विवाह के तोहफे के रूप में इटली का सेनापतित्व सौंपा। नेपोलियन अपना हृदय जोसेफीन के पास छोड़कर इटली गया। वहां से उसने जो पत्र लिखे, उन्हें कलाकृतियां कहना चाहिये।

"हर दिन मैंने तुम्हें बाहुपाश में बांधा है। चाय की हर प्याली के साथ मैंने उस यश और महत्त्वाकांक्षा को शाप दिया है, जो मुझे अपने जीवन-सर्वस्व से दूर रखे हुए है।"

"मेरी आत्मा खिन्न है, मेरा हृदय परतंत्र है, मेरी कल्पना मुझे पागल बनाये डाल रही है ...... तुम्हारा प्यार घटता जा रहा है। मगर तुम और कहीं 'समाधान' पा लोगी। और एक रोज तुम्हें मुझसे बिलकुल प्यार नहीं रह जायेगा। कह डालो न। कम-से-कम मेरी वेदना तो सार्थक होगी। अलविदा, देवी, मेरी हृदय और जीवन की यातना, आनंद और आशा! मेरे प्रेम, मेरे भय! मेरे कोमलतम भावों को जानने वाली। मेरी प्रकृति प्राण शक्तियों को, मेघ-गर्जन जैसी दुर्धर्ष मेरी उद्दामता को आलोड़ित करने वाली। ......"

किंतु उद्दाम भावना से भरे इन पत्रों को पाने वाली जोसेफीन तो नेपोलियन से सिर्फ नफरत करती थी। अपने प्रेमी हिप्पोलित शार्ल को उसने लिखा था कि नेपोलियन और उसके भाई 'राक्षस' हैं। शार्ल सदा जोसेफीन का होकर रहा। जब नेपोलियन मिस्र-अभियान में व्यस्त था, शार्ल मालमेसों में रोज ही जोसेफीन के संग-संग रहता था। इसकी खबर पाकर नेपोलियन ने पेरिस लौटते ही जोसेफीन से संबंध तोड़ लेने का फैसला किया। घबराकर जोसेफीन भी पेरिस की ओर भागी, ताकि नगर में नेपोलियन के प्रवेश करने से पूर्व ही वह उसके साथ जा मिले। मगर नेपोलियन पहले ही पेरिस पहुंच गया। जोसेफीन आधी रात को पहुंची और सीधे नेपोलियन के शयनकक्ष की ओर भागी। मगर नेपोलियन ने भीतर से सांकल चढ़ा दी थी। जोसेफीन हाथों से

दरवाजा पीटती रही। रोती और चीखती रही। उसने अपने बच्चों को भी वहां बुला लिया और वे भी रोते रहे। रात का तीसरा पहर बीतते नेपोलियन की प्रतिरोध-शक्ति जवाब दे गयी और उसने दरवाजा खोल दिया। सवेरे जब लूसिएन विवाह-विच्छेद के दस्तावेज लेकर आया, तो उसने अपने भाई व भाभी को बिस्तर में पाया।

जोसेफीन के इस आकस्मिक हृदय परिवर्तन का कारण था—मिस्र में नेपोलियन को मिला यश। सबके ओठों पर उसका नाम था। जोसेफीन ने हड़बड़ाकर देखा कि उसका पति तो महापुरुष है। फिर प्रेम के उमड़ने में देर क्यों लगती भला।

किंतु जब मिस्र में नेपोलियन विजय-दुंदुभि बजा रहा था, एक लड़की उसके हृदय को फतह कर रही थी। लड़की का नाम था पाउलीन फारे। मगर यह जीत चंद रोज रही। मारेंगो के युद्ध से पहले ही प्रसिद्ध इतालियन नर्तकी ग्रास्सीनी नेपोलियन की नजरों में चढ़ गयी। विजयी नेपोलियन ने उसे पेरिस भी बुलवाया और तोहफों से लाद दिया। मगर ग्रास्सीनी आंखों में धूल झोंककर एक वायलिन-वादक को कृतार्थ करती रही। फिर जब तक मारी वालेव्स्का नहीं आ पहुंची, नेपोलियन कभी इस फूल पर, तो कभी उस फूल पर, मंडराता रहा।

बूढ़े काउंट वालेव्स्की की जवान रूपसी पत्नी मारी वालेव्स्का को एक ढंग से वार्सा के सामंतों ने नेपोलियन की बांहों में धकेला था। मारी से उन्होंने बिनती की थी—"तुम नेपोलियन की हो जाओगी, तो शायद देश बरबादी से बच जायेगा। किसी परस्त्री से नेपोलियन का यही पहला स्थायी संबंध था।

द्वितीय सम्राज्ञी मारी-लुइजी, नेपोलियन के औरस पुत्र की मां; इसाबे द्वारा एक पदक पर अंकित चित्र।

मारी से उसकी एक संतान भी हुई—अलेक्सांदर, जो द्वितीय साम्राज्य के समय फ्रांसीसी विधान सभा का अध्यक्ष बना। मारी एल्बा में भी नेपोलियन के पास गयी थी। वाटरलू की लड़ाई के बाद भी मारी मालमेसों में उसके साथ थी।

केवल एक स्त्री की चर्चा बाकी रह जाती

[शेष पृष्ठ ३९ पर]

चिर-विद्यार्थी

पढ़ा हुआ!......प्रज्ञाचक्षु पंडित सुखलालजी संघवी उन दिनों बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में जैन-विद्या विभाग के आचार्य थे। गवर्नमेंट संस्कृत कालेज (अब, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय) के एक युवा प्राध्यापक के एक विशेष दर्शन विषयक पांडित्य से वे ही बहुत प्रभावित हुए। उस विषय में उन्हें अपना ज्ञान अपर्याप्त प्रतीत होता था। वे युवा प्राध्यापक की कक्षा में जाकर पिछली बेंच पर बैठने लगे। जब प्राध्यापक का ध्यान गया, तो चरणों में झुकते हुए बोले—"पंडितजी, यदि मेरे पढ़ाने की परीक्षा ही लेना चाहते हैं, तो इतनी कृपा कीजिये कि आकर प्राध्यापक की कुर्सी पर विराजिये। या आज्ञा हो तो बगल में दूसरी कुर्सी लगवा दूं।"

मगर महान ज्ञानसाधक पं० सुखलालजी ने दोनों में से एक भी प्रस्ताव नहीं माना। उनका कहना था—"मैं विद्या मांगने आया हूं, मेरा स्थान विद्यार्थियों के बीच है।"

सुना हुआ......डा० सी० वी० रामन् का मेरे रिश्ते के एक युवक विशेषज्ञ डाक्टर से परिचय कराया गया। रंग और दृष्टि के संबंध में अपनी नवीनतम खोजों के बारे में काफी कुछ बताने के बाद डा० रामन् ने कहा—"दृष्टि के भौतिकशास्त्रीय पहलू पर तो मैं काफी कुछ जान गया हूं; मगर उसका शरीर-क्रियाशास्त्रीय पहलू मुझे स्पष्ट नहीं है। कृपया अपने घर का पता दीजिये और बताइये कि आपको कब फुरसत होगी। यह पहलू मैं आपसे समझना चाहता हूं।" डाक्टर ने कहा—"सर, आप जब भी आज्ञा करेंगे, मैं सारे नक्शे आदि लेकर आपके ही घर आ जाऊंगा। मेरा फोन नंबर......" मगर अपने दर्प के लिए मशहूर महाविज्ञानी ने यह कहते हुए बीच में ही बात काट दी—"मेरे मित्र, सीखना मुझे है। मुझे ही आपके पास आना होगा।"

देखा हुआ......कन्नड के मनीषी लेखक और विचारक डा० डी० वी० गुंडप्पा को साहित्य अकादेमी पुरस्कार मिलने पर उन्हें प्रणाम करने मां के साथ मैं भी उनके घर गया था। (मेरी मां उनकी बेटी-सी हैं।) हमें कहा गया, वे अंदर काम कर रहे हैं, जरा बैठिये। दस-

एक मिनिट बाद वे चालीस-पैंतालीस वर्ष के एक परंपरागत वेषधारी पंडितजी को विदा करने बाहर दरवाजे तक आये और हाथ जोड़कर उन्हें नमस्कार किया। बाद में मां से बोले–"बेटी, धुरंधर पंडित हैं ये दर्शन के। इनके पिताजी को भी मैं जानता था, वे भी बड़े नामी विद्वान थे। कुछ दर्शन-ग्रंथ बाकायदा पढ़ने की इच्छा थी। इनसे प्रार्थना की। मेरे बुढ़ापे का खयाल करके घर ही आकर पढ़ा रहे हैं। जाना तो चाहिये था मुझे इनके घर; पर ये कहते हैं, आप मेरे पिताजी के मित्र हैं। कैसे कृपालु हैं।" अस्सी के पार पहुंचे हुए उस विदग्ध विद्वान के चरण हम मां-बेटे, ने उस दिन कुछ अधिक झुककर छुए।

—ना० द०

★

[पृष्ठ ३७ का शेष]

है, नेपोलियन की द्वितीय पत्नी, आस्ट्रिया की राजकुमारी मारी-लुइजी की। बचपन में राजकुमारी के पास काले रंग का एक निहायत बदसूरत खिलौना था। इसका नाम उसने बोनापार्ट रख रखा था। मगर अठारह वर्ष की उम्र में उसे अपने पिता के राज्य की रक्षा के लिए इकतालीस वर्षीय बोनापार्ट से विवाह करना पड़ा।

वियेना से राजकुमारी की सवारी शातू दे कोंपीन्ये पहुंचते ही उसने विवाह की रस्म की प्रतीक्षा न करके सीधे अपनी शय्या पर ही उसका स्वागत किया।

मारी-लुइजी पर उपहारों की वृष्टि की गयी। उसके इत्र-फुलेल और आभूषणों का बजट चौंका देने वाला था। १४ लाख रुपये के कश्मीरी दुशाले तो कोंपीन्ये के महल में उसके स्नानागार में ही लटकाये गये थे। प्रतिदान के रूप में मारी-लुइजी ने नेपोलियन को एक पुत्र दिया, जिसे रोम का राजा घोषित किया गया। अपने पुत्र से नेपोलियन को अपार प्रेम था और उसे विश्वास था कि इस "भली जर्मन औरत" की संतति से फ्रांस में बोनापार्ट वंश का शासन चलेगा।

"भली जर्मन औरत" मारी-लुइजी ने नेपोलियन के साथ एल्बा जाने की घोषणा भी की थी। मगर वह क्या करे! ठीक तभी खूबसूरत और काम-कौतुकी जर्मन जनरल नीपर्ग ने उसके जीवन में पदार्पण किया। और प्रकृति से वासनामयी सम्राज्ञी को यौवन और साम्राज्यसे वंचित अपने पति की तुलना में नीपर्ग सौ गुना आकर्षक लगा, तो उसमें अचरज ही क्या! मृत्युशय्या पर नेपोलियन ने मारी-लुइजी के प्रति प्रेम तो प्रकट किया था। किंतु यदि किसी नारी का चेहरा उसकी सदा के लिए मुंदती आंखों के सामने तिरा होगा, तो वह जोसेफीन का चेहरा रहा होगा, जिससे जीवन में उसने सबसे अधिक प्यार किया था।

★

डा० सुरेशव्रत राय

"बिस्मिल्लाह" कहकर कार्य का शुभारंभ करने का पुराना रिवाज है। बिस्मिल्ला खां के शहनाई-वादन से हिन्दुस्तानी संगीत सम्मेलनों का शुभारंभ करने का नया रिवाज है। उत्तर भारत में प्राय: प्रात:काल आकाशवाणी की प्रथम सभा के आरंभ के साथ 'मंगलाचरण', 'मंगलवाद्य', 'मंगलध्वनि' आदि विभिन्न नामों से बिस्मिल्ला खां की शहनाई के स्वर प्रात:कालीन समीरण के साथ तैरते हुए आते हैं, कानों में मिश्री घोलने लगते हैं और थपकी देकर जगाते हैं।

शहनाई शताब्दियों से उत्तर भारत का मंगलवाद्य रहा है। जन्म, वधावा, ब्याह-शादी, मुंडन-छेदन, गृहप्रवेश, गंगापूजा—कुछ भी विना शहनाई के पूरा नहीं होता। वरयात्रा, रथयात्रा, भगवान की झांकी आदि से लेकर गणतंत्र दिवस की शोभायात्रा का नेतृत्व शहनाई-वादक करते हैं। फिर भी उनका दर्जा बैंडवादकों से वहुत ऊंचा नहीं था। पिपिहरी शहनाई वालों के वीच से उठाकर उसे 'नादस्वर' की भांति शास्त्रीय वाद्य का दर्जा दिलवाने का श्रेय मुख्यत: बिस्मिल्ला खां तथा उनके पूर्वजों की साधना-संस्कृत प्रतिभा को है।

जब बीनकारों और रबावियों के अतिरिक्त अन्य वादकों की गिनती संगीतकारों में नहीं की जाती थी, उस जमाने में आपके प्रपितामह ने शहनाई-वादन की शास्त्रीय शैली का विकास किया। इससे पहले उनके परिवार में गायकी चलती थी। फिर पितामह ने इस परंपरा को आगे बढ़ाया। पिता उस्ताद पैगंवरबख्श ने श्रेष्ठ शहनाई-वादक के रूप में अच्छी ख्याति पायी। बिस्मिल्ला के तीनों मामा उस्ताद विलायत हुसैन, उस्ताद सादिक अली तथा उस्ताद अलीबख्श भी अपने समय के श्रेष्ठ शहनाई-वादकों में से थे।

ऐसे शहनाई-मय परिवार में बिस्मिल्ला खां का जन्म सन १९०८ ई० में बनारस के भोजपुर नामक ग्राम में हुआ। पूरा नाम रखा गया—अमरुद्दीन खां बिस्मिल्ला। परंतु ईश्वर-भक्त पिता सदा इन्हें 'बिस्मिल्ला' नाम से पुकारते। फिर यही नाम गांव के लोगों की जबान पर चढ़ गया और अब देश-विदेशों में प्रसिद्ध हो गया है। पिताजी

प्रतिदिन घंटों अभ्यास किया करते थे। कुछ संस्कारों के प्रभाव से और कुछ अनुकरण की बालसुलभ प्रवृत्ति के कारण तीन-चार वर्ष की ही आयु से विस्मिल्ला छोटा पिपिहरी बाजा लेकर इधर-उधर बजाते घूमते थे। पिताजी चाहते थे कि बेटा कुछ पढ़-लिख भी ले। वे टोकते, इसलिए विस्मिल्ला छिपकर कभी-कभी अपने मामा के सामने दस-पंद्रह मिनिट बजा लेते। ज्यों-ज्यों बेटे का शहनाई-वादन का शौक और अभ्यास बढ़ने लगा, पिता का विरोध भी जोर पकड़ने लगा। पिता ने बहुत समझाया, मारा-पीटा भी, परंतु बेटे का मन पढ़ने में न लगा। बस एक लगन थी शहनाई बजाने की। अंत में पिता ने हार मान ली और आपको पूर्ण स्वतंत्रता दे दी।

मानो फकीर को मनचाही मुराद मिल गयी। विस्मिल्ला सीधे अपने मामा के पास जा पहुंचे और नियमित संगीत-शिक्षा आरंभ हो गयी। फिर कुछ समय लखनऊ के मुहम्मद खां से खयाल, धम्मार, होरी, ठुमरी की शिक्षा प्राप्त की। तत्पश्चात् अपने तीनों मामाओं से शहनाई-वादन सीखा। सबसे अधिक सीखा मामा अलीबख्श से। 'झाला' में अलीबख्श सिद्धहस्त थे। भानजे को एक-एक स्वर का तीन-तीन घंटे अभ्यास कराते। अभ्यास की वह धुन अभी तक उतरी नहीं है। आज भी विस्मिल्ला प्रतिदिन छः-सात घंटे अभ्यास करते हैं।

शिक्षा, साधना और प्रतिभा का चमत्कार पहले-पहल १९२६ में प्रयाग विश्व-

स्वरों का अपूर्व सृजन

विद्यालय संगीत सम्मेलन में संगीत-प्रेमियों को देखने को मिला। फिर धुआंधार रूप में आने वाले निमंत्रणों का तांता शुरू हो गया।

सन १९४० में मामा उस्ताद अलीबख्श का देहांत होने के बाद से विस्मिल्ला अपनी ही सूझबूझ के सहारे साधना करते रहे। आपके अनुज शम्सुद्दीन खां भी शहनाई-वादन में सिद्धहस्त थे। दोनों भाई साथ-साथ कार्यक्रम प्रस्तुत करते। भाइयों की जोड़ी देखने लायक थी और उनकी जुगलबंदी सुनते ही बनती थी।

फिर शम्सुद्दीन खां छोटी उम्र में खुदा को प्यारे हो गये। जीवन और कला दोनों में साथ देने वाले प्यारे अनुज के वियोग से

बिस्मिल्ला को इतना आघात पहुंचा कि शहनाई को हाथ लगाना बंद कर दिया। शुभचिंतकों एवं प्रशंसकों ने बहुत समझाया। समय ने भी घाव पर मलहम का काम किया। धीरे-धीरे शोकावेग उतरा और शहनाई ने कलाकार पर अपना दावा पेश किया।

वर्षों एक-एक राग का अभ्यास और मनन करके खां साहब बिस्मिल्ला खां ने यमन, कल्याण, पूरिया, भैरव, भैरवी आदि रागों पर अपूर्व अधिकार पा लिया। पुराना जमाना होता तो लोग कहते उन्हें राग-रागिनियां सिद्ध हो गयी हैं। शास्त्रीय रचनाओं जितनी ही खूबी के साथ वे ठुमरी, चैती, होरी आदि भी प्रस्तुत करते हैं। उनके मुलतानी, पीलू, तोड़ी, गूजरी तोड़ी, जोगिया, मालकौंस, पूरबी, चैती और कजरी के रिकार्ड विशेष लोकप्रिय हुए हैं।

बिस्मिल्ला साहब तालवाद्य के रूप में तबले या नगड़िया के स्थान पर 'खुरदक' का प्रयोग करते हैं। इनके पूर्वज भी खुरदक की ही संगत पसंद करते थे और इसका कारण है। खुरदक डंडी के बजाय हाथ से बजायी जाती है। तबले पर पड़ी थाप की आवाज देर तक गूंजती रहती है, जबकि खुरदक में ऐसा नहीं होता और यह बात शहनाई के लिए विशेष अनुकूल पड़ती है। श्वास के उतार-चढ़ाव के अनुसार शहनाई के नाद की ऊंचाई या निचाई घटती-बढ़ती रहती है। तबला बहुत जगह उसके नाद को दबा देता है।

एक प्राचीन चित्र की राणा द्वारा रेखानुकृति

परंपरा के प्रति अपार आदर रखते हुए भी बिस्मिल्ला कट्टरपंथी नहीं हैं। वे जमाने की रफ्तार और मांग को समझते हैं और प्रयोग एवं परीक्षण को वर्जित नहीं समझते। सितार-वादक अब्दुल हलीम जाफरखां और वायलिन-वादक वी० जी० जोग के साथ वे जुगलबंदी में भाग ले चुके हैं। फिल्म 'गूंज उठी शहनाई' में भी उनकी शहनाई गूंज चुकी है। इस मामले में वे बड़े गुलाम अली, डी० वी० पलुस्कर, अमीर खां तथा रविशंकर की भांति उदार विचार के हैं। उनका कहना है कि फिल्म के माध्यम से शास्त्रीय संगीत के सौंदर्य को समझने का जनसामान्य को अवसर मिल सकता है और 'गूंज उठी शहनाई में' सचमुच यही हुआ।

श्रोताओं को संगीत का रसास्वादन कराने जितना ही उत्साह उन्हें शिष्यों को विद्या बांटने के

विषय में भी है। अपने घर पर ही उन्होंने शहनाई-वादन की पाठशाला खोल रखी है, जहां बिना जाति, धर्म और संप्रदाय के भेदभाव के शिक्षा देते हैं। सांस्कृतिक शिष्ट-मंडलों के सदस्य के रूप में बिस्मिल्ला खां कई बार विदेश-यात्राएं भी कर चुके हैं। कई बार विदेशों के अनेक रोचक संस्मरण वे सुनाते हैं।

एक कार्यक्रम में श्रोता बिस्मिल्ला की उंगलियों तथा शहनाई को बड़े गौर से देखते रहे। कार्यक्रम समाप्त होते ही वे उनके चारों ओर आ जुटे। उनका शांत हंसता चेहरा लोगों को सहज भाव से उनके पास आने की प्रेरणा देता है। लोग उनकी उंगलियां हाथ में लेकर देखने लगे, कुछ उनकी अचकन को टटोलने लगे। बिस्मिल्ला को यह सब बड़ा अजीब लगा, पर वे बोले कुछ नहीं।

बाद में पता चला कि वे लोग जानना चाहते थे कि खां साहब के हाथ, उंगली या अचकन में कोई मशीन तो नहीं लगी है, जिसकी वजह से उनकी उंगलियां फुर्ती से चलती हों।

कुछ न मिलने पर उन्होंने शहनाई लेकर उलट-पलटकर देखी, पर उन्हें पोला बांस मात्र मिला। वे चकित थे कि पीतल लगे बांस के टुकड़े से ऐसी सुरीली एवं मोहक स्वरलहरी कैसे निकलती है। खां साहब ने हंसते हुए मुझसे कहा – "मुझे अफसोस है कि बड़ी कोशिशों के बावजूद मैं उन्हें शहनाई के राज की असलियत का यकीन न दिला सका।"

चीजों को देखने और बयान करने का उनका अपना ही अंदाज है। बातचीत के दौरान कहने लगे–"मेरे खयाल से हिन्दुस्तान अति विलंबित है और दूसरे मुल्क द्रुतगति के हैं।" मैंने सोचा वे पश्चिम के आपाधापी-भरे जीवन की ओर संकेत कर रहे हैं।

परंतु उन्होंने कहना जारी रखा – "दूसरे मुल्कों के मुकाबले हिन्दुस्तान बहुत लंबा-चौड़ा और बड़ा मुल्क है। अपने मुल्क में हवाई जहाज से सफर करने पर घंटों बाद भी दूसरा देश नहीं आता, मुल्क की सरहद तो बहुत दूर पड़ती है, लेकिन यूरोप के दौरे में हमें हर घंटे-डेढ़ घंटे में पता लगता कि हम एक नये मुल्क में पहुंच गये।" भारत की विशालता का उनका यह अंदाज बड़ा कवित्वमय लगा।

बिस्मिल्ला को अपने देश, अपने नगर की माटी से बेहद प्यार है। इस संबंध में एक संस्मरण उन्हीं के मुंह से सुनिये :

"हम लोग १९६५ में यूरोप और एशिया के दौरे पर निकले। दो मुल्क पार करने के बाद हमें खबर मिली कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के बीच जंग छिड़ गयी है। हमें यह भी बताया गया कि जंग पूरी तौर से खत्म होने के बाद ही वापसी हो सकेगी। अब मेरी तबीयत बीच जंगल में पड़े मुसाफिर की मानिंद घबराने लगी। दिल में उफान आने लगा और रह-रहकर हिन्दुस्तान, हिन्दुस्तान में बनारस, और बनारस में चौक की याद हमें सताने लगी।

चौक, घाट और बजरे पर गाने-बजाने का प्रोग्राम ये सारी बातें एक के बाद एक सामने आन लगीं। हमारे आंसू निकल पड़े। आखिरकार जंग खत्म होने पर जैसे ही हम बनारस पहुंचे, बड़ा सुकून मिला। चौक पहुंचते ही हम दौड़कर घर की हर चीज से, जान व बेजान चीज से, लिपटकर मिले, जैसे बरसों पहले काफी दिन अलग रहने पर हम अपने वालिद या वाल्दा से मिला करते थे।"

पर इतना ही नहीं, देश की माटी के प्रति उनका अनुराग उनकी शहनाई से भी मुखरित होता रहता है। ठुमरी अंग की धुनें प्रस्तुत करते समय कभी-कभी लोकधुनें ऐसा समां बांध देती हैं कि पता नहीं लगता कि किसी शास्त्रीय संगीतकार की स्वर-सृष्टि है, या किसी लोकगायक द्वारा प्रवाहित रसगंगा।

कभी "एहि ठैंया मोतिया हेराय गैले रामा" की चैती धुन आत्मविभोर कर देती है, तो कभी "कइसे खेलै जाबू सावन में कजरिया, बदरिया घेरी आई ननदी" गीत शहनाई के स्वरों में गूंज उठता है।

कभी भैरवी की ठुमरी में "बाबुल नैहर छूटो री जाये" या "लगत करेजवा में चोट या बाजूबंद खुल-खुल की जाय" बंदिश श्रोताओं को रस-विभोर कर देती है, तो कभी पहाड़ी में "तिरछी नजरिया के बान" चोट करने लगते हैं। काफी की ठुमरी "आज खेलो श्याम संग होरी" में बिस्मिल्ला फाग का नितांत सजीव चित्र उपस्थित कर देते हैं।

किसी धुन में सावन की ठंडी बयार, अमवा की डारी में पड़े झूले की हिलोर का आनंद मिलता है, तो किसी में उड़ते गुलाल-अबीर फाग की मस्ती है। किसी में सोहर, बधावे का आनंद, चैती की उमंग एवं शृंगार, तो किसी में गंगा की गोद में तैरते बजरे से सरिता की कलकल, घाटों का रूप साकार हो उठते हैं, थिरकती लहरों के साथ श्रोता झूम उठते हैं।

कुशल वादक होने के लिए गायन की शिक्षा को वे अनिवार्य समझते हैं। उनकी आलाप शैली, बढ़त पर खयाल गायकी का पर्याप्त प्रभाव है। परंतु उनकी झाला में सितार, सरोदवादकों के झाला तथा नर्तकों के तथकार का मजा है। उनकी लय और स्वर की क्रीड़ा सुनते ही बनती है। झाले की विविधता तथा लयकारी में वे बड़े सितारियों व सरोद-वादकों की बराबरी करते हैं।

अपनी फूंक से गमक, कृंतन, जमजमा जैसी सितार, सरोद एवं वायलिन की हरकतों को बड़ी कुशलता से शहनाई में उत्पन्न कर सकते हैं। यही कारण है कि वे सितार और वायलिन के साथ जुगलबंदी में रंग जमा सकते हैं।

उनके वादन में शास्त्रीय संगीत का गांभीर्य है। वहीं लोकसंगीत की मादकता भी है। यही उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। लोक और शास्त्र दोनों पक्षों पर समान अधिकार होने के कारण उस्ताद बिस्मिल्ला खां अद्वितीय हैं।

इतना तो जानिये

वणिक्

जब तक ये पंक्तियां छपेंगी, तब तक नये साल का केंद्रीय बजट लोकसभा द्वारा पारित हो चुका होगा और उसके अनुसार आमदनी व खर्च शुरू हो चुके होंगे, उसके भले-बुरे असर की चर्चा अखबारों व सभाओं में पूरी हो चुकी होगी। इस एक साल में ५८ अरब रुपये अर्थात् प्रति भारतवासी के हिसाब से एक सौ रुपये इकट्ठा करने और खर्च करने की केंद्रीय सरकार की योजना है। आइये, उस पर जरा विचार करें।

सन ७०-७१ के आय-व्यय को समझने के लिए पिछले वर्षों के आर्थिक रुख को दृष्टि में रखना उपयोगी होगा। चालू (रेवेन्यू) और कैपिटल खाते में खर्च की कुल राशि क्रमशः बढ़ती चली गयी है :

प्रथम योजना-काल में	३७ अरब रु०
द्वितीय योजना-काल में	७६ अरब रु०
तृतीय योजना-काल में	१६६ अरब रु०
६६/६७ से ७०/७१ तक ५ वर्षों में	२६९ अरब रु०

व्यय की इस उत्तरोत्तर वृद्धि का कारण है—बढ़ती महंगाई के कारण सब प्रकार के व्ययों की अधिकता तथा सफल-असफल जनोपयोगी कार्यों का विस्तार।

प्रथम पंचवर्षीय योजना-काल में प्रति-वर्ष औसत ७ अरब का खर्च था; वह बढ़-कर अब ५८ अरब पर पहुंच गया है। उसी अनुपात में करों में वृद्धि होती रही।

चालू आय-व्यय अर्थात् रेवेन्यू खाते में आय व व्यय का संतुलन रहता आया है; प्रायः व्यय से आय अधिक ही रही है। कुल व्यय का लगभग आधा चालू (रेवेन्यू) व्यय में तथा आधा कैपिटल व्यय अर्थात् स्थायी निर्माण-कार्यों में होता रहा है। इन दोनों व्ययों का हिसाब इस प्रकार रहा है :

योजना-काल	रेवेन्यू (अरब रुपये)	कैपिटल (अरब रुपये)
प्रथम	२०	१७
द्वितीय	३३	४३
तृतीय	७७	८९
६६/६७ से ७०/७१ तक	१३४	१३५

करों से केंद्रीय सरकार की आय का हिसाब इस प्रकार है :

प्रथम योजना-काल में	२२ अरब
द्वितीय योजना-काल में	३६ अरब
तृतीय योजना-काल में	८७ अरब
६६-६७ से ७०-७१ तक	१३८ अरब

इससे प्रकट होता है कि रेवेन्यू खर्च के लिए पैसा करों से जुटाया जाता रहा है ; परंतु कैंपिटल खर्च के लिए विविध प्रकार के देशी-विदेशी कर्जों आदि पर निर्भर रहना पड़ता रहा है। यही नहीं, इन कर्जों आदि से प्राप्त धन से भी अधिक जो व्यय होता रहा है, उसे ज्यादा नोट छापकर अर्थात् मुद्रास्फीति के द्वारा पूरा किया जाता रहा है।

करों की आमदनी तथा कर्जों आदि की प्राप्ति से रेवेन्यू व कैंपिटल वजट में जो वचत व घाटा होता रहा है, उसका स्वरूप (करोड़ रुपयों में) इस प्रकार है :

योजना-काल	रेवेन्यू	कैंपिटल
प्रथम	+ २४९	−६४४
द्वितीय	+ २२०	−११५६
तृतीय	+१०१९	−१७९२
६६/६७से ७०/७१ तक ५ वर्षों में	+४१८	−१८४५
जोड़	+ १९०६	−५४३७

अर्थात् इतने वर्षों में केंद्रीय सरकार ने रेवेन्यू खाते में तो आय की अपेक्षा १९ अरब रुपये कम खर्च किये; परंतु कैंपिटल खाते में ५४ अरब रुपया ज्यादा खर्च कर डाले। इस प्रकार विशुद्ध घाटा ३५ अरब का रहा।

इस प्रसंग में यह ध्यान में रखने योग्य है कि कैंपिटल वजट में 'आमदनी' अधिकांश: विविध देशी-विदेशी कर्जों, अमरीकी डालरों व रुपयों, जनता की वचत व प्राविडेंट फंड, अनिवार्य डिपाजिटों से हुई है। ऊपर की तालिका में ३५ अरब का जो 'घाटा' दिखता है, वह नोट छापकर पूरा किया गया, यही समझना चाहिये।

प्रचलन में आये नोटों में तथा सरकार के पास डिमांड डिपाजिट में किस तरह वृद्धि हुई है, यह नीचे की तालिका में (करोड़ रुपयों में) प्रदर्शित किया गया है :

१९५१	......	२०२१
१९५६	......	२२१७
१९६१	......	२८६९
१९६६	......	४५२९
१९७०	......	६१६४

केंद्रीय सरकार ने जो कर्जा लिया, उसका विवरण (करोड़ रुपयों में) पृष्ठ ४७ पर है।

इस प्रकार पंचवर्षीय योजना के प्रारंभ से लेकर अव तक केंद्रीय सरकार ने १५० अरब का कर्जा वढ़ा लिया है। इसमें ७७ अरब स्वदेश का तथा ७३ अरब विदेश का है। पंचवर्षीय आयोजनों के प्रारंभ होने के समय देशी ऋण २४.७० अरब था और विदेशी ऋण तो केवल ३२ करोड़ था।

नये वर्ष के वजट की व्यवस्थाओं, नीतियों और संभावित परिणामों की चर्चा करते हुए इन वुनियादी आंकड़ों को याद रखना आवश्यक है।

केंद्रीय सरकार ने जो कर्ज लिया, उसका विवरण (करोड़ रुपयों में)

योजना	देशी	विदेशी	पी. एल. ४८०	विविध देशी जमा *	जोड़
प्रथम	३८८	९९	......	३०५	७९२
द्वितीय	९३१	६१४	३१८	५२०	२३८३
तृतीय	१४३८	१७२०	७७२	९१४	४८४४
६६-६७ से ७०-७१	२०९२	२६१५	१२३२	९६१	६९००
जोड़	४८४९	५०४८	२३२२	२७००	१४९१९

* छोटी बचत, प्राविडेंट फंड, अनिवार्य डिपाजिट आदि।

★

आत्मविश्वास

स्वर्ग में बैठे-बैठे जब ब्रह्माजी ऊब गये, तो उन्होंने सोचा–"क्यों न धरती पर जाकर अपनी सृष्टि देख आऊं।" धरती पर उन्होंने देखा कि एक किसान हाथ में कुदाली लिये एक विशाल पर्वत को खोदने में व्यस्त है। वे किसान के पास जाकर बोले–"भाई, यह तुम क्या कर रहे हो ?"

"मैं इस पहाड़ को यहां से हटा रहा हूं। इसके कारण मेरे खेतों में पानी नहीं आ पाता। बादल इससे टकराकर उस पार ही खाली हो जाते हैं।"

ब्रह्माजी ने कहा–"यह तो ठीक है, परंतु क्या तुम इसे हटा सकोगे?"

आदमी ने उत्तर दिया–"क्यों नहीं ? मैं इसे हटाकर ही दम लूंगा।"

ब्रह्माजी अविश्वास से मुस्कराकर आगे बढ़ गये। तभी उन्होंने देखा कि पर्वतराज स्वयं उनके आगे हाथ जोड़े खड़े हैं और कह रहे हैं–"भगवन्, मुझे कहीं और स्थान दीजिये।"

ब्रह्माजी ने पूछा–"क्या तुम सचमुच किसान से डर गये ?" पर्वतराज का उत्तर था–"मेरा डर सच्चा है। किसान के भीतर जो आत्मविश्वास है, वह मुझे उखाड़कर ही छोड़ेगा। अगर अपने जीवन-काल में वह नहीं उखाड़ सका, तो उसके बेटे-पोते तो उखाड़ ही देंगे। आत्मविश्वास की जड़ें बहुत लंबी और गहरी होती हैं।"

–अविनाश प० रामावत

★

पत्र और परामर्श

'नवनीत' में हमेशा कुछ-न-कुछ नयी वस्तु मिल ही जाती है, जो अन्य पत्रिकाओं में उपलिब्ध नहीं होती। इस वार के अंक में 'नीरव वसंत' मुझे इतना पसंद आया कि इसकी मूल पुस्तक पढ़े विना चैन नहीं मिला। इसका यह अर्थ नहीं कि अनुवाद में कुछ कमी है। लेकिन मैं लेखिका की संपूर्ण पुस्तक पढ़ना चाहता था; क्योंकि यह आज का एक ज्वलंत प्रश्न है। पुस्तक पढ़ने के वाद मुझे अनुवाद की विशेषता स्पष्ट दिखाई दी। अनुवाद पढ़ने से किसी भी स्थान पर यह अनुभव नहीं होता कि अनुवादक ने कोई अंश छोड़ दिया है। मेरे विचार में अनुवाद का इससे सही मापदंड दूसरा नहीं हो सकता। भाषा तो प्रभावशाली है ही। 'ऐसे वनते-विगड़ते हैं समाचार' तथा ,नयी दिशाएं, नये आयाम' भी सुंदर हैं। —कृष्णकांत चरला, दिल्ली

०००

मेरा और मेरे मित्रों का यह निश्चित मत था कि 'नवनीत' में वही कहानी स्थान पाती है, जो यथार्थ से कन्नी काटकर निकल जाये। मगर इधर फरवरी अंक में सुखवीर की 'रेशमी धागे की गांठ' और अप्रैल अंक में स्टेवर्ट टोलैंड की 'सड़क की वत्ती' छापकर आपने हमें अपनी धारणा वदलने को मजवूर कर दिया है। वधाई।

—अशोक र० संघवी, राजकोट

०००

अप्रैल ७० का अंक उलट-पुलट रहा था कि मन्मथनाथ गुप्त द्वारा लिखी वच्चनजी की आत्मकथा 'क्या भूलूं क्या याद करूं' की समीक्षा पर दृष्टि पड़ी। डाक्टर गणेशप्रसाद बी० ए० में तीन बार फेल नहीं हुए थे। पुस्तक का २७ वां पृष्ठ देखें —"समनाम होने का थोड़ा-सा गर्व अनुभव करते-करते गंसी चाचा पर यह सनक सवार हो गयी कि मैं दूसरा गणेशप्रसाद वन सकता हूं।" वलिया के प्रसिद्ध गणितज्ञ डा० गणेशप्रसाद के समनाम गणेश चाचा फेल होते रहे थे। 'नवनीत' को आगे से समीक्षकों से पूरी पुस्तक पढ़कर लिखने का आग्रह करना चाहिये। —कुमार प्रशांत, मुजफ्फरपुर

हिन्दी का पहला समाचार-पत्र

कैलाश नारद

हिन्दी पत्रकारिता की कालयात्रा में जय का जो प्रथम चरण-चिन्ह है, वह लगभग डेढ़ शताब्दी बाद अब म्लान तो पड़ गया है, परंतु मिट नहीं पाया है। यह निशान भारतीय पत्रकारिता के आदिपत्र 'हिकी गजट' के प्रकाशन के लगभग छियालीस वर्ष बाद प्रकाशित हुए हिन्दी के पहले पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' का है, जो कलकत्ता से साप्ताहिक के रूप में ३० मई १८२६ में निकला।

'हिकी गजट' की कहानी अपने आपमें संताप और अदम्य जिजीविषा की एक ज्वलंत गाथा है। जेम्स आगस्टस हिकी का यह पत्र तत्कालीन गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स की रीति-नीतियों का दुरंत आलोचक था और इस स्वेच्छाचारी फिरंगी की काली करतूतों का भंडाफोड़ करने की उसे काफी बड़ी कीमत भी चुकानी पड़ी।

हिकी पहला पत्रकार था, जिसे अपनी अंतरात्मा की आवाज के एवज में कारावास का दंड भुगतना पड़ा। निरंकुश हेस्टिंग्स का प्रतिशोध तब पूरा हुआ, जब 'हिकी गजट' के प्रकाशन को बंद कराने के बाद उसने हिकी को भारत से निर्वासित कर वापस इंग्लैंड भेज दिया। सुदूर लंदन के बीहड़ और सूने एक देहात में भारत के इस पहले स्वातंत्र्यचेता पत्रकार के आखिरी दिन बड़े कष्ट में बीते। उसकी मौत भी बहुत दर्दनाक हुई।

सन १७८० में प्रकाशित हुआ 'हिकी गजट' यद्यपि एक वर्ष बाद ही शासकीय कोप का शिकार हो गया, तथापि निरंकुश ब्रिटिश शासकों की स्वेच्छाचारिता में कोई अंतर नहीं आया। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर प्रहार करने के लिए वे निरंतर कानून और अधिनियम बनाते रहे। परिणामस्वरूप उन्मुक्त अभिव्यंजना का गला घुट गया। इसी की प्रतिकृति के रूप में आया 'उदन्त मार्तण्ड'।

उदन्त मार्तण्ड

प्रायः आधी शताब्दी पूर्व का 'हिकी गजट' जितना तेजस्वी था, 'उदन्त मार्तण्ड' का स्वर उतना ही दवा-भिचा-सा था। बौद्धिक चेतना की लीलास्थली कलकत्ता से प्रकाशित होने वाला हिन्दी का यह पहला समाचारपत्र जितना राजनीति-निरपेक्ष था, गौरांग महाप्रभुओं की दहशत से वह उतना ही सापेक्ष भी था। यह राजा राममोहन राय और जेम्स सिल्क वकिंघम का युग था, जो इस बीच ब्रिटिश सनक के शिकार वन चुके थे।

कलकत्ता के कोलूटोला मुहल्ले की आमड़ातल्ला गली और उसका सैंतीस नंवर का मकान शायद अव तक मिट-पुंछ गया हो। इसी सैंतीस नंवर के मकान से पं० जुगलकिशोर शुक्ल ने 'उदन्त मार्तण्ड' निकाला था। मई के जलते-धधकते अपरान्हों में प्रकाशन आरंभ करने वाला यह साप्ताहिक तत्कालीन भाषा और समाचारों का अच्छा दर्पण था। जुगलकिशोर शुक्ल कानपुर के रहने वाले थे। कलकत्ता की सदर दीवानी अदालत में उन्होंने कुछ दिनों तक वकालत भी की थी। सरकार से जव उन्हें 'उदन्त-मार्तण्ड' प्रकाशित करने की अनुमति मिल गयी, तो उन्होंने इस संवंव में एक अनुष्ठान-पत्र (प्रास्पेक्टस) निकाला। इस अनुष्ठान-पत्र के संवंध में तत्कालीन वंगला पत्र 'समाचार चन्द्रिका' में निम्नलिखित खवर प्रकाशित हुई थी :

"अभी हाल में पश्चिमीय लोगों में गुण का प्रचार और ज्ञान का संचार करने के लिये, जिसकी अव तक उक्त देश के लोगों में चर्चा मात्र भी नहीं थी, अन्तर्वेद देशान्तर्गत कानपुर ग्राम निवासी स्वदेश जन सुखाभिलाषी कान्यकुब्ज जातीय श्रीयुत जुगलकिशोर शुक्ल ने जड़तारूपी तिमिर से आच्छादित हिन्दुस्तानी लोगों के विद्यारूपी मणि पर प्रकाश डालने और 'उदन्त मार्तण्ड' के उदय से गुण और ज्ञान का उदय करने के अभिप्राय से श्री श्रीयुत गवर्नर जनरल की कौंसिल सभा से इस विषय की विवरण पत्रिका उपस्थित करके अनुमति प्राप्त की है।

"श्री श्रीयुत की अनुमति प्राप्त करके पूर्वोक्त शुक्ल के द्वारा देवनागरी अक्षरों में और हिन्दी भाषा में एक अनुष्ठानपत्र इस नगर में हिन्दुस्तान और नेपाल प्रभृति देशों के सज्जनों, महाजनों और इंग्लैंडीय महाशयों के वीच प्रचारित हुआ, और हो रहा है। इस 'उदन्त मार्तण्ड' का मूल्य दो रुपया मासिक स्थिर हो रहा है। जिन-जिन महाशयों को इस समाचारपत्र को लेना वांछित हो, वे मुकाम आमड़ातल्ला गली के सैंतीस नम्बर मकान में आदमी भेजने से जान जायेंगे।"

'उदन्त मार्तण्ड' का पहला अंक ३० मई १८२६ को नागरी अक्षरों में मुद्रित होकर प्रकाशित हुआ। यह हर मंगलवार को प्रकाशित होता था। उसकी प्रवृत्ति घटनाओं को समाचारों के रूप में प्रकाशित कर देने की थी। पत्र के आविर्भाव पर तत्कालीन वंगला साप्ताहिक 'समाचार दर्पण' ने लिखा :

"नागरी के इस नूतन समाचारपत्र के प्रकाशन से हमारे आल्हाद की सीमा नहीं है, क्योंकि इस समाचारपत्र में संपत्ति-संबंधी और नाना दिशाओं और देशों के राजसंपर्कीय वृत्तांत प्रकाशित हुआ करते हैं। इनके जानने से अवश्य ही उपकार होता है। योरप के देशों में प्रायः दो सौ वर्षों से अधिक समय से समाचारपत्र प्रकाशित होते हैं। अंग्रेजी प्रभृति समाचारपत्रों के दृष्टांत पर इस देश में पहले बंगला भाषा के समाचारपत्र प्रकाशित हुए।

"इस समय नागरी भाषा में एक ही समाचारपत्र होने से काशी प्रभृति स्थानों में लोग जो अंग्रेजी प्रभृति भाषा से अज्ञात होने के कारण किंवदंतियों पर विश्वास करके प्रगल्भतापूर्वक समय विताते हैं, यदि इसे नई रीति कहकर तुच्छ न समझें और आलस्य त्याग कर इसे ग्रहण करें और पढ़ें, तो उनके लिये यह ऐसा फलोदय होगा, जो वे धीरे-धीरे जान सकेंगे।"

'उदन्त मार्तण्ड' के समाचार विभिन्न शीर्षकों में विभाजित हुआ करते थे। आज से लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व के जन-जीवन की झांकी देने में ये समाचार भली-भांति सक्षम हैं। हिन्दी के प्रारंभिक काल की अनगढ़ भाषा का नमूना भी 'उदन्त मार्तण्ड' के समाचार भली-भांति पेश करते हैं।

इनमें से एक समाचार सैनिक दफ्तर का है और उसका शीर्षक है, "काम में साहबों की भरती" और उसमें लिखा गया है — "१७ अगष्ट सन् १८२६ को मेसटर जे० डवलिउ पेक्सटन साहिब वानात गुदाम के भंडारी हुए। मेजर विलियम फिडांल साहिव गवरनर-जेनरल के यहां फौज के सेकेरेटर हुए। दीवानी निजामत दफ्तर से मैसटर डि० मउफरलन साहिव वाकरगंज के जज ओ मेजिसटर हुए। मेजर ओ० एफ० ओएल्स साहिव दिल्ली के दीवानी कमिश्नर के सेकेरेटर हुए।"

'उदन्त मार्तण्ड' के इसी अंक में प्रकाशित भरतपुर राज्य का एक समाचार इस प्रकार है—"रानी ने चूरामन फौजदार से कहा कि अगले दिनों से यहां की थाती चमारों के अधीन थी सो हुकुम हुआ कि मोचा चमार को इसका पता जाना हुआ है। उससे पूछा जाना चाहिये। यह चमार पिछली लड़ाई में ही खप गया। पर फौजदार ने कहा कि ऐसे और भी मिलेंगे कि जिससे पता मिले।"

तत्कालीन वैज्ञानिक अन्वेषणों और औद्योगिक उपलब्धियों की सूचना भी 'उदन्त मार्तण्ड' समय-समय पर अपने पाठकों को देता रहता था। 'घड़ी ओ घंटे' शीर्षक से एक समाचार 'उदन्त मार्तण्ड' ने ५ नवंबर १८२७ के अंक में प्रकाशित किया और लिखाः

"फारासीस की राजधानी में आगे से पेरिस नगर का नाम है कि वहां घड़ी बनती है। अब पारसाल के लेखे से समझ पड़ा कि उस नगर में ५२० आदमी घड़ी के कारीगर हैं और उनके साथ २,०५६ सहायक हैं। ए लोग हर साल ८०,००० सोने की घड़ी ओ ४०,००० रुपये की बड़ी ओ १,५०० घंटे बनाया करते हैं। इनका मोल सब सुद्धा

१०,००,००० रुपिया खड़ा होता है।"

'उदन्त मार्तण्ड' से ही यह जानकारी मिलती है कि भारतीय अफीम के सबसे बड़े शौकीन चीनी हुआ करते थे और उनकी तलब पूरी करने के लिए मनों अफीम चीन जाया करती थी। इस संबंध में "चीन के समाचार" उपशीर्षक से जो समाचारपत्र में प्रकाशित हुआ, वह यह है :

"चीन के समाचार से जान पड़ा कि उधर पटने की अफीम कुछ हीन बिकी। चीनियों की चुनिंदा जंचाई में वह माल लेहाड़ा ठहरा। तौल तीन मन थी। लेकिन खुशी होती है कि बनारसी अफीम अच्छे भाव बिकी।"

'उदन्त मार्तण्ड' के प्रारंभिक अंकों में विज्ञापन भी छपे मिलते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि आज से डेढ़ शताब्दी पूर्व भी हिन्दी में विज्ञापन प्रकाशित करने की लोगों की प्रवृत्ति थी। 'उदन्त मार्तण्ड' के १० जून १८२७ के अंक में प्रकाशित रामायण का एक विज्ञापन यह है :

"चित्त को बड़ा आनंद होता है कि बजार की तेजी रामउपासकों का रामायण पढ़ना छुड़ाना चाहती थी सो रामचन्द्र की कृपा से बाबूराम पंडित के छापे की पोथी से भी उत्तम बड़े और सुन्दर अक्षरों में सातों कांड रामायण मार्तण्ड छापाखाने में छापी जायेगी। काहे से कि पहिले श्री रामलीला छापे के कल में चढ़े कि छपवानेवारे को कल होय ओ बांचनेवारों का कल कल मिटे ओ बहुतेरों की यही इच्छा थी कि यही रामायण पहिले छापी जाय। इस पोथी के लेने में जिनको आनंद उपजे वे सही करने की बही पर सही कर देवें। पोथी छपने के पहले सही करनेवालों को दी जायेगी और उस अनमोल पदार्थ की निछावर बारह रुपिया कलदार लगेंगे जो आगे पर पोथी सस्ते मिलने के भरोसे सही न करेंगे वे पछतायेंगे ओ बारह का बारह दूना दे जायेंगे तब पोथी की झांकी पायेंगे।"

विविधता रहने के बावजूद 'उदन्त मार्तण्ड' अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सका। ग्राहकों और पाठकों की कमी उसकी अपमृत्यु का कारण बनी। पत्र का अंतिम अंक ४ दिसंबर सन १८२७को प्रकाशित हुआ और संपादक ने उसके असामयिक अवसान की घोषणा करते हुए लिखा :

आज दिवस लौं उग चुक्यो मार्तण्ड उदन्त,
अस्ताचल को जात है दिनकर दिन अब अन्त

पत्र के बंद हो जाने की व्यापक प्रतिक्रिया कलकत्ता के सुधी समाज में हुई। सिरामपुर के बंगला पत्र 'समाचार दर्पण' ने अपने १७ दिसंबर १८२७ के अंक में शोक व्यक्त करते हुए लिखा—" हमें मालूम हुआ कि यह अत्युत्तम समाचार पत्र ग्राहकों के अभाव के कारण काल-कवलित हो गया। हिन्दी-नागरी जगत् के लिये हा शोक! हा शोक!!"

लेकिन जो मशाल हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में 'उदन्त मार्तण्ड' ने जलायी थी, वह बुझ नहीं सकी। उसकी आभा में दो वर्ष बाद ही एक अन्य पत्र हिन्दी जगत् में आ गया। वह था 'बंगदूत' और उसके संपादक थे राजा राममोहनराय।

★

केजिता

नयी दिशाएं, नये आयाम

सब लोग समान कुशाग्र और प्रतिभासंपन्न नहीं होते। लेकिन क्यों ? अलग-अलग संदर्भों में अलग-अलग जवाब हो सकते हैं। मानव-कोशिका की रचना की दृष्टि से भी इस प्रश्न पर विचार किया गया है। नोबल पुरस्कार विजेता विज्ञानी डा० विलियम शाकले का कहना है कि व्यक्ति की बौद्धिक क्षमता का निर्धारण उसकी 'जीनों' के आधार पर होता है और विभिन्न जातियों को बौद्धिक क्षमता के आधार पर विभिन्न वर्गों में बांटा जा सकता है; क्योंकि जीनों की संरचना जाति के साथ बदल सकती है।

डा० शाकले के अनुसार जनसंख्या प्रदूषण (पाप्युलेशन पोल्यूशन) एक बड़ी समस्या है और इसका एकमात्र समाधान है—सुजनन-विज्ञान (आजेनिक्स)। उनकी दृष्टि में आनुवंशिकी के सिद्धांतों के आधार पर मानव-जाति का सुधार भी संभव है।

प्रजनन-प्रक्रिया में किसी प्रकार का दोष रह जाने के कारण भी बौद्धिक दृष्टि से अपेक्षाकृत घटिया स्तर के शिशु का जन्म हो सकता है। परंतु सामान्यत: ऐसे बच्चों की संख्या आधे प्रतिशत से भी कम होती है। डा० शाकले के अध्ययन का उद्देश्य ठीक ढंग से जनमे सामान्य (नार्मल) व्यक्तियों में पाये जाने वाले बुद्धिशक्ति के अंतर को समझना था।

डा० शाकले की निष्पत्ति कुछ भी हो, भारत, दक्षिण अफ्रीका, रोडेशिया और अमरीका में उनकी बात कुछ लोगों को बहुत अनुकूल जान पड़ेगी।

जहर, बस जहर

वायुमंडल का प्रदूषण (पोल्यूशन) उद्योगीकरण से जनमी एक विशिष्ट समस्या है, जिसकी गंभीरता को पिछले कुछ वर्षों से अच्छी तरह समझा जाने लगा है। इसके निवारणोपाय भी सुझाये जाते रहे हैं। हाल में ब्रिटिश पेट्रोलियम कपनी ने एक नया रास्ता खोजा है। यदि पेट्रोल में पालिफिन नामक एक रसायन की मामूली-सी मात्रा (०.३३ प्रतिशत) मिला दी जाये, तो मोटर गाड़ियों से निकलने वाले धुएं में कार्बन मानोक्साइड की मात्रा ७.५ प्रतिशत से घटकर ३.५ प्रतिशत रह जाती है। इससे प्रदूषण से शत-प्रतिशत छुटकारा तो नहीं मिलता, मगर खतरा आधा रह जाये, यह

भी क्या कम है ?

इस नयी खोज से एक लाभ यह भी होता है कि ईंधन की खपत १० प्रतिशत तक कम हो जाती है, जो बहुत बड़ी बात है।

भेड़ें—देशी, विदेशी

भेड़ें हिन्दुस्तान में भी होती हैं और रूस-अमरीका में भी। (मैं राजनीतिक भेड़ों की वात नहीं कर रहा हूं।) मगर हमारे यहां की भेड़ों की ऊन वहुत अच्छी किस्म की नहीं होती। कालीन या मोटे किस्म के कपड़े वनाने में ही उसका इस्तेमाल हो पाता है।

आखिर हिन्दुस्तानी भेड़ों में ऐसी क्या कमी है, जो उनकी ऊन रूसी ऊन का सामना नहीं कर पाती? जोधपुर के एक शोध-संस्थान ने खोजवीन शुरू की। पांच साल की मेहनत का नतीजा अव सामने आया है। ऊन का खुरदरिया नर्म होना इस वात पर निर्भर है कि भेड़ के खून में पोटैशियम की कितनी मात्रा है। खून में यदि इस तत्त्व का प्रतिशत कम है, तो ऊन अच्छी होगी; यदि प्रतिशत ज्यादा है, तो ऊन घटिया किस्म की होगी। देखा गया कि ठंडी जलवायु की भेड़ों के रक्त में पोटैशियम की मात्रा कम रहती है।

तो अव हिन्दुस्तानी भेड़ों की नस्ल सुधारना सिद्धांततः संभव हो गया है। प्रयोगों से यह स्पष्ट हो गया है कि हिन्दुस्तानी और रूसी भेड़ों के संकरण से उत्पन्न भेड़ के रक्त में पोटैशियम की मात्रा कम होती है और वह भेड़ ऊन भी उम्दा किस्म की देती है।

नया सूरज

विज्ञान ने सूक्ष्म-से-सूक्ष्म और जटिल-से-जटिल संख्याओं, संक्रियाओं और संकल्पनाओं की गणितीय संगणनाएं करने में अभूतपूर्व क्षमता अर्जित कर ली है। संबंधित सभी घटकों की इकाइयां तथा उनके नियतांक और मानक स्थिर किये जा चुके हैं। उनके गलत अथवा अप्रामाणिक होने की कल्पना विज्ञान का कोई विद्यार्थी नहीं कर सकता। मगर हाल में इस विश्वास को एक गहरा आघात लगा।

स्काटलैंड में जनमे एक वैज्ञानिक ए० जे० ड्रमांड तथा भारत में जनमे वैज्ञानिक मैथ्यू पी० थक्केकारा (जो ईसाई पादरी भी हैं) ने अपनी खोजों के वाद घोषणा की है कि सौर-ऊर्जा को अव तक जितना शक्तिशाली माना जाता रहा है, वस्तुतः वह उससे कहीं कम है। उन्होंने नये सूर्य नियतांक की भी गणना की है, जो १४० कैलोरी प्रति वर्ग सेंटिमीटर प्रति मिनिट है। यह नियतांक अव तक मान्य नियतांक से काफी कम है।

इससे, सूर्य से हमें कुल कितनी ऊर्जा मिलती है, इसका अनुमान एकदम वदल गया है। 'मेलवार्न हैरल्ड' के विज्ञान-लेखक का कहना है कि इस आविष्कार से भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में काफी गहरी उथल-पुथल मचेगी।

यह शोध कितनी गहरी छानवीन का परिणाम है, इसका अंदाजा आप इसी से लगा सकते हैं कि लगभग तीन सौ वैज्ञानिकों का एक दल गत आठ वर्षों से निरंतर इस पर काम कर रहा था।

पेनिसिलीन भी नयी

जोआकियो अलवर्टी, जावको हुक्की टाइमो कोसुनेन, तथा एरकी होन्कानेन—नाम कुछ विकट लगते हैं। चारों फिनलैंड निवासी शोधकर्ता हैं। उनका दावा है कि उन्होंने एक नयी किस्म की पेनिसिलीन का आविष्कार किया है, जिसका प्रभाव प्रचलित वी० पेनिसिलीन की तुलना में चार गुना अधिक समय तक रहता है। यह भी वताया गया है कि ऐसे सभी वैक्टीरिया-जन्य शोथ तथा वक्क-शोथ (किडनी इनफ्लेमेशन), जिस पर पेनिसिलीन असर नहीं करती थी, इस नयी किस्म की पेनिसिलीन से प्रभावित हो जाते हैं। मनुष्यों और पशुओं पर इसके जो प्रयोग हुए हैं, वे काफी उत्साहवर्धक हैं। शीघ्र पेटेंट मिलने वाला है।

यह भी वहीं

'छोटा परिवार, सुखी परिवार' के नारे की वदौलत अव हमारे यहां भी रवर, लूप, जैली, क्रीम, फोम टैवलेट तथा पिल आदि गर्भ-निरोध साधन रहस्यमय नहीं रह गये हैं। अवांछित गर्भ से छुट्टी पाने के तरीकों में तरक्की हुई है। अभी तक आपरेशन इनमें सवसे अधिक प्रामाणिक और प्रभावशाली माना जाता रहा है। इनमें कानूनी उलझनें तो हैं ही, चिकित्सा की दृष्टि से भी इसकी सीमाएं हैं। केवल स्त्रीरोग—विशेषज्ञ (गाइनेकालोजिस्ट) ही यह काम कर सकते हैं। फिर गर्भाशय में संक्रमण (इन्फेक्शन) की संभावना भी रहती है।

लंदन के किंग्ज कालेज हास्पिटल के शोधकर्ताओं ने अव एक 'गर्भपात इंजेक्शन' निकाला है। और यह इंजेक्शन तैयार किया गया है—पुरुष के प्रजनन-द्रव में से। यानी जो पदार्थ गर्भाधान के लिए जिम्मेदार है, वहीं उससे उलटा काम भी करेगा। इस इंजेक्शन का एक और भी उपयोग वताया गया है। प्रसवपीड़ा शुरू हो जाने पर इसकी सहायता से वच्चे का जन्म विना कष्ट के सहज ढंग से हो सकेगा।

इसका आधारभूत शोधकार्य स्विडिश वैज्ञानिक वान आलर ने किया था। उन्होंने सिद्ध किया था कि पुरुष के प्रजनन-द्रव में रहने वाले एक पदार्थ विशेष को दवा के रूप में इस्तेमाल करके पेशियों (मसल) को संकुचित किया जा सकता है। आविष्कारक ने इस पदार्थ का नाम पी० जी० रखा है। वाद में पता चला कि पुरुष के प्रजनन-तरल में ऐसे एक दर्जन पदार्थ विद्यमान हैं। मगर अव तो यह भी प्रकट हुआ है कि ये पदार्थ पुरुष-शरीर के दूसरे ऊतकों में भी मिलते हैं और इनका उपयोग अन्य अनेक स्त्रीरोगों के लिए किया जा सकता है। मसलन, मासिक पीड़ा से राहत के लिए।

करीम और फिलशी नामक वैज्ञानिकों ने इस दवाओं के संभावित प्रभावों का अध्ययन किया है। उनका कहना है कि गर्भ के प्रथम तीन महीनों में इस इंजेक्शन का उपयोग किया जाये, तो उसका उस समय या वाद में कोई अवांछनीय प्रभाव नहीं पड़ता। सिर्फ मामूली दस्त या कै होती है, वह भी वहुत कम समय।

★

मैं अपने मित्र से मिलने वहां गया था। मेरे सामने वह लड़का बैठा हुआ था। कोई पुस्तक हाथ में थी—भाषा की गाइड। आखिर धर्मशाला का मैनेजर आया। मैंने उसे अपने मित्र का नाम वताकर कमरा पूछा। पता चला, वह कहीं गया है। मैं लौट जाने को तत्पर हुआ। तभी मैनेजर ने उस लड़के से पूछा—"कहो, क्या काम है?" उत्तर मिला—"कमरा चाहिये।" "क्यों आये हो?" प्रश्न हुआ। लड़के ने कहा—"परीक्षा देने आया हूं।" "क्या नाम है?" मैनेजर ने फिर पूछा। "इकवाल" छोटा-सा उत्तर था उसका। "कमरा नहीं मिलेगा।" मैनेजर वोला। लड़का हक्का-वक्का-सा मैनेजर की ओर ताकने लगा। जैसे डरते-डरते उसने कहा—"चपरासी ने तो कहा था कि कमरा खाली है। और रात मैं यहीं सोया भी था। आप थे नहीं। मुझे कहा गया था, सुवह मैनेजर के आते ही मेरा नाम दर्ज हो जायेगा और कमरा मिल जायेगा।" मैनेजर का उत्तर था—"कोई और धर्मशाला देख लो। मुसलमानों को हम इस धर्मशाला में जगह नहीं देते।"

देश के एक राज्य की राजधानी में मुझे यह घटना वड़ी अजीव लगी। लाख मिन्नतों पर भी मैनेजर ने लड़के को कमरा नहीं दिया। मैंने भी कहा। निराश लड़का एक ओर चल दिया था। मैं सोच रहा था। देश को स्वतंत्र हुए जमाना बीत गया है; पर आज भी हम सांप्रदायिकता के गुलाम हैं।

—लक्ष्मीनारायण 'शोभन', गुना

चित्र : राणा

०००

'हिन्दी रक्षा समिति' ने सन १९५७ में हिन्दी सत्याग्रह चलाया था। उस सत्याग्रह में अनेक ग्रामीण भी सम्मिलित हुए थे। रोहतक जिले के ग्रामीणों का एक जत्था १४४ धारा के उल्लंघन में गिरफ्तार होकर रोहतक जेल में आया। कुछ दिनों वाद उनकी पेशी हुई। न्यायाधीश ने जत्थे से पूछा कि क्या तुमने १४४ धारा तोड़ी है? जत्थे के

नेता ने ग्रामीणों के सरल स्वभावानुसार अपनी वोली में ही उत्तर दिया –"हमने न वेरा सै के हो सै एक सौ चवाली धारा धूरा।" न्यायाधीश ने फिर पूछा–"क्या तुमने 'हिन्दी भाषा अमर रहे' नारा लगाया था?" जव उसने हां कहा, तो न्यायाधीश ने वताया–"तो तुमने नारा लगाकर एक सौ चवालीस धारा तोड़ दीं।" ग्रामीणों के सरदार ने अपने सरल मस्तिष्क के आधार पर कहा–"तैंने इतनी कच्ची धारा क्यों वनायी, जो नारा लान से ही टुट जाये।"

ये सीधे-सादे शब्द धार्मिक और राजनीतिक व्यवस्थाओं के विषय में हमारा ध्यान आर्कषित करते हैं। –भद्रसेन, होशियारपुर

०००

मैं एक विवाह में भाग लेने एक छोटे-से गांव गया हुआ था। दोपहर के लगभग दो वज रहे थे। हम लोग खाना खाकर वरामदे में वैठे गपशप कर रहे थे। वाहर कुछ दूरी पर गरीब तथा भिखारियों की टोली जूठन पाने के लिए छीना-झपटी कर रही थी। तभी मैली, पैवंद लगी काली साड़ी पहने एक वृद्धा आयी। हम लोगों में से कुछ चिल्लाये–"हे वुढ़िया पीछे आना, या सभी के साथ वाहर ही खड़ी रह, तुझे भी मिल जायेगा।"

वाहर ही खड़ी वुढ़िया ने साड़ी के छोर से गांठ में बंधा एक रुपया निकाला और हमारी ओर वढ़ाती हुई वोली–"वेटा, शांती वचपन में मेरी वेटी जैसी रही है। आज वह ससुराल जा रही है, उसके हाथ में यह रखने के लिए आयी थी। सूर्य भगवान उसका सुहाग अटल रखें।" और रुपया देकर वह चल दी।

घर में से किसी ने आवाज लगायी– 'मांजी, सगुन का गुड़ तो लेती जाओ।" पर वह तव तक जा चुकी थी। –नगीन दवे

मैंने वरसती वर्षा में यात्राएं की हैं। मेरा ऐसा अनुभव है कि परमात्मा की वृष्टि से शरीर को वहुत लाभ होता है। वर्षा के पानी में मिट्टी का अंश मिश्रित नहीं होता, इसलिए वह वहुत ही आरोग्यप्रद होता है। आसमान की वृष्टि का अभिषेक दिव्य जलाभिपेक है।

जो प्रकृति से डरता है, उसे वह तकलीफ पंहुचाती है। जो प्रकृति से नहीं डरता, उसके शरीर, मन, वाणी प्रसन्न होते हैं और तीनों का विकास होता है। इसीलिए मैं वार-वार कहता हूं कि मनुष्य को सवसे बड़ी खुराक चाहिये आकाश की। मनुष्य को खुला आकाश मिलना चाहिये। खासकर सूर्योदय से पूर्व और सूर्योदय के वाद दो घंटे खुले आकाश के नीचे विताने चाहिये। क्योंकि आकाश बहुत ही उत्तम पुष्टि प्रदान करता है।

पांच तोला आकाश, चार तोला हवा, तीन तोला प्रकाश, दो तोला पानी और एक तोला अन्न खाना चाहिये। जो अनंत आकाश का सेवन करता है, उसके लिए समस्त प्रकार के आनंद खुल जाते हैं। संस्कृत में 'ख' का अर्थ आकाश है। जहां आकाश सुलभ है, वहां सुख है और जहां दुर्लभ वहां दुःख। –विनोबा

गुरुदयाल मल्लिक

ईसा के वारिसदार

१९१९ की एक सुबह थी। कुछ ही महीने पहले पंजाब में फौजी कानून के दौरान सरकारी चक्र के शिकार हुए एक सज्जन अपने ऊपर गुजरे जुल्मों की कहानी सुना रहे थे। दीनबंधु एंड्रूज और मैं सुन रहे थे। उस समय दीनबंधु का संपूर्ण अस्तित्व किस तरह करुणभाव से द्रवित हो उठा था, उसे मैं देख रहा था। एकाएक चमत्कार की तरह मेरे मन में ये भाव उमड़ आये — "सच्चा देवदूत!—क्राइस्ट्स फेथफुल एपासल —ईसा मसीह के वफादार उत्तराधिकारी!"

जुल्मों की कहानी सुनाने वाले सज्जन एक निवृत्त सैनिक अधिकारी थे। कभी किसी राजनीतिक आंदोलन में भाग नहीं लिया था उन्होंने। गुजरानवाला जिले के एक गांव में शांति से जीवन गुजार रहे थे। तभी एक दिन उस क्षेत्र के एरिया कमांडर ने उनसे एक स्थानीय राष्ट्रीय नेता के विरुद्ध झूठी गवाही देने को कहा।

इन्होंने ऐसा करने से साफ इन्कार कर दिया और नम्रतापूर्वक प्रार्थना की—"अब मैं मृत्यु के करीब पहुंच रहा हूं। जीवन के इन आखिरी दिनों में कृपा करके मुझे अपनी शक्ति और बुद्धि के अनुसार जहां तक हो सके सच्चाई की राह पर चलने दीजिये।"

प्रार्थना ठुकरा दी गयी और इन्हें नंगा करके बेंतों से तब तक पीटा गया, जब तक वे बेहोश होकर जमीन पर गिर नहीं पड़े। इनके शरीर पर बेंतों की मार के निशान उभर आये। कपड़े सरकाकर इन्होंने वे निशान एंड्रूज को और मुझे दिखाये। (मैं भी उन दिनों सहायक के रूप में एंड्रूज के साथ था, जो सैनिक शासन के अंतर्गत हुए अत्याचारों की जांच कर रहे थे।)

पच्चीस साल की सेवा के बदले कद्रदान ब्रिटिश सरकार ने मानो इन्हें ये तमगे दिये थे। हमारी आंखों में आंसू छलछला आये। मगर एंड्रूज के लिए यह भावोद्रेक असह्य

हो उठा। वे इनके पैरों पर गिरकर भर्राये कंठ से बोले —"मेरे देश के प्रतिनिधियों ने भारत में जो जुल्म ढाये हैं, उनके लिए मैं पश्चात्ताप करना चाहता हूं। और आपसे उन्हें क्षमा कर देने की प्रार्थना करता हूं।"

निवृत्त फौजी अफसर ने (वे सिक्ख थे) उन्हें पकड़कर उठाया और बाहों में भरकर कहा—"हमारे धर्मगुरु नानक साहब ने किसी के भी साथ वैर न रखने का हुक्म दिया है; क्योंकि ईश्वर सभी में विराजमान है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि आज से मैं आप सभी को अपना प्रिय मित्र मानूंगा?"

अपनी गलती के लिए किसी-न-किसी रूप में पश्चात्ताप करना प्रत्येक व्यक्ति का पवित्र कर्त्तव्य है। परंतु जो दूसरों की भूलों के लिए भी पश्चात्ताप अनुभव करे, वह तो प्रभु का प्यारा उत्तराधिकारी ही दिखाई देता है। संभव है, जब मैंने एंड्रूज के नाम के प्रथमाक्षरों—सी० एफ० ए०—पर से उन्हें क्राइस्ट्स फेथफुल एपॉसल कहा, तब अनजाने ही मेरे मन में ऐसा ही कोई विचार कौंध गया हो।

★

चिंता के मनके

जेरुसलम में सड़कों पर घूमते हुए मैंने हरएक अरब के हाथ में मनकों की माला देखी। एक दिन मैंने हन्ना नाजल से पूछा कि क्या ये जपमालाएं हैं?

बोलीं—"नहीं, यह चिंता के मनकों की मालाएं हैं। अरब लोग उठते-बैठते, चलते-फिरते माला हाथ में पकड़े उसके मनके फिराते रहते हैं। तनाव और बेचैनी दूर करने के लिए वे ऐसा करते हैं। चिंता का काम वे मनकों पर डाल देते हैं। पश्चिम के लोग अपनी घबराहट या बेचैनी दूर करने के लिए किसी भी चीज पर अपनी उंगलियां खटखटाने लगते हैं। अरबी लोग उंगलियां खटखटाने के बजाय मनके फिराने लगते हैं। इससे उनका तनाव कम हो जाता है। साथ ही, वे कुछ सोचने भी लगते हैं, सो वे अपनी कोई-न-कोई समस्या हल कर लेते हैं, और आगे बढ़ने के लिए तैयार हो जाते हैं।"

चिंता के मनकों की यह खूबी मुझे बहुत भा गयी। मैंने खुद एक माला खरीदी और पाया कि सचमुच वह तनाव दूर कर सकती है।

फिर मुझे एक और बात का पता लगा, जब किसी अरब को किसी से बहस करनी पड़े—मोल-भाव करने, पैसे चुकाने, या किसी और काम में—तो वह इन मनकों को पकड़कर प्रतिपक्षी से कहता है—"अगर मेरी मुट्ठी में सम संख्या में मनके हों, तो तुम्हारी बात मान लूंगा; अगर विषम संख्या में मनके हों, तो तुम्हें मेरी बात माननी होगी।" अक्सर इस तरह फैसला हो जाता है।

—एल्मर व्हीलर

★

भूखी समुद्री खाइयां

डा० खड्गसिंह वल्दिया

महासागरों के ऊपरी समतल रूप को देखकर कोई यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि उसके गर्भ में हिमालय-सदृश उत्तुंग एवं सुदीर्घ पर्वतमालाओं का जाल बिछा हुआ है और इतनी भयावह गहरी घाटियां हैं कि देखकर रोंगटे खड़े हो जायें। प्रशांत महासागर की टोंगा द्वीपमाला के सीमांत की समुद्री घाटी इतनी गहरी है कि स्थल का सर्वोच्च शिखर एवरेस्ट यदि उसमें डूब जाये, तो उसका शिखर समुद्र की सतह से तेरह हजार फुट नीचे होगा! (चित्र २)

यह देखा गया है कि प्रशांत महासागर की चापाकार द्वीपमालाओं के वाह्य सीमांत के साथ-साथ गहरी समुद्री खाइयां अवस्थित हैं (चित्र ३)। ऐल्यूशियन, जापानी, तायवानी, फिलिपीनी, इं दो ने शि या ई, मध्य अमरीकी, पेरू-चिली आदि की समुद्री खाइयां उल्लेखनीय हैं। इन खाइयों ने प्रशांत महासागर को मानो घेर रखा है। इसके अतिरिक्त महासागर के मध्य की द्वीपमालाओं से संलग्न अनेक गहरी खाइयां हैं।

ये समुद्री खाइयां भौतिक विचित्रताओं के आगार हैं। इन खाइयों में भविष्य की पर्वत-श्रेणियों के निर्माण की तैयारियां हो रही हैं। भूकंपों की उत्पत्ति से इनका घनिष्ठ संबंध है। ज्वालामुखीय उद्गारों से वे सदा आक्रांत रहती है। प्रशांत महासागर के छोटे-बड़े द्वीप तथा समुद्री टीले इन खाइयों में समाकर विलुप्त हो रहे हैं, मानो ये भूखी खाइयां उन्हें आत्मसात् कर रही हों। क्यों
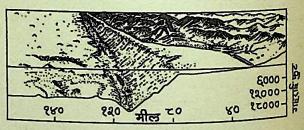
चित्र १: चापाकार द्वीपमाला की सीमा बनाती हुई समुद्री खाई, जिसकी लंबाई सैकड़ों मील है। (फ्रांसिस शेपर्ड लिखित 'द अर्थ बिनीथ द सी' के चित्र की अनुकृति)

हैं ये खाइयां इतनी भूखी ? कैसे निगल जाती हैं वे द्वीपों को ? इन प्रश्नों पर विचार करना है ।

समुद्री खाइयों का स्वरूप

सैकड़ों मील लंबी औसतन साठ-सत्तर मील चौड़ी ये खाइयां निकटस्थ समुद्र-नितल से कई हजार फुट गहरी होती हैं (चित्र १)। टोंगा खाई समुद्र-नितल से लगभग तीस हजार फुट गहरी है; उसकी चौड़ाई २ से ५ मील और लंबाई साढ़े चार सौ मील है । ध्यान रहे, खाई की गहराई समुद्री फर्श से ली गयी है । यदि जल-तल (सतह) से गहराई नापी जाये, तो लगभग ४२,००० फुट होगी ।

अधिकांश खाइयों का आकार अंग्रेजी के 'वी' अक्षर (v) की भांति होता है । किंतु खाई की एक ढाल दूसरे की अपेक्षा अधिक सीधी होती है ।

स्थल की ओर की ढालों में इन खाइयों के भीतर अपेक्षाकृत छोटी, किंतु गहरी तिर्यक् दिशोन्मुख घाटियां होती हैं । दोनों ओर की ढालों में बेंच-सरीखे छोटे-छोटे सपाट मैदान भी दिखते हैं । खाइयों के तले में संकीर्ण, गंभीर गह्वर होते हैं ।

इन्हीं गौण घाटियों, बेंचों तथा गह्वरों में रेत-मिट्टी का संचयन आरंभ होता है । रेत-मिट्टी बहकर आती है स्थलों से । प्रायः नदियों द्वारा लायी गयी रेत-मिट्टी खाइयों के सिरे में संचित होती है । बार-बार उठनेवाले भूकंप के धक्कों या प्रचंड तूफानों के घात-प्रतिघात से सद्यःसंचित रेत-मिट्टी फिसलकर ढालों में बह पड़ती है ।

रेत-मिट्टी से लदी हुई मटमैली, कीचड़ वाली जलधाराओं को पंकिल धारा कहते हैं । संपूर्ण खाई में रेत-मिट्टी के वितरण एवं संचयन का कार्य यही पंकिल धाराएं संपादित करती हैं ।

टोंगा खाई
समुद्र-तल
एवरेस्ट पर्वत
गहराई (फुट)
१०,०००
२०,०००
३०,०००
४०,०००
३०,०००
२०,०००
१०.०००

चित्र २ : प्रशांत महासागर की टोंगा द्वीपमाला के सीमांत की समुद्री खाई इतनी गहरी है कि यदि एवरेस्ट उसमें डूब जाये, तो उसकी थाह पाना कठिन होगा। ('द अर्थ बिनीथ द सी' के चित्र की अनुकृति)

कालांतर में जब ये खाइयां पूर्णतः भर जायेंगी, और जब रेत-मिट्टी की अपरिमेय राशि का विपुल भार भूपंटी के लिए असहनीय हो उठेगा, तब इन खाइयों से उभरेंगी भविष्य की गिरिमालाएं ।

रेत-मिट्टी से आपूरित खाइयों से पर्वतोत्पत्ति कैसे होती है, यह एक अलग विषय है —रोचक किंतु जटिल । स्थल की अनेक पर्वतमालाओं का उद्भव अतीत की समुद्री

•••• गहरे भूकंप-केंद्र ○○○○ उथले भूकंप-केंद्र ~~ समुद्री खाई

चित्र ३ : समुद्री खाई, ज्वालामुखीय उद्‌गार तथा भूकंप-उद्‌गमों का बड़ा घनिष्ठ संबंध है। देखिये प्रशांत महासागर के चारों ओर की समुद्री खाइयां।

खाइयों में हुआ था। अतः इन खाइयों को कुछ प्रकार के पर्वतों की बच्चादानी कहा जा सकता है। ये वे स्थल हैं, जिनमें पर्वतों के 'भ्रूण' आविर्भूत होकर क्रमेण विकसित होते हैं।

तरुण अल्पवयस्क द्वीप व समुद्री टीले

पृथ्वी का जन्म पौने पांच अरब वर्ष पूर्व घोर अतीत में हुआ था, जल-स्थल का विभाजन पृथ्वी के बाल्यकाल में ही हो गया था। अतः सागर का जन्म हुए कई अरब वर्ष हो चुके हैं। जन्मकाल से ही पृथ्वी का अभ्यंतर ज्वालामुखी उद्‌गारों द्वारा द्रवित पाषाण (लावा) उगलता रहा है, और जल-थल दोनों में ज्वालामुखी पर्वत बनते रहे हैं।

स्थल की बातें छोड़िये। केवल महासागरों में ही पृथ्वी के जन्मकाल से अब तक करोड़ों ज्वालामुखी समुद्री टीले एवं पर्वत बन जाने चाहिये। (ध्यान रहे, जो समुद्री ज्वालामुखी पर्वत जल से बाहर सिर उठाये खड़े हैं, उन्हीं से प्रशांत महासागर के द्वीप निर्मित हुए हैं।) किंतु आश्चर्य है कि उनकी संख्या अधिक नहीं है। जो हैं, उनकी आयु आठ-दस करोड़ वर्ष से अधिक नहीं है।

द्वीपों व समुद्री टीलों की अल्प 'जन-संख्या' और 'वृद्ध' द्वीपों के अभाव का एक ही अर्थ है—वृद्ध पुरातन द्वीप व टीले काल-कवलित हो गये हैं। किंतु नष्ट द्वीपों के अवशेष तो मिलने चाहिये। विचित्र बात है, वे अपना चिह्न या अवशेष छोड़े बिना विलुप्त हो गये। कहां चले गये वे? कौन लील गया उन्हें?

सरकने वाले द्वीप और समुद्री टीले

द्वीपों व समुद्री टीलों की आयु के तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि मध्य-सागर के जलमग्न केंद्रीय अंतःसमुद्री पर्वतमालाओं से ज्यों-ज्यों स्थल की ओर चलें, त्यों-त्यों द्वीपों की आयु क्रमशः बढ़ती चली जाती है। दूसरे शब्दों में, मध्य सागरीय द्वीप व टीले स्थल के निकटवर्ती द्वीपों व टीलों की अपेक्षा आयु में छोटे हैं, अपेक्षाकृत तरुण। अर्थात् केंद्रीय अंतःसमुद्री पर्वतमाला के द्वीप तरुण होते हैं और दूर के द्वीप

चित्र ४ : समुद्री खाइयों के उद्भव के कारण हैं भूपर्पटी की छाती फाड़कर अतल गहराई तक जाने वाले भ्रंश (दरार)। इन्हीं दरारों की राह लावा बाहर निकलता है और ज्वालामुखी पर्वत निर्मित होते हैं। इन्हीं दरारों पर जब पृथ्वी की पपड़ी सरकती है, तो भूकंप उठते हैं।
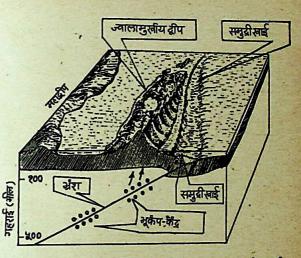
वृद्ध होते चले जाते हैं। इसका यह अर्थ है कि जन्म लेने के पश्चात् ये ज्वालामुखीय द्वीप और टीले अपने मूलस्थान को छोड़कर स्थल की ओर सरकने लगते हैं; मानो महाद्वीपों से भेंट करने चले जा रहे हों।

विभिन्न आयु वाले ये द्वीप अपनी यात्रा की भिन्न-भिन्न मंजिलें बतलाते हैं। सबसे बूढ़ा द्वीप सबसे लंबी यात्रा तै करके महाद्वीप के निकट पहुंच गया है और सबसे जवान जजीरे ने अभी अपना सफर शुरू ही किया है।

हम देख चुके हैं कि आठ-दस करोड़ वर्ष से पुराने द्वीप व टीले हैं ही नहीं; और जो द्वीप वृद्ध हैं, अपना मूलस्थान छोड़कर महाद्वीपों के निकट आ गये हैं। स्पष्ट है कि महाद्वीपों (अथवा स्थल) की ओर चलते-चलते वे कहीं विलुप्त हो जाते हैं।

हिमालय के उत्तुंग अंचल में यात्रा करते हुए वृद्ध पांडव एक-एक करके काल के ग्रास बने थे। क्या ये द्वीप व टीले भी काल के ग्रास बन गये? किसने निगल लिया उन्हें?
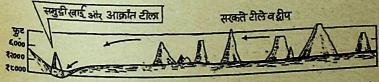
चित्र ५ : समुद्री खाई का ग्रास बना है समुद्री टीला। बीच महासमुद्र में जन्म लेकर द्वीप व टीले यात्रा करते हुए स्थल की ओर चले जा रहे हैं और भूखी खाइयों का ग्रास बन रहे हैं।

भूखी सर्वग्रासी खाइयां

कहना न होगा कि द्वीपों एवं टीलों की राह में अपना दरारी जवड़ा खोले समुद्री खाइयां सुरसा की तरह उपस्थित हैं। नदी-नालों द्वारा लायी गयी रेत-मिट्टी की विपुल मात्रा उदरस्थ करने के वावजूद इनका जैसे पेट ही नहीं भरता। छोटे-बड़े सरकते समुद्री टीले और द्वीप भी इनकी सर्वग्रासी भूख के शिकार हो जाते हैं। यही कारण है कि द्वीपों व टीलों की 'जनसंख्या' इतनी कम है, और आठ-दस करोड़ वर्ष से पुराने द्वीप-टीले तो हैं ही नहीं। समुद्री खाइयां उन्हें निगल गयीं।

यही बात समुद्र-नितल (फर्श) में संचित रेत-मिट्टी की परतों के वारे में भी कही जा सकती है। महासागरों के नितल की रेत-मिट्टी के अध्ययन से पता चला है कि पृथ्वी का इतिहास अरवों वर्ष लंवा होते हुए भी महासागरी अवसादों (रेत-मिट्टी) की आयु आठ-दस करोड़ या विरल मामलों में सोलह करोड़ वर्ष है, उससे अधिक कहीं नहीं है। स्पष्ट है कि द्वीपों व टीलों के संग समुद्री खाइयों ने इन्हें भी उदरस्थ कर लिया है।

खाइयों का बनना, द्वीपों का सरकना

ऊपर यह कहा गया है कि द्वीप व समुद्री टीले सरक रहे हैं। वास्तविकता यह है कि स्वयं द्वीप व टीले नहीं चल रहे हैं, चल रहा है समुद्र का फर्श—समुद्र-नितल। और उसके साथ चल रहे हैं उस पर जमे-टिके-द्वीप, टीले और समुद्री रेत-मिट्टी। अनेक भूवैज्ञानिक प्रमाणों से अव यह पूर्णतः सिद्ध हो चुका है कि समुद्र के नितल का विस्तरण हो रहा है—सागर का फर्श फैल रहा है, सागर की चौड़ाई वढ़ रही है।

प्रश्न उठता है कि समुद्र-नितल क्यों
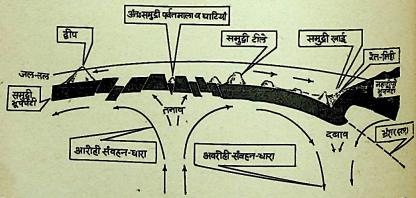
चित्र ६ : द्वीपों के सरकने, खाइयों के के बनने तथा अन्य भौमिक व्यापारों का कारण है समुद्र-नितल का विस्तरण, अर्थात् समुद्र के फर्श का फैलाव। समुद्री-भूपर्पटी के फैलने का कारण है पृथ्वी के अभ्यंतर में सक्रिय संवहन-धाराएं।

और कैसे फैल रहे हैं ? समुद्री खाइयों की उत्पत्ति का इस व्यापार से क्या संबंध है ? इस प्रश्न का उत्तर कठिन इसलिए है कि विषय दुरूह है।

संक्षेप में, भूपर्पटी (पृथ्वी की पपड़ी) के तले पृथ्वी के उष्ण गर्भ में तापमान की विषमता से उत्प्रेरित संवहन (कन्वैक्शन) धाराएं सक्रिय रहती हैं। कांच के पात्र में पानी गर्म करें, तो संवहन धाराएं दिखती हैं, विशेषत: यदि कोई रंग डाल दिया जाये।

भौमिक संवहन-धाराएं चक्राकार वहती हैं और उनका दायरा कई हजार मील होता है। आरोही (ऊपर चढ़ने वाली) संवहन धाराएं पपड़ी से टकराकर दोनों ओर फैल जाती हैं। धाराओं के चक्कर से पपड़ी में असहनीय तनाव उत्पन्न हो जाता है, दरारें खिल उठती हैं और पपड़ी स्थान-स्थान पर फट पड़ती है। इन दरारों की राह गर्भ का उष्ण और द्रवित लावा द्रव्य वाहर निकल आता है।

यह लावा समुद्रों में ज्वालामुखी द्वीप टीलों का रूप धारण कर लेता है। नया लावा निकलता है, तो वह पुराने लावा और द्वीपों-टीलों को पार्श्व दिशाओं में धकेलता हुआ जम जाता है।

इस प्रकार जब-जब लावा पृथ्वी के अभ्यंतर से वाहर निकलता है, पुराने लावा के स्तर दोनों ओर स्थल की दिशाओं में सरक जाते हैं। आरोही संवहन-धाराएं पपड़ी या समुद्र के फर्श से टकराकर दोनों ओर फैलती हैं, तो उनके साथ पपड़ी और उसके ऊपर जमे-टिके द्वीपादि भी खिंचकर धारा की दिशा में सरकने लगते हैं, ठीक उसी तरह जैसे कारखानों और खानों के कन्वेयर बेल्टों में माल व कंकड़-पत्थर सरकते हैं, या पहिये में चिपका हुआ कीचड़ चलता है।

जहां दो संवहन-चक्र परस्पर मिलकर पृथ्वी के गर्भ की ओर मुड़ते हैं, वहां भयंकर संपीड़न या दवाव उत्पन्न हो जाता है और पृथ्वी की पपड़ी मुड़कर झुक जाती है, झूल जाती है, धंस जाती है। इन्हीं स्थलों में दरारें खिल उठती हैं और खाइयों की उत्पत्ति होती है।

जिस प्रकार जल या वायु की भंवरों में कोई वस्तु फंसकर विलुप्त हो जाती है, उसी प्रकार पृथ्वी के अभ्यंतर की ओर मुड़ती हुई संवहन-धाराओं के भंवर में फंसकर पृथ्वी की समुद्रीय पपड़ी (अर्थात् समुद्र का फर्श या नितल) और उसके वक्ष में बनी खाई और खाई में संचित रेत-मिट्टी तथा लावा सभी पृथ्वी के गहन गर्भ में समाविष्ट हो जाते हैं।

इसी को हम कहते हैं—पृथ्वी ने खाइयों के मुख से द्वीपों को निगल लिया।

★

दिल का दौरा पता लगाने के लिए लंदन के टामस हास्पिटल में पराश्रव्य (अल्ट्रा-सोनिक) ध्वनियों का इस्तेमाल किया गया है। इस विधि से हृदय के दौरे का पता लगाना कमखर्चीला, सरल और विश्वसनीय पाया गया है।

★

विराट् योजना, विविध शंकाएं

एस० श्रीनिवासुलु

रूस के सामने विकट समस्या है। कास्पियन सागर की पानी की सतह सात फुट नीची हो गयी है। अराल झील इतनी तेजी से सूखती जा रही है कि अगले बीस वर्षों में शायद उसका नाम ही बाकी रह जायेगा। कुछ करना जरूरी है।

दूसरी ओर, रूस की अनेक बड़ी नदियां अपने मीठे जल की विपुल राशि उत्तर ध्रुव महासागर में उड़ेलती रहती हैं, जिसका वहां कोई उपयोग नहीं।

इन दो तथ्यों को जोड़कर एक नयी योजना बनायी गयी है। इससे अब तक जो जल व्यर्थ बह जाता था, वह अब विशाल भूखंड को सींचेगा। मनुष्य की कर्तृत्व-शक्ति का यह एक जबर्दस्त प्रमाण होगा।

योजना यह है कि पेचोरा, ओब और येनेसी नदियों पर बांध बांधे जायेंगे और उनके जल को हजारों मील लंबी नहरों के जरिये दक्षिण में कास्पियन और अराल की ओर लाया जायेगा। इसमें वोल्गा नदी की भी मदद ली जायेगी।

इससे ८५ लाख एकड़ भूभाग को, जो उपजाऊ किंतु बिलकुल सूखा हुआ है, सींचा जा सकेगा। नहरों की मदद से १५ करोड़ एकड़ दलदली जमीन में से पानी की निकासी करके उसे कृषियोग्य बनाया जा सकेगा। नहरों की खुदाई शुरू भी हो गयी है। पेचोरा योजना सात वर्ष में पूरी हो जायेगी; शेष काम में पंद्रह वर्ष लगेंगे।

मगर इस योजना से अनेक ऋतु-विज्ञानी और भूगोलशास्त्री चिंतित हो उठे हैं। जब तीन विशाल नदियों का जल उत्तर ध्रुव सागर को मिलना बंद हो जायेगा, तब क्या परिणाम होगा, इसके विषय में अनुमान लगाये जा रहे हैं। ब्रिटिश ऋतु-विज्ञान विभाग के विशेषज्ञ ह्यूबर्ट लैंब का कहना है कि इसका प्रभाव क्या होगा, यह अभी से कहना कठिन है; परंतु उनकी निश्चित राय है कि इतने बड़े पैमाने पर दखलंदाजी करने का मौसम पर बहुत घातक असर पड़ सकता है।

श्री लैंब का कहना है कि साइबेरियाई नदियों का पानी उत्तर ध्रुव सागर की बर्फ की टोपी को बनाये रखने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। इन्हीं नदियों के पानी के कारण इस सागर के पानी की ऊपरी परतें काफी हद तक ताजी रहती हैं, जिससे वे आसानी से जम जाती हैं। यदि यह पानी मिलना बंद हो जाये, तो बर्फ की टोपी पिघलकर छोटी होने लगेगी। जब ऐसा होगा, तो उसका नतीजा क्या होगा, इस बारे में विशेषज्ञों में मतभेद है।

कुछ का विचार है कि कोई खास प्रभाव

नहीं होगा। किंतु दूसरे सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि इससे :

क. उष्ण, समशीतोष्ण और शीत कटिबंध की रेखाएं कई अंश ऊपर सरक जायेंगी, जिससे देशों की वर्तमान जलवायु में काफी फर्क पड़ेगा। स्पेन, इटली और यूनान के काफी बड़े हिस्सों की जलवायु वैसी हो जायेगी, जैसी अभी उत्तरी अमरीका की है और जिसे भूगोल में 'भूमध्य सागरीय' जलवायु कहते हैं, वह अधिक उत्तर तक फैल जायेगी। शायद ब्रिटेन में गर्मियां अधिक गर्म हो उठेंगी।

ख. समुद्रों में तूफानी क्रिया-कलाप भी तब अधिक उत्तर में होने लगेगा। समशीतोष्ण कटिबंध की वर्षा का इस कारवाई से गहरा संबंध है।

ग. जब समशीतोष्ण कटिबंधीय रेखा अधिक उत्तर की ओर सरक जायेगी, तो आजकल के रेगिस्तान भी उत्तर की ओर बढ़ने लगेंगे और बहुत-सी उर्वर भूमि को निगल लेंगे।

अमरीकी भूगर्भशास्त्रीय सर्वेक्षण विभाग के विज्ञानी डा० रेमांड एल० नेस ने तो बड़ी विचित्र बात कही है। उनका विचार है, जब बर्फ की टोपी छोटी हो जायेगी, तो उत्तर ध्रुव पर से दबाव भूमध्यरेखा की ओर हटेगा और इससे पृथ्वी के अपने अक्ष पर घूमने की रफ्तार में कमी आ जायेगी।

* हिमालय-क्षेत्र में बहुतायत से उगने वाली जड़ी-बूटी पोडोफाईलम त्वचा-कैन्सर के उपचार के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती है, ऐसा विचार ब्रिटिश वैज्ञानिक प्रो० बटैली ने व्यक्त किया है। पिछले पांच साल के परीक्षणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इससे बनायी गयी मलहम से कैन्सर का उपचार काफी सस्ता हो जायेगा। अभी यह केवल प्रयोगात्मक स्थिति में है। शायद दूसरे प्रकार के कैन्सरों के उपचार में भी यह उपयोगी पाया जाये।

* बेटेल नार्थ वेस्ट एजेंसी ने एक नये परमाणु-कैमरे का आविष्कार किया है, जिससे अपराध-विज्ञान में काफी सहायता मिलेगी। इस कैमरे में कैलिफोर्नियम–२५२ समस्थानिक (आइसोटोप) का उपयोग किया जाता है। इस आइसोटोप से न्यूट्रान निकलते हैं, जो असल में तस्वीरें खींचते हैं। ऐसी छिपी हुई चीजें, जो सामान्यतया क्ष-किरणों से नहीं पता लगायी जा सकतीं, उन्हें यह कैमरा पता लगा सकता है।

इस कैमरे का उपयोग मज्जा, हाड़-मांस का परीक्षण करने में भी किया जा सकेगा और न्यूक्लीय-विज्ञान में रेडियोधर्मी ईंधनों, नियंत्रण-छड़ों के परिरक्षण-पदार्थों को जांचने के लिए भी इसका उपयोग किया जायेगा। (हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद्, बंबई)

★

संत की समाधि पर

चारुमित्रा

पैपिनो अपने माता-पिता के साथ इटली के असीसी नगर में रहता था। वही असीसी, जहां के संत फ्रांसिस की गाथाएं संसार-भर में गायी जाती हैं, जहां के प्रसिद्ध गिरजाघर में आज भी संत फ्रांसिस की अस्थियां सुरक्षित हैं। दूसरे महायुद्ध में पैपिनो के माता-पिता तथा सभी सगे-संबंधी मारे गये। तब पैपिनो केवल दस बरस का था। लेकिन वह एकदम अकेला न था।

उसे अपने माता-पिता से विरासत में एक गधी मिली थी, जिसे वह प्यार से 'वायलेटा' कहा करता था।

पैपिनो का न कोई घर था न द्वार, वह वायलेटा के साथ निकोलो के अस्तबल में रात बिताता और भाड़ा देता। दिन-भर वह असीसी के बाजारों में वायलेटा की पीठ पर बोझा ढोता और मजदूरी कमाता था। जब बाजार में काम न मिलता, तो वह खेतों में चला जाता और जैतून की ढुलाई करता।

वायलेटा पैपिनो की रोजी-रोटी का साधन ही न थी, वह उस एकाकी बालक की एकमात्र संगिनी बन गयी थी और मां भी। रात को पैपिनो उसकी गर्दन का तकिया लगाकर सोता; और जब सर्दी लगती, तो वायलेटा की पीठ से चिपक जाता। उसकी वायलेटा सामान्य गधी न थी। उसके ओंठ कुछ इस तरह के थे कि उनसे हरदम ऐसा आभास होता, मानो वह मंद-मंद मुस्करा रही है।

पैपिनो वायलेटा की सामर्थ्य से अधिक बोझा पीठ पर कभी न लादता था और वायलेटा भी बोझा ढोने में जरा भी आना-कानी नहीं करती थी। पैपिनो शायद ही कभी वायलेटा पर हाथ उठाता रहा हो। वे दोनों एक दूसरे के जीवन के अभिन्न अंग बन गये थे। लेकिन बुरे दिन आते देर नहीं लगती। वसंत का मौसम आया और वायलेटा बीमार पड़ गयी।

शुरू में तो बीमारी के कोई खास लक्षण नहीं दिखाई पड़े। बस इतना ही था कि अब वह हरदम शिथिल-सी रहती थी। न उस पर डांट-डपट का असर होता, न पुचकारने का। धीरे-धीरे पैपिनो ने महसूस किया कि वायलेटा कमजोर होती जा रही है, उसका वजन गिर रहा है और उसकी पसलियां निकल आयीं हैं। उसके ओंठों की मुस्कान गायब होती चली गयी और वह दिन-ब-दिन ढलने लगी। जिसने भी जो दवा बतायी, पैपिनो ने की।

अंत में हारकर पैपिनो ने पशु-चिकित्सक डा० बारतोली को बुलाया। डाक्टर ने भरसक कोशिश की; मगर वायलेटा का रोग उसकी समझ में नहीं आया। पैपिनो की कमाई तो बंद थी ही, बचत के पैसों में से पूरे सौ लीरा वायलेटा की दवा पर खर्च हो गये। लेकिन उसे इसकी परवाह न थी। वह तो किसी भी तरह वायलेटा को बचा लेना चाहता था, क्योंकि वायलेटा के सिवा उसका अपना था ही कौन।

डा० बारतोली ने वायलेटा की देह की परीक्षा करके पैपिनो से कहा कि अब इसका एक ही इलाज बचा है। इसे पूरा आराम दो, हल्का चारा खिलाओ और ईश्वर को याद करो, शायद यह अच्छी हो जाये।

डाक्टर के जाने के बाद पैपिनो अपना सिर वायलेटा की गर्दन पर रखकर जी भरकर रोया। भावना का तूफान शांत होने के बाद उसे याद आया कि भले ही डा० बारतोली वायलेटा का इलाज न कर पाये, ईश्वर तो मेरी प्रार्थना सुनेगा ही। उसने सुन रखा

था कि संत फ्रांसिस सभी जीवों से बहुत प्रेम करते थे। उसने संकल्प कर लिया कि मैं वायलेटा को संत की समाधि पर ले जाऊंगा और वायलेटा को ठीक कर देने की प्रार्थना करूंगा। उसे पूरा विश्वास था कि संत फ्रांसिस वायलेटा को देखते ही ठीक कर देंगे।

और यह विश्वास उसके मन में बैठाया था स्थानीय गिरजाघर के एक पादरी फादर डैमिको ने। इसके अलावा निकोलो के बेटे जियानी ने भी तो बताया था कि जब उसकी बिल्ली बीमार हुई, तो वह उसे कोट में छिपाकर संत फ्रांसिस की समाधि पर प्रार्थना करने गया था और बिल्ली ठीक हो गयी थी। जियानी पैपिनो का गहरा मित्र था; वह उससे झूठ नहीं बोल सकता था।

पैपिनो वायलेटा को साथ लेकर समाधि की ओर चल पड़ा। वायलेटा जैसे-तैसे पहाड़ी पर चढ़कर समाधि के द्वार तक जा पहुंची। वहां पैपिनो ने साधु बर्नार्ड से पूछा कि क्या मुझे और मेरी वायलेटा को भीतर जाने देंगे? बर्नार्ड नया-नया साधु था, उसे पैपिनो पर गुस्सा आ गया और उसने चौकीदारों से पैपिनो और वायलेटा को वहां से खदेड़ देने को कह दिया। भला गधे को समाधि तक कैसे जाने दिया जा सकता है; समाधि अपवित्र न हो जायेगी। यों भी रास्ते की सीढ़ियां इतनी तंग हैं कि उन पर से आदमी का गुजरना ही मुश्किल होता है, भला गधा वहां किस तरह जा सकता है।

पैपिनो बेचारी वायलेटा के गले में बांह डाले वहां से लौट गया। बर्नार्ड के व्यवहार से वह दु:खी तो हुआ, लेकिन निराश नहीं। उसे ध्यान आया कि पिछले दिनों एक अमरीकी कारपोरल कोई छ: महीने तक असीसी में रहा था। वह पैपिनो को बहुत प्यार करता था और विदा होते समय चाकलेट, साबुन और दूसरी चीजों के साथ उसे यह सीख भी दे गया था कि अगर तुम इस दुनिया में आगे बढ़ना चाहते हो, तो कभी भी किसी 'ना' को मत स्वीकारना, जो कुछ पाना चाहते हो, उसे पाकर ही रहना। यह सीख याद आते ही पैपिनो के रोम-रोम में नया जीवन संचरित हो उठा और वह वहां से सीधा फादर डैमिको के पास गया।

फादर डैमिको को यह समस्या सुलझानी थी। उसने पैपिनो को बताया कि उसे समाधि के व्यवस्थापक से अनुमति मांगनी चाहिये। उसने यह भी सुझाया कि यदि वायलेटा को सीढ़ियों के रास्ते समाधि तक ले जाने में कठिनाई हो, तो व्यवस्थापक से कहकर वह पुराने गिरजाघर से होकर जाने वाला रास्ता खुलवा ले। यह रास्ता पिछले सौ बरसों से बंद था।

फादर को धन्यवाद देकर पैपिनो ने वायलेटा को तो निकोलो के अस्तबल में छोड़ा और स्वयं समाधि पर पहुंचा व्यवस्थापक से मिलने। व्यवस्थापक उस समय बिशप से बातें कर रहा था, फिर भी उसने पैपिनो को तुरंत बुला लिया।

व्यवस्थापक और बिशप के बीच उस समय समाधि के बारे में ही बात हो रही थी। व्यवस्थापक का कहना था कि संत फ्रांसिस

के अवशेष यदि समाधि में से निकालकर बाहर रख दिये जायें, तो दर्शनार्थियों की संख्या बहुत बढ़ जायेगी। बिशप का उत्तर था कि इससे क्या होगा, महत्त्व तो संत के संदेश का है। पैपिनो इस वार्तालाप को गौर से सुनता रहा।

बातचीत के बीच दोनों का ध्यान पैपिनो पर गया ? व्यवस्थापक ने पूछा कि कहो बेटा, कैसे आये ? उत्तर मिला – "श्रीमन् मेरी गधी वायलेटा सख्त बीमार है। डा० बारतोली ने कह दिया है कि अब उसका कोई इलाज नहीं रहा, शायद वह मर जायेगी। आप अनुमति दें, तो मैं वायलेटा को संत फ्रांसिस की समाधि तक ले जाऊंगा और उसे ठीक कर देने की उनसे प्रार्थना करूंगा। वे सब जीवों से प्रेम करते थे, गधों से खास तौर पर। वे जरूर उसे ठीक कर देंगे।"

पहले तो व्यवस्थापक झल्लाया और उसने पैपिनो को डांटा –"कैसी बेतुकी बात कर रहे हो ! गधों को समाधि पर जाने की अनुमति कैसे दी जा सकती है !" लेकिन जब उसकी नजर पैपिनो के भोले चेहरे पर पड़ी, तो उसके मन में दया उमड़ आयी।

मगर उसे यह शंका भी हुई कि यदि गधी रास्ते में ही मर गयी तो ? मुर्दे को वहां से निकालना तो मुश्किल होगा ही, बदनामी भी होगी।

उलझन से पार पाने के लिए व्यवस्थापक ने बिशप की ओर देखा। बिशप ने युक्ति से काम लेने की सोची और कहा कि सीढ़ियों के रास्ते गधा कैसे आ पायेगा। पैपिनो ने इस पर पुराने गिरजाघर में से होकर जाने वाला रास्ता खोल देने की प्रार्थना की। मगर व्यवस्थापक ने साफ इंकार कर दिया और बिशप ने भी पैपिनो से यही कहा– "बच्चे, घर लौट जाओ और वहीं से संत फ्रांसिस से वायलेटा के स्वास्थ्य के लिए प्रार्थना करो। अगर सच्चे मन से प्रार्थना करोगे, तो निश्चय ही सुनवाई होगी।"

संत फ्रांसिस (मूर्ति : जोन सेबस्टन)

उदास मन पैपिनो सीधा फादर डैमिको के पास गया, यह पूछने कि अब मैं किसके पास जाऊं। फादर ने विशप से ऊपर के कई अधिकारियों के नाम-पते बताये। परंतु उसके मन में यह खयाल भी उठा कि असीसी से रोम तक विभिन्न अधिकारियों के दरवाजे खटखटाने में तो कई दिन लग जायेंगे। तब तक तो शायद वायलेटा दम तोड़ दे। इसलिए उसने पैपिनो से कहा – "मगर इन सबके ऊपर परमपावन पोप हैं। वे बहुत दयालु हैं और यदि तुम उनके पास जाकर विनती करो, तो निश्चय ही वे तुम्हें अनुमति दे देंगे।"

बस पैपिनो ने बीच के अधिकारियों के पास न जाकर सीधा पोप से मिलने का निश्चय कर लिया। फादर डैमिको के यहां से सीधे वह निकोलो के अस्तबल में वायलेटा के पास गया। देर तक उसने वायलेटा की मालिश की, उसे घास खिलायी, पानी पिलाया और उसकी गर्दन में बांहें डालकर उसके कान में कहता रहा – "तू ठीक से रहना। मैं जल्दी ही रोम से लौटकर तुझे संत फ्रांसिस के पास ले चलूंगा। तब तू ठीक हो जायेगी। और देख, बीच में ही मुझे धोखा मत दे देना।" बेचारी वायलेटा इतना ही समझी कि पैपिनो उसे प्यार कर रहा है।

पैपिनो ने रोम चलने की तैयारी कर ली। घास के ढेर में से उसने पत्थर का एक बर्तन निकाला, जो उसका कोशागार था। उसमें कुल तीन सौ लीरा बचे थे। सौ लीरा उसने बर्तन में रहने दिये और बर्तन को वापस घास में छिपा दिया, और दो सौ लीरा लेकर रोम के लिए निकल पड़ा। चलते समय उसने अपने मित्र जियाजी से कहा – "तू मेरे पीछे वायलेटा की अच्छी तरह देखभाल करना। मैं लौटकर तुझे सौ लीरा दूंगा।"

पैपिनो बाहर सड़क पर आया और रोम की ओर जाते एक ट्रक को हाथ दिखाकर रोक लिया। ड्राइवर ने पैपिनो को ट्रक पर चढ़ा लिया और तड़के ही रोम पहुंचा दिया। चारों ओर अट्टालिकाएं देखकर पैपिनो सहम गया। वह सोच रहा था, मैं तो बहुत छोटा बालक हूं, यहां मेरी क्या सुनवाई होगी? लेकिन फिर उसे अमरीकी कारपोरल की सीख याद आ गयी। सूरज चढ़ने के बाद वह पोप के निवासस्थान वैटिकन के राजद्वार पर जा पहुंचा। वहां उसने एक संतरी से कहा कि मैं असीसी से आया हूं और परमपावन पोप के दर्शन करना चाहता हूं। संतरी ने यह कहकर उसे रोक दिया कि पोप बहुत व्यस्त हैं, उनके पास तुमसे मिलने का समय नहीं है।

पैपिनो उदास हो गया। मगर उसने हार न मानी। रोम के एक चौक में जाकर उसने ५० लीरा में ताजे फूलों का एक सुंदर-सा गुच्छा खरीद लिया। फिर स्टेशनरी की दुकान में पेंसिल तथा कागज लेकर उसने एक पत्र लिखा :

"प्रिय और परमपावन पिता, ये फूल आपके लिए हैं। कृपया मुझे भेंट का अवसर दीजिये। मैं आपको अपनी गधी वायलेटा के बारे में बताना चाहता हूं। वह

मर रही है और गिरजाधर के अधिकारी मुझे इस बात की अनुमति नहीं देते कि मैं उसे संत फ्रांसिस के पास ले जाऊं, जिससे कि वे उसे ठीक कर सकें।...... मैं असीसी में रहता हूं। मैं केवल आपसे मिलने के लिए ही इतनी दूर चलकर आया हूं। आपका प्यारा–पैपिनो।"

पत्र और फूल लेकर वह वैटिकन के फाटक पर लौटा और उसने दोनों चीजें संतरी के हाथों में थमा दीं। संतरी इस बार कुछ न कह सका; लेकिन उसने मन-ही-मन तय कर लिया कि भीतर जाकर इन दोनों को रद्दी की टोकरी में फेंक देना है। इस ढीठ लड़के से कह देना है कि पोप के पास तुमसे मिलने का समय नहीं है।

पहरे पर दूसरे संतरी को खड़ा करके वह भीतर गया और ज्यों ही रद्दी की टोकरी के पास पहुंचा, उसके पांव ठिठक गये। उसने फूलों की ओर देखा और न जाने कौन-सी शक्ति ने उसे प्रेरित किया कि इन फूलों को पोप तक पहुंचाना ही चाहिये।......वह आगे मुड़ा और उसने पत्र और फूल एक पादरी को थमा दिये।

पोप पायस द्वादश

इसके बाद तो वे दोनों चीजें अनेक हाथों में से गुजरीं। शायद उनमें से कई के मन में विचार आया होगा, इन्हें रद्दी की टोकरी के हवा लेकरने का। मगर कोई शक्ति हर बार आड़े आती थी। आखिर में दोनों चीजें पोप के हाथों में जा पहुंचीं। पोप ने फूलों का गुच्छा उठाया और उनका मन अपने बालपन की स्मृतियों से भर आया। पत्र पढ़कर तो पोप ने आंखें मूंद लीं और ध्यानावस्थित हो गये। फिर उन्होंने एक सचिव को बुलाया और कहा कि पैपिनो को तुरंत यहां ले आओ।

अब पैपिनो की विजय का समय आ गया था, वह पोप के सामने पहुंचा। पोप ने उसे एक कुर्सी पर बैठाया और उसकी सारी कहानी ध्यान से सुनी। आधा घंटा बीत गया। पोप ने अपना हाथ पैपिनो के कंधे पर रखा और अपने महा-सचिव से दो पत्र लिखवाकर उसे दिये। एक समाधि के व्यवस्थापक के नाम था और दूसरा फादर डैमिको के नाम।

पैपिनो वैटिकन से बाहर आया। उसे कुछ मालूम न था कि पत्रों में क्या लिखा है। पोप ने उसे कोई आश्वासन भी नहीं दिया था। लेकिन उसका मन खुशी से नाच रहा था। उसे पूरा भरोसा था कि अब मैं अपनी वायलेटा को समाधि तक ले जा सकूंगा और संत फ्रांसिस उसे ठीक कर लेंगे। वह असीसी जाने वाली सड़क पर खड़ा हो गया और एक ट्रक ने उसको शाम तक वापस असीसी पहुंचा दिया।

सबसे पहले पैपिनो अपनी वायलेटा के

पास गया। जब उसे संतोष हो गया कि उसकी देखभाल ठीक से होती रही है, तो वह दोनों पत्र लेकर फादर डैमिको के पास गया। फादर व्यवस्थापक के नाम का पत्र तो हाथ में लिये रहे और अपने नाम का पत्र तुरंत खोल लिया। पोप का संदेश पाकर फादर बहुत प्रसन्न हुए। पत्र पढ़ने के बाद फादर ने पैपिनो से कहा कि मैं दूसरा पत्र लेकर कल व्यवस्थापक से मिलूंगा। वे मिस्त्री और मजदूर बुलायेंगे और उस दीवार को तुड़वायेंगे, जिससे नीचे का दरवाजा बंद है। तब दरवाजा खुल जायेगा और तुम वायलेटा को लेकर वहां आ सकोगे पोप ने स्वयं यह आदेश दिया है।

अगला दिन आया। नीचे के रास्ते में अड़ी हुई दीवार गिरने लगी। एक ओर व्यवस्थापक और बिशप खड़े थे और दूसरी ओर पैपिनो वायलेटा के गले में बांह डाले दरवाजा खुलने की राह देख रहा था। पैपिनो पीला पड़ गया था और वायलेटा अस्थिपंजर मात्र रह गयी थी। इतने में ही दीवार गिर गयी और एक संकरा रास्ता खुल गया, जिसके पार संत फ्रांसिस की समाधि पर जलती हुई मोमबत्तियां दिखाई दे रही थीं।

न जाने किस प्रेरणा से वायलेटा आगे की ओर बढ़ी। पीछे फादर डैमिको चिल्लाये, अभी रुको। पैपिनो ने वायलेटा को रोकना चाहा। इस प्रयास में वायलेटा का पांव फिसल गया। पता नहीं, किधर से एक ईंट वायलेटा के बहुत पास गिरी और चारों ओर धूल छा गयी। फादर ने आगे बढ़कर पैपिनो और वायलेटा को पीछे घसीट लिया।

धूल बैठने के बाद सारा दृश्य स्पष्ट हो गया, जहां से ईंट और मिट्टी गिरी थी, वहां लोहे का एक संदूक रखा था, जिस पर 'एफ' अक्षर और सन १२२६ खुदा हुआ था। बिशप ने उसे देखते ही कहा कि यह निश्चय ही संत फ्रांसिस की वसीयत है। संदूक वहां से निकाला गया और उसे खोलकर देखा गया। उसके भीतर जूट की एक बटी हुई रस्सी थी, उसमें एक गांठ के भीतर गेहूं की एक बाली बंधी थी। बाली सूख गयी थी; लेकिन एकदम ताजी लगती थी। उसके अलावा संदूक में एक फूल और चिड़ियों के कुछ छोटे-छोटे पंख थे।

फादर डैमिको संत फ्रांसिस की उस धरोहर को देखकर रो पड़े और बिशप ने उसकी व्याख्या की—दरिद्रता, प्रेम और आस्था। यही था संत फ्रांसिस का संदेश, जिसके लिए बिशप तरस रहे थे।

पैपिनो को इन सबमें कोई दिलचस्पी न थी। वह तो दरवाजा खुलने की राह देख रहा था। अब मजदूरों ने मिट्टी हटा दी थी, रास्ता साफ हो गया था। फादर डैमिको पैपिनो से बोले—"हां, पैपिनो, अब तुम अपनी वायलेटा को लेकर समाधि तक जा सकते हो। ईश्वर तुम पर कृपा करे।"

संकेत मिलते ही पैपिनो और वायलेटा समाधि की ओर चल पड़े। मंद-मंद रोशनी में फादर डैमिको को ऐसा लगा, मानो वायलेटा के ओंठों पर उसकी स्वाभाविक मुस्कान खेलने लगी है।

★

आपका खून सांस ले रहा है

रेखा रस्तोगी

सभी जानते हैं कि जब हम सांस लेते हैं, आक्सिजन-मिश्रित ताजी हवा फेफड़ों में पहुंचती है और जब हम सांस छोड़ते हैं, कार्बन डाइ-आक्साइड मिली दूषित हवा वाहर निकलती है। यह वात भी विज्ञान की कृपा से हमें मालूम थी कि हम जिस आक्सिजन को सांस के द्वारा अपने फेफड़ों में ले जाते हैं, उसे रक्त की लाल कोशिकाएं भी लेती हैं और इस तरह वह आक्सिजन शरीर की प्रत्येक कोशिका तक पहुंच जाती है। कोशिकाओं में आक्सिजन का संचार हो जाने के वाद, उसे ले जाने वाला लाल रासायनिक द्रव्य हेमोग्लोबीन फेफड़ों में वापस पहुंचकर नया आक्सिजन ले लेता है।

लेकिन अभी तक यह मालूम नहीं था कि हेमोग्लोबीन का प्रत्येक अणु कितनी आक्सिजन ले जाता है और वह शरीर के विभिन्न अंगों तक कैसे पहुंचता है? न यही स्पष्ट था कि जिस समय हेमोग्लोबीन का अणु आक्सिजन छोड़ता है, उस समय उसका क्या स्वरूप हो जाता है। इन सब वातों की खोज हाल में ही कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में डा० मैक्स पेरूत्ज के निदेशन में हुई है।

वैज्ञानिक १९१० से ही इस वारे में परेशान थे कि हेमोग्लोबीन शरीर के उन्हीं अंगों को आक्सिजन कैसे पहुंचाता है, जिन्हें परिश्रम के कारण इसकी अधिक आवश्यकता होती है? कठोर श्रम के वाद जब हमारी मांसपेशियों को अधिक आक्सिजन की आवश्यकता होती है, हेमोग्लोवीन तुरंत वहां आक्सिजन पहुंचा देता है। मगर कैसे?

इसका समाधान डा० पेरूत्ज ने किया है। १८ वर्ष धैर्यपूर्वक शोध करके उन्होंने हेमोग्लोवीन की त्रिपक्षीय-संघटना का पता लगा लिया है।

जीवित कोशिकाओं को जब श्रम करना पड़ता है, तो वे ऊर्जा की खपत के कारण कार्वन डाइ-आक्साइड गैस पैदा करती हैं। यह गैस कोशिकाओं के चारों ओर संचित द्रव में घुलकर उसे तेजाव में परिणत कर देती है। इस अतिरिक्त तेजाबीपन के कारण ही हेमोग्लोवीन, कोशिकाओं से चलकर उनके चारों ओर संचित द्रव में पहुंचता और अपनी आक्सिजन वहां छोड़ देता है।

यह तेजावीपन ऐसा रासायनिक उत्प्रेरक है, जो हेमोग्लोबीन को आक्सिजन छोड़ने के लिए प्रेरित करता है। शरीर के जिन अंगों ने श्रम करके अपनी आक्सिजन

को खपा नहीं लिया हो, उनमें यह उत्प्रेरक नहीं होता। अतः हेमोग्लोबीन उन कोशिकाओं की ओर नहीं दौड़ता है, जिनके चारों ओर यह तेजाबीपन मौजूद न हो।

डा० पेरूत्ज ने यह भी पता लगाया है कि जिस समय हेमोग्लोबीन श्रम से थकी हुई कोशिका के चारों ओर पहुंचकर आक्सिजन छोड़ता है, उस समय उसके आकार-प्रकार में क्या अंतर होता है।

हेमोग्लोबीन के अणु को दस गुना बड़ा करके देखें, तो वह ऊन के गोले-जैसा उलझा हुआ दिखाई देता है। लेकिन वास्तव में उसका निर्माण चार शृंखलाओं से होता है और उसकी बनावट सुव्यवस्थित होती है। आक्सिजन छोड़ते समय दो शृंखलाएं मिलकर एक वृत्त बना लेती हैं। एक शृंखला का सिर दूसरी की पूंछ से जुड़ जाता है और दूसरी का सिर पहली की पूंछ से जुड़ जाता है। शेष दोनों शृंखलाएं भी एक नया जटिल रूप ग्रहण कर लेती हैं।

फलस्वरूप आक्सिजन बाहर निकल जाती है और हेमोग्लोबीन नयी आक्सिजन पाने के लिए फेफड़ों की ओर चल देता है।

डा० पेरूत्ज की यह खोज चिकित्सा के क्षेत्र में बहुत उपयोगी होगी। पिछले साल जापान में 'हेमोग्लोबीन-हिरोशिमा' नामक बीमारी फैल गयी। इस बीमारी में विचित्र प्रकार का एनीमिया (रक्ताभाव) उत्पन्न हो जाता है। रोगी के शरीर में रक्त का उत्पादन और उसमें हेमोग्लोबीन का निर्माण पहले से अधिक होता है; मगर उसकी बनावट में कुछ ऐसा दोष आ जाता है कि वह कोशिका के चारों ओर एकत्र तेजाबीपन से उत्प्रेरित नहीं होता और इस कारण आक्सिजन नहीं छोड़ पाता।

हेमोग्लोबीन की बनावट डी० एन० ए० द्वारा निर्धारित होती है और डी० एन० ए० में दोष आ जाने के कारण ही यह दोष पैदा होता है। अभी तक उस दोष के निवारण का कोई उपाय ज्ञात नहीं है। इससे पीड़ित लोगों को संतान उत्पन्न न करने की सलाह दी जाती है; क्योंकि वंशानुक्रम से यह रोग उनके बच्चों को भी मिल सकता है।

'नेचर' में प्रकाशित एक लेख में डा० पेरूत्ज ने यह आशा प्रकट की है कि भविष्य में उनकी खोज से इस रोग की चिकित्सा करने में मदद मिलेगी। उन्होंने इस लेख में बताया है कि हेमोग्लोबीन की कोशिकाओं का निर्माण तिल्ली और मज्जा में होता है। यदि सही किस्म के हेमोग्लोबीन के निर्माण का नियमन करने में समर्थ तत्त्व तिल्ली और मज्जा में प्रविष्ट कराये जा सकें, तो इस रोग की चिकित्सा सुसाध्य हो जायेगी।

अभी तो यह एक कल्पना मात्र है। किंतु डा० पेरूत्ज को विश्वास है कि यदि रोगी की मज्जा को निकालकर उसके स्थान पर स्वस्थ मनुष्य की मज्जा पहुंचायी जाये, तो इस रोग में आराम हो सकता है। इसमें दिक्कत यही है कि परायी मज्जा को शरीर आरंभ में अस्वीकार करेगा। वैसे, विकिरण से उत्पन्न रोगों में मज्जा-परिवर्तन आजकल भी किया जाता है, जो प्रायः सफल रहता है।

★

एक और समुद्री साहस :

अकेली महिला प्रशांत के आर-पार

सुजाता

जापान के योकोहामा बंदरगाह से अमरीका के सानडियेगो बंदरगाह तक प्रशांत महासागर के सीने पर छः हजार मील की समुद्र-यात्रा। छोटी-सी नाव, एकाकी यात्रिणी। नाम—शैरोन साइट्स एडम्स।

शैरोन ने यह यात्रा बिना कहीं रुके ७४ दिन, १७ घंटे और १५ मिनिट में पूरी की। पूरे रास्ते उसने किसी मनुष्य के साथ संपर्क नहीं रखा था। नीचे प्रशांत का अशांत जल वह रहा था और सिर पर था खुला आसमान। कभी चिलचिलाता सूरज चमकता, तो कभी बादल उमड़ आते; कभी बारिश हो जाती और कभी समुद्री पंछी उसकी नाव पर बैठ सहयात्री बन जाते।

लोग शैरोन को रोमांच-प्रिय कहेंगे, लेकिन शैरोन कहती है—"मैं तनिक भी रोमांच-प्रिय नहीं हूं। मैंने कभी भी महज रोमांच के लिए जान को जोखिम में नहीं डाला है। नाव खेना शुरू करने से कुछ दिनों पहले मैंने कैटेलिना द्वीप के तट के समीप गोताखोरी का प्रशिक्षण जरूर लिया था; लेकिन इसके अलावा कभी भी कोई असाधारण अथवा साहसपूर्ण काम नहीं किया।

"प्रशांत की यात्रा पर निकलते समय मैं दो बेटों की मां थी और अपना घर संभालने के अलावा सवेरे ९ बजे से लेकर शाम के ५ बजे तक एक दंत-चिकित्सक के कार्यालय में व्यवस्थापिका का काम भी करती थी। युवावस्था में मैंने किसी हीरो की उपासना नहीं की। मैं तो अपने पुरखों की बहुत बड़ी प्रशंसक हूं और मेरा वस चलता, तो वापस उनके जमाने में लौटकर बंद गाड़ी के भीतर यात्रा करती।

"अकेली नाव से प्रशांत महासागर पार करने में मेरे सामने एक बहुत बड़ा उद्देश्य था; मैं यह सिद्ध करना चाहती थी कि महिलाओं को अबला मानकर साहसिक कार्यों से अलग रखने की परंपरा गलत है। उन्हें भी चांद पर भेजा जाना चाहिये। मैं स्वयं भी चांद पर जाना चाहूंगी। हालांकि नाव खेना मेरा जीवन बन गया है, फिर भी यदि मुझे चांद पर जाने का अवसर मिले, तो मैं बहुत खुशी से जाऊंगी।"

शैरोन को साहसिक कार्यों से बहुत प्रेम

है। वह कहती है—"पहाड़ों पर चढ़ने के सिवा मुझे सभी कामों में रुचि है। मेरा मन होता है कि मैं पैराशूट से धरती पर कूदूं। मुझे यह जानने की उत्सुकता है कि आकाश से पृथ्वी पर छलांग लगाने में कैसा लगता है। मेरा लड़का सत्रह साल का हो गया है और उसे पहाड़ पर चढ़ने का शौक है। पर मुझे तो पर्वतारोहण से डर लगता है, मुझे उसमें सबसे खराब उतराई लगती है। नाव खेने में वैसा कोई खतरा नहीं है।"

१२ मई १९६९ को शैरोन अपनी ३१ फुट लंबी नाव सी-शार्प द्वितीय लेकर योकोहामा के बंदरगाह से सानडियेगो की यात्रा पर निकली। उसके रेत छोड़ने से पहले सूचना मिली कि महासागर में तूफान आया हुआ है और योकोहामा से चलने के तीन दिन बाद ही शैरोन को उसका सामना करना पड़ेगा। यह समाचार सुनकर शैरोन के पति एडम्स का मन अस्थिर हो उठा और उसने चिंतित होकर शैरोन से पूछा—"तुम्हारा क्या विचार है?" शैरोन पति की ओर देखकर मुस्करायी और बोली—"यह तो पहला तूफान है, आखिरी नहीं।" उसका मंतव्य स्पष्ट था कि मैं सब तूफानों को पार करके सही-सलामत अपनी मंजिल पर पहुंच जाऊंगी।

एडम्स प्रेस संवाददाताओं की नाव में चढ़कर शैरोन को विदा करने कुछ दूर तक उसके साथ-साथ गया और विदा लेते समय उसने एक बार फिर शैरोन से पूछा कि क्या तुम सचमुच यात्रा पर जा ही रही हो? शैरोन ने सिर हिलाकर हामी भरी और "हां, यकीनन। और मुझे पूरा भरोसा है कि मैं उस पार सुरक्षित पहुंचने वाली हूं।" यह कहते हुए हाथ हिलाकर उसने विदा ली।

शैरोन अपनी यात्रा की स्मृतियां सुनाते समय कभी 'मैं' नहीं कहती, हमेशा 'हम' कहती है। उसकी दलील है—"मेरे साथ एक सहेली भी तो थी—मेरी नौका सी-शार्प द्वितीय। हम दोनों ने एक साथ बहुत-से भयंकर तूफानों को झेला है।" सचमुच उसे अपनी नौका से बहुत प्यार है।

यात्रा शुरू करने के पांच साल पहले शैरोन को इस बात का गुमान भी न था कि वह कभी नाव खे सकती है। शैरोन एक रविवार को गिरजाघर से लौट रही थी। रास्ते में उसने एक विज्ञापन देखा, जिसमें लिखा था कि अल एडम्स नामक व्यक्ति ने नौका-चालन के प्रशिक्षण का एक स्कूल खोला है। शैरोन के मन में एक विचित्र स्फूर्ति-सी जागी और वह एडम्स के स्कूल में पहुंच गयी। पहले पाठ के ३८ मिनट बाद ही वह नौका लेकर अकेली सागर से किल्लोल करने गयी और सकुशल लौट आयी। डेढ़ वर्ष बाद उसने अपने शिक्षक एडम्स के साथ विवाह कर लिया।

१९६५ की गर्मियों में शैरोन ने अकेले ही लास ऐंजल्स से हवाई द्वीप तक की समुद्र-यात्रा की थी। इस यात्रा में उसे ३९ दिन लगे थे। इस तरह की यात्रा करने वाली वह पहली अमरीकी महिला थी। इसके लिए उसे राष्ट्रीय-सम्मान भी मिला। उस समय

मई
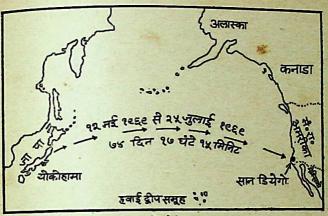
प्रशांत सागर में शैरोन का यात्रा-पथ

शैरोन ने यह प्रतिज्ञा की थी कि अब मैं कभी भी अकेले समुद्र-यात्रा पर नहीं जाऊंगी; मगर पानी का आकर्षण उसे फिर खींच ले गया और उसने प्रशांत महासागर को अकेले ही पार किया।

उससे किसी ने पूछा कि प्रशांत की यात्रा पर अकेले निकलते समय क्या तुम्हें पूरा विश्वास था कि तुम सकुशल सानडियेगो पहुंच जाओगी? उत्तर मिला – "मैंने कभी यह नहीं सोचा कि मैं अपनी मंजिल पर नहीं पहुंचूंगी या मैं रास्ते में ही मर जाऊंगी। क्योंकि इस तरह तो रोज सवेरे घर से निकलते समय हममें से हर एक को सोचना होगा कि मालूम नहीं शाम को घर लौट सकूंगा या नहीं। बाहर निकलने पर दुर्घटना की संभावना तो रहती ही है।"

शैरोन शहर में कार चलाने और प्रशांत के तल पर नाव खेने में किसी तरह का अंतर नहीं महसूस करती। वह यह दावा नहीं करती कि तूफान के समय उसे डर नहीं लगता। वह कहती है – "प्रशांत-यात्रा के दौरान हमें (उसे और नौका को) छः बार भयंकर तूफानों का सामना करना पड़ा। एक बार तो आंधी की गति ६२ मील प्रति घंटा हो गयी; मैं बेहद घबरा गयी थी। मैं हर बार घबरायी। एक बार तो नौका पूरी तरह उलट गयी और मेरा सारा सामान उलट-पुलट हो गया, मगर सौभाग्य से वह अपने आप ही सीधी हो गयी और मैं पानी में उतरने से बच गयी।"

यों तो शैरोन हर रविवार को नियमित रूप से गिरजाघर जाने वाली स्त्रियों में से नहीं है; लेकिन अपनी ७५ दिन की यात्रा में उसने खूब प्रार्थना की। वह कहती है – "मैंने कभी भी डरकर प्रार्थना नहीं की; लेकिन जब मेरी आंखों के सामने नैसर्गिक सौंदर्य फैल जाता, तो मैं विवश होकर प्रार्थना में सिर झुका लेती थी।"

यात्रा बहुत कठिन थी। शैरोन अपने दैनिक कार्यक्रम में काफी नियमितता लाने की कोशिश करती थीं; लेकिन उस अकेलेपन में नियमित जीवन बिताना आसान नहीं था। वह सोने की कोशिश करती, मगर हर घंटे पर उसकी आंख खुल जाती। समुद्र तथा नौका की प्रत्येक आवाज को ध्यान से सुनकर वह समझ जाती कि सब कुछ ठीक है, या कोई संकट आ रहा है।

शैरोन ने इस यात्रा की ७,००० फुट लंबी फिल्म तैयार की है और अब वह उसका संपादन करके टेलिविजन के लिए एक कार्यक्रम तैयार कर रही है। अपने यात्रा-संस्मरणों के आधार पर वह एक पुस्तक भी लिख रही है। साथ ही उसके मन में पल रहा है अगली समुद्र-यात्रा का सपना। वह कहती है—"मुझे दो यात्राएं तो करनी ही हैं—केन्या से लेकर आस्ट्रेलिया तक की हिंद-महासागर के आर-पार यात्रा, और पृथ्वी की समुद्री परिक्रमा।"

अटलांटिक महासागर को पार करने का उसका कोई विचार नहीं है; क्योंकि १९५२ ही में एक ब्रिटिश महिला एन डेविडसन ने अटलांटिक को अकेले पार कर लिया था। वह कहती है—"न तो मैं सर फ्रांसिस चिचेस्टर की तरह एक पड़ाव करके दुनिया का चक्कर लगाऊंगी और न राबर्ट नोक्स जांस्टन की तरह बिना कहीं रुके ही। मैं तो दुनिया का पूरा चक्कर लगाने में दो साल लूंगी और कम-से-कम छः बंदरगाहों में रुकूंगी।

शैरोन यह भी सोच रही है कि वह केवल आशा अंतरीप को पार करे और हार्न अंतरीप को पार करने के बजाय पनामा नहर होकर लौटे। पर उसका यह भी कहना है—"यह तो दूर का सपना है, कहीं मेरे पति ने यह सुन लिया तो ......"

सफलता ने शैरोन को तनिक भी नहीं बदला है। वह कहा करती है—"मैं तो वही गृहिणी हूं, जो यात्रा पर जाने से पहले थी। मैं महान मल्लाह होने का भी दावा नहीं करती। हर यात्रा से मैं कुछ-न-कुछ सीखती अवश्य हूं।

"समुद्री एकांत मुझे तनिक भी अच्छा नहीं लगता। मुझे तो अपने पति और बच्चों के साथ रहना बहुत पसंद है। लेकिन मैं संसार को यह बताना चाहती हूं कि महिलाएं किसी भी तरह पुरुषों से कम नहीं होतीं।"

मैथिलीशरणजी अक्सर बनारसीदासजी चतुर्वेदी से परिहास किया करते थे। एक बार चतुर्वेदीजी ने शिकायत करते हुए कहा—"आप सब हमसे ही मजाक करते हैं। गरीब की जोरू, सबकी भौजाई।"

गुप्तजी बोले—"अरे, हम उस गरीब की ही तो तलाश में हैं, जिसकी तुम जोरू हो।"

हरिशंकर द्वारा प्रस्तुत

काम की बात खेल की बात

हर्रा लगे न फिटकरी, रंग चोखा आये—यह कामना केवल कहावत में ही चरितार्थ होती है। व्यवहार में तो यही देखा गया है कि बिना खर्च किये कोई भी काम नहीं होता। गांठ का पैसा न सही, शरीर का ताप तो हर काम में खर्च होता ही है—यहां तक कि खेल में भी।

शरीर की प्रत्येक क्रिया में ताप का व्यय होता है—यहां तक कि ठंडे पानी से नहाने में भी। ताप को मापा जाता है कैलोरी में। नीचे की तालिका में बताया गया है कि एक घंटे तक कोई काम करने में शरीर कितने कैलोरी ताप खर्च करता है। याद रखिये कि शरीर की एक पौंड चर्बी जलने से ३,५०० कैलोरी ताप उपजता है।

काम	कैलोरी	काम	कैलोरी
पढ़ना	२५	ट्रक चलाना	१००
फोन पर जवाब देना	५०	इस्तरी करना	१००
हिसाब-किताब करना	५०	खाना पकाना	१००
श्रुतलेख लिखाना	५०	बेंच वर्क (खड़े होकर)	१२५
श्रुतलेख लिखना	५०	ट्रैक्टर चलाना	१५०
कपड़े पहनना-उतारना	५०	फर्नीचर झाड़ना	१५०
कार चलाना	५०	फर्श बुहारना	१५०
खाना खाना	५०	फाइलिंग (दफ्तर में)	२००
स्वेटर आदि बुनना	५०	कपड़े धोना	२००
सीना-पिरोना	५०	फर्श धोना	२००
टाइप करना	५०	बागवानी	२५०
लिखना	५०	बढ़ईगीरी	२५०
बरतन धोना	७५	बिस्तर बिछाना	३००
नहाना	१००	आरा चलाना	५००
दांत साफ करना, बाल संवारना	१००	जीना चढ़ना-उतरना	८००

यह तो हुई काम की वात । अव यह देख लीजिये कि खेल-खेल में, या दिलवहलाव में हम कितना ताप (प्रतिघंटा) खपा डालते हैं :

खेल	कैलोरी	खेल	कैलोरी
ताश खेलना	२५	शिकार	४००
टेलिविजन देखना	२५	स्केटिंग (आराम से)	४००
गाना	५०	तैरना (आराम से)	४००
पियानो वजाना	७५	वैडमिंटन	४००
स्कूटर चलाना	१००	नाव खेना (आराम से)	४००
मोटर-साइकल चलाना	१५०	स्कीइंग	४५०
मोटर-वोट चलाना	१५०	टेनिस (सिंगल्स)	४५०
मछली पकड़ना	१५०	हाकी	५००
चित्र वनाना (पेंटिंग)	१५०	वास्केट-वाल	५५०
टहलना (आराम से)	२००	हैंडवाल	५५०
गाल्फ	२५०	साइकल चलाना (तेज)	६००
घुड़सवारी	२५०	नाचना (तेज)	६००
शफलवोर्ड	२५०	फुटवाल	६००
वोलिंग	२५०	कराते	६००
साइकल चलाना (धीमे)	३००	स्केटिंग (तेज)	६००
टहलना (तेज)	३००	साकर	६५०
नाचना (धीमे)	३५०	वाक्सिंग	७००
साफ्टवाल	३५०	तैरना (तेज)	८००
टेनिस (डवल्स)	३५०	कुश्ती	८००
वालीवाल	३५०	नाव खेना (तेज)	८००
वेसवाल	३५०	दौड़ना (तेज)	९००

आपने देखा होगा कि इनमें हमारे देश के कवड्डी, खो, गिल्ली-डंडा आदि खेलों का ही नहीं, क्रिकेट का भी जिक्र नहीं है। वात यह है कि यह तालिका अमरीका के वैज्ञानिकों की तैयार की हुई है; और अमरीकी लोग, जैसा कि आप जानते हैं, कवड्डी और खो तो क्या, क्रिकेट भी नहीं खेलते हैं। आवश्यक है कि भारतीय खेलों और कामों का भी इस दृष्टि से वैज्ञानिक अध्ययन किया जाये कि उनमें प्रतिघंटा कितना ताप खपता है।

★

डैगन...आग उगलने वाला भीम-काय सर्प परों व परों से युक्त यूरोप से चीन तक लोककथाओं व पुराणों पर छाया हुआ आधा काल्पनिक–आधा वास्तविक जीव।

नागदैत्य

योगिराज

एक विशाल सर्पाकार जंतु; उसकी लपलपाती जीभ अग्नि-वर्षा करती रहती है; उसकी आंखें अंधेरे में जलती रहती हैं; उसके दो पैर और दो डैने होते हैं; वह आदमी तो आदमी, समूचे हाथी को उदरस्थ कर सकता है; आदि-आदि। यह जंतु है 'ड्रैगन' या अजदहा, जो सदियों तक यूरोपवासियों के आतंक का कारण बना रहा और जिसके बारे में आज यह सवाल उठाया जा रहा है कि वास्तव में किसी ऐसे दानव-जंतु का अस्तित्व था भी या नहीं।

यूरोपीय धर्मगाथाएं और लोकाख्यान ड्रैगन के उल्लेख से भरी पड़ी हैं। उसकी कल्पना एक दानव के रूप में की गयी है। वह या तो देहात में घूमता-फिरता था, अथवा किसी गुफा या खोह में घात लगाये बैठा रहता था। बहुधा कोई 'नाइट' या संत उसे मारकर लोगों को त्राण दिलाता था और लोग अपने त्राणकर्ता का स्मारक बनवाते थे, उसके सम्मान में नयी-नयी कविताएं और गीत रचते थे।

और यह सब धर्मगाथाओं और लोकाख्यानों या लोकविश्वास तक ही सीमित नहीं था। दो सदी पहले तक भी प्रकृति-विज्ञानियों ने विश्व के पशुओं में ड्रैगन की बाकायदा गणना की है और उनके ड्रैगन भी लोकगाथाओं में वर्णित ड्रैगन जैसे ही भयावह हैं।

दस्तुतः सृष्टि के आरंभ से ही सर्प या नाग मनुष्य की दहशत का कारण रहे हैं और उसे उस पर विजय पाने का कोई सहज और अचूक उपाय नहीं मिल सका है। भारतीय धर्मगाथाओं और लोकाख्यानों में काल या मृत्यु नाग का रूप धारण कर आती है। महाभारत में राजा परिक्षित की कथा वर्णित है, जिसमें परिक्षित का काल उसे नाग के रूप में डंसता है। जनमेजय ने उसका बदला लेने के लिए नागों का संहार करने का संकल्प किया और नागयज्ञ किया।

सती बेहुला की कथा में आया है कि बेहुला के पति का काल नाग बनकर उसे डंस लेता है। बेहुला अपने पति के प्राण वापस लाने नागलोक पहुंचती है तथा नागों के

देवता को प्रसन्न करके पति के प्राण वापस पाती है। तभी से नागपंचमी पर नाग पूजने की प्रथा चली, ऐसा उल्लेख आता है।

'ड्रैगन' शब्द की व्युत्पत्ति पर ध्यान देने से नाग या सर्प वाली यह दहशत स्पष्ट हो जाती है। यूनानी भाषा का शब्द है ड्रैकन, जिसका अर्थ होता है तीक्ष्ण आंखों वाला या भयंकर आंखों वाला। इसका व्यवहार अक्सर सांपों के लिए किया जाता था, जिनकी मनकानुमा आंखें दशहत पैदा करती थीं। लैटिन में आकर यह ड्रैको हो गया और अंग्रेजी में ड्रैगन।

पहली सदी ईसवी के रोमन प्रकृति-विज्ञानी प्लिनी के अनुसार ड्रैगन दानवाकार भारतीय सांप था। उसने एक विशाल भारतीय ड्रैगन का वर्णन यों किया है – "अपनी लपेट में यह बड़ी आसानी से किसी हाथी को ले सकता है। इसका नतीजा दोनों के लिए घातक होता है। हाथी चूर होकर जमीन पर गिर पड़ता है और उससे दबकर उसके इर्द-गिर्द लिपटा ड्रैगन भी समाप्त हो जाता है।"

अत्युक्तियों को छोड़ दें, तो निश्चित रूप से प्लिनी ने ड्रैगन के रूप में अजगर का जिक्र किया है, जो ३०-३० फुट तक लंबा होता है। यह लंबाई हाथी को अपनी लपेट में लेने के लिए भले ही काफी न हो, लेकिन अजगर अपने शिकार को जिस तरह लपेट में लेता है, प्लिनी का वर्णन वैसा ही है।

सदियों तक ड्रैगन का अर्थ सांप ही था। सांप के साथ आरंभ में जो बदनामी जुड़ी, वह बढ़ते-बढ़ते उसे दुष्टता का प्रतीक बना बैठी। मेसोपोटामिया की ६,००० वर्ष पूर्व की साहित्यिक कृति 'एपिक आफ गिलामेश' में खलनायक एक सर्प है। वह नायक गिलामेश द्वारा बड़ी कठिनाई और बाधा झेलकर प्राप्त किये गये 'अमरत्व-वृक्ष' को चुरा लेता है और इस प्रकार मनुष्य जाति के स्थान पर सर्पजाति अमर हो जाती है।

सांप जिस तरह केंचुल छोड़ता है, वह पुरातन काल में लोगों को पुनर्जन्म की तरह प्रतीत होता रहा होगा। ईसाई धर्म से संलग्न होकर सांप और ड्रैगन शैतान और ईसा-विरोधियों से एकाकार हो गये।

टयूटानिक धर्मगाथा में नायक सीगफ्रिड की एक मशहूर कथा है, जो फाफनीर नामक ड्रैगन को मारता है। वहां की पुरानी चट्टानों पर खुदी आकृतियों में फाफनीर को एक दानवाकार सांप के रूप में दिखाया गया है।

और यही सांप धीरे-धीरे पैरों और डैनों वाला हो गया और मुंह से आग बरसाने लगा, गुफाओं में रहने लगा। ड्रैगन के लिए पुराना जर्मन शब्द लिंडवुर्म है, जिसका अर्थ है सर्प-कृमि।

१६ वीं सदी के स्विस चिकित्सक और प्रकृति-विज्ञानी कानराड गेसनर ने विश्व के पशुओं का वर्णन कई खंडों में लिखा है, जिसके कारण उसे 'फादर आफ जुआलाजी' कहा जाता है। इस ग्रंथ के पांचवें खंड में सर्प-प्रकरण में ड्रैगन का वर्णन देते हुए गेसनर ने पैरों और पंखों वाले ड्रैगन की चर्चा की है। मई

गेसनर ने इतालवी गणितज्ञ और चिकित्सक हाइरोनिमस कार्डेनस का हवाला दिया है। कार्डेनस ने पेरिस में १५५७ में पांच सूखे हुए शिशु ड्रैगनों को देखने का जिक्र करते हुए उनका वर्णन इस तरह किया है :

"दो पैरों वाले जंतु, जिनके डैने इतने छोटे कि वे उनसे शायद ही उड़ सकते होंगे। उनके सिर बहुत छोटे और सांप के सिर जैसे आकार वाले थे। उनका रंग मनमोहक था। उनके पंख या बाल नहीं थे और उन तीनों में सबसे बड़ा एक 'रेन' (छोटी चुहचुहिया चिड़िया) जितना था।"

बहुतों का विश्वास है कि वे छोटे डैनों वाले जंतु बनावटी थे। (जापानी अक्सर बंदर की छाती से ऊपरी हिस्से को मछली के निचले शरीर से जोड़कर 'मरमेड' के नाम से अच्छे दामों पर बेचते थे।) भारत में शिव की सवारी 'वसहा' या पांच पैरों वाला बैल, जिसका पांचवां पांव उसकी पीठ पर होता है, भी ऐसी ही कृत्रिम उत्पत्ति मानी जा सकती है। इसी तरह संभव है कि किसी चालबाज ने छिपकिली के पिछले दो पैर काट डाले हों, और चमगादड़ के डैने सी दिये हों।

एक संभावना यह भी है कि कार्डेनस ने ड्रैको वोलंस या उड़नेवाले ड्रैगनों का कतिपय परिवर्तित और सुखाया हुआ नमूना देखा हो। ये अद्भुत और छोटी छिपकलियां जावा में पायी जाती हैं। ये उड़ने वाली छिपकलियां दरअसल अपनी विशिष्ट अंग रचना की बदौलत १५ फुट तक हल्की उड़ान भर सकती हैं। यों ड्रैको वोलंस के भी अन्य छिपकलियों की तरह चार पांव होते हैं।

इन शिशु ड्रैगनों की उत्पत्ति चाहे कैसे भी हुई हो, उनका ड्रैगन-इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। जिस समय इनका पेरिस में प्रदर्शन हो रहा था, एक फ्रांसीसी प्रकृति-विज्ञानी प्येर वेलन ने दो पैरों वाले डैने-

ड्रैगन-संहारक संत जार्ज—राफेल का एक चित्र
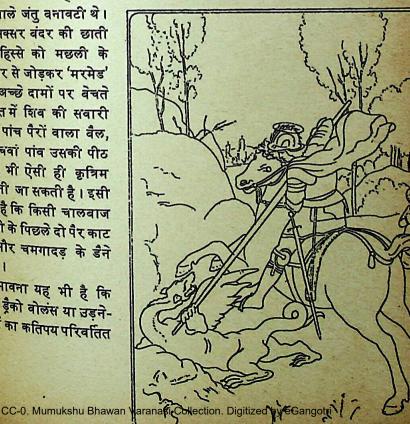
क्या आप विश्वास करेंगे कि अभी कुछ समय पहले वह कष्टदायक खांसी से परेशान थी। उसने ग्लायकोडिन लिया और ग्लायकोडिन लेते ही उसकी खांसी तुरंत और पूर्णतया गायब हो गयी।

खांसी पर सम्पूर्ण नियंत्रण के लिए ग्लायकोडिन से बढ़कर कोई दूसरा इलाज नहीं।

ग्लायकोडिन सभी पीड़ित भागों से खांसी को दूर भगाकर आपको इस प्रकार आराम पहुंचाता है :
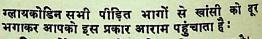
- **दिमाग में**—खांसी के हमले पर नियंत्रण करता है।
- **गले में**—खराश को मिटाता है और जकड़न को दूर करता है।
- **छाती में**—जकड़ी हुई स्नायुओं को आराम मिलता है और सांस लेने में आसानी होती है।
- **फेफड़ों में**—कफ को ढीला करके बाहर निकालता और खांसी को दूर भगाता है।

खांसी की विश्वस्त और सबसे ज़्यादा बिकने वाली घरेलू औषधि

Alembic

GLYCODIN

/659d/ACW/hin

दार ड्रैगन की एक तस्वीर छापी, जो कार्डेनस वर्णित ड्रैगन से मिलती-जुलती थी।

गेसनर ने यह भी लिखा है कि ड्रैगनों की बड़ी-बड़ी अस्थियां पूरे यूरोप में गुफाओं में पड़ी पायी गयी हैं। गेसनर को यह मालूम नहीं था कि दरअसल ये अस्थियां उन हाथी, गैंडे और भालुओं के अवशेष थीं, जो १०,००० वर्ष पूर्व यूरोप में रहते थे।

१६७३ में जर्मन चिकित्सक पैट्रसोनियस ने हंगरी के छोटे कार्पेथियन पर्वतों की गुफाओं में कुछ खोपड़ियां पायीं। फिर जर्मन प्रकृतिविज्ञानी वालगैंड को ट्रासिलवेनिया की गुफाओं में भी ऐसी ही खोपड़ियां प्राप्ति हुई, जिनके आधार पर उसने 'ट्रासिलवेनियन ड्रैगन्स' नाम का एक लेख लिखा। उसमें उसने खोपड़ी के रेखाचित्र दिये थे। इनसे स्पष्ट है कि वे खोपड़ियां गुफावासी भालुओं की थीं।

यूरोपवासी जब चीन के प्रत्यक्ष संपर्क में आये, तो उन्होंने वहां की धर्मगाथाओं में लुङ नामक एक जंतु की प्रधानता देखी, जिसकी यूरोपीय ड्रैगनों से बहुत समानता थी। सो लुङ का रूपांतर ड्रैगन किया गया। दरअसल चीनी ड्रैगन मंगलमय है।

यों भी चीनी ड्रैगन का संबंध जल से है, और उनकी गाथाओं के जन्म का आधार अजगर नहीं, बल्कि घड़ियाल हैं। कभी पूर्वीचीन में उनकी भरमार थी।

ड्रैगन के भौतिक अस्तित्व के समर्थकों ने सिद्ध करने की कोशिश की है कि वह कोई बचा हुआ डाइनोसार था या कोमोडो

ड्रैगन-जैसी दानवाकृति छिपकिली थी।

बाद के ड्रैगनों से कुछ डाइनोसार जरूर मिलते-जुलते थे। लेकिन डाइनोसारों की जाति का आज से ७ करोड़ वर्ष पूर्व समूल उच्छेद हो गया था।

कोमोडो ड्रैगन १२ फुट लंबी छिपकली है, जो ईस्ट इंडीज के सुदूरवर्ती हिस्सों में पायी जाती है। पश्चिमी घुमक्कड़ों ने उसे 'ड्रैगन' नाम दिया। लेकिन १९१२ तक किसी को 'कोमोडो ड्रैगन' के दर्शन नहीं हुए थे। हो सकता है, इस छिपकली का विवरण या कोई अवशेष बीसवीं सदी के पहले ही यूरोप पहुंच चुका हो; लेकिन इसका भी कोई प्रमाण नहीं है।

कभी-कभी ऐतिहासिक गवेषणाओं के बड़े अद्‌भुत परिणाम होते हैं। उधर जीवविज्ञानियों न ड्रैगन को काल्पनिक जीव कहना शुरू किया है, इधर पिछले वर्ष रोमन कैथोलिक चर्च ने ऐतिहासिक गवेषणा के बाद जिन संतों के अस्तित्व को संदिग्ध घोषित किया है, उनमें संत जार्ज भी एक हैं। ड्रैगन का नाश करने वाले के रूप में संत जार्ज सदियों से ईसाई जगत में पूजे जाते रहे हैं।

★

सुशील कुमार दोषी

निशानेबाज राजकुमारी

सन १९६७ का वर्ष । जापान में एशियाई निशानेबाजों के बीच कड़ी स्पर्धा होने वाली थी । एशिया के सभी नामी निशानेबाज पूर्ण तैयारी एवं उत्साह के साथ इसमें भाग ले रहे थे। भारतीय निशानेबाज भी इसकी तैयारी में व्यस्त थे । लेकिन भारतीय दल में चुने जाने के लिये चुनावी अभ्यास के दौरान सफल प्रदर्शन करना जरूरी था । इन्हीं निशानेबाजों में बीकानेर की राजकुमारी राज्यश्री थीं, जो अपना स्थान सुरक्षित रखने के लिये कटिबद्ध थीं ।

सही निशानेबाजी के लिये गणित-सी अचूकता, गहरी एकाग्रता व मनोयोग आवश्यक है। उस समय राजकुमारी राज्यश्री की उम्र केवल १३ वर्ष थी । राजकुमारी उम्र में छोटी अवश्य थीं, पर हौसला बढ़ा-चढ़ा था। वे अपनी मेहनत व लगन के आधार पर अपनी सफलता के प्रति आश्वस्त थीं ।

अहमदाबाद में चुनावी मुकाबले आरंभ हुए और राजकुमारी राज्यश्री ने ३५८/ ४०० के स्कोर से एक नया अखिल भारतीय कीर्तिमान स्थापित किया । एयर राइफल-निशानेबाजी की इस स्पर्धा में राज्यश्री ने अपने निकटतम प्रतिद्वंद्वी को ३२ पाइंट से बुरी तरह परास्त कर दिया । राज्यश्री अपनी बेहतर तकनीक व बेहतर 'टेंपरामेंट' के कारण ही अपने निकटतम प्रतिद्वंद्वी को, जो सेना का आदमी था, हरा पायीं ।

जापान की अंतर्राष्ट्रीय स्पर्धा । एशिया के सभी श्रेष्ठ निशानेबाज यहां भाग लेने

आये थे। कई प्रख्यात निशानेबाजों ने जब राजकुमारी राज्यश्री को अभ्यास के दौरान देखा, तो हैरत में पड़ गये—एक तेरह वर्ष की बालिका और अचूक निशानेबाजी।

यहां का 'टारगेट' अहमदाबाद में हुई अभ्यास-स्पर्धा के 'टारगेट' से आकार में आधा था। इसलिए राजकुमारी को कुछ कठिनाई का सामना करना पड़ा था। इस प्रतियोगिता में वे एकमात्र महिला तथा जूनियर खिलाड़ी थीं और अपने जीवन के प्रथम अंतर्राष्ट्रीय मुकाबले में भाग ले रही थीं। फिर भी उन्होंने बड़ी हिम्मत व सूझ-बूझ से अचूक निशानेबाजी करते हुए २१-वां स्थान हासिल किया। उनका स्कोर था ३४२/४००। वैसे २१ वां स्थान ऊंचा तो नहीं कहा जा सकता, पर एक १३ वर्ष की बालिका के जीवन के प्रथम अंतर्राष्ट्रीय स्पर्धा को दृष्टिगत रखते हुए बेहद उत्साह-वर्द्धक कहा जा सकता है। एक बात और भी स्मरणीय है कि यह प्रदर्शन नियमित रूप से प्रतियोगिताओं में भाग लेने वाले एशिया के श्रेष्ठ पुरुष निशानेबाजों के समक्ष था।

वहां मौजूद सभी निशानेबाजों तथा समालोचकों ने इतनी कम उम्र में राज-कुमारी राज्यश्री की इस उपलब्धि की भूरि-भूरि प्रशंसा की, उनके लिए एक उज्ज्वल भविष्य की कामना की। जिस निशानेबाज ने यहां स्वर्णपदक जीता, उसका स्कोर था—३६७/४००। राज्यश्री का अहमदाबाद का ३५८/४०० का स्कोर बिग-बोर राइफल, स्माल बोर राइफल और एयर राइफल चलाने वाले किसी भी भारतीय (पुरुष या महिला) निशानेबाज से ज्यादा था और वह आज भी एक रेकर्ड है।

इस अंतर्राष्ट्रीय स्पर्धा में भाग लेने से राजकुमारी राज्यश्री को कई फायदे हुए। उन्हें पहली बार मालूम हुआ कि बड़े मैचों में स्तर की एकरूपता को बनाये रखना कितना मुश्किल होता है। बड़े मैचों में जरा-सी दिमागी अस्थिरता भी अच्छे-से-अच्छे निशानेबाज को नीचा दिखाने के लिये पर्याप्त है। राजकुमारी राज्यश्री में इस स्पर्धा के बाद एक अपूर्व आत्मविश्वास का संचार हुआ। राजकुमारी राज्यश्री का यह प्रदर्शन देश की महिला खिलाड़ियों के लिये निश्चित ही प्रेरक है।

राजकुमारी राज्यश्री ने इस प्रतियोगिता से उत्साहित होकर अपनी निशानेबाजी का स्तर नियमित अभ्यास से ऊंचा उठाना आरंभ कर दिया और सन १९६८ में मद्रास में संपन्न हुई राष्ट्रीय निशानेबाजी प्रतियोगिता में वे सभी स्पर्धाएं जीतीं, जिनमें उन्होंने भाग लिया। इसमें 'जूनियर क्ले पिजन' सहित उन्होंने सबसे अधिक स्वर्णपदक जीता। इस प्रतियोगिता में यह स्पष्ट दीख रहा था कि पिछली अंतर्राष्ट्रीय स्पर्धा में भाग लेने के बाद से वे ज्यादा सफाई व आत्मविश्वास से निशाना लगा रही थीं।

सन १९६९ का वर्ष राजकुमारी राज्यश्री के लिये सफ़लताओं की सौगात लेकर आया। फरवरी माह में भोपाल में हुई १४-वीं राष्ट्रीय निशानेबाजी प्रतियोगिता में

उन्होंने विश्व स्तर की प्रतिभा दिखाकर सबको आश्चर्यचकित कर दिया। उन्होंने महिलाओं की ओलंपिक शैली की 'क्ले पिजन ट्रेप' में भाग लिया और १०० में से ७७ चिड़ियों (मिट्टी की) को निशाना बनाया।

सन १९६७ में बालोना में हुई विश्व निशानेबाजी महिला स्पर्धा के दौरान १०० में से ७७ चिड़िया फोड़कर एक महिला ने तृतीय स्थान प्राप्त किया था। यानी राज्यश्री ने विश्व की महिलाओं के तृतीय स्थान की बराबरी की। केवल १५½ वर्ष की उम्र में विश्व के तृतीय स्थान की बराबरी कर लेना, निश्चित ही अत्यंत उत्साहवर्द्धक कहा जा सकता है।

भोपाल की इस राष्ट्रीय स्पर्धा में राज्यश्री को द्वितीय स्थान प्राप्त हुआ। प्रथम स्थान मिला कोटा की राजकुमारी भुवनेश्वरी कुमारी को, जिन्होंने १०० में से ७८ चिड़िया फोड़कर विश्व के दूसरे व तीसरे स्थान के बीच जगह बनाया। दोनों ने निहायत गजब की एकाग्रता का परिचय देकर भारतीय निशानेबाजी के क्षेत्र में एक नई चेतना जागृत की। भारतीय निशानेबाजी के इतिहास में और खासकर भारतीय महिला-खेलकूद के क्षेत्र में यह स्वर्णिम दिन था, जब हमारी दो महिला खिलाड़ियों ने विश्वस्तर की उपलब्धियां हासिल कीं।

भोपाल की राष्ट्रीय प्रतियोगिता की ही टीम ओलंपिक शैली ट्रेप स्पर्धा में राजकुमारी राज्यश्री ने बीकानेर थंडरबोल्टस् राइफल क्लब का नेतृत्व करके अपनी टीम को विजयी बनाया। उनकी प्रतिभा सर्वमान्य थी और उनके प्रदर्शनों से सभी बेहद खुश थे। लेकिन उनके पिता महाराजा कर्णीसिंह से ज्यादा प्रसन्न व्यक्ति उस दिन शायद दूसरा कोई न होगा।

महाराजा कर्णीसिंहजी स्वयं विश्व के प्रतिष्ठित निशानेबाज हैं और वे राज्यश्री के प्रशिक्षक भी रहे हैं। मैंने महाराजा कर्णीसिंहजी को भी यहीं विजेता बनते देखा; पर अपनी विजय पर भी वे उतने प्रसन्न नहीं थे, जितने कि राज्यश्री के प्रदर्शन पर! उनकी योग्य पुत्री ने उन्हें गर्व से अभिभूत कर दिया था।

राजकुमारी राज्यश्री की सफलताओं का दौर यहीं समाप्त नहीं हो गया। मेड्रिड (स्पेन) में होने वाली विश्व निशानेबाजी प्रतियोगिता में भाग लेने वाली भारतीय टीम के चुनाव के लिए कुछ महीने पहले दिल्ली में अभ्यास मैच आयोजित किये गये। इसमें राजकुमारी राज्यश्री ने १०० में से ८२ चिड़िया फोड़कर सर्वत्र सनसनी फैला दी। यह स्कोर सन १९६७ में हुई बालोना की विश्व निशानेबाजी महिला स्पर्धा के द्वितीय स्थान के बराबर था।

इसलिए यह कहा जा सकता है कि भविष्य में अंतर्राष्ट्रीय क्ले पिजन ट्रेप निशानेबाजी प्रतियोगिताओं में भारतीय महिलाएं विश्व की अन्य महिलाओं के समक्ष कहीं चुनौती के रूप में सामने आयेंगी। कोई आश्चर्य नहीं कि किसी अंतर्राष्ट्रीय स्पर्धा में राजकुमारी राज्यश्री स्वर्णपदक जीत लें।

सन १९६९ के सौभाग्यशाली वर्ष में राजकुमारी राज्यश्री को दूसरी सौगात 'अर्जुन एवार्ड' की मिली। यह पुरस्कार खिलाड़ियों को खेल के क्षेत्र में देश के लिए की गयी सेवाओं के आधार पर दिया जाता है। राजकुमारी राज्यश्री का इतनी कम उम्र में यह पुरस्कार प्राप्त करना निश्चय ही उनकी अचूक निशानेवाजी का परिचायक है। यह एक सुखद संयोग ही है कि उनके पिता महाराजा कर्णीसिंह को भी निशानेवाजी में सन १९६२ में 'अर्जुन एवार्ड' प्रदान किया गया था। पिता-पुत्री दोनों द्वारा यह पुरस्कार प्राप्त करना सचमुच सम्मानजनक है। किसी भी भारतीय को, खासकर बीकानेर को उन पर गर्व है।

राजकुमारी राज्यश्री का वचपन से ही निशानेवाजी में इतना प्रवीण होना कोई अधिक आश्चर्यजनक वात नहीं। वास्तव में निशानेवाजी उन्हें वंशानुगत मिली है। यों कहिये निशानेवाजी उनके खून में ही है। उनके परदादा बीकानेर के महाराजा स्वर्गीय गंगासिंहजी स्वयं एक उच्च श्रेणी के निशानेवाज और शिकारी थे। उन्होंने करीव ३०० शेरों का शिकार किया था, जो उनकी अचूक निशानेवाजी का एक प्रमाण है। राजकुमारी के दादा स्वर्गीय महाराजा सादुलसिंहजी प्रसिद्ध शिकारी तथा विश्व के सबसे शानदार राइफल व शाटगन निशानेवाजों में से एक थे।

पिता महाराजा कर्णीसिंहजी विश्व के जाने-माने निशानेवाजों में से एक हैं और उन्होंने विश्व तथा ओलिंपिक प्रतियोगिता में पिछले नौ वर्षों से लगातार भारत का प्रतिनिधित्व किया है। यह स्मरणीय है कि सन १९६२ में कैरो में संपन्न हुई विश्व निशानेवाजी प्रतियोगिता में महाराजा कर्णीसिंह पहले स्थान के लिये 'टाई' होकर अंत में द्वितीय स्थान पर आये थे। एक अधिकृत विश्व प्रतियोगिता में दूसरा स्थान पाना कर्णीसिंह की अनुपम उपलब्धि थी।

और ऐसे निशानेवाजों के खानदान की राजकुमारी राज्यश्री की केवल १६ वर्ष की उम्र में ढेर सारी उपलब्धियों को देखकर वहुत आशा वंधती है।

★

कष्ट का अनुभव किये बिना काम करने की कला मेरे पिताजी में थी। पंद्रह-बीस मील चलना उनके लिए साधारण वात थी। उनकी मृत्यु की घटना आज भी हूबहू मेरे मन में चित्रित है। वे ईसनपुर में अध्यापक थे। वहीं उन्हें प्लेग की गिल्टी निकल आयी। उन्हें लगा कि अब जीवन-यात्रा पूरी होने आयी। घोड़े पर वैठकर नदी तक आये। वहां से घोड़ा लौटा दिया। और दर्द होने के वावजूद दोपहर में गठरी लादे पैदल ही घर पहुंचे।

दूसरे ही दिन उन्होंने शरीर त्याग दिया। अंत समय में मैंने पूछा – "कुछ कहना है?" शांतिपूर्वक उत्तर मिला – "कहना क्या है! कुछ भी गुप्त नहीं है।" और बड़ी निश्चितता से उन्होंने शरीर त्याग दिया।

—रविशंकर महाराज

★

सुरजीत

डाक्टर ट्रेसी वार-वार अपनी कलाई पर बंधी घड़ी की ओर देखते और फिर मित्रों से बातें करने में मग्न हो जाते। मैसेचुसेट्स (अमरीका) के इंस्टिटचूट आफ टेक्नोलाजी के क्लब-रूम में वैज्ञानिकों और इंजीनियरों के जमघट में किसी तकनीकी समस्या पर विचार-विमर्श चल रहा था। ट्रेसी के यों बार-बार घड़ी देखने से चिढ़-कर डाक्टर जोरीकिन ने पूछा –"डाक्टर ट्रेसी, आप इस तरह बार-बार घड़ी क्यों देख रहे हैं? किसी की प्रतीक्षा है, या कहीं जाना है?"

ट्रेसी ने हंसकर क्षमा मांगते हुए कहा – "जी नहीं। ऐसी कोई बात नहीं, मैं अपने प्रयोग की सफलता देख रहा था।" प्रमाण के रूप में, ट्रेसी ने अपनी घड़ी उतारकर तिपाई पर रख दी।

घड़ी की डायल पर नजर पड़ते ही डाक्टर जोरीकिन चिल्ला उठा –"हे भगवान! तो तुमने छोटा टेलिविजन बना ही लिया?" जी हां, डायल में एक आदमी की बोलती तस्वीर चमक रही थी; घड़ी के डायल में जड़ा हुआ यह दो इंच का टेलिविजन था।

मैसेचुसेट्स का यह इंस्टिटचूट बड़े-बड़े आविष्कारों की जन्मस्थली है। वह यंत्रों का लघुतम रूप बनाकर, विज्ञान के एक नये युग में कदम रखने का प्रयत्न कर रहा है और अपने प्रयत्नों में खासा सफल भी रहा है। इंस्टिटचूट अब तक बहुत-सी वस्तुओं का बहुत ही छोटा रूप बना चुका है। इनमें रेडियो, राडार-मशीनें, कैमरा, टेलिविजन-रिसीवर, वायरलेस-सेट, टेलिविजन-कैमरा आदि शामिल हैं। इनमें से कोई भी वस्तु कुछ इंचों से अधिक बड़ी नहीं है। वजन भी किलो या क्विंटल में नहीं, औंस में है!

एक टेलिविजन कैमरे का उदाहरण लीजिये। इस कैमरे का वजन कुल २७ औंस है। यह सारी सुविधाओं से युक्त ऐसा मूवी कैमरा है, जिसे आप आसानी से दियासलाई की डिबिया में रख सकते हैं। इसकी फिल्म बारीक फीते के रूप में होती है; और बारीक भी कितनी—इसकी मोटाई हमारे, आपके बाल की मोटाई से भी लगभग दस गुना कम होती है।

इस नन्हे कैमरे के द्वारा आप कई हजार फुट की लंबी फिल्म आसानी से तैयार कर सकते हैं और इसकी खास खूबी यह है कि इस फिल्म को एक विशेष विधि से 'ब्लो अप' (बड़ा) करके बड़े-से-बड़े स्क्रीन पर सामान्य फिल्मों की तरह देखा जा सकता है।

पी हैं कभी दिन भर की ख़ुशियाँ ?

FANTA IS A REGISTERED TRADE MARK OF THE COCA-COLA COMPANY

फ़ैण्टा ऑरेंज
क्या कहने ...
जी चाहता है
प्यास लगे !

फ़ैण्टा कोका-कोला कम्पनी का उत्पादन है

CMCF-1-152 HIN

घड़ियों के डायल में जड़े गये ट्रांजिस्टर तो अमरीका और जापान में आम हो गये हैं। अब कई संस्थाएं इस प्रयत्न में हैं कि इससे भी छोटे ट्रांजिस्टर वनाये जायें। इतने छोटे कि आप उसे अंगूठी में नगीने की तरह जड़ सकें।

इलेक्ट्रानिक्स विज्ञान की इस दौड़ में अमरीका के सरकारी और गैर सरकारी अनेक संस्थान जुट गये हैं। इस प्रकार की वस्तुएं तैयार करने के दो कारण हैं—एक तो इन पर खर्च वहुत कम आता है और लोग उन्हें आसानी से खरीद सकते हैं। दूसरे, हर व्यक्ति ऐसी ढेरों वस्तुएं विना किसी कठिनाई के अपने साथ जहां चाहे, ले जा सकता है।

समझ लीजिये, एक बड़े कारखाने के मालिक को किसी आवश्यक काम से कहीं जाना है। लेकिन कारखाने की हालत ऐसी है कि उसकी अनुपस्थिति कारखाने के कामों, या योजनाओं को ठप्प कर सकती है। ऐसी स्थिति में ये नन्हे-मुन्ने यंत्र उसके मददगार सावित होंगे। वह वड़ी आसानी से स्वचालित टेलिविजन कैमरा अपने कारखाने के विशेष विभागों में लगा देगा और आराम से वाहर चला जायेगा।

ये कैमरे एक खास समय तक काम करते रहेंगे और मालिक को घड़ी या सिगरेट केस में जड़े अपने नन्हे टेलिविजन सेट से सारी वातों का पता चलता रहेगा। यही नहीं उसके पास सिगरेट-लाइटर से भी छोटा एक अन्य यंत्र भी होगा, जिसके द्वारा वह कारखाने के जिम्मेदार अधिकारियों से जव जी चाहे, वातें कर सकेगा, क्योंकि इसी प्रकार के जेवी टेलिफोन उन अधिकारियों के पास भी होंगे।

निकट भविष्य में हर व्यक्ति की जेव में सिगरेट या माचिस की डिविया की तरह जेवी टेलिफोन पड़ा दिखाई देगा। जेवी टेलिफोन में वहुत छोटी, लेकिन वहुत शक्तिशाली वैटरियां लगायी जायेंगी, जिन्हें उम्र-भर चार्ज करने की जरूरत नहीं पड़ेगी। इस टेलिफोन पर आप सैकड़ों मील दूर कहीं भी वैठे व्यक्ति से एक क्षण के अंदर संवंध स्थापित कर लेंगे। शर्त यह है कि आप जिससे वात करना चाहते हैं, उसके पास भी जेवी टेलिफोन हो।

चंद्रमा पर जाने वाले अंतरिक्ष यान में भी वड़े-वड़े और भारी यंत्रों के स्थान पर छोटे और हल्के यंत्र ही सही तौर पर काम दे सकते हैं, ताकि कम-से-कम इंधन खर्च करके वह यान चंद्रमा पर पहुंच सके।

अमरीकी एयर-फोर्स के लिए इस प्रकार के वहुत-से तकनीकी-यंत्र तैयार करने वाले वेस्टिंग हाउस ने बहुत कम वजन वाली लगभग ३६ ऐसी वस्तुएं तैयार की हैं, जो वहुत छोटी हैं और एक वर्गफुट स्थान में आसानी से समा सकती हैं। २७ औंस का मूवी-कैमरा भी बनाया गया है, जो साढ़े-सात इंच लंवा, दो इंच चौड़ा और सवा तीन इंच ऊंचा है। लेकिन इंजीनियर अब भी संतुष्ट नहीं। उनका कहना है कि इस कैमरे को अभी और भी छोटा और हल्का बनाया जा सकता है, जो लगभग इसके आधा होगा।

★

गोलमिर्च की बेल

निर्मला ठाकुर

उसके घर के सामने की सड़क पूरब से पश्चिम की ओर जाती है। पश्चिम की तरफ एकाएक ढलाव है, जिससे ऐसा लगता है, जैसे सड़क धीरे-से किसी नदी में उतर गयी है। यहां से उसे यही महसूस होता रहा है ......बीस वर्षों से। सड़क की उस ढाल पर पहुंचते ही वह नदी की कल्पना को साकार कर लेना चाहती है। जानती है, यह भ्रम है। लेकिन इस भ्रम को वह पालना चाहती है। हर बार वहां काली-पथरीली सड़क को देखकर उसे दुःख हुआ है। एक सपना टूटने-जैसा दुःख। शाम को जब सूरज डूबने लगता है ...... उसे एक पंक्ति याद आती है –"अभी गिरा रवि ताम्र-कलश गंगा के उस पार।" फर्क इतना ही है कि यहां गंगा नहीं है, गंगा का भ्रम है।

कविता का शौक उसकी बेटी ने पैदा किया था। लीला कविता की किताबों का संग्रह करती थी। उसे बैठाकर सुनाया करती। लीला का कंठ कितना मधुर था। इसी बरामदे में खड़ी होकर उसने सुनाया था –"मां यहां से सूर्यास्त देखने में कैसा लगता है, बताऊं?" और गुनगुनाकर कविता की यही पंक्ति सुनायी थी उसने ...... "अभी गिरा रवि ताम्र-कलश गंगा के उस पार।"

दोनों मां-बेटी ने इसी बरामदे में बैठकर कितनी ही बार सूर्यास्त को देखा था। अलग-अलग रंगों में डूबते हुए सूरज को! कभी सावन के गहराते मेघों को चीरकर झांकती किरणों के तीखे रंग–ढेरों लाल और सिंदूरी। क्वार के महीनों में हल्के धुंधलके में छिपा हुआ सूरज आंसू-भरी आंखों से देखे गये नव-विवाहिता दुल्हन के कंगन-सा लगता। हल्का पीला और हल्की चमक लिये, आंसुओं में झिलमिलाता-सा। जाड़ा बढ़ते ही एक डरे हुए बच्चे की तरह वह जल्द ही लिहाफ में सरक जाना चाहता।

लीला गीत गुनगुनाती कविताएं पढ़ती

मद्धिम और मुलायम स्वर में ...... "संध्या का झुटपुट, हैं चहक रहीं चिड़ियां टीं वीं टी टुर-टुर।" या कमी – "हंसता है तो केवल तारक एक, गुंथा हुआ घुंघराले काले बालों में।" कभी-कभी पूछती – "मां, तुम्हें अर्थ बता दूं ?" वह हंस देती – "मुझे मालूम है।" लीला खुश हो जाती– "सुंदर है ना?" और बिना उसका उत्तर सुने दूसरा गीत आरंभ कर देती ......

" दिन जल्दी - जल्दी ढलता है।"

लीला के ब्याह के बाद वही उन पुस्तकों के धूल झाड़ती और उलट-पुलटकर अपने सूनेपन को काटती। कोई-कोई पंक्ति स्मृति में अटकी रह गयी है। याद आ जाती है।

पतझड़ आ गया है। हवा में झड़ते पत्तों का शोर घुला हुआ है। सूनी टहनियां आसमान में टांक दी गयी हों जैसे। डूबता हुआ सूरज उन्हीं टहनियों में उलझ गया है। सूर्य एक संन्यासी के मुख की तरह लगता है। टहनियां उसके छितराये हुए केश हैं और गेरुआ आकाश उसका परिधान। यह शिव का वेश है ......।

"मेरी लाल टाई नहीं मिल रही है"– कमरे से उनका स्वर उभर आया। उसे खीज हो रही है – "वहीं तो रखी थी। ठीक से देखो। तुम्हें तो सामने पड़ी चीजें भी दिखाई नहीं देतीं।"–"नहीं है यहां। आकर देखो न। गाड़ी की चाभी भी नहीं मिल रही

चित्र : शेणै

हैं"– इस वार उनका थका हुआ स्वर भी हल्का उत्तेजित है। "मेरे सिर में दर्द है"– वह भुनभुनाती हुई उठी।

यह सिर दर्द कैसा है ...... वे समझ रहे हैं। इसलिए उसका सामना नहीं करना चाहते। उसकी चाल में अनिच्छा स्पष्ट है। इन दो-तीन दिनों को वह जड़ होकर विता देना चाहती है। वह उनकी इच्छा के आगे समर्पित भले ही है, लेकिन विरोध की उसकी शक्ति समाप्त नहीं हुई है। वह वोलकर नहीं, वल्कि अपनी प्रत्येक हरकत से इसे स्पष्ट करना चाह रही है।

वहुत वर्षों से वह एक ही रट लगा रही थी–"यहां जमीन लेकर मकान वनवा लो। जीवन के शेष दिन भी इसी शहर में काट दूंगी। अव कहां जाऊंगी मैं ?" लेकिन वे अवकाश-प्राप्ति के वाद इस शहर में रहना नहीं चाहते है।

यहां से उनकी रोजी-रोटी का संवंध है, वस ! ...... यह वात नहीं है कि व्यक्तिगत स्तर पर उनके मित्र नहीं हों। लेकिन वे सिर्फ 'वे' वनकर इस शहर में नहीं रह सकेंगे। उन्होंने बहुत नीचे से जिंदगी शुरू की थी। एक-एक सीढ़ी चढ़ने में उनके पांव मन-मन के हो गये थे। अनवरत परिश्रम से अपनी वर्तमान जगह उन्होंने वनायी। आत्मा को दवाकर किसी की प्रशंसा की। मन को पत्थर वनाकर किसी कुटिल उत्साह की हां-में-हां मिलायी। कितने ही चढ़ाव-उतार देखे हैं। कितना ही संघर्ष झेला है।

यह शहर एक प्रतिद्वंद्वी की तरह उनसे हर कदम पर लड़ा है। उन्हें इससे मोह क्यों हो ? इसने उन्हें मुफ्त में रोटी नहीं दी। अल्प मूल्य पर मान नहीं दिया। कोई रियायत नहीं। जरा-सी भी छूट नहीं। वे इस व्यक्तित्व के साथ ही इस शहर के लिए समाप्त हो जायेंगे।

अवकाश के वाद पराधीनता का एक भी पल वे भोगने के लिए तैयार नहीं हैं। यह जगह उन्हें जंजीर से वांधकर रखेगी। अतीत का प्रेत उन्हें चैन नहीं लेने देगा। अवकाश के शांत, निरुद्वेग दिन वे वहां वितायेंगे, जहां उनके पुरखों का कभी घर था। जहां उनका वचपन वीता, जहां की धूल-मिट्टी में भी पुरानी पहचान है। वहां कोई व्यक्तित्व ओढ़ने की जरूरत नहीं पड़ेगी।

अव वे अपने संघर्ष के दिनों को ढोने के लिए तैयार नहीं हैं। कुटिल कुचक्रों में सुनने वाले की हैसियत से भी पड़ना नहीं चाहते। और यहां रहने से वार-वार वही कुछ होगा, जिससे वे वचना चाहते हैं। पुराने मित्र, नये मित्र वही दुहरायेंगे......लड़ते-भिड़ते संघर्परत मनुष्यों की समर-गाथा। मुखौटे वदल जायेंगे, लेकिन लड़ाई जारी रहेगी। इन्हीं विषैले दाव-पेंचों का, इन्हीं घातक हथियारों का व्यवहार होगा। विजेताओं और विजितों के मुख से विरोधी वातें सुनने को मिलेंगी। लेकिन उससे कुछ होगा नहीं। दुनिया अपने रास्ते चलती रहेगी। वे व्यर्थ ही वीते हुए दिनों से चिपटे रहेंगे।

टाई की गांठ वांधते हुए शीशे में अपने को देखकर उन्हें हंसी आती है। कभी इन्हीं

मई

उलझनों में कितने चाव से, कितने उत्साह से शामिल थे। पत्नी और बेटी के लिए वक्त निकाल पाना उनके लिए कितना मुश्किल था! पत्नी कितनी शिकायतें करती थी। बेटी कितने उलहने देती थी। मनुष्य के मूल्य आंकने का तरीका भी कितना बचकाना है। मन हुआ कि चाभी ढूंढ़ती पत्नी के पास जायें और उससे कहें कि......। लेकिन क्या कहें ?

एक बात और है। मनुष्य जिस वस्तु को बहुत कोशिशों के बाद पाता है, उसे सहज ही छोड़ना नहीं चाहता। छोड़ने में कष्ट होता है। जिस पद के व्यक्तित्व से चिपक-कर वे जी रहे हैं, उसे सांप की केंचुल की तरह सुगमता से उतार नहीं पायेंगे। यह व्यक्तित्व उनका अनिवार्य अंग बन चुका है। अनचाहे ही अपने अहम् में वे इसे बड़ा हिस्सा दे चुके हैं। इसे छोड़कर वे खोखले हो जायेंगे पत्र-विहीन वृक्ष की तरह अशुभ और निर-र्थक। इस परिवेश में उनका यही परिचय सही है ...... मान्य है।

पीछे नमस्कार करने वाले हाथों में भी करुणा झलकेगी। नितांत परिचित आंखों में यत्न से लायी हुई औपचारिकता को देखकर वे अस्थिर हो उठेंगे। सतही शिष्टाचार से ऊब जायेंगे। और यह सब महसूस करके उन्हें अपार व्यर्थता का बोध होगा। यहां के लिए वे 'कुछ' हैं। इस 'कुछ' को उतार देने के बाद वे नितांत अकेले रह जायेंगे। इस गरिमा के बोझ तले भले ही उनका मन खंडित होता रहा हो, आत्मा विद्रोह करती

रही हो, लेकिन खुशी से ही इस बोझ को उन्होंने उठा रखा था।

एक बूढ़े लकड़हारे का किस्सा याद आता है। लकड़ियों के भारी बोझ से संत्रस्त होकर वह चिल्लाया था—"हे यमराज! कहां हो? अब उठा लो!" उसके आर्त-नाद में विशुद्ध हृदय की प्रखर वेदना की शक्ति थी। यमराज तत्काल आ पहुंचे—"वत्स चलो। मैं तुम्हें लेने आया हूं।" बूढ़ा भयभीत होकर कांपने लगा—"भगवन! मैंने तो इस गट्ठर को उठाने के लिए सहा-यता चाही थी।" यमराज ने गट्ठर उठाकर उसके सिर पर डाल दिया और हंसते हुए लौट गये।

सोचते-सोचते उन्हें भी हंसी आ गयी। सच, यहां लगाव की कोई भी वस्तु नहीं है। एक बेटी थी, वह भी अपने घर चली गयी। उनका मन हल्का हो गया। पत्नी के हाथ से चाभी लेकर गाड़ी में जा बैठे। सहयोगियों ने उनके सम्मान में एक विदाई-भोज का आयोजन किया है।

अब कोई चिंता नहीं है। स्टीयरिंग पर रखा हुआ हाथ कांप गया ...... चिंता कैसे नहीं है? पत्नी दुःखी है। वह इस शहर को छोड़कर जाना नहीं चाहती। कहती है—"भले

ही वह आपके पुरखों का शहर है, मैं वहां जाकर क्या करूंगी? मुझे तो हर चीज अपरिचित लगेगी। बुढ़ापे में मैं नये संगी-साथी बनाऊंगी? नयी जगह को प्यार करूंगी? न जाने क्यों आपको इस सुंदर शहर से वैर है।" उन्होंने समझाने की कोशिश की है। कभी-कभी मजाक भी किया है—"तुम मुझसे बातें किया करना। आखिर मैं भी तो कामकाजी नहीं रह जाऊंगा। निठल्ला घर में बैठा रहूंगा।" लेकिन वह मुस्करायी भी नहीं है।

दोष पत्नी का भी क्या है? जब से व्याह कर आयी, उसने इसी शहर को अपना घर समझा। अपने सभी सुख-दुःख, हंसी-आंसू को यहीं जिया है। उन्होंने संघर्ष किया, बदले में उन्हें संघर्ष मिला। पत्नी ने प्यार किया, उसे प्यार ही मिला है। उसके लिए यह महज रोजी-रोटी देने वाला शहर नहीं है, बल्कि उसके प्रेम का प्रत्युत्तर है।

आज ही सुबह नाश्ते पर वह खुशी-खुशी बता रही थी कि सफेदे की जो कलम उसने लगायी थी, उसमें पहली बार मंजर आ रहा है। जाने की बात वह बिलकुल भूल गयी थी। पूर्ण तृप्ति का आभास था उसके मुख पर। यहां की मिट्टी की महक से लेकर मौसम के सभी रंग उसे कंठस्थ हैं। कब मेहरा साहब का सहजन फूल उठता है! कब दत्त बाबू की इकलौती झड़बेरी लाल-पीले खट्टे-मीठे बेरों से भर जाती है। कब उसका सफेद कचनार आपादमस्तक दूधिया फूलों से सज उठता है ......ये सभी सूचनाएं वृक्षों से भी पहले उसे मिल जाती हैं।

उसने अनेक आत्मीय बंधु बनाये। जी भरकर प्यार बांटा है। लोग उसे सम्मान देते हैं। इस मकान को उन्होंने कई बार छोड़ना चाहा है, लेकिन वह नहीं मानी है। अपनी सभी इच्छाओं को यहीं साकार करने का प्रयत्न किया उसने। यह प्रयत्न दोनों ने ही किया ...... अपने-अपने रास्ते। अब वे छोड़कर जाना चाहते हैं और वह जाना नहीं चाहती। उसका व्यक्तित्व एक ही है और वह उस व्यक्तित्व से आक्रांत भी नहीं है। इस मामले में वह उनसे कितनी अधिक सुखी है। उनके मुंह से एक दीर्घ निःश्वास निकल गया।

उनके बाहर जाते ही वह फिर बरामदे में निकल आयी। गोलकुर्सी में बैठकर चारों ओर देखा। माधवी लता में लंबी-लंबी नयी टहनियां निकल आयी हैं। एक महीने के भीतर गोरे-गुलाबी फूलों से लता भर जायेगी। मंद सुगंध से बगीचा महमहा उठेगा। सफेदे में मंजर आया है। वह आम देख भी नहीं पायेगी। सिंदूरी और नारंगी रंग के बोगेनविला खिलकर छितरा गये हैं। पत्ते दिखाई नहीं देते। उसे बोगेनविला ऐसे ही प्यारे लगते हैं, रंगों का तूफान आया हो जैसे।

उसने पश्चिम की तरफ नजर डाली। गेरुआ सिमटकर गहरा लाल हो गया था और लाल की गहराई से सुरमई रंग झांकने लगा था। उस सूर्य का संन्यासी मुख याद आ गया। शिव का स्वरूप, वैराग्य का .....

निस्संगता का स्वरूप। और नवजात काला रंग मृत्यु का प्रतीक। अनिवार्य मृत्यु का।

फिर जीवन की इस वेला में वह क्यों किसी वस्तु को पकड़कर रखना चाहती है। छोड़ना तो है ही ...... क्या यह जगह, क्या वह जगह।

शायद सिर्फ जगह की बात नहीं है। सहारे की बात है। बेटी अपने घर चली गयी। वह अकेली थकी हुई और कमजोर महसूस करती है। परिचित वातावरण से बड़ा बल मिलता है। सिर्फ परिचित ही नहीं प्रिय भी। महत्त्व स्थान का नहीं है, भाव का है ...... भोग का है। वह हर भोगे हुए क्षण को पकड़कर रख लेना चाहती है। इससे अकेलापन नहीं कचोटता।

याद है, जब शुरू-शुरू में यहां आयी थी, तो इस जगह को देखकर वह अवाक् रह गयी थी। इस छोटी-सी उपत्यका ने उसे घेरकर रख लिया था। पहाड़ियों की फैली शृंखलाएं। नीचे बहती पतली और स्वच्छ नदी। संथाल युवतियों की हंसी की तरह उजली और उमंग-भरी। मिट्टी उनकी पीठ की तरह काली और सख्त। मिट्टी में मौसम के अनुसार घुलती हुई खुशबू ...... सोंधी और भीनी।

लेकिन पतझड़ के बाद जब आम, कटहल, शिरीष से लेकर सभी फूल खिल जाते हैं, उस समय मिट्टी चुपचाप रहती ...... निःशब्द। वह अपनी संतानों को फलती-फूलती देखकर अघा जाती, गौरव से भर उठती। उसे अपनी सुधि नहीं रह जाती। लेकिन गर्मी के आते ही उसमें सोंधापन घुलने लगता ...... मानो मुरझायी हुई दुःखी वनस्पतियों को दुलार दे रही हो, उत्साह दे रही हो। यहां की काली माटी से उसे बेहद प्यार है, सख्त न सही; लेकिन रत्नगर्भा है, अनमोल खनिज देती है। बरसात में भी कहीं कीचड़ नहीं होता। पानी चुपचाप निकल जाता है ऊपर-ही-ऊपर...... पहाड़ी सोतों की ओर।

चैत-बैसाख में शालवन फूलते हैं। काली धूसर मिट्टी पर हल्के पीले फूल बिखर जाते हैं। शाल के फूलों का रंग मक्खन-सा होता है; सुगंध मंद, लेकिन अमृतमय। संथाल युवतियां हर दिन अपने चिकने श्याम जूड़े में शाल पुष्पों का गुच्छा खोंसती हैं। महुआ की शराब पीकर, शाल फूल के गुच्छों को जूड़े में खोंसकर वे रात-रात-भर नाचती हैं ......मत्त। लेकिन सुबह-सवेरे सफेद साड़ी कसकर पहने, नयी हंसी से सजी कारखाने में काम करने पहुंच जाती हैं। इसमें व्यवधान नहीं होता।

बहुत पहले उसने सोचा था कि इसी उथली उपत्यका में शालवन के बीच एक छोटा-सा घर बनायेगी। यही हवा, पानी, माटी उसके साथ रहेगी। उसके सुख कभी अतीत नहीं बन सकेंगे।

हवा का एक नम झोंका आया, तो उसने आंचल बांहों पर खींच लिया। शाम निश्चिंत होकर वृक्षों पर विश्राम करने बैठ गयी है। इक्का-दुक्का तारा आंखें झपका रहा है। ...... "हंसता है तो केवल तारक एक, गुंथा

हुआ घुंघराले काले वालों में।" वह निःशब्द रोने लगी। शायद इस जगह को छोड़ने के दुःख से। शायद बेटी की याद आ जाने से!

उसका मन बेहद उदास हो आया। मेहरा साहब के फूले हुए सहजन के ऊपर वड़ा-सा चांद निकल आया। भोला खाने के लिए कहने आया, तो उसने मना कर दिया। सूने मन और सूनी आंखों से रात को, चांद को ताकती रही।

"मेम साहव, अपना देस जायेगा न? अपना मुलुक?" मेहतरानी झाड़ू लिये खड़ी थी। उसने अनमनेपन से कह दिया—"हां, अपना देस जायेगा।" मेहतरानी एकदम से खुश हो उठी—"वहुत अच्छा मेम-साहव। हमको एक नयी साड़ी दे दो ना मेम-साहव......।"

उसके मन में कचोट उठी। अपना देश? अपना मुल्क? कहां है उसका देश? मेहतरानी कितनी खुशी से कह रही है। खुशी की वात भी है। अपना देश......यानी अपना घर! और यह कौन-सी जगह है? क्यों वह आश्वस्त नहीं हो पा रही है? उसे कितना भय लग रहा है! उसने सूखी हंसी के साथ कहा—"तुम्हारे लिए साड़ी रखी हुई है। यह लो"—और वह तुरंत पलट गयी उसकी आंखें फिर भर आयी थीं।

भोला सब्जियां ले आया था। मटर के दाने छुड़ाती वह अपने आपसे वोलने लगी—"इस शहर का यही हाल है। मटर सड़ने लगा है, लेकिन वारह आने किलो बना हुआ है।" उस के स्वरमें लाड़ झलक रहा था, जैसे इकलौते विगड़े हुए वेटे की करतूतें वखानते समय मां के मुंह पर आ जाता है। दिन-भर वह तरह-तरह के वहाने निकालकर रोती ही रही।

अमरूद का पेड़ तव लगाया था, जब लीला सातवीं कक्षा में थी। लीला को अमरूद कितने प्रिय थे! जाडों में पके अमरूद मीठे होते हैं, उनमें सुगंध भी होती है। अमलतास का पेड़ भी लीला की जिद पर लगाया था। पीला लीला का मनपसंद रंग था। लगता है, आज फिर वेटी घर से विदा हो रही है। एकाएक ही अंतर सुन्न हो उठा है। जितने लोग मिलने के लिए आते, उसकी उदासी बढ़ती जाती। वे सुवह से ही गायब थे और वह अपने को एकदम वेसहारा महसूस कर रही थी।

तीसरे पहर वे आये। हाथ में कागज का वड़ा-सा पुलिंदा था। देखते ही वह खीजने लगी—"सात दिनों से सामान समेटकर मैं तो पागल हो रही हूं। अब आप एक सूटकेस-भर कागज उठा लाये हैं। कहां रखा जायेगा यह?" उनका चेहरा लाल पड़ गया—"कारखाने गया था। अलमारी के दराज में पुराने कागज पड़े थे। उन्हें उठा लाया।"

ये कागज गवाह हैं...... उनके संघर्ष के, उनकी सफलता और संतोष के। हाथों में उन कागजों को कसकर पकड़ हुए वे कुर्सी पर वैठ गये। लगा कि सांस लेने में कठिनाई हो रही है। गौर से उन कागजों को देखा। नहीं ...... समय पर ही तो उन्हें सब कुछ मिला। तरक्की, मान-सम्मान ...... सभी मई

कुछ। भीतर-ही-भीतर वे विखरने लगे। अनजाने ही कुर्सी की बांह थाम ली। महसूस हुआ कि तरल मानव-स्पर्श उनसे दूर होता जा रहा है। उन्हें एक निर्जन द्वीप में छोड़कर...... अकेले और असहाय। मनुष्य के उष्ण और जीवंत अनुभूतियों के घेरे से उन्हें बाहर धकेल दिया गया है। वह संघर्ष भी कितना प्राणवान था ...... कितना मानवीय! और यह पलायन कितना निरर्थक है ...... खोखला और कायरतापूर्ण।

"और यह क्या है?" पत्नी ने उपहास से पूछा। वह अल्यूमिनियम का 'कैन' था ...... जगह-जगह दबा हुआ, पिचका हुआ। 'कैन' के ऊपर उनका नाम और सन १९३२ खुदा हुआ था।

अचानक ही एक सुखद अवसाद से वे भर गये। तरल और सुखद अवसाद। सारे तूफानों के ऊपर मोह जगने लगा ...... प्रबल मोह! और अभिमान के भी ऊपर स्नेह! उनकी आंखें झुक गयीं —"पानी पीने का 'कैन' है।...... मैं इसी से कारखाने में पानी पीता था।"

पत्नी ने आश्चर्य से आंखें उठाकर देखा। दोनों की दृष्टि निबद्ध हो गयी। उसे लगा कि उनकी आंखों ने सहारा दिया है और उन्हें लगा कि पत्नी की आंखों ने उन्हे डूबने से बचा लिया है।

गोलमिर्च की बेल सबल सुदीर्घ वृक्षों से निश्चिंत होकर लिपटी रहती है। उस क्षण में दोनों बेत बन गये, दोनों वृक्ष बन गये।

★

बराबर का सौदा

एक ठग ने मिट्टी के घड़े का आधा भाग गोबर से और ऊपर का आधा भाग घी से भरा; फिर किसी सीधे-सादे ग्राहक के गले मढ़ने की कोशिश में वह घर से निकला। रास्ते में उसकी भेंट एक दूसरे ठग से हो गयी, जो पीतल के कड़े पर सोने का मुलम्मा चढ़ाकर सच्चे सोने के भाव में किसी के हाथ बेचने की ताक में था। पहले ठग ने पूछा—"क्यों भाई शुद्ध घी का यह घड़ा आप खरीदेंगे;" दूसरे ने उसी आत्मीयता से उत्तर दिया—"भाई, खरीदने की इच्छा तो है और मुझे घी की आवश्यकता भी है; परंतु मेरे पास नकद पैसे नहीं हैं। असली सोने का यह कड़ा है। आप इसे लेकर घी देना चाहें, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं।" पहले ठग ने सोचा, यह तो और अधिक लाभ का सौदा है। वह तत्काल राजी हो गया। दोनों ने चीजों का विनिमय कर लिया। मार्ग में जाते हुए दोनों मन-ही-मन सोच रहे थे—मैंने उसे कैसा उल्लू बनाया। क्या इस प्रकार के सौदों से आज का संसार भरा हुआ नहीं है?

—मुनि चित्रभानु

जयवंत दलवी

मराठी से अनुवाद
विजय बापट

पेट में किसी तरह दो कौर ठूंसकर गोपालराव बाहर के कमरे में आ गये। आज उनकी भूख उड़ गयी थी। भूख उड़ जाने की वजह से और माई की नजरों में आ जाने के भय से उन्होंने झट से खाना खा लिया। हड़वड़ी में वे छाछ पीना भी भूल गये। माई ने छाछ की याद दिलायी, पर उन्होंने पी नहीं। वे दिखाना चाहते थे कि वे पीना भूले नहीं हैं, वरन् पीना ही नहीं चाहते।

फिर गोपालराव आदतन आरामकुर्सी पर वैठ गये। खिन्न नजरों से उन्होंने रंगा की ओर देखा। रंगा की ओर देखते ही वे और ज्यादा खिन्न हो उठे। रंगा के चेहरे की ओर उनसे देखा नहीं जा रहा था।

रंगा कमरे में ही चहलकदमी कर रहा था। चौवीस साल का छोकरा। पैंट की दोनों जेवों में हाथ डालकर, कमरे में एक ओर से दूसरी ओर चक्कर लगा रहा था। अपनी सूखी-सूखी नजर जमीन में गड़ाये कमरे में टहल रहा था। दिन भर बस यही करता रहता था। दो वक्त खाना खाना रात में मुश्किल से चार घंटे सोना और बचे

हुए वक्त में इसी तरह चहलकदमी करते रहना।

चक्कर काटते-काटते अगर थकान महसूस होती, तो नंगी, ठंडी जमीन पर लेट जाता। चक्कर लगाने के दौरान किसी की ओर नजर उठाकर देखता ही नहीं—गोया इस दुनिया में अपना कोई है ही नहीं। पर इस तरह सोचने-विचारने की शक्ति ही उसमें कहां है ? वह सिर्फ खाना खाता, घूमता और सो जाता है। बस इसी वजह से उसे जिंदा कहा जा सकता है, वरना ......

उसकी ओर देखते-देखते गोपालराव को महसूस हुआ, जैसे उनकी एक नस बेजान हो रही है। अंदर ही अंदर कुछ चुक रहा है।

गोपालराव को वह प्रसंग याद आया। दो साल पहले वाला। उसी दिन यह हुआ। रंगा के जन्म से लेकर आज तक ऐसा न हुआ था। और जो उस दिन घटित हुआ, उसकी याद हमेशा के लिए ही बन गयी।

उस दिन ...... उन्हें रह-रहकर अचरज हो रहा था; अभी भी वैसा ही अचरज हुआ ......उस दिन मन का डोर कैसे छूट गया ? अगर रंगा को चार-छः गालियां ही दे दी होतीं, तो काम चल सकता था। ज्यादा-से-ज्यादा एकाध चपत जमा देते, पर कनपटी पर तड़ातड़ थप्पड़ लगाना बेरहमी ही थी। तभी से रंगा ज्यादा बिगड़ बैठा। हमारी बेरहमी की वजह से बिगड़ा ...... इस खयाल का भूत उनके सिर पर बैठ गया। वे सहम-से गये। रुआंसे-से हो गये। उन्हें लगा, जैसे जोर से रो देना चाहिये ...... खूब रोना चाहिये ......फूट-फूटकर।

आंखों से आंसू टपकते ही गोपालराव संभल गये। धोती के पल्लू से आंखें पोंछते हुए उन्होंने रंगा की ओर देखा। वे वहां थे, इस बात की जानकारी रंगा को थी ही नहीं। वह सब कुछ भूलकर चक्कर काट रहा था—सर्कस के जानवर-सा।

उनसे देखा न गया। आज तक वे उसकी ओर देखते रहे थे। पर आज तक अपराध-बोध का एहसास उन्हें इस तरह न हुआ। आज उनकी नजरों में दूसरा ही संदर्भ उत्पन्न हो गया था। इसी वजह से वे उठे और कपड़े पहनकर आफिस चल पड़े, पर आज जाने के पहले उन्हें एक जिम्मेदारी पूरी करनी थी।

जूते के फीते बांधते हुए वे जरा ऊंची और सूखी आवाज में बोले—"सुन रही हो ? उन सप्तर्षि के यहां जाने की कोई जरूरत नहीं है—प्लैंचेट-ब्लैंचेट कुछ नहीं। सब झूठ है। हमारे जैसे लोगों के लिए यह सब शोभा भी नहीं देता। हम लोगों को ऐसे झमेले में पड़ना ही नहीं है।......"

रसोईघर से कोई आवाज नहीं आयी। उन्हें कुछ संशय हुआ—मैं क्या कह रहा हूं—माई को सुनाई ही नहीं दे रहा ...... या मेरी बात न मानकर उन्हें सप्तर्षि के यहां जाना है ?...... जाना है ? ...... जायेंगी कैसे ? ...... मैं मना कर रहा हूं तो किसकी हिम्मत है ...... गोपालराव का पारा ऊपर की ओर चढ़ा। वे खिसियाकर जोर से चिल्ला पड़े—"सुन रही हो न ? कोई सप्तर्षि के यहां नहीं जायेगा, मुझे यह सब बिलकुल पसंद

नहीं, समझीं ......"

फिर वे रसोई के दरवाजे की ओर ताकते रहे। शायद माई बाहर आयेंगी या उनकी आवाज ही सुनाई देगी—इसी खयाल में थे वे। उन्हें माई के पांव नजर आये और वे दूसरी ओर देखने लगे। चढ़ा हुआ पारा झट से नीचे आ गया। और नजर कुछ सहम-सी गयी।

माई दरवाजे में खड़ी थीं।

"किसलिए जाना है सप्तर्षि के यहां ?" उनका स्वर कुछ धीमा हो उठा। माई के चेहरे पर करुणा का भाव देखकर वे कुछ और सहम गये।

"उनके यहां मृतात्मा को प्लैंचेट पर वुलाया जाता है।" माई की आवाज भी धीमी और आर्त थी।

"सव बेकार की वातें हैं। तुम लोग समझती क्यों नहीं ?"

"बेकार क्यों होंगी ? सात नंवर वाले जोशीजी नें अपनी बेटी को प्लैंचेंट पर वुलाया था—अभी पिछले महीने की ही तो वात है।"

"फिर वह आयी थी ?"

"हां ......"

"क्या कहा उसने ?"

"कहा—श्रीखंड खाने की इच्छा है—उसे तुलसी के आगे रख दीजिये ......"

"फिर ?"

"वैसा ही किया गया, तभी जोशीजी की भूत-वाधा दूर हुई।"

गोपालराव का मुंह खुला-का-खुला ही रह गया। वे कुछ न वोले। वोलते वनता ही न था। सिर्फ सुनने में ही उन्हें परेशानी होने लगी।

"इसीलिये तो कहती हूं—सुरेखा को प्लैंचेट पर बुलाकर उसकी कुछ इच्छा हो, तो पूछना चाहिये—जिससे अपने रंगा को कुछ आराम मिलेगा। रंगा की तवीयत सुरेखा के जाने के वाद से ही खराव हो गयी है।"

अप्रत्यक्ष रूप से उनकी ओर ही इशारा है, यह समझकर गोपालराव अपने आपको संभालते हुए वोले—"तो पहले ही रंगा कौन ठीक था ?"

"जन्म से जरा भद्दा जरूर है, पर कुछ वातें तो करता ही था। हंसता-खेलता था। अब तो हंसना-वोलना भी छोड़ दिया है ......।" माई की आवाज कांपने लगी। उनकी आंखों में पानी आ गया।

पलभर रुककर दोनों ने ही रंगा की ओर देखा। उसे कुछ फिकर ही न थी—न किसी बात का एहसास ही था। वह अपने आप में ही मगन चहलकदमी कर रहा था।

"गलती मेरी ही थी—मुझे सुरेखा को अपने घर पर रखना ही नहीं चाहिये था। छोटी बहन थी, तो क्या ? अपनी जवानी में थी ......"

माई कुछ वोलेंगी—ऐसी गोपालराव को अपेक्षा थी ! पर माई चुप गोपालराव की ओर देखती रहीं। गोपालराव समझ नहीं पा रहे थे कि क्या कहा जाये। वह सहमे-सहमे-से माई की ओर देखते रहे।

मई

"आप ही ने तो कहा ......"

"मैंने क्या कहा था ?" अपने पर आयी बात झटकने की गरज से गोपालराव ने तपाक से पूछा।

"आप ही ने तो कहा था कि उसे टी० बी० है। यहां उसे आराम मिलेगा।"

"फिर उसमें क्या गलत था ?"

माई चुप ही रहीं। गोपालराव को पीड़ा हुई। कुछ गलत हो तो कह देना चाहिये; गलत नहीं हो, तो उसे मान लेना चाहिये। पर इस तरह की चुप्पी सहन नहीं होती। वे बोले–"कहो न, क्या गलत था ?"

"इसीलिए तो ऐसी बात हुई न ?" माई रुआंसी होकर बोलीं।

"क्या कह रही हो तुम ? मेरी वजह से? ......" उन्हें लगा जैसे जमीन खिसकी जा रही हो।

"और नहीं तो क्या! अगर वह यहां न होती, तो उसे कौन दिन चढ़ते ?"

"तुम आखिर कहना क्या चाहती हो ?" गोपालराव ने सारी ताकत लगाकर पूछा।

"अगर वह यहां न होती, तो रंगा का मन उस पर अटकता ही नहीं और उसकी मौत से रंगा भी इस तरह न बिगड़ता।"

एकदम बुखार उतरने पर जैसे पसीना आता है, ठीक वैसे ही गोपालराव के वदन में पसीना आ गया। उन्हें कमजोरी भी महसूस हुई– बुखार उतरने के बाद की कमजोरी। मरते-मरते जीने की-सी खुशी हुई उन्हें। खुली सांस ली उन्होंने। ०

"बात तो सही है। सुरेखा गयी और रंगा बिगड़ गया।" जैसे छुट्टी पा गये हों, इस अंदाज में वे बोले। उनके कनपटी पर तमाचे लगाने से वह इस तरह हो गया है–यह बात माई ने नहीं कहीं, इससे उन्हें राहत मिली।

"इसीलिए तो कहती हूं–सुरेखा को प्लैंचेट पर बुलाकर उसकी इच्छा पूछ लेना चाहिये। उसकी इच्छा पूरी हो जाये, तो रंगा की तबीयत भी ठीक हो जायेगी। उसे गुजरे तो अब दो साल हो गये हैं।

माई की बात सही है, यह जानते हुए भी वे मानने को तैयार न थे। पर विरोध भी न कर पाये। दो पल वह चुप रहे। शून्य में देखते हुए वे खामोश बैठे रहे। पर काफी देर से खामोश बैठे हैं, इस बात का एहसास होते ही वे घबड़ा गये। अगर इसी तरह खामोश रहे, तो माई सप्तर्षि के यहां जरूर जायेंगी और प्लैंचेट पर हाथ टेककर सुरेखा की आराधना करेंगी–इसी बात का उन्हें डर था। खयाल आते ही वे तिलमिलाकर बोले –"सब बेकार की बातें हैं। मरे हुए लोग इस तरह प्लैंचेट पर आकर बोलने लगें, तो हो चुका ......"

माई कुछ न बोलीं।

छाता लेकर बाहर जाते वक्त वे फिर बोले–"बताये देता हूं, वहां कोई नहीं जाये, मुझे बिलकुल पसंद नहीं ......"

गोपालराव धीमे-धीमे सीढ़ियां उतर गये। उन्हें लगा, सुरेखा को प्लैंचेट पर बुलाकर उसकी इच्छा पूछ लेने में हर्ज ही क्या है ?...... उसकी इच्छा पूरी कर सकें, तो अच्छा ही ......होगा ...... उससे रंगा ठीक

हो जाये, तो अच्छा ही है ......फिर प्लैंचेट पर उसे ...... नहीं नहीं ......वह कहीं और कुछ कह दे, तो ......?

गोपालराव के सीने में जैसे करेंट मार गया हो। चलते-चलते उनका मन खोखला हो गया।

आफिस में आकर वे खामोश बैठे रहे। वे समझ नहीं पा रहे थे कि वे क्या सोच रहे हैं। उन्होंने अपनी कुहनियां मेज पर टिकाकर हथेलियों से सिर पकड़ लिया। मेज के कांच की ओर वे एकटक देखते रहे—कागज का एक हिस्सा प्लैंचेट जैसा उठा हुआ था—हड़बड़ाकर उन्होंने उसे पेपरवेट से दबा दिया।

"क्यों भई आज कुछ काम-धाम नहीं है क्या ?" गौड़ ने पूछा।

गोपालराव का ध्यान भंग हो गया। वे हंसकर बोले—"गौड़ साहब, जरा इधर तो आइये।"

गौड़ टेबल के सामने आ खड़े हुए।

"बैठिये न ......"

"कहिये—क्या बात है ?"

"आप प्लैंचेट के बारे में कुछ जानते हैं?"

"क्यों ?"

"नहीं बस यों ही। मरे हुए आदमी क्या वाकई प्लैंचेट पर आ जाते हैं ?"

पल भर वे कान लगाये रहे—मुंह खुला रहा उनका ......

"कहिये तो सही ?"

"सब झूठ।" गौड़ ने तपाक से कहा।

"और क्या—मेरी भी यही राय है।" उनके चेहरे पर खुशी छा गयी।

"आखिर बात क्या है ?" गौड़ तिरछी नजर से देखता हुआ बोला।

"हुंह ! मेरा तो प्लैंचेट पर जरा भी विश्वास नहीं है।"

"विश्वास करना भी नहीं चाहिये ......"

"और क्या ...... ।"

गौड़ उठकर चले गये, फिर गोपालराव भी खुशी से फूले न समा रहे थे। उसी खुशी में वे उठे और तैलंग की कुर्सी की ओर चले गये। कभी भी दूसरों की मेज की ओर न जाने वाले गोपालराव को बिना बुलाये ही आते देखकर तैलंग को अचरज हुआ। उसने पास वाली कुर्सी खींची और कहा—"बैठिये, कोई खास बात ?"

"कुछ नहीं, यूं ही चला आया—आज काम में जी ही नहीं लग रहा।" गोपालराव ने इस तरह कहा जरूर, पर तैलंग को विश्वास नहीं हुआ। वह जानता था कि गोपालराव काम के बगैर किसी के पास जा ही नहीं सकते थे। तैलंग ने पूछा— "कोई खास बात है, बताइये न ?"

कुर्सी पर बैठते हुए हल्के-से मुस्कराते हुए धीमी आवाज में गोपालराव बोले—"आपने कभी प्लैंचेट का प्रयोग किया है ?"

"बस एक ही बार ?"

"अच्छा ?" गोपालराव की आंखें फटी-सी गयीं —"फिर क्या हुआ ?"

"मैंने अपनी मां को बुलाया था"

"कहां ?"

"प्लैंचेट पर।"

अब स्पीड किंग चलाइए
और साइकिल की सवारी का असली मज़ा पाइए
भारत में बनायी गयी पहली असली स्पोर्ट साइकिल है।
पैडल पर पैर रखते ही यह साइकिल पूरी रफ़्तार से दौड़ने लगती है।
स्पीडकिंग चलाने में जो आराम और मज़ा है, वह किसी दूसरी साइकिल में नहीं मिल सकता।
ये हैं वे कुछ बातें जिनके कारण स्पीडकिंग की सवारी का मज़ा
किसी दूसरी साइकिल में नहीं मिल सकता।
* फ्रेम एकदम हलका-फुलका
* वेस्टरिक रिम।
* हब...खास तौर से बनाये गये।
* हैंडिल भी खास तौर से
आरामदेह बनाया गया।
* कैलिपर ब्रेक...जो किसी भी रफ़्तार में एकदम
खातिरी के साथ फौरन काम करते हैं।
* पॉलिश किये हुए कोनवाले पैडल...
बियरिंग लगे हुए...चलाने में बिलकुल सुगम।
* फ्री-व्हील...जिसमें खास तौर से
सख्त बनाये गये फौलाद की
गोलियों की दो पूरी कतारें हैं।
* चेन...एकदम ठीक नापवाली।
स्पीडकिंग का रंग-रूप भी खूब
निखरा हुआ है। बढ़िया क्रोम का
फ़िनिश जिसपर आकर्षक रंगों
का संगम चटकदार लाल...चमकीला
नीला...
सचमुच। अपनी स्पीड किंग
पर आपको नाज़ होगा।
हिन्द साइकल्स लि.
बम्बई।
SAS-HC-24 HIN

"अच्छा......अच्छा......मतलव मृत मां को ......"

"हां ......"

"फिर क्या हुआ ?"

"उसने वहुत-सी वातें वतायीं !"

"क्या ......क्या कहा उसने ?" अधीरता स्पष्ट झलक उठी।

"कुछ व्यक्तिगत वातें थीं।"

"व्यक्तिगत ?" गोपालराव को कुछ झटका-सा लगा और वे कुर्सी से उठ खड़े हुए।

"क्यों-वैठिये न !" तैलंग वोले।

और गोपालराव दीन वनकर फिर से वैठ गये। पर उन्हें उठना था। अव वैठने का वक्त नहीं था। मन वेचैन था, फिर भी जवरन कुछ देर वैठे रहे और वोले—"मुझे तो शंका ही है। मरा हुआ प्राणी आयेगा कैसे?"

"फिर कौआ पिंड कैसे छूता है ?" तैलंग ने पूछा।

गोपालराव निरुत्तर हो गये। कौआ पिंड छूता है, यह वे देख चुके थे।

"आपको प्रयोग करके देखना है ?"

"नहीं, नहीं, वस यूं ही पूछ रहा हूं।" थकी-थकी-सी आवाज में गोपालराव वोले और अपनी जगह पर जा वैठे। वैठे-वैठे स्याही-पट पर वे लकीरें खींचने लगे। यूं ही विला वजह ! पर अनजाने ही लकीरों का त्रिकोण वनता देखकर वे एकदम हड़वड़ा गये और उस त्रिकोण पर उन्होंने गहरी लकीरें खींच दीं।

उन्हें कुछ सूझ ही नहीं रहा था। लगा उनका मस्तिष्क जैसे आलपिन की गड्डी है

और उस पर कोई हजारों पिनें गाड़ रहा है। एक और पिन गाड़ी जाने लगी—कहीं माई सप्तर्षि के यहां तो नहीं जायेंगी ?......मेरी वात टालकर माई सप्तर्षि के यहां ......

डरकर गोपालराव एकदम खड़े हो गये। अव पल भर भी वे आफिस में नहीं वैठ सकते थे। छुट्टी लेकर घर लौट आये। आये तो, पर उन्हें कोई दिखाई नहीं दिया। सिर्फ रंगा जरूर था। अपने आपमें और अपनी चहलकदमी में मगन। गोपालराव आये, पर उसने नजर उठाकर उन्हें देखा तक नहीं।

"माई कहां है ?"

रंगा चुप ही रहा। उसके चेहरे की लकीरें जरा भी नहीं हिलीं। उसने सिर्फ गोपालराव की ओर देखा था। उसका चेहरा उन्हें दीन और दयनीय दिखाई दिया। गोपालराव से नहीं रहा गया। उन्होंने झटके के साथ रंगा को खींचकर सीने से लगा लिया,

उसका मुंह चूमा और खुलकर रोने लगे। कई दिन से रोने की उनकी इच्छा थी, मौका ही नहीं मिला था।

आज वे अकेले थे, बिलकुल अकेले। रंगा के रहने के बावजूद अकेले। इसी वजह से रंगा के बाल सहलाते हुए वे रोने लगे और रोते-रोते ही बोले —"रंगा बेटे, तुम्हारा अपराध न था ...... न था बेटे ......" आगे उनसे बोला ही न जा रहा था।

तभी आहट हुई—सीने की धड़कन बढ़ने के पहले ही दरवाजा चरमराया। माई दुबकती हुई अंदर आयीं।

उनका चेहरा गंभीर था। शायद उन्हें डर था कि सप्तर्षि के यहां गयीं, इससे गोपालराव चिढ़ेंगे। पर वैसा नहीं हुआ। उलटे बेजान-से होकर गोपालराव ने पूछा —"क्या हुआ ?"

"कुछ भी नहीं !"

इस जवाब से गोपालराव और भी घबरा गये। सुरेखा कुछ बोल न पड़ी हो, प्लैंचेट पर ?—यही विचार चुभ-चुभकर उन्हें परेशान कर रहा था।

"सुरेखा आयी थी प्लैंचेट पर।"

"हां।"

"हां ?" आकाश फट पड़ा —"क्या कहा उसने ?"

"कोई इच्छा नहीं, सुखी हूं—यही बोली"

"बस, इतना ही ......?"

"हां !"

गोपालराव को एकदम-से अचरज और हर्ष हुआ। वे हंस पड़े और हंसते ही रहे। उनका जी गेंद-सा टपाटप उछलने लगा। उन्होंने बीच में ही माई की ओर देखा। वे खिन्न और गंभीर थीं। उनकी हंसी में जैसे ब्रेक लग गया।

"वह सुखी है —पर तुम इतनी गंभीर क्यों हो ?"

फिर भी माई उसी तरह खिन्न रहीं। गोपालराव को लगा कि वे मेरी ही ओर लगातार देख रहीं हैं। वे इस तरह क्यों देख रही हैं ? उनकी यह नजर भी जानी-पहचानी नहीं है— कहीं कुछ गड़बड़ ...... गोपालराव को डर महसूस होने लगा। उन्होंने फिर एक बार पूछा —"तुम इस तरह चुप क्यों हो ?"

माई चुप ही रहीं। इस पर गोपालराव को लगा जैसे वे बेजान-से हुए जा रहे हैं। माई की चुप्पी को वे जरा भी सह नहीं पा रहे थे। इसीलिए अत्यंत दीन स्वर में उन्होंने फिर पूछा— "क्यों, उसने और भी कुछ कहा था ?"

पर माई फिर भी चुप ही रहीं।

★

जब हमें मुसीबत से बचकर भागने का मौका मिलता है, हम स्वतंत्रता महसूस करते हैं—चाहे भागकर गड्ढे में ही क्यों न गिरने वाले हों।

—एरिक होफर

हमें अपने जीवन में बहादुरी दिखाने के मौके बहुत कम मिलते हैं; लेकिन बुज़दिली न दिखाने का मौका रोज मिलता है।

—रेने फ्रांस्वा बाजां

★

सौरभ-भरे शब्द

जैनेट ग्राहम

मेरी एक सहेली है, जो प्रायः विदेशों में भ्रमण करती रहती है। वह जिस देश में भी जाती है, किसी हद तक वहां की भाषा सीखने का प्रयत्न करती है। एक शब्द तो उसे लगभग सभी भाषाओं का आता है— 'सुंदर'! और जहां भी मौका लगता है, वह इस शब्द का प्रयोग करने से नहीं चूकती। किसी स्त्री की गोद में बच्चा देखेगी, किसी के घर में टंगे हुए चित्र या किसी और दिलचस्प चीज पर उसकी नजर पड़ेगी, तो वह 'सुंदर' कहकर उसकी प्रशंसा किये बिना नहीं रहेगी।

अपनी प्रशंसा सुनकर किसे खुशी नहीं होगी? विदेशों में घूमती हुई वह जहां भी किसी की प्रशंसा में 'सुंदर' कहती है, उसी के दिल के द्वार उसके लिए खुल जाते हैं। अपनी इस एक आदत के कारण उसने संसार-भर में अपने सैकड़ों दोस्त बना लिये हैं।

प्रशंसा उस धूप की भांति है, जिसकी बदौलत हमारे दिल का फूल खिल उठता है, हमें अपने अंदर एक नयी खुशी और प्रेरणा अनुभव होने लगती है, हमारी थकान मिट जाती है, उदासी दूर हो जाती है।

हममें से अधिकांश लोग बहुत कम मौकों पर किसी की प्रशंसा करते हैं। इसके विपरीत हम ज्यादातर मौकों पर दूसरों की आलोचना करते हैं। जहां हम स्वयं अपनी प्रशंसा सुनकर खुश होते हैं, वहां दूसरों की प्रशंसा करने में संकोच कर जाते हैं। प्रायः पत्नियां ऐसे छोटे-छोटे मौके चूक जाती हैं, जब उन्हें अपने पतियों की प्रशंसा करनी चाहिये। इसी प्रकार प्रायः पति भी अपनी पत्नियों की अच्छाइयों की ओर से विमुख बने रहते हैं।

सही मौके पर प्रशंसा करने की आदत हमें प्रयत्नपूर्वक डालनी चाहिये। उससे दूसरे व्यक्ति को जो खुशी होगी, उसका कुछ अंश वह अपने अंदर भी महसूस करेगा।

प्रशंसा करने की आदत हममें से अधिकांश लोगों में न होने का कारण शायद यह

है, हम स्वयं अपनी प्रशंसा सुनकर संकोच और शर्म महसूस करते हैं। कई बार तो हम अपनी प्रशंसा में कहे गये शब्दों को हंसकर या मुंह बनाकर हवा में उड़ा देते हैं। इसी-लिए हम दूसरों की भी प्रशंसा करने में सकुचाते हैं, और कुछ मौकों पर किसी दोस्त या पत्र द्वारा दूसरे तक अपनी प्रशंसा पहुंचाते हैं।

बेशक खास-खास मौकों पर प्रशंसा करना, हम अपना कर्तव्य समझते हैं; मगर कई ऐसे मौकों पर हमें प्रशंसा करने का खयाल नहीं रहता, जबकि हमें प्रशंसा अवश्य ही करनी चहिये। क्या हम कभी अखबार देने वाले लड़के की इस बात के लिए प्रशंसा करते हैं कि वह रोज सुबह ठीक समय पर हमें अखबार दे जाता है, या क्या कभी हम धोबी से कहते हैं कि भाई तुम इस बार कपड़े बहुत अच्छे धोकर लाये हो? प्रशंसा के बजाय हम प्रायः उसकी नुक्ताचीनी ही करते हैं।

एक बार मैं कुछ सहेलियों के बीच बैठी हुई थी। सभी सहेलियां गृहिणियां थीं और यह शिकायत कर रही थीं कि उन्हें मांस अच्छा नहीं मिलता है। "मैं तो जब भी कसाई के यहां मांस लेने जाती हूं, उसे दो-चार सुनाकर ही आती हूं।" एक ने कहा। "मुझे भी उससे हमेशा झगड़ना ही पड़ता है।" दूसरी बोली। जब लगभग सभी बोल चुकीं, तो मैंने वहां बैठी अपनी एक सहेली से पूछा — "तुम उस कसाई से इतना नर्म और ताजा मांस कैसे ले आती हो?" वह मुस्कराकर बोली— "मैं जब भी उसकी दुकान पर जाती हूं, किसी-न-किसी बात में उसकी प्रशंसा करके आती हूं।"

प्रशंसा का प्रभाव खासकर उन लोगों पर बहुत अच्छा पड़ता है, जो कि एक ही किस्म का उबा देने वाला काम करते हैं — होटलों के बैरे, पेट्रोल-स्टेशनों के कर्मचारी, बस-कंडक्टर और घरों की चहारदीवारी में काम करने वाली स्त्रियां। क्या हमने कभी किसी के घर में जाकर कहा है — "कितना साफ-सुथरा घर है।" शायद ही कभी कहा हो। इसीलिए घर का काम इतना उकताहट-भरा प्रतीत होता है।

किसी घर में जाने पर हम फूलों के गुलदस्ते की तो प्रशंसा करेंगे, लेकिन फर्श की स्वच्छता की शायद ही कभी प्रशंसा करें, जिसे घर की स्त्री ने बड़ी मेहनत से धो-पोंछकर चमचमाता हुआ बना डाला हो। शेक्सपियर ने कहा है — "हमारी प्रशंसा में हमारा पारिश्रमिक है। एक गृहिणी को प्रशंसा से बड़ा पारिश्रमिक और क्या मिल सकता है, जो एक तरह से मुफ्त ही घर का सारा काम करती है।"

कुशल माताएं प्रशंसा के महत्त्व को जानती हैं। वे बच्चों से जो काम डांट-फटकार के बाद भी नहीं करवा पातीं, वह प्रशंसा के दो-चार शब्दों द्वारा करवा लेती हैं।

जो शिक्षक बच्चों को पढ़ाते समय प्रशंसा का प्रयोग करते हैं, उनके परीक्षाफल कहीं ज्यादा अच्छे निकलते हैं। किसी विद्यार्थी की कापी में लाल स्याही से ढेर सारी गल-

मई

तियां दिखाने के साथ, अगर शिक्षक कुछ स्थानों पर उसकी अच्छाइयों का भी जिक्र कर दे, तो विद्यार्थी पर कहीं अच्छा प्रभाव पड़ सकता है।

विद्यार्थी जब भी कोई काम खास मेहनत से करता है, तो वह चाहता है कि शिक्षक उसे विशेष ध्यान से देखे और उसकी प्रशंसा करे। प्रशंसा न पाने पर उसका उत्साह मर जाता है, और जमकर मेहनत करने की लालसा उसके मन में उत्पन्न नहीं होती।

एक बार एक स्कूल में किसी कक्षा के विद्यार्थियों को तीन टोलियों में बांटा गया और उन्हें अलग-अलग कक्षाओं में बैठाकर पांच दिन तक गणित के सवाल कराये गये। पहली टोली के विद्यार्थियों के काम की रोज प्रशंसा की गयी, दूसरी टोली के विद्यार्थियों की रोज कड़ी आलोचना की गयी और तीसरी टोली के विद्यार्थियों को नजरअंदाज करके रखा गया।

पांच दिन के बाद नतीजा निकला। पहली टोली के विद्यार्थियों ने आश्चर्यजनक उन्नति की; दूसरी टोली के विद्यार्थियों ने भी किसी हद तक उन्नति की; लेकिन तीसरी टोली के विद्यार्थियों ने, जिन्हें नजरअंदाज कर दिया गया था, बिलकुल उन्नति नहीं की।

इससे प्रकट हुआ कि सबसे होशियार विद्यार्थियों ने प्रशंसा और आलोचना दोनों से फायदा उठाया था, लेकिन औसत किस्म के विद्यार्थियों पर जहां प्रशंसा का अच्छा प्रभाव पड़ा था, आलोचना का बुरा प्रभाव पड़ा। स्कूलों में अधिकांश विद्यार्थी औसत किस्म के होते हैं, जिन्हें आलोचना के बजाय प्रशंसा की अधिक आवश्यकता होती है।

बहुत से लोग अपनी योग्यताओं और सामर्थ्य से अनजान होते हैं। अपनी प्रशंसा सुनकर वे अपने आपको नयी रोशनी में देखने लगते हैं और अपने अंदर छिपी हुई योग्यताओं को देखकर हैरान रह जाते हैं।

माडल के रूप में सारे संसार में प्रसिद्धि पाने वाली जीन शिम्प्टन एक साधारण-सी देहाती लड़की थी, जो शार्टहैंड सीखने के लिए संघर्ष कर रही थी। उसे कभी अपने सुंदर होने का भान नहीं हुआ था। एक बार एक फोटोग्राफर ने उसे देखा, तो सुझाव दिया कि उसे माडल बनने के लिए कोशिश करनी चाहिये, क्योंकि उसके चेहरे में अपनी ही किस्म की सुंदरता है। उस दिन जीन ने घर जाकर बड़े ध्यान से अपने चेहरे को आइने में देखा, तो उसमें सचमुच सुंदरता दिखाई दी। वह शार्टहैंड छोड़कर माडल बन गयी।

प्रशंसा करने में आदमी को कुछ खर्च नहीं करना पड़ता—बस, कुछ सोचना और थोड़ा-सा प्रयत्न-भर करना पड़ता है। लेकिन उसका फायदा बहुत ज्यादा होता है। "प्रशंसा के दो शब्द सुनकर मैं दो महीने तक खुश रह सकता हूं," मार्क ट्वेन ने कहा है।

सो दूसरों की प्रशंसा करके लोगों के दिलों में खुशी और प्रेरणा भरिये, अपने चारों ओर खुशी फैलाइये। तब आपको भी अपने दिल में खुशी और प्रेरणा का अनुभव होगा और आप आनंद-भरी जिंदगी जियेंगे।

★
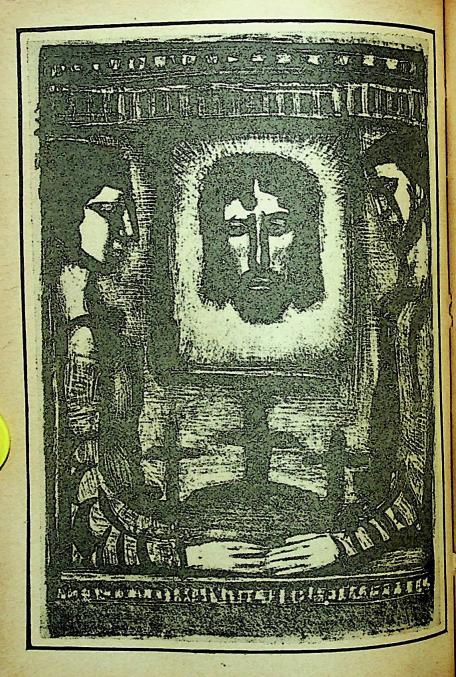
बाबा सर्जियस

पुराण-काव्य की आंतरिक गरिमा से मंडित लघु-उपन्यास

लेव तालसताय

पीटर्सवर्ग में १८४० वाले दशक में एक आश्चर्यजनक घटना घटी। शाही प्राणरक्षक दल का एक अफसर, जो कि एक रूपवान जागीरदार था और जिसके वारे में सभी का कहना था कि वह सम्राट् निकलस प्रथम का ए० डी० सी० वनेगा और वहुत आगे बढ़ेगा, अचानक नौकरी छोड़ बैठा; उसने अपनी खूबसूरत मंगेतर से, जो कि सम्राज्ञी की अत्यंत प्रिय पार्श्ववर्तिनी थी, सगाई तोड़ दी और अपनी छोटी-मोटी जागीर अपनी बहन के नाम करके साधु बनने के लिए एक मठ में भरती हो गया।

जो लोग प्रिंस स्टेपान कासात्स्की के अंतरंग को नहीं जानते थे, उन्हें यह घटना बड़ी असाधारण और रहस्यमय लगी थी; मगर स्वयं प्रिंस कासात्स्की की दृष्टि में यह सब इतनी स्वाभाविकता से हुआ था कि वह सोच ही नहीं सकता था कि इसके सिवा कुछ भी करना संभव था।

उसका पिता भी प्राणरक्षक दल का निवृत कर्नल था और उसे बारह साल का छोड़कर चलबसा था। मां ने दिल बहुत दुखने के बावजूद उसे सैनिक महाविद्यालय में भरती करा दिया था; क्योंकि उसके पिता की यही मर्जी थी। फिर वह अपनी बेटी वर्वारा के साथ पीटर्सवर्ग चली आयी थीं, ताकि बेटे के निकट रह सके और छुट्टियों में उसे अपने साथ रख सके।

लड़का प्रखर मेधावी था और अत्यंत आत्माभिमानी। वह पढ़ाई में भी सबसे आगे था—खासकर गणित में, जो कि उसका प्रिय विषय था—और कसरत और घुड़सवारी में भी। हालांकि वह औसत से जरा ज्यादा ऊंचा था, फिर भी सुंदर था और चुस्त; और अगर वह गुस्सैल स्वभाव का न होता, तो सर्वथा आदर्श छात्र-सैनिक माना जाता। वह बड़ा ही खरा था, न लंपट, न शराबी। उसके आचरण में एक ही दोष था, क्रोधीपन। क्रोध का दौरा पड़ने पर वह हिंस्र पशु बन जाता था। एक बार वह अपने सहपाठी को उठाकर खिड़की के बाहर फेंकने को तैयार हो गया था। एक और मौके पर वह बड़े ही संकट में फंस गया। उसने एक अफसर के मुंह पर कटलेट से भरी तश्तरी उठाकर दे

मारी; क्योंकि उस अफसर ने सरासर झूठ बोला था। निश्चय ही उसे पदच्युत करके साधारण सैनिक बना दिया जाता; मगर सैनिक कालेज के निदेशक ने मामला दवा दिया और उस अफसर को वर्खास्त कर दिया।

अठारह वर्ष का होते-होते उसने सैनिक कालेज की पढ़ाई पूरी कर ली और शाही प्राणरक्षक सेना की एक खर्चीली टुकड़ी में लेफ्टिनेंट बन गया। जब वह अभी कालेज में था, तभी वह सम्राट् निकलस प्रथम की नजरों में आ गया था। सेना में भी सम्राट् की नजर उस पर रही; इसीलिए लोग उसके ए० डी० सी० बनाये जाने की भविष्यवाणी करने लगे थे। कासात्स्की की भी यह उत्कट अभिलाषा थी; केवल इसलिए नहीं कि वह महत्त्वाकांक्षी था, बल्कि इसलिए भी कि छात्रावस्था से ही सम्राट् से उसे तीव्र अनुराग था।

सम्राट् प्रायः ही सैनिक कालेज का निरीक्षण करने आता था। और कासात्स्की जब भी उस ऊंची-पूरी, सीधी तनी हुई आकृति को विशाल सैनिक कोट में अपनी छाती ताने और चुस्त कदमों से कालेज में आते देखता, उसके सलीके से कटे हुए गलमुच्छों व मूंछों को और कमानीदार नाक को देखता, उसे मंद-गंभीर आवाज में छात्रों के नमस्कार कर उत्तर देते सुनता, तो वह उसी तरह आनंद-परवश हो जाता था, जैसा कि वाद में उसे अपनी प्रेयसी से मिलते समय अनुभव हुआ। वास्तव में सम्राट् के प्रति उसका उत्कट पूजाभाव इससे भी कहीं तीव्र था। अपनी यह अनन्य भक्ति प्रकट करने के लिए वह अपना कुछ—सब कुछ, अपने प्राण भी—निछावर कर डालना चाहता था। सम्राट् निकलस को इसका ज्ञान था कि वह ऐसी आनंद-परवशता उत्पन्न कर सकता है और वह जान-बूझकर यह आनंद-परवशता जगाता था।

जब कासात्स्की सेना में अफसर बन गया, तो उसकी मां बेटी के साथ पहले मास्को और फिर अपनी गांव की जागीर में लौट गयी। कासात्स्की ने अपनी आधी जायदाद बहन को दे दी और उतनी संपत्ति ही अपने लिए रखी, जितने से उस खर्चीली टुकड़ी में इज्जत से गुजारा किया जा सके।

यों ऊपर से देखने में कासात्स्की एक सामान्य, प्रतिभाशाली नौजवान अफसर था, जो अपना कैरियर बनाने में जुटा हुआ था। लेकिन उसके भीतर बड़ा तीव्र और जटिल प्रयत्न चल रहा था। बचपन से ही वह जो भी चीज हाथ में लेता, उसमें ऐसी सफलता और पूर्णता प्राप्त करने की कोशिश करता था कि देखने वाले मुग्ध और चकित रह जायें। चाहे पढ़ाई हो या फौजी कवायद, वह उसमें पूरे मनोयोग के साथ जुट जाता और ऐसी मेहनत करता कि लोग वाहवाही कर उठते और उसे दूसरों के लिए आदर्श कहते। एक विषय में माहिर होकर वह दूसरा विषय हाथ में ले लेता। उदाहरण के लिए, कालेज में रहते समय ही उसने अनुभव किया कि फ्रेंच में वह अच्छी तरह

मई

संभाषण नहीं कर पाता। बस, वह फ्रेंच में निष्णात होने में जुट गया और शीघ्र ही रूसी जितनी ही बढ़िया फ्रेंच बोलने लगा। इसके बाद उसने शतरंज पर ध्यान दिया और बहुत बढ़िया खिलाड़ी बन गया।

सेना में अफसर बनते ही वह सैनिक कार्यों का परिपूर्ण ज्ञान प्राप्त करने में निरत हो गया और शीघ्र ही आदर्श अफसर बन गया; हालांकि गुस्से में बेकाबू हो जाने का दुर्गुण उसमें अब भी बना रहा और वह गुस्से में ऐसे काम कर बैठता था, जो उसकी सफलता के लिए घातक होते थे। फिर उच्च समाज में बातचीत के दौरान एक बार उसने अनुभव किया कि उसे विविध विषयों का पर्याप्त ज्ञान नहीं है, तो उसने स्वाध्याय आरंभ कर दिया और शीघ्र ही कृतकार्य हो गया। उच्च समाज में बेजोड़ स्थान पाने के लिए उसने बहुत बढ़िया नृत्य करना सीखा और शीघ्र ही उसे सबसे ऊंचे तबकों में, नृत्य आयोजनों में और कुछ संध्यागोष्ठियों में भी निमंत्रित किया जाने लगा।

परंतु शीघ्र ही कासात्स्की ने देख लिया कि वह जिन तबकों में आता-जाता है, वे सर्वोच्च नहीं हैं। वह तो सर्वोच्च समाज के अंतरंग समुदाय में प्रविष्ट होना चाहता था। इसके लिए आवश्यक था कि या तो वह सम्राट् का ए० डी० सी० हो जाये (इसकी उसे उम्मीद थी), या इस अंतरंग समुदाय की किसी महिला से विवाह कर ले, जिसका उसने फैसला कर लिया। उसने दरबार की एक रूपसी को चुन लिया, जो न केवल उस अंतरंग समुदाय की सदस्य थी, बल्कि जिसकी मित्रता के बड़े-से-बड़े लोग भी अभिलाषी थे। यह महिला थी काउंटेस कारोत्कोवा। कासात्स्की उसे रिझाने लगा, और केवल अपने कैरियर के लिए नहीं। काउंटेस अत्यंत आकर्षक थी और शीघ्र ही कासात्स्की को उससे प्रेम हो गया। शुरू में तो वह उसके प्रति ठंडी बनी रही, मगर फिर अचानक ही बदल गयी और कृपालु हो उठी और उसकी मां कासात्स्की को बड़े आग्रहपूर्वक घर आने का निमंत्रण देने लगी। कासात्स्की ने विवाह-प्रस्ताव रखा और प्रस्ताव स्वीकार हो गया। जिस आसानी से यह महान सुख उसे प्राप्त हो गया, उस पर उसे स्वयं आश्चर्य हुआ। हालांकि उसे अपने प्रति मां-बेटी के व्यवहार में कुछ विचित्रता और अस्वाभाविकता नजर तो आयी, मगर गहरे प्रेम ने उसे अंधा कर दिया था और वह उस बात को नहीं समझ पाया, जो कि लगभग सारे शहर को मालूम थी—यही कि उसकी मंगेतर पिछले साल सम्राट् निकलस की प्रेयसी रही थी।

विवाह की तारीख से दो सप्ताह पहले कासात्स्की अपनी मंगेतर की जागीर त्सारस्को सेलो में गया हुआ था। मई का एक गर्म दिन था। वह और उसकी मंगेतर बगीचे में घूमने के बाद लिंडेन वृक्षों की एक छायादार वीथी में बेंच पर बैठे हुए थे। मेरी कारोत्कोवा अपने सफेद मलमल के लिबास में विशेष रूप से फब रही थी और निष्पापता और प्रेम की प्रतिमा-सी जान पड़ती थी। कभी वह सिर
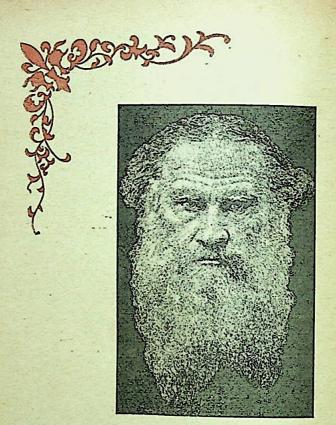
लेव ताल्सताय

नीचे कर लेती और कभी उस कद्दावर रूपवान पुरुष को निहारती, जो बड़ी मृदुता और संयम के साथ उससे बात कर रहा था, मानो उसे डर हो कि कहीं उसके किसी हाव-भाव या शब्द से युवती की देवोपम पवित्रता में वट्टा न लग जाये।

कासात्स्की १८४० वाले दशक के उन पुरुषों में से था, जो अपनी अपवित्रता को तो क्षंतव्य समझते थे, मगर अपनी स्त्रियों से आदर्श और देवोपम पवित्रता की अपेक्षा करते थे और अपने वर्ग की समस्त महिलाओं को ऐसी पवित्रता से संपन्न मानते और उसी के अनुसार उनके साथ व्यवहार करते थे। स्त्रियों के प्रति कासात्स्की का भी यही दृष्टिकोण था और अपनी मंगेतर को वह इसी दृष्टि से देखता था। उस दिन वह विशेष रूप से प्रेम-विभोर था, परंतु मेरी के प्रति कोई इंद्रिय-लालसा अनुभव नहीं कर

मई

रहा था। अपितु कोमल आराधना-भाव से उसे देख रहा था, मानो वह कोई नितांत अलभ्य वस्तु हो।

वह उठा और अपनी तलवार की मूठ पर दोनों हाथ रखकर तनकर खड़ा हो गया।

"अब कहीं मैं यह समझ पाया हूं कि आदमी कितना सारा आनंद हासिल कर सकता है! और प्रिये, यह आनंद तुमने मुझे दिया है।" झिझक-भरी मुस्कान के साथ उसने कहा।

दुलार के शब्द उनके बीच अभी आम चीज नहीं बने थे और कासात्स्की अपने को अपनी मंगेतर से नैतिक दृष्टि से नीचा समझने के कारण उस जैसी देवी के लिए अभी उनका उपयोग करने से बहुत डरता था।

"तुम्हारी ही बदौलत मैं अपने आपको समझने में समर्थ हुई हूं। मैं जान पायी हूं कि मैं अपने को जैसी समझती थी, उससे अधिक अच्छी हूं।"

"यह तो मुझे बहुत पहले से पता था, और इसीलिए तो मैं तुमसे प्रेम करने लगा।"

कासात्स्की ने उसका हाथ लेकर उस पर चुंबन अंकित किया। उसकी आंखों में आंसू उमड़ आये। वह चुपचाप चहलकदमी करने लगा, और फिर आकर उसके पास बैठ गया।

"जानती हो ......मुझे यह बताना ही पड़ेगा......जब मैंने तुमसे निःस्वार्थ भाव से प्रेम करना शुरू नहीं किया था। मैं उच्च समाज में प्रवेश करना चाहता था। मगर बाद में ...... वह चीज तुम्हारी तुलना में बिलकुल गौण बन गयी, जब मैंने तुमको पहचान लिया। इसके लिए तुम मुझसे नाराज तो नहीं हो न?"

वह कुछ बोली नहीं, सिर्फ उसका हाथ सहला दिया। वह जानता था कि इसका अर्थ है—"नहीं, मैं नाराज नहीं हूं।"

"तुमने अभी कहा ......" वह जरा झिझका, यह कहना उसे दुःसाहस-सा लगा—"तुमने अभी कहा कि तुम मुझसे प्रेम करने लगीं। मुझे उसका विश्वास है—मगर कोई बात है, जो तुम्हें सता रही है और तुम्हारी भावनाओं को अवरुद्ध कर देती है। वह क्या बात है?"

"बस अभी अवसर है!" वह सोचने लगी—"आखिर यह बात उसे मालूम तो हो ही जायेगी। मगर अब वह मुझे तज नहीं देगा। आह, अगर वह तज देगा, तो बड़ी भयंकर बात होगी। उसने कासात्स्की की लंबी, शालीन सशक्त काया पर एक प्रेम-भरी नजर डाली। जितना प्रेम जार से उसने किया था, उससे ज्यादा प्रेम वह अब कासात्स्की से कर रही थी।

"सुनो, मैं तुम्हें धोखा नहीं दे सकती। मुझे तुमसे कह ही डालना चाहिये। तुम पूछ रहे हो न कि बात क्या है? बात यह है कि मैं पहले भी प्रेम कर चुकी हूं।"

और उसने बड़ी आजिजी से अपना हाथ उसके हाथ पर रख दिया। वह चुप रहा।

"जानना चाहते हो, वह कौन था? ...... सम्राट्।"

"हम सभी उनसे प्यार करते हैं। मैं कल्पना कर सकता हूं, जब तुम स्कूल की
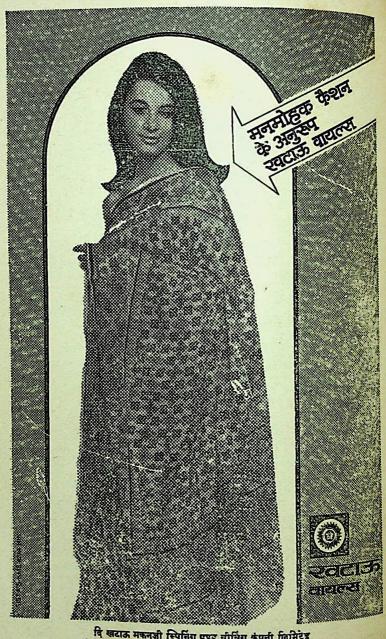
छोकरी थीं और इंस्टिटयूट में ......"

"नहीं, यह वाद की वात है। वह भावुकता का उवाल था, मगर गुजर गया ...... मुझे तुम्हें वता ही देना चाहिये ......"

"ठीक है, तो क्या हो गया ?"

"नहीं वह सिर्फ ......" और उसने हाथों से मुंह ढंक लिया।

"क्या ? तुमने उन्हें अपना समर्पण कर दिया था ?"

वह चुप रहीं।

"उनकी प्रेयसी ?"

उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

कासात्स्की उछला और उसके सामने खड़ा हो गया। उसके जवड़े कांप रहे थे, चेहरा मौत की तरह सफेद था। उसे याद आ रहा था कि किस प्रकार सम्राट् ने 'नेव्स्की' पर मुलाकात होने पर वड़ी प्रसन्नता के साथ उसे वधाई दी थी।

"हे भगवान ! मैं यह क्या कर बैठी ? स्टीवा !"

"मुझे छुओ मत ! छुओ मत। वहुत दर्द होता है।"

वह मुड़ा और मकान के अंदर चला गया। वहां अपनी मंगेतर की मां से उसका सामना हो गया।

"क्या वात हो गयी, प्रिंस ? मैं तो ......" मगर उसका चेहरा देखकर वह चुप्पी साध गयी। जैसे अचानक सारा खून कासात्स्की के सिर में उमड़ पड़ा था।

"आपको सब कुछ मालूम था और उन्हें वचाने के लिए आपने मेरा उपयोग किया। अगर आप औरत न होतीं ...... !" वह चिल्लाया और उसने अपना विशाल घूंसा हवा में ताना और मुड़कर वहां से दौड़ता हुआ निकल गया।

अगर उसकी मंगेतर का प्रेमी कोई आम आदमी होता, तो वह अवश्य उसका खात्मा कर डालता; मगर वह तो उसका प्रिय सम्राट् था।

अगले दिन उसने लंवी छुट्टी और सेवा से मुक्ति के लिए अर्जी भेज दी और वीमारी का वहाना करके, ताकि किसी को देखना न पड़े, अपने गांव चला गया।

गर्मियां उसने अपनी जमीन-जायदाद ठौर-ठिकाने लगाने में विता दी। जब गर्मियां गुजर गयीं, तो वह पीटर्सवर्ग नहीं लौटा, वल्कि एक मठ में भरती हो गया और वहां साधु बन गया।

कासात्स्की की मां ने पत्र लिखकर ऐसा करने से उसे रोकना चाहा। मगर बेटे का उत्तर था कि मैंने भगवान की पुकार सुन ली है और वह अन्य सब दलीलों से ऊंची है। केवल उसकी बहन, जो कि उसी की तरह अभिमानी और महत्त्वाकांक्षी थी, उसे समझ सकी।

वहन ने समझा कि उसका भाई इसलिए साधु हो गया है कि उससे अपने को श्रेष्ठ समझने वाले लोगों से भी वह ऊंचा हो जाये, और बहन ने ठीक ही समझा था। मगर कासात्स्की एक मात्र इसी भावना से प्रेरित नहीं था। और भी एक चीज इसके पीछे थी—सच्ची धार्मिक भावना, जिसका बहन

वर्वारा को विलकुल पता नहीं था। यह चीज कासात्स्की के अभिमान और अग्रणी वनने की अभिलाषा से गुंथी हुई थी, और उसका मार्गदर्शन कर रही थी।

: २ :

कासात्स्की माता मरियम की आराधना के उत्सव के दिन मठ में दाखिल हुआ था। मठाधीश जन्म से सामंत कुल का था, विद्वान लेखक और 'स्तेरेत्स' था, अर्थात् वह साधुओं के ऐसे संप्रदाय का सदस्य था, जो अपना एक मार्गदर्शक और गुरु चुनकर जीवन-भर उसके आदेश का पूर्णतया पालन करते हैं।

इस मठाधीश को कासात्स्की ने अपना मार्गदर्शक माना और अपने आपको उसके सुपुर्द कर दिया। मठ में वह अपने को वाहर वालों से श्रेष्ठ तो अनुभव कर ही रहा था; साथ ही जैसे सेना में वह केवल निष्कलंक अफसर ही नहीं था, वल्कि उसने अपने को एक आदर्श अफसर वना लिया था, उसी तरह साधु के रूप में भी उसने अपने को परिपूर्ण वनाने का प्रयत्न किया। वह सतत परिश्रमी, परहेजगार, वश्य और विनम्र था, और मन एवं कर्म दोनों में पवित्र तथा आज्ञाकारी था। विशेषत: इस अंतिम गुण के कारण उसका जीवन सुगम हो गया। मठ राजधानी के पास था और वहां वहुत लोग आते थे। अपने जिम्मे आने वाले वहुत-से काम कासात्स्की को पसंद नहीं थे और वह उन्हें सांसारिक प्रलोभन मानता था। मगर आज्ञापालकता ने उसका डंक निकाल दिया था। वह सोचता—"वहस करना मेरा काम नहीं। मुझे तो अपने जिम्मे सौंपा हुआ काम करना है—चाहे पवित्र अवशेषों के पास खड़े रहना यह काम हो, या भजन-मंडली में गाना, या मठ की धर्मशाला का हिसाव-किताव रखना।"

स्तेरेत्स के प्रति आज्ञापालकता ने सव प्रकार के संशयों की संभावना की जड़ें काट दी थीं। नहीं तो गिरजे की प्रार्थना की दीर्घता और एकरूपता, मठ में सदा लगी रहने वाली भीड़ और दूसरे साधुओं के दुर्गुण उसे परेशान कर डालते। वह सोचता—"मैं नहीं जानता कि एक ही प्रार्थना दिन में कई-कई वार सुनना आवश्यक क्यों है; मगर मैं जानता हूं कि यह सर्वथा आवश्यक है। और चूंकि मैं यह जानता हूं, इसलिए मुझे उसमें आनंद आता है।"

उसके मार्गदर्शक ने उसे वताया था कि जैसे शारीरिक जीवन जारी रखने के लिए भोजन आवश्यक है, उसी तरह आत्मा को जीवित रखने के लिए आत्मिक भोजन—गिरजे की प्रार्थना—आवश्यक है। उसकी इसमें पूरी श्रद्धा थी। इसलिए हालांकि व्राह्म-मुहूर्त की प्रार्थना के लिए उठने में उसे कष्ट होता था, तो भी प्रार्थना उसे शांति और आनंद देती थी।

अपनी इच्छा का अधिकाधिक दमन ही नहीं, वल्कि धार्मिक गुणों का अधिकाधिक उपार्जन भी अव उसके जीवन का ध्येय वन गया था। आरंभ में यह कार्य उसे वड़ा आसान लगा। अपनी सारी जायदाद उसने अपनी

बहन को दी थी और इसका उसे अफसोस नहीं था। अपने से निचले लोगों के प्रति विनम्रता उसे आसान ही नहीं, आनंददायक लगती थी। काया के पापों, लालच और कामवासना पर भी उसने आसानी से विजय पा ली थी। उसके मार्गदर्शक ने उसे कामवासना से खास तौर पर आगाह किया था; मगर कासात्स्की अपने को उससे मुक्त अनुभव कर रहा था, और इसीलिए प्रसन्न था।

केवल एक चीज उसे सताती थी—अपनी मंगेतर की याद। केवल याद ही, नहीं वल्कि क्या होना संभव था, इसका विशद मानसिक चित्र। सहज हो उसे एक महिला की याद हो आती थी। उसे मालूम था कि यह महिला सम्राट् की कृपापात्र रही थी, मगर वाद में उसने विवाह किया था और आदर्श पत्नी एवं माता वन गयी। पति के पास ऊंचा ओहदा था, प्रभाव और प्रतिष्ठा थी, साध्वी और पश्चात्ताप-भरी पत्नी थी।

अच्छी घड़ियों में कासात्स्की को ऐसे खयाल विचलित नहीं करते थे, और यदि याद आती भी थी, तो यह सोचकर खुशी ही होती थी कि चलो प्रलोभन टल गया। परंतु ऐसे भी क्षण आते थे, जव वर्तमान जीवन की सव चीजें अचानक ही धूमिल हो उठतीं। तव अपने अंगीकार किये हुए जीवन-ध्येयों में उसकी आस्था डिगती भले न हो, पर वे ध्येय धूमिल पड़ जाते थे, उसमें विश्वास का संचार नहीं कर पाते थे, बल्कि एक याद, अपने जीवन की दिशा बदल डालने का अफसोस उसे दवोच लेता था।

उस मन:स्थिति में एक चीज ही उसे त्राण देती थी—आज्ञापालकता और कामकाज, और दिनभर की प्रार्थना-व्यस्तता। वह प्रार्थना की रस्में अदा करता, घुटनों के वल झुकता, और दिनों से ज्यादा देर तक प्रार्थना करता। मगर यह निरी शाब्दिक प्रार्थना होती, उसका हृदय उसमें न रमता। यह स्थिति दिन-भर रहती, या कभी दो-दो दिन, फिर अपने आप गुजर जाती। मगर भयंकर होते थे वे दिन। कासात्स्की तव अनुभव करता था कि वह न अपने ही हाथों में है, न भगवान के; वल्कि किसी और चीज के कावू में है। ऐसे समय वह वस स्तेरेत्स की आज्ञा मानता, अपने पर संयम रखता, कोई काम हाथ में न लेता और प्रतीक्षा किया करता। कुल मिलाकर इस सारे समय वह अपनी इच्छा के नहीं, अपितु स्तेरेत्स की इच्छा के अनुसार जी रहा था, और इस आज्ञापालकता से उसे विशेष शांति मिलती थी।

इस तरह उसने प्रथम मठ में सात वर्ष गुजार दिये। तीसरे साल के अंत में उसका मुंडन करके उसे पादरी की दीक्षा दी गयी और 'सर्जियस' उसका नाम रखा गया। यह उसके आंतरिक जीवन की बड़ी महत्त्वपूर्ण घटना थी। पहले उसे गिरजे में परमप्रसाद ग्रहण करते हुए बड़ा समाधान और आत्मिक संतोष मिला करता था। अब स्वयं उसका संचालन करते हुए उसका हृदय भावपरवशता और आनंदातिरेक से भर उठता था। परंतु आगे चलकर यह भावना कुंद पड़ती चली गयी और अंत में केवल

सभी प्रमुख शहरों और कस्बों में वितरकों की आवश्यकता है।

अभ्यास शेष रह गया।

कुल मिलाकर मठ-जीवन के सातवें वर्ष में सर्जियस को ऊब अनुभव होने लगी। सीखने योग्य सब कुछ उसने सीख लिया था; हासिल करने योग्य सब कुछ हासिल कर लिया था; अब करने के लिए कुछ भी शेष नहीं था, और उसकी आध्यात्मिक तंद्रा बढ़ने लगी। इसी दौरान में उसने अपनी माता की मृत्यु और बहन के विवाह का समाचार सुना; मगर दोनों ही घटनाएं उसके लिए बेमानी थीं। उसका सारा ध्यान और सारी दिलचस्पी अपने आंतरिक जीवन पर केंद्रित थी।

पादरी बनने के बाद चौथे साल स्तेरेत्स ने उससे कहा कि यदि तुम्हें इससे ऊंचे कर्तव्य सौंपे जायें, तो इन्कार मत करना। तब मठ-महंती की महत्त्वाकांक्षा, जिसे उसने दूसरे साधुओं में सदा ही घृणास्पद अवगुण माना था, उसके हृदय में जाग उठी। उसे राजधानी के निकट एक मठ में नियुक्त किया गया; यह सर्जियस के जीवन की एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। यहां उसे अनेक प्रलोभनों का सामना करना पड़ा और उनसे संघर्ष करने में अपनी सारी इच्छा-शक्ति केंद्रित कर देनी पड़ी।

पहले मठ में स्त्रियों का प्रलोभन नहीं था; परंतु यहां वह प्रलोभन बड़ा उग्र रूप धारण करने लगा। एक महिला, जिसके चंचल स्वभाव को वह जानता था; उसकी कृपाकांक्षिणी बन गयी। सर्जियस ने सख्ती से इन्कार कर दिया; मगर उसे अपने भीतर स्पष्ट रूप से कामना दिखाई देने लगी और वह संत्रस्त हो उठा। घबराकर उसने अपने स्तेरेत्स को लिखा, साथ ही आत्म-रक्षा के लिए उसने एक युवा नवशिष्य से बात की। अपनी लज्जा को कुचलकर उसने अपनी कमजोरी उसे बता दी और उससे कहा कि मुझ पर नजर रखो और पूजा तथा अन्य कर्तव्यों की पूर्ति के लिए छोड़कर और कहीं मत जाने दो।

सर्जियस के लिए दूसरी खाई यह थी कि उसे अपने नये मठाधीश से तीव्र द्वेष था। यह मठाधीश धूर्त और दुनियावी किस्म का आदमी था, जो गिरजे में अपना कैरियर बना रहा था। सर्जियस उसकी आज्ञा तो मानता था, मगर मन में उसकी निंदा किया करता था। और नये मठ में आने के बाद दूसरे ही साल वह दुर्भावना स्पष्ट फूट पड़ी।

माता मरियम के आराधना-पर्व की जागरण-पूजा चल रही थी। बाहर के लोग आये हुए थे। मठाधीश स्वयं पूजा करा रहा था। सर्जियस अपने स्थान पर खड़ा था और उसके मन में तीव्र संघर्ष चल रहा था। संघर्ष का कारण था संभ्रांत समाज का, विशेषतः स्त्रियों का वहां उपस्थित होना। तभी मठाधीश ने उसे बुलवा भेजा। सर्जियस ने अपना लबादा ठीक किया, सिर पर टोपी पहनी और सावधानी से राह बनाता हुआ आगे बढ़ा।

उसने एक स्त्री-कंठ को फ्रांसीसी में कहते सुना—"लिजे, वही है वह।"

"कहां-कहां ?...... वह तो कोई खास

सुंदर नहीं है।"

वह जानता था, वे उसी के बारे में बातें कर रही हैं। उसने ओंठों में कहा–"हमें प्रलोभन में न डालो प्रभु!"

भीतर पहुंचकर उसने झुककर देव मूर्तियों को प्रणाम किया और सिर ऊंचा किये बिना ही कनखियों से मठाधीश को देखा, जिसके साथ एक और लकदक चमकता हुआ आदमी खड़ा था। स्थूलकाय मठाधीश अपने गोल-मटोल पेट पर हाथ टिकाये और अपने लबादे की डोरियों पर उंगलियां फिराता हुआ खड़ा था और मुस्करा-मुस्कराकर सेना के उस आदमी से कुछ कह रहा था। फादर सर्जियस की अनुभवी आंखें उसके चिन्हों और वेश से ही समझ गयीं कि वह आदमी शाही अंगरक्षक सेना का जनरल है। जनरल उस रेजिमेंट का कमांडर रहा था, जिसमें सर्जियस काम कर चुका था। स्पष्ट ही अब वह बहुत बड़े पद पर था।

मठाधीश इस बात को जानता था और उसका लाल मुंह व गंजा सिर संतोष और आनंद से चमक रहे थे। इससे सर्जियस को बड़ी नफरत हुई और जब उसे पता चला कि मठाधीश ने उसे सिर्फ जनरल के कुतूहल की तृप्ति के लिए बुलवा भेजा है, उसकी नफरत और बढ़ गयी।

"आपको फरिश्ताई लिबास में देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई।" जनरल ने अपना हाथ आगे बढ़ाते हुए कहा–"आशा है, आप अपने पुराने सहकर्मी को भूले तो नहीं होंगे।"

सब कुछ–मठाधीश का मुस्कराता हुआ सुर्ख चेहरा और सफेद बाल, जनरल के शब्द, उसका शृंगार किया हुआ चेहरा, आत्मतृप्त मुस्कान, उसकी सांस से निकलती शराब की गंध और गलमुच्छों से निकलती सिगार की बू, सब कुछ–फादर सर्जियस को बहुत घृणास्पद लगा।

उसने फिर से मठाधीश को नमस्कार किया और कहा–"श्रीमन्, क्या आपने मुझे बुलवाने की कृपा की थी?" वह रुका, उसके चेहरे और आंखों का भाव पूछ रहा था – क्यों?

"हां, जनरल से मिलने के लिए।" मठाधीश बोला।

सर्जियस का चेहरा फक् पड़ गया। कांपते ओंठों से उसने कहा–"श्रीमन्, प्रलोभनों से अपने को बचाने के लिए मैंने दुनिया छोड़ी थी। फिर आप क्यों प्रार्थना के समय, वह भी भगवान के घर में प्रलोभन के आगे धकेल रहे हैं?"

"अच्छा जाओ! जाओ।" मठाधीश गुस्से के आवेश में, भौंहें तानता हुआ बोला।

अगले दिन सर्जियस ने अपने अभिमान के लिए मठाधीश और साथी साधुओं से क्षमा तो मांगी; परंतु रात-भर की प्रार्थना के बाद उसने निर्णय कर लिया कि अब उसे वहां से चले जाना चाहिये। उसने अपने स्तेरेत्स को लिखा और वापस उनकी सेवा में आने की अनुमति मांगी। उसने लिखा कि आपकी सहायता के बिना प्रलोभन से संघर्ष करने में मैं अपने को असमर्थ पा रहा हूं। अपने अभिमान का पाप भी कबूल किया।

लौटती डाक से स्तेरेत्स का पत्र आया। उन्होंने लिखा था —"तुम्हारा अहंकार ही सब चीजों की जड़ है। गिरजे के ओहदे लेने से भी तुम अपने अहंकार की खातिर ही इन्कार करते रहे हो, भगवान की खातिर नहीं। और तुम सोचते हो—देखो कितना श्रेष्ठ हूं मैं, मेरी कोई कामना ही नहीं। इसी-लिए तुम्हें मठाधीश का यह व्यवहार सहन नहीं हुआ।

"तुमने सोचा—'मैं तो भगवान के वास्ते सभी कुछ त्याग चुका हूं, फिर भी जंगली पशु की तरह मेरा प्रदर्शन किया जा रहा है!' अगर तुमने भगवान के वास्ते अपने अहंकार का त्याग किया होता, तो तुम यह भी सह लेते। तुम्हारा दुनियावी घमंड अभी मरा नहीं है।"

स्तेरेत्स ने तांबोव के मठाधीश के नाम एक पत्र सर्जियस को दिया था और लिखा था कि तांबोव आश्रम के संतोपम एकांत साधक हिलेरी की अभी मृत्यु हुई है। उनकी जगह एक आदमी की आवश्यकता है। स्तेरेत्स ने सर्जियस को वहां जाने का आदेश देते हुए लिखा था — "तुम हिलेरी का स्थान तो नहीं ले सकोगे, परंतु तुम्हारे घमंड के इलाज के लिए एकांतवास बहुत जरूरी है।"

सर्जियस ने स्तेरेत्स के आदेश का पालन किया और मठाधीश की अनुमति लेकर तांबोव पहुंचा। वहां के मठाधीश ने हिलेरी की गुफा सर्जियस के सुपुर्द कर दी और सेवा के लिए एक अदीक्षित साधक भी नियुक्त कर दिया। परंतु बाद में सर्जियस की प्रार्थना पर उसे बिलकुल अकेला छोड़ दिया गया।

गुफा दोहरी थी और पहाड़ को खोदकर बनायी गयी थी। हिलेरी को उसी में दफ-नाया गया था। पिछले भाग में हिलेरी की कब्र थी, जबकि अग्रभाग में सोने के लिए एक आला था, जिसमें फूस का बिस्तर था, एक छोटी-सी मेज थी, एक शेल्फ था, जिसमें मसीह की मूर्ति और पुस्तकें थीं। बाहरी दरवाजे के बाहर एक और शेल्फ था, जिस पर प्रतिदिन मठ का एक साधु खाना रख जाया करता था।

इस तरह सर्जियस एकांत-साधक बन गया।

:३:

सर्जियस के आश्रमवास का छठा साल चल रहा था। मेले के दिन थे। पास के कस्बे के चंद धनी विनोदार्थियों की एक टोली पेट भर मिठाई और शराब का सेवन करके त्रायका गाड़ियों में बैठकर सैर करने निक-ली। टोली में दो वकील, एक धनी जमीं-दार, एक अफसर और चार औरतें थीं। औरतों में एक तो अफसर की पत्नी थी, दूसरी जमींदार की बीवी थी, तीसरी जमीं-दार की बहन थी—एक कमसिन लड़की; और चौथी थी एक तलाकशुदा औरत—खूब-सूरत, धनी और खब्ती, जिसने अपने दुःसा-हसी प्रणय-प्रसंगों से तमाम शहर को विस्मित कर रखा था।

मौसम बढ़िया था, बर्फ से पटी सड़क फर्श की तरह चिकनी थी। वे लोग शहर से

गई

सात मील दूर निकल आये थे। रुककर वे आपस में विचार करने लगे कि आगे बढ़ा जाये या वापस लौट चलें।

"मगर यह सड़क जाती कहां है?" तलाकशुदा सुंदरी माकोव्किना ने पूछा।

"तांबोव को, जो यहा से आठ मील दूर है।" दो में से एक वकील बोला, जिसकी आजकल उससे प्रणय-लीला चल रही थी।

"और वहां से?"

"वहां से जाती है ल ......, मठ के पास से होती हुई।"

"जहां कि फादर सर्जियस रहते हैं।"

"हां!"

"वही कासात्स्की, खूबसूरत साधक?"

"हां!"

"सज्जनो और देवियो! चलिये, चलकर कासात्स्की को देखा जाये! हम तांबोव में रुक सकते हैं और वहीं कुछ खा-पी भी लेंगे।"

"तब तो हम रात को घर नहीं लौट सकेंगे।"

"तो क्या हो गया! हम कासात्स्की को देखेंगे।"

"मठ में अच्छी धर्मशाला है। मैं माखिन का केस लड़ते समय वहां ठहरा था।"

"नहीं, मैं तो कासात्स्की के यहां रात बिताऊंगी।"

"असंभव! तुम-जैसी सर्वशक्तिमती भी इसमें सफल नहीं होगी।"

"असंभव? लगाओगे बाजी?"

"ठीक। अगर तुमने यह रात वहां बिता दी, तो जो कुछ मांगो वही बाजी।"

"मुंहमांगा?"

"हां, लेकिन अगर हार गयी, तो तुम्हें भी मेरा मुंहमांगा देना पड़ेगा।"

"बेशक। चलो, आगे बढ़ो।"

गाड़ी वालों को वोदका दी गयी और टोली ने अपने लिए केक, शराब और मिठाई के डब्बे निकाले। औरतें सफेद खाल के लबादों में लिपटकर बैठ गयीं। गाड़ीवान कुछ देर बहस करते रहे कि किसकी स्लेज-गाड़ी आगे चले। सबसे युवा गाड़ीवान ने तिरछे बैठकर अपनी चाबुक फटकारी और घोड़ों को हांक लगायी। घंटियां बज उठीं और स्लेज-गाड़ियां चर्रमर्र करने लगी बर्फ पर।

स्लेज-गाड़ियां बिना हिले-डुले फिसलती जा रही थीं। घोड़े सरपट दौड़े जा रहे थे। चिकनी सड़क मानो तेजी से पीछे खिसकती जा रही थी। दो में से एक वकील और अफसर माकोव्किना की पड़ोस में बैठी महिला से बेमानी बातें कर रहे थे। मगर माकोव्किना अपने लबादे में लिपटी बिना हिले-डुले बैठी थी विचारमग्न।......हमेशा वही बेहूदगी। शराब और सिगार से गंधाते लाल चमकते वही चेहरे, वही बातें, वही विचार, वही विषय ...... और सभी प्रसन्न हैं, आश्वस्त हैं। और मरने तक इसी तरह जिये चले जायेंगे। मगर मुझसे नहीं होता। मुझे तो ऊब आती है ......" इवान निकोलयेविच!"

"हुक्म सरकार!"

"उसकी उम्र क्या होगी ?"

"किसकी ?"

"कासात्स्की की।"

"चालीस के पार, मेरा खयाल है।"

"क्या वह अतिथियों से मिलता है।"

"हां, जो भी आ जाये। मगर हमेशा नहीं।"

"मेरे पैर जरा ढंक दो। अरे ऐसे नहीं, कितने अनघड़ हो तुम! नहीं, और ज्यादा– हां वैसे, मगर मेरी पिंडलियां दवाने की जरूरत नहीं।"

इस तरह वे उस जंगल में पहुंच गये, जहां गुफा थी।

माकोव्किना स्लेज से उतर गयी और उसने वाकी लोगों को आगे जाने को कहा। उन्होंने उसे समझाने की कोशिश की। मगर वह चिढ़ गयी और उन्हें आगे जाने का आदेश देने लगी।

जव स्लेज गाड़ियां आगे वढ़ गयीं, तो वह सफेद खाल का कोट पहने पगडंडी पर चल पड़ी। वकील भी उतरा और उसे देखने के लिए ठहर गया।

यह फादर सर्जियस के एकांतवास का छठा साल था और अब वह उनचास साल का था। उसका एकांतवास काफी कष्ट-साध्य रहा था–उपवास और प्रार्थना के कारण नहीं (इनसे उसे कष्ट नहीं होता था), वल्कि आंतरिक संघर्ष के कारण, जिसकी उसने कभी आशंका नहीं की थी। संघर्ष के दो कारण थे – संदेह और कामवासना। और ये दोनों वैरी हमेशा साथ ही आते थे। उसे ऐसा लगता था कि वे दो शत्रु हैं; मगर वे एक ओर अभिन्न थे। ज्योंही संदेह चला जाता, वासना भी चली जाती। किंतु वह उन्हें दो भूत समझकर उनसे अलग-अलग लड़ता रहा।

"हे प्रभु ! मेरे प्रभु !" वह सोच रहा था –"मुझे श्रद्धा क्यों नहीं प्रदान करते हो? कामवासना से संतों को भी लड़ना पड़ा था–संत एंटनी और दूसरों को। किंतु उनके पास श्रद्धा थी, जब कि मेरे सामने ऐसे क्षण, घंटे और पूरे-के-पूरे दिन आते हैं, जब मैं श्रद्धा से विलकुल रीता होता हूं। इस समूचे संसार और उसके तमाम आनंदों का अस्तित्व ही क्यों है, यदि ये सव पापमय और त्याज्य हैं? तुमने यह सव प्रलोभन सिरजा ही क्यों ? प्रलोभन ? क्या यह भी प्रलोभन ही नहीं है कि मैं पृथ्वी के समस्त आनंदों को त्यजना चाहता हूं और अपने लिए वहां कुछ तैयार करना चाहता हूं, जहां शायद कुछ भी नहीं है।"

और वह कांप गया और अपने प्रति जुगुप्सा से भर उठा। "कुत्सित जीव। तू वनने चला है संत।" उसने अपनी भर्त्सना की और प्रार्थना करने लगा। मगर प्रार्थना आरंभ करते ही उसे मठ का अपना स्वरूप याद आ गया–टोपी और लवादे में अपना भव्य स्वरूप याद आ गया। उसने सिर हिलाया। नहीं-नहीं, धोखा है। मैं भव्य नहीं हूं, बल्कि दयनीय, उपहासास्पद हूं। उसने अपनी कफनी की तह हटायी और अधोवस्त्रों में अपनी पतली

भई

और लंबी टांगें देखीं।

फिर उसने कफनी नीची कर दी और प्रार्थना दोहराने लगा। वार-वार अपने सीने पर वह सलीब का चिन्ह बनाता और फिर प्रणाम करता। "क्या यह सेज मेरी अरथी होगी ?" उसने पढ़ा। और उसे ऐसा महसूस हुआ, जैसे शैतान उसके कानों में फुसफुसा रहा हो –"एकाकी सेज स्वयं ही तो अरथी है। झूठ !" और कल्पना में उसे एक विधवा के कंधे दिखाई दिये, जिसके यहां वह रह चुका था। उसने अपने आपको झकझोरा और पढ़ता रहा। 'आदेश' पढ़कर उसने 'सुवार्ता' हाथ में ली और पन्ने खोले। एक ऐसा प्रसंग खुला, जो उसे कंठस्थ था–"प्रभु! मैं श्रद्धालु हूं। मेरी अश्रद्धा दूर करो।" और उसके सारे संदेह दूर हो गये।

अब उसे शांति अनुभव हो रही थी, वह अपनी वचपन की प्रार्थना दोहरा रहा था – "प्रभु, मुझे आश्रय दो।" उसे न केवल राहत मससूस हुई, बल्कि आह्लाद और आनंद अनुभव हुआ। उसने सलीब का निशान बनाया। अपनी संकरी बेंच पर विस्तर पर लेट गया। गर्मियों में पहनने की कफनी उसने सिरहाने रख ली। तुरंत नींद आ गयी और हल्की नींद में उसे स्लेज की घंटियां-सी सुनायी दीं। वह जान नहीं पा रहा था कि वह स्वप्नावस्था में है या जागृति में। लेकिन दरवाजे पर दस्तक हुई और वह जाग गया। अपने कानों पर अविश्वास न करता हुआ वह उठ वैठा। मगर दस्तक दुबारा हुई। हां, दस्तक पास ही दी गयी थी, उसी के दरवाजे पर और उसके साथ सुनाई दी औरत की आवाज।

"हे प्रभु ! क्या यह सच है ? मैंने संत-चरितावली में पढ़ा है कि शैतान औरत का रूप धरकर आता है। हां, औरत की ही आवाज है। मृदु, संकोची और सुखद आवाज। थू !" और उसने शैतान को भगाने के लिए थूका। "नहीं, यह सिर्फ मेरी कल्पना थी।" उसने अपने आपको समाधान और संतोष दिलाया।

वह उठा और गुफा के उस कोने में गया, जहां प्रार्थना-चौकी (लेक्टर्न) थी, और वह प्रार्थना के लिए घुटनों के बल झुका। ऐसा करने से भी उसे काफी समाधान और संतोष मिला करता था। वह और झुका। उसके लंबे वाल मुंह पर लटक आये और उसने अपना सिर, जो अब आगे से गंजा होने लगा था, फर्श पर बिछे ठंडे गीले टाट के टुकड़े पर टिका दिया। उसने एक प्रार्थना-गीत गुनगुनाना शुरू किया। फादर पिमोन ने उसे वताया था कि इस प्रार्थना से प्रलोभन दूर भाग जाते हैं।

फिर वह उठकर खड़ा हो गया और प्रार्थना जारी रखने की कोशिश करता रहा; मगर अपने आप ही उसके कान कुछ सुनने की कोशिश करने लगे। सर्वत्र शांति थी। छत के कोने से पानी की बूंदें लगातार टपक रही थीं, नीचे रखे टब में। बाहर धुंध और कोहरा जमीन पर बिछी बर्फ को चूम रहे थे। स्तब्धता छायी थी, गहरी निःस्तब्धता। और अचानक खिड़की पर कपड़ों की सर-

उत्तम स्वाद
तो एक बात है

और शक्तिदायक पौष्टिकता है दूसरी महत्त्व की बात

यह पौष्टिकता पाने का कितना मज़ेदार तरीका है।
पारले ग्लुको बिस्कुटों में दूध, गेहूँ और शक्कर के प्रोटीन और विटामिन से भरपूर पौष्टिक तत्वों का समावेश है।

इसी लिए

भारत के सबसे ज़्यादा बिकनेवाले बिस्कुट
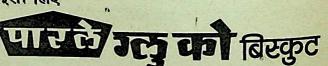
ख्वास तौर से बच्चों के लिए गुणकारी है

everest/900b/PP hn

सराहट हुई और एक आवाज—वही मृदु सहमी हुई आवाज, जो कि किसी स्त्री की ही हो सकती थी—बोली :

"मसीह के वास्ते, मुझे अंदर आने दीजिये।"

सर्जियस को ऐसा लगा, जैसे कि सारा रक्त उसके सीने में आकर जमा हो गया हो। सांस लेने में भी उसे दिक्कत हो रही थी।

"भगवान आयें और सभी शत्रुओं को छितरा दें।"

"मगर मैं तो शैतान नहीं हूं।" स्पष्ट ही यह बात मुस्कान-भरे होंठों से निकल रही थी—"मैं शैतान नहीं हूं। मैं तो महज एक पापिन हूं, जो राह भटक गयी है—आलंकारिक अर्थ में नहीं, शब्दशः!" वह हंस पड़ी—"मैं मारे ठंड के जमी जा रही हूं और आपसे आश्रय मांगती हूं।"

सर्जियस ने खिड़की से अपना मुंह सटा दिया; मगर देवमूर्ति के सामने रखा दीपक शीशे में प्रतिबिंबित हो रहा था। उसने मुंह के दोनों ओर हथेलियां टिकाकर उनके बीच से झांककर देखा। धुंध, कोहरा, एक दरख्त और—ऐन उसके सामने—साक्षात् वह औरत। हां, उससे चंद इंचों की दूरी पर ही था, वह मधुर, मृदुल, भयभीत चेहरा उस औरत का, जो टोपी और सफेद समूर का कोट पहने हुई थी, और उसी की ओर झुकी हुई थी। उनकी आंखें चार हुईं और एक दूसरे को पहचान गयीं।

वे पहले से एक दूसरे से परिचित रहे हों, ऐसी बात नहीं थी। वे कभी नहीं मिले थे। मगर दृष्टि के प्रथम आदान-प्रदान में ही उन्होंने—विशेषतः सर्जियस ने—अनुभव किया कि वे एक दूसरे को जानते और समझते हैं। उस नजर के बाद यह मानना असंभव था कि वह एक सीधी-सादी, सहृदय, मधुर और भीरु औरत नहीं, शैतान है।

"कौन हो? क्यों आयी हो यहां?" उसने पूछा।

"कृपा करके दरवाजा खोल दीजिये," वह बोली। उसकी आवाज में आज्ञा-सी थी। "मैं ठंड से जम गयी हूं। मैंने कहा न, मैं राह भटक गयी हूं।"

"मगर मैं तो साधु हूं—एकांतवासी।"

"ओह! दरवाजा खोलिये। या क्या आप यह चाहते हैं कि आप तो प्रार्थना करते रहें और मैं आपकी खिड़की के नीचे ठंड से अकड़ जाऊं?"

"लेकिन तुम कैसे ......"

"मैं कोई आपको खा नहीं डालूंगी। भगवान के वास्ते मुझे अंदर आने दीजिए। मैं बिलकुल जम गयी हूं।"

वह सचमुच डर गयी थी और यह बात उसने रुंधे गले से कही थी।

सर्जियस खिड़की पर से पीछे हटा। उसने कांटों का ताज पहने ईसा मसीह की मूर्ति पर नजर डाली। "मेरी सहायता करो प्रभु! मेरी सहायता करो प्रभु!" वह बोल उठा और उसने अपने ऊपर सलीब का चिन्ह बनाया और प्रणाम किया। फिर वह दरवाजे पर गया, और उसे खोलकर छोटी-सी ड्योढ़ी में पहुंचा और टटोलकर बाहर के

किवाड़ का कुंडा पकड़ा और उसे खोलने लगा। वाहर से उसे कदमों की आहट सुनाई दी। अब वह खिड़की पर से हटकर दरवाजे पर आ रही थी। "आह !" वह अचानक चिल्ला पड़ी। वह समझ गया कि उसका पांव दहलीज के पास के उस गढ़े में पड़ गया है, जिसमें छत से चूने वाला पानी जमा हो गया है। उसका हाथ कांपा। जोर से वंद किवाड़ के कुंडे को उसका हाथ नहीं खोल सका।

"अरे, आप कर क्या रहे हैं ! मुझे अंदर आने दीजिये। मैं बिलकुल भीग गयी हूं। मैं जम गयी हूं। आपको तो अपनी आत्मा के बचाव की पड़ी है,और इधर मैं ठंड में अकड़-कर मर रही हूं।"

सर्जियस ने झटके के साथ दरवाजे को अपनी ओर खींचा, कुंडा खोला और बिना सोचे-समझे किवाड़ को ऐसी जोर-से धकेला कि वह उससे जा टकराया।

"ओह, क्षमा करना !" बरबस उसके मुंह से निकल पड़ा। महिलाओं के साथ के शिष्टाचार की उसकी पूर्वाश्रम की आदत मानो अपने आप लौट आयी।

"क्षमा" शब्द सुनकर वह मुस्करायी। "एकदम भयंकर तो नहीं है यह !" उसने सोचा और सर्जियस के पास से होकर अंदर आती हुई बोली – "नहीं, कोई बात नहीं। बल्कि क्षमा तो मुझे आप से मांगनी चाहिये। मैं यह दुःसाहस हर्गिज न करती, मगर एक असाधारण परिस्थिति ......"

"अगर आपको हर्ज न हो।" सर्जियस हटकर खड़ा हो गया, ताकि वह भीतर आ सके। इत्र की तेज गंध, जिससे मुद्दत से उसका पाला नहीं पड़ा था, उसके नथुनों से टकरायी। ड्योढ़ी से वह उस गुफा में आ गयी, जहां वह रहता था। सर्जियस ने बाहर का दरवाजा बंद किया, मगर कुंडा नहीं चढ़ाया और उसके पीछे गुफा में आया।

"प्रभु ईसा मसीह। परमात्मा के पुत्र! मुझ पापी पर दया करो ! प्रभु, मुझ पापी पर दया करो !" वह निरंतर प्रार्थना कर रहा था, केवल मन में नहीं, उसके ओंठ भी हिल रहे थे। "अगर आपको हर्ज न हो," उसने दोहराया। वह कमरे के बीचों-बीच खड़ी थी। पानी उसके शरीर से चूकर फर्श पर गिर रहा था और उसने सर्जियस पर नजर डाली। उसकी आंखें हंस रही थीं।

"क्षमा कीजिये, मैंने आपके एकांत में खलल डाला। आप देख ही रहे हैं कि मैं किस हालत में हूं। सारी गड़बड़ यों शुरू हुई कि हम लोग स्लेज-गाड़ियों पर सवार होकर सैर करने के लिए शहर से निकले थे और मैंने शर्त लगायी थी कि मैं वोरोब्व्का से पैदल ही शहर तक चली आऊंगी। मगर मैं राह भटक गयी और अगर आपकी गुफा के पास न आ निकलती, तो ......"

वह झूठ बोलने लगी थी; मगर सर्जियस के चेहरे को देखकर ऐसी अचकचा गयी कि उससे आगे नहीं बोलते बना और वह चुप हो गयी। उसने बिलकुल नहीं सोचा था कि वह ऐसा होगा।

वह उतना सुंदर तो नहीं था, जितना उसने कल्पना की थी; तो भी उसकी नजरें गई

में सुंदर ही था। उसके सफेद होते हुए घुंघराले बाल और दाढ़ी, सीधी-सुडौल नाक, उसकी आंखें, जो उस पर नजर डालते समय अंगारे की तरह दमक उठती थीं– इन सबने उस पर गहरा असर डाला।

सर्जियस समझ गया कि वह झूठ बोल रही है।

"हां ...... तो" वह उसे देखते हुए बोला, फिर उसने नजरें नीची कर लीं–"मैं उस ओर चला जाता हूं। यह कमरा तुम्हारे लिए है।"

दीपक को नीचे उतारकर उसने एक मोमबत्ती सुलगायी और झुककर उसे नमस्कार करके पार्टिशन के दूसरी ओर छोटी कोठरी में चला गया और वहां उसके कोई चीज सरकाने की आवाज सुनाई दी। "शायद मुझसे बचने के लिए नाकाबंदी की जा रही है।" वह मुस्कराते हुए सोचने लगी और खाल का लबादा उतार फेंका, फिर टोपी उतारने की कोशिश करने लगी, जो बालों में उलझ गयी थी।

बाहर खिड़की के नीचे खड़े-खड़े वह भीगी बिलकुल भी नहीं थी, फिर भी उसने ऐसा कहा था, ताकि उसी बहाने सर्जियस उसे अंदर आने दे। मगर दरवाजे के पास गढ़े में सचमुच उसका पैर पड़ गया था। उसका बायां पैर टखने तक गीला हो गया था और जूते में पानी भर गया था।

वह सर्जियस के बिस्तर पर बैठ गयी– बिस्तर क्या था एक बेंच थी, जिस पर दरी का एक टुकड़ा बिछा हुआ था–और जूते उतारने लगी। छोटी-सी वह गुफा उसे बहुत सुंदर लग रही थी। सात फुट चौड़ा और नौ फुट लंबा वह छोटा-सा कमरा कांच की तरह चमक रहा था। उसमें एक बेंच जिस पर वह बैठी थी, और एक बुकशेल्फ और कोने में रखी प्रार्थना-चौकी, इनके सिवा कुछ भी नहीं था। भेड़ की खाल का एक कोट और एक कफनी किवाड़ पर कील से लटक रही थीं। प्रार्थना-चौकी के ऊपर छोटा-सा दीपक था और एक मूर्ति थी कांटों का ताज पहने ईसा मसीह की।

कमरे में पसीने व मिट्टी की विचित्र गंध भरी थी। सभी चीजें उसे भली लगीं–वह गंध भी। उसके गीले पैर उसे कष्ट दे रहे थे और वह चटपट जूते व जुर्राबें उतारने लगी मगर मुस्कराते-मुस्कराते। अपना लक्ष्य सिद्ध हो जाने की बात से वह उतनी प्रसन्न नहीं थी, जितनी कि इस एहसास से कि उसने एक मोहक, सुंदर और विलक्षण व्यक्ति को झेंपा दिया है। "उसने कोई प्रतिक्रिया नहीं दिखायी, मगर इससे क्या?" वह अपने आपसे बोली।

"फादर सर्जियस! फादर सर्जियस! या आपको किस नाम से संबोधित किया जाता है?"

"क्या चाहती हो?" एक शांत आवाज ने उत्तर दिया।

"कृपा करके मुझे क्षमा कर दीजिये। मैंने आपके एकांत में खलल डाला। मगर सच कहती हूं, और कोई चारा नहीं था। मैं जरूर बीमार पड़ जाती। अब भी कुछ कहा

कुछ सुहानी, यादोंभरी घड़ियाँ!
खेलकूदों की रोमांचक बाजियाँ और होड़। जोश और उमंगभरी क्रीड़ाएँ। इन विरले क्षणों की याद के लिए इनका एक फोटो अपने एल्बम में सँजोकर रखिए। कैसे? अपने कैमरे में ऑरवो फ़िल्म डाल कर। ऑरवो पर ली गयी ब्लैक ऐण्ड वाइट फोटो बिल्कुल साफ़-सुथरी आती हैं। ऑरवो फ़िल्म्स को कितनी ही तरह से 'एक्सपोज' करना सम्भव है। यह है नेगेटिव फ़िल्म्स का एक और लाभ: फोटो इतना बढ़िया आता है कि लोग देखकर दाँतों तले उँगली दबाने लगें।
अपने फोटो डीलर से मिलकर ऑरवो फ़िल्म्स की जानकारी प्राप्त कीजिए
ऑरवो—१३० देशों में रजिस्टर्ड और संरक्षित है।
ऑरवो फ़िल्म्स—जर्मन डेमोक्रेटिक रिपब्लिक के फोटो केमिकल्स उद्योग के उत्कृष्ट उत्पादन हैं।
DELIGHT IN PICTURES
ORWO
वितरक:
ऑरवो प्राइवेट लिमिटेड, बम्बई और दिल्ली
ऑरवो फ़िल्मस ईस्टर्न यूनिट, मद्रास और कलकत्ता
उत्पादक:
वेब फ़िल्मफ़ैब्रिक वूल्फ़ेन,
दि जर्मन डेमोक्रेटिक रिपब्लिक
ORWO film
JAISONS 13289

नहीं जा सकता, शायद बीमार पड़ ही जाऊं। मैं सरासर भीग गयी हूं और मेरे पैर तो बर्फ-जैसे हो गये हैं।"

"क्षमा करना!" उस शांत आवाज ने उत्तर दिया–" मैं तुम्हारी कोई मदद नहीं कर सकूंगा।"

"अगर लाचारी न होती, तो मैं आपको यह कष्ट न देती। मैं यहां केवल पौ फटने तक रहूंगी।"

सर्जियस ने कोई उत्तर नहीं दिया और उसने सुना, वह कुछ बुदबुदा रहा है, शायद प्रार्थना।

"आप अंदर तो नहीं आयेंगे न?" वह मुस्कराते हुए पूछ रही थी– "क्योंकि मैं कपड़े उतार रही हूं, शरीर को पोंछने-सुखाने के लिए।"

सर्जियस ने कोई उत्तर नहीं दिया, और प्रार्थना जारी रखी।

"हां, यह होता है मर्द!" वह सोच रही थी और बड़ी कठिनाई से उसने गीला बूट उतारा। उसे काफी खींचातानी करनी पड़ी। जब उसे इस बात के बेतुकेपन का खयाल आया, तो वह सुनाई दे जाये, इतनी जोर से हंसने लगी। फिर यह सोचकर कि सर्जियस उसकी हंसी सुनेगा और जैसा वह चाहती है, ठीक उसी रूप में विचलित होगा, वह और जोर से हंसी और उसकी आनंद-भरी, स्वाभाविक और सहृदय हंसी ने सर्जियस पर वही प्रभाव डाला, जो कि वह चाहती थी।

"हां, मैं ऐसे आदमी से प्यार कर सकती हूं – वे आंखें, वह सरल और उदात्त मुखड़ा, जो तमाम प्रार्थनाएं बड़बड़ाने के बाद भी उतना उद्दाम है।" वह सोच रही थी –"इन बातों में औरतों को धोखा नहीं दिया जा सकता। ज्यों ही उसने खिड़की से मुंह सटाया और मुझे देखा, त्यों ही समझ गया था। इस बात की चमक उसकी आंखों में थी। वह मुझसे प्यार करने लगा, मेरी कामना करने लगा! हां– कामना।"

जूते उतारकर वह अब जुर्राबें उतारने को तैयार हुई। इलास्टिक से बंधी उन लंबी जुर्राबों को हटाने के लिए लहंगा ऊपर करना आवश्यक था। वह झिझकी और बोली:

"अंदर मत आइयेगा।"

मगर दीवार की दूसरी ओर से कोई जवाब नहीं आया। बुदबुदाने की आवाज लगातार आती रही और हिलने-डुलने की आवाज भी।

"जरूर वह जमीन पर दंडवत् कर रहा है," वह सोच रही थी –"मगर इस तरह छुटकारा नहीं पा जायेगा। इस समय वह मेरे ही बारे में सोच रहा है, ठीक उसी तरह जैसे मैं उसके बारे में सोच रही हूं। वह मेरी इन टांगों के बारे में सोच रहा है, ठीक उन्हीं भावनाओं के साथ, जैसे कि मैं सोच रही हूं।" उसने गीली जुर्राबें खींचकर उतार दीं और टांगें ऊपर कर लीं। वह कुछ समय उसी तरह घुटनों के गिर्द बांहें लपेटे बैठी रही और अपने सामने ताकती रही। "मगर यह तो जैसे रेगिस्तान है ...... स्तब्धता में किसी को कुछ भी पता नहीं चलेगा।"

आओ– एक सौदा करें।
मैं तुम्हें अपने सारे खिलौने देती हूं,
तुम मुझे दे दो—
गोला
टॉफियां और मिठाइयां
Gola
दी हिन्दुस्थान शुगर मिल्स लि. गोलागोकर्णनाथ, जि. खेरी, उ. प्र.

वह उठी। अपनी जुर्राबें अंगीठी के पास ले गयी और उसके चौखटे पर उन्हें सूखने के लिए डाल दिया। फिर हल्के कदम रखती हुई बेंच पर लौट आयी और बैठ गयी पैर ऊपर करके।

दीवार के दूसरी ओर एकदम सन्नाटा था। उसने अपनी गर्दन से लटकी हुई छोटी-सी घड़ी पर नजर डाली। दो बज गये थे। "हमारी टोली को तीन बजे यहां लौटना है।" उसके पास एक घंटे से ज्यादा वक्त नहीं था। "क्या इसी तरह अकेली बैठी रहूंगी? कैसी वाहियात बात है! मैं नहीं चाहती। मैं अभी उसे बुलाऊंगी।

"फादर सर्जियस! फादर सर्जियस! सर्जी दिमित्रिच! प्रिंस कासातस्की!"

दीवार के उस पार एकदम सन्नाटा था।

"सुनिये। यह सरासर क्रूरता है। अगर जरूरी न होता, तो मैं आपको आवाज न देती। मैं बीमार हूं। मैं नहीं जानती, मुझे क्या हो रहा है!" उसने दर्द-भरे स्वर में कहा। "ओह! ओह!" वह कराह उठी और बेंच पर लेट गयी।

सुनने में बात विचित्र लगती है, लेकिन उसे सचमुच लगा कि उसकी सारी शक्ति निचुड़ती जा रही है, उसे बेहोशी आने वाली है, उसका अंग-अंग दुख रहा है और वह बुखार से कांप रही है।

"सुनिये! मेरी मदद कीजिये! न मालूम मुझे क्या हो गया है! ओह! ओह!" उसने अपनी पोशाक ढीली कर दी और उसके सीने बाहर झांकने लगे। कोहनी तक नंगी बांहें ऊपर करके उसने तेज कराह भरी—"ऊह! ऊह!"

इस सारे वक्त सर्जियस दीवार के उस ओर खड़ा प्रार्थना करता रहा। रात की सारी प्रार्थनाएं समाप्त करके अब वह निस्तब्ध खड़ा था। उसकी नजरें अपनी नाक की नोक पर टिकी हुई थीं और वह संपूर्ण हृदय से जप कर रहा था—"प्रभु ईसा मसीह! परमात्मा के पुत्र, मुझ पर दया करो!"

परंतु उसने सब कुछ सुना था। उसने सुना था कि जब उसने अपनी पोशाक उतारी तो रेशम में किस प्रकार सरसराहट हुई थी, कैसे वह नंगे पांव फर्श पर चली थी, और कैसे उसने हथेली से पांव के तलुओं को रगड़ा था। वह अपनी कमजोरी को महसूस कर रहा था और यह भी कि किसी भी क्षण वह तबाह हो जा सकता है। इसीलिए वह निरंतर प्रार्थना कर रहा था।

उसे परीकथा के उस नायक-जैसी अनुभूति हो रही थी, जिसे आगे-ही-आगे बढ़ते जाना था, बिना पीछे मुड़कर देखे। सो सर्जियस ने सुना और अनुभव किया कि विपदा और सर्वनाश वहां उपस्थित हैं, वे उसके सिर पर और इर्द-गिर्द मंडरा रहे हैं और अगर वह एक क्षण के लिए भी उस ओर न देखे, तभी उसका बचाव संभव है। परंतु अचानक ही उस ओर देखने की चाह उस पर हावी हो गयी। और ठीक उसी क्षण वह बोल उठी:

"यह सरासर अमानुषिक है। शायद मैं

मर ही जाऊं ।"

"ठीक है, मैं उसके पास जाऊंगा, लेकिन उस संत की तरह, जिसने एक हाथ व्यभिचारिणी पर रखा और दूसरा हाथ सुलगती अंगीठी में घुसा दिया। मगर यहां सुलगती अंगीठी तो है नहीं।" उसने चारों ओर नजर डाली। दीपक! उसने उंगली लौ पर रख दी और भौंहें तान लीं दर्द सहने की तैयारी में। काफी समय तक—उसे लगा कि काफी लंबे समय तक—कोई संवेदना नहीं हुई। फिर अचानक—अभी उसने फैसला नहीं किया था कि दर्द काफी तेज था या नहीं—वह तड़प उठा, झटके से उसने हाथ खींच लिया और उसे हवा में घुमाया—"नहीं, यह मुझसे न सहा जायेगा।"

"भगवान के वास्ते यहां आइये। मैं मर रही हूं ऊह।"

"क्या मैं तबाह हो जाऊं। नहीं, ऐसे नहीं।"

"बस अभी आया!" वह बोला और अपनी कोठरी का दरवाजा खोलकर उस पर नजर डाले बिना बाहर डचोढ़ी में चला आया, जहां वह लकड़ी काटा करता था। वहां उसने कुंदा टटोला और फरसे को भी, जो दीवार के सहारे टिका रखा हुआ था।

"फौरन!" और फरसा दायें हाथ में लेकर उसने अपने बायें हाथ की तर्जनी लकड़ी के कुंदे पर रखी, फरसा घुमाया और दूसरे पोर के नीचे वार किया। उंगली उसी मोटाई की लकड़ी से भी हल्की होकर उछली और कुंदे पर ठप्पा खाकर सरकती हुई नीचे फर्श पर गिर पड़ी।

दर्द अनुभव होने से पहले ही उसे उंगली गिरने की आवाज सुनायी दी; मगर उस पर आश्चर्य करे, इससे पहले ही उसने सुलगती-सी टीस और झरझर बहते रक्त की गर्मी महसूस की। जल्दी से उसने टूंडी उंगली को कफनी की किनारी में लपेट लिया और उसे नितंब पर रखकर दबाता हुआ वापस कमरे में गया और औरत के सामने खड़े होकर नजर नीची करके धीमी आवाज में उसने पूछा—"क्या चाहिये तुम्हें?"

उसने सर्जियस का निस्तेज चेहरा और फड़कता बायां गाल देखा, और सहसा वह शरमा गयी। उछलकर वह खड़ी हुई और अपना समूर का लबादा झपटकर उठाया और अपने कंधों पर डालकर उससे अपने को अच्छी तरह ढांप लिया।

"मुझे दर्द हो रहा था ...... मुझे सर्दी लग गयी है ...... मैं...... फादर सर्जियस ...... मैं ......"

सर्जियस ने आनंद की प्रशांत दीप्ति से चमकती हुई अपनी आंखें उस पर टिकी रहने दीं और कहा:

"प्यारी बहन! क्यों अपनी अमर आत्मा को बरबाद किया चाहती हो? प्रलोभन दुनिया में आयेगा ही; मगर अभागा है वह, जिसके जरिये प्रलोभन दुनिया में आता है। प्रार्थना करो बहन कि भगवान हम दोनों को माफ कर दे।"

वह सुनती रही और उसे देखती रही। अचानक ही उसे किसी चीज के बूंद-बूंद

गई

टपकने की आवाज आयी। उसने नीचे नजर डाली और देखा कि सर्जियस के हाथ से खून निकल रहा है और कफनी पर से वहकर नीचे टपक रहा है।

"क्या कर दिया आपने अपने हाथ को ?" और उसे वह आवाज याद आयी, जो उसने सुनी थी,और दीपक हाथ में लेकर वह दौड़ती हुई डचोढ़ी में गयी। वहां फर्श पर उसे रक्त से लथपथ उंगली दिखाई दी। जब वह लौटी, तो उसका चेहरा सर्जियस के चेहरे से भी ज्यादा पीला था। वह कुछ कहने को ही थी कि सर्जियस पीछे की कोठरी में चला गया और दरवाजा बंद करके कुंडा चढ़ा लिया।

"मुझे माफ कर दीजिये," वह बोली—"इस पाप का प्रायश्चित्त कैसे होगा ?"

"चली जाओ ?"

"मुझे आपकी उंगली पर पट्टी तो वांधने दीजिये !"

"यहां से चली जाओ !"

जल्दी-जल्दी और चुपचाप उसने कपड़े पहने और तैयार होकर बैठ गयी। वाहर स्लेज-गाड़ी की घंटियां सुनाई दीं।

"फादर सर्जियस ! मुझे माफ कर दीजिये !"

"चली जाओ ! भगवान माफ करेगा!"

"फादर सर्जियस ! मैं अपना जीवन सुधार लूंगी। मुझे असहाय मत छोड़िये !"

"चली जाओ।"

"मुझे माफ कीजिये—और अपना आशी-

र्वाद दीजिये।"

"परमपिता के नाम पर और उनके पुत्र के और पवित्र आत्मा के नाम पर !"—दीवार के पीछे से उसे आवाज आती सुनाई दी—"जाओ !"

उसकी रुलाई फूट पड़ी और वह गुफा से वाहर निकल गयी। वकील उससे मिलने के लिए आगे आया।

"अच्छा, तो लो भाई, हम बाजी हार गये। और अव चारा ही क्या है ! तुम कहां वैठोगी ?"

"कहीं भी बैठूं, एक ही बात है।"

वह स्लेज-गाड़ी में जा वैठी और सारी राह एक शब्द भी नहीं बोली।

* * *

साल-भर बाद वह दीक्षार्थिनी के रूप में एक मठ में भरती हो गयी और तपस्वी आर्सेनी के निर्देशन में कठोर तपोमय जीवन बिताने लगी। [क्रमशः]

फोटो-सौजन्य : फिल्म्स डिविजन, बंबई

विमुक्ति-व्रत

स्वातंत्र्य-वीर मोहन रानडे

भारत १९४७ में स्वतंत्र हो गया; परंतु भारत के कुछ भाग गोवा, दमन और दीव पुर्तगालियों की दासता में पिसते रहे। भारतमाता के मुखड़े पर के इन कष्टकारी व्रणों को मिटाने के लिए जूझने वाले वीरों में मोहन रानडे का नाम अग्रपंक्ति में है।

पुर्तगाल के क्रूर कारागारों में अपनी जवानी के सर्वोत्तम साढ़े तेरह वर्ष बिताकर गत वर्ष स्वदेश लौटने के बाद मोहन रानडे ने मराठी में अपनी आत्मकथा 'सतीचं वाण' लिखी है, जो भारत के स्वातंत्र्य-संग्राम के इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण परिच्छेद है।

सिंधु पब्लिकेशन्स, प्रा० लि० बंबई, द्वारा 'अधूरा संघर्ष' नाम से हिन्दी में प्रकाशित होने वाली इस पुस्तक का एक अध्याय प्रकाशक के सौजन्य से यहां प्रस्तुत है।

अनुवादक : वसंत देव

हम लोग मई के अंत से पोम्बुर्पा के जंगल में रहने लगे थे। पोम्बुर्पा का यह केंद्र सभी दृष्टियों से उपयुक्त सिद्ध हुआ—भोजन पहुंचाने वाले ग्रामस्थ मित्र, आस-पास के क्षेत्र की अचूक और नियमित रूप से खबरें पहुंचाने वाले जानकार और उत्तम गाइड, सभी का सहयोग पाना सरल था। बेती पोम्बुर्पा से कोई पांच-छः किलोमीटर के फासले पर है। उन दिनों म्हापसा से पणजी के बीच तमाम आमदरफ्त बेती होकर जारी रहती थी; आज तो वहां चौबीसों घंटे भीड़ बनी रहती है।

बेती राजधानी पणजी का प्रवेश-द्वार ही था। बेती की पुलिस चौकी काफी बड़ी थी। वहां पांच सिपाही, एक हेड कांस्टेबल, पांच-छः राइफलें, स्टेनगन, पिस्तौलें और काफी परिमाण में कारतूस थे। हमारी बड़ी इच्छा थी कि मांडवी नदी के तीर पर स्थित पणजी के दरवाजे को खटखटायें और शत्रु को ललकारें कि देख तेरे द्वार पर आ धमके हैं!

इरादा यह था कि पुलिस चौकी पर कब्जा करके वहां रखे शस्त्रों पर अधिकार कर लें और शिरगांव से प्राप्त बारूद की सहायता से पुलिस चौकी उड़ा दें। पुर्तगालियों को शायद विश्वास था कि बेती की पुलिस चौकी पर कभी हमला हो ही नहीं सकता; इसीलिए उसके इर्द-गिर्द कांटेदार तार की बाड़ नहीं बनायी थी। हमारा खयाल था कि अगर बेती की पुलिस चौकी उड़ा देने में हम लोग सफल हो जाते हैं, तो शिरगांव वाले हमले का यश दुगना हो जायेगा और

गोवा सरकार आतंकित हो जायेगी।

इससे स्वतंत्रता संग्राम के सैनिकों और स्वतंत्रता के प्रति अपार सहानुभूति रखने वालों का उत्साह बढ़ता; और मेरी तो यह धारणा थी कि अगले वर्ष की सही दिशा दिखाई पड़ेगी, संघर्ष में तेजी आ जायेगी। बेती को मांडवी नदी पणजी से अलग करती है। प्रकृति द्वारा निर्मित इस सीमा-रेखा से गवर्नर महल आज भी दिखाई पड़ता है। वास्तव में हम लोग गवर्नर के महल को ध्यान में रखकर ही बेती पर हमला करके चुनौती देना चाहते थे। इसमें संदेह नहीं कि यह आयोजन शेर की मांद में घुसकर शेर से कुश्ती लड़ने के समान था।

बेती की पुलिस चौकी पर छापा मार-कर गायब हो जाना भी आसान था; क्यों-कि बेती की बस्ती से सटकर ही तो पोम्बुर्पा का जंगल शुरू होता है और एक माह पहले यह सिद्ध हो चुका था कि आरंभ में विरल और आगे काफी घने हो गये इस जंगल में घुस पाना पुर्तगालियों के बस की बात नहीं है। साबईबेरा की पुर्तगाली सरकार के दलाल किस्तुद का वध कर चुकने के बाद दासू चाफाडकर, शंभू पालकर और माधव कोरडे को गिरफ्तार किया जा चुका था। उसके तुरंत बाद जो जानकारी पुलिस को मिली, उसके आधार पर वह उन लोगों को लेकर पोम्बुर्पा के कार्यकर्ताओं को गिर-फ्तार करने के लिए वहां पहुंची थी।

मोंतैरू ने पोम्बुर्पा में जबर्दस्त दहशत पैदा करने की कोशिश की थी। उसे यह भी पता चल चुका था कि हम लोग पोम्बुर्पा के जंगल में छिपे हुए हैं, फिर भी वह जंगल में घुसने का साहस नहीं कर पाया था। सितंबर में शिकार खेलने के लिए आये कुछ शौकिया शिकारियों की बंदूकें हमारे साथियों ने छीन ली थीं। शिकारियों ने पुलिस के पास इसकी रपट भी लिखायी थी।

इन सब बातों के बावजूद पुलिस को जंगल में घुसकर हमारे केंद्र को तहस-नहस करने का खयाल कभी आया ही नहीं; या हो सकता है कि खयाल आया हो, किंतु उसने कोई ठोस कदम उठाने का विचार न किया हो। शिरगांव की खदानों वाले हमले में हम लोगों ने जो गोला-बारूद गायब कर दिया था, उसकी खोज करने के लिए मोंतैरू की पुलिस अनेक गांवों और पहाड़ी घाटियों को पदाक्रांत कर चुकी थी; लेकिन फिर भी पोम्बुर्पा के जंगल को कोई पांव छू नहीं सके थे।

हम लोगों का अनुमान था कि बेती के हमले के बाद पुर्तगाली सरकार फौज की मदद से हमारे अड्डे को घेर लेगी और उसे ध्वंस करने का प्रयास करेगी। इसी कारण हमने हमले के दूसरे रोज या उसी रात पोम्बुर्पा छोड़कर कुछ ही घंटों में गोवा की सरहद लांघने या किसी अन्य सुरक्षित स्थान पर पहुंचने की योजना भी बना रखी थी। बेती वाले हमले की विशेषता यह थी कि इसमें हमले की अपेक्षा हमले के बाद गायब हो जाना अधिक महत्त्वपूर्ण था। घनी आबादी वाले निशाने पर हमला

करना आसान होता है, लेकिन हमला करके निकल भागना बहुत मुश्किल हो जाता है। इन समस्याओं पर विचार करने के बाद हमने बेती पर धावा बोलने का निर्णय किया।

शत्रु जब गाफिल हो, तभी वार करने के इरादे से हमने शाम के साढ़े छः-सात का समय चुना। इससे पहले दिन के उजाले में आक्रमण करना अपने को जान-बूझकर खतरे में डालना होता; काम होने के बाद निकल पाना भी मुश्किल हो जाता। साढ़े आठ के बाद दुकानें बंद हो जाती थीं और चारों ओर सन्नाटा छा जाता था; अतः अंदेशा था कि उस समय तो रखवाली का काम दुगुनी मुस्तैदी से किया जायेगा। इसी कारण सूर्यास्त की बेला निश्चित की। बेती की पुलिस चौकी का गोवा के स्वातंत्र्य से गठबंधन कराने के लिए वह गोरज-मुहूर्त कुछ बुरा नहीं था।

शिरगांव से बजरे पहुंचकर अक्टूबर के पहले हफ्ते में मैंने सारा आयोजन पूरा कर लिया। १६ या १७ अक्टूबर को मेरे साथ बालकृष्ण भोसले, मनोहर पेडणेकर, सुखा शिरोडकर और हमारा हमेशा का गाइड वाला पर्येकर, बजरे से चलकर सावई के जंगल में जा पहुंचे। वहां की गयी गिरफ्तारियों और सारी स्थिति पर विचार किया। पता चला कि सावई के जंगल में हम लोग जिस खोह में टिका करते थे, उसका मुआयना पुलिस एक दिन पहले ही कर चुकी है।

दूसरे दिन रात को मैं मनोहर पेडणेकर के साथ सावई गांव में श्री पद्माकर सावई-कर के घर पहुंचा और जानकारी हासिल की। मैं जिस मकान में पहुंचता सबसे पहले, उसके पिछवाड़े एकदम अंधेरे में पहुंचता। इस बार जिस मकान के पिछवाड़े मैं खड़ा था, उसके स्वामी तथा उनके बेटे और बेटी को गिरफ्तार किया जा चुका था। सारे मकान पर उदासी और भय की छांह पड़ी हुई थी। सावधानी बरतने के खयाल से हम लोग पिछले हिस्से में कुएं के पास खड़े हो गये और विश्वनाथ सावईकर को पुकारा।

जो स्थिति थी, उसे देखते हुए विश्वनाथजी का धैर्य प्रशंसनीय था। उनसे पता चला कि पिछले दिन पुलिस आयी थी, सारी बस्ती को आतंकित कर लौट गयी थी। सावईकर का एक बेटा सावंतवाडी में पढ़ रहा था। उसे रुपयों की जरूरत थी। उसे देने के लिए विश्वनाथजी ने कुछ रुपये मुझे दिये। उनसे विदा होकर मैं और पेडणेकर खोह में लौट आये। तब तक अन्य सहयोगी भी आस-पास टोह लेकर लौट चुके थे। सुरक्षा के विचार से दो-एक सहयोगियों को पहरा देने का काम सौंपकर हम लोगों ने विश्राम किया।

दूसरे दिन भी हम लोग वहीं रहे और रात को नाव से भोर के समय अमोणा पहुंचे। रात में घूमने के लिए हम जिस नाव का इस्तेमाल करते थे, जाहिर है, वह हमारी अपनी नहीं होती थी। जहां कहीं, जिस किसी की नाव दिख जाती, हम खोल लेते, बिना पूछे इस्तेमाल करते और हममें

से कोई व्यक्ति जाकर उसे कहीं दूर वांध देता और दूसरे रास्ते से होकर हमसे आ मिलता। यह सावधानी इसलिए वरती जाती कि बंधी हुई नाव देखकर भी पुलिस हमारा पीछा न कर सके। उस रात हम पुन: पोम्वुर्पा के जंगल में लौटे। हमले का निर्णय पक्का हो चुका था।

हमें पता चला कि पोम्बुर्पा के एक डाक्टर महोदय के पास वारह वोर की एक बंदूक है। उसे प्राप्त करने के लिए हमने २० अक्टूबर को डाक्टर साहव के घर की तरफ का रुख किया। डाक्टर साहव घर पर नहीं थे, घर में वृद्धा माता थीं। जब हमने काम की बात छेड़ी तो वोलीं–"वंदूक घर में नहीं है। चाहो, तो तलाशी ले सकते हो।" उन पर विश्वास कर हमने कड़ी तलाशी न ली।

दूसरे दिन जो जानकारी मिली, उससे वृद्धा की वात पुष्ट हुई। कई अमीर और शौकीन शिकारियों की वंदूकें हम लोग पहले ही छीन चुके थे; इसलिए डाक्टर साहव ने अपनी बंदूक घर से हटा दी थी। संभव था कि वे हमारे आगमन की सूचना पुलिस को दे देते; परंतु हमें उनकी चिंता नहीं थी। आखिर हम 'अपने राज्य' में थे! फिर भी सावधानी के खयाल से हम उनकी मां से यह कहना नहीं भूले कि पुलिस को खवर देने का नतीजा भुगतना पड़ेगा।

मेरी गिरफ्तारी के वाद जो पुलिस तहकीकात हुई, उसमें यह स्पष्ट हो गया कि डाक्टर महोदय ने हमारा कहना मान लिया था। पुलिस को डाक्टर साहब के यहां हमारे पहुंचने के वारे में कोई जानकारी नहीं थी। हमारे पास पूना से आयी हुई एक स्टेनगन, तीन राइफलें, हरएक व्यक्ति के पास एक-एक पिस्तौल और दो-दो हथगोले थे। शिरगांव के भंडारघर से उड़ाया हुआ कुछ जिलेटिन और पाली के हमले में प्राप्त कुछ डिटोनेटर भी हमारे पास मौजूद था। हम लोग बेती पर आक्रमण करने की पूरी तैयारी कर चुके थे।

अक्टूबर २२ की शाम। वालकृष्ण भोसले के साथ मैं बेती की पुलिस चौकी का मुआयना करने गया। चौकी के भीतर हेड कांस्टेवल खड़ा था; ओसारे में दो-एक लोग मौजूद थे; शेष तीन वाहर सड़क पर खड़े थे। प्रत्येक व्यक्ति पिस्तौल से लस था। बंदूकें चौकी के भीतर थीं। ओसारे में खड़े लोगों को पकड़कर चौकी में घुसना आसान था। मन में विचार आया, क्यों न इसी दम......! परंतु जल्दवाजी ठीक न होगी, यह सोचकर उस रोज हम जंगल में लौट आये।

यह निश्चित था कि चाहे जो हो, सबसे पहले चौकी में घुसना आवश्यक है। इससे भीतर रखे हथियारों पर कब्जा किया जा सकता है और तव बाहर खड़े पिस्तौल-धारियों से कोई खतरा नहीं रह जायेगा। २४ तारीख को मैं दुवारा बेती गया और निरीक्षण कर आया। तय किया कि २५ की शाम को धावा बोलेंगे; लेकिन निर्णय स्थगित करना पड़ा। २६ को दशहरा था, हमने पणजी की सरहद पर विजयादशमी को सीमोल्लंघन करने का निश्चय किया।

हम यह भी तो चाहते थे कि पुर्तगाली सरकार भारत की सीमा लांघकर समुद्र के रास्ते अपने देश लौट जाये। दशहरे का शुभ मुहूर्त हमने एक प्रतीकात्मक आक्रमण की दृष्टि से चुना था। लोग सरस्वती उत्सव की खुशी में बड़े-बड़े पटाखे चलाने वाले थे; हम अपने लहसुनिया पटाखे चलाकर योग-दान करने को उत्सुक थे। पर वास्तविकता कुछ भिन्न थी। हम सीमोल्लंघन का मुहूर्त खोजने की मन:स्थिति में नहीं थे।

२५ की दोपहर को एक कार्यकर्ता को पूरी जानकारी हासिल करने को भेजा और उसने लौटकर बताया कि चौकी पर काफी संख्या में पुलिस मौजूद है। हमने उस रोज कार्यक्रम स्थगित कर दिया। २६ की सुबह मैं जंगल से निकला और म्हापसा में म्हाबलू नाईक के घर पहुंचा। उन्हें २५ मार्च को गिरफ्तार किया जा चुका था; परंतु उनका घर आजादी के सिपा-हियों की सहायता के लिए सतत खुला हुआ था। इसका श्रेय म्हाबलू नाईक की बड़ी बहन को था, जिनके हृदय में लगातार देशभक्ति की ज्योत जागृत थी।

उनका बेटा श्रीकांत भी अपनी माता की भांति साहसी और धैर्यवान था। जब पोम्बुर्पा की बस्ती से खाना लाना असंभव हो जाता, तब म्हापसा से म्हाबलू नाईक की बहन हमारे लिए पोम्बुर्पा के जंगल में खाना भेजने की व्यवस्था करती थी। हम उन्हीं के मकान में छिपे रहते थे और मकान के सामने से गुजरने वाली पुलिस की मोटरों, पुलिस की गतिविधियों की जानकारी पाते रहते थे। कल उन्हीं के यहां से भोजन मिला था और अगले दिन भी वही इंतजाम करने वाली थीं। मनोहर पेडणेकर थोड़ी देर बाद पहुंचा।

मेरे जीवन का सबसे महान दिवस था २६ अक्टूबर। उस रोज 'सायबा' (साहब) की तरह सूट-बूट डाटकर बेती जाने और वहां से टैक्सी लेकर पोम्बुर्पा पहुं-चने की जिम्मेदारी मुझे सौंपी गयी थी। चौकी की स्थिति देखकर टैक्सी कितने बजे ले जानी होगी, यह भी मुझे ही निश्चय करना था। मुझ पर सबका विश्वास था।

'सायबा' की भांति सूट-बूट पहनने पर दाढ़ी भी चिकनी-मुलायम होनी चाहिये, हजामत भी जरा साहबी होनी चाहिये। यह सोचकर मैं म्हापसा के एक सलून में जाकर साहब बन आया। प्रेमपूर्वक भोजन किया। जंगल में रुके हमारे साथियों के लिए मनोहर पेडणेकर भोजन ले गया। उसके पीछे बिना उसे बताये मैंने एक सह-योगी को म्हापसा शहर की सीमा तक भेजा। इन लोगों ने बस्ती से दूर की सड़क पकड़ी।

मैं जानता था कि उसके पास पिस्तौल थी, इसलिए वह पकड़ में नहीं आने वाला था; फिर भी यह हो सकता था कि उसे टोका जाये कि खाना किसके लिए और कहां ले जाया जा रहा है। इन सारी समस्याओं के हल हम लोग बहुत पहले निर्धारित कर चुके थे कि आरंभ में मौन रहा जाये और अत्य-धिक आवश्यक होने पर ही पिस्तौल का

उपयोग किया जाये।

मनोहर के चले जाने के बाद मैं आराम से लेट गया। म्हावलू की बहन 'बाय' ने मुझे ३।।-४ बजे के करीब जगाया, चाय पिलायी और मैंने 'सायबा' की तरह सजना शुरू किया। जीवन में पहली बार सूट-बूट पहन रहा था। वह सूट भी मांगा हुआ था। पतलून शिवलिंग भोसले का था, कोट बालकृष्ण भोसले का, धुली हुई साफ कमीज म्हावलू की, और जूते बाय के बेटे श्रीकांत ने लाकर दिये थे। सिर्फ शरीर मेरा था। हर चीज बाकायदा फिट हो गयी।

मेरा ठाठ देखकर बाय को आश्चर्य हुआ। वह हम स्वातंत्र्य-सैनिकों का मजाक भी उड़ाया करती थी। मुझे बन्नेराजा की तरह सजा हुआ देखकर बाय भीतर गयी और पाउडर का डिब्बा ले आयी। मुझे पकड़ाते हुए उसने एक बढ़िया कोकणी कहावत सुनाई –"वारो येता त्या वटेल सूप धरूंक जाय (हवा का रंग देखो)"। बोली – "सूट पहना है, तो पाउडर भी मल लो।" बेती के आक्रमण के लिए मैं पाउडर मलकर तैयार हुआ। पिस्तौल जांचकर पाकेट के हवाले की और साढ़े पांच बजे के लगभग मैं "बाय, येता"– (बाय, मैं चला।) कहकर बाहर निकला। "यो, बरे करून" (सब काम ठीक करके आना।) मैंने बाय की आवाज सुनी।

उस क्षण सपने में भी विचार नहीं आया था कि "सब काम ठीक करके", आने में साढ़े तेरह वर्ष बीत जायेंगे। बाय को बेती वाले कार्यक्रम के विषय में मालूम था; लेकिन असफलता का विचार उसके मन को कभी छूता ही न था। दुनिया यही सोचकर तो जीती है कि अंत में सब ठीक हो जायेगा। हम भी उसी उम्मीद को लेकर जी रहे थे। बाजार में श्रीकांत मिला। मैंने उससे भी "येता" कहकर विदा ली। "बरे करून यो," वह बोला और मुझे संकेत दिया कि सावधान रहूं।

मैं म्हापसा के मोटर-स्टैंड पर पहुंचा और टैक्सी ली। बेती पहुंचकर पुलिस चौकी के पास से गुजरा, तो पाया कि कल वाला हेड कांस्टेबल नहीं था। कल वाला हेड कांस्टेबल निहायत सीधा-सादा, गरीब किस्म का आदमी था और आज ही वह नहीं था। उसकी जगह पर जो मौजूद था, वह चालाक और उद्दंड दिखाई पड़ रहा था। वह इंडो-पुर्तगाली था, अपने सहकारियों पर चिल्ला रहा था। कुछ देर तक वह चौकी के भीतर खड़ा रहा; अन्य सिपाही चौकी के ओसारे में खड़े थे।

मैं सामने वाली चाय की दुकान में घुसा और निरीक्षण करने लगा। इतने में आवाज सुनाई पड़ी –"कितें? कसो आसा?" (कहो, कैसे हो) और एक व्यक्ति लगा पीठ थपथपाने। मैं चौंका। देखा, तो बेती के एक परिचित सज्जन थे। मैंने सोचा कि अगर ये महाशय ऐसे ही जोर-जोर से बड़बड़ाते रहे, तो आस-पास बैठे लोग हमारी तरफ ध्यान देंगे और यह ठीक न होगा। मैं उनके साथ बाहर आया। वे मुझे रात को

भोजन करने और रुकने का निमंत्रण दे रहे थे। मैंने जरूरी काम का बहाना बनाकर मुश्किल से उनसे पिंड छुड़ाया और टैक्सी पकड़कर पोम्बुर्पा भागा। टैक्सी के चलने तक मैं पुलिस चौकी और उस गुर्राते हेड कांस्टेवल को देखकर उसके बारे में अनुमान लगाता रहा।

शाम के ६ बजे होंगे। आधे घंटे में पोम्बुर्पा पहुंचा। गांव के बाहर वाला पर्येकर सिर पर कंवल रखे सड़क के किनारे खड़ा था। उसने इशारा किया; मैंने टैक्सी रुकवायी। घास में इधर-उधर छिपे अन्य साथी बाहर निकले। "सब ठीक है; चला जाये," मैंने कहा और प्रत्येक व्यक्ति उत्साह से भर उठा। मनोहर ने डबल रोटी निकाली; सबने खड़े-खड़े ही दो-चार कौर खाये।

उस समय सोचा भी न था कि आगे इस तरह सबके साथ खाने का अवसर कभी न मिलेगा। मैं ही क्या, कोई भी खाने का विचार नहीं कर रहा था। न तो मुझे आज याद आती है, न उस रोज ही ध्यान में था कि डबल रोटी रूखी ही खा रहा था, या किसी चीज के साथ। सबके दिमाग में बेती का कार्यक्रम प्रमुख था। मुझ पर कार्यक्रम को सफल बनाने और सहयोगियों की सुरक्षा की जिम्मेदारी थी – यह भार मैं किसी-न-किसी रूप में अनुभव कर रहा था। टैक्सी ड्राइवर ने हम हथियारबंद युवकों को देखा और पलक झपकते ही सारी बात समझ गया। उसे भी खाना खिलाया और सब लोग टैक्सी में आ बैठे।

पहले तय किया था कि ड्राइवर की मुश्कें कस दी जायेंगी और शिवलिंग मोटर चलायेगा। ड्राइवर बोला –" आप फिक्र न करें। आपको जहां जाना होगा, पहुंचा दूंगा। मेरा भरोसा रखिये; मैं आप ही लोगों का आदमी हूं।" हम लोग ड्राइवर को नहीं पहचानते थे, परंतु हमें उसके शब्दों में ईमानदारी जान पड़ी। अंत म वही मोटर चलाता हुआ हमें सात बजे के लगभग बेती में वहां ले आया, जहां से म्हापसा का रास्ता शुरू होता है। हमने टैक्सी खाली कर दी, किराया चुकता किया और उसे म्हापसा की सड़क पकड़ने का आदेश दिया।

आखिर हम लोग बेती की पुलिस चौकी से कोई ७०-७५ फुट के फासले पर खड़े थे। योजना के अनुसार हर काम मशीन की तरह करना था, सफलता दूर नहीं थी और सहज-साध्य थी। हमारा गाइड वाला पर्येकर कंवल ओढ़े अंधेरे में बैठ गया। हमारे पिस्तौलधारी सहयोगियों में से मनोहर पेडणेकर, शिवलिंग भोसले, सुखा शिरोडकर और रघुनाथ शिरोडकर नियत जगह पकड़ने के लिए चौकी की ओर चल दिये।

नली काटकर छोटी बनायी गयी बंदूक लेकर मैं और स्टेनगन लेकर बालकृष्ण भोसले उनके पीछे-पीछे चले। मुझ पर चौराहे पर खड़े होकर सड़क का बंदोबस्त करने की जिम्मेदारी थी। बालकृष्ण को चौकी में घुसना था। हम लोग चौकी से मुश्किल से पंद्रह-बीस फुट के फासले पर रहे होंगे कि न जाने किस अज्ञात प्रेरणा से

मई

बालकृष्ण ने मुझे स्टेनगन पकड़ाते हुए कहा–"तुम चौकी में घुसो; मैं सड़क का इंतजाम करता हूं।"

हम लोग चौकी के पास पहुंच चुके थे, सड़क पर लोगों का आना-जाना जारी था, सहयोगी आगे बढ़ चुके थे। पहले वाले निर्णय की याद दिलाना बेकार था। जरूरत थी फुर्ती से काम करने की। मैं नहीं जानता कि किस क्षण मैंने अपनी बंदूक उसे थमा दी। क्षण-भर को स्टेनगन की तरफ देखा, तब तक मैं १५-२० फुट आगे बढ़ चुका था। मैंने हवा में स्टेनगन चलायी और चिल्लाया–"हात वैर करात चोरानो!" (हाथ उठाओ, बदमाशो!) चौकी के ओसारे में बैठे गप्पें लड़ाते हुए सिपाही चौंके।

मैंने दुबारा स्टेनगन चलायी और पांचों सिपाही नीचे उतर आये। हेड कांस्टेबल (काबू) मेलु चौकी में घुसने की कोशिश करने लगा, तो मैंने उसे ठोकर मारकर रोका और चौकी के बाहर कर दिया। मुझे विश्वास था कि बाहर जो मेरे सहयोगी उपस्थित हैं, उसका बंदोबस्त करेंगे। मैं आगे बढ़ा–वही तो सबसे महत्त्वपूर्ण था। भीतर हथियार रखे थे; उनके नजदीक किसी सिपाही के पहरे पर होने की संभावना थी। अगर पहरेदार होता, तो स्टेनगन की मदद से वह हम सबका सफाया कर सकता था; और कुछ नहीं, तो पांच-दस मिनिट तो प्रतिकार कर ही सकता था; चौकी अपने अधिकार में रख सकता था। दूसरे, किसी भी क्षण पणजी या म्हापसा से फौज या पुलिस की गाड़ी आ सकती थी। यदि मैं हेड कांस्टेबल को ठोकर मारने के बजाय गोली चलाकर ठंडा कर देता, तो बेहतर होता; लेकिन जल्दी-से-जल्दी भीतर पहुंचने की धुन सवार थी, लिहाजा मैंने ध्यान न दिया। भीतर पहुंचा और बायीं ओर वाली कोठरी में घुसा। इतने में पीछे पिस्तौल का धमाका सुनाई पड़ा; फौरन ही मुड़कर देखा।

मेरी ठोकर खाया हुआ हेड कांस्टेबल दरवाजे में खड़ा होकर मुझ पर गोली चला रहा था। इतने में एक गोली और आयी; मैंने भी स्टेनगन चलायी। वह दरवाजे की आड़ में खड़ा था, अतः मुझे फुर्ती से आगे आना पड़ा। मेरे गोली चलाते ही उसके हाथ से पिस्तौल छिटककर दूर जा गिरी। वह झपटा और स्टेनगन छीनने की कोशिश करने लगा। अच्छी-खासी भिड़ंत हुई। उसे धकेलकर मैंने गोली चलायी।

तभी मुझे जाने कैसा लगने लगा, भयानक कमजोरी महसूस होने लगी। ठीक इसी समय मनोहर पेडणेकर रिवाल्वर चलाता हुआ भीतर आया, उसके पीछे आया बालकृष्ण। हेड कांस्टेबल पर गोलियां चलायी गयीं। फिर आया शिवलिंग। चौकी में रखे हथियारों पर कब्जा हो चुका था। हमारा उद्देश्य पूरा हो चुका था।

हथियार लेकर हम बाहर निकले। कुछ ही कदम चला होऊंगा कि हाथ और पेट की तरफ ध्यान गया, लगा कि खून बह रहा है। अब दर्द भी महसूस होने लगा था। चलने में

संग संग रहने की उमंग
कितना प्यारा लगता है
यों मिलजुल कर रहना।
ये प्यार का मिलन
सेन्चुरी के मिले-जुले
रंगों में उभरता है,
खिलता है—सेन्चुरी के
मनमोहक सूती कपड़ों में।
दि
सेन्चुरी

कठिनाई हो रही थी। किसी तरह २०-२५ फुट चलकर सड़क के किनारे खड़ी एक मोटर के पास मैं गिर पड़ा। मुझ पर बेहोशी-सी छा रही थी। मनोहर और शिवलिंग मुझे उठाने की कोशिश कर रहे थे। चौकी में से लायी हुई बंदूकें और अपनी बंदूकें उन लोगों ने अलग रख दी थीं।

मुझे बचाने, मुझे ले जाने के लिए अन्य साथियों को अपने शस्त्रास्त्र वहीं रख देने पड़ते। अगर यही करना था, तो हमला आखिर किसलिए किया था? मैंने सहयोगियों की मदद लेने से इन्कार कर दिया, अपनी स्टेनगन उन्हें थमायी और फौरन चले जाने को कहा। अन्य समानधर्मा व्यक्तियों की भांति मेरे जीवन में भी अपने ध्येय के प्रति निष्ठा की परीक्षा का क्षण आ पहुंचा था। मैंने विनम्रतापूर्वक अपने को कसौटी पर कसने का प्रयास किया—वही मेरा कर्तव्य था।

मुझे अपने सहयोगियों के चले जाने का बिलकुल पता न चला। क्षण-भर को मूर्च्छा टूटी तो अपार वेदना से। मेरे बायें कंधे में कोई कुछ चुभो रहा था—पुलिस आ गयी थी। उसने गाली भी दी थी—"बन्दिदु" (बाण्डिट), जो मुझे स्पष्ट नहीं सुनाई दी; गाली का मतलब भी बाद में समझ में आया। वेदना का अहसास भी क्षण-भर को ही हुआ। दुबारा होश में आया दूसरे दिन सुबह। जबर्दस्त प्यास लगी थी, इसलिए पानी मांगा। उत्तर मिला—"आपरेशन किया गया है, पानी नहीं मिलेगा।" उत्तर नर्स दे रही थी। पता चला कि अस्पताल में हूं, पेट का आपरेशन किया गया है।

मुझे पणजी के रायबंदर रुग्णालय में लाया गया था। मैंने जैसे ही आंखें खोलीं, मेरा नाम पूछा गया। मैंने कहा—"श्यामनारायण सिंह।" हमारा नियम था कि पकड़े जाने पर कम-से-कम शुरू में अपना वास्तविक परिचय नहीं देंगे, पुलिस को उल्लू बनाने की पूरी कोशिश करेंगे, अपने सहयोगियों को भाग जाने का मौका देंगे। मैं उसी नियम का पालन कर रहा था।

नर्स ने नाम लिख लिया। वह कुछ और भी प्रश्न पूछने वाली थी, पर मुझे मूर्च्छा आ गयी। देख तो रहा था कि वह कुछ पूछ रही है, लेकिन सुनाई नहीं पड़ रहा था; समझ पाने का तो सवाल ही नहीं उठता था। इसके बाद जब होश आया, रोशनी हो रही थी। बायां पैर हिलाया तो चुभन हुई। देखा, तो एक बड़ा सिलिंडर था, जिसमें से निकली एक नली रान से चिपकी हुई थी। दायां पांव सरकाने की कोशिश की, तो हिलता नहीं था। बेड़ी की मदद से पलंग से बांध दिया गया था।

नर्स दिखाई नहीं पड़ रही थी, न डाक्टर ही। खाकी वर्दी वाले दो मुस्टंडे पुर्तगाली पुलिस के सिपाही पहरा दे रहे थे। इस बार काफी देर तक होश बना रहा। बायां कंधा बेइंतहा दुख रहा था, जी मिचला रहा था, प्यास से गला सूख रहा था। थोड़ी देर बाद नर्स आयी। बोली—"तीन-चार दिनों तक खा-पी नहीं सकोगे।" और सिलिं-

डर की तरफ इशारा करके कहने लगी — "इसी के जरिये सब चीज मिलेगी। पैर की वेड़ी के वारे में पूछा, तो वतलाया —"वह उनकी चीज है।" और पुलिस की तरफ इशारा किया।

हम लोग अंग्रेजी में वोल रहे थे; क्योंकि मैं कोंकणी नहीं समझता था। आखिर 'श्यामनारायण सिंह' कोंकणी तो वोलने से रहे! मैंने थोड़े समय में नर्स से जो वातचीत की, उससे उसके विषय में अच्छी राय कायम हुई। अगले कुछ दिनों में मेरा यह विचार सत्य सिद्ध हुआ।

नर्स कव कमरे से वाहर चली गयी, मुझे पता न चला। वीच-वीच में वेहोशी का दौर जारी था। दूसरे दिन सुवह आंख खुली, तो देखा कि नर्स नयी है। वह शायद वंबई में रह चुकी थी, टूटी-फूटी हिन्दी वोल लेती थी। पहले वाली नर्स हमेशा गोवा में ही रही थी, उसकी वोलचाल से यही मालूम पड़ता था। यह नयी नर्स मिजाज वाली जान पड़ी।

सुवह नौ वजे की सरगर्मी से महसूस हुआ कि कोई वड़ा आदमी मेरे कमरे में आ रहा है। मेरे पलंग के पास खड़ा पुर्तगाली सिपाही वर्दी की सिकुड़ने साफ करने लगा, टोपी सीधी करने लगा। इतने में दरवाजा खुला, सुवह वाली नर्स भीतर आयी। उसके पीछे आयी एक यूरोपीय महिला, जो किसी के कंधे का सहारा लिये हुई थी और जरा लंगड़ा रही थी। जैसे ही वह मेरे पलंग की ओर वढ़ी, नर्स ने कहना शुरू किया—"सलाम करो, सलाम करो!" उसने जिस ढंग से, जिस स्वर में वे शब्द कहे, उन्हें सुनकर मुझे तो सचमुच हंसी आने को हुई।

महिला मेरे पलंग के पास आकर खड़ी हो गयी। नर्स से मालूम हुआ कि वह गोवा के तत्कालीन गवर्नर जनरल वर्नार्दु गेदेस की पत्नी है। उसने मुझसे पूछा —"कैसी तवीयत है?" मैंने भी जड़ दिया —"ठीक हूं, अभी तक जिंदा हूं, मरा नहीं ......" इसके वाद उसने कोई सवाल नहीं पूछा, न मैंने वोलने को कोशिश की। अंत में "मे गाड व्लेस् यू"! (ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे) कहकर वह विदा हुई। "थैंक-यू!" कहकर मैंने उसकी शुभकामना का उत्तर दिया। लंगड़ाती हुई वह कमरे से वाहर चली गयी। नर्स भी चली गयी थी उसके साथ, लेकिन लौट आयी। कहने लगी, हमारे गवर्नर की पत्नी कितने अच्छे स्वभाव की हैं, और लगी तारीफ के पुल वांधने!

वेती म्हापसा ताल्लुका में आती है; इसी कारण उसी रोज म्हापसा का पुलिस कमांडर रुग्णालय पहुंचा। वह अपने साथ फोंडा के एक पुलिस अधिकारी को भी ले आया था। सन १९५१ में वह फोंडा में तैनात था—मुझे थोड़ा-वहुत पहचानता भी था। उन दिनों मैं एक वार गिरफ्तार किया जा चुका था; मेरी गिरफ्तारी में उसका काफी हाथ था। पुलिस-कमांडर ने मुझसे वेती के हमले के वारे में दो-एक प्रश्न चतुराई से पूछे। "तुम्हारे साथी कह गये होंगे?" मैंने कोई उत्तर न दिया। "हमला क्यों किया?"

इसका मैंने उत्तर दिया।

हलदोण व अस्नोडा की पुलिस चौकियों के हमले, पोम्बुर्पा में शिकारियों से छीनी हुई बंदूकों के विषय में पूछे गये प्रश्नों के स्वीकारात्मक उत्तर दिये। मजेदार बात तो यह थी कि अधिकारी के मुंह से ही बेती की चौकी से उड़ाये गये शस्त्रास्त्रों की कुल संख्या का पता मुझे चला। जब मालूम हुआ कि हमारे साथियों ने पांच बंदूकें, एक स्टेनगन, गोला-बारूद और शिरस्त्राण गायब कर दिये हैं, तो मुझे बेहद खुशी हुई।

पुलिस कमांडर और अधिकारी जा चुके थे; मैं था और मेरे साथ मेरे विचार थे। एक कांस्टेबल दूर बैठा हुआ था; न नर्स थी, न डाक्टर। मुझे लगा, मैं बिलकुल अकेला हूं। सोचा, अब कई साल कारागृह में गुजारने पड़ेंगे। यह हकीकत है। जब तक कारावास में रहना है, कोई मित्र न रहेगा, पढ़ने की सामग्री नहीं होगी, लेखनी तो सपना बन जायेगी—समय कैसे गुजारूंगा? एक रास्ता था—सप्नरंजन में डूब जाना। शायद उससे भी अधिक उपयुक्त था, कंठस्थ की हुई कविताएं पुनः याद करना और अर्थ का पुनः मनन करना। इसी से नैतिक धैर्य अबाधित रहेगा, बढ़ेगा।

समय का वह निश्चित ही सदुपयोग था; इसीलिए मैंने अविलंब यही राह पकड़ी। डमडम जेल के आजादी के परवानों पर लिखी कवि कुसुमाग्रज की सुप्रसिद्ध कविता 'गर्जा जयजयकार' मुझे अब तक याद थी। मैं लेटे-लेटे प्रत्येक चरण अनेक बार मन-ही-मन दुहराने और अंतर में उसके अर्थ की छटाओं को जमाने का प्रयास करने लगा। मैं उस समय अनुमान नहीं कर पाया कि उस दीर्घ कविता के अंतिम चरण "आता कर ओंकारा, ताण्डव गिळावया घास, नाचत गर्जत टाक बळींच्या गळ्यावरी फास' (ताण्डव कर ओंकार आज तू लीला ग्रास, नाच, गरज तू, कस दे बलिदानी का कंठ-पाश) तक पहुंचते-पहुंचते कितना समय लगा होगा। शायद कई घंटे बीत गये होंगे। मुझे यह भी पता न चला कि मैं अंतिम चरण तक भी पहुंच पाया या नहीं। हल्की-सी धुंध छाने लगी थी; मैं फिर बेहोशी में डूबने-उतराने लगा।

रात के कोई आठ बजे बेहोशी टूटी। नागरिक पोशाक पहने एक व्यक्ति एक-दो पुलिस के सिपाहियों के साथ मेरे पलंग के पास मौजूद था। पूछने लगा—"पहचानते हो मुझे?" मैंने कोई उत्तर न दिया, केवल आंख फाड़कर देखता रहा। वह बोला—"मुझे मोंतैरू कहते हैं।" पता नहीं क्यों, मुझे जोर की हंसी आयी और मैंने कहा—"ओहो, तो भेंट हो ही गयी।" वह भी हंसा।

यह मोंतैरू भारतीय-पुर्तगाली मिश्र-रक्तवर्णीय व्यक्ति था। एक जमाने में शायद कसाई था। सन १९४६ के आंदोलन में उसने पुर्तगाली-अंग्रेजी अथवा पुर्तगाली-कोंकणी के दुभाषिये का काम किया था। उससे पहले वह कई वर्ष बंबई में था, इसलिए टूटी-फूटी हिन्दी बोल लेता था। सन १९५४ में पुनः आंदोलन आरंभ होने पर उसे
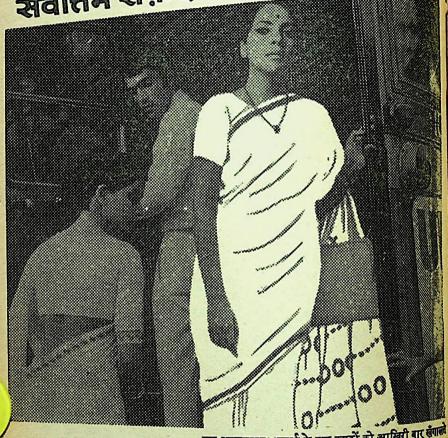
दमन करने वाली टोली का प्रमुख नियुक्त किया गया था। टोली उसी की बनायी हुई थी, जिसमें भरती किये गये थे बंबई के वे कुविख्यात 'मवाली', जिनके नाम बंबई पुलिस का वारंट था और जो गिरफ्तारी के भय से गोवा भाग आये थे।

समानधर्मा होने से इन लोगों में बड़ी एकता थी। मैंने बाद में जेल में सुना कि ये लोग 'पत्रांव' (कालिक) की महिमा गाते हुए साभिमान कहते थे कि हम चाहे जो शैतानी करें, चाहे जिसके नारियल चुरायें, रुपये-गहने छीनें, मारें-पीटें, मगर पत्रांव हमें सजा नहीं देता, उल्टे हमारी रक्षा करता है। उनके काम करने का तरीका यह था कि जहां हमला होता, वहां जा धमकते। दो-चार लोगों को पकड़कर अमानुषिक मार-पीट करते और महीनों जेल में बंद करवा देते थे।

यही नहीं, बस्ती में यदि कोई आंदोलनकारी आकर चला जाता और इन्हें गंध मिल जाती, तो भी वे यही सब करते थे। तलाशी का काम उन्हें ज्यादा प्रिय था। जिस घर की तलाशी लेनी होती, उसके सब सदस्यों को बाहर निकाल देते और मनचाहा उलट-पुलट, तोड़-फोड़ करते। बाद में इन लोगों के काले कारनामे सुनाते हुए सावई के सोनू पालकर नामक एक गरीब किसान ने, जो पुलिस स्टेशन में मेरी बगल वाली कोठरी में ठूंस दिया गया था, तिलमिलाकर कोसते हुए कहा था—"बरसों पेट काटकर बेटी की शादी का दहेज इकट्ठा किया था—सब ये डाकू छीन ले गये, कुछ भी नहीं छोड़ा।"

१५ अगस्त १९५४ से पहले और बाद में यही मोंतेरू मुझे पकड़ने के लिए सावई-वेरा गया था। वही पहला संबंध था। उसके बाद पाली की खदान पर हमने जो हमला किया था, उस बार भी उसने मेरे बारे में सुना था। बलवई में विस्फोटक द्रव्य मिलने पर यह स्वाभाविक ही था। किस्तुद के वध के बाद हम लोग अधिक निकट आ गये थे। शिरगांव की खदान में चौकीदारों पर कब्जा करते समय और हमले के बाद उन पर पहरा देते समय मुझे किसी ने "मास्टर" कहकर पुकारा था।

इसी "मास्टर" को झगड़े की जड़ मानकर वह जोरों से मेरी तहकीकात कर रहा था, मेरे पीछे पड़ा हुआ था। और आज तो मैं अनायास ही उसके चंगुल में फंस गया था। नर्स भीतर आयी, तो मोंतेरू बोला:—"हम लोग तो पुराने दोस्त हैं।"

उसके दोस्त की टोह लेने के बहाने मैंने गर्दन मोड़कर चारों तरफ देखा; अनुमान लगाने लगा कि कौन गुंडा सिपाही उसका दोस्त हो सकता है। इतने में वह मुझसे बोला—"सच है न रानडे?" मैंने कहा—"जी, भविष्य में पुलिस थाने में जब आप मुझे लड्डू खिलायेंगे, तो और भी पुराने दोस्त बन जायेंगे।" मेरे पैरों में पड़ी बेड़ी नयी दोस्ती का एहसास करा रही थी।

थोड़ी देर के इस संभाषण ने मुझे बुरी तरह थका दिया। मैं पुनः बेहोश हो गया। दूसरे दिन सुबह नौ बजे पिछले दिन की

तरह सरगर्मी दिखाई पड़ी। पलंग के पास खड़ा पहरेदार मुस्तैदी दिखाने में जुट गया। मोंतैरू सुवह साढ़े सात वजे से ही मेरे सिर-हाने डटा हुआ था। जाहिर था कि वह कल की तरह गप्पें लड़ाने नहीं आया था; वह पुलिस की तहकीकात का डंडा लेकर आया था। उसने मुझे सुवह से परेशान कर रखा था, प्रश्न के वाद प्रश्न पूछता रहा।

मैं एक भी प्रश्न का उत्तर नहीं दे रहा था। विलकुल जड़-भाव से उसकी ओर देख रहा था और इससे वह मन-ही-मन चिढ़ रहा था। जव दरवाजे के पास किसी के आने का आभास मिला, तो वह दूर हटा। दरवाजा खुला। पहले दिन की तरह आज भी गवर्नर की पत्नी लंगड़ाती हुई, किसी के कंधे पर हाथ रखकर आयी। नर्स आगे थी, कल वाली नहीं, परसों वाली। उसे मालूम था कि नर्स का काम "सलाम करो, सलाम करो!" कहना नहीं है, इसीलिए उसने कल वाली नर्स की तरह कुछ नहीं कहा।

गवर्नर जनरल की पत्नी ने दुवारा "मे गाड ब्लेस् यू!" कहकर आशीर्वाद दिया और मैंने औपचारिक रूप में "थैंक यू!" कहा। महिला लौट गयी। मैं पुनः उसका प्रतिनिधित्व करने वाले, भारत में पुर्तगाली सरकार की गुलामी करने वाले शैतान की ओर मुड़ा। वह चिल्लाया—"कहां हमारा सज्जन गवर्नर-जनरल और उसकी दयालु पत्नी, और कहां तुम हत्यारे लोग! उनकी कचहरी में वम रखवाते हो, वदमाश!"

उत्तर देना मूर्खता होती, अतः मैं जड़-भाव से देखता रहा। वह वहुत चिढ़ा; लेकिन डाक्टरों के मुआयने का समय हो चला था, इसलिए उठकर चल दिया।

दोपहर के तीन वजे के वाद पेट में तक-लीफ होने लगी। वायें कंधे में दर्द होने लगा। कुछ वेहोशी भी मालूम होने लगी। नर्स आयी, डाक्टर आये। नब्ज देखी, रक्त-चाप मापा गया। एक इंजेक्शन दिया गया, तो पैर की वेड़ी खोलनी पड़ी। मुझे याद नहीं कि दुवारा फौरन डाल दी गयी थी या नहीं। समझ में नहीं आ रहा था कि क्या हो रहा है। इतना याद है कि मैं ६॥-७ वजे के लगभग नर्स को वताया कि सांस लेने में वहुत मुश्किल हो रही है। होश आया दूसरे दिन सुवह ६॥-७ वजे। आंखें खोलीं, तो एक डाक्टर और नर्स को पास खड़े देखा। उसके वाद फिर वेहोशी नहीं आयी, तवीयत सुधरती गयी।

चौथे दिन, अर्थात् ३१ अक्टूवर को म्हापसा का पुलिस कमांडर इंस्पेक्टर को लेकर आया। उसने मुझसे वार्देश इलाके के हमलों के विषय में फिर सवाल पूछे। मैंने हमलों का उद्देश्य स्पष्ट किया और कबूल-यत पर हस्ताक्षर करके छुट्टी की। उसी रोज मोंतैरू माधव कोरडे को ले आया। उसके पिता और भाई तो वंदी थे ही।

मोंतैरू ने कहा—"जव तक यह नहीं वताते कि वांदेकर की खदान और शिर-गांव की खदान का विस्फोटक माल गोवा में कहां छिपाकर रखा है, तव तक माधव कोरडे, दासू, शंभू के रिश्तेदारों को और

साईकर-परिवार वालों को विलकुल नहीं छोड़ेंगे।" माधव कोरडे से उसने कहलवाया— "सब कुछ वतला दीजिये और छुट्टी कीजिये।" दासू ने भी यही कोशिश की।

मेरी स्थिति को देखते हुए वह मुझे मार-पीट नहीं सकता था, इसीलिए टेढ़ी उंगली से घी निकालने की फिराक में था। वह सफल न हो सका, यह और बात है। मैंने तो सिर्फ एक जवाव तैयार कर रखा था—सारी चीजें गोवा के वाहर ले जायी जा चुकी हैं। दूसरे दिन भी तहकीकात जारी रही। जब मोंतैरू ने देखा कि काम की वात हासिल नहीं हो रही है और कैदी अस्पताल में है, इससे कुछ और नहीं किया जा सकता है, तो उसने आना छोड़ दिया।

इधर नेकनीयत नर्स और वंवइया ठकुराइन के वीच मजेदार लड़ाई हुई। ठकुराइन नर्स पुर्तगालियों का थूक चाटने वाली औरतों में से थी। दूसरी नर्स सिर्फ नर्स का काम करती थी — न किसी के लेने में, न देने में। ठकुराइन नर्स मोंतैरू के सामने या उसके चले जाने के बाद मुझसे वार-वार कहती—"तुम सारी वातें वता दो, तुम्हें रिहा कर देंगे, वंवई भेज देंगे।" आखिरकार मुझे उसे फटकारना पड़ा —"तू अपना काम देख; दूसरी वातों में मत पड़ा कर।"'

एक दिन मेरे पेट में असहनीय दर्द होने लगा, तो उससे कहा। वह मुझे यह सुनाने से न चूकी कि जैसा किया है, वैसा भोगो। मुझे सातवें रोज खाने और पानी पीने की अनुमति दी गयी। ठकुराइन नर्स का तो मुझे खाना देते, पानी पिलाते जी जलता था। यह देखकर दूसरी नर्स नाराज हो गयी। दोनों में खूव गरमागरम वात हुई। भोजन पहुंचाने वाली दाई एक अच्छी महिला थी। दाई के मन में मेरे लिए आदर उत्पन्न करने और मुझे असुविधा से मुक्त करने के लिए उससे कहा —"तुम जानती हो? यह हिन्दू है, ऊंची जात वाला है। तुम जैसी नीची जात में नहीं पैदा हुआ है।" और जातिभेद की भावना से लाभ उठाया। "देसाई (कुलीन) हो न तुम?" दाई ने मुझसे पूछा। दीगर काम करने वाला लड़का भी अच्छा वर्ताव करता था। अखवारों में मेरे विषय में जो वातें लिखी गयी थीं और आस-पास भी मेरे वारे में जो कुछ अच्छा बोला जाता था, शायद उसी कारण वे अच्छी तरह पेश आते थे।

मैं जिस कमरे में रखा गया था, पुलिस उसमें वगैर काम के किसी को घुसने तक न देती थी। मेरी जांच करने के लिए सवेरे तीन-चार डाक्टर आते थे। मुझे देखने की उत्सुकता असंख्य लोगों में थी। कई लोग कोई-न-कोई वहाना वनाकर घुस आते। पुर्तगाली पहरेदार पहरा देते-देते परेशान हो जाया करता। वक्त काटने के लिए वह गप्पें लगाने वालों की खोज में रहता। डाक्टर जांच करने का स्वांग रचा करते और घंटे-घंटे-भर पहरेदार के साथ वतियाते रहते। कभी-कभार मेरी तरफ जरूर देखे लेते।

पहरेदार खुश कि वक्त अच्छी तरह कटा

परिवार यदि छोटा हो तो आप उसकी सारी जरूरतें आसानी से पूरी कर लेते हैं
भाई, एक बात तो बताओ तुम कैसे गुजारा कर लेते हो? मेरा तो खर्चा ही नहीं चलता।

बड़ा आसान है। मेरा परिवार छोटा है—सिर्फ दो बच्चे हैं

सिर्फ दो? लेकिन मेरे यहाँ तो हर बरस ही एक बच्चा हो जाता है। मैं क्या करूँ?

वही, जो मैं करता हूँ निरोध का इस्तेमाल करो।

बच्चे का जन्म रोकना आपके बस में है।
निरोध
इस्तेमाल कीजिये
परिवार नियोजन के लिये
बढ़िया किस्म के कण्डोम
3 के लिये 15 पैसे
सरकार इसे रियायती मूल्यों पर बेचती है

और डाक्टर भी खुश कि उस कमरे में बैठे हैं, जहां सब लोग कदम नहीं रख सकते। जब मैं देखता कि इस स्थिति में भी बहुत-से लोग मुझे देखने को उत्सुक हैं, तो मेरे मन को तसल्ली होती कि मेरे पास अभी तक जीने योग्य कुछ बाकी है। यह उत्सुकता चोडण के उस रेजिदोर के मन में भी थी, जिसने एक रोज हमारे सामने घुटने टेक दिये थे। वह भी एक दिन आया था, बेहद डरा हुआ था। दूर से देखता रहा, मेरे पास नहीं आया।

मैं ज्यों-ज्यों स्वस्थ होता गया, पहरा कड़ा होता गया। तीसरे रोज खतरे की हालत में था, इसलिए बेड़ी हटा दी गयी थी, चौथे रोज पुन: पहना दी गयी। बायें पैर से बंधा सिलिंडर निकाल देने के बाद मैं बैठने लगा। इससे पहले पहरेदार को आदेश दिया गया था कि वह लगातार पिस्तौल ताने रहे। सिलिंडर निकाले जाने के बाद भी मैं खाना खाने भर के लिए ही बैठ पाता था। ४ नवंबर यानी दसवें दिन सवेरे डाक्टर ने टांके खोले और दोपहर के बारह बजे के लगभग मोंतैरू अपनी गैंग के कुछ साथियों के साथ हथियारों से लैस होकर आया। मुझे उठाया गया। हाथों में हथकड़ियां पहनायी गयीं, जिन्हें अगल-बगल के सिपाहियों के साथ जोड़ा गया।

कमरे में दो-तीन डाक्टर मौजूद थे। एक ने कुर्सी पर बैठाकर ले जाने को कहा। मोंतैरू ने एकदम इन्कार कर दिया और पैदल ही चलने का आदेश दिया। कमरे से बाहर निकला, तो देखा कि लोग मुझे देखने को कितने उत्सुक थे। तमाम रोगी, उनके रिश्तेदार, नौकर-चाकर सब खड़े थे कि आखिर यह प्राणी दिखता कैसा है! जीना उतरकर मैं नीचे आया। मुझे जीप में बैठाया गया और पंद्रह-बीस मिनिट बाद मैं पणजी पुलिस स्टेशन की कोठरी में था।

मैं अस्पताल के ही कपड़े पहने था, वे उतरवाकर मुझे पुलिस की फटी-पुरानी वर्दी खाकी निकर और अजीब-सा बुशकोट पहनाया गया। बुशकोट के बटन गायब थे। निकर में उतने ही टांके थे, जितने लज्जा-रक्षण के लिए पर्याप्त माने गये थे। गिरफ्तारी के समय मेरे बदन पर जो कमीज थी, उसे चीर दिया गया था। कोट और जूतों का कोई पता न था।

जब, अस्पताल में था, तब पतलून धोने के नाम पर उतरवा लिया गया था। बाहर जाते वक्त वह मोंतैरू को सौंप दिया गया। लेकिन वह मुझे क्यों देता! कोठरी में लेटने लायक बेंच थी। मेरे पांव जंजीरों से जकड़ दिये गये और आराम करने का हुक्म दिया गया। लोहे का सीखचेदार दरवाजा बंद हो गया। दरवाजे के बाहर मोंतैरू की टोली का एक संगीनधारी सिपाही पहरे पर तैनात था।

मेरे जीवन का एक नया सर्ग प्रारंभ हो चुका था......

लंबी सजा, पुर्तगाल की जेलों का यातनापूर्ण जीवन और वहां अंगोला आदि अन्य पुर्तगाली उपनिवेशों के देशभक्तों से संपर्क का वर्णन अगले अंक में पढ़िये। —संपादक

★

प्रकृति का कुशल बुनकर

बया पक्षी

वीरनारायण शर्मा

न आकर्षक रंग, न सुरीली आवाज, न बलिष्ठ शरीर—फिर भी बया पक्षी ने अपने गृह-निर्माण कौशल से मानव को आश्चर्य में डाल रखा है। आकार उसका गौरैया जैसा होता है; परंतु रंग हल्का पीला। नर और मादा के रंग में थोड़ा अंतर होता है। मादा का रंग सिर व पेट पर हल्का पीला होता है, जबकि नर का पीला रंग जरा गहरा होता है। (नर आकार में थोड़ा बड़ा भी होता है)। दोनों के पर मटमैले-से होते हैं। आवाज गौरेया से कुछ मोटी होती है।

भारत में ही नहीं और भी अनेक देशों में, मानव-बस्तियों से दूर नदी, झील या तालाबों के किनारे खजूर, बबूल, रेंजडा अथवा पतली शाखाओं वाले अन्य कांटेदार वृक्षों पर बया के घोंसले देखने को मिलते हैं।

बया ने शिल्पी का कौशल व मजदूर की श्रमनिष्ठा ही नहीं, रईस की शौकीन तबीयत भी पायी है। एक ही घोंसले में बारहों महीने गुजार देना उसे नापसंद है। प्रत्येक मौसम के लिए वह अलग घोंसला बनाता है—गर्मी के लिए एक, बरसात के लिए दूसरा एवं जाड़ों के लिए तीसरा। और इन तीनों के आलावा दो और।

गर्मी का घोंसला मंदिर के शिखर या गुंबद के आकार का होता है। ऊपर से देखने पर यह ठोस प्रतीत होता है और प्रवेश-द्वार भी दिखाई नहीं देता। परंतु नीचे से देखने से ज्ञात होता है कि यह अंदर से पोला होता है। नीचे अंदर की ओर इसमें एक डोरी-सी डली रहती है, जो कमानी की तरह झुकी हुई और आमने-सामने की दीवार से जुड़ी हुई होती है। इससे घोंसले का मुंह दो बराबर के हिस्सों में बंट जाता है। इसी डोरी पर नर व मादा बया एक दूसरे की ओर मुंह करके दोपहरी एवं रात्रि को बसेरा करते हैं। हवा के हल्के झोंकों से ये घोंसले हिलते रहते हैं। इससे बया-दंपति को झूला झूलने का आनंद प्राप्त होता रहता है (देखिये घोंसला नं. ४)।

सफाई और सुरक्षा दोनों की दृष्टि से यह घोंसला सुनिर्मित कहा जा सकता है। बीच में

से यह बिलकुल खुला रहता है, इसलिए वीट आदि गंदगी सीधी या तो जमीन पर अथवा नदी के पानी में गिरती जाती है। ऊपर से देखने पर बया के दुश्मनों को यही लगता है कि उनके घुसने के लिए इसमें कोई प्रवेश-द्वार ही नहीं है। यदि कोई शत्रु नीचे से हमला करे, तो भी उसे घोंसले के अंदर मुंह डालने के लिए कोई सहारा नहीं मिलता। दूसरे, जागरूक बया या तो आक्रमणकारी का मुकाबला करता है, या खटाक-से उड़कर बच निकलता है। घोंसला पेड़ की पतली शाखाओं से इतनी मजबूती से बंधा होता है कि शत्रु पक्षी झपटकर आसानी से घोंसले को वृक्ष से अलग नहीं कर सकता।

बरसात का घोंसला तो बया और भी चतुराई से बनाता है। बड़े मर्क्युरी वेपर बल्व के आकार का यह घोंसला प्रायः नदी के किनारे खजूर बबूल या रेंजडों के वृक्षों की पतली शाखाओं पर लटकता दीखता है।

इसके प्रवेश-द्वारपर एक छज्जा लगा रहता है, जो फाटक (शटर) का काम भी करता है। यह फाटक अपने आप ही थोड़ा ऊंचा-नीचा हो जाता है, जिससे बया को अंदर आने और बाहर जाने में कोई कठिनाई नहीं होती (देखिये घोंसला नं. १)। छज्जे की बदौलत शत्रु पक्षी किसी भी हालत में घोंसले के अंदर नहीं घुस पाता, न वर्षा का पानी ही अंदर प्रवेश कर सकता है।

वर्षा-काल में बया के गर्भाधान की ऋतु होती है। उन दिनों नर और मादा घोंसले के अंदर रहने लगते हैं तथा वहीं छिपकर मैथुन करते हैं।

जाड़ों का घोंसला कई विशेषताओं से युक्त होता है। इसे देखकर ऐसा लगता है, जैसे किसी वयस्क सिक्ख ने स्नान के बाद अपनी दाढ़ी की गांठ खोल दी हो और केश में कंधा करके ऊपर गांठ लगा दी हो।

वस्तुतः यह घोंसला बया के बुद्धिकौशल का प्रतीक है। ऊपर की चोटी में वह तरु-शाखाओं के सहारे मजबूती से गांठ लगाता
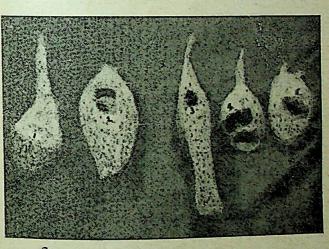
बया के पांच किस्म के घोंसले
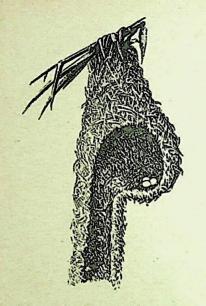
घोंसले का अंतर्भाग

है और ताने-वाने से बुन देता है, ताकि शक्ति-प्रयोग से भी घोंसला वृद्ध से अलग न हो सके और न ही हवा के झोंकों से गिरे।

इस घोंसले में एक अंदरूनी कोठरी वनायी जाती है, जिसमें नर-मादा दोनों रहते हैं। सुरक्षा-व्यवस्था इसमें ज्यादा रहती है। नीचे एक-सवा फुट लंबी पाइप के आकार की एक नली लगभग डेढ़ इंच व्यास की होती है। प्रवेश-द्वार के अलावा यह नली, फ्लश-लेट्रीन का भी काम देती है।

जाड़े के अंत में वया इस घोंसले में ठीक अपनी अंदर की कोठरी के सामने ऊपर की ओर एक छोटा-सा द्वार काटकर निकाल देता है। इससे कमरे में गर्मी कम हो जाती है। शत्रु का आक्रमण होने पर आ[illegible]त्मरक्षा में भी सहायता मिलती है। यदि ऊपर से आक्रमण हो, तो वया नीचे की नली में से होकर निकाल जाता है। इसी तरह नीचे से आक्रमण होने पर ऊपर के मार्ग से निकल जाने में उसे क्षण भर की भी देर नहीं लगती (देखिये घोंसला नं. ३)।

वया का वुनाई-कौशल देखते ही वनता है। वुनकरों की तरह वह भी पहले ताना-वाना डालता है, फिर आड़ी-तिरछी एवं सीधी वुनाई करता है और यह वुनाई इतनी जटिल होती है कि साधारण तरीके से घोंसले के तारों को पृथक् नहीं किया जा सकता।

वुनाई अगस्त या सितंवर में आरंभ की जाती है। इसके पीछे भी वया की वैज्ञानिक वुद्धि झलकती है। जिस प्रकार वस्त्र की वुनाई के लिए सूत में नमी होना आवश्यक है, उसी प्रकार घोंसला वुनने के लिए घास के धागों में नमी की आवश्यकता होती है। अगस्त-सितंवर में घास हरी होती है और उसमें नमी होती है, जिससे घास के धागों को इच्छानुसार मोड़ा जा सकता है।

सूती मिलों के वनने के पहले जिस प्रकार मनुष्यों में वुनाई का कार्य प्राय: औरतों के जिम्मे रहता था, उसी प्रकार घोंसले की वुनाई का ज्यादा काम मादा वया करती है। नर वया खेतों की मेड़ों, नदी के किनारों व मैदानों से वारीक-वारीक घास की तीलियां ला-लाकर मादा को देता रहता है। वैसे मादा भी तीलियां लाती है। पति-पत्नी के पारस्परिक सहयोग से ही घर वनता है, इसकी यह अच्छी मिसाल है। यों भी वया

मई

को घोंसला बुनते देखना बड़ा ही दिलचस्प होता है।

इन मौसमी घोंसलों के अतिरिक्त बया कुछ विशेष घोंसले भी बनाते हैं। इनमें दालानें, अट्टालिकाएं, कमरे, गोखे तथा छज्जे और एक से लेकर तीन मंजिलें तक होती हैं। अधिकतया घोंसले एकमंजिले होते हैं। बहुत तलाश करने पर भी मुझे दुमंजिला घोंसला सिर्फ एक प्राप्त हो सका (देखिये घोंसला नं. २)। तिमंजिला घोंसला बड़ा दुर्लभ होता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि बया-समाज में वर्गभेद भी होता है। बहुत-से गोलों पर एक बादशाह एवं वजीर होता है। शायद तिमंजिला घोंसला बादशाह का एवं दुमंजिला वजीर का होता है। शेष घोंसले सामान्य होते हैं।

भादों के अंत और क्वार के प्रारंभ तक मादा बया अंडे दे चुकती है। वह एक समय में दो से चार तक अंडे देती है। अंडे देने के दिन से १०-१२ रोज में बच्चे निकल आते हैं और लगभग एक-डेढ़ मास में पूर्ण बया बनकर घोंसलों से निकल पड़ते हैं।

कंगनी समा (एक प्रकार की घास), घास का फूल, नदी-किनारे के नर्म सफेद कंकड़ और महीन अनाज बया का आहार है। कीड़े-मकोड़े या अन्य गंदगी वह नहीं खाता। इस सफाई-पसंद प्रकृति के कारण ही उसे परिंदों का बादशाह भी कहा जाता है।

उसे यह उपाधि मिलने का एक और भी कारण बताया जाता है। वह ४ बजे सवेरे उठकर घोंसले में से ही बोलना शुरू कर देता है। वृद्ध मुसलमानों का कहना है कि वह इस समय खुदा की इबादत करता है, इसीलिए उसे परिंदों का बादशाह कहा जाता है।

आजकल बहुत-से शौकीन सजावट के लिए बया का घोंसला बैठक में टांगते हैं। गांवों में इसे मट्ठा छानने के काम में लाया जाता है; क्योंकि इसकी बुनाई बहुत महीन होती है और इसमें गंदगी बिलकुल नहीं होती। यदि कोई फैशन-परस्त जरा हिम्मत दिखाये, तो शायद चाय-छलनी के रूप में भी इसका प्रचलन हो जाये।

आजकल बया को कोई पालता नहीं; परंतु किसी जमाने में पालतू पक्षी के रूप में इसे रखा जाता था। एक ९० वर्षीय सज्जन चुन्नू दादा ने मुझे यह भी बताया कि बया को पढ़ाने पर वह तोते की तरह मनुष्यों की वाणी सीख जाता है।

निवृत्त पुलिस अधिकारी श्री जफरुल्ला खां से मुझे एक और आश्चर्यजनक जानकारी प्राप्त हुई। बया को प्रशिक्षित भी किया जाता था। प्रशिक्षण-प्राप्त बया को किसी गहरे कुएं के पाट पर बैठा दिया जाता था और उंगली से अंगूठी निकालकर उसे दिखाकर कुएं में डाल दी जाती थी। बया अंगूठी के पीछे कुएं में झपट्टा मारता था और उसे जल में गिरने से पूर्व ही चोंच में पकड़कर अपने स्वामी को वापस लाकर दे देता था। इससे सिद्ध होता है कि बया की नजर पैनी होती है और वह चुस्त उड़ाका होता है।

★

मन्मथनाथ गुप्त

पुस्तकों का सान्निध्य

सबहिं नचावत राम गोसाईं* को पढ़ने के बाद यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भगवतीचरण वर्मा इस समय हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ प्रगतिवादी उपन्यासकार हैं। 'सीधी सच्ची बातें' और अब 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' में उन्होंने हमारे राजनीतिक, सामाजिक क्षेत्र का जितना सुंदर और बलिष्ठ विश्लेषण प्रस्तुत किया है, वह बहुत ही सराहनीय है।

देश में फैले हुए भ्रष्टाचार, चोरबाजारी आदि में सबसे जो दर्दनाक घटना है—कांग्रेस का पतन—वह इस उपन्यास के दो पात्र, मंत्री जबरसिंह तथा मुख्यमंत्री सत्याग्रहीजी के जीवन में मूर्त और स्पष्ट हुई है। जयसुखलाल जैसे बेईमान, जिन्होंने लड़ाई के जमाने में चोर बाजारी में करोड़ों रुपये कमाये थे, यह कहकर कांग्रेस में शामिल होते हैं —"अरे! हम लोगों को खद्दर पहनना पड़ेगा और कांग्रेस में शामिल होना पड़ेगा। अगर युद्धकाल में हम लोगों ने जो करोड़ों रुपया कमाया है, उसे बरकरार रखना है। आगे वही कांग्रेस वाले मिनिस्टर बनेंगे और राज्य करेंगे, इन सबके पहले हम सब लोग कांग्रेसमैन बन जायें।"

राधेश्याम नाम के मिल-मालिक ने अपनी मिलों में पड़े हुए सड़े आटे और गोदामों में पड़े हुए सड़े तेल से स्वतंत्रता-दिवस पर दो दिन तक शहर के कंगालों को भोजन कराया। आधे लोग सड़े भोजन के कारण अपने अति सड़े हुए जीवन से मुक्ति पा गये। कितनी ही मौतें हुईं; पर चंदे में पांच हजार कांग्रेस को देकर और पांच हजार पुलिस तथा स्वास्थ्य-विभाग के अफसरों को खिला-पिलाकर राधेश्याम बच गया। यही नहीं, वह कानपुर नगर कांग्रेस का कोषाध्यक्ष चुन लिया गया।

यही राधेश्याम स्वतंत्रता के पहले मामूली-सा कुछ लाखों का आदमी था, पर देखते-देखते वह स्वतंत्रता के बाद करोड़ों

मई

* सबहिं नचावत राम गोसाईं; लेखक—भगवतीचरण वर्मा; पृष्ठसंख्या—२८४; प्रकाशक—राजकमल प्रकाशन, दिल्ली—६; मूल्य—१४ रुपये।

का मालिक बन गया और ऊपर से महान देश सेवक माना गया। वह मंत्री जवरसिंह के जरिये से सारे काम और चोर वाजारी करता रहा। भगवती वावू ने वड़े विस्तार के साथ जवरसिंह के पूरे खानदान का इतिहास लिखा है, जिससे यह पता लगता है कि वह मातृकुल या पितृकुल किसी भी तरफ से ठाकुर नहीं था। उसका पुरखा एक भागा हुआ डाकू था और पुरखिन भमरी नामक एक वेड़िन थी।

इस तरह से सैकड़ों पात्र उपन्यास में आते हैं और कुल मिलाकर यह चित्र वनता है कि देश में स्वराज्य क्या हुआ, राधेश्याम, जयसुखलाल, जवरसिंह, मुख्यमंत्री सत्याग्रहीजी जैसे ढोंगियों और वेईमानों का राज्य हो गया। पूंजीपति लोग किस तरह मनचाहे ढंग से कोतवालों की बदली कराते हैं, किस तरह मंत्री कांग्रेस के लिए चंदा एकत्र करते हैं और किस तरह जनता की दुश्मनी होती है, यह उपन्यास में स्पष्ट हो जाता है।

भगवती वावू अपने उपन्यास में साहित्यकारों द्वारा देश के प्रति विश्वासघात की बात को भी नहीं भूले हैं। ऐसे साहित्यकारों के प्रतीक एक तरफ अकादमी पुरस्कार प्राप्त प्रशांतजी और दूसरी तरफ नये कवि झंझावातजी हैं। दोनों ही पूंजीवादियों की शराव पीते हैं। झंझावात शराव भी पीता है और गालियां भी देता है, पर इतना नहीं कि उसे महफिल से निकाल दिया जाये।

वामपक्षियों के द्वारा देश के साथ किये गये विश्वासघात का भी अच्छा चित्र खींचा गया है। मजदूर नेता कामरेड रवींद्र और मार्त्तंड पूंजीपति राधेश्याम के घर पर जाकर शराव पीते हैं और लिफाफे में हजारों की रकम लेते हैं और किसानों का पक्ष लेना छोड़ देते हैं। वोदका की वोतल किस तरह वंटती है और इस्कस के सांस्कृतिक मंडल में झंझावात जैसा नीच, ढोंगी और बेईमान आदमी किस तरह से रूस की सैर करता है और कथित रूसप्रेमियों के जरिये से किस प्रकार रूसियों को ठगा जाता है, इसका भी अच्छा वर्णन है। यह भी दिखाया गया है कि रूस जाने का सौदा किस प्रकार से होता है और उसमें भी हजारों का लेन-देन हो जाता है। इस वर्णन में भगवती वावू रूस-विरोध या क्रांति-विरोध से वचकर ढोंगियों का पर्दाफाश करते हैं।

खैरियत यह है कि रामलोचन जैसा एक आदर्शवादी पुलिस अफसर है, जो जवरसिंह के द्वारा रखा गया है, फिर भी उसके कहने के अनुसार राधेश्याम की ज्यादतियों को सहन करने के लिए तैयार नहीं है। राधेश्याम को वह कुछ घंटे के लिए ही सही जेल भेजता है, जिसका नतीजा यह होता है कि उसे नौकरी से निकाल दिया जाता है; क्योंकि राधेश्याम, जवरसिंह और सत्याग्रहीजी का दोस्त है और कांग्रेस को लाखों का चंदा देता है।

उपन्यास में स्त्री-पात्रों की अधिकता नहीं है; पर थोड़ी-सी स्त्रियां–जैसे भमरी–भुलायी नहीं जा सकती हैं। भमरी ठकुराइन बन
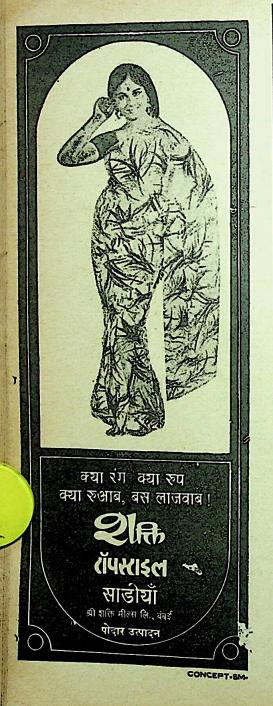
Lichensa

जाती है, पर विधवा होने के बाद वह एक साधु के फंदे में फंस जाती है; इस पर उसके पति का साथी डाकू उस साधु का सिर काट लेता है। इसी प्रकार मंत्री जवरसिंह की स्त्री भी एक अद्‌भुत स्त्री है, जो अपने पति से बिलकुल भिन्न है। वह राधेश्याम की पत्नी के हाथ से ८० हजार के हीरे का सेट लेने से इंकार करती है और रामलोचन को प्रोत्साहन देती है कि वह पूंजीपतियों और मंत्रियों से न डरे।

भगवती बाबू ने इस प्रकार से सैकड़ों पुरुष-पात्र और स्त्री-पात्र प्रस्तुत किये हैं, जिनका पूरा एक-एक संसार है। इस उपन्यास में हमारे सामने सड़ते-गलते हुए समाज के चित्र उभरते हैं और यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारा देश इस समय बहुत भारी संकट से गुजर रहा है। यह निश्चित है कि यह उपन्यास जिन लोगों के हाथ में पहुंचेगा, वे ठिठककर सोचने के लिए विवश होंगे। यही लेखक के लिए सबसे बड़ा पुरस्कार है।

★

शांतिनिकेतन के प्रवेश-द्वार के ऊपर महर्षि (देवेंद्रनाथ ठाकुर) के काल से स्वर्णाक्षरों में लिखे तीन शब्द "सत्यम् शिवम् अद्वैतम्" चमका करते थे। विश्वभारती जब भारत सरकार के कर्तृत्वाधीन आयी, तब हठात् ही देखा कि बीच का "शिवम्" उड़ गया है। देखकर पहले आश्चर्य हुआ था। उसके बाद मन में हुआ कि लगता है किसी ने "शिवम्" देखकर जटाधारी शिव की बात भूल से सोचकर उसे हटा दिया है। विश्वभारती के अधिकारियों ने जब इस पर कोई आपत्ति नहीं की, तब निश्चय ही इसका कोई गूढ़ कारण होगा।

फिर और भी बहुत-से परिवर्तन नजर आये। पहले 'छतिमतला' में परिवर्तन देखकर बहुत अखरा था। अब छात्र-छात्राएं वेश-भूषा में कितने बदल गये हैं! पहले के छात्र-छात्राओं को देखकर लगता था कि वे शांतिनिकेतन के विद्यार्थी हैं, उनकी पोशाक में एक विशिष्टता थी। कहां गया शांतिनिकेतन का वह खुला मैदान......! अब तो चारों तरफ बड़े-बड़े मकान आंखों को पीड़ा ही पहुंचाते हैं। विश्वभारती को आज अर्थ का अभाव नहीं है; लेकिन जिस समय विश्वभारती को अर्थाभाव था, उस समय उसका आदर्श था। आज रवींद्रनाथ की 'विश्वभारती' को खोज पाना मुश्किल है।

—मीरा देवी (कवि रवींद्र की सुपुत्री)

★

केवल मजदूरों का नहीं है

मई-दिवस

मनमोहन वशिष्ठ

यों तो मई-दिवस मजदूरों के दिवस के रूप में दुनिया के कोने-कोने में मनाया जाता है; परंतु मजदूर आंदोलन आरंभ होने से पहले से ही मई-दिवस मनाया जाता रहा है।

जर्मनी के कुछ हिस्सों में इस दिन लोग वड़े सवेरे अपने अस्तवल से गोशालाओं के सामने पहुंच जाते हैं। गौओं व घोड़ों के लिए अलग मई-वृक्ष लगाये जाते हैं। ऐसी मान्यता है कि इससे गौएं अधिक दूध देती हैं और घोड़े स्वस्थ व फुर्तीले रहते हैं। जर्मनी के कुछ हिस्सों में यह भी विश्वास प्रचलित है कि १ मई को मई-वृक्ष लगाने से स्त्रियों का वांझपन दूर हो जाता है।

आयरलैंड में १ मई से पूर्व ही लोग हरे पेड़ की डाल लाकर घर में रखते हैं। दूसरे दिन वहुत सुवह ही डाल पर पानी डालकर उसे घर के सामने टांग दिया जाता है।

यूरोप के कुछ देशों में मई-दिवस प्रेम की निशानी के रूप में भी मनाया जाता है। इस दिन हर प्रेमी नौजवान, जिसे किसी कुंआरी लड़की से प्रेम हो, उसके घर के आगे अपने प्रेम की निशानी के रूप में किसी पेड़ की हरी पत्तियों वाली डाल टांग देता है। लड़की के माता-पिता हरी डाल को देखकर नौजवान से संपर्क स्थापित करते हैं व लड़की की सहमति पाकर शादी कर देते हैं।

अल्सेस में १ मई से पिछली रात को एक विशाल हरा पेड़ काटकर उसे एक जगह रख दिया जाता है। दूसरे दिन जुलूस निकलता है, जिसके आगे-आगे यह कटा हुआ वृक्ष खींचकर ले जाया जाता है। वृक्ष के पीछे सफेद कमीज पहने और मुंह पर कालिख पोते एक आदमी उछलता-कूदता हुआ चलता है। पीछे चलता है हाथों में हरी डालियां उछालता हुआ जनसमूह।

रोम में १ मई वसंतोत्सव के रूप में मनाया जाता है। उस दिन वड़ी सुवह ही चहल-पहल शुरू हो जाती है। लोग फलों व फूलों की अधिष्ठात्री देवी फ्लोरा के सम्मान में खेतों व जंगलों में जाकर नाच-गान करते हैं, और रात में काफी देर तक ऊंचे स्वर में गाते रहते हैं। इस दिन रोम में तरह-तरह के फूलों की दुकानें लगायी जाती हैं और लोग गले में मालाएं डाले खेतों व जंगलों की तरफ घूमने निकल जाते हैं। नयी-नयी पोशाक पहनकर स्त्रियां हाथों में फूल लिये नाच-गान में सम्मिलित होती हैं।

इंग्लैंड में मई-दिवस की अलग-अलग प्रथाएं हैं। कुछ हिस्सों में १ मई के साथ

परोपकारी लुटेरे राबिन हुड की स्मृति जुड़ी हुई है। इस दिन तरह-तरह के वृक्षों की हरी डालों को इकट्ठा करके मे-पोल बनाया जाता है, जिसके गिर्द लोग नाचते हैं। वेस्थ-मीथ जिले के कुछ देहाती इलाकों में, जहां लकड़ी बहुतायात से होती है, इस दिन लोग अपने घरों के सामने कटी डालियां जमा करते हैं, जिन्हें पूरे साल-भर वहां से हटाया नहीं जाता है।

उत्तरी इंग्लैंड में मध्य रात्रि को १ मई के आरंभ होते ही युवक-युवतियां गाजे-बाजे के साथ जंगलों में जाते हैं और पेड़ों की हरी-भरी डालियां काटकर घर लाते हैं। सुबह तरह-तरह की फूलमालाओं से सजाकर ये हरी डालियां घरों के आगे टांग दी जाती हैं।

★

स्वतंत्र पत्रकार

लार्ड नार्थक्लिफ की गणना संसार के सबसे सफल पत्रकारों में की जाती है। वे योग्य-से-योग्य पत्रकारों को अपने यहां रखा करते थे। अपनी पुस्तक 'फ्लीट स्ट्रीट एंड डाउनिंग स्ट्रीट' में उन्होंने पत्रकार पेशे के बारे में लिखा है :

"स्वतंत्र पत्रकार का पेशा बिलकुल ऐसा है, जैसे किसी को पहिये से बांधकर उसकी हड्डी-पसली तोड़ देना। अगर एक लेख छपता है, तो दो अस्वीकृत हो जाते हैं, और कितने ही लेख संपादकों की दराज में पड़े रहते हैं। कुछ दफ्तरों से पारिश्रमिक मिलना ही कठिन हो जाता है। जब पारिश्रमिक की याद संचालक को दिलायी जाती है, तो 'याद नहीं रहा' और 'भूल गये' इत्यादि उत्तर आते हैं, और जितना समय लेख लिखने में नहीं लगता, उतना मजदूरी वसूल करने में लग जाता है।

"किसी ऐसे पत्रकार को, जो अपने पेशे पर गर्व करता है, जब पता चलता है कि जनता की क्षण-क्षण बदलने वाली रुचि के अनुकूल लिखना ही इस पेशे में सफलता की कुंजी है, तो उसका दिल बड़ी जल्दी टूट जाता है।"

—रानी सिन्हा

★

पुरानी यहूदी परंपरा में ७ को परिपूर्ण संख्या माना गया है और ७ को प्राप्त करना परिपूर्णता को प्राप्त करना है।

इस कारण, यहूदियों के बीच किसी के लिए ७० वर्ष की उम्र की कामना करने का अर्थ है सुदीर्घ सुखी जीवन की कामना करना। उसके पास ७०० भेड़ें हैं, यह कहने का अर्थ हुआ कि वह बहुत धनी है। उसने ७,००० शत्रुओं को मारा है, यह कहने का तात्पर्य है, उसीने युद्ध जीता। और अगर कोई अपने शत्रु को सात बार क्षमा कर देता है, तो उसका अर्थ है कि वह अत्यंत उदार-हृदय है।

★

चश्मे जो पलकों में रहते हैं

शरद राकेश

आंखें आत्मा के झरोखे हैं; यों कहिये मन का दर्पण आंखें हैं। और जब इन्हीं आंखों पर मोटे फ्रेम का चश्मा जड़ा नजर आता है, तो न केवल आदमी के व्यक्तित्व पर परदा-सा पड़ जाता है, वल्कि आदमी की कमजोरी सरेआम हो जाती है। कभी-कभी तो दुर्घटनाओं में चश्मा शारीरिक क्षति का कारण वन जाता है और कई लोगों में वह हीनता की भावना को जन्म देकर उन्हें मानसिक क्षति भी पहुंचाता है। इसीलिए पूर्णतया संतोषजनक 'कांटैक्ट-लेंस' का सपना मनुष्य दीर्घकाल से देखता आया है।

रोम का सम्राट् नीरो अपनी लघु-दृष्टि को दूर करने के लिए वैदूर्य-मणि का प्रयोग करता था। लियोनार्दो द विंची इसका प्रयत्न करता रहा कि सीधे आंख में ही कोई शीशे जैसी चीज लगाकर आंख की खरावी दूर की जा सके। सुविख्यात ब्रिटिश खगोल[illegible] तथा भौतिकविज्ञानी सर जे० डब्ल्यू० ह[illegible] ने १८२७ में ऐसा लेंस वनाया, जो सीधे आंख में ही लगाया जाता था। यह शीशे का वना स्थिर, भारी और भंगुर था और पूरी आंख ढंक लेता था।

आज तो कांटैक्ट-लेंस कागज की तरह पतले और परों की तरह हल्के प्लास्टिक के वनते हैं। यह आंख की पुतली जितने बड़े होते हैं और उन्हें मनचाहा रंग दिया जा सकता है। परंतु इसका बड़े पैमाने पर विकास और निर्माण अभी पंद्रह साल पहले की घटना है।

सन १९५४ में लंदन के डा० फ्रैंक डिकिन्सन, फिलाडेल्फिया (अमरीका) के प्रो० जैक नील और म्यूनिख के विल्हेल्म [illegible] सोह्नजेस वावारिया में मिले। तीनों [illegible] कांटैक्ट-लेंस के निर्माण की दिशा में स्वतंत्र रूप से प्रयोग कर रहे थे। नील और डिकिन्सन की कांटैक्ट-लेंस के सैद्धांतिक रूप में ज्यादा दिलचस्पी थी; जवकि सोह्नजेस ने विशेष मशीनों और तकनीकों की मदद से बड़े पैमाने पर उत्पादन की रूपरेखा वना डाली थी।

अंततः सोह्नजेस की [illegible]

लेंस की लंबाई और कार्निया के व्यासार्ध की नापजोख हो रही है।

कांटैक्ट लेंस चुनकर आंखों में लगाया जा रहा है।

कांटैक्ट-लेंस कंपनी' ने आंख की कोशिका से मेल खाने वाले एक लचीले कृत्रिम पारदर्शक पदार्थ से नया माइक्रो-लेंस तैयार कर हीं डाला, जो मानवीय आंख की 'कार्निया' की गोलाई पर बिलकुल 'फिट' बैठता है। ९ मिलिमीटर व्यास वाले इस लेंस का वजन है मात्र ०.०१ ग्राम। यह आंख से निकलने वाले प्राकृतिक द्रव की परत पर तैरता रहता है, उसकी गति के साथ हिलता-घूमता है।

म्यूनिख में सोह्नजेस का कारखाना कांटैक्ट-लेंसों का निर्माण ही नहीं करता, बल्कि प्रोफेसर थिले की अधीनता में वहां उसके सुधार और प्रगति के लिए भी प्रयोग चल रहे हैं। विश्व के अग्रणी नेत्र चिकित्सकों तथा मैक्सप्लैंक इंस्टिट्यूट के सहयोग से एकतरफा मोतियाबिंद जैसी विकट समस्याओं का निदान भी खोजा जा रहा है।

अभी हाल सोह्नजेस ने जिस चीज का निर्माण किया है, वह है 'मल्टी फोकस लेंस'। यह कैमरा के 'जूम लेंस' की तरह काम करता है। इसे आंख में लगाने पर हर चीज बिलकुल स्पष्ट नजर आयेगी, चाहे वह दूर की हो या नजदीक की। सामान्य चश्मे की भांति इसमें दृश्य का कोई भाग अवरुद्ध नहीं होता और सभी कोणों से ठीक दिखाई देता है। सोह्नजेस के अनुसार यूरोप में कांटैक्ट-लेंस का व्यवहार करने वाले करीब ८० लाख हैं और अमरीका में १ करोड़ २० लाख। जापान में बच्चों की आंखों के दोष दूर करने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है।

कांटैक्ट-लेंस पर अभी भी प्रयोग चल रहे हैं। नरम जेल लेंस और शारीरिक द्रव्य (प्रोटीन) से निर्मित कांटैक्ट-लेंस पर कार्य चल रहा है। डा० सोह्नजेस का कहना है कि भविष्य के कांक्टैट-लेंस में ये गुण होने चाहिये — उनकी बाहरी सतह कठोर और भीतरी सतह कोमल हो; यह ऐसे द्रव्य का बना हुआ हो, जो रोगाणुओं से प्रभावित नहीं होता और आंख की पुतलियों को अपना पोषण प्राप्त करने में बाधा नहीं डालता।

★

सन १८५५ में अभिनेता चार्ल्स कागलान ने मरते समय चाहा था कि कि उसे २,००० मील दूर उसके जन्मस्थान एडवर्ड द्वीप (कनाडा) में दफनाया जाये। मगर व्यवस्था न हो सकी और उसे टेक्सास में ही दफना दिया गया। वर्षों बाद नदी की बाढ़ में उसका ताबूत वह निकला और समुद्र में बहता हुआ एडवर्ड द्वीप जा पहुंचा। वहां उसे फिर दफनाया गया। इस तरह मृतक की इच्छा पूर्ण हुई।

★

नीम .... पूरा कल्पवृक्ष

सारे ही भारत में और विशेषत: कम वर्षा वाले प्रदेशों में नीम का वृक्ष वहुतायत से रोपा जाता है। नीम की यह खूवी है कि उसका लगभग प्रत्येक अंग उपयोगी होता है; वह विना सिंचाई के पनप सकता है और पशु प्राय: उसे नहीं खाते। और अव तो विश्व कृषि खाद्य संघटन के एस०आर० राड्वान्स्की ने दिखाया है कि नीम में यह भी खूवी है कि वह अनुर्वर लाल और रेतीली मिट्टी को उर्वर बनाता है। प्राय: यह उगता ही इसी मिट्टी में है।

उत्तर-पूर्वी नाइजीरिया में सोकोनों में काम करते हुए राड्वान्स्की ने नीम के एक वगीचे की मिट्टी ली और पास के खेतों में से भी उसी किस्म की मिट्टी लेकर दोनों की तुलना की। दोनों मिट्टियां एक ही वर्ग की थीं और उनकी भौतिक संरचना आदि भी एक ही थीं; परंतु उनमें रासायनिक दृष्टि से वहुत अंतर पाया गया।

नीम के वगीचे की मिट्टी में पी-एच तत्त्व लगभग सामान्य (नार्मल) था, जवकि खेत की मिट्टी में अम्ल ५.४ था। यही नहीं, नीम के नीचे की ऊपरी मिट्टी में, खेत की मिट्टी की तुलना में ५ गुना ज्यादा कार्वन, ४ गुना ज्यादा नाइट्रोजन, ३ गुना ज्यादा पोटाशियम और १० गुना ज्यादा कैल्शियम व मैग्नीशियम पाया गया। नीम वाली मिट्टी में पानी को रोके रखने की शक्ति भी ज्यादा पायी गयी।

ऐसा प्रतीत होता है कि जमीन को कृषि भूमि की तुलना में अविक उर्वर वनाने का काम नीम दो प्रकार से करता है। या तो वह मिट्टी के पोषक तत्त्वों को वनाये रखता है या नीचे की मिट्टी में से इन तत्त्वों को खींच कर ऊपर लाता है। यही नहीं, नीम अपनी पत्तियों से मनुष्य को तो लाभ पहुंचाता ही है साथ ही उसके पत्ते नीचे गिरकर धीरे-धीरे गलते हैं, और उनमें के वहुत से खनिज वापस मिट्टी में पहुंचते हैं। जवकि खेत की जमीन इनसे वंचित रहती है। नीम वाली मिट्टी सूखे मौसम में ज्यादा नम वनी रहती है।

राड्वान्स्की का सुझाव है कि बीच-बीच में चार-पांच साल जमीन में नीम बोकर जमीन की उर्वरता वढ़ायी जा सकती है।

नीम की लकड़ी, जो महोगनी की जाति की होती है, ईंधन और इमारती लकड़ी दोनों के रूप में उपयोगी होती है। इसका गोंद रंगाई उद्योग में काम आती है और छाल औषध उद्योग के लिए उपयोगी है। पांच वर्ष वाद वृक्ष काट डाले जा सकते हैं तव तक जमीन की उर्वरता वढ़ चुकी होती है।

('न्यू सायंटिस्ट' से)

नवनीत

[हिन्दी डाइजेस्ट]

जनवरी

१९७०

'ट्रांज़िस्टर की खराबी'

धातु के कवरवाली
ट्यूडर बैटरियाँ इसे रोकने में
आपकी मदद करती हैं

ट्रांजिस्टरों की बहुत-सी बैटरियों के कवर दरअसल काग़ज़ के बने होते हैं, लेकिन उन पर वार्निश या चमकीले रंगों की परत चढ़ाई हुई होती है ताकि वे धातु जैसे ही दिखाई दें। बैटरियों में जो तेज़ाब होता है, वह इस काग़ज़ को गलाकर आपके क़ीमती ट्रांज़िस्टर को खराब कर देता है। तेज़ाब से टक्कर लेने में काग़ज़ से धातु ही ज़्यादा मज़बूत है।

इसी लिए तो ट्यूडर बैटरियाँ धातु के कवरवाली होती हैं और रिसती नहीं। शेर जैसी शक्तिशाली ट्यूडर बैटरियाँ, तेज़ाब को रिसने से सचमुच ही रोकती हैं...आपके ट्रांज़िस्टर की पूरी-पूरी रक्षा करती हैं...बहुत दिन चलती हैं...और ज़्यादा बुलन्द आवाज़ के लिए एक-सा पावर देती हैं। इसलिए, जब भी बैटरी ख़रीदनी हो, ट्यूडर ही लीजिए—स्टैण्डर्ड साइज़ के लिए ट्यूडर १०५१ या १५१ और मीडियम साइज़ के लिए ट्यूडर १०३१ या १३१।
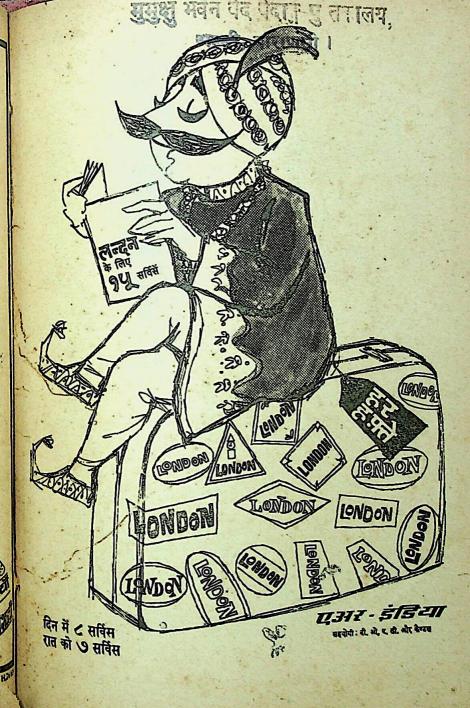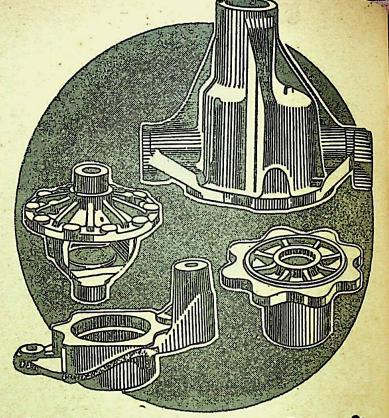
याद रखिए, हर ट्यूडर बैटरी
पूरी तरह जाँची हुई होती है!

आपटे ग्रूप का उत्पादन

ट्यूडर बैटरियाँ
शेर जैसी शक्तिशाली

लन्दन
के लिए
१५ सर्विसें
LONDON
दिन में ८ सर्विस
रात को ७ सर्विस
एअर - इंडिया
सहयोगी : बी. ओ. ए. सी. और क्वैन्टस

वैवाहिक जीवन का भरपूर आनन्द ...
और अनचाहे गर्भ से पूर्ण मुक्ति।
अब हर व्यक्ति गर्भ निरोध का सबसे आसान और कामयाब
तरीका इस्तेमाल कर सकता है। यह तरीका है : निरोध
पुरुषों के लिये बढ़िया किस्म के रबड़ कण्डोम
निरोध
परिवार नियोजन के लिये
३ के लिये १५ पैसे
(सरकारी रियायती मूल्य)
davp 69/106

आपके सुंदर बालों को देखभाल
एवं पोषण चाहिये
बंगाल केमिकल्स का

कैंथराइडीन

हेयर आइल

लंबी, चमकदार, रेशम-सी नरम लटों को बढ़ाने में मदद करता है, बालों को चिपचिपाहट से मुक्त रखता है और उनका झड़ना रोकता है।

बंगाल केमिकल

कलकत्ता, बंबई,
कानपुर, दिल्ली,

कास्टिक सोडा (रेयान ग्रेड) सोडा एश, सोडा बाइकार्ब लिक्विड क्लोराइन हाइड्रोक्लोरिक एसिड, ब्लीच लिकर, कैल्शियम क्लोराइड साल्ट, ट्रायक्लोरोथायलीन और परक्लोरोथायलीन आदि, जिनसे उद्योग-धंधे चलते हैं,

ऐसे भारी रसायनों के निर्माता

धांगध्रा केमिकल वर्क्स लिमिटेड

'निर्मल' तीसरा मजला
२४१, बैकबे रिक्लेमेशन
नरीमन प्वाइंट, बंबई—१

अपनी आवश्यकताओं के लिए बंबई कार्यालय को लिखें।

रजिस्टर्ड ऑफिस : धांगध्रा (गुजरात राज्य)

तार : सोडाकेम, बंबई

टेलिफोन : २९३२९४
२९३२३५
२९३३३०

छोटा परिवार सुखी परिवार

यूनेस्को कूरियर (हिंदी)

यूनेस्को का मासिक पत्र 'यूनेस्को कूरियर' विश्व की ११ भाषाओं (अंग्रेजी, फ्रेंच, स्पेनी, रूसी, जर्मन, इतालवी, अरबी, जापानी, हिन्दी और तमिल) में प्रकाशित होता है। इसमें शिक्षा, विज्ञान और संस्कृति-संबंधी समाचार, लेख तथा चित्र आदि अंतर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से प्रस्तुत किए जाते हैं। अध्यापकों, छात्रों, पुस्तकालयों तथा वाचनालयों के लिए यह अत्यंत उपादेय पत्रिका है। सामान्य ग्राहकों के लिए हिन्दी संस्करण का वार्षिक चंदा रु. १०–५० है और शैक्षिक संस्थाओं और पुस्तकालयों के लिए रु. ९–५०। १९६७–६८ वर्ष के अंकों की आकर्षक जिल्द—डाक खर्च सहित रु. १५–०० में प्राप्त की जा सकती है। जनवरी, १९६९ से ग्राहक बनने वालों को पिछले अंकों की कुछ प्रतियां मानार्थ भेंट की जायेंगी। ग्राहक बनने के लिए वार्षिक चंदा मनीआर्डर द्वारा प्रबंध संपादक, यूनेस्को कूरियर (हिन्दी), केंद्रीय हिन्दी निदेशालय वेस्ट ब्लाक नं. ७, रामाकृष्णपुरम, नई दिल्ली–२२ को अग्रिम भेजें।

davp 69/379

मंगल-विजय की संभावनाएं

एस० पी० अवस्थी

जब मनुष्य ने अंगारे के समान चमकता हुआ मंगल ग्रह प्रथम बार देखा, तो उसे डर की अनुभूति हुई होगी। संस्कृत में उसका एक नाम 'अंगारक' है और उसे शुभ ग्रह नहीं माना गया है। बेबिलोनियावासी इसके उदय को खून और आग की चेतावनी मानते थे और सीरियावासी इस चेतावनी से बचने के लिए नरबलि देते थे। यूनानी और रोमन दोनों ही मंगल ग्रह अर्थात् मार्स को युद्ध का देवता मानते थे।

जैसे-जैसे विज्ञान की प्रगति होती गयी, वैसे ही मनुष्य की ज्ञान-पिपासा भी बढ़ती गयी। वह जानना चाहता था कि आखिर ग्रह क्या हैं, कैसे हैं और क्या उन पर भी हमारे-जैसे या अन्य किसी प्रकार के जीवों का अस्तित्व है ?

सत्रहवीं शताब्दी में केपलर ने ग्रहों की गति के एक नये सिद्धांत का प्रतिपादन किया, जिसके अनुसार सूर्य सभी ग्रहों का केंद्र है। इनके आधार पर न्यूटन, हाइगेन वोलटेयर जैसे प्रसिद्ध वैज्ञानिकों ने भी यह दलील दी कि जिस प्रकार पृथ्वी पर जीवन है, उसी प्रकार सौर-परिवार के सदस्य से अन्य ग्रहों पर भी जीवन का होना संभव है। उस समय तो उन्होंने यहां तक कह डाला कि सूर्य पर भी जीवन का अस्तित्व हो सकता है।

विज्ञान और तकनीकी की उन्नति के साथ खगोलशास्त्रियों को यह विश्वास हो चला कि अधिकांश ग्रहों में जीवन के पनपने के लिए आवश्यक तत्त्वों की कमी है। फिर भी मंगल के विषय में निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सका; क्योंकि कुछ बातों में मंगल और पृथ्वी में आश्चर्यजनक समानता है। उदाहरण के लिए, मंगल में भी वायुमंडल है—भले ही वह विरल है। वह भी पृथ्वी की तरह अपनी धुरी से २४ अंश पर झुका हुआ है, जो ऋतु-परिवर्तन के लिए आवश्यक है। उसके भी दक्षिणी सिरे पर सफेद जमाव है, जो शायद हिम से बना है। और पानी जीवन की उत्पत्ति के लिए एक बहुत ही आवश्यक अंग है।

विज्ञान वैसे तो मंगल के विषय में बहुत-से संशय दूर करने में सफल हो गया है, फिर भी यह प्रश्न आज भी हल नहीं हुआ है कि क्या वहां जीवन है ?

और इसी जिज्ञासा के समाधान के लिए विश्व के दो संपन्न राष्ट्र अमरीका और रूस प्रयत्नशील हैं और पिछले वर्ष इस दिशा में आशातीत प्रगति हुई है; क्योंकि जैसे

गत वर्ष मानव ने पहली बार चंद्र-तल को अपने पदचिह्नों से सुशोभित किया उसी तरह मेरिनर यानों ने पहली बार ६ करोड़ मील दूर स्थित मंगल का समीप से सर्वेक्षण करके अत्यंत महत्त्वपूर्ण सूचनाएं भेजी हैं।

रूस ने जोंड कार्यक्रम के अंतर्गत कुछ यान मंगल की ओर भेजे थे; किंतु संचार-व्यवस्था की कठिनाइयों के कारण विशेष सफलता न मिल सकी थी। गत वर्ष अमरीका के नासा संघटन ने दो यान मेरिनर-६ और मेरिनर-७ मंगल की ओर भेजे, उनसे इस ग्रह से संबंधित महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हुई है। इसके पहले भी १९६४-६५ में अमरीका के भेजे हुए मेरि-नर-४ यान के द्वारा मंगल-तल और उसके वायुमंडल के विषय में कई महत्त्वपूर्ण सूच-नाएं मिली थीं।

मेरिनर-६ और ७ का उद्देश्य मंगल की सतह और उसके वायुमंडल का विस्तृत अध्ययन करना था। इसीलिए कालटेक जेट प्रोपल्शन प्रयोगशाला के वैज्ञानिकों ने इन दोनों यानों को अत्यंत सूक्ष्म और संवेदन-शील आधुनिक वैज्ञानिक उपकरणों से सज्जित किया था। उपकरण-सहित इन यानों की कीमत ११० करोड़ रुपये से भी ज्यादा थी। इनके टेलिविजन कैमरों ने मेरि-नर-४ की अपेक्षा, अधिक सूक्ष्म और विस्तृत चित्र भेजे। इन कैमरों द्वारा लिये गये मंगल-तल के चित्रों का विभेदन (रेजोल्यूशन) १०० फुट का है, जब कि मेरिनर-४ द्वारा लिये गये चित्रों में वह दो मील का था।

मंगल के वायुमंडल के रासायनिक विश्लेषण के लिए दो विशेष यंत्र काम में लाये गये थे। ये थे—इन्फ्रारेड (अवरक्त) स्पेक्ट्रोफोटोमीटर और अल्ट्रावायलेट (परा-बैंगनी) स्पेक्ट्रोफोटोमीटर। वातावरण के घनत्व एवं दवाव को मापने के लिए एक अन्य यंत्र का उपयोग किया गया। अवरक्त-विकिरणमापी द्वारा मंगल के उजले और अंधेरे भाग का तापक्रम नापा गया। यह पहला अवसर था, जब मंगल के अंधेरे भाग पर परीक्षण किये गये। मेरिनर-६ ने २१ मिनिट तक मंगल-तल का निरीक्षण किया। इसमें से ७ मिनिट अंधेरे भाग में प्रयोग करने में व्यय हुए। बाद में यह यान सूर्य के गुरुत्वा-कर्षण में आ गया और उसकी ओर खिंच-कर सूर्य की ज्वाला में भस्म हो गया।

मेरिनर-६ (वजन ३०३ किलोग्राम) मेरिनर-७ से ५ दिन पहले मंगल के समीप पहुंचा। इसने ३१ जुलाई को केवल २,१३० मील की दूरी से मंगल-तल के चित्र लिये। इतने समीप से आज तक कोई भी यान मंगल को नहीं देख पाया था। ५ अगस्त को मेरि-नर-७ भी इतनी दूरी से गुजरा। किंतु इसने मंगल के दक्षिण ध्रुव की ओर से उड़ान भरी थी, ताकि वहां के सफेद जमाव का निरीक्षण किया जा सके। दोनों यानों ने मिलकर मंगल-तल के करीब २० प्रतिशत क्षेत्र के चित्र लिये।

पूरे २४ करोड़ मील की लंबी यात्रा करने के बाद भी मेरिनर-६ निर्धारित समय से केवल ९ सेकेंड पीछे था। किंतु दोनों ही यान

योजना के अनुसार अपना पूरा काम नहीं कर पाये। मेरिनर-६ जब मंगल के वायुमंडल का परीक्षण आरंभ करने वाला था, तब उसका एक अवरक्त स्पेक्ट्रोफोटोमीटर खराब हो गया। यह उपकरण शून्य के नीचे २०५ अंश शतांश तापक्रम पर काम करने के लिए बनाया गया था। पर इस तापक्रम तक ठंडा न हो पाने के कारण वह काम नहीं कर सका।

मेरिनर-७ से पूरे सात घंटे तक संपर्क स्थापित नहीं किया जा सका, जिससे पृथ्वी स्थित नियंत्रक परेशानी में पड़ गये। अनुमान है कि वह किसी छोटी उल्का से टकरा गया, जिससे उसकी कार्यक्षमता में बाधा पहुंची। इसके बावजूद इस यान ने पूर्वनिर्धारित योजना का ८० प्रतिशत काम किया।

यानों द्वारा भेजे गये चित्रों के अनुसार मंगल अंडाकार है और उसके दक्षिणी छोर पर सफेद जमाव है। दोनों यानों ने मंगल के चारों ओर कोई चुंबकीय क्षेत्र भी नहीं पाया। मेरिनर-४ की तरह इन यानों को भी चंद्र-तल की तरह मंगल-तल बड़े-बड़े ज्वालामुखियों और खाइयों से भरा हुआ दिखाई दिया। कई खाइयों का व्यास २४० कि० मी० तक का हो सकता है।

लेकिन इस अभियान का एक प्रमुख प्रयोजन था—मंगल के वायुमंडल के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करना। इसी जानकारी द्वारा शायद यह संकेत मिल सकेगा कि मंगल जीवन के अस्तित्व के अनुकूल है या नहीं।

मेरिनर से प्राप्त समस्त सूचनाओं का अभी पूर्ण विश्लेषण नहीं हो पाया है। फिर भी इतना स्पष्ट होता है कि मंगल के वायुमंडल में कार्बन-डाइ-आक्साइड बहुत अधिक है; साथ ही आक्सिजन, हाइड्रोजन, कार्बन-मोनोक्साइड तथा वाष्प की मात्रा भी कुछ अंशों तक है। अमरीका के कोलोरेडो विश्वविद्यालय के भौतिकशास्त्री डा० चार्ल्स बार्थ के अनुसार मंगल के वायुमंडल में नाइट्रोजन गैस नहीं है।

वनस्पतियों के विकास के लिए अत्यावश्यक ऋतु-परिवर्तन के भी कोई संकेत अभी नहीं मिले हैं। मगर एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इस ग्रह के दक्षिणी भाग पर कुछ काले धब्बे दिखाई देते हैं, जो धीरे-धीरे सरकते हैं और सर्दियों में छोटे होते जाते हैं और वसंत में फिर से बढ़ने लगते हैं। कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि यह काई इत्यादि आरंभिक प्रकार की वनस्पति है, जो बर्फ के पिघलने से पनपती है।

दूरवीक्षण यंत्र द्वारा किये गये प्रयोगों से यह अंदाज लगाया गया था कि मंगल के वायुमंडल में बादल मौजूद हैं। लेकिन मेरिनर-यानों को इसका कोई स्पष्ट प्रमाण न मिल सका। अनुमान है, ये गर्द-गुबार के बादल हैं। यह भी पता चला है कि मंगल-तल के कोण नुकीले हैं, जिससे संदेह होता है कि शायद वहां कभी पानी नहीं बहा होगा। पानी बहने पर साधारणतः कोण गोल हो जाते हैं। कुछ चित्रों में ज्वालामुखी के कगार चपटे हैं। ये धूल के कारण बने बताये जाते हैं।

मंगल के दक्षिणी भाग पर जो सफेद जमाव है, वह जमी हुई कार्बन-डाइआक्साइड से वना है। लेकिन इस जमाव में हिम की उपस्थिति भी संभव है।

मेरिनर-यानों से प्राप्त जानकारी मंगल की वहुचर्चित नहरों के रहस्य को भी पूर्णतया स्पष्ट नहीं कर पायी है। दूरवीक्षण यंत्र से देखने पर मंगल की सतह पर कुछ रेखाएं-सी दीखती हैं। इन्हें १८७७ में इतालवी नक्षत्रविद श्चेपरेली ने 'नहरें' कहा था।

सन १९०६ तक डा० लावेल ने इस प्रकार की करीव ७०० नहरें खोज निकालीं। ये दक्षिणी भाग के काले धब्बे से जुड़ी हुई समझी जाती थीं। लावेल के अनुसार ये नहरें प्रगतिशील मंगलवासियों ने संकट-काल में दक्षिणी हिम-जमाव से पानी प्राप्त करने के लिए वनायी थीं।

वाद के वैज्ञानिकों के अथक परिश्रम के वाद भी इन नहरों की कोई संतोषपूर्ण व्याख्या नहीं हो सकी। डा० गिफोर्ड का कहना है कि ये रेत की पहाड़ियां हो सकती हैं, जो दूर से नहर-जैसी दिखाई देती हैं। लीविया में रेत की ऐसी पहाड़ियां पायी जाती हैं, जो ४०० मील से अधिक लंबी और ३ मील से अधिक चौड़ी होती हैं। यह भी अनुमान लगाया गया है कि ये तथाकथित नहरें शायद मंगल-तल की लंबी-चौड़ी खाइयों के तट हैं; क्योंकि कहीं-कहीं ये नहरें विशालतम नदियों से भी अधिक चौड़ी हैं।

नाइट्रोजन गैस जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण व आवश्यक वस्तु है। मंगल पर इस गैस के अभाव के कारण ऐसा समझा जाता है कि वहां जीवन का होना बहुत कठिन है—कम-से-कम उस प्रकार के जीव का, जो पृथ्वी पर है। कुछ वैज्ञानिकों ने पृथ्वी पर मंगल का कृत्रिम वातावरण वनाकर उसमें प्रयोग करके पता लगाया है कि वैक्टीरिया-जैसे वहुत छोटे प्रकार के जीवन वैसे वातावरण में पनप सकते हैं। इसलिए हो सकता है कि वहां पृथ्वी के जीवों से भिन्न प्रकार के जीवन का अस्तित्व हो।

जो भी हो, मेरिनर द्वारा प्राप्त आंकड़ों के समुचित विश्लेषण से और आगामी यान-प्रयोगों से ही इसका फैसला हो सकेगा कि मंगल पर जीवन है अथवा नहीं।

अव तक की योजना के अनुसार १९७१-७३ के बीच में कई यान मंगल की ओर भेजे जायेंगे तथा १९७३ में वाईकिंग-अभियान के अंतर्गत दो यान मंगल की परिक्रमा करेंगे, तदुपरांत मंगल-तल पर उतरने का प्रयास होगा। अपोलो-११ और दो मेरिनर-यानों की उपलब्धि से प्रोत्साहित होकर अंतरिक्ष-विशेषज्ञ वर्नर वान ब्राउन ने तो यहां तक कहा है कि यदि पर्याप्त धन और सहायता मिले, तो १९८२ तक मनुष्य मंगल पर उतरने में सफल हो जायेगा।

[हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद्, बंबई के सौजन्य से]

★

संचालक
श्रीगोपाल नेवटिया

प्रधान संपादक
सत्यकाम विद्यालंकार

संपादक
नारायण दत्त

सहकारी
गिरिजाशंकर त्रिवेदी

सज्जाकार
ठाकोर राणा

प्रबंध-संचालक
हरिप्रसाद नेवटिया

विज्ञापन-व्यवस्थापक
महेंद्र मेहता

नवनीत
[हिन्दी डाइजेस्ट]

वर्ष १९ जनवरी १९७० अंक १

इस अंक में

चित्रसज्जा : अबू, जगदीश गुप्त, काफ्का, ओके, शेणै, अनजान

संपादकीय पत्र-व्यवहार का पता : नवनीत प्रकाशन लिमिटेड ३४१ तारदेव, बंबई ३४.
व्यवस्था संबंधी पत्र-व्यवहार का पता : नवनीत प्रकाशन, लिमिटेड, अशोप बिल्डिंग
३३५, बेलासिस रोड, बंबई ३४.

श्री हरिप्रसाद नेवटिया द्वारा नवनीत प्रकाशन लि०, ३४१ तारदेव, बंबई-३४ के लिए प्रकाशित तथा श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, ३६।४८ खेतवाड़ी बैक रोड, बंबई-४ में मुद्रित।

जनवरी
१९७०

नवनीत
[हिन्दी डाइजेस्ट]

संसार के नूतन-पुरातन ज्ञान-विज्ञान का प्रतिनिधि मासिक

एवरेस्ट और जनता

भारत में ऊंचे-ऊंचे पहाड़ हो गये। बहुत ऊंचे एवरेस्ट, बहुत ऊंचे मनुष्य। और आम जनता का लेवल (स्तर) नीचे रहा। मुझे यूरोप का दर्शन इससे भिन्न होता है। यूरोप में ऊंचे पहाड़ शायद कम ही हैं, लेकिन आम जनता का स्तर ऊंचा है—जो हमारे यहां है, उससे ऊंचा। तो आध्यात्मिक दृष्टि से सोचने के लिए भी यह चीज सामने आती है।

मैंने कई दफा कहा है कि आगे जो युग है, वह गणसेवकत्व का है, नेतृत्व का नहीं। इसलिए कोई एक ऊंचा मनुष्य हो और बाकी सब लोग नीचे हों, उस मनुष्य की जयजयकार चले और उसके कारण लोगों का थोड़ा उत्थान हो, तो वह पर्याप्त नहीं है। इसके आगे यह करना होगा कि सारे समाज का चित्त ऊपर उठायें। वह भले उतना न उठे, जितना व्यक्ति का उठा था, फिर भी उसकी शक्ति ज्यादा होगी। और मैंने कहा कि चित्त ऊपर उठाने में एक प्रेरणा से प्रेरित समूह काम करेगा, तो आसानी होगी।—विनोबा भावे

अग्नि से गुरुदीक्षा

डा० रामनाथ वेदालंकार

कमल का पुत्र उपकोसल आचार्य सत्यकाम के समीप शिष्यभाव से पहुंचा। ब्रह्मचर्य-पूर्वक बारह वर्ष तक वह अग्नियों की परिचर्या करता रहा। आचार्य अन्य अंतेवासियों का समावर्तन कर देते थे; किंतु उपकोसल का नहीं करते थे।

एक दिन आचार्य-पत्नी ने आचार्य से कहा—यह ब्रह्मचारी पर्याप्त तप कर चुका है, इसने कुशलता से अग्नियों की उपासना की है, इसे भी क्यों न विद्या का उपदेश कर स्नातक बना दीजिये ? किंतु आचार्य बिना उपदेश किये ही प्रवास पर चले गये। संभवतः उनके मन में आया होगा कि जो अग्नियों से कुछ ग्रहण नहीं कर सका, उसकी अग्नि-परिचर्या किस काम की !

शिष्य के मन को बहुत ठेस लगी। उसने अनशन आरंभ कर दिया। आचार्य-पत्नी ने कहा—हे ब्रह्मचारी ! खाओ, खाते क्यों नहीं ? वह बोला—मेरे अंदर अनेक कामनाएं हैं, मैं आधि-व्याधियों से परिपूर्ण हूं, नहीं खाऊंगा।

तब अग्नियों ने आपस में कहा—इस ब्रह्मचारी ने बहुत तप किया है, कुशलता से हमारी आराधना की है, क्यों न हम ही इसे उपदेश करें ? ऐसा सोच उन्होंने उपकोसल से कहा—ब्रह्म प्राण है, ब्रह्म 'क' है, ब्रह्म 'ख' है। वह बोला—यह तो मैं जानता हूं कि ब्रह्म प्राण है पर 'क' और 'ख' नहीं जानता। अग्नियों ने कहा—जो 'क' है वही 'ख' है, जो 'ख' है वही 'क' है।

प्रथम तो उपकोसल कुछ चकराया, उसे यह पहेली-सी लगी। किंतु अब तक आचार्य का उपदेश न मिलने से उसके मन को पहले ही आघात लगा हुआ था। इस अवसर को वह हाथ से नहीं जाने देना चाहता था। अग्नियां कृपालु हो रही थीं। क्षण-भर उसने ध्यान केंद्रित किया और समझ गया—ब्रह्म प्राण है, जीवन है; ब्रह्म 'क' है, कमनीय और आनंदमय है; ब्रह्म 'ख' है, आकाश के समान व्यापक और सबके हृदयाकाश में विद्यमान है।

ब्रह्म का यह स्वरूप भासित होते ही उसका चेहरा खिल उठा। ब्रह्मज्ञान का ...

अवबो...

पात्र हो चला था। उसके हृदय में और अधिक पिपासा जाग उठी। अब एक-एक अग्नि अलग-अलग उसे उपदेश दे रही थी।

चार सूत्र गार्हपत्य अग्नि ने दिये—पृथिवी, अग्नि, अन्न और आदित्य। पृथिवी पर जो विभूति है, वह ब्रह्म की है; अग्नि में जो विभूति है, वह ब्रह्म की है; अन्न में जो विभूति है, वह ब्रह्म की है; आदित्य में जो विभूति है, वह ब्रह्म की है।

चार सूत्र दक्षिणाग्नि ने दिये—पानी, दिशाएं, नक्षत्र और चंद्रमा। पानी में जो विभूति है, वह ब्रह्म की है; दिशाओं में जो विभूति है, वह ब्रह्म की है; नक्षत्रों में जो विभूति है, वह ब्रह्म की है; चंद्रमा में जो विभूति है, वह ब्रह्म की है।

चार सूत्र आहवनीय अग्नि ने दिये—प्राण, आकाश, द्यौ और विद्युत्। प्राणों में जो विभूति है, वह ब्रह्म की है; आकाश में जो विभूति है, वह ब्रह्म की है; द्युलोक में जो विभूति है, वह ब्रह्म की है; विद्युत् में जो विभूति है, वह ब्रह्म की है।

अग्नियों ने कहा—हे उपकोसल, इतनी आत्मविद्या तुझे हमने दी। किंतु आत्मविद्या में तेरी वास्तविक गति तो आचार्य ही करायेंगे।

आचार्य भी आ पहुंचे। उसे देखते ही बोले—उपकोसल, ब्रह्मवित् के समान तेरा मुख प्रतीत हो रहा है। किसने तुझे उपदेश दिया है? शिष्य ने "कौन मुझे उपदेश देता भगवन्?" कहकर पहले तो छिपाना-सा चाहा; किंतु फिर बता दिया कि किसी मनुष्य ने मुझे उपदेश नहीं दिया, अपितु ऐसी-ऐसी आकृतियों वाली अग्नियों से ही मैंने कुछ सीखा है।

उन्होंने तुझे क्या कहा है? यह पूछने पर उपकोसल ने जो-जो उपदेश ग्रहण किया था, सब सुना दिया। इस पर आचार्य बोले—हे सोम्य, उन्होंने तो तुझे ब्रह्म के निवास-भूत लोक ही बतलाये हैं। मैं तुझे वह ज्ञान दूंगा, जिसके ज्ञाता को पाप-कर्म का लेप नहीं होता—ठीक वैसे ही जैसे पुष्कर-पत्र में पानी लिप्त नहीं होता।

दीजिये, भगवन्—उपकोसल ने विनयपूर्वक कहा।

आचार्य बोले—देखो, यह जो आंख में पुरुष दीखता है, यही आत्मा है, यही अमृत है, अभय है, ब्रह्म है।

आज से पूर्व उपकोसल इस उपदेश का अर्थ संभवतः यही लेता कि आंख में जो देखने वाले का प्रतिबिंब दिखाई देता है, वही ब्रह्म है; किंतु अब तो वह सावधान हो चुका था। वह कुछ

अग्नि
एक प्राचीन मूर्ति की शेणै द्वारा अनुकृति

समझा, कुछ नहीं समझा ।

आचार्य सत्यकाम ने अपना कथन जारी रखा :

"आंख में घी या पानी जो कुछ भी डालते हैं, किनारों पर आ जाता है । आंख की पुतली उससे लिप्त नहीं होती । ब्रह्म भी निर्लेप है ।

"आंख को **संयद्वाम** कहते हैं, इसमें सब सौंदर्य केंद्रित हैं । ब्रह्म भी 'संयद्वाम' या सौंदर्यों का केंद्र है । जो इस रहस्य को जान लेता है, सब सौंदर्य उसके पास खिंचे चले आते हैं ।

"आंख को **वामनी** कहते हैं, यह सुंदरों को मार्ग दिखाती है । ब्रह्म भी 'वामनी' है, सुंदरों को मार्ग दिखाता है । जो इस रहस्य को जान लेता है, सबको मार्ग दिखाने वाला हो जाता है ।

"आंख को **भामनी** कहते हैं, यह शरीर में सबसे अधिक चमकती है । ब्रह्म भी 'भामनी' है, सर्वत्र चमकता है । जो इस रहस्य को जान लेता है, वह भी चमकने लगता है ।"

उपकोसल देर तक आचार्य की आंख में कुछ खोजता रहा । उसने चाक्षुष पुरुष के दर्शन पा लिये । अब आचार्य की दृष्टि में वह समावर्तन-योग्य हो गया था ।

(छांदोग्य उप० ४.१०.१५ के आधार पर)

संगीत

– संत फ्रांसिस असीसी

ओ मेरे स्वामी !
मुझे बना लो साधन अपनी परम शांति का ।
जहां-जहां है घृणा वहां प्रेम का बीज लगाऊं ।
जहां-जहां है निर्दय हिंसा वहां क्षमा का वृक्ष उगाऊं ।
जहां पूर्वग्रह है, संशय है वहां दीप रख दूं आस्था का ।
जहां-जहां है घोर निराशा वहां गीत गाऊं आशा का ।
जहां कहीं भी अंधकार है मैं प्रकाश की किरण जगाऊं ।
और जहां हो दुख का डेरा मैं खुशियों की तान उठाऊं ।

अनुवादक: दिनकर सोनवलकर

रवींद्रनाथ ठाकुर

जहां मानव ने मुक्ति को बांध रखा है

महासमुद्र के सौ वरस के कल्लोल को अगर कोई इस तरह वांधकर रख पाता कि वह सोते हुए वच्चे की तरह चुप पड़ा रहता, तो उस नीरव महाशब्द के साथ इस लाइब्रेरी की तुलना की जा सकती। यहां भाषा मौन है, प्रवाह स्थिर हो गया है, मानव-आत्मा का अमर आलोक काले अक्षरों की शृंखला से कागज के कारागार में बंदी है। ये अगर सहसा विद्रोह करके, निस्तब्धता को तोड़कर, अक्षर की बेड़ियों को जलाकर एकवारगी वाहर आ जाते! हिमालय के शिखर पर जिस तरह कड़ी वर्फ में न जाने कितनी वाढ़ें वंधी हुई हैं, उसी तरह इस लाइब्रेरी में मानव-हृदय की वाढ़ को वांधकर रखा गया है।

विजली को आदमी लोहे के तार से बांधता है, लेकिन कौन जानता था कि वह संगीत को, हृदय की आशा को, जागृत आत्मा की आनंद ध्वनि को, आकाश की दव-वाणी को कागज में मोड़कर रख सकेगा! कौन जानता था कि मनुष्य अतीत को वर्तमान में इस प्रकार बंदी करेगा! अतलस्पर्शी काल समुद्र पर वस एक-एक पुस्तक से सेतु बांध देगा!

लाइब्रेरी में हम लोग हजार रास्तों की चौमुहानी पर खड़े हैं। कोई रास्ता अनंत समुद्र की ओर उठा है, कोई रास्ता अनंत शिखर की ओर उठा है, कोई रास्ता मानव-हृदय की अतल गहराइयों में उतरा है। जिधर जिसका जी चाहे दौड़े, कहीं कोई बाधा नहीं। मनुष्य ने अपनी मुक्ति को इस जरा-सी जगह में बांधकर रख लिया है।

शंख में जिस तरह समुद्र का शब्द सुनाई पड़ता है, उसी तरह तुम क्या इस लाइब्रेरी में हृदय के उत्थान-पतन का शब्द सुनते हो? यहां पर जीवित और मृत व्यापारियों का हृदय पास-पास एक ही मुहल्ले में रहता है। यहां पर वाद और प्रतिवाद दो भाइयों की तरह साथ-साथ रहते हैं। संशय और विश्वास, संधान और आविष्कार यहां पर अंग से अंग मिलाकर रहते हैं। यहां पर दीर्घ-प्राण और अल्पप्राण परम धैर्य और शांति के साथ जीवन-यात्रा का निर्वाह कर रहे हैं, कोई किसी की उपेक्षा नहीं करता।

कितने नदी, समुद्र, पर्वत पार करके मानव का कंठ यहां पर पहुंचा है—कितने सैकड़ों वर्षों से मैदान से यह स्वर आ रहा है। आओ, यहां आओ, यहां आलोक के जन्म-संगीत का गान हो रहा है।

अमृत लोक की पहली वार खोज करके जिन-जिन महापुरुषों ने जब कभी अपने चारों ओर के मनुष्यों को बुलाकर कहा था-तुम सब अमृत पुत्र हो, तुम दिव्यधाम में वास करते हो। उन्हीं महापुरुषों का कंठ हजारों भाषाओं में, हजारों वर्षों से इस लाइब्रेरी में प्रतिध्वनित हो रहा है।

खलीफा हारून अल रशीद बगदाद शहर का निरीक्षण करने निकला था। एक आलीशान इमारत पर 'मदरसा अब्बासिया' की तख्ती देखकर उसने प्रधान मंत्री से पूछा-"क्या हमारे शहजादे अमीन व मामून इसी मदरसे में तालीम पाते हैं?" प्रधान मंत्री के हां कहने पर खलीफा घोड़े पर से उतरकर मदरसे का मुआयना करने अंदर प्रविष्ट हुआ। उस समय वहां सफेद दाढ़ी वाला एक वृद्ध हाथ-मुंह धो रहा था। वह खलीफा के बेटे अमीन व मामून का उस्ताद था। हाथ-मुंह धोने के पश्चात् उसने खलीफा को सलाम किया। सलाम का जवाब देते हुए खलीफा ने कहा—"हम मदरसे का मुआयना करने आये थे; लेकिन अफसोस है कि आपकी तालीम बहुत अधूरी है।" फिर खलीफा ने कहा—"आप जब नमाज के लिए हाथ-मुंह धो रहे थे, उस समय आपके शागिर्दों को चाहिये था कि वे पानी लाकर देते और जरूरत पड़ने पर पैरों पर भी पानी डालते। उस्ताद का स्थान बड़ा ऊंचा है। उसकी खिदमत करना हर शागिर्द का फर्ज होना चाहिये। अफसोस, आपने यह तालीम हमारे शहजादों को नहीं दी।"

उस्ताद हक्का-बक्का खड़ा देखता रहा। शहजादे अमीन व मामून की तो मारे शर्म के गर्दनें झुकी हुई थीं।

—हसन जमाल छीपा

★

चिंतन-पल्लव

द्वे कर्मणी नरः कुर्वन्नस्मिंल्लोके विरोचते ।
अब्रुवन् परुषं कञ्चिदसतोऽनर्चयंस्त था ।।

—किसी के प्रति कठोर वचन न बोलना और असत्पुरषों का आदर न करना, इन दो कार्यों से मनुष्य इस लोक में शोभा को प्राप्त होता है ।

पञ्च त्वाऽनुगमिष्यन्ति यत्र यत्र गमिष्यसि ।
मित्राण्यमित्रा मध्यस्था उपजीव्योपजीविनः ।।

—तुम जहां कहीं भी जाओगे, वहां-वहां मित्र, शत्रु, उदासीन, आश्रय देने वाले, तुम पर आश्रित रहने वाले, ये पांच तुम्हारे साथ लगे ही रहेंगे ।

षड् दोषा पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता ।
निद्रा तंद्रा भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रिता ।।

—जो अपना कल्याण चाहे, उसे निद्रा, तंद्रा (निद्रा से पूर्व की अवस्था), भय, क्रोध, आलस्य और विलंब से काम करने की आदत, इन छः दुर्गुणों को छोड़ देना चाहिये ।

आरोग्यमानृण्यमविप्रवासः सद्भिर्मनुष्यैः सह संप्रयोगः ।
स्वप्रत्यया वृत्तिरभीतवासः षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन् ।।

—नीरोग होना, ऋणी न होना, सदा प्रवास निरत न रहना, सज्जनों का साथ, स्वाधीन आजीविका और भयरहित निवास, ये इस संसार के छः बड़े सुख हैं ।

अष्टौ गुणा पुरुषं दीपयन्ति प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च ।
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च ।।

—बुद्धि, कुलीनता, इंद्रिय-संयम, अध्ययन, शरता, मित-भाषण, अपनी शक्ति के अनुसार दान देना और कृतज्ञता, ये आठ गुण मनुष्य को दीप्तिमान बनाते हैं ।

— महाभारत से डा० मंगलदेव शास्त्री द्वारा संकलित

रामकथा-सरित

डा० कामिल बुल्के

रामकथा काव्य की कथावस्तु मात्र न रह-कर आदर्श जीवन का दर्पण भी बन गयी है; वह भारतीय संस्कृति के उच्च आदर्शवाद का उज्ज्वलतम प्रतीक है।

प्राचीन भारतीय साहित्य अर्थात् वैदिक साहित्य, बौद्ध त्रिपिटक, महाभारत तथा वाल्मीकि-कृत रामायण के अनुशीलन से स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक काल के बाद, किंतु चौथी शताब्दी ई० पू० के कई शताब्दियों पहले इक्ष्वाकु वंश के राम-विषयक आख्यान-काव्य की उत्पत्ति हुई थी। स्वयं वाल्मीकि-रामायण में इसकी ओर निर्देश है:

इक्ष्वाकूणामिदं तेषां राज्ञां वंशे महात्मनाम्।
महदुत्पन्नमाख्यानं रामायणमिति श्रुतम्॥

हरिवंश पुराण में भी रामकथा के अत्यंत संक्षिप्त वर्णन के अनंतर तत्संबंधी पुरानी गाथाओं का उल्लेख है :

गाथा अप्यत्र गायन्ति ये पुराणविदो जनाः।

चौथी शताब्दी ई० पू० तक इस आख्यान-काव्य का पर्याप्त प्रचार हो चुका था। उसी समय के लगभग, वाल्मीकि ने राम-विषयक स्फुट आख्यान-काव्य एक ही कथासूत्र में ग्रथित कर भारत के आदिकाव्य की सृष्टि की और अपने इस महाप्रबंध-काव्य का नाम 'रामायणम्' अर्थात् 'राम का पर्यटन' रखा।

परवर्ती विकास को ध्यान में रखकर हम निस्संकोच कह सकते हैं कि रामायण की रचना भारतीय साहित्य के इतिहास की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना है।

प्राचीन भारत में कुशीलव सारे देश में घूमते थे और जन-साधारण को आख्यान-काव्य सुनाकर जीविका चलाते थे। इस कारण वे 'काव्योपजीवी' के नाम से भी विख्यात थे। वाल्मीकि संभवतः स्वयं ही कुशीलव थे। उनकी रचना दूसरे कुशी-

लवों की सामान्य संपत्ति बन गयी और वे समस्त उत्तर भारत में रामायण का प्रचार करने लगे।

कुशीलवों को किसी हस्तलिपि की आवश्यकता नहीं थी, रामायण उन्हें कंठस्थ ही था। जिन गायकों में काव्य-कौशल था, वे अपने श्रोताओं की रुचि का ध्यान रखकर लोकप्रिय प्रसंग बढ़ाने और दूसरे शब्दों में दोहराने लगे। इस तरह आदिकाव्य का कलेवर धीरे-धीरे बढ़ने लगा।

रामायण बहुत समय तक मौखिक रूप से ही प्रचलित रही। बाद में उसे भिन्न-भिन्न परंपराओं के आधार पर लिपिबद्ध किया गया है, जिससे आजकल हमें मुख्य रूप से तीन पाठ प्राप्त हैं। दाक्षिणात्य पाठ अपेक्षाकृत अधिक व्यापक रूप से प्रचलित है; गौडीय पाठ पूर्ण भारत की हस्तलिपियों के आधार पर संपादित किया गया है; और पश्चिमोत्तरीय पाठ पहले-पहल लाहौर के दयानंद महाविद्यालय की ओर से प्रकाशित हुआ था।

जो श्लोक इन तीनों पाठों में सामान्य रूप से मिलते हैं, वे एक तिहाई से भी कम हैं। किंतु कथानक की दृष्टि से इनमें जो अंतर पाया जाता है, वह गौण ही है। अतः इसमें किसी भी संदेह की गुंजाइश नहीं रह जाती कि वाल्मीकि ने रामकथा का जो रूप प्रस्तुत किया था, वह प्रचलित रामायण में सुरक्षित है।

प्रारंभ ही से वाल्मीकि की रचना के संबंध में लोगों की यह धारणा रही कि यह रचना अमर है। एक प्राचीन श्लोक इस प्रकार है:

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति॥

—जब तक पहाड़ खड़े रहेंगे और पृथ्वी पर नदियां बहेंगी, तब तक रामकथा दुनिया में प्रचलित रहेगी।

वास्तव में रामायण न केवल संस्कृत-साहित्य का प्रथम महाकाव्य है, जिसकी शैली से परवर्ती कवि प्रभावित हुए, वरन् उसकी कथावस्तु भी समस्त भारतीय भाषाओं के साहित्य में व्याप्त है। यहां पर अत्यंत विस्तृत रूप से रामकथा-साहित्य की रचनाओं के नाम गिनाने की अपेक्षा, उस साहित्य के विकास-क्रम की रूपरेखा प्रस्तुत करना अधिक उचित जान पड़ता है।

आदि रामायण नरकाव्य था। वाल्मीकि ने भारतीय जनसाधारण के सामने मर्यादा-पुरुषोत्तम राम को एक चरित्रवान्, सत्य-प्रतिज्ञ तथा आदर्श क्षत्रिय के रूप में प्रस्तुत किया था। रामायण की लोकप्रियता के साथ-साथ राम का भी महत्त्व बराबर बढ़ता रहा। दूसरी ओर उस समय भारत में अवतारवाद की भावना फैलती जा रही थी। इसका परिणाम यह हुआ कि संभवतः प्रथम शताब्दी ई० पू० से कृष्ण की भांति राम को भी विष्णु का अवतार माना गया।

इसके अतिरिक्त बौद्धों ने राम को बोधिसत्त्व मानकर रामकथा को अनेक जातकों की कथावस्तु के रूप में प्रस्तुत किया। जैनों ने भी रामकथा को अपनाया और राम-

['आकाशवाणी' से साभार]

रामकथा के विशेषज्ञ, हिन्दी कोशकार
डा० कामिल बुल्के

लक्ष्मण तथा रावण को अपने विशिष्ट महा-पुरुषों में स्थान दिलाया। विमल सूरि ने अपने 'पउमचरिअ' में पहले-पहल विस्तार से रामकथा का जैन रूप प्रस्तुत किया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दूसरी, तीसरी शताब्दी ई० तक रामकथा भारतीय संस्कृति में इतने व्यापक रूप से फैल गयी थी कि साहित्यिक क्षेत्र के अतिरिक्त, राम को उस समय के तीन प्रमुख भारतीय धर्मों में भी एक निश्चित स्थान प्राप्त हुआ—ब्राह्मण धर्म में विष्णु के अवतार, बौद्ध धर्म में बोधिसत्त्व और जैन धर्म में आठवें बलदेव के रूप में।

बौद्ध तथा जैन रामकथाओं की अंत-रंग समीक्षा से यह निर्विवाद रूप से स्पष्ट हो जाता है कि वाल्मीकि-रामायण ही उनका मूल आधार है। यह निष्कर्ष अन्य राम-कथाओं पर भी लागू है।

आगे चलकर संस्कृत तथा अन्य भार-तीय भाषाओं के साहित्य में ही नहीं, भारत के निकटवर्ती देशों के साहित्य में भी—विशेष रूप से हिन्देशिया तथा हिन्दचीन में—असंख्य रचनाओं की सृष्टि हुई, जिनका कथानक रामकथा ही है।

आधुनिक भारतीय भाषाओं का सर्व-प्रथम महाकाव्य पूर्णरूपेण रामायण है। बहुत-सी परवर्ती रचनाएं रामकथा से संबंध रखती हैं और उन भाषाओं का सबसे लोकप्रिय काव्य-ग्रंथ प्राय: कोई रामायण ही है। कम्ब-कृत तमिल रामायण, तेलुगु द्विपदरामायण, मलयालम रामचरितम्, कन्नड तोरवे-रामायण, असमिया माधव-कंदली रामायण, बंगाली कृत्तिवास-रामा-यण, हिन्दी में रामचरितमानस, उड़िया रामदास-रामायण और मराठी भावार्थ-रामायण विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। प्रांतीय विशेषताओं के बावजूद इन सब रचनाओं पर वाल्मीकीय रामकथा की छाप अत्यंत स्पष्ट है।

अत: रामकथा-साहित्य का मूलस्रोत वाल्मीकि की प्रतिभा ही है। उन्होंने अपने समय में प्रचलित राम-विषयक गाथाओं के आधार पर रामकथा का एक ऐसा रूप प्रस्तुत किया, जिसकी बराबरी विश्व-साहित्य का कोई भी कथानक नहीं कर सकता। मानव-हृदय को आकर्षित करने की जो शक्ति रामकथा में है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

मैथिलीशरण गुप्त 'साकेत' में वाल्मीकि की इसी बात की ओर संकेत करते हैं :

राम तुम्हारा वृत्त स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि बन जाय सहज संभाव्य है।।

रामकथा की लोकप्रियता का दूसरा कारण यह है कि वाल्मीकि ने अपने काव्य में कला और आदर्श का अभूतपूर्व समन्वय स्थापित किया है; इससे आदर्श-प्रिय भारतीय जनता प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती। रामकथा के इस लोकसंग्रही भाव का उल्लेख बहुधा किया गया है। जैमिनीय अश्वमेध में रामचरित को स्वच्छ मनोवृत्ति प्रदान करने वाला माना गया है—रामचरितं सन्मनोवृत्तिप्रदम्। पद्मपुराण के पाताल-खंड के अनुसार पातिव्रत्य, भ्रातृस्नेह, गुरु-भक्ति, स्वामिसेवा आदि के साक्षात् आदर्श रामायण में प्रस्तुत हैं।

एक डच प्रोफेसर ने जावा के किसी गांव में एक मुसलमान को मलय भाषा का रामायण पढ़ते देखकर पूछा—आप रामायण क्यों पढ़ते हैं? उत्तर मिला—मैं रामायण इसलिए पढ़ता हूं कि और अच्छा मनुष्य बन जाऊं।

इस तरह हम देखते हैं कि रामकथा, काव्य की कथावस्तु मात्र न रहकर आदर्श जीवन का दर्पण भी बन गयी। भारत की समस्त आदर्श-भावनाएं रामकथा में, विशेषत: मर्यादा-पुरुषोत्तम राम तथा पतिव्रता सीता के चरित्र-चित्रण में केंद्रीभूत हुईं, जिससे रामकथा भारतीय संस्कृतिके आदर्शवाद का उज्ज्वलतम प्रतीक बन गयी है।

अवतारवाद के कारण रामकथाओं में अलौकिकता की मात्रा अवश्य धीरे-धीरे बढ़ने लगी। फिर भी शताब्दियों तक रामकथा का मुख्य दृष्टिकोण धार्मिक न होकर आदर्शवादी तथा साहित्यिक ही रहा। यह संस्कृत साहित्य के स्वर्णकाल के महाकाव्यों तथा नाटकों से स्पष्ट है। रामभक्ति के प्रादुर्भाव से रामकथा के आदर्शवाद को बहुत बल मिला।

तमिल आल्वारों की रचनाओं में प्रौढ़ रामभक्ति के प्राचीनतम उद्गार मिलते हैं। बाद में रामानुज-संप्रदाय में रामभक्ति-विषयक संहिताओं और उपनिषदों की रचना हुई और आगे चलकर रामानुज-संप्रदाय के द्वारा रामभक्ति जनसाधारण में फैल गयी। उस समय से अध्यात्म-रामायण, आनंद-रामायण, अद्भुत-रामायण आदि सांप्रदायिक रचनाओं की सृष्टि होने लगी, जिनमें रामकथा को एक नवीन दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया।

फलस्वरूप समस्त परवर्ती भारतीय रामकथाओं का वातावरण पूर्ण रूप से बदल जाता है। दुष्ट पात्रों की उग्रता तथा कुटिलता रामभक्ति में लीन हो जाती है और वे सब मुक्ति के अधिकारी बन जाते हैं। यहां तक कि रावण भी पतित-पावन राम के संसर्ग से पवित्र हो जाता है। यह मानकर कि जो कोई राम द्वारा मारा जाता है, वह परमपद प्राप्त कर लेता है, रावण सीता को ले जाने का निश्चय करता है और राम के हाथ से मरकर सायुज्य मुक्ति प्राप्त

करता है।

इस तरह रामकथा आदर्श जीवन का दर्पण मात्र न रहकर भक्तवत्सल भगवान राम की इहलीला में परिणत हो जाती है।

अधिक संभव है कि राम विषयक प्राचीन आख्यान-काव्य ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित था। फिर भी रामकथा की प्रतीकात्मक व्याख्याओं की कमी नहीं है। एक मत के अनुसार रामायण एक रूपक मात्र है, जिसके द्वारा दक्षिण की ओर आर्य सभ्यता अथवा कृषि का प्रसार दिखलाया गया है। एक दूसरे मत के अनुसार वाल्मीकि का समस्त काव्य ब्राह्मण तथा बौद्ध धर्मों के संघर्ष का प्रतीक है। राक्षसों से वास्तव में बौद्धों का अभिप्राय है। इतना ही निश्चित है कि इस प्रकार की कल्पनाएं आदिकवि के मन से कोसों दूर थीं।

ऐतिहासिक आधार स्वीकार करते हुए भी मैं शंकराचार्य का एक श्लोक उद्धृत कर, रामकथा के प्रतीकों के माध्यम से पाठकों के प्रति यह शुभकामना प्रकट करना चाहता हूं कि मोह का समुद्र पारकर राग और द्वेष रूपी राक्षसों को मारकर उनकी अंतरात्मा शांतिसीता से संयुक्त होकर राम की तरह विराजमान हो :

तीर्त्वा मोहार्णवं हत्वा रागद्वेषांश्च राक्षसान्।
शांतिसीतासमायुक्त आत्मरामो विराजते॥

(आकाशवाणी, दिल्ली से प्रसारित)

★

तीन लघुकथाएं

अन्याय : "मैं सुबह से रात तक काम करता हूं, परंतु कोई मेरा कृतज्ञ नहीं है," अच्छे दांत ने शिकायत के स्वर में कहा—"जबकि खराब हो चुके निकम्मे दांत में सोना भर जाता है। क्या यह अन्याय नहीं है? भला इस सम्मान का हकदार बनने के लिए उसने क्या किया है?"

* * *

सेब : सेब के साथियों को पेड़ से तोड़ा जा रहा था, तो वह पत्तों के पीछे छिप गया। वह लोगों के हाथों में नहीं पड़ना चाहता था। उसने सोचा—"बहुत संभव है, मेरा मुरब्बा बना दिया जाये। यह तो अच्छी बात नहीं होगी।" लेकिन पेड़ पर अकेले रहना भी खुशी की बात नहीं थी। दोस्त साथ हों, तो दिल लगा रहता है। उसने सोचा—"क्या मैं बाहर झांककर देखूं? या न देखूं? अगर देख ही लूं तो? क्या यह ठीक रहेगा? लेकिन अगर ......" शंका का कीड़ा सेब को अंदर-ही-अंदर खाने लगा। वह उसे खाता गया, यहां तक कि अंत में सेब का कुछ भी बाकी न रहा।

* * *

घंटा : अपने कर्तव्य के महत्त्व को पूरी तरह समझते हुए घंटा कहीं नहीं गया। वह समय पर पहरेदार बनकर खड़ा रहा।

—फेलिक्स क्रिविन

★

संयोग और संजीवनी

चिकित्सा जैसे शास्त्र में भी सबकी सब नयी खोजें विशुद्ध वैज्ञानिक पद्धति का ही परिणाम नहीं होतीं। कई बार भाग्य या संयोग भी प्रयोगों में हस्तक्षेप कर बैठते हैं और कुछ ऐसी अप्रत्याशित चीज प्रयोगकर्ता के हाथ लग जाती है, जो बहुत उपयोगी सिद्ध होती है।

श्रीमती अन्नारीटा फुक्स और गोर्म वैग्नर न्यूयार्क नगर की पाप्युलेशन कौंसिल के अनुदान से कोपनहेगन विश्वविद्यालय में खरगोशों पर कुछ प्रयोग कर रहे थे। प्रसव के तुरंत बाद माता के शरीर में होने वाले परिवर्तनों के विषय में ज्यादा-से-ज्यादा जानकारी पाना इन प्रयोगों का उद्देश्य था।

आक्सिटोसीन नामक हार्मोन में इनकी विशेष दिलचस्पी थी। यह हार्मोन पिच्यु-टरी ग्रंथि से निकलता है और गर्भाशय को प्रभावित करता है। प्रसव के तुरंत बाद के दिनों में बच्चों को स्तन्यपान कराने से इस हार्मोन के उत्पादन को बढ़ावा मिलता है और यह रसायन गर्भाशय के संकोचन में हाथ बंटाता है।

श्रीमती फुक्स यह देखना चाहती थीं कि क्या मद्यसार (अल्कोहल) का इस संकोचन-क्रिया पर कोई असर पड़ता है। मादा खर-गोशों को मद्यसार का इंजेक्शन देने पर देखा गया कि स्तन्यपान कराने पर भी गर्भाशय का संकोचन नहीं होता। लक्षणों से प्रतीत होता था कि मद्यसार मादा खरगोश में आक्सिटोसीन के उत्पादन को रोक देता है।

इस प्रयोग की विस्तृत रिपोर्ट श्रीमती फुक्स ने ब्रिटेन की विख्यात विज्ञान-पत्रिका 'नेचर' में प्रकाशित करायी। शायद ही किसी ने उस पर विशेष ध्यान देना आव-श्यक समझा। किंतु श्रीमती फुक्स के पति डा० फ्रिट्ज फुक्स को पूरा विश्वास था कि उनकी पत्नी की खोज महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने दलील दी कि यदि अल्कोहल प्रसव के बाद गर्भाशय के संकुचन को रोकता है, तो प्रसव के पूर्व भी रोक सकता है और इस प्रकार

शीला दिवेकर द्वारा प्रस्तुत

दिन पूरे होने से पहल होने वाले प्रसवों को रोकने में इससे मदद मिलनी चाहिये। वे किसी गर्भवती स्त्री पर इसका परीक्षण करके देखना चाहते थे।

संयोग या भाग्य ने उनका साथ दिया। श्रीमती फुक्स जब चौथी बार गर्भवती थीं, सातवें महीने के आरंभ में ही उन्हें प्रसव-वेदना होने लगी। दो दिन तक उन्हें सोडा के साथ एक-एक पाइंट ह्विस्की का सेवन कराया गया। गर्भाशय का संकोचन बंद हो गया। आठ सप्ताह बाद उन्होंने ठीक समय पर एक स्वस्थ शिशु को जन्म दिया।

प्रयोग और परीक्षण अभी जारी है—बेशक श्रीमती फुक्स पर नहीं। अब तक ३०० गर्भिणियों पर यह प्रयोग किया जा चुका है और उनमें से ७० प्रतिशत मामलों में असामयिक प्रसव को रोकने और बच्चे को बचाने में सफलता मिली है। कुछ मामलों में तो पूरे पंद्रह हफ्ते तक प्रसव रोका जा सका है।

गाल्वानी और मेंढ़क की टांगें

× × ×

तपेदिक के कीटाणु का पता लगाने वाले रावर्ट कोच की गणना मानव-जाति के महान उपकारकों में होती है। वे एन्थ्रैक्स नामक पशु-रोग के संबंध में शोधकार्य कर रहे थे और इसके लिए उन्होंने विभिन्न जातियों के रोग कीटाणुओं को रंगने की विधियां विकसित कीं। पर उन्हें सख्त अफसोस था कि वे तपेदिक को जन्म देने वाले कीटाणु को रंग नहीं पा रहे हैं। दूसरे चिकित्सक और वैज्ञानिक इस वात को लेकर उनकी हंसी उड़ाया करते थे; क्योंकि यह वात उन्हें शेखचिल्ली की कल्पना प्रतीत होती थी कि कोई कीटाणु तपेदिक का कारण हो सकता है।

मगर कोच तपेदिक के रोगी के सीरम के स्लाइड बनाकर प्रयोग करते रहे। उन्होंने लाल, भूरे और हरे रंग काम में लाकर देखे। काम नहीं बना। मगर १८८२ में एक दिन वे नीले मिथाइलेटेड स्पिरिट में एक स्लाइड रखकर भूल गये। अगले दिन याद आने पर उन्होंने स्लाइड को अणुवीक्षण यंत्र के नीचे रखकर देखा, तो नीले रंग में रंगे बारीक तपेदिक कीटाणु उन्हें स्पष्ट दिखाई दिये।

एक बूढ़े डाक्टर ने कोच के प्रयोग को धोखाधड़ी कहा और उन्हें द्वंद्वयुद्ध की चुनौती तक दे डाली। मगर दूसरे चिकित्सकों ने अधिक विवेक का परिचय दिया। कोच की इस खोज से मानव के महाशत्रु तपेदिक के

उपचार और उन्मूलन का अभियान शुरू हुआ, जो आज भी चल रहा है।

× × ×

उन्नीसवीं सदी के मध्य की बात है। फ्रांसीसी शरीर क्रिया-विज्ञानी क्लाड बर्नार्ड अपनी एक वैज्ञानिक धारणा की सत्यता की परीक्षा कर रहे थे। धारणा यह थी कि तंत्रिका तंतुओं (नर्व-फाइबर) द्वारा संक्रामित प्रेरणाएं बिना ताप उत्पन्न किये ही रासायनिक परिवर्तनों को जन्म देती हैं।

परीक्षणार्थ उन्होंने एक खरगोश लिया, उसके कानों का तापमान लिया, फिर एक कान को जाने वाली तंत्रिकाएं काट दीं। उन्हें आशा थी कि इस कान का तापमान दूसरे कान से कम होगा। मगर उलटी बात हुई।

ध्यान देने पर इसका कारण उनकी समझ में आ गया। उन्होंने खरगोश के कान की वे तंत्रिकाएं काट दी थीं, जो रक्तवाहिनियों को संकुचित रखती हैं। उनके कट जाने से रक्तवाहिनियां शिथिल और चौड़ी हो गयीं, जिससे उनमें ज्यादा रक्त आने लगा और कान का तापमान बढ़ गया।

इस प्रकार चिकित्सा विज्ञान को पहली बार इसका संकेत मिला कि तंत्रिका-संस्थान रक्त-परिसंचरण को नियंत्रित करता है।

× × ×

बिजली के अनेक यंत्रोपकरणों के साथ इतालवी चिकित्सक और भौतिकशास्त्री लुइजी गाल्वानी का नाम जुड़ा हुआ है। अठारहवीं सदी के अंत में वे शवच्छेद का अभ्यास कर रहे थे, इसी सिलसिले में, उन्होंने कई दिन पहले मरे एक मेंढ़क की टांगें तांबे के तार से लटका रखी थीं। अकस्मात् ये झूलती हुई टांगें लोहे के जंगले से छू गयी। मुर्दा टांगें फड़कने लगीं। इससे पहले किसी को पता नहीं था कि शरीर के ऊतक (टिश्यू) बिजली के सुवाहक होते हैं।

स्टेथोस्कोप की जन्मकथा

गाल्वानी ने परीक्षणों का जो सिलसिला शुरू किया, वह अभी तक चल ही रहा है; मगर इलेक्ट्रोकार्डियोग्राम, इलेक्ट्रो-एन्सिफेलोग्राम आदि अनेक फल इस प्रयोग-लता पर लग चुके हैं।

× × ×

चिकित्सा के सिद्धांत ही नहीं, उपकरण भी कई बार आकस्मिक संयोग की देन होते हैं। डाक्टरों का स्टेथोस्कोप हम सबके लिए इतनी जानी-पहचानी चीज है कि हमें सहज यह कल्पना ही नहीं होती कि उसका भी कभी 'आविष्कार' हुआ होगा।

रेने लेनेक एक फ्रांसीसी डाक्टर थे। १८१६ में एक दिन, गोलाइयों से भरपूर काया वाली एक तरुणी हृद्रोग की शिकायत लेकर उनके पास आयी। लेनेक रोगी की छाती से अपना कान सटाकर और छाती को उंगली से टकोरकर रोग के वारे में वहुत कुछ पता लगाया करते थे। पर इस रोगी के साथ उस विधि का उपयोग वे कैसे कर सकते थे!

तभी अचानक उन्हें याद आया कि कुछ दिन पहले उन्होंने एक सार्वजनिक पार्क में वच्चों को खेलते देखा था। कुछ वच्चे लकड़ी के एक लंवे पाइप के दो सिरों पर एकत्र थे और पाइप को टकोरकर एक दूसरे को संकेत भेज रहे थे।

समस्या सुलझ गयी। लेनेक ने तुरंत कागज मोड़कर नली वनायी और उसे तरुणी के सीने पर रखकर उसके दिल की धड़कनें सुनीं। उसी साल उन्होंने दुनिया का पहला स्टेथोस्कोप वनाया। यह लकड़ी का वना हुआ था।

× × ×

विचार या जानकारी के वीज संयोग-रूपी हवा के साथ उड़ते हुए किसी की भी वुद्धि में गिर सकते हैं; लेकिन वे अंकुरित, पल्लवित और फलित तभी होंगे, जवकि वुद्धि उर्वर हो, वृद्धि और विकास के लिए आवश्यक तत्त्वों से भरपूर हो। टाइफस कैसे फैलता है, इसका पता लगाने वाले जीवाणु शास्त्री डा० निकोल इसके उदाहरण हैं।

सन १९०९ में वे टचूनीशिया में थे। उन दिनों वहां टाइफस फैला हुआ था, परंतु उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि जो रोगी अन्य किसी वीमारी का इलाज कराने के लिए अस्पताल में भर्ती होते हैं, वे टाइफस के रोगियों के निकट रहने-सोने के वावजूद इस रोग से वचे रहते हैं। चिंतन और निरी-क्षण से वे इस परिणाम पर पहुंचे कि अस्प-ताल में आने वाले रोगी कीटाणुनाशक द्रव से नहलाये जाते हैं, तभी वे रोगवाहकों से मुक्त हो जाते होंगे। और भी जांच करने पर उन्होंने पाया कि वहां की जनता में केवल अस्पताल के रोगी ही ऐसे हैं; जो जुओं से मुक्त हैं। उन्हें यह सिद्ध करने में देर नहीं लगी कि जुएं टाइफस के वाहक हैं।

यात्रा के समय मितली रोकने की दवा के रूप में डिमेनहाइड्रिनेट (या ड्रामामाइन) का उपयोग भी एक आकस्मिक संयोग से ही शुरू हुआ। १९४७ की वात है; इस एलर्जी-निवारक औषध का आविष्कार तव अभी हुआ ही था। लेजली एन० ग्रे० नामक एक डाक्टर एलर्जी की दवा के तौर पर एक महिला को इसका सेवन करा रहे थे। महिला ने डाक्टर को यों ही वताया कि उसे टैक्सी-कार आदि में हमेशा चक्कर आते हैं, मगर यह दवा लेने के वाद उसे टैक्सी में डाक्टर के यहां आते हुए वैसी कोई तकलीफ नहीं होती। इस प्रकार डिमेनहाइड्रिनेट के एक नये उपयोग का पता चला।

ज्ञान तेजी से वढ़ रहा है। वैज्ञानिकों और खोजकर्ताओं की संख्या भी तेजी से वढ़ रही है। इसलिए शायद इस प्रकार के सौभाग्यपूर्ण संयोगों की संख्या भी वढ़ेगी।

योद्धा

स्वर्ग-द्वार के निकट संग्राम-निरत योद्धा
अनदेखी विजय की प्रत्याशा
जिसका शंखनाद गुंजा देता नरक के गहनतम गर्तों को
एकाकी वीर जो भविष्य को ललकारता कि उत्तर दो
जराशीर्ण, कृशकाय
किंतु आत्मा जिसकी विराट्, करती है विश्व को प्रकंपित
इस नर के माध्यम से—विदूषित, उपेक्षित प्रेम
इस नर के माध्यम से—खंडित, भूलुंठित मानव-स्वातंत्र्य
इस नर के माध्यम से—अनादृत, फलवंचित देहश्रम
करते युद्धघोष अत्याचार के विरुद्ध।
धन्य-धन्य प्रभु का न्याय!

—योन नोगुची (जापानी कवि)

बात दो की

वड़ी बुरी शै है यह आंख। इसका आना, जाना, उठना, बैठना, लगना, लगाना, चलना, चलाना—सभी कुछ खतरनाक होता है।

डा० सोहन नाहर

हमारे देश का दुर्भाग्य केवल आर्थिक विपन्नता तक ही सीमित नहीं है; हमारे यहां अंधों की संख्या भी संसार में सबसे ज्यादा है। अंदाज है कि भारत में कोई पचास लाख लोग नेत्र-विहीन हैं, जो कि सारे विश्व की अंध जनसंख्या का लगभग एक तिहाई है। इनमें से ३० प्रतिशत २१ बरस से छोटे हैं।

भीख मांगते, गीत गाते या सफेद लकड़ी से सड़क पार करते अंधों को देखकर, हो सकता है, आप दया से द्रवित हो उठते हों और लंबी सांस खींचकर कह उठते हों—कर्मों का फल।

परंतु क्या सचमुच नेत्र-हीनता पिछले जन्मों के पापों का ही फल है? क्या इसी जन्म की असावधानियों का उसमें कोई हाथ नहीं? क्या हिन्दुस्तान के सारे अंधे जन्मांध ही हैं?

हम नेत्र-चिकित्सकों का विश्वास है कि हमारे देश के ६० से लेकर ८० प्रतिशत अंधों का इलाज किया जा सकता है, उन्हें आंखों की रोशनी दी जा सकती है। दूसरे शब्दों में, हमारे यहां ३० से लेकर ४० लाख तक लोग केवल चिकित्सा और सुरक्षा के अभाव में अंधे हुए हैं।

देश में अंधों की संख्या जितनी अधिक है, आंखों के डाक्टरों की संख्या उतनी ही कम है। पांच लाख की आवादी के पीछे केवल एक नेत्र-चिकित्सक! और जो चिकित्सक हैं, वे भी चंद वड़े शहरों में केंद्रित हैं। समुन्नत देशों में नेत्र-चिकित्सकों का औसत, प्रति १० हजार की आवादी के पीछे एक है। प्रयत्न किया जा रहा है कि १० हजार से भी कम के पीछे एक नेत्र-चिकित्सक हो।

नेत्र-रोगों के कारणों को समझना कठिन नहीं। गरीबी के कारण पौष्टिक भोजन प्राप्त नहीं होता, रसन-सहन स्वास्थ्यप्रद होता नहीं। अशिक्षा और अंधविश्वास तो गरीबी के सहचर हैं ही। इस प्रकार गलत चिकित्सकों के फेर में पड़कर भी कई अभागे आंखों से हाथ धो बैठते हैं।

नेत्रहीनता के मोटे तौर पर दो प्रकार हैं। एक जो जन्म लेते ही आंखों की रोशनी खा जाती है, यानी जन्मांधता। जन्मांधों को दुनिया की रोशनी नजर ही नहीं आती। परंतु देश में बहुत बड़ी संख्या उन अंधों की है, जो जन्म से अंधे नहीं हैं। अर्थात् इन्होंने संसार का प्रकाश देखा है, प्रकृति की सुंदरता को नजर-भर निहारा है और बाद में कुछ कारणों से ये अंधे हो गये।

यहां पर हम इन्हीं अंधों की बात करेंगे। इनकी समस्या समाज के लिए अधिक जटिल है; क्योंकि ये आंखों के साथ अपना आत्मविश्वास, कार्यक्षमता, आत्मबल और जीवनोल्लास भी गंवा बैठते हैं।

आंखें छीन लेने वाली प्रमुख बीमारियां ये हैं :

१. रोहे (ट्रैकोमा)

पंजाब, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, गुजरात और मध्य प्रदेश में इस रोग का प्राधान्य है। इसके लक्षण हैं—आंख में पानी आना, खुजली, आंख का लाल हो जाना आदि। अगर यह बला लग गयी, तो जल्द ही यह आंख की अन्य बीमारियों को भी दावत दे देती है—जैसे, परवाल हो जाना, पलकों का अंदर हो जाना, फूली पड़ना और अंत में नेत्रहीनता। यह छूत रोग का है। एक से दूसरे के पास पहुंचते इसे देर नहीं लगती, विशेषत: बच्चों में। हमारे देश में सबसे अधिक व्यापक नेत्र-रोग यही है।

तसल्ली की बात सिर्फ यह है कि अगर रोहे का मरीज समय रहते डाक्टर के पास पहुंच जाये, तो उसका पूरा इलाज भी हो सकता है। दरअसल उपचार से ठीक हो जाने वाली नेत्रहीनता (प्रिवेंटिव ब्लाइंडनेस) में ६० प्रतिशत का हिस्सा तो केवल रोहे और आंख के आने का ही है। रोगी के परिवार के अन्य सदस्यों की नेत्र-सुरक्षा के लिए भी आवश्यक है कि इसकी रोक-थाम शीघ्र की जाये।

इस रोग को फैलाने में धूल और मक्खियों का बहुत बड़ा हाथ है। गांवों में, जहां मक्खियों की भारी फौजें रहती हैं और धूल का भारी प्रकोप होता है, रोहे का डर बहुत बना रहता है।

यह रोग एक विषाणु (वाइरस) के कारण होता है। अब तो इसका टीका (ट्रैकोमा वैक्सीन) भी निकल चुका है। भारत-सरकार ने इस रोग पर विजय पाने के लिए एक संस्था भी बनायी है— ट्रैकोमा कंट्रोल पायलट प्रोजेक्ट।

२. आंख में फूली पड़ना

संतुलित और पौष्टिक भोजन के अभाव का रोना आये दिन रोया जाता है; परंतु यह बहुत कम लोग जानते हैं कि यह अभाव आंखों की रोशनी को ही ले डूबता है। अगर छोटे बच्चों के आहार में विटामिन ए और प्रोटीन की कमी हो, तो उनकी आंख के ऊपरी परदे सूखने लगते हैं। अगर यह शुरू हो गया, तो दूसरे रोग आ घरते हैं। बाद में फूली पड़ना शुरू हो जाता है। ज्यादातर यह रोग गरीबों और मजदूरों में पाया जाता है।

विटामिन ए की उपलब्धि आम, गाजर,

पालक और पपीते से अच्छी खासी मात्रा में हो सकती है। प्रोटीन पाने के लिए आहार में दूध, पनीर, गेहूं, चना, दाल और मांस तथा अंडों का समावेश होना चाहिये।

फूली के दूसरे भी कारण हैं—जैसे, आंखों का आना, रोहे, चोट लगना, अथवा बड़ी माता (शीतला) का प्रकोप। इन व्याधियों में पहले आंख आती है, बाद में फूली पड़ जाती है।

पुराणों में अश्विनीकुमार प्राणियों के अंग-प्रत्यंगों का प्रत्यारोपण आसानी से कर डालते थे। सौभाग्य से आज के विज्ञान-युग में इस प्रकार का उपचार संभव हो गया है और फूली के मरीजों को प्रतिरोपण द्वारा प्रकाश का वरदान दिया जा सकता है।

इस पेचीदा शल्य-चिकित्सा को 'कार्नियल ग्राफ्टिंग' या 'केरैटोप्लास्टी' कहा जाता है। आम जनता इसे 'आंख वदलने' के नाम से जानती है। वास्तव में इसमें पूरी आंख वदली नहीं जाती, आंख के ऊपरी परदे या झिल्ली (कार्निया) को वदला जाता है। किसी दूसरे व्यक्ति का परदा, फूली वाले को लगा दिया जाता है।

इस सर्जरी की सफलता के लिए दो बातों की जांच आवश्यक है—क. आंख का परदा दान करने वाले के परदे की हालत कैसी है; और ख. जिसके परदा लगाना है, उसकी आंख के अन्य भाग इस दान को समुचित रूप से ग्रहण करने की स्थिति में हैं या नहीं। अगर दोनों स्थितियां अनुकूल हों, तो मरीज को आंखों की ज्योति पाने में कोई अड़चन नहीं होगी।

३. मानव-निर्मित नेत्रहीनता

शास्त्र कहते हैं—अज्ञानतिमिरान्धस्य। वात का दार्शनिक पक्ष चाहे जो हो, लौकिक रूप में यह सोलहों आने सही है। अज्ञान से आप अपनी आंखें गंवा सकते हैं। अज्ञान, अशिक्षा, अंधविश्वास, अयोग्य व्यक्तियों के हाथों इलाज और घरेलू दवाइयों की गड़-वड़—ये सव कारण हैं तो मानव-निर्मित ही। घरेलू दवाइयों में एसिड और कास्टिक सोडा के प्रयोग को भी जोड़ लीजिये। आज-कल गांवों में कीटाणुनाशक दवाइयों का भी भारी प्रयोग होता है। जिसमें जरा-सी असावधानी कर वैठने से आंखों पर वन आ सकती है।

मानव-निर्मित नेत्रहीनता का उपचार भी मानव-निर्मित ज्ञान ही है।

४. चेचक (शीतला, माता, स्मालपाक्स)

चेचक के कारण शरीर पर दाने निकल आते हैं। उनमें पीव भर जाती है और फूट जाने पर निशान रह जाते हैं। इन दानों के कारण आंख में फूली (कॉर्नियल-अल्सर) पड़ जाती है। अगर यह रोग और आगे वढ़ गया तो संपूर्ण अंधापन आ घेरता है। देवी का प्रकोप समझकर गांव वाले शीतला का टीका लगवाने से इन्कार करके कुरूपता का ही नहीं, अंधता का भी खतरा मोल लेते हैं।

५. मोतिया-बिंदु (कैटरेक्ट)

मोतिया-बिंदु या मोती-बिंदु, दो प्रकार का होता है—क. जो जन्म से ही आंख में रहता है; और ख. जो बुढ़ापे में आ दबो-

चता है। लक्षण हैं—धीरे-धीरे दृष्टि का कम होना और कभी-कभी इंद्रधनुष की तरह विचित्र रंगों का दीखना। मोती-विंदु के कारण गंवायी हुई दृष्टि शल्य-चिकित्सा और सही चश्मे की सहायता से लौटायी जा सकती है।

उष्ण कटिवंध में इस रोग का प्रकोप विशेष रहता है; क्योंकि सूर्य के प्रकाश में अवरक्त (इन्फ्रा रेड) और परा बैंगनी (अल्ट्रा वायलेट) किरणों की वहुतायत होती है। भारत में इस रोग से कोई ६ प्रतिशत जनता पीड़ित है। नेत्र-चिकित्सकों के अभाव और दवा-दारू के प्रति भीतिभाव के कारण विशेषत: हमारी ग्रामीण जनता इसकी चपेट में आ जाती है।

आंख के लेंस और प्याज की आकृति में वहुत समानता है। दोनों में एक के ऊपर एक परतें जमी हुई होती हैं। इन परतों में एक भी रक्त-नलिका नहीं होती। इस कारण लेंस को अपना भोजन नजदीक के द्रवों से लेना पड़ता है। उम्र वढ़ने के साथ जैसे वाल सफेद होते हैं, लेंस भी सफेद हो जाता है। यही मोतिया-विंदु कहा जाता है। जन्म से ही आंखों में रहने वाले मोतिया-विंदु का कारण है—मां को गर्भकाल में कोई गंभीर वीमारी होना और विटामिनों की कमी।

मोतिया-विंदु दूसरे कारणों से भी हो सकता है—जैसे, आंखों में चोट लगना, कांच-विंदु आदि नेत्र-रोग, मधुमेह, विटामिन बी, सी, डी, की कमी आदि। लुहारी, झलाई (वेल्डिंग) के धंधे और रेडियोलाजी के
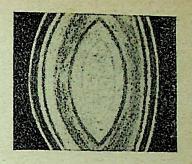
आंख का लेन्स—प्याज जैसी रचना

काम करने वालों को भी मोतिया-विंदु होने का खतरा अधिक रहता है।

६. कांच-बिंदु (ग्लाकोमा)

अगर नेत्रों के द्रवों (इंट्रा ऑक्युलर फ्लूइड) का दवाव १८-२३ मिलिमीटर (पारा) से अधिक हो जाता है, तो इस रोग के लक्षण दीखने लगते हैं।

कांच-विंदु ज्यादातर ४५ वर्ष की आयु से ऊपर वाले व्यक्तियों में पाया जाता है। मगर शिशुओं में नेत्रों का अपूर्ण विकास भी इसका कारण होता है। आरंभ में नजर में कुछ कमी महसूस होती है। तभी नेत्र-चिकित्सक को वता देना चाहिये।

यह रोग दो प्रकार के लक्षण प्रकट करता है। पहले, आंख दुखती है, लाल हो जाती है, पानी वहता है, सिर दुखता है, उलटी होती है। दूसरी अवस्था में रोग वढ़ जाता है और इंद्रधनुष जैसे रंग दीखने लगते हैं। रोग नस पर अपना प्रभाव डाल देता है, जिससे नस सूख जाती है।

केवल प्रथम अवस्था में ही इलाज संभव है। दूसरी अवस्था तक पहुंच जाने के बाद

यह असाध्य हो जाता है। चिंता, अत्यधिक मानसिक, शारीरिक और नेत्रों का परिश्रम इसके कारणों में हैं।

यह रोग, देश की करीब १.६ प्रतिशत जनता में पाया जाता है। इस पर नियंत्रण रखने के लिए सामूहिक रूप से इस रोग की जांच-पड़ताल आवश्यक है।

७. आंख को चोट लग जाना

बच्चा गली में गिल्ली-डंडा खेल रहा है, गिल्ली आंख पर आ लगी। आप कारखाने में काम कर रहे हैं, एक्सिडेंट हो गया और आंख पर आ बनी। यह तो आधुनिक सभ्यता और यंत्रीकरण का शाप रहेगा ही। अमरीका में ही प्रति आधे मिनिट में एक आंख-दुर्घटना हो जाती है। उपाय यही है कि अविलंब डाक्टरी सहायता ली जाये और जोखिम के काम करने वाले लोग आंखों के बचाव के चश्मों का उपयोग करें।

८. चश्मे का नंबर

नजर की कमी को चश्मे की सहायता से दुरुस्त नहीं किया गया, तो आंख काम करना बंद भी कर सकती है और आंख ऐंची भी हो सकती है। गांवों में औरतें तो लाज के मारे चश्मे से दूर भागती हैं। चश्मे का बहिष्कार अनेक व्याधियों को आमंत्रण दे देता है और आंख रोगों से भर जाती है।

दोनों आंखें बराबर होनी चाहिये। तिरछे नैन शाइरों के लिए काम के हथियार हो सकते हैं, परंतु तिरछी नजर आंखों की बीमारी हैं और उसका इलाज बचपन में ही करवा लेना हितकारी होता है।

नैनों की निगरानी:

गलत तरीके से पढ़ना, लेटकर पढ़ना, कम रोशनी में पढ़ना या सिलाई करना, चकाचौंध रोशनी में काम करना, चश्मे की जरूरत होते हुए भी उसके बिना काम चलाना—ये सब आंखों के लिए आफत बुलाने के आसान तरीके हैं। परंतु निम्नलिखित सुझावों का पालन नेत्र रूपी नियामत की रक्षा में सहायक होगा:

१. घर, आवास और पड़ोस में स्वच्छता का पूरा ध्यान रखें।

२. याद रखिये कि आंख छुआछूत के मामले में ब्राह्मण से भी ज्यादा कट्टर है। गंदे तौलिये से, साड़ी-धोती के गंदे पल्ले से बच्चों का मुंह-आंख न पोंछिये; उससे आंख का रोग फैलता है।

३. मेहरबानी करके काजल और सुरमे का प्रयोग न करें। (यह शृंगार बहुत पुराना पड़ चुका है।) अगर करें भी तो दोनों आंखों के लिए एक ही उंगली का उपयोग न कीजिये। वरना एक आंख की बीमारी दूसरी को भी लग जायेगी।

४. मुंह और आंखों को गंदे पानी से हर्गिज न धोइये।

५. मक्खियों से छोटे बच्चों का पूरा पूरा बचाव कीजिये। बच्चा सो जाये, तो मुंह पर झीना कपड़ा डाल दीजिये, जिससे मक्खियां आकर न बैठ सकें।

६. माता के टीके के विषय में भ्रम और अविश्वास छोड़िये।

७. संतुलित और पौष्टिक भोजन से

जनवरी

नियमों का पालन यथाशक्ति कीजिये।

८. पढ़ने-लिखने की जगह पर समुचित प्रकाश की व्यस्था रखिये।

कुछ काम ऐसे हैं, जो समाज व सरकार को करने होंगे।

नेत्र-रक्षा के उपायों का फिल्मों द्वारा प्रचार किया जाये। स्कूलों में पढ़ाई-लिखाई के साथ ही पढ़ने-लिखने के सही तरीके सिखाये जायें। पाठ्य-पुस्तकों का अक्षर-विन्यास ऐसा हो कि बच्चों की आंखों पर जोर न पड़े। साल में कम-से-कम दो बार योग्य चिकित्सक से स्कूल के सारे बच्चों की आंखों की जांच करायी जाये और रोग की शंका होते ही चिकित्सा आरंभ करा दी जाये। चलते-फिरते नेत्र अस्पतालों और नेत्रदान यज्ञों का—विशेषत: गांवों में अधिकाधिक आयोजन किया जाये।

जो नेत्र गंवा चुके हैं, उनके प्रति भी हमारे कर्तव्य हैं। नेत्रहीनों को दान, दया, भीख नहीं, सामाजिक सम्मान, आर्थिक स्वतंत्रता, सामाजिक आदर और पूर्ण नागरिक का दर्जा चाहिये। तभी वे हीन-भावना से मुक्त होकर समाज का स्वस्थ अंग बन सकते हैं। नेत्रहीनों के लिए समुचित शिक्षा-दर्शन का विकास आवश्यक है, जिसमें श्रवण, स्पर्श, गंध आदि इंद्रिय शक्तियों को शिक्षा का आधार बनाया जाये और स्वतंत्र ज्ञानार्जन और जीविकोपार्जन में समर्थ बनाया जाये। प्रशिक्षित अंध कर्मचारियों को बाकी कर्मचारियों के बराबर सम्मान व वेतन दिया जाये।

हमारा कोई व्यवहार ऐसा न हो कि हमारे नेत्रहीन बंधु मानसिक उद्वेग के रोगी बन जायें और नेत्रवान लोगों की सोहबत से बचना पसंद करने लगें।

हमारे यहां नेत्रहीनों और दुर्बल दृष्टि वालों की सेवा सहायता के लिए कई संस्थाएं हैं। किंतु उनमें कोई तालमेल और समन्वय नहीं है, जिससे कामों की पुनरावृत्ति होती है; इसलिए इन सब संस्थाओं के कामकाज में एकसूत्रता लाने वाले एक केंद्रीय संघटन की स्थापना आवश्यक है।

★

आचार्य रामचंद्र शुक्ल की मितभाषिता प्रसिद्ध थी। एक बार उनके एक शिष्य ने दूसरे शिष्य से शर्त लगायी कि वह आचार्यजी से एक बार में पांच या उससे अधिक शब्द कहलवा देगा। आचार्यजी के पास पहुंचकर कुछ बेधड़क बनने का प्रयास करते हुए वह बोला—"बाबूजी, मैंने इससे शर्त लगायी है कि मैं एक बार में कम-से-कम पांच शब्द आपसे कहलवा दूंगा।" "तुम हार गये।" शुक्लजी ने उत्तर दिया।

* * *

प्रसादजी अपने नाटक 'चंद्रगुप्त' का प्रयोग देखने पधारे थे। नाटक की समाप्ति के बाद किसी ने उनसे पूछा—"कहिये, कैसा रहा नाटक?" प्रसादजी ने उत्तर दिया—"नाटक तो सफल रहा, परंतु दर्शक असफल हो गये।"

—प्रेम प्रकाश वर्मा

★

पत्र और परामर्श

कई वर्षों से नवनीत का मैं नियमित पाठक हूं । शायद ही इसका कोई अंक पढ़े बिना छूटा हो । नवनीत का मैं प्रशंसक हूं । इससे मैंने वहुत लाभ उठाया है । मनोरंजन के साथ-साथ मेरा ज्ञानवर्द्धन भी हुआ है । अन्य साधारण अंकों की तरह नवनीत का दीपावली-विशेषांक भी वहुत सुंदर है, मनोरंजक तथा ज्ञानवर्द्धक है। नवनीत से हिंदी भाषा तथा साहित्य का वैभव वढ़ा है ।

—डा० लक्ष्मीनारायण सुधांशु, पटना

* * *

नवनीत को निकलते १८ वर्ष हो गये । इतने वर्षों वाद प्रायः हमारे देश में आरंभ का उत्साह क्षीण हो जाता है और स्तर गिर जाता है, पर आप इस दिशा में सदा सावधान रहे हैं । लोगों ने पाठक की रुचि विगाड़ने का काम किया है, जैसे हंसोड़ कवियों ने श्रोताओं का । सस्ती रुचि की चीज ज्यादा विकती है, पर आपने कभी अपने को प्रलोभन में नहीं उलझाया और सदा नवनीत का स्तर ऊंचा रखा है । मैं नवनीत को संपादन और प्रकाशन, दोनों दृष्टियों से हिन्दी की वड़ी सफलता मानता हूं । नवनीत के इस अंक में मनोरंजन और उद्बोधन दोनों का संगम है ।

—कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, सहारनपुर

* * *

किसी भी मासिक की सवसे वड़ी खूवी, मेरी नजर में, यह होती है कि उसे एक वार शुरू करके खत्म कर लिया जाये । और यह खूवी नवनीत के दीपावली अंक में मैंने पायी ।

—कर्त्तारसिंह दुग्गल, नयी दिल्ली

* * *

नवनीत में गहनता के साथ विषयों की विविधता भी इतनी रहती है कि सभी प्रकार की रुचि रखने वालों के लिए पठन-सामग्री एक जगह मिल जाती है। मुझे तो आरंभ से लेकर अंत तक नवनीत पढ़ं

साधुवाद-आशीर्वाद

बिना चैन नहीं मिलती। साथ ही उसकी मनोमोहक छपाई, सफाई, साज-सज्जा और विषय के अनुकूल चित्रों के समावेश के कारण उसे हाथ में लेते ही पढ़ने की इच्छा होती है और एक-एक पृष्ठ पलटने पर नवीन रुचि उत्पन्न होती जाती है। इस दृष्टि से मेरी समझ में केवल हिन्दी ही में नहीं, किंतु भारतीय भाषाओं में प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं में नवनीत सर्वश्रेष्ठ जान पड़ती है। —व्योहार राजेंद्रसिंह, जबलपुर

* * *

इतनी उपयोगी और विविधतायुक्त सामग्री हिन्दी की किसी अन्य पत्रिका के एक अंक में शायद ही मिले। इस अंक की अधिकांश सामग्री में जीवन-निर्माण पर जो वल दिया गया है, वही मेरी दृष्टि में सच्चा 'नवनीत' है। —सुमित्रा कुमारी सिनहा, लखनऊ

* * *

विशेषांक मिलते ही सारा देख गया। ऐसे सुंदर तथा उपयोगी प्रकाशन के लिए हार्दिक वधाई स्वीकार कीजिये। विशेषांक की सामग्री के चयन में जहां सूझ-बूझ तथा परिश्रम दिखाई देता है, वहां लोक-रुचि को परिष्कृत करने की भावना भी दिखाई देती है। पूरे अंक की सामग्री इतनी सुपाठ्य और जीवन-निर्माणकारी है कि उसे वार-वार पढ़ने को जी चाहता है। सबसे वड़ी वात यह है कि आपने सामग्री के चयन में विविधता का खूब ध्यान रखा है। प्रत्येक पाठक अपनी रुचि की सामग्री इसमें पा सकता है। —यशपाल जैन, दिल्ली

* * *

दीपावली अंक आपकी गौरवमयी परंपरा और स्तर के अनुकूल है। हिन्दी में इस तरह का यह अकेला पत्र है। एक वात। वर्ट्रेंड रसल के विचारों के अनुवाद की भाषा मूल अंग्रेजी की तरह प्रवाहमयी नहीं है। लगता है, हम अनुवाद पढ़ रहे हैं। मेरा विचार है कि अनुवाद भी रूपांतर के वाद मूल भाषा की तरह ही लगना चाहिये।

—राजेंद्र अवस्थी, दिल्ली

वक्त को झुठलाने का गुर

बर्नार्ड शा

आदर्श बूढ़ा मनुष्य बच्चा होता है; आदर्श बच्चा चालीस वर्ष का व्यक्ति होता है।

हमारी जीवित रहने की लालसा आशा पर निर्भर होती है, क्योंकि निराशा से हमारी मृत्यु हो जाती है।

संसार के प्रति मनुष्य की दिलचस्पी का स्रोत है, अपने आपके प्रति मनुष्य की दिलचस्पी। बचपन में मनुष्य का प्याला अभी पूरा नहीं भरा होता, इसलिए सिवा अपनी चीजों के किसी और चीज में उसकी दिलचस्पी नहीं होती। जवानी में प्याला लबालब भरकर किनारों पर से छलकने लगता है, तब मनुष्य राजनीतिज्ञ, दार्शनिक या अन्वेषक बन जाता है। बुढ़ापे में प्याला सूख जाता है, तो मनुष्य फिर से बच्चा बन जाता है।

जब आदमी बहुत बूढ़ा हो जाता है—मेरी तरह बहुत बूढ़ा, तो सपने अपने आप आने लगते हैं। आप नहीं जानते कि यह हालत कितनी भयानक होती है। जवानी में मनुष्य सिर्फ रात को सोता है, और गहरी नींद सोता है। लेकिन कुछ ज्यादा उम्र का होने पर मनुष्य दोपहर के बाद भी सोने लगता है। फिर कुछ वर्षों के बाद वह सुबह के समय भी सोना शुरू कर देता है, और उसे बेहद थका-थका महसूस करता है – से थका हुआ। इसके बाद मनुष्य ऊंघने सपने देखने से कभी छुटकारा नहीं पा सपने हर समय उसका पीछा करते रहते

मैं कह सकता हूं कि मनुष्य की मर्यादा सत्तर वर्ष तक निर्धारित नहीं जा सकती। वास्तव में उसकी कोई निर्धारित की ही नहीं जा सकती। अगर जीने की कला में सिद्धहस्त बन जायें, दांतों से खुद अपनी कब्रें खोदना बंद तो ऐसी भी स्थिति आ सकती है कि दुर्घ मौत का एकमात्र कारण रह जाये। तब दुर्घटनाएं भी असंभव हो जायें वास्तव में, यह सिद्ध नहीं किया जा

कि मौत स्वाभाविक चीज है। केवल जीवन ही स्वाभाविक और अनंत है।

जैसे कुछ बच्चे मानसिक दृष्टि से अपने माता-पिता से कम उम्र के होते हैं, वैसे कई सत्तर साल के बूढ़े अपने नाती-पोतों से कम उम्र के होते हैं।

जब तक मेरे अंदर कोई लालसा है, मुझे जीने का कारण दिखाई देता है। संतोष का दूसरा नाम मौत है।

समय को झुठलाने का एक ही तरीका है—मनुष्य नये विचारों को अपनाये। उन की बदौलत उसके चेहरे पर जवानी झलकेगी।

शारीरिक तौर पर मेरा ह्रास हो रहा है; मेरी इंद्रियां, मेरे अंगों की शक्ति, मेरी याददाश्त आदि इस तेजी से मेरा साथ छोड़ रही हैं कि मुझे लगता है, मैं अब इस संसार में कुछ ही देर का मेहमान हूं। लेकिन मेरे दिमाग में अभी भी विकास करने का सामर्थ्य है और नयी बातों को जानने की मेरी इच्छा पहले से कहीं अधिक प्रबल है। मेरी आत्मा आगे बढ़ी जा रही है; और अगर प्रकृति की ओर से मुझे अपने दिमाग जैसा ही स्वस्थ और तगड़ा शरीर मिल जाये, तो मैं एक साधारण व्यक्ति के रूप में, राजनीतिक क्षेत्र में कदम रखकर, एक दिन मंत्रि-मंडल में प्रवेश कर सकता हूं।

★

इसका कोई सर्वसम्मत उत्तर नहीं है कि बुढ़ापा आखिर आता क्यों है। किंतु एक बात निश्चित है। कोशिकाएं शरीर-रचना की इकाइयां हैं, वे ही बूढ़ी हो जाती हैं, मरने लगती हैं और उनका स्थान लेने के लिए नयी कोशिकाएं पर्याप्त तेजी से नहीं बन पातीं।

वार्धक्य-विज्ञान की पत्रिका 'जर्नल आफ जेरोन्टोलाजी' के हाल के एक अंक में अमरीका के नेब्रास्का विश्वविद्यालय के प्रो० डेन्हाम हरमैन का एक लेख छपा है। उसके अनुसार 'मुक्त मूलकों' की उपस्थिति शरीर कोशिकाओं में जरण-प्रक्रिया का कारण है।

रसायनशास्त्र में 'मुक्त मूलक' परमाणुओं के ऐसे समूह को कहा जाता है, जो धन या ऋण विद्युत-आवेग से युक्त हो तथा किसी विपरीत आवेश वाले परमाणु-समूह से मिलकर अणु बना सकता हो। सामान्यतः 'मूक्त मूलकों' का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता; क्योंकि वे अत्यधिक क्रियाशील होते हैं और तत्काल क्रिया करके अणु बना डालते हैं।

शरीर में इन 'मुक्त मूलकों' का निर्माण उपापचयन क्रिया के दौरान होता है। प्रो० हरमैन के अनुसार, अत्यधिक सक्रिय होने के कारण ये मूलक कोशिकाओं की झिल्लियों को कमजोर कर देते हैं, जिसके परिणामस्वरूप एक एन्जाइम की प्राप्ति होती है। यह एन्जाइन डी० एन० ए० को निकम्मा बना डालता है और नतीजा होता है, बुढ़ापा।

यदि यह सही है, तो शरीर में 'मुक्त मूलकों' के निर्माण को रोक सकने वाले पदार्थों की सहायता से बुढ़ापे की प्रक्रिया को धीमा करना संभव होगा। चूहों पर इस विषय में जो परीक्षण हुए हैं, उनसे इसकी पुष्टि हुई है। —केजिता

★

नीलकंठी आंख

डूबती थी सांझ गंगा के किनारे
औ' सरोवर की तरंगें,
हाथ में अपने उठाये कनक-किरनों का सिंधौरा
भर रहीं थी मांग में सिंदूर हंस-हंस
उस कुंआरी निर्झरी के,
जो कि निज-अस्तित्व ही
उनमें समर्पित कर चुकी थी।
और उसके सन्निकट ही
देवदारु-द्रुमांगणों के शीश उन्नत
भाल पर अपने सजाये सांध्य-किरनों का किरीट
कर रहे थे कंचनी
रजताभ शिखरों की हिमानी !
और सूने निर्झरों की
गोद में सोयी हुई चट्टान विधवा,
डर रही थी,
सांझ का सिंदूर उसको
कर न दे फिर चिर सुहागिन !
और उसकी धवल चूनर
हो न जाये लाल !
केवल इसलिए वह
निर्झरों की गोद में तन को डुबाये जा रही थी।
और अपनी सांस से लहरें उठाये जा रही थी।
पास ही जिसके कुटज के वृक्ष भोले,
पी रहे थे लालिमा को
नीलकंठी आंख खोले। *

—'अमरेश'

* 'हेमाली' प्रबंध-काव्य का अंश

केजिता

नयी दिशाएं, नये आयाम

खबर छपी थी कि एक आंग्ल महिला ने इक्कीस दिन तक अपने सीने पर अंडा सेकर चूजे के जन्म में सहायता की। अब उससे भी अधिक विचित्र लगने वाली बात सुनिये। पास-पास रखे हुए अंडे आपस में बातचीत कर सकते हैं। यह विश्वास प्रकट किया है, डा० हैरी मूलर ने। अमरीका की कोलोरैडो स्टेट यूनिवर्सिटी के इस प्राध्यापक ने परीक्षणों के दौरान यह बात देखी है कि यदि अंडों को एक दूसरे से सटाकर रखा जाये, तो उनमें से चूजे लगभग एक साथ ही निकलते हैं। वे आपस में किस प्रकार इस फैसले पर पहुंचते हैं। इस विषय में "पोल्ट्री एंड हैचरी फेडरेशन" ने अनुसंधान को आगे बढ़ाने के लिए धन की व्यवस्था की है।

चप्पल, अट्टालिका

पिछले दिनों बाजार में प्लास्टिक-चप्पलों की बाढ़-सी ही आ गयी। हवाई चप्पलें हवा हो गयीं इन रंग-बिरंगी कम-खर्च प्लास्टिक की चप्पलों के सामने।

मगर ब्रिटेन ने प्लास्टिक की अट्टालिकाएं खड़ी कर दी हैं। यहां भवन-निर्माण की एक नयी तकनीक का विकास किया गया है। नाम है—पैरासोल।

ऊंचे-ऊंचे आलीशान मकानों की मजबूती के पीछे 'रीइनफोर्स्ड कंक्रीट' का बड़ा हाथ रहा है। कंक्रीट के गीले मसाले के भीतर लोहे की छड़ों का ताना-बाना बिछा दिया जाता है, जो सूखने पर फौलाद बन जाता है। 'पैरासोल' ने जन्म दिया है—'रीइनफोर्स्ड प्लास्टिक' को। कंक्रीट का काम प्लास्टिक से लिया जाता है। और लोहे की छड़ों का 'फाइबर-ग्लास' से। और नतीजा कम दाम, कम काम, रंग-बिरंगी शान, आलीशान मकान।

एबरडीन (स्काटलैंड) में 'रीइनफोर्स्ड प्लास्टिक' से बना दुनिया का पहला मकान तैयार खड़ा है। पचास फुट लंबा, पच्चीस फुट चौड़ा तथा तेरह फुट ऊंचा नुकीले हीरे की आकृति का यह भवन चार आदमियों ने कुल दो दिन में बनाकर तैयार कर दिया। न किसी बड़ी मशीन की जरूरत हुई, न दर्जनों बेलदारों की।

नींद-उनींद

अपनी बुद्धि के बल पर मनुष्य शेष

प्राणियों को मनचाहे ढंग से सिखा-पढ़ाकर अपनी सुख-सुविधा के लिए उनका उपयोग करता है। फिर भी आज के मनुष्य के मुकावले अन्य प्राणी अधिक सुखी हैं। सुख और संपन्नता के वढ़ते हुए वाहुल्य ने व्यक्ति की आंखों की नींद तक छीन ली है। जवकि अधिकांश जानवर सारी दुनियादारी से बेखबर हो नींद का पूरा मजा आज भी वैसे ही उठाते हैं, जैसे वे सदियों पहले से उठाते आये हैं।

'प्रोसीडिंग्स आफ द रायल सोसायटी आफ मेडिसन' के एक ताजे अंक में अनेक वैज्ञानिक इसी निष्कर्ष पर पहुंचे हैं। अनेक जीव-जंतुओं की सुषुप्ति का अध्ययन किया गया है। जिन जानवरों की आंखों पर पलकें होती हैं, वे सोते समय प्राय: पलक बंद करके ही सोते हैं। यहां तक कि कुछ जानवर तो पंजे या पूंछ से भी आंखें ढक लेते हैं, ताकि अंधेरा और भी घना हो जाये। बड़े कानों वाले चिमगादड़ तो सोते समय अपने कानों तक को बंद कर लेते हैं, ताकि वाहर का शोरगुल उसकी नींद में खलल न डालने पाये। प्रकृति ने आदमी को यह सुविधा प्रदान नहीं की है।

यह भी देखा है कि परभक्षी सवसे लंबी और गहरी नींद सोते हैं। कारण शायद यह है कि अपनी सुरक्षा के विषय में उन्हें ज्यादा चिंता नहीं रहती। वताया गया है कि भारतीय रीछ नींद का राजा है। पूरी बेफिक्री की नींद लेता है वह।

दूसरी तरफ बेचारा आदमी। नींद की एक गहरी डुवकी लगाने में लाचार। भूत की परछाइयां और भविष्य की चिंताएं जाग्रत अवस्था में तो उस पर सवार रहती ही हैं, सोते समय भी उसका पीछा नहीं छोड़तीं। वास्तव में नींद पर नियंत्रण विज्ञान को एक चुनौती है।

पौधा प्रयोगशाला में

हमारे ही देश की मैसूर स्थित केंद्रीय खाद्य अनुसंधानशाला में, कृत्रिम चावल बनाए, जाने की वात आप जानते हैं। लेकिन यह नकली चावल ही होता है। प्राकृतिक चावल में जो रासायनिक रचक होते हैं, उन्हें दूसरे स्रोतों से प्राप्त करके मिला दिया जाता है और इस मिश्रण को चावल की शक्ल में ढाल दिया जाता है। स्वाद, गुण सब सभी कुछ चावल का; फिर भी नकली चावल तो नकली ही रहेगा।

पर अव नकली पौधे पर असली चावल उगाने की वात चल रही है। पौधा असली नहीं होगा, उसका विकास प्रयोगशाला में कृत्रिम ढंग से किया जायेगा।

और यह कृत्रिमता भी निराली है। एक युवा भारतीय वैज्ञानिक डा॰ सिप्रा मुखर्जी मात्र एक पराग-कण से चावल के समूचे पौधे को विकसित करने में सफल हो गयी हैं। यह ऐसी वात है, जैसे नारी के अंडाणु से मिलन कराये विना ही केवल पुरुष शुक्राणु से मानव-शिशु का विकास कर लिया जाये।

पहले-पहल डा॰ मुखर्जी ने जापान और अमरीका में अपने अनुसंधानों के दौरान इस तकनीक को खर-पतवार (वीड) पर

जनवरी

आजमाया था। पर इस तकनीक से चावल का पौधा विकसित करने के सफल परीक्षण उन्होंने भारत में ही किये हैं।

यह अनुसंधान अपने किस्म का पहला है और विश्व के चावल विशेषज्ञों की रुचि का आकर्षण-केंद्र बन गया है।

पिछले दिनों नयी दिल्ली में भारत तथा अन्य नौ चावल - उत्पादक देशों के चावल-पादप अनुवंशिकी विशेषज्ञों का तीन दिन का सम्मेलन हुआ था, उसमें डा० मुखर्जी की खोज सर्वाधिक सनसनीखेज सिद्ध हुई।

वकील : हृदय-रोग-विशेषज्ञ

"जब १९३८ में मैंने प्रक्टिस शुरू की, तब भारत में हृद्रोगियों की संख्या सीमित तो हुआ ही करती थी, रोगियों की उम्र भी प्रायः चालीस-पचास से ऊपर ही हुआ करती थी। अब हृद्रोगियों की संख्या लगभग छः गुना से भी ज्यादा हो गयी है। और रोगियों की उम्र भी चालीस और कभी-कभी तीस साल से भी कम देखने में आती है। ......"

ये शब्द हैं सुप्रसिद्ध हृदय-रोग-विशेषज्ञ डा० रुस्तम जे० वकील के। डा० वकील के अनुसार, इस वृद्धि के कारणों में संतृप्त वसाओं से युक्त गलत किस्म की खुराक मिलावटी खाद्य-सामग्री तथा व्यायाम का अभाव आदि प्रमुख हैं।

डा० वकील को देश के नामी चिकित्सक तथा बंगाल के भूतपूर्व मुख्य मंत्री स्वर्गीय डा० विधानचंद्र राय की स्मृति में इंडियन मेडिकल कौंसिल द्वारा स्थापित राष्ट्रीय पुरस्कार प्रदान किया गया है। आप इस पुरस्कार द्वारा सम्मानित होने वाले सर्वप्रथम व्यक्ति हैं।

हृदय-रोगों से संबंधित अनेक पहलुओं पर डा० वकील के तीन सौ से भी अधिक शोध-निबंध प्रकाशित हो चुके हैं। उन्होंने पश्चिमी विज्ञान-जगत को पहले-पहल यह बताया कि भारतीयों की चिरपरिचित वनस्पति 'राउबुलफिया सर्पेन्टीना' उच्च-रक्तचाप के निरोधक के रूप में प्रभावशाली सिद्ध हो सकता है।

अधर में लटका

आकाश में कोई चीज लटकाने के लिए कुछ-न-कुछ आधार तो चाहिये ही। लेकिन अभी-अभी खोजे गये एक तरीके से अब यह जरूरी नहीं रह गया है।

यह खोज हाथ की सफाई जैसी भले ही लगे, मगर उद्योग में इसका खासा महत्त्व है। इसके अनुसार किसी भी धातुक-पिंड को ठोस आधार के बजाय चुंबकीय बल-क्षेत्र द्वारा अधर में लटकाया जा सकता है। जाहिर है, उद्योग में तकुओं के लिए परंपरागत बेयरिंगों के स्थान पर यदि चुंबकीय बेयरिंग लगाये जाने लगें, तो अभी जो ऊर्जा घर्षण के कारण नष्ट हो जाता है, उसकी बचत हो सकेगी। अनुमान है, परंपरागत बेयरिंगों की तुलना में नयी तकनीक में केवल एक तिहाई बिजली खर्च होगी और यंत्र की गति भी तिगुनी हो जायेगी। कितना बड़ा लाभ होगा।

इस खोज का श्रेय भी प्राप्त है डा० बी० वी० जयंत को वे आजकल ससेक्स विश्व-

विद्यालय (ब्रिटेन) में विद्युत्-इंजीनियरी में रीडर हैं। इस युवा वैज्ञानिक की शिक्षा बंबई विवविद्यालय में हुई। ब्रिस्टल विश्व-विद्यालय से डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त करने के वाद से डा० जयंत अध्यापन और अनुसंधान में निरत हैं।

चंद्र-शिला

चांद से एक शिला जमीन पर लायी गयी। हाउस्टन में उसे रखा गया और दूर से ही उसकी जांच-पड़ताल की गयी। शीशे के पीछे से ही उसे देखा जाता रहा। शक था कि कोई घातक सूक्ष्म जीव (वाइरस, कीटाणु आदि) उस शिला के साथ पृथ्वी पर न चला आया हो। जब विश्वास हो गया कि इसकी संभावना न के बराबर है, तो तैयारी शुरू हो गयी उस शिला के अध्ययन की।

अमरीका भर से जो एक सौ बयालीस मूर्धन्य वैज्ञानिक इस काम के लिए चुने गये, इनमें से एक हैं—डा० वी० रमण मूर्ति। आंध्र प्रदेश में जन्मे डा० मूर्ति मिनेसोटा विश्वविद्यालय (अमरीका) में भूभौतिक-विज्ञान के अध्यापक रहे हैं। वे उल्काश्मों और सौर-मंडल के विख्यात विशेषज्ञ हैं।

डा० मूर्ति इस चंद्र-शिला में प्राप्त सूक्ष्म-मात्रिक तत्त्वों तथा समस्थानिकों (आइसो-टोप) का अध्ययन करेंगे और यह तय करेंगे कि चांद कितना बूढ़ा है। इसके लिए चांद की रासायनिक रचना और रासायनिक इतिहास की गहरी छानबीन आवश्यक होगी। डा० मूर्ति इस क्षेत्र में दुनिया के श्रेष्ठतम विद्वानों में से एक हैं।

यह छानबीन डा० मूर्ति मिनेसोटा विश्व-विद्यालय में ही रहकर करेंगे। उनके द्वारा निर्मित एक 'स्पेक्ट्रोमीटर' को मिनेसोटा पहुंचाया जा रहा है। ५ जनवरी १९७० को हाउस्टन में ये १४२ विशेषज्ञ मिलेंगे।

कापी-यंत्र

राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला, (नयी दिल्ली) एक ऐसे यंत्र के निर्माण में सफल हो गयी है, जिसके द्वारा किसी भी लिखित या मुद्रित सामग्री अथवा चित्र की कापी एक मिनिट में साधारण कागज पर उतारी जा सकती है। मूल्य लगेगा कुल दस पैसे।

इस तरीके को 'जेरोग्राफी' कहते हैं और इसका विकास लगभग बीस-इक्कीस वर्ष पूर्व अमरीका में हुआ था। एक प्रकाश-सक्रिय पट्टिका की सहायता से चलने वाला यह यंत्र अब तक हमें विदेशों से मंगाना पड़ता था और इसकी कीमत लगभग एक लाख रुपये बैठती थी। स्वदेश में तैयार होने पर इसकी कीमत कुल पंद्रह हजार रुपये के आस-पास होगी।

राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला के ठोस भौतिकी (सालिड फिजिक्स) विभाग के अध्यक्ष डा० महेंद्र तथा उनके साथी डा० पाराशर, डा० सूद, डा० देवेंद्र सिंह तथा डा० नरेंद्र कुमार को इस स्वदेशी यंत्र के निर्माण का श्रेय है। यंत्र की उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए अनुसंधानशाला ने एक पाइलट प्लांट डालने का निश्चय किया है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग पांच सौ यंत्र खरीदने के लिए उत्सुक है।

सन २००१ की पत्तल पर

प्रमोद जोशी

इस सदी के अंत में, विश्व की पूरी आबादी का पेट भरने के लिए सालाना ६ करोड़ टन खाद्य पदार्थों की आवश्यकता पड़ने लगेगी। इसकी परिपूर्ति के लिए हमें आज की तुलना में दुगुना खाद्य-उत्पादन करना होगा। कैसे होगी इस लक्ष्य की परिपूर्ति ? और क्या परोसेंगे सन २००१ की पत्तल पर हम?

सन २००१ की पत्तल पर होंगे नवीन रूपों में उपलब्ध प्रोटीन के नये-नये व्यंजन और कुल्हड़ में होगा प्रोटीन-बहुल वानस्पतिक दुग्ध। मगर यह प्रोटीन कहां से आयेगा ?

इस प्रोटीन के नये स्रोत होंगे—एककोषीय यीस्ट, जीवाणु (बैक्टीरिया), कवक (फफूंद) एवं शैवाल, तथा बहुकोषीय शैवाल, घास-पात, मूंगफली, सोयाबीन, बिनौला, नारियल आदि वनस्पतियां।

हमें ऐसा प्रोटीन चाहिये, जो गुणों में जांतव (पशुओं से प्राप्य) प्रोटीन का मुकाबला कर सके और कम खर्च से औद्योगिक स्तर पर आसानी से तैयार किया जा सके और ऊपर बताये वानस्पतिक स्रोतों से ऐसे प्रोटीन का निर्माण संभव है।

पहले एककोषीय प्रोटीन यानी सूक्ष्म जीवों से प्राप्त हो सकने वाले प्रोटीन पर विचार करें। अब तक के परीक्षणों से यह आशा बंधती है कि खमीर पनपाकर (यीस्ट द्वारा) ५० से ५५ प्रतिशत, जीवाणुओं (बैक्टीरिया) से ५० से ८० प्रतिशत, फफूंदों से १५ से ४५ प्रतिशत तथा शैवालों (एल्गी) से २० से २६ प्रतिशत तक प्रोटीन वाले खाद्य पदार्थ बनाये जा सकते हैं।

ये आंकड़े शुष्क होते हुए भी महत्त्वपूर्ण हैं; क्योंकि अभी हम विभिन्न अनाजों को जिन रूपों में खाते हैं, उससे हमें गेहूं से १०-१२ प्रतिशत, चावल से ८-९ प्रतिशत तथा मांस-मछली से लगभग २०-२२ प्रतिशत तक

ही प्रोटीन प्राप्त होता है। कौन-से सूक्ष्म जीव प्रोटीन-निर्माण में विशेष सहायक हो सकते हैं, उसका कुछ अंदाज पृष्ठ ५१ पर दी हुई तालिका—क से आपको हो जायेगा।

और ये सब कोरी संभावनाएं ही नहीं हैं। यीस्ट से प्रोटीन बन रहा है और उसका उत्पादन उत्तरोत्तर वृद्धि पर है। पेट्रोलियम कारखानों से उप-उत्पाद के रूप में मिलने वाले सूक्ष्म जीवों का प्रोटीन के निर्माण में महत्त्वपूर्ण उपयोग हो रहा है। फ्रांस के खोज-कर्ता चैम्पेनट ने यह दरशा दिया है कि सूक्ष्म जीवों से प्राप्त प्रोटीन में उच्च जैविक गुण होते हैं और यदि व्यापारिक स्तर पर इसे बनाया जाये, तो यह अकेला ही खाद्यो-पयोगी प्रोटीन की सारी कमी को पूरी कर सकता है।

इसी तरह मांस से मिलने वाले प्रोटीन की पूर्ति के लिए पशुधन बढ़ाना अनिवार्य नहीं है। यह एककोषीय प्रोटीन उतना ही गुणवान और २।। हजार गुना कम समय में तैयार किया जा सकता है।

सन २००१ तक जो बहुकोपीय ... स्पति आपकी भोजन-तालिका की ... बढ़ायेंगे, वे हैं—समुद्री शैवाल, घास-... बिनौले, मूंगफली, सोयाबीन, ... आदि के व्यंजन।

क्लोरेला आदि प्लवकों (प्लैंकटन) ... अन्य समुद्री वनस्पतियों का जापान ... देशों में तो प्रोटीन-बहुल भोज्य-पदार्थों ... रूप में उपयोग हो भी रहा है।

उधर इंग्लैंड में लगभग ७,००० ... की लागत से ऐसी मशीन तैयार की जा ... है, जो घास-पात से प्रोटीन खींचकर बोतलों में भरती है। ब्रिटिश विज्ञानियों ने यह ... हिसाब लगा लिया है कि तिपतिया घास ... प्रति हैक्टर लगभग ३,००० किलो... ऐसा प्रोटीन हासिल किया जा सकता है, जिसे दूध के रूप में पिया जा सकता है।

मूंगफली व सोयाबीन से भी दुग्ध बनाया जा रहा है। सोयादुग्ध तो प्रोटीन के लिहाज से किसी भी पशुजन्य दुग्ध की बराबरी ... सकता है। उसमें वनस्पति तेल, फास्फे-टाइड, शरीर का क्षारीय संतुलन रखने के लिए आवश्यक खनिजों तथा विटामिनों का भी बाहुल्य होता है। तालिका—ख (पृष्ठ ५१) में सोयादुग्ध और गोदुग्ध की तुलना की गयी है।

आर्थिक दृष्टि से भी सोयादुग्ध ... लाभप्रद है; क्योंकि लगभग १ किलो सोया-बीन से १० लिटर दूध बनता है।

बिनौला कल तक केवल पशुओं का भोजन समझा जाता था, अब उससे खा...

तालिका—क

सूक्ष्म जीव का वर्ग	वैज्ञानिक नाम	प्रोटीन प्रतिशत	प्रमुख अमीनो अम्ल (प्रति १०० ग्राम प्रोटीन)	
			लाइसीन	मेथियोनीन
यीस्ट	१. कैंडिडा ट्रापिकैलिस	४५	७.७ ग्रा०	०.८ ग्रा०
	२. सेकेरोमाईसीज सेरेविसी	५०	७.३ ,,	१.२ ,,
जीवाणु	१. वेसीलस मेगाटोरिम	४०	७.० ,,	१.८ ,,
	२. वेसीलस स्टिप्ट्रोथर्मा फिलस	७५	७.४ ,,	२.७ ,,
कवक	पेनीसीलियम नोटेटम	३८	४.० ,,	१.० ,,
शैवाल	स्पाइटुलीना मैक्सिमा	६५	४.६ ,,	१.८ ,,

तेल बड़े पैमाने पर प्राप्त किया जा रहा है। अगली सदी में शायद विनौला हमारे भोजन का प्रमुख भाग होगा। कुछ और वस्तुओं के साथ मिलाकर इसका प्रोटीन-बहुल आटा मध्य अमरीका में 'इन्कापेरीना' तथा 'पेरुविटा' और इथियोपिया में 'फाफा' नामक खाद्यपदार्थों के नाम से खाया भी जाने लगा है। इसके लिए पहले इसमें स्थित प्राकृतिक जहर गैसीपोल को दूर करना जरूरी है। मूंगफली का आटा भी प्रोटीन-आहार वनाने में प्रयुक्त हो रहा है। इसे चने के आटे के साथ मिलाकर ४२ प्रतिशत प्रोटीन वाली रोटियां व बिस्कुट वन रहे हैं। १५ प्रतिशत मूंगफली के आटे में ६० प्रति

तालिका—ख

	प्रोटीन प्रतिशत	वसा प्रतिशत	कार्बोहाइड्रेट प्रतिशत	राख प्रतिशत	पानी प्रतिशत
सोयादुग्ध	३.५	२.८	३.१	०.५	९०.०
गादुग्ध	३.७	३.७	४.८	०.७	८७.४

शत टैपियों का तथा २५ प्रतिशत गेहूं का आटा मिलाकर 'नकली चावल' भी बनाया जा रहा है।

नारियल की खली (२५ प्रतिशत) तथा सोयाबीन के आटे (७५ प्रतिशत) से भी प्रोटीन-पूर्ति की आशा की जा रही है।

अब तो हालैंड की एक कंपनी ने एक महत्त्वपूर्ण अमीनो अम्ल लाइसीन का कृत्रिम निर्माण करके संश्लिष्ट प्रोटीन के निर्माण की आशा उत्पन्न कर दी है।

यह तो रही प्रोटीन की बात। विटामिन और खनिज तो कृत्रिम रूप से इतनी अधिक मात्रा में निर्मित हो रहे हैं कि उनकी कोई समस्या ही नहीं है। कृत्रिम वसा का निर्माण भी संश्लेषण द्वारा जर्मनी की एक कंपनी ने विश्वयुद्ध के दौरान किया था, जो दुष्पाच्य होने के कारण अधिक प्रचलित नहीं हुआ। परंतु सुपाच्य कृत्रिम वसा का निर्माण औद्योगिक दृष्टि से अब कोई बड़ी समस्या नहीं है।

प्रोटीन, विटामिन, खनिज और कृ... के ये नवीन स्रोत ही इस सदी के अंत तक रोटियों और पेटों की संख्या में संतुलन बैठा सकेंगे।

★

दिल्ली के काफी हाउस में कुछ लेखक और प्रोफेसर श्री राजेंद्रसिंह बेदी के साथ बैठे हुए थे।

एक प्रोफेसर ने बेदी की ओर संकेत करते हुए नवतेज पुआंधी ने पूछा—"यह वही बेदी हैं, जो फिलमी डायलाग लिखते हैं?"

"नहीं, यह वह बेदी हैं, जो फिल्मों में डायलाग लिखते हैं।" नवतेज ने कहा।

—विरदी

* * *

राजेंद्रसिंह बेदी को उनके उपन्यास 'एक चादर मैली सी' पर साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिला, तो उनके सम्मान में बंबई के पंजाबी लेखकों ने उन्हें एक पार्टी दी। पार्टी में हिन्दी-उर्दू के भी कुछ लेखक शामिल थे।

कुछ वक्ताओं के बाद 'नवभारत टाइम्स' के संपादक श्री महावीर अधिकारी बोलने के लिए उठे। उन्होंने बेदी की मुक्तकंठ से प्रशंसा की। वे उस समय जज्बात में डूबे हुए थे। अंत में उन्होंने जैसे हार मानते हुए बड़ी बेबसी से बेदी को संबोधित करते हुए कहा—"बेदी साहब, मैं अब आपकी तारीफ नहीं कर सकता।"

बेदी ने तुरंत उठते हुए कहा—"मैं आपका शुक्रगुजार हूं, पर अब मैं भी अपनी और तारीफ नहीं सुन सकता।"

★

आस्ट्रेलिया से एक चिट्ठी

कुंजलता कापड़ीआ
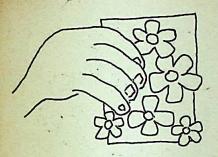
एडलेड,
दक्षिण आस्ट्रेलिया

प्रिय बहन,

आजकल आस्ट्रेलिया में अविकसित देशों की मदद करने की हवा जोरों से चल रही है। भोजन-समारंभों, नृत्यों और गोष्ठियों आदि का आयोजन करने और डिब्बे हाथ में लेकर खड़े होने का तरीका अब लोगों की नजरों में पुराना पड़ गया है। आजकल वहां एक और नया तरीका चंदा उगाहने का चल पड़ा है। इसका नाम है—'वाकेथान' अर्थात् चलने की स्पर्धा।

जिसे चंदा उगाहना हो, वह कुछ निश्चित मील चले। प्रति मील के हिसाब से लोग उसे चंदा देते हैं। जैसे प्रति मील ५ या १० सेंट। यदि पांच व्यक्ति प्रति मील १० सेंट के हिसाब से आपको 'स्पान्सर' करें, तो एक मील चलने पर आपको ५० सेंट मिल जायेंगे। यदि चार मील चलेंगे, तो दो सौ सेंट मिल जायेंगे। दो सौ सेंट का मतलब है दो डालर, जो भारत के सोलह रुपये के बराबर होते हैं। प्राय: लोग अपने मित्रों, बच्चों आदि को ही 'स्पान्सर' करते हैं।

आज के 'वाकेथान' में मेरी विशेष रुचि थी; क्योंकि इसका आयोजन भारत की मदद के लिए किया गया था। नार्थ टेरेस के बोटैनिकल गार्डन से इसकी शुरूआत हुई। तरह-तरह के लोग थे—बालक, युवा, वृद्ध, छात्र, पादरी, नन, अफ्रीकी, इतालवी, ग्रीक, मलय आदि।

हल्की ठंड पड़ रही थी। आकाश में बादल छाये हुए थे। मीलों चलने की प्रेरणा देने वाला सुहावना मौसम था और वातावरण उत्साह से भरपूर। पर जानती हो आश्चर्य की क्या बात थी? एडलेड में रहने वाले एक भी भारतीय ने भारत की मदद के लिए आयोजित इस कार्यक्रम में भाग नहीं लिया—मैंने भी नहीं।

* * *

ऊपर की घटना से नीचा हुआ मेरा सिर अभी ऊंचा उठ भी न पाया था कि वैसी ही एक दूसरी घटना घटित हुई। मैं एडलेड स्टेट लाइब्रेरी में काम करती हूं। उसके 'रेफरेंस सर्विस' विभाग को विभिन्न देशों के दर्शनीय स्थलों आदि के संबंध में जानकारी देने

वाले प्रचार-साहित्य के संग्रह में रुचि है। प्रत्येक देश के दूतावास से ऐसा साहित्य बिना मूल्य मिल जाया करता है।

मेरे सहकर्मी राबिन ने कैनबरा के सभी दूतावासों को पत्र लिखे। जवाब में इतनी अधिक सामग्री आने लगी कि रोज का काम निबटाना राबिन के लिए मुश्किल पड़ने लगा। रोज ही किसी-न-किसी दूतावास से बड़ा-सा बंडल आ पहुंचता था।

भारतीय हाई कमिशन से क्या सामग्री आती है, इसमें मेरी विशेष दिलचस्पी थी। इस संबंध में मैं रोज ही राबिन से पूछताछ करती। एक दिन उसने पचास-साठ पुस्तिकाओं का बंडल दिखाते हुए कहा —"भारत की ओर से तो अभी कुछ भी नहीं आया, पर यह सामग्री आपके शत्रु देश ने भेजी है।" वह सामग्री पाकिस्तानी हाई कमिशन से आयी थी।

दो महीने बाद एक दिन सुबह हंसता हुआ राबिन दो पैम्फलेट हाथ में लिए आया और बोला—"आपका हाई कमिशन बड़ा समझदार है। मेरा काम अधिक न बढ़े, इसलिए उसने यही दो पैम्फलेट भेजे हैं।"

देखा तो वे भी चीनी आक्रमण के संबंध में छपी प्रचार पुस्तिकाएं थीं। १९६२ की घटना से संबंधित साहित्य १९६९ में!

* * *

मैं अपनी एक सहेली ज्यूडी के यहां से सबर्बन ट्रेन द्वारा लौट रही थी। ईडन हिल्स नामक उपनगर से मेरियन नामक उपनगर जाना था। रात के साढ़े दस बज रहे थे।

यहां तो प्रायः हरएक के पास मोटर होती है। इसलिए इतनी रात गये कोई विरला ही ट्रेन से यात्रा करता है। एक डिब्बे की इस ट्रेन में कुल हम तीन ही थे — मैं, गार्ड और ड्राइवर। ड्राइवर की सीट भी उसी डिब्बे में थी।

शाम के छः बजे के बाद इक्के-दुक्के यात्री ही रह जाते हैं। इसलिए गार्ड डिब्बे में आकर टिकट देता है। गाड़ी चालू हुई ही थी कि गार्ड ने पास आकर पूछा —"हैलो यंग लेडी, ह्वेयर वुड यू लाइक टु गो?" मैंने बताया —"मेरियन।" क्षण-भर मेरी ओर देखकर वह बोला —"क्या आपको नहीं लगता कि बाहर निकलने के लिए अब बहुत देर हो गयी है?" मैंने कहा —"बाहर नहीं घर जा रही हूं।" "तब तो ठीक है," कहकर उसने टिकट दे दिया।

यों तो मुझे मेरियन उतरना था; मगर मैं रहती हूं ओकलैंड्स और मेरियन स्टेशनों के बीच। इतनी रात को वहां के रास्ते सुन-

सान हो जाते हैं। भाग्य से ही कोई मोटर गाड़ी दीख पड़ती है। रेल की पटरियों के दोनों ओर बादाम के वृक्षों की कतारें हैं। इन दिनों पत्रहीन। इन पर अद्भुत सुंदर वसंत का अवतरण तो जुलाई के अंत में होता है, जब शिशिर की कड़कती ठंड कुछ हल्की हो जाती है, (यहां तेज ठंड मई-जून में पड़ती है) तब सफेद डालियां हल्के गुलाबी रंग के फूलों से भर जाती हैं—मात्र फूलों से, पत्तों से नहीं।

ट्रेन भागी जा रही थी। गार्ड ने पूछा—"कहां रहती हैं आप ? मेरियन स्टेशन के पास कहीं ?" मैंने बताया—"नहीं, मेरियन और ओकलैंड्स स्टेशनों के बीच।" गार्ड ने सुझाया—"जब आपका घर करीब आ जाये, बता दीजियेगा। गाड़ी रुकवा दूंगा, जिससे आपको अधिक न चलना पड़े।"

गाड़ी दोनों स्टेशनों के बीच खड़ी हो गयी। प्लैटफार्म न होने के कारण मुझे हाथ का सहारा देकर सावधानीपूर्वक उतारा गया। मैंने कहा—"थैंक्स ए लाट।" गार्ड ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—"गुडनाइट एंड कीप स्माईलिंग।" ड्राइवर ने भी खिड़की से हाथ हिलाकर विदा दी।

बादाम की शुभ्र वसंत की याद करती-करती मैं घर पहुंच गयी।

★

राजेंद्र बाबू की वस्त्र-संबंधी अव्यवस्थिता मशहूर रही है। सिर की टोपी से लेकर नीचे धोती तक सभी कुछ अस्तव्यस्त। लाख प्रयत्न करने पर भी टोपी ठीक स्थान पर नहीं रह पाती थी। एक बार पंडित मोतीलालजी ने उनसे पूछा—"आप कपड़े पहनते ही क्यों हैं ?" उत्तर मिला—"शरीर ढंकने के लिए।"

* * *

वे अंत तक नीम की दातौन का ही प्रयोग करते रहे। उनके दांत भी अंत तक सही-सलामत और मजबूत रहे। एक बार उनके दांत देखकर एक उपचारिका ने पूछा—"क्या आपके दांत नकली हैं ?" "मेरी कोई चीज नकली नहीं है।" मुस्कराते हुए राजेंद्रबाबू बोले।

* * *

उन दिनों राजेंद्रबाबू बिहार प्रदेश कांग्रेस के प्रधान मंत्री थे। फजुल रहमान, एक उग्र कांग्रेसी, कुछ शिकायत लेकर उनसे मिलने आये। राजेंद्रबाबू सदाकत आश्रम में बैठे चरखा चला रहे थे। रहमान ने वहां पहुंचते ही बिना कुछ कहे-सुने अनाप-शनाप बोलना शुरू कर दिया। राजेंद्रबाबू उठकर लघुशंका के लिए चले गये और लौटकर फिर चरखा चलाने में लग गये। रहमान ने जब अपने अशिष्ट वचनों का उन पर कोई असर नहीं देखा, तो अंत में चुप हो गये। तब राजेंद्रबाबू ने पूछा—"क्यों रहमान साहब, सब शब्द समाप्त हो गये ?" फजुल रहमान क्या कहते, आंखों में आंसू आ गये। अहिंसा के व्यावहारिक पक्ष का ऐसा उदाहरण उन्होंने नहीं देखा था।

—धर्मपाल जैन

★

सुशील कुमार दोषी

क्रिकेट का महानतम बल्लेबाज कौन?

क्रिकेट के इतिहास का सर्वश्रेष्ठ बल्लेबाज कौन हुआ है? यह एक ऐसा दिलचस्प प्रश्न है, जिसका समाधान कई क्रिकेट-प्रेमी चाहते होंगे। समाधान खोजना कोई आसान काम नहीं है। प्रत्येक युग का महान खिलाड़ी अपने समय की अलग-अलग किस्म की गोलंदाजी पर प्रभुत्व जमाकर क्रिकेट-प्रेमियों के मन में बसता है। क्रिकेट के महान खिलाड़ियों की परस्पर तुलना करके एक क्षण में निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि उनमें कौन ज्यादा महान है।

डा० ग्रेस

डा० डब्ल्यू० जी० ग्रेस एक महान खिलाड़ी थे—अपने व्यक्तित्व के कारण भी तथा खेल पर गहरे प्रभाव के कारण भी। इसी तरह अपने-अपने समय में विक्टर ट्रंपर, जैक हॉब्स तथा ब्रैडमन भी सर्वश्रेष्ठ बल्लेबाज थे। रणजीतसिंहजी यानी नवानगर के जाम साहब के, जिनके नाम से भारत की प्रसिद्ध रणजी ट्राफी चलती है, उच्चस्तरीय खेल का एक जमाना था और यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि सन् १८९६ से १९०० तक वे विश्व के सर्वश्रेष्ठ बल्लेबाज थे।

रणजीतसिंहजी और बहुचर्चित डब्ल्यू० जी० ग्रेस के खेल को तुलनात्मक दृष्टि से देखने के पहले दो महत्त्वपूर्ण बातें गौर करने योग्य हैं। पहली तो यह कि ग्रेस के खेल का तरीका रणजी से कुछ भिन्न था और दूसरी यह कि जिस नयी शैली को ग्रेस ने खोजा

था, रणजी उसी शैली को अपनाकर क्रिकेट-जगत में चमके। ग्रेस को अपनी तकनीक ईजाद करनी पड़ी थी और रणजी को तकनीक तैयार मिल गयी थी।

प्रथम श्रेणी के क्रिकेट अंपायर रावर्ट टाम्स सन १८७० से १९०० तक के समय के क्रिकेट के अनुभवी प्रत्यक्षदर्शी थे। उन्होंने एक वार कहा था –"रणजी ग्रेस से ज्यादा अच्छे वल्लेवाज थे, क्योंकि वे ज्यादा किस्म के स्ट्रोक्स लगा सकते थे।"

ई० वी० लुकास ने लिखा है–"यों तो डब्ल्यू० जी० ग्रेस ने क्रिकेट का रणजी से ज्यादा उपकार किया है और वे एक अच्छे गोलंदाज भी थे। लेकिन जहां तक केवल वल्लेवाजी का सवाल है, रणजी सवसे वड़े जादूगर थे। वैसे विक्टर ट्रंपर, मेकार्टनी तथा जैक हॉब्स भी महानता में उनसे ज्यादा पीछे नहीं थे।"

अपने समय के वल्लेवाजों की योग्यता की तुलना करने के वाद आर्थर लिली इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे :

१. डा० डब्ल्यू० जी० ग्रेस–क्रिकेट की दुनिया के सर्वोत्तम आलराउंडर।

२. आर्थर श्रूजवरी–पेशेवर वल्लेवाजों में मूर्धन्य।

३. विक्टर ट्रंपर–आस्ट्रेलिया में पैदा हुए सवसे महान वल्लेवाज।

४. क्लेम हिल–उलटे हाथ से खेलने वाले वल्लेवाजों में अतुलनीय।

५. रणजीतसिंहजी–सिर्फ वल्लेवाजी का जहां तक सवाल है, वे निर्विवाद विश्व के सर्वोत्तम खिलाड़ी थे।
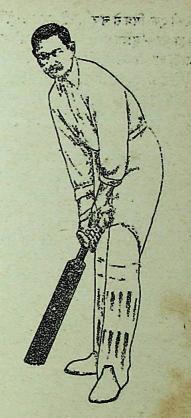
रणजी......रणजीतसिंह
जिन्हें एक विनोदी रिपोर्टर ने 'रन गेट सिंग' कहा था।

टाम्स, लुकास तथा लिली के विचारों का कई दूसरे जानकारों ने भी समर्थन किया। सन १९०५ से १९३३ तक अपनी काउंटी टीम ससेक्स की ओर से खेलने वाले क्रिकेट-खिलाड़ी रावर्ट रेल्फ का यह दृढ़ मत था कि रणजी दुनिया के सर्वश्रेष्ठ वल्लेवाज थे।

अपने एक मित्र से चर्चा करते समय उन्होंने कहा था –"हॉब्स को भी अगर गिन लिया जाये, तो भी आज तक के क्रिकेट खिलाड़ियों में मैं रणजीतसिंहजी को ही सर्वश्रेष्ठ वल्लेवाज मानता हूं। उनके स्ट्रोक्स सबसे ज्यादा आकर्षक, चमत्कारपूर्ण एवं सुंदर होते थे।"

ऐसा ही मत था ए० सी० एम० क्रूम का। सन १९३० में मैनचेस्टर मैदान में आस्ट्रेलिया-इंग्लैंड के बीच टेस्ट मैच चल रहा था। मैच के दौरान जब बारिश हुई, तो सभी खिलाड़ियों को मैदान छोड़कर पैवेलियन में लौटना पड़ा। खाली समय में आर्थर गिलिगन, सर होम गार्डन और ए० सी० एम० क्रूम को रणजी के खेल की चर्चा करने का मौका मिल गया।

"क्या आप रणजी को ऐसा वल्लेवाज मानते हैं, जिन्होंने वल्लेवाजी की तकनीक में प्रयोगों द्वारा क्रांतिकारी परिवर्तन किये ?"

सर डोनाल्ड (डान) ब्रैडमन

आर्थर गिलिगन ने उत्सुकतापूर्वक क्रूम से प्रश्न किया।

"मैं जामसाहब (रणजीतसिंहजी) को सर्वकालीन सर्वश्रेष्ठ वल्लेवाज मानता हूं, भले ही आप उनकी तुलना किसी भी अन्य खिलाड़ी से क्यों न कर लें।" क्रूम ने तुरंत उत्तर दिया।

प्रसिद्ध खिलाड़ी फ्राय ने अपनी जीवनी 'लाइफ वर्थ लिविंग' में सर्वकालीन महान खिलाड़ियों की तुलना वड़े ही दिलचस्प ढंग से की है। उन्होंने लिखा है –"मैंने जितने वल्लेवाज देखे, उनमें रणजीतसिंहजी को छोड़कर केवल ट्रंपर ही एक ऐसे वल्लेवाज थे, जिन्होंने हर प्रकार की गोलंदाजी को सरल एवं साधारण साबित कर दिया था। फिर भी न तो वे रणजी जितने ठोस वल्लेवाज थे और न ही वल्ले को घुमाने में उनकी तरह फुर्तीले थे। रणजी अपने खेल में गोलंदाज के लिए वेहद निर्दय व घातक होते थे, जबकि ट्रंपर के खेल में दया की कुछ भावना स्पष्ट परिलक्षित होती थी।

"श्रेष्ठ वल्लेवाजों की तुलना करके किसी ठोस निष्कर्ष पर पहुंचना तो असंभव-सा ही है। क्रिकेट के कई जानकार शैली और कार्यक्षमता के आधार पर ट्रंपर को श्रेष्ठतम वल्लेवाज ठहराते हैं। मैं सोचता हूं, विवाद केवल डब्ल्यू० जी० ग्रेस, ट्रंपर, रणजीतसिंहजी और डान ब्रैड्मन को लेकर हो सकता है; क्योंकि श्रेष्ठ वल्लेवाजों में यही चार दिग्गज आते हैं।

"मेरा अपना मत यह है कि ग्रेस के स्ट्रोक्स

की शक्ति अन्य तीनों खिलाड़ियों की सम्मि-लित शक्ति से भी ज्यादा थी और वे एक ही किस्म का स्ट्रोक लगाने की क्षमता रखते थे। विक्टर ट्रंपर के खेल में आकर्षण सबसे ज्यादा था और प्रत्येक गेंद पर वे दो तरह के स्ट्रोक लगाने की क्षमता रखते थे।

"रणजीतसिंहजी के खेल में सफाई व सुंदरता सबसे ज्यादा थी और प्रत्येक गेंद पर वे तीन तरह के स्ट्रोक लगाने की क्षमता रखते थे। डान ब्रैडमन ने सबसे ज्यादा रन अर्जित किये और उनके पास ऐसे स्ट्रोक्स भी थे, जिनकी समता तीनों नहीं कर सकते थे। स्ट्रोक्स की नियमबद्धता के कारण ही ब्रैडमन को स्वभावसिद्ध खिलाड़ी ठहराया गया है। पर जहां तक खेल में मौलिकता का सवाल है, केवल ब्रैडमन ही रणजीतसिंहजी की बराबरी कर सकते हैं।"

अपना तुलनात्मक विवेचन रणजी और ब्रैडमन पर ही केंद्रित करते हुए फ्राय ने लिखा है—"जहां तक प्रतिष्ठा का सवाल है, रणजी और ब्रैडमन क्रिकेट-जगत् में समान रूप से प्रसिद्ध थे। विभिन्न समयों के असा-धारण बल्लेबाजों की तुलना बड़ी दुष्कर होती है; क्योंकि उनके प्रदर्शन विभिन्न परि-स्थितियों व विभिन्न स्तर की गोलंदाजी के खिलाफ होते हैं।

"ये दोनों महान खिलाड़ी शतक बनाते समय गोलंदाज की धुर्रियां जिस निर्ममता से उड़ाते थे, उसका कोई सानी नहीं। दोनों के खेल में अंतर यह था कि जहां रणजीत-सिंहजी रेजर-ब्लेड-सी तीखी धार से गोलं-

सर जैक हॉब्स

दाजी के बारीक टुकड़े करते दिखाई पड़ते थे, वहीं डान ब्रैडमन उसे छड़ से धुनते आभा-सित होते थे।

"डान ब्रैडमन की रन-संख्याएं रणजीत-सिंहजी से कहीं ज्यादा बड़ी थीं; पर यह नहीं भूलना चाहिये कि रणजी का क्रिकेट तीन दिनों के मैचों की आवश्यकता के अनु-रूप ढला था। यही नहीं, रणजी ऐसी गोलं-दाजी के भी खिलाफ खेले थे, जो ज्यादा घातक थी और जिससे आउट होने का अंदेशा कहीं अधिक था। फिर भी रणजीतसिंहजी ने इस पैनी गोलंदाजी का जिस सफाई व

ग्रेस : कार्टूनिस्ट की नजर में

सुंदरता से भरे स्ट्रोक्स से स्वागत किया, उसकी कोई तुलना ही नहीं।

"मैंने ब्रैडमन द्वारा गोलंदाजी को वड़े आश्चर्यजनक ढंग से टुकड़े-टुकड़े किये जाते देखा है; लेकिन मैंने उन्हें कभी ऐसे भयावह विकेट पर शतक अर्जित करते नहीं देखा, जिस पर गेंद बुरी तरह उछलती हो। लेकिन रणजी को मैंने ऐसे ही भयावह विकेट पर गुड लेंग्थ गेंदों पर शतक वनाते आश्चर्य से निहारा है। यही नहीं ब्रैडमन को रणजी की तरह मैंने ऐसे कीचड़-भरे विकेट पर २६० (नाट आउट) वनाते भी नहीं देखा, जिस पर उनकी टीम का दूसरा कोई भी बल्लेबाज १० रन भी नहीं वना पाया हो।"

वैसे दृढ़तापूर्वक यह कहना कि रणजी ही सर्वश्रेष्ठ बल्लेवाज थे, जल्दवाजी होगी। मैं तो यह मानता हूं कि किसी बल्लेवाज को इससे वड़ी इज्जत क्या हो सकती है कि उसे डब्ल्यू० जी० ग्रेस, हॉब्स व ब्रैडमन की श्रेणी में गिना जाये। वैसे इनकी ही श्रेणी में जेसप, मेकार्टनी, हेमंड, वूली, सी० के० नायडू, वारेल आदि कुछ नाम और जोड़े जा सकते हैं। पर, यह बात निश्चित है कि संसार के सर्वश्रेष्ठ बल्लेबाजों की सूची में रणजी का नाम किसी भी हालत में नहीं छोड़ा जा सकता।

ब्रैडमन की बातें

डान ब्रैडमन क्रिकेट के बेताज के बादशाह कहे जाते हैं। वे १९२८ से लेकर १९४८ तक टेस्ट क्रिकेट खेले और उनका टेस्ट औसत था – ९९.९४ रन प्रति पारी!

साधारणत: बीस-पच्चीस या उससे अधिक टेस्ट मैच खेलने वाले बल्लेबाज का औसत अगर ५० रन प्रति पारी के आस-पास बना रहे, तो उसे बहुत सफल खिलाड़ी माना जाता है!

ब्रैडमन का हर कारनामा कालजयी चर्चा का विषय बन चुका है। जब वे पिच पर हों, तो उनका शतक तो सबका ध्यान खींचता ही था, उनके शून्य पर आउट हो जाने को भी मोटी-मोटी सुर्खियों में छापा जाता था।

एक वार ब्रैडमन की एक पारी दो दिन चलती रही और उन्होंने बड़ी रन-संख्या खड़ी कर दी। फिर वे आउट हुए। अगले दिन एक समाचार-पत्र में उस मैच के विवरण पर वड़े टाइप में केवल इन शब्दों की सुर्खी दी गयी थी – "ही-इज आउट!" (वे आउट हो गये हैं।)

–शाहिद अब्बास अब्बासी

अस्तित्व का अर्थ

फूल की पंखुड़ी पर
पड़ी हुई ओस की बूंद
आकाश की बहुरंगी छवि को
समेटे हुए
मुस्करायी......

मेघमालाएं उमड़ीं
फुहार बन बरसीं
ये अनगिन बूंदें
धरती को सींचकर
हंस पड़ी......

शायद ...... ये
अस्तित्व का अर्थ
बता गयीं ......

—डा० रमा सिंह

शून्यवाद

दिगंत वलय मन का।
बाहर का नहीं।
अंदर, बाहर उसी समय तक रहता है।
जब तक रहता है अजान; उसका हाइफन।
उसके बाद?
न तो दिगंत है,
न ही उसका वलय।
मन के आकाश में,
सब हो जाते हैं एकाकार।
वह भी नहीं।
किसका मन ?
कौन मन ?
किसका आकाश ?
किसका दिगंत ?
कहां आकाश ?
कैसा आकाश ?
कौन, क्या रहता है ?
या रहता ही नहीं है ?

—रानू दासगुप्ता

बंगला से अनुवाद : नंदिता सिन्हा

शांति की पैमाइश

विश्वनाथ गुप्त

आज का आदमी जरा-जरा-सी बात पर अशांत हो जाता है, मन का संतुलन गंवा बैठता है। दफ्तर में पानी का गिलास लाने में नौकर ने दो मिनट की देर कर दी, तो अफसर झल्ला उठता है। यही अफसर जब दफ्तर से आधा घंटा विलंब से घर लौटता है, उसे अपनी पत्नी का गुस्सा झेलना पड़ता है। और वह पत्नी बच्चे के हाथों स्टील का गिलास जमीन पर गिर जाने पर उस पर बरस पड़ती है, शायद एक-आध चपत भी रसीद कर देती है।

अशांति, असंतुलन की शृंखला अभिक्रिया (चेन रीएक्शन) चलती रहती है। फिर भी मजे की बात यह है कि इसमें से कोई भी अपने को अशांत, चिड़चिड़ा और तुनुकमिजाज मानने को तैयार नहीं। हरएक अपने को शांत और सहनशील समझता है। लेकिन यदि आप अपनी असलियत जानना चाहते हैं तो नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर ईमानदारी से 'हां' या 'ना' में दीजिये।

१. क्या अपनी बात काटे जाने पर भी आप उत्तेजित हुए बिना रह सकते हैं?

२. जब काम बराबर बिगड़ रहे हों, तब भी क्या आप अपने मिजाज पर नियंत्रण रख सकते हैं?

३. जिन्हें आप नापसंद करते हैं, क्या उनके प्रति भी आप विनम्र और दयालु बने रहते हैं?

४. क्या आप अपने से भिन्न दृष्टिकोण और मनोरंजन संबंधी विचारों वाले व्यक्तियों से भी सहज भाव से मिल सकते हैं?

५. क्या आप दूसरों के क्रोध और 'मूड' से प्रभावित हुए बिना रह सकते हैं?

६. क्या आप यह आशा मन में रखे बिना कि दूसरे आप पर खूब प्यार जतायें, दूसरों से प्यार करते रह सकते हैं?

७. क्या आप नियमों और नियंत्रणों को हंसी-खुशी से झेल लेते हैं और कभी-कभी उनका मजाक भी उड़ा सकते हैं?

८. हुकूमत गांठने वालों को स्वभाव से नापसंद करते हुए भी क्या आप उनके अधीन प्रसन्नतापूर्वक काम कर सकते हैं?

९. जब आपकी योजनाएं विफल हो रही हों, तब भी क्या आप प्रसन्नचित्त रह सकते हैं?

१०. ऐसी स्थिति में क्या आप सहजता से कोई दूसरी योजना सोच और अपना सकते हैं?

११. आकस्मिक जटिल परिस्थितियों में भी क्या आप शांत रह सकते हैं ?

१२. जब किसी की बीमारी से, घर की सफाई-पुताई जैसे कामों से दैनिक जीवन-क्रम में व्यवधान आ पड़े, तब क्या आप चिड़-चिड़ेपन से दूर रह सकते हैं ?

१३. क्या आप उन लोगों में से हैं, जो बिना हंगामा मचाये अपना काम करते रहना पसंद करते हैं ?

१४. आप क्या बिना चिढ़े आलोचना सुन और स्वीकार कर सकते हैं ?

१५. जब लोगों की नजरें आप पर लगी हों और निश्चित अवधि में काम निबटा देना हो, तब क्या आप आसानी से और बिना गलतियां किये काम कर सकते हैं ?

१६. जब आपके दफ्तर के प्रबंध में और कर्मचारियों में हेर-फेर किया जा रहा हो और उसका असर सीधा आप पर ही पड़ता हो, तब भी आप क्या दार्शनिक की भांति तटस्थ भाव से रह सकते हैं ?

१७. क्या आप मनहूस मौसम से अप्रभावित रह सकते हैं ?

१८. जब आप अपनी पसंद की चीज न खरीद पायें और आपको कुछ चीजों के बिना भी काम निकालना पड़े, तो आप क्षुब्ध हुए बिना रह सकते हैं ?

१९. क्या आप लोगों के साथ सदा एक-सा व्यवहार करते हैं ?

२०. प्रिय या अप्रिय जो भी परिस्थिति आये, उसे आप स्वीकार कर लेते हैं और हर चीज में से कोई मजेदार बात खोज लेते हैं ?

विक्षुब्ध मन

फ्रांज काफ्का द्वारा अपने उपन्यास 'ट्रायल' के लिए निर्मित चित्र

अब आप प्रत्येक 'हां' को पांच अंक दीजिये और उनका योगफल निकालिये । अगर ७० अथवा उससे अधिक अंक आपको प्राप्त हुए हैं, तो अत्युत्तम; ६० से ७० के बीच अंक प्राप्त हुए हैं, तो उत्तम; और ५० से ६० तक अंक प्राप्त हुए हैं, तो ठीक ।

दुर्भाग्य से अगर आपको ५० से कम अंक प्राप्त हुए हैं, तो अपनी कमजोरियों का पता लगाइये और उन्हें दूर कीजिये ।

१. हो सकता है दूसरों के प्रति आप अत्यधिक भावुक हों और उनके वचनों और कार्यों को अधिक महत्त्व दे बैठते हों;

२. या हो सकता है आप अत्यंत आत्म-केंद्रित हों और व्यक्तियों और परिस्थितियों के अनुरूप अपने को ढालने में कठिनाई अनुभव करते हों;

३. या हो सकता है कि आपमें आत्म-विश्वास की कमी हो और अपनी योग्यताओं पर आपको पूरा भरोसा न हो ।

★

"तो ब्रह्मभोज का नाम सुनते ही तू भागा चला आया ! जानता नहीं, मुफ्त का भोजन महापाप है । कुछ तो सेवा कर । आ इधर, वेदज्ञ ब्राह्मणों के लिए चंदन घिसकर दे ।" परिचारक ने एकांत में बैठे एक ब्राह्मण से कहा । ब्राह्मण निर्धन प्रतीत हो रहा था । परंतु, वह अन्य ब्राह्मणों से अलग एकांत में बैठा था । परिचारक के वचन उसे तीर की भांति चुभे । वह खिन्न मन से चुपचाप चंदन घिसने लगा ।

मन का ताप शांत करने के लिए वह राम-नाम का जाप करने लगा । फिर भी खेद न मिटा, तो अनजान में ही राम-नाम के स्थान पर 'अग्नि-सूक्त' गुनगुनाने लगा । एक घंटे के अंदर पर्याप्त चंदन तैयार हो गया और परिचारक उसे लेकर चला गया । परंतु चंदन घिसने वाला ब्राह्मण युवक भोजन के लिए नहीं गया । वहीं बैठा 'अग्नि-सूक्त' के मंत्र दुहराता रहा ।

भोजन के पूर्व विप्र-वृंद ने चंदन का ले[illegible] किया । पर यह क्या, जो भी चंदन का ले[illegible] कर लेता, अग्निदाह से तड़प उठता । सैकड़ों ब्राह्मणों को जलन से छटपटाते देखकर आतिथेय और ग्राम के मुखिया चिंतित हो उठे । परिचारक से सब बातें जानकर वे चंदन घिसने वाले युवक के निकट अंजलि-बद्ध होकर बोले–"अज्ञानवश हुए अपराध के लिए हम क्षमाप्रार्थी हैं । ब्राह्मणों को अग्निदहन से त्राण करें ।"

युवक ने वरुण-सूक्त का जाप किया । चंदन हिमजलवत् शीतलता देने लगा । प्रसन्न आतिथेय ने युवक की चरण-वंदना की । ब्रह्मभोज निर्विघ्न संपन्न हुआ ।

युवक का परिचय प्राप्त करके गांव के मुखिया ने उसके परिवार के भरण-पोषण के कष्ट को दूर करने का बीड़ा उठाया, ताकि ऐसे तेजस्वी युवा ब्राह्मण को भोजन के लिए न भटकना पड़े ।

यही युवक आगे चलकर कुंभकोणम् के मध्व-मठ के आचार्य-पीठ पर आसीन हुआ । भक्तवृंद आज भी उन्हें श्री राघवेंद्राचार्य के नाम से स्मरण करता है । श्रद्धालुओं का विश्वास है कि उनके नाम का जप करने से त्रिविध ताप से मुक्ति मिल जाती है ।

श्री राघवेंद्र स्वामी का गृहस्थाश्रम का नाम वेंकट भट्ट था । उनके पूर्वज विज[illegible] नगर के राजदरबार में प्रतिष्ठित पदों पर रह चुके थे । उनके प्रपितामह कृष्ण भट्ट दरबार के प्रमुख संगीतकार थे । उनके वीणा-वादन की साम्राज्य-भर में खूब प्रशंसा

थी। पिता तिम्मण्ण भट्ट भी वैणिक थे और वीणा तिम्मण्ण भट्ट के नाम से विख्यात थे। वर्षों की तपस्या के बाद भी तिम्मण्ण भट्ट पुत्र-मुखावलोकन के सुख से वंचित ही रहे। अंत में वे तिरुपति जाकर तप करने लगे, वहीं वेंकटेश भगवान की कृपा से उन्हें एक कन्या व दो पुत्र हुए। वेंकट भट्ट इनमें सबसे छोटे थे।

पुत्र-प्राप्ति के पश्चात् पिता तिम्मण्ण भट्ट विजय नगर न लौटकर दक्षिण में भुवन-गिरि नामक ब्राह्मण-अग्रहार में बस गये। तीनों वेदों के ज्ञाता ब्राह्मणों का वहां निवास था और माध्व संप्रदाय के अनेक महान विद्वान भी उस ग्राम की शोभा बढ़ा रहे थे। अतः तिम्मण्ण भट्ट वहां अध्यापन करते और भिक्षावृत्ति से जीविका चलाते थे।

पुत्र वेंकट भट्ट मध्वाचार्य रचित सभी शास्त्र-ग्रंथों और जयतीर्थ तथा व्यासराज आदि की लिखी टीकाओं का गुरुमुख से अध्ययन करना चाहते थे। अतः वे कुंभ-कोणम् मध्व-मठ के आचार्य सुधींद्र स्वामी की सेवा में उपस्थित हुए और अपनी तीव्र बुद्धि-शक्ति और विनम्रता से शीघ्र ही गुरु के कृपापात्र बन गये। प्रतिदिन पाठ की समाप्ति पर अन्य छात्र तो चले जाते, परंतु वेंकट भट्ट गुरु के निकट ही रहकर नाना शंकाएं उठाते और उनका समाधान प्राप्त करते। अन्य शिष्य सहज ही उनसे ईर्ष्या करने लगे।

एकांतप्रिय वेंकट भट्ट की एक विचित्र आदत थी। वे सांझ पड़ते ही सो जाते थे।

श्री राघवेंद्र स्वामी

दिन में भी कभी-कभी उनकी झपकी लग जाती थी। निंदक सहपाठियों ने तिल को ताड़ बनाकर गुरु से कहा —"वेंकट भट्ट बड़ा दुराचारी है। संध्याकाल में ही सो जाता है और मध्यरात्रि में मठ के बाहर कहीं चला जाता है।"

गुरु ने आधी रात को स्वयं जांच की और वेंकट भट्ट का बिस्तर खाली पाया। उन्होंने सारे मठ का चक्कर काटा और बाहरी बरामदे में शिष्य को अर्धनग्न अवस्था में सोते देखा। सिरहाने पोथियां थीं। लिखने की कीली और तालपत्र पास ही पड़े हुए थे। एक कोने में बुझा हुआ दीप था। स्वामीजी ने एक पोथी उठायी और उजाले में ले जाकर देखा तो अवाक् रह गये। आज शाम तक न्यायसुधा का जितना अंश पढ़ाया गया था, उसकी व्याख्या उसमें थी। और व्याख्या भी कैसी मौलिक और सारगर्भ!

अगले दिन पाठ प्रारंभ करने से पहले स्वामीजी ने सारा वृत्तांत शिष्यों को सुनाया और सांझ को सोकर व रात को जागकर लिखी गयी उस व्याख्या का नाम रखा—सुधा-परिमलम्। उसी दिन से वेंकट भट्ट का नाम 'परिमलाचार्य' हुआ।

इसी तरह एक अद्वैती को शास्त्रार्थ में पराजित करने पर वे 'महाभाष्याचार्य' कहलाये। इसके कुछ ही महीनों वाद तंजाऊर की राजसभा में श्री नारायण भट्ट को विवाद में जीतकर 'भट्टाचार्य' कहलाये।

वेंकट भट्ट ने सरस्वतीदेवी से पाणिग्रहण करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया। कालक्रमेण सरस्वती ने एक शिशु को जन्म दिया। परंतु भवितव्यता ने वेंकट भट्ट के लिए और ही योजना वना रखी थी।

मध्व-मठ के वयोवृद्ध आचार्य, जिनके चरणों में बैठकर वेंकट भट्ट ने अध्यात्म-विद्या का अध्ययन किया था, रोगग्रस्त हुए। वे चाहते थे कि उनके वाद वेंकट भट्ट आचार्य-पीठ पर आसीन हों। परंतु जव गुरु ने यह इच्छा प्रकट की, तो शिष्य ने निवेदन किया :

वाला भार्या वालको नोपनीतः
वालश्चाहं नाश्रमे मेस्ति वांच्छा।
तथापि
निर्वंधश्चेन्निर्गमिष्यामि नूनम्।

—मेरी पत्नी अभी छोटी उम्र की है। मेरे वच्चे का उपनयन होना शेष है। मैं स्वयं अज्ञ हूं और संन्यास-आश्रम के लिए उत्सुक नहीं हूं। तथापि यदि आपका यही आदेश हो, तो मैं प्रस्तुत हूं।

उस समय तो गुरु उन पर जोर न डाल सके। परंतु कुछ महीनों के वाद उन्होंने शिष्य के सामने वही प्रस्ताव रखा। वेंकट भट्ट उनके आग्रह को टाल न सके और तंजाऊर के राजा के समक्ष उन्होंने विक्रम सं० १५४५ की फाल्गुन कृष्ण द्वितीया को संन्यास ग्रहण किया। चूंकि गुरु ने भगवान रामचंद्र की प्रेरणा से इन्हें उत्तराधिकारी चुना था, इसलिए इनका संन्यासाश्रम का नाम श्री राघवेंद्र स्वामी रखा गया।

स्वामी राघवेंद्र की गणना माध्व संप्रदाय के महान गुरुओं में होती है। मठाधीश वनने के पश्चात् वे तीर्थयात्रा पर निकले। उन्होंने उडुपि के श्रीकृष्ण के देवालय में विराजने वाले श्री व्यासराय स्वामी के ग्रंथ 'चंद्रिका' की विशद व्याख्या लिखी, जो 'चंद्रिकाप्रकाशम्' नाम से विख्यात है। यहीं पर उन्होंने 'तंत्रदीपिका' की व्याख्या लिख कर उसे 'न्यायमुक्तावली' नाम दिया। उडुपि से अनेक विष्णु-क्षेत्रों की यात्रा करते हुए उन्होंने कृष्णा नदी के तीर पर कई महीने निवास किया। वहां की हरियाली ने उन्हें विशेष आह्लादित किया और उन्होंने वहां पर मध्व भगवत्पाद के ग्रंथ अनुभाष्य की व्याख्या लिखकर समाप्त की।

अन्य आध्यात्मिक, धार्मिक महापुरुषों की भांति श्री राघवेंद्र स्वामी की जीवन-गाथा भी चमत्कार-कथाओं से भरी हुई है।

तंजाऊर राज्य में बारह वर्ष के दीर्घ अकाल से पीड़ित जनता को स्वामीजी ने आश्वासन दिया और दुर्भिक्ष-मुक्त किया।

अहमद सैयद नाम के एक नवाव ने स्वामीजी की महिमा की परीक्षा करने के लिए थाल में मांस के टुकड़े भेजे। पूजा के बाद स्वामीजी ने थाल पर जल प्रोक्षित किया, तो थाल में फल दिखाई दिये। भयभीत नवाव सैयद स्वामीजी के चरणों में नत हुआ। उसने स्वामीजी को अनेक ग्राम देने चाहे; परंतु स्वामीजी ने केवल एक ही ग्राम अपने बृंदावन (समाधि) के लिए स्वीकार किया। यह ग्राम तुंगभद्रा स्टेशन से नौ मील की दूरी पर स्थित मंत्रालय कहलाता है।

उनके देहत्याग की यह कथा प्रचलित है: स्वामीजी ने अपने जीवन का अंतिम समय मंत्रालय में व्यतीत किया। उन्होंने अपने जीते-जी बृंदावन (समाधि) का निर्माण कर लिया था। और यह भी वता दिया था कि वे किस दिन इहलीला समाप्त करेंगे।

सं० १९५३ विक्रमी की श्रावण कृष्ण द्वितीया को, गुरुवार के दिन उन्होंने नित्य पूजा के पश्चात् अपने शिष्यों को शांत रहने का संकेत किया और जितने शालिग्राम थे, सवको अपने आसन पर रखकर विधिवत् उनकी पूजा की। तदनंतर उन्होंने वीणा हाथ में ले ली और धीरे-धीरे वीणा-वादन करते हुए कन्नड भाषा में एक पद गाने लगे:

"हे स्वामी, मैं अनाथ हूं, मेरा त्राण कौन करेगा? मैं शरणागत हूं। भगवान, तू मुझे मुक्ति प्रदान कर।"

संगीत थमा। स्वामीजी ने आस-पास जुटे भक्त-वृंद पर दयार्द्र दृष्टि डाली। वहां उपस्थित एक शिष्य वेंकण्णाचार्य को तुंगभद्रा में स्नान कर आने का आदेश दिया। स्नान करके लौटने पर शिष्य को उन्होंने अपने शुभहस्तों से संन्यास की दीक्षा दी और उसका नाम योगींद्र रखकर अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया।

इसके बाद उनके आदेश से बृंदावन (समाधि-स्थल) की पूजा हुई। हरि नाम का जप करते हुए वे अपने आसन से उठे और मंद गति से समाधि की ओर बढ़े और भक्तों की पुष्प-वर्षा और "नमो नमः" के घोष के बीच सशरीर बृंदावन में प्रविष्ट हो गये। उस समय उनके हाथ में दंड, या सिर पर काषाय वस्त्र का अवगुंठन था, मुख-मंडल पर शांत स्मित-रेखा थी।

बृंदावन में वे पद्मासन में आसीन हुए। शिष्यों ने सात सौ शालिग्रामों से उसे भरकर बृंदावन का बंधन किया।

संत राघवेंद्र स्वामी ने संस्कृत में करीब पचास ग्रंथों की रचना की, जिनमें से कुछ हैं— ईशावास्योपनिषत्-कंठार्थ, तैत्तिरीय-कंठार्थ, बृहदारण्यक-कंठार्थ, पुरुषसूक्तव्याख्या, ऋगर्थ-मंजरी, कृष्णचरित-मंजरी, रामचरित-मंजरी, मीमांसा-भाट्टसंग्रह, सुधा-परिमलम्, गीता-न्यायदीपिका टिप्पणी।

भक्त-मंडली उन्हें परम भागवत प्रह्लाद का अवतार मानती है। प्रतिवर्ष श्रावण मास में मंत्रालय में उनके बृंदावन पर गुरुपूजा संपन्न होती है। उसमें माध्व संप्रदाय के अनुयायियों के अलावा भी लाखों भक्त एकत्र होते हैं।

★

बिकास्य की परंपरा

विक्रम को चौदहवीं शताब्दी से उन्नीसवीं शताब्दी तक व्रजभाषा मध्यदेश की काव्यभाषा रही है। व्रजभाषा में अधिकतया श्रव्यकाव्यों की रचना हुई, किंतु संस्कृत नाट्यशास्त्र का प्रभाव भी उस पर यथेष्ट रूप से पड़ा।

डा० रामकुमार वर्मा

संस्कृत साहित्य की नाटक-परंपरा संभवतः विश्व-साहित्य में सबसे प्राचीन है। पश्चिम के कुछ विचारकों का मत है कि नाटक साहित्य का आरंभ सर्वप्रथम यूनान में हुआ और जब ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में यूनान का संपर्क भारत से हुआ, तब हमारे देश में नाट्य-साहित्य का आरंभ हुआ। किंतु यह मत भ्रमपूर्ण है।

हमारे प्राचीन ग्रंथ वेदों में अनेक संवाद-सूक्त ऐसे हैं, जिनमें नाटकीय तत्त्व समाविष्ट हैं। ऋग्वेद के प्रथम मंडल में अगस्त्य और लोपामुद्रा के, छठे मंडल में यम और यमी के तथा दशम मंडल में पुरूरवा और उर्वशी के संवाद पर्याप्त नाटकीय हैं। ई० पू० की चौथी शताब्दी के आस-पास के महाकवि भास के लगभग १३ नाटकों का स्वरूप पूर्णतः भारतीय है। तीसरी शताब्दी ई० पू० में ही महर्षि पतंजलि के महाभाष्य में नाटकों का जो उल्लेख हुआ है, उसमें किसी बाहरी प्रभाव का उल्लेख नहीं है।

मध्यप्रदेश की रामगढ़ पहाड़ी पर जो सीतावेंगा नामक गुफा है, उस पर सुतनुका नाम की नर्तकी का उल्लेख है। उसने अपने प्रेमी देवदत्त के मनोरंजन के लिए एक रंगशाला का निर्माण कराया था, जिसमें प्रेक्षागार तथा नाट्य-मडप भी थे। कुछ विद्वानों का तो यह मत है कि सीतावेंगा के प्रेक्षागार का निर्माण मौर्यकालीन लोमश ऋषि की गुफा के पूर्व ही हो गया था।

ईसा की प्रथम शताब्दी के अंत में आचार्य भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में नाट्य-मंडपों के अंतर्गत 'विकृष्ट' नामक नाट्य-मंडप की रचना का उल्लेख किया है, सीतावेंगा के प्रेक्षागार और नाट्य-मंडप उस विकृष्ट का ही रूप हैं। इस प्रकार आचार्य भरत के मंडपों का प्रेरणा-स्रोत सीतावेंगा के नाट्य-मंडप को माना जा सकता है।

इस भांति यह निर्विवाद रूप से कहा जा

सकता है कि भारत की नाट्य-परंपरा भारतीय कला और संस्कृति की ही उद्भावना है, और वह अपने रूप में सर्वथा मौलिक है।

आचार्य भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में प्रेक्षागार और नाट्य-मंडपों की रचना द्वारा स्पष्ट कर दिया है कि नाट्यकला संपूर्ण रूप से दृश्यकाव्य के अंतर्गत है और नाटक की रचना रंगमंच के संदर्भ में ही होनी चाहिये।

संस्कृत नाट्य-साहित्य की इस परंपरा में महाकवि भास के प्रतिज्ञायौगंधरायण और स्वप्नवासदत्त, शूद्रक के मृच्छकटिक, कालिदास के मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय और अभिज्ञान शाकुंतल, अश्वघोष के शारिपुत्रप्रकरण, सम्राट् हर्षवर्धन के नागानंद, महाकवि भवभूति के उत्तररामचरित, मलती-माधव और महावीरचरित, विशाखदत्त के मुद्राराक्षस, भट्टनारायण के वेणीसंहार, मुरारि के अनर्घराघव, राजशेखर के बालरामायण तथा कर्पूरमंजरी का विशिष्ट स्थान है। संस्कृत की यह प्रशस्त परंपरा उन्नीसवीं शताब्दी के मथुराप्रसाद दीक्षित के वीरप्रतापशंकरविजय, पृथ्वीराज जैसे नाटकों तक चलती रही।

संस्कृत हमारे देश की अधिकांश भाषाओं की जननी है और शेष की पोषिका है। इसलिए संस्कृत का प्रभाव पालि, प्राकृत और अपभ्रंश से होता हुआ आधुनिक भाषाओं और बोलियों पर पर्याप्त रूप से पड़ा है। विक्रम की चौहदवीं शताब्दी से उन्नीसवीं शताब्दी तक ब्रजभाषा मध्यदेश की काव्यभाषा रही है। ब्रजभाषा में अधिकतया श्रव्यकाव्यों की रचना हुई, किंतु संस्कृत नाट्यशास्त्र का प्रभाव भी उस पर यथेष्ट रूप से पड़ा।

लोकनाट्य के रूप में ब्रज की रासलीला अनिश्चित काल से प्रचलित रही ही है; परंतु ब्रजभाषा में नाटक परंपरा का आरंभ मुख्यतया संस्कृत या प्राकृत नाटकों के अनुवाद से होता है। सन १६२३ में हृदयराम ने संस्कृत के 'हनुमन्नाटक' का अनुवाद ब्रजभाषा के पद्यों में किया और जैन कवि बनारसीदास ने सन १६३६ में 'पाहुड़' दोहा का अनुवाद 'समयसार' के नाम से किया। सन १६४३में महाराज जसवंतसिंह ने संस्कृत के कवि कृष्णमिश्र के नाटक 'प्रबोध-चंद्रोदय' का अनुवाद ब्रजभाषा में किया। सन १६५० में लछीराम ने 'करुणाभरण' नाटक की रचना की, जिसमें कृष्ण की कथा है।

सत्रहवीं शती के आरंभ में महाकवि केशवदास ने 'रामचंद्रिका' का कथाविन्यास बड़े शक्तिशाली संवादों और कथोपकथनों द्वारा किया। उन्होंने 'विज्ञान-गीता' की रचना भी नाटकीय शैली में की। महाकवि देव ने 'देवमायाप्रपंच' में भी नाटकीय शैली रखी; पर इसमें प्राधान्य श्रव्यकाव्य तत्त्व का ही है। राजा लक्ष्मणसिंह ने उन्नीसवीं सदी में जो 'अभिज्ञान-शाकुंतल' का अनुवाद किया, उसमें केवल पद्य की ही भाषा ब्रजभाषा थी।

ब्रजभाषा में नाट्यशास्त्र के अधिकांश नियमों का पालन करते हुए लिखा गया

सबसे पहला नाटक था 'आनंद-रघुनंदन', जिसका प्रणयन रीवा-नरेश विश्वनाथसिंह ने सन १६६१ में किया। नाटक का आरंभ सूत्रधार, मारिष, पारिपार्श्वक तथा नटी से होता है। उसमें संस्कृत नाट्यशास्त्र के निर्देशों के अनुसार पात्रों के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया गया है। रंग-संकेत संस्कृत में दिये हैं। अर्थोपक्षेपकों में विष्कंभक तथा पात्रों में विदूषक का भी प्रयोग है।

व्रजभाषा के नाटकों में यही नाटक प्रथम है, जिसमें पद्य के साथ गद्य का भी प्रयोग है। अपनी मौलिकता प्रदर्शित करने के लिए नाटककार ने प्रसिद्ध पात्रों के नामों में भी परिवर्तन कर लिया है। वशिष्ठ के लिए जगद्योनिज, दशरथ के लिए दिग्जान, राम के लिए हितकारी आदि।

संवाद का एक उदाहरण लीजिये :

दिग्जान : गुरो ! शीलकेतु सांचे शील-हेतु हैं, जिनके दान-सनमान सुभाय हमको तो भूलैं नहीं, कहा करें। जिनसों छन भरे की भेंट भई है, तिनकों जनम भरि न बिसारि हैं।

जगद्योनिज : सत्य है, शीलकेतु नृत्य याही भांति के हैं।

(वंगदेशीय छात्र का शंकित स्वर सहित प्रवेश)

छात्र : आमि गौतमेर शिष्य। आमा के गुरु तगादा पठैयेसन। सुने धनुषभांगा अतिरागित रैणुकेय आस्तेछेन येखन। यदपि तुम्हार पुत्र हैये मन मय किछु होवै न तुमाकै। विश्वनाथ नृप खबरि जनाया-येन करिबेन तजबीज ताके।

इसी प्रकार विश्वामित्र का यज्ञ विध्[...] करने वाले राक्षसों से फारसी का [...] कुछ शिष्यों से मैथिली भाषा का भी [...] कराया गया है।

रामायण की सारी कथा 'आनंद-रघु-नंदन' में एक ही मंच पर घटित होती [...] वार्तालाप और घटनाओं से ही कथा [...] विकास ज्ञात होता है।

'आनंद-रघुनंदन' के बाद व्रजभाषा [...] दूसरा नाटक 'नहुष' है, जिसे भारतेंदु ह-रिश्चंद्र के पिता श्री गोपालचंद्रजी ने [...] १८४१ में लिखा। भारतेंदु इसे हिन्दी [...] पहला नाटक मानते हैं। वे लिखते हैं—"वि[...] नाटक-रीति से पात्र-प्रवेशादि नियम-र[...] द्वारा भाषा का प्रथम नाटक मेरे पिता पू[...] चरण श्री कविवर गिरिधरदास (वास्तवि[...] नाम बाबू गोपालचंद्रजी) का है।"

इस नाटक का प्रथम अंक ही 'कवि-वचन-सुधा' के प्रथम वर्ष में प्रकाशित हु[...] शेष भाग अप्राप्त है। इसके आरंभ का परि-चय लीजिये :

(नान्द्यन्ते सूत्रधार)

सूत्रधार :— सब कोउ मौन ह्वै हमारी बात सुनौ। विविध-विबुध-वृंदारक-वृंदवं[...] वृन्दावन - वल्लभ - व्रजवनिता - वनज[...] विभाकर वंसीधर विधुवदन-चकोर [...] चतुर-चूड़ामणिचर्चितचरण परमहंस-[...] सित मायावाद-विध्वंसकर श्रीमत वल्लभा-चार्य-वंश-अवतंस श्रीगिरिधरजी [...] राजाधिराज ने मोको आज्ञा दीनी है। [...] मैं गिरिधरदास-कृत नहुष नाटक आरं[...]

अवश्[...]

करौं हौं ।

(तब आगे बढ़ि हाथ जोरि कै)

इहां सब सुभ सभ्य सभाध्यच्छ अपने-अपने पच्छन के रच्छन में परमविचच्छन दच्छ हैं। इनके समच्छ इह ढिठाई है, तथापि कृपा करि सब सुनौ ।

जदपि मातु-पितु-भ्रात विग्य गुनगन
अधिकाई ।
तदपि तोतरे बोल सुनत सिसु के मन
लाई ।। आदि

श्री गोपालचंद्रजी के बाद स्वयं भारतेंदु हरिश्चंद्र के नाटक आते हैं; किंतु इस समय तक राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद, और राजा लक्ष्मणसिंह में खड़ी बोली हिन्दी के रूप पर विवाद खड़ा हुआ और भारतेंदु हरिश्चंद्र ने खड़ी बोली को एक मानक रूप देने के लिए ही नाटकों में ब्रजभाषा गद्य के स्थान पर खड़ी बोली गद्य का प्रयोग किया।

अपने नाटकों में भारतेंदुजी ने संस्कृत नाट्यशास्त्र के नियमों का पूर्ण रूप से पालन किया। नाटक संबंधी अपने विविध प्रयोगों से भारतेंदुजी हिन्दी नाटक साहित्य के जनक समझे जाते हैं।

भारतेंदु के नाटकों में पद्य तो ब्रजभाषा के ही हैं; परंतु गद्य में खड़ी बोली का मंजा हुआ रूप देखने को मिलता है। सन १८७६ में लिखित 'चंद्रावली-नाटिका' में कुछ स्थलों पर ही ब्रजभाषा का प्रयोग है। चौथे अंक में भगवान श्रीकृष्ण चंद्रावली से कहते हैं :

"प्यारी, मैं निठुर नहीं हूं। मैं तो अपने प्रेमिन को बिना मोल को दास हूं। परंतु मोहि निहचै है कै हमारे प्रेमिन को हम सों हूं हमारो बिरह प्यारो है। ताही सौं मैं बचाय जाऊं हूं। या निठुरता में जे प्रेमी हैं, बिनको तो प्रेम और बढ़े, और जे कच्चे हैं, बिनकी खुल जाय। सो प्यारी यह बात हूं दूसरेन की है। तुमारो का, तुम और हम तो एक ही हैं।"

भारतेंदुजी के उपरांत सन १८९८ में राधाकृष्णदास ने 'महाराणा प्रतापसिंह' नाटक की रचना की। उसके चतुर्थ अंक के प्रथम गर्भांक में ब्रजवासनी किशोरियों से ब्रजभाषा में वार्तालाप कराया गया है।

एक : अरी बीर !

दूसरी : का कहै है बीर ?

पहली : अरी नेक पांव बढ़ाये चल, या ब्रज में ऊधमी को राज ठहर्यो, कहुं काहू पै दीठ न परि जाय—सिदौसिए घर कूं चल।

तीसरी : हम्बै बीर—चल !

इस भांति क्रमश: ब्रजभाषा नाट्य-क्षेत्र से हटती गयी और उसका स्थान खड़ी बोली ने लेना प्रारंभ किया।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि ब्रजभाषा के नाटकों का आदिकाल पद्य से आरंभ हुआ; मध्यकाल पद्य और गद्य दोनों ही से समृद्ध हुआ; और अंतिम काल में पुन: वह पद्यों तक ही सीमित रहा।

तीन सौ वर्षों की यह ब्रजभाषा नाटक की परंपरा संस्कृत नाट्यशास्त्र के आधार पर चलती हुई, हिन्दी-साहित्य के इतिहास में स्मरणीय रहेगी।

★

सर्गेई कुर्जेन्कोव

हमें हुक्म मिला था—"रात के समय बम-वर्षक जर्मन विमानों के अड्डे का पता लगाओ और रेडियो द्वारा हमें खबर दो। अड्डे का पता लगते ही निशाना बांध उस पर बम बरसाओ। हमारे जहाज वहां कुछ ही देर में पहुंच जायेंगे। आज रात को एक भी नाजी जहाज मर्मान्स्क पर नहीं दिखाई पड़ना चाहिये। हवाई अड्डे पर बहुत कीमती फौजी सामान उतारा जा रहा है। कोई सवाल ?"

मुझे कुछ नहीं पूछना था। मेरे आगे-पीछे, रात में लिपटी हुई पहाड़ियां और घाटियां फैली हुई थीं। कहीं कोई प्रकाश नहीं था, प्रकाश की कोई झलक तक नहीं—बस अंधकार था, गहन अंधकार।

मैं उत्तर की ओर उड़ रहा था। नीचे, नार्वे के एकदम उत्तरी सिरे पर कर्कनेस शहर दिखाई पड़ रहा था। उस शहर पर जर्मनों का अधिकार था। आस-पास के इलाके में मुझे ऐसा कोई हवाई अड्डा नजर नहीं आया, जहां से हमला किया जा सके। मैं बहुत आगे बढ़ आया था। जहाज में पेट्रोल कम था अतः और आगे जाने पर वापस लौटना असंभव हो जाता। मैं वापस मुड़ा। मुझे सौंपा गया काम अधूरा रह गया।

तभी एकाएक सामने, कुछ कम ऊंचाई पर जगमगाती हुई तीन रोशनियां दिखाई

मैंने हवाई जहाज को एक जलती हुई मशाल की तरह ऊपर की ओर उछाला और खुद काकपिट में से नीचे की ओर गिरा। मेरे हाथ बड़ी बेताबी से पैराशूट के छल्ले को ढूंढ़ने का प्रयत्न कर रहे थे और मैंने देखा, मेरा जहाज कुछ दूर ऊपर उठने के बाद आग का गोला बनकर मेरी ओर नीचे आ रहा है।

पड़ीं—लाल, हरी और सफेद। बमवर्षक विमान! शायद वह क्षतिग्रस्त था, फिर भी अपने अड्डे तक पहुंचने में सफल हो गया था और अब उतरने की इजाजत मांग रहा था। अगले कुछ ही क्षणों में मैंने उस 'यूंकर–८८' को रोशनी की धार में नीचे उतरते हुए देखा।

उसके नीचे उतरते ही जर्मनों की मशीन-गनें चलने लगीं। मुझ पर नजर पड़ गयी थी उनकी।

मेरी नजर हवाई अड्डे पर टिकी थी। गोलियों के प्रकाश में वहां कई 'यूंकर' विमान खड़े दिखाई दे रहे थे। मैं तेजी से नीचे की ओर जा रहा था। अचानक ही जैसे कोई चीज चमकी और मेरी टांग में जलती हुई पीड़ा हुई। मेरे जहाज में आग लग गयी थी।

मैंने बम गिराने के लिए बटन दबाया। दूसरे ही क्षण भयंकर धमाका हुआ और दो 'यूंकर' में से लपटें निकलने लगीं।

मैं अपने जहाज को अब तेजी से ऊपर ले जाने लगा। मुझे बहुत जल्दी थी, और मशीन-गनें जैसे मेरे पीछे हाथ धोकर पड़ी थीं। जलते हुए जहाज से बढ़िया निशाना और क्या हो सकता है! मुझे कोई अंदाज नहीं कि कितनी गोलियां मेरे जहाज को छेद गयीं। लेकिन मैं किसी-न-किसी तरह मशीन-गनों की पकड़ से बच ही निकला।

मैंने सुख की गहरी सांस ली। लेकिन जब मेरी नजर जहाज के मीटरों और कल-पुर्जों पर पड़ी, तो मुझे लगा वे अपनी अंधी आंखों से मुझे घूर रहे हैं और जहाज के बाहर का अंधकार और घना हो गया है। वे पूर्णतया नष्ट हो चुके थे।

"रेडियो! क्या वह भी बेकार हो गया है?" मैंने सोचा। मैं उसे जांचने के खयाल से बोला—"यह है 'सोकोल'—'काजबेक' को बुला रहा है! सोकोल काजबेक को बुला रहा है! मेरे जहाज में आग लग गयी है, मैं जख्मी हो गया हूं। मुझे रास्ता बताओ!"

काजबेक की आवाज आयी। हां, मेरा रेडियो काम कर रहा था! वह नष्ट होने से बच गया था। मुझे बताया गया कि मैं किस दिशा में उडूं।

मैं बड़ी तेजी से अपने हवाई अड्डे की ओर बढ़ा। मुझे कुछ नहीं दिखाई दे रहा था। अब मुझे वे तारे भी नहीं दिखाई दे रहे थे, जिनकी सहायता से सही दिशा ढूंढ़ पाया था। जहाज के काकपिट का कांच अब तक धुंए से काला पड़ चुका था।

जहाज जल रहा था और जान का खतरा हर क्षण बढ़ता जा रहा था। जहाज के पंखों से उठती लपटें काकपिट में आने लगी थीं। आखिर मैंने जहाज में से निकल जाने का

फैसला किया। काफी खून बह जाने के कारण मैं कमजोरी महसूस करने लगा था। पूरा जोर लगाकर मैंने उठने की कोशिश की, लेकिन हवा इतनी तेज थी कि मैं पीछे की ओर गिर पड़ा।

"अब तो मैं इस दोजखी आग में जल मरूंगा!" मैंने भयभीत होकर सोचा। पर तभी मुझ में न जाने कहां से नया साहस उमड़ पड़ा। उसी क्षण मैंने जहाज को इस तरह घुमाया कि उसका ऊपरी भाग नीचे और निचला भाग ऊपर हो गया। अब मैं उलटा बैठा हुआ था—मेरा सिर धरती की ओर था और टांगें आसमान की ओर थीं।

मैंने जहाज को एक जलती हुई मशाल की तरह ऊपर की ओर उछाला और खुद काकपिट में से नीचे की ओर गिरा।

मेरे हाथ बड़ी बेताबी से पैराशूट के छल्ले को ढूंढ़ने का प्रयत्न कर रहे थे और मैंने देखा, मेरा जहाज कुछ दूर ऊपर उठने के बाद आग का गोला बनकर मेरी ओर नीचे आ रहा है।

उस वक्त पैराशूट को खोलना मौत को न्यौता देना था। मैं तब तक नीचे गिरता रहा, जब तक कि जहाज तेजी से नीचे गिरता हुआ मेरी बगल से होकर कुछ और नीचे नहीं चला गया। अब मुझ पर उसके गिरने का डर नहीं था।

"दस.........बीस.........तीस........." मैं गिनता हुआ हिसाब से अनुमान लगा रहा था कि मैं कितना नीचे आ गया हूं। जब मैं लगभग छः हजार फुट नीचे गिर पड़ा, तो मैंने दोनों हाथों से बड़ी कठिनाई से पै[illegible] शूट का छल्ला खोलने की कोशिश [illegible] झटके के साथ जब पैराशूट खुल गया, [illegible] मुझे लगा कि मैं मौत के चंगुल से [illegible] निकला हूं।

लेकिन नहीं!...... पैराशूट की र[illegible] जो गोलियां लगने से किसी हद तक [illegible] गयी थीं, मेरा बोझ नहीं सह पायीं, और [illegible] गयीं। मैं नीचे गिरा, और नीचे गि[illegible] गया। मुझे लगा कि मेरा बचना अब [illegible] नहीं है।

एक धमाका गिरने का और फिर अं[illegible]

मैं बेहोशी की हालत में कितने घंटे [illegible] रहा, पता नहीं। कुछ होश आने पर मुंह [illegible] का स्वाद लगा। उसी नीम बेहोशी की हा[illegible] में मैं उछलकर खड़ा हो गया, लेकिन अ[illegible] ही क्षण फिर गिर पड़ा।

खून से लथपथ, जख्मी हालत में मैं [illegible] में पड़ा रहा। हवाई अड्डा वहां से कुछ [illegible] दूर है, फिर भी मुझे कोई बचाने आ[illegible] इसकी आशा नहीं थी। मैं मौत की प्रती[illegible] कर रहा था, और सोच रहा था कि किस त[illegible] मैं अब तक मौत के मुंह से बचता रहा [illegible]

मेरे कानों में अपने बमवर्षक विमानों [illegible] आवाज आयी, जो दुश्मन के हवाई अ[illegible] की ओर रवाना हो रहे थे। कुछ देर के [illegible] एकदम सन्नाटा छा गया। मुझे बेहद [illegible] आ रही थी। आंखें जबरन मुंदी जा रही थीं। मैंने पूरा जोर लगाकर उन्हें खोलने [illegible] कोशिश की। तभी मैंने बर्फ में किसी [illegible] आहट सुनी। कोई मेरी ओर आ रहा था।

जबर[illegible]

मेरा दायां हाथ पिस्तौल की ओर गया।......

"कौन गोली चला रहा है ?" किसी की आवाज आयी।

मैं कोई जवाब नहीं दे सका और दो और गोलियां चलायी। एक आदमी पास आकर मेरे ऊपर झुका। मेरे मुंह से निकला – "पाइलट ...... कमांडर ...... गिर पड़ा ...... टांगें वर्फ बनी जा रही हैं...... बायां हाथ......"

उस आदमी ने जल्दी से अपना कोट उतारा और मेरी टांगों के गिर्द लपेट दिया। ऊनी रूमाल भी वायें हाथ के गिर्द लपेट दिया।

"हौसला रखना कमांडर !" उसने कहा–"सोना नहीं। मैं अभी हवाई अड्डे से मदद लेकर आता हूं।"

पता नहीं कितना समय बीता होगा। इस सारे अरसे में मैं लगभग बेहोश ही रहा। आवाजें सुनकर मैं मौत के सपनों में से निकला। मैंने काफी प्रयत्न करके आंखें खोलीं, तो अपने चारों ओर टार्चों का प्रकाश देखा, और पाया कई आदमियों को अपनी ओर निहारते हुए।

★

यूक्लिड सिकंदरिया के राजा टालेमी को गणित पढ़ा रहे थे। राजा टालेमी के समझ में कुछ नहीं आ रहा था। कुछ सोचकर राजा ने पूछा–"गणित को समझने के लिए क्या कोई सरल मार्ग नहीं है ?"

यूक्लिड ने गंभीरतापूर्वक कहा –"यह सत्य है कि राजा-महाराजाओं के लिए बहुत सुंदर राजमार्ग होते हैं; लेकिन शिक्षा के लिए तो सभी को एक ही मार्ग से गुजरना पड़ता है।"

* * *

इंग्लैंड के हाउस आफ कामन्स के विवाद में एक सदस्य ने, अपने विरोधी सदस्य से कहा –"आप उन दिनों को क्यों भूल जाते हैं, जिन दिनों आप जूतों पर पालिश किया करते थे ?"

उस सदस्य ने बहुत ही नम्रतापूर्वक उत्तर दिया :

"जनाब, मैंने हमेशा अच्छी पालिश की, कभी अपने ग्राहक को नाराज होने का अवसर नहीं दिया।"

* * *

एक बार पांडचेरी के अरविंदाश्रम के संगीतज्ञ श्री दिलीपकुमार राय ने बर्ट्रेंड रसल से भेंट की। राय ने उन्हें अपना परिचय देते हुए, अपनी कई पीढ़ियों का गौरव से भर-पूर इतिहास सुनाया। यह बात रसल को अच्छी नहीं लगी, तो उन्होंने कहा –"हमें अपने पूर्वजों की प्रशंसा एक सीमा तक ही करनी चाहिये–यही ठीक भी लगता है। यदि हम प्रशंसा करते चले जायेंगे, तो अंत में वहीं पहुंच जायेंगे, जहां हमारे वानर पूर्वज थे।"

★

लाखों बच्चों की दादी

आशारानी व्होरा

कहानियां ! उड़नखटोले की कहानियां । परियों और देवों की कहानियां । जादू और रहस्य की कहानियां । साहस के कारनामों की कहानियां । और इन सवके माध्यम से वाल-विकास और चरित्र-निर्माण की कहानियां ।

एक छोटी-सी लड़की मां की गोद में बैठकर कहानियां सुनती है। हर 'अंकल' और 'आंटी' को पकड़कर उनसे कहानियां सुनती है और उनमें रस लेती है । फिर धीरे-धीरे सुनने का यह शौक सुनाने के शौक में वदल जाता है । वच्ची से किशोरी वनकर वह गिरजे के रविवारीय स्कूल में बच्चों को कहानियां सुनाने लगती है । फिर संगीत सीखती है । वाल-पत्रिकाओं में कविताएं लिखने लगती है।

आगे चलकर जव वह अध्यापिका बनकर वच्चों को पढ़ाती है, संगीत सिखाती है और कहानियां सुनाती है, तो पाती है कि कहानियों में ही वच्चे सवसे ज्यादा रस लेते हैं और कहानियों के माध्यम से ही सबसे अधिक अच्छी तरह सीखते हैं । यह उपलब्धि भी रसमय वन जाती है। वह पियानो, संगीत, कविता और अध्यापन छोड़कर कहानियां लिखने में जुट जाती है
लिखती ही चली जाती है, जव तक युवा
प्रौढ़ा और प्रौढ़ा से दादी मां—विश्व के
वच्चों की दादी मां—नहीं वन जाती।

इस विश्वविख्यात दादी मां का नाम है
ईनिड व्लाइटन ।

जहां भी अंग्रेजी बोली और पढ़ी
है, वहां का हर पढ़ा-लिखा वच्चा ईनिड
व्लाइटन का नाम जानता है; क्योंकि
'द फेमस फाइव', 'द सीक्रेट सेवेन',
एस्ट गर्ल इन द स्कूल,' 'द एडवेंचरस
'द मैजिक फार अवे ट्री', 'द एनचैंटेड
' एडवेंचर्स आफ द विशिंग चेयर', 'है
मिस्टर ट्विडल' आदि पुस्तकें अवश्य
होती हैं ।

व्लाइटन की ख्याति अंग्रेजी की सीमाएं
लांघ चुकी है। विश्व की हर भाषा में
पुस्तकें अनुवाद हो चुकी हैं । 'नैडी'
'फेमस फाइव' जैसी पुस्तकों की प्रतियां
केवल ब्रिटेन में ही करोड़ों में विक चुकी हैं
पच्चीस ब्रिटिश और चालीस विदेशी प्र
शक इनकी पुस्तकें वरावर छापते रहते हैं
वात यह है, दादी ईनिड चार सौ वाल
पोथियां लिख चुकी हैं और उनमें से आधे

ज्यादा इतनी लोकप्रिय हैं कि उनकी मांग बढ़ती ही जा रही है।

एक सर्वेक्षण के अनुसार अनुवाद व विक्री की दृष्टि से ईनिड ब्लाइटन का स्थान विश्व के लेखकों में बारहवां और ब्रिटिश लेखकों में तीसरा है। शेक्सपियर और अगाथा क्रिस्टी के बाद उन्हीं की पुस्तकों की ही सर्वाधिक मांग है। संसार की विभिन्न भाषाओं में उनकी पुस्तकों के ३९९ अनुवाद हो चुके हैं। "नैडी इन टायलैंड" और "फेमस फाइव" का फिल्मीकरण भी हो चुका है।

'एडवेंचर्स', 'मिस्ट्री', 'सीक्रेट', 'फैमिली' आदि शीर्षकों से सीरीज के रूप में प्रकाशित इन पुस्तकों में हर रुचि के बालकों और किशोरों के लिए प्राकृतिक अध्ययन, समाज-विज्ञान, धर्म, नीति, साहस, कल्पनाशीलता, खेल, चुहल, मनोरंजन आदि का भरपूर मसाला है। पर उनका स्थायी और प्रधान प्रभाव है—मनोरंजन। बाल-मन की जिज्ञासा-वृत्ति को उभारते हुए, उनकी कल्पनाशीलता को विकसित करते हुए, उसे गुदगुदी के बहाव में बहाते हुए, शुरू से अंत तक उसे रमाये रखना और प्रश्नों के उत्तर स्वयं खोज निकालने के लिए प्रेरित करना ब्लाइटन की कहानियों की विशेषता है।

यों ऐसे शिक्षाशास्त्री भी हैं, जो ईनिड ब्लाइटन के कटु आलोचक हैं। ब्रिटिश आलोचकों का एक वर्ग उनकी कहानियों को बेतुके, अविश्वसनीय, नवीनताहीन एवं मति भ्रमयुक्त कहता रहा है। कुछ पुस्तकालयों ने उनकी पुस्तकें अपने यहां न रखने की कसम खा रखी है। पर समीक्षकों और पुस्तकालयाध्यक्षों की कहां परवाह बाल-पाठक करते हैं। इसलिए ये पुस्तकें धड़ाधड़ छपती और बिकती रहती हैं।

कहते हैं, बाल-रुचि का अध्ययन करने के लिए ब्लाइटन प्राय: हर रोज अलग-अलग वर्गों और दिलचस्पियों वाले दो-तीन बालकों को अपने साथ घुमाने ले जाती थीं और रास्ते में उन्हें अपनी कहानियां सुनाया करती थीं। सुनाते समय वे बाल-श्रोताओं की प्रतिक्रियाओं का बड़ी बारीकी से अध्ययन करती थीं। परिणामत: उनकी कहानियों में उत्तरोत्तर विकास होता गया और उनकी भाषा शैली किताबीपन से बिलकुल मुक्त हो गयी। वे ऐसे लिखती थीं, जैसे सामने बैठे हुए बच्चों को किस्सा सुना रही हों। मानो लिखते समय भी उनकी आंखें बाल-श्रोताओं के चेहरों पर अटकी रहो थीं। तभी तो वे उन्हें कहानी के बहाव में बहा ले जाने में इतनी अधिक सफल हो सकीं।

ईनिड ब्लाइटन का जन्म सन १९०० में डलविच, लंदन में हुआ। स्कूली पढ़ाई और संगीत-शिक्षा पूरी करके उन्होंने शैक्षणिक विषय, किशोर-साहित्य और प्रकृति-परिचय लेकर पत्रकारिता में विशेषता प्राप्त की। लेखन-कार्य तो विद्यार्थी रहते हुए ही प्रारंभ कर दिया था। चौदह वर्ष की आयु में उनकी पहली बाल-कविता छपी थी। फिर "रियल फेयरीज" नामक एक कविता-संग्रह प्रकाशित हुआ।

अध्यापिका बनने के लिए उन्होंने किंडर गार्टन की ट्रेनिंग ली थी और वे २०० के लगभग शैक्षणिक-पुस्तिकाओं की लेखिका के रूप में भी शिक्षा-शास्त्र की सेवा कर चुकी हैं। 'मार्डन टीचिंग' पत्रिका 'पिक्टोरियल नालेज' और 'टूइयर्स इन द इनफैंट स्कूल' के संपादन एवं लेखन में भी उनका बड़ा हाथ रहा है।

कुछ समय तक अध्यापन और शिक्षा-संबंधी पत्रिका का संपादन-कार्य साथ-साथ चलता रहा और विभिन्न बाल-पत्रिकाओं में उनकी बाल-कविताएं व कहानियां भी छपती रहीं। फिर वे 'सनी स्टोरीज' नाम की बाल-पत्रिका निकालने लगीं। इनमें छपी उनकी कुछ कथा-मालाएं बहुत पसंद की गयीं और कहानियों की मांग बढ़ने लगी। जब तक वे पच्चीस वर्ष की हुईं, उनका बाल-कथा लेखन भी यौवन पर आ चुका था। फिर तो कहानियों की सीरीजों के बाद पुस्तकों की सीरीजें प्रकाशित होने लगीं।

चालीस-पैंतालीस वर्षों के लेखकीय जीवन में २०० शैक्षणिक बाल-पुस्तकों एवं ४०० बाल कथा-संग्रहों का लेखन तथा कई पत्रिकाओं का संपादन कोई साधारण कार्य नहीं है। प्रसिद्धि मिल जाने के बाद उन्होंने 'ईनिड ब्लाइटन्स, मैगजीन' नामक पत्रिका का भी कई साल तक संपादन किया।

विश्व के हर भाग से उनके पास हर महीने सैकड़ों पत्र रोज आते थे। उनकी पत्रिका और पुस्तकों पर उनके निवास-स्थान का पूरा पता लिखा रहता था। उसका लाभ उठाकर बहुत-से बाल-पाठक उन्हें पत्र लिखते थे। प्रत्येक पत्र का पूरी तत्परता से उत्तर दिया जाता था। इसी काम के लिए एक अलग कार्यालय खोला गया था। अपनी प्रिय लेखिका के हस्ताक्षर से युक्त पत्र पाकर बच्चों की आंखें आश्चर्य और आनंद से चमकने लगती थीं।

अब बाल-पाठक यह सुख नहीं पा सकेंगे, क्योंकि ब्लाइटन दादी का नवंबर १९६८ में देहांत हो गया। परंतु सैकड़ों रोचक कथा-पुस्तकों के माध्यम से अगली अनेक पीढ़ियों तक दादी और पोतों का यह स्नेह-संबंध बना ही रहेगा।

★

एक विख्यात पोलो-खिलाड़ी ने प्रसिद्ध लेखक बाब सिल्वेस्टर को पोलो और दूसरे खेलों का अंतर में समझाया —"दूसरे सब खेलों में सबसे पहले खिलाड़ियों की टांगें जवाब दे जाती हैं; जबकि पोलो में जेब जवाब दे देती है।"

★

चिंता की चादर क्यों ओढ़ते हैं आप ?

एक अनपढ़ आदमी, जो उम्र भर सूखे इलाके में रहा था और जिसने कभी नदी या झील नहीं देखी थी, यात्रा करने निकला। रास्ते में एक नदी पड़ी। उसके किनारे पनचक्की भी लगी थी। यात्री नजदीक गया, तो गोल घूमती हुई चक्की के पहिये, घिर्री और उसमें लगी पेटियां देखकर हैरान रह गया। दिमाग में यह बात घर कर गयी कि इन चक्रों, पहियों या घिर्रियों के घूमने से ही नदी में प्रवाह है। उसने यह भी सोचा कि कभी यह चक्र घूमना बंद हो गया, तो नदी का प्रवाह थम जायेगा, नदी सूख जायेगी, भयंकर अनर्थ होगा। आगे बसे गांवों और खेतों को पानी मिलना बंद हो जायेगा। हजारों आदमी प्यासे मर जायेंगे।

उसी समय अचानक किसी वृक्ष की टूटी हुई शाखा नदी में बहती आयी और चक्की के पहिये में अटक गयी; पहिये का घूमना धीमा होते-होते थम गया।

यात्री यह सब देख रहा था। उसने पूरा जोर लगाकर पहिये को घुमाने की कोशिश की। पहिया धीरे-धीरे घूमने लगा। मगर फिर अगली टहनी अटक गयी और पहिया रुक गया। यह क्रम घंटों चला। यात्री पहिया घुमाते-घुमाते बेहद थक गया। इसी बीच दो आदमी और उधर से गुजरे। उन्होंने भी कंधा लगाया और तीनों आदमी पूरी कोशिश से नदी के बहाव को कायम रखने का यत्न करते रहे।

नदी का बहाव तो कायम रहा, मगर पहले यात्री की जान पर बन आयी। उसका दम टूटने लगा। उसके साथी भी पास ही खड़े थे। उन्होंने एक स्वर से प्रथम यात्री की सराहना की। उसके नेतृत्व, उसके शौर्य और बलिदान की प्रशंसा करते हुए उन्होंने घोषित किया कि अगर वह वृक्ष की शाखा के अटकते ही पहिये को घुमाना न शुरू कर देता, तो नदी का प्रवाह रुक जाता। "मानव-जाति के कल्याण के लिए उसने जीवन अर्पित कर दिया," इन शब्दों के साथ लोगों ने उसके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की।

मृत्यु के समय उस यात्री के मुख पर सौम्य शांति थी। उसके अंतिम शब्द थे—"मैं शांतिपूर्वक विदा हो रहा हूं, क्योंकि मेरा

जीवन-ध्येय पूरा हो गया। नदी का वहाव पूर्ववत् है, पूर्ववत् रहेगा। मेरा कर्तव्य पूरा हो गया, नदी अपना कर्तव्य पूरा करेगी।"

आखिर उसने इसी विश्वास के साथ प्राण छोड़े कि उसके प्रयत्न से नदी का वहाव कायम है; इस प्रवाह का श्रेय उसे ही है।

हममें से अधिकांश आदमी भी ऐसे ही भोले और भले दिल के होते हैं, जो अपने वलिदान से संसार का काल-चक्र घुमाने का महत्त्वपूर्ण कार्य करते रहते हैं।

कालचक्र घुमाने की चिंता छोड़ यदि इस कालचक्र के सच्चे रहस्य को समझने में समय और शक्ति का व्यय करें, तो अधिक सुखी और उपयोगी हो सकेंगे। शायद भगवान भी अपना चक्र स्वयं घुमाने में अधिक स्वतंत्रता और सुविधा अनुभव करेगा।

★

जिन दिनों मैं कालेज का छात्र था, मैं अपनी मां से सख्त नाराज था। महीनों मैं मुंह फुलाये रहता था और मां से नितांत आवश्यकता की दो-चार वातों के सिवा वातें नहीं करता था।

मां-बेटे की इस अनवन के पीछे एक लंबी कहानी थी। मेरे धनसंपन्न ननिहाल में सिर्फ नानी जीवित थीं। मां उनकी एकमात्र संतान थी। सो नानाजी की मृत्यु के बाद नानी ने यह इच्छा प्रकट की कि मेरे माता-पिता उनके साथ रहें; क्योंकि नानी के बाद वह सारी संपत्ति हमारे घर ही आने वाली थी। संस्कृत पाठशाला के अध्यापक की पत्नी और स्वयं प्राथमिक शाला की अध्यापिका होते हुए भी मां ने नानी का प्रस्ताव नहीं माना। असुविधाओं से भरी अपनी छोटी-सी गृहस्थी अलग ही वनाये रखी।

मां नानी से कहतीं—"मैं संजय को स्वावलंबी वनाना चाहती हूं। तुम उसे धन-दौलत का लालच मत दिखाओ, मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूं।" इस पर नानी रोने लगतीं और मैं क्रोध से तमतमा उठता कि मैंने आज तक दुनिया में ऐसी वेवकूफ मां नहीं देखी है, जो अपने बेटे को सहज ही प्राप्त होने वाली सुख-सुविधाओं से स्वयं वंचित करे।

मेरी इस यंत्रणा की पराकाष्ठा तो तब हुई, जब कुछ ही दिनों बाद नानी की अचानक मृत्यु हो गयी और मां ने विरासत में मिली सारी संपत्ति स्थानीय संस्कृत विद्यालय को दान दे दी। मैं क्षोभ में घर से निकल भागा। वर्षों मैं घर से बाहर रहा और जिस दिन लौटा, उस दिन अपने जीवन-संघर्षों से जीतकर लौटा था। जो व्यक्तित्व, जो चरित्र मैंने अर्जित किया था, उसे समाज में उदाहरण समझा जाता था।

मां ने अश्रुपूरित मुस्कानों से मेरा स्वागत किया। मां ने कहा—"मैं तुम्हारे चले जाने के वाद रोयी-धोयी नहीं; क्योंकि मैंने तुम्हारे अंदर की आग को देख लिया था। उसी आग ने तुम्हें आज सोना वनाया है।" और मैं भावावेश में विह्वल उसके चरणों से लिपट पड़ा था।

—संजय

★

मोती : काले और चटपटे

काली मिर्च के लिए क्या नहीं हुआ ? आक्रमण हुए, घेरे डाले गये। रोम के सम्राट् कर के रूप में काली मिर्च लेकर खूब खुश होते थे। काली मिर्च के लिए भारत का रास्ता खोजने के प्रयास में ही नयी दुनिया की राह खुली।

शिवनंदन कपूर

नन्हे-नन्हे दाने, सोने से भी कीमती। उनके श्याम रंग के आगे राजाओं ने सोने को भी ठुकरा दिया। अनेक बार उनके कारण रक्तपात हुआ। कितने ही विदेशियों को उसने भारत आकर व्यापार करने के लिए उकसाया। भारत का वह 'काला मोती' था 'काली मिर्च'।

दक्षिण के व्यापारी इसे दूर देशों तक ले गये, और बदले में असीम धन लाये। मिस्र, और यूनान तक इसके तीखेपन का बोलबाला था। तमिल काव्य-संग्रह 'अहम' में लिखा है – 'यवनों' के विशाल जलयान सोने से लदकर आयेंगे, और बदले में गोल मिर्च लेकर वापस जायेंगे। यूनानी भाषा का 'पेप्पिरी' शब्द भी तमिल के 'तिप्पिली' से ही उद्भूत हुआ है।

विश्व को दो महान सभ्यताएं देने वाले इन दोनों देशों में संबंध-सूत्र स्थापित करने वाली यह सर्वप्रिया संस्कृत में 'यवन-प्रिया' भी कही जाती थी।

आज से २,००० वर्ष पूर्व पश्चिम में काली मिर्च इतनी दुर्लभ थी कि केवल धनी-मानी ही इसका उपभोग कर पाते थे। ईसा की प्रथम शती तक रोम में यह सचमुच सोने के भाव बिकती थी। एक पौंड काली मिर्च का उपहार शाही उपहार माना जाता था। रोम के शासक भेंट या 'कर' में काली मिर्च पाकर अधिक प्रसन्न होते थे। १३ वीं-१४ वीं सदी के यूरोप में भी लगान का भुगतान काली मिर्च के जरिये किया जा सकता था।

सन ४०८ ई० में रोम के सम्राट् ने विदेशों से व्यापार करने वाले वणिकों को परवानगी देते समय एकमात्र शर्त यह लगायी थी कि प्रत्येक व्यापारी प्रतिवर्ष उसे ४० मन काली मिर्च दे।

प्रसिद्ध इतिहासकार 'प्लिनी' के समय एक पौंड काली मिर्च का मूल्य १५ दीनार था। प्लिनी काली मिर्च के व्यापार से अत्यधिक भयभीत था। उसका कहना था– "काली मिर्च के पीछे रोम ने इतना अधिक सोना, चांदी तथा तांबा विनिमय में दे डाला है कि उसकी अर्थ-व्यवस्था डांवाडोल हो गयी है।"

रोम में काली मिर्च सामाजिक-आर्थिक पद-प्रतिष्ठा का पैमाना था। जो इसे न खरीद सके, उसे निम्न वर्ग का तथा हेय माना जाता था। औषधों में भी इसका अत्यधिक प्रयोग होता था। यूनान के चिकित्सकों की दृष्टि में यह शीत-ज्वर की अमोघ दवा थी।

काली मिर्च के लिए क्या नहीं हुआ? आक्रमण हुए, घेरे डाले गये, खून की नदियां बहीं। अलेरिक ने ४०८ ई० पू० में रोम पर आक्रमण कर दिया। घेरा उठाने की शर्त के तौर पर उसने ५,००० रत्तल सोना, और ३,००० रत्तल चांदी के साथ ३,००० रत्तल काली मिर्च की भी मांग की। इसी तरह अटीला (४०६–४५३) ने भी जब रोम को शिकंजे में लिया, तो मांग पेश की–"३,००० रत्तल काली मिर्च दो।"

सन ११०१ में गेनोज ने कैसेरिया पर हमला किया। भयंकर युद्ध हुआ। विजय गेनोज की हुई। लूट-मार में सबसे अधिक जिस पर ध्यान दिया गया, वह सोना-चांदी नहीं, बल्कि काली मिर्च थी। हर सैनिक के हिस्से में दो-दो पौंड काली मिर्च पड़ी।

केरल के बंदरगाहों से नौवीं शती में भी काली मिर्च पश्चिमी देशों को भेजी जाती रही। पुर्तगाली और डच इसके आकर्षण से ही खिचकर इधर आये। इसके मोह में ही स्पेन, तथा पुर्तगाल के निवासियों ने भारत का मार्ग खोजा। अमरीका, और गुड होप अंतरीप के अन्वेषण के पीछे भी इसी की प्रेरणा थी।

ऊंटों पर लदकर स्थल-मार्ग से भी यह यवन-प्रिया विदेश-यात्रा करती रही। कुछ समय के लिए पुर्तगालियों का अरब सागर में बोलबाला हो गया। बस, उन्होंने अरब व्यापारियों को दो चीजें ले जाने से रोक दिया। वे थीं, शस्त्रास्त्र और काली मिर्च। काली मिर्च के व्यापार पर वे एकाधिकार चाहते थे (बारबोसा–२-२२७)।

मुहम्मद आदिलशाह के जमाने में पुर्तगाली काली मिर्च का रोजगार चलाते रहे। वे उधर से घोड़े लाते, इधर से काली मिर्च ले जाते। अधिक-से-अधिक लाभ के लिए बड़ी नौकाएं लायी जातीं। उन्हें दोहरा लाभ था। सस्ते दामों पर घोड़े लाकर, वे उसके अच्छे पैसे प्राप्त कर लेते थे। फिर यहां से मामूली दामों पर काली मिर्च खरीद लेते थे। वे इतनी बड़ी नावें लाते थे कि एक-एक में अस्सी घोड़े तक आ जाते। अठारहवीं शती तक काली मिर्च के व्यापार पर पुर्तगालियों का एकाधिकार रहा। इसे इतना सस्ता कर देने का श्रेय उन्हें ही है।

डच लोगों ने तो इसकी खेती मलाया तथा हिन्देशिया में भी प्रारंभ की थी। अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शती में यह वहीं से पश्चिमी देशों को भेजी जाने लगी। दूसरे विश्वयुद्ध में दक्षिण-पूर्व एशिया में इसकी खेती नष्ट हो गयी। इस प्रकार भारत फिर अपने पूर्व स्थान पर आ गया।

केरल में जन्म लेकर काली मिर्च आगे सुमात्रा, बोर्नियो, थाईलैंड और फिलिपीन में फैली। अब तो यह कई ऊष्ण-कटिबंधीय देशों में उत्पन्न की जाने लगी है। इसके

सबसे अधिक पैदावार सिंगापुर के समीप पेनांग तथा जोहोर में होती है।

काली मिर्च की लता या झाड़ियां हुआ करती हैं। दाने गुच्छों में लगते हैं, जिन्हें तोड़कर सुखा लिया जाता है। तोड़े हुए पके दाने तीन दिन तक घर में रखे जाते हैं। फिर उन्हें टोकरी में रखकर हाथों से रगड़ा जाता है। ऊपर का छिलका दूर हो जाता है। बस, काली मिर्च सफेद बन जाती है। अफसोस है, काले-गोरे बनने का यह आसान-सा नुस्खा सभी जगह पर नहीं अपनाया जा सकता।

भारत में इसकी खेती मुख्य रूप से केरल में तथा छुटपुट रीति से मैसूर, मद्रास तथा महाराष्ट्र राज्यों में होती है।

सारे संसार में प्रतिवर्ष ६५,००० टन काली मिर्च की खपत होती है। इसमें अकेले संयुक्त राज्य अमरीका में यह १५,००० टन खप जाती है। भारत की वर्तमान उत्पादन क्षमता २०,००० टन से भी अधिक है।

★

जब १८९७ में रणजी को आस्ट्रेलिया-यात्रा के लिए चुन लिया, तो आस्ट्रेलियन इतने हर्ष-विभोर हो उठे कि सिनेट में एक विशेष अधिनियम लागू करके उन्हें उस १०० डालर के प्रचलित टैक्स से मुक्त कर दिया, जो किसी भी विदेशी को आस्ट्रेलिया में प्रवेश करने से पहले देना पड़ता था। एडलेड के पहले टेस्ट मैच में रणजी ने १८९ रन बनाये। परंतु उनकी प्रसिद्धि जल्द ही धूमिल पड़ गयी, जब उन्होंने आस्ट्रेलिया के तीव्र गोलंदाज अर्नेस्ट जोन्स पर गलत गेंद फेंकने का आरोप लगाया और कहा कि अनजाने ही यह इंग्लैंड की टीम के साथ पूरे खेल में होता रहा है।

कंठ-प्रदाह से पीड़ित हो जब रणजी बीमार पड़ गये, तो आस्ट्रेलियाई आलोचकों को मौका मिला और उन्होंने खुलमखुल्ला इस बात का प्रचार किया कि रणजी जोन्स की तूफानी गोलंदाजी से भयभीत हैं। गर्वीले राजा रणजी इस आरोप को बर्दाश्त नहीं कर सके और बिस्तर से उठकर सीधे खेल के मैदान में आ पहुंचे। उन्होंने इंग्लैंड के लिए १७५ रन बनाकर आलोचकों का मुंह बंद कर दिया, जिससे जोन्स को काफी क्षति उठानी पड़ी। मैच के मैदान से वे सीधे बिस्तर पर जा लेटे।

सिडनी में तीसरे टेस्ट मैच के दिन सुबह रणजी के गले का आपरेशन हुआ था; लेकिन पहले दिन उन्होंने ४० रन बनाये, जो बाद में बढ़कर १८६ हो गये। रणजी पुनः आस्ट्रेलियनों के हियहार बन गये। टेस्ट मैच 'रणजी मैच', कहलाये 'रणजी बार' और 'रणजी केश-कर्त्तनालय' खुल गये और क्रिकेट के 'रणजी बैट' बन गये।

भारत के प्रथम महान खिलाड़ी ने यह यात्रा २० मैचों में १,१५७ रन बनाकर (औसतन ६०.८९) समाप्त की। वे इतने ज्यादा रन बनाते थे कि रायटर के संवाददाता ने एक बार यह तार भेजा—"रणजी ने मात्र ५० बनाये।"

★

पेट्रोल ने कहा 'खुल जा सिमसिम' और अबू धाबी की किस्मत का खजाना खुल गया। अब उसके शेख का कहना है—हमारी समस्या धन कमाने की नहीं है, वह तो हमारे पास अपार है। हमारी समस्या है, अपार धन का उपयोग कैसे किया जाये।

विश्व का सबसे धनी देश

अरब के रेगिस्तान के एक राज्य में एक ऐसी राजधानी बनायी जा रही है, जो पश्चिम के शहरों से भी अधिक आधुनिक होगी। अजीब बात यह है कि इस शहर के रहने वाले लोग वे हैं, जो अभी तक समुद्री डकैती का पेशा करते हैं और मध्य युग के लोगों की तरह अपनी जिंदगी बसर करते हैं।

यह राज्य है अबू धाबी, जो संसार का सबसे अधिक गर्म प्रदेश है। फारस की खाड़ी के दक्षिणी किनारे पर यह राज्य २८,००० वर्गमील के रेतीले क्षेत्र में फैला हुआ है। इसकी जनसंख्या २०,००० है, किंतु केवल ६०० व्यक्ति ही साक्षर हैं। यह दुनिया का सबसे अमीर राज्य है। इसकी प्रति व्यक्ति वार्षिक आय है ३७ हजार ८०० रुपये। जबकि अमरीका में प्रति व्यक्ति आय केवल २७ हजार ३०० रुपये है। यहां के शासक की दैनिक आय है ४२ लाख रुपये। यह सब है पेट्रोल की बदौलत।

ब्रिटेन के संरक्षण में यह राज्य ६ अन्य छोटे-छोटे राज्यों से जुड़ा हुआ है, जिनका कुल क्षेत्रफल ३२,००० वर्गमील है। ब्रिटिश संरक्षण १९७१ में समाप्त हो जायेगा।

इस राज्य में पहुंचने का वायुमार्ग कुवैत के ऊपर से गुजरता है। कुवैत की गगनचुंबी इमारतों के ऊपर से उड़ता हुआ डी. सी. ३ विमान सऊदी अरब के किनारे से चक्कर काटता हुआ निर्मल पारदर्शी फारस की खाड़ी को पार कर जाता है। यहां से विमान अचानक ही मुड़कर श्वेत रेगिस्तान की ओर उड़ने लगता है और धीमे-धीमे नीचे आता हुआ अबू धाबी के हवाई अड्डे पर उतर जाता है।

आजकल सप्ताह में चार विमान यहां उतरते हैं। अभी यह स्थान पुराने युग की याद दिलाता है। परंतु अबू धाबी के शेख जैद इब्न सुल्तान अब इसे मध्यपूर्व का सबसे बड़ा और सबसे सुंदर हवाई अड्डा बना रहे हैं। जहाजों के उतरने के लिए इतनी लंबी पट्टी बनायी जा रही है, जिस पर अतिस्वन विमान भी सुगमता से उतर सकें। वे अपने महल से दो घंटे में पेरिस और चार घंटे में न्यूयार्क पहुंचना चाहते हैं। उनकी अपार संपत्ति के सामने कुछ भी असंभव नहीं।

शेख जैद कहते हैं– "हमारी समस्या धन कमाने की नहीं है, वह तो हमारे पास अपार

'फार्चून' में प्रकाशित एक लेख पर से

है। हमारी समस्या है अपार धन का उपयोग कैसे किया जाये? अपना माल बेचने के लिए हजारों व्यापारी यहां खिंचे चले आते हैं। मेरा महल शहद का ऐसा प्याला है, जिस पर मधुमक्खियों के झुंड-के-झुंड मंडराते रहते हैं।"

महल के सामने एक व्यापारी खड़ा था। वह सारे अबू धावी राज्य पर शीशे की विशाल वातानुकूलित छत्री लगाने का प्रस्ताव लेकर आया था। इस छत्री का आविष्कार चंद्रमा के नये शहरों में लगाने के लिए अमरीका में किया गया है। शेख ने उसका सुझाव नहीं माना। व्यापारी निराश होकर यह कहता हुआ लंदन लौट आया—"इस छत्री के परीक्षण का एकमात्र अवसर भी हाथ से निकल गया।"

अपने महल के आंगन में प्रजाजनों को रोज सुबह दर्शन देने के लिए शेख आते हैं। वहां वे किसी और से मिलें, न मिलें, प्रसिद्ध जापानी शिल्पकार थाकाहंसी से जरूर मिलते हैं, जिसे अबू धावी और अल ऐन के शहरों के नये डिजाइन तैयार करने का ठेका दिया गया है।

नक्शे को फर्श पर फैला दिया जाता है। मुंह में हुक्के की नली दवाये हुए शेख ध्यान से सब कुछ सुनते हैं। बीच-बीच में अपनी छड़ी को नक्शे के प्रस्तावित मार्ग पर रखते हुए वे कहते हैं—"मैं इसे और चौड़ा करना चाहता हूं। हर मकान के साथ बाग की भी जगह छोड़ो।" हर चीज का निश्चय वे स्वयं अपने आप करते हैं। तीन साल पहले उन्हें अक्षर-ज्ञान भी नहीं था। थाकाहंसी का कहना है कि निर्माण-कार्य के निरीक्षण में वे सबको मात दे सकते हैं।

इसके बाद शेख चोरी और झगड़ों की शिकायतों को सुनते हैं और उनका निपटारा करते हैं। सबसे अंत में हत्या के मुकद्दमे पेश किये जाते हैं; लेकिन ऐसी वारदातें कम ही होती हैं। शेख का फैसला ही अंतिम होता है। लोगों का कहना है कि फैसला न्यायपूर्ण भी होता है।

शेख जैद

राज्य की दो तेल कंपनियां ही शेख को प्रतिदिन ४२ लाख रुपये देती हैं। ४८ वर्षीय शेख इस रकम का एक चौथाई हिस्सा अपने परिवार पर खर्च करते हैं (उनकी ६ लड़कियां और ९ लड़के हैं) और प्रत्येक अतिथि को वे शुद्ध सोने की बनी एक घड़ी भेंट करते हैं। शेष धन राष्ट्रीय कोष में जमा कर लिया जाता है, जो लोगों के जीवन-स्तर को ऊंचा उठाने के लिए और नये निर्माण

के लिए व्यय किया जाता है।

शेख ने ईराक के महमूद हसन जुम्मा को पंचवर्षीय विकास-योजना की पूर्ति के लिए भारी रकम दी है। सन १९६८ के जनवरी मास के पहले दिन यह कार्य आरंभ किया गया। इस पर कुल लागत ८४१·४७ करोड़ रुपये होगी। योजना का उद्देश्य नागरिक जीवन को नवीनतम साधनों से संपन्न बनाना है। हसन जुम्मा बड़े अभिमान से कहते हैं कि आप जब सन १९७२ में यहां वापस लौटेंगे, तो इस चमत्कार को देखकर आंखों पर विश्वास न कर सकेंगे। उन्होंने मुझे खर्चों की लंबी सूची भी दिखायी।

कुछ आंकड़े इस प्रकार हैं — शिक्षा २१ करोड़, जनस्वास्थ्य १० ५० करोड़, कृषि २३ करोड़ ११ लाख ५ हजार, उद्योग १०५ करोड़, संचार ६४ करोड़ ६८ लाख, एक पुल ६६ लाख ९६ हजार, तीन हवाई अड्डे (उनमें से एक अंतर्राष्ट्रीय अड्डा) २० करोड़ ८० लाख, एक बंदरगाह २१ करोड़, अत्याधुनिक दूर-संचार-व्यवस्था का जाल बिछाने का काम ४२ करोड़, पर्यटन १०·५ करोड़ और दो जेलखाने ४ करोड़ २१ लाख ५ हजार रुपये।

जो भी परिवार बद्दुओं के ढंग से तंबुओं में रहना छोड़कर पक्के घर में बसने को तैयार हों, उन्हें घर दिये जायेंगे। ऐसे ४,००० घर बनाये जा रहे हैं। हर घर में डेन्मार्क के विशेषज्ञों की सहायता से बगीचा लगाया गया है। प्रत्येक घर आंगन, स्नानघर, गर्म पानी की व्यवस्था, टेलिविजन आदि से सुसज्जित होगा।

इस वर्ष सर्वाधिक राशि व्यय की जा रही है। इसके बाद यह राशि स्वतः ही कम होती चली जायेगी। १९७२ में स्थिति यहां तक पहुंच जायेगी कि शेख को पुनः सोचना होगा कि अब किसका निर्माण किया जाये, क्या खरीदा जाये और अपने जातीय निवासियों को क्या दिया जाये।

इतने अपार धन का स्वामी होते हुए भी शेख जैद के पहरावे में बड़ी सादगी है। घड़ी भी वे चांदी की रखते हैं। उनकी और उनके प्रजाजनों की वेशभूषा में कोई अंतर नहीं है— बदन पर लंबा सफेद चोगा, सिर पर बड़ी अरबी पगड़ी, जिस पर दुहरी काली रस्सी लगी होती है, पैरों में चप्पल। प्रायः शेख के हाथ आपस में बंधे रहते हैं और वे दिल खोलकर हंसते हैं।

वे अपने पुश्तैनी महल में ही रहते और वहीं काम करते हैं। बहुत ही उजले सफेद पत्थरों से बना यह महल छोटे-से किले की तरह है, जिस पर मोटे-मोटे लकड़ी के दरवाजे हैं। ऊपर बुर्जियां हैं, जिन पर से युद्ध के समय गोलियां और गोले बरसाये जा सकते हैं। अहाते में बांस और ताड़ के पत्तों से बनी अनेक झोपड़ियां हैं। लेकिन अब ७३ लाख ५० हजार रुपये की लागत से सभी सुख-सुविधाओं से युक्त एक आधुनिक महल राजधानी के निकट बन रहा है।

पुराने महल के बीचों-बीच ऊंटों का बाड़ा है। पास ही पुरानी बंदूकों और सोने या चांदी की मूठ वाली छुरियों से लैस अंगरक्षकों का

अपनी-अपनी नजर :

बेचारी रानी एलिजाबेथ को कुछ चंदा भेज दें। हम जानते हैं, सिर्फ ९५ लाख रुपये में साल भर गुजारना कितना कठिन होता है।
('इंडियन एक्सप्रेस' में अबू)

डेरा है, बांस की छत वाले गैरेज में कारें खड़ी हैं, एक रोल्सरोय्स, दो मर्सिडीज, १० अमरीकी कारें और तीन लाल रंग की फैरेरी, जो नये मार्गों पर दौड़ेंगी। अबू धावी की सड़कों पर दौड़ती अधिकांश कारें शेख की हैं, जिन्हें उन्होंने मंत्रियों, उच्च कर्मचारियों, किसानों आदि को दे रखा है।

मध्ययुगीन अबू धावी का अंत सन १९६६ में उस समय हुआ, जब अधिकारियों ने ब्रिटिश सरकार के दवाव में आकर शेख शंबुन के स्थान पर उसके भाई शेख जमीद को नियुक्त करने का फैसला किया। उस समय अबू धावी रेगिस्तान से अधिक कुछ नहीं था। कुछ कच्चे मकान थे, कुछ झोपड़ियां और २०,००० खानावदोश बद्दू थे। न पानी था, न सड़कें, न टेलिफोन न डाक-व्यवस्था।

१९५८ से ही ब्रिटिश पेट्रोलियम कंपनी तेल निकाल रही थी और शेख शंबुन को २२ करोड़ २७ लाख ६८ हजार रुपये प्रतिवर्ष देती थी। शेख शंबुन उस रकम से सोने के छड़ खरीदते थे। उनमें से कुछ को वे सिरहाने छिपा लेते थे और कुछ तहखाने में। जब उन्हें देश से निकाला गया, तो बैंक में उनकी ४२ करोड़ निजी संपत्ति जमा थी। और अब वे बेरुत में उस पैसे का भरपूर आनंद ले रहे हैं।

अपने शासन के प्रथम छः महीनों में ही शेख जैद ने अंग्रेज राजनीतिक सलाहकारों के परामर्श से निर्माणकार्यों के राष्ट्रीय व्यय को चौगुना कर दिया। परिणाम यह हुआ कि रेगिस्तानी बद्दू लोग एक राष्ट्र के रूप में संगठित हो गये। २५,००० विदेशियों ने उनका साथ दिया। अधिकांश विदेशी या तो भारतीय या पाकिस्तानी थे, जो काम मिलने के कारण यहां आये थे। ये लोग चोरी-चोरी से अपना सब सामान गायें तथा अन्य पशु भी साथ ले आये। गुप्त रीति से आकर वसे इन प्रवासियों पर कोई रोक नहीं लगायी गयी। २२,००० पाकिस्तानी आज वहां पर मजदूरी करते हैं। उनके बिना किसी भी प्रकार का निर्माण-कार्य नहीं हो सकता।

अब धावी के मूल निवासी बद्दू कोई काम

नहीं करते हैं। वे सारे दिन निठल्ले-से बठे रहते हैं, हुक्म चलाते हैं, ऊंटों की देखभाल करते हैं और शेख की दान-दक्षिणा पर पलते हैं।

मैं कल ही यहां पहुंचा था। आज शाम एक ऐसे भोज में शरीक हुआ हूं, जहां सारा महल हजारों लाल, हरी, पीली और नीली बत्तियों से जगमगा रहा है। शेख के अंगरक्षकों ने हाथों में बंदूकें थाम रखी हैं। उनकी छाती छुरों और कारतूस की पेटियों से बोझिल है। वे आंगन के चारों ओर कोनों पर लगी हुई इतालवी आरामकुर्सियों पर बैठे हुए हैं। इंग्लैंड से मंगाये गये आलीशान मोटे कालीन फर्श पर बिछे हुए हैं।

शेख पधारे और उनके पीछे उनके अंगरक्षक और सलाहकार आये। क्राइस्लर, इंपाला और मर्सिडीज जैसी शानदार कारों से वे उतरे और बगीचा पार करके अरबी रस्म से शेख जैद की नाक का चुंबन करके अभिवादन किया और फिर उसके बाद आरामकुर्सी पर बैठ गये। ब्रिटेन का प्रतिनिधि भी यहां मौजूद था और वही एक व्यक्ति उस भोज में ऐसा था, जो यूरोपीय पोशाक पहने हुए था।

भोज का प्रारंभ हुआ अरबी काफी से। चांदी के बने भारी तुर्कीपात्र से छः छोटे-छोटे प्यालों में काफी ढाली गयी और फिर उन्हें उपस्थित दो सौ मेहमानों में बांटा गया। शेख खड़े हुए और उनके साथ सभी लोग खड़े हो गये। कपड़ों की सरसराहट और शस्त्रों की खनखनाहट वातावरण में फैल गयी। उपस्थित लोगों में सभी के पास या तो बंदूक थी या छुरी, और बहुतों के पास दोनों ही थे।

एक लंबे कक्ष में एक छोटी-सी मेज लगायी गयी थी। तेल में तले हुए मेमने, साबुत चिकन, हर किस्म की मछलियां, सुगंधित मसालों से भरपूर चावलों के पहाड़, अंगूरों और विदेशी फलों के बड़े-बड़े थाल सजाये गये। पर पीने के लिए वहां कुछ भी नहीं था, पानी भी नहीं। चांदी के छुरी कांटों की बहुतायत थी; लेकिन मेहमान अपने हाथों से ही मांस को चीर-फाड़ रहे थे। खाना खत्म होने के ठीक बीस मिनिट बाद सबने ओ डी कोलोन से हाथ धोये और अपने मुंह पर ओ डी कोलोन छिड़का। मेहमानो द्वारा छोड़ी गयी ढेरों जूठन सैनिकों और नौकरों को खिला दी गयी।

जो तेल अबू धाबी के लिए वरदान सिद्ध हुआ है, वह यहां देखने को भी नहीं मिलता। कहीं पर भी मशीनें, पाइप लाइनें या तेल-शोधक कारखाने दिखाई नहीं पड़ते। वास्तव में यह तेल समुद्र-तल में है या किनारे के छोटे-छोटे द्वीपों के नीचे। इनमें काम करने वाले एक हजार यूरोपीय दास नामक द्वीप में रहते हैं। यहां झुलसाने वाली भयंकर गर्मी पड़ती है और यह फारस की खाड़ी के बीच में स्थित है। दूसरी कंपनी का मुख्य कार्यालय सऊदी अरब और कातार के निकट ऐसे रेगिस्तान के टीलों पर है, जो निवास-योग्य है।

वैसे तो पांच कंपनियां यहां पर कार्य कर

सरदर्द से परेशान ? लीजिये मिन्टों में आराम !
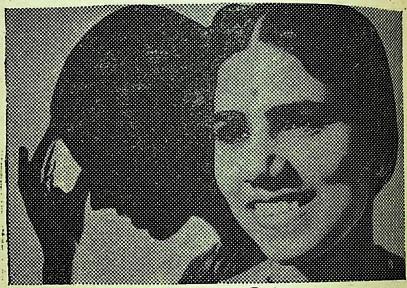
अमृतांजन
के ज़रिये !

सरदर्द, मोच, सर्दी-जुकाम और पेशियों के दर्द से छुटकारा पाने के लिये झट अमृतांजन मालिश कीजिये... तकलीफ से आराम ! पिछले ७५ वर्षों से भी अधिक समय से यह एक निर्भरयोग्य घरेलू दवा है। अमृतांजन की एक शीशी हमेशा पास रखिये। इसके अलावा यह किफ़ायती 'जार' और कम क़ीमत वाले डिब्बों में भी मिलता है।

अमृतांजन—सर्दी-जुकाम और दर्द के लिये १० दवाओं का एक अपूर्व मिश्रण !

अमृतांजन लिमिटेड : मद्रास ० बम्बई ० कलकत्ता ० नई दिल्ली ० हैदराबाद ० बंगलोर

AM 5339A

रही हैं, किंतु मुख्य रूप के केवल दो कंपनियां ही कार्यरत हैं। १९६८ के पहले चार महीनों में तेल का उत्पादन एक कंपनी का २३ लाख टन और दूसरी का ३६ लाख टन था। कुल वार्षिक उत्पादन २.५ करोड़ टन हुआ। शेख जैद को इसका कुल शुल्क १७६ करोड़ ४० लाख रुपये मिला होगा।

अबू धावी शहर समुद्र के किनारे फैला हुआ है। आवादी १०,००० है। यह राज्य के दस महत्त्वपूर्ण नखलिस्तानों के बीच में और विशाल मस्कत और अभय पर्वतों की उस तलहटी में वसा हुआ है, जहां विदेशियों का जाना निपिद्ध है। जव से यह मालूम हुआ है कि इस धरती में तेल की भारी संपदा छिपी हुई है, तव से बुरैमी अल एइन का प्रदेश पड़ोसी राज्यों में विवाद का कारण वना हुआ है।

सन १९५२ में सऊदी अरव की सेना ने बुरैमी पर अधिकार कर लिया था, जिसे सन १९५७ में ब्रिटिश सेना ने वाहर खदेड़ा। सऊदी नरेश फैजल ने बुरैमी पर अपना दावा छोड़ दिया है; लेकिन मस्कत के सुलतान सईद विन तैमूर अभी भी उसका दावा करते हैं। बुरैमी के तीन गांव अभी भी मस्कत के अधिकार में ही हैं।

अन्य सात गांवों पर अपने अधिकार के प्रदर्शन के लिए शेख जैद ने अधिक सहज तरीका अपनाया है। हर एक गांव में सिपाहियों के वजाय, वे अपनी एक पत्नी रखते हैं। उन्होंने हर एक गांव की एक लड़की से विवाह किया है और वहां पर अपना महल वनवा दिया है, जिस पर अबू धावी के लाल और सफेद झंडे शान से लहरा रहे हैं।

मजीद के किले के चारों ओर शेख जैद ने १०० एकड़ का गेहूं का खेत भी वनवाया है और रेत में फलों के कुछ वृक्ष लगवाये हैं। इस पर १७ लाख ८५ हजार रुपये खर्च हुए। पहली फसल वहुत ही अच्छी रही। गेहूं की खेती का एक उद्देश्य और भी है। अबू धावी और मस्कत के वीच यह सीमा-रेखा है। यह सिद्ध हो जाता है कि अबू धाबी में कुछ भी असंभव नहीं है।

★

मैं १९३९-४० में वर्धा शिक्षा-पद्धति के अंतर्गत चलने वाले बेसिक ट्रेनिंग कालेज, इलाहावाद में शिक्षक-विद्यार्थी था। हमारे प्रैक्टिल के परीक्षक होकर डा० जाकिर हुसैन तशरीफ लाये थे। परीक्षा समाप्त होने वाले दिन हमारे साथियों में से एक ने हस्ताक्षर की कापी वड़े अदव से डाक्टर साहव के सामने रखकर हस्ताक्षरों के लिए प्रार्थना की।

डाक्टर जाकिर हुसैन जेव से अपनी कलम निकालकर जैसे ही दस्तखत करने को प्रस्तुत हुए, उन्होंने देखा कि हस्ताक्षर-पुस्तिका बड़ी गंदी हालत में है और उसके कागज फटे हुए हैं, जिल्द भी गंदी है। उन्होंने ने हस्ताक्षर करके निम्न शब्द लिखे—"इफ ए थिंग इज् वर्थ डूइंग, इट ईज् आल्सो वर्थ डूइंग वेल।"

—परमानंद

★

तीस रुपयों का अनमोल चेक

कैलाश नारद

Bharat Bank Limited,
Pay Mahatma Gandhi or Bearer
Rupees Thirty only
Rs. 30/-

बापू का हस्ताक्षर 'महात्मा गांधी'
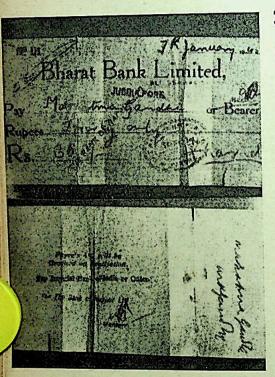
महात्मा गांधी से संबद्ध एक असाधारण दस्तावेज हमारे परिवार की अमूल्य निधि है। वह एक तीस रुपये का चेक है।

लोक-मानस ने सदा गांधीजी को 'महात्मा' कहकर संबोधित किया। लेकिन गांधीजी अपना नाम 'मो० क० गांधी' या 'एम० के० गांधी' ही लिखते रहे। उन्होंने खुद को 'महात्मा गांधी' कभी नहीं लिखा। परंतु जिस चेक को हम अपने परिवार की निधि मानते हैं, वह इसका अपवाद है। गांधीजी ने उस चेक पर स्वयं 'महात्मा गांधी' के नाम से हस्ताक्षर किये हैं।

यह चेक मध्यप्रदेश में श्रमजीवी पत्रकारिता के (और मेरे) जनक स्वर्गीय हुकुमचंद नारद ने महात्मा गांधी के नाम काटा था। यह जनवरी १९४५ की घटना है, जब महात्मा गांधी हरिजनोद्धार के लिए आर्थिक सहायता की अपील देशवासियों से कर रहे थे। इस आह्वान के उत्तर में पिताजी ने तीस रुपये की रकम का एक क्रास चेक भारत बैंक, जबलपुर शाखा से महात्मा गांधी के नाम भेजा था।

कठिनाई उस समय आयी, जब बैंक आफ नागपुर की वर्धा शाखा ने उसका भुगतान

करने से इन्कार कर दिया। चेक 'महात्मा गांधी' के नाम से काटा गया था। गांधीजी ने अंग्रेजी में 'एम० के० गांधी' के नाम से हस्ताक्षर किये। बैंक ने उसे वापस लौटा दिया; क्योंकि एम० के० गांधी की पात्रता बैंक के नियमों के अनुसार सिद्ध नहीं होती थी।

अंततः गांधीजी ने इन तीस रुपयों के लिए अपने जीवन का नियम तोड़ा और वापस आये हुए चेक के पीछे 'एम० के० गांधी' के ऊपर 'महात्मा गांधी' के नाम से दूसरा हस्ताक्षर बना दिया।

फिर भी यह रकम गांधीजी को मिल नहीं पायी। पता चला, हिन्दुस्तान के किसी भी बैंक में न तो एम० के० गांधी का कोई खाता है और न महात्मा गांधी का।

परेशान महात्मा गांधी ने चेक पिताजी को वापस लौटाया और उनसे अनुरोध किया कि वे यह रकम अवश्य भेजें, परंतु चेक 'आल इंडिया हरिजन फंड' के नाम से काटें।

बापू के आदेश का पालन हुआ। रकम बापू को मिल गयी; और पिताजी को वापसी में मूल चेक मिला। शायद यही एक मात्र दस्तावेज है, जिस पर गांधीजी ने अपने को 'महात्मा' लिखा है।

शेष कुछ भी नहीं है—न तो लोक कल्याण के लिए एक-एक पाई जोड़ने वाले महात्मा गांधी और न ही मेरे पिता हुकुमचंद नारद। वह भारत बैंक भी समाप्त हो गया, जिसके नाम चेक काटा गया था। लेकिन वह पावन स्मृति अवश्य शेष है, जिसके साथ महात्मा गांधी की हरिजनों के प्रति ललक और ममता जुड़ी हुई है।

★

महापुरुषों में महान

मानवीय महानता, जिस अर्थ में वह एक प्रशंसनीय गुण है, दो प्रकार की होती है। एक प्रकार की महानता विशुद्धतया बौद्धिक या कलात्मक होती है और इस महानता का धारक व्यक्ति सब लोगों से अलग पड़ जाता है, चाहे वह कितना ही समादृत और प्रशंसित क्यों न हो। दूसरे प्रकार की महानता जोड़ने वाली होती है; इसके द्वारा व्यक्ति ऐसा प्रतिनिधि-मानव बन जाता है, जिसमें अनेक नर-नारी अपने मनोभावों और भावनाओं की अभिव्यक्ति पाते हैं—केवल शब्दों में नहीं, अपितु स्वतः जीवन की कला में। मैं इससे इन्कार नहीं करता कि कभी-कभी यह दूसरे प्रकार की महानता कर्मवीरों की भांति कलाकारों और साहित्यकारों में भी पायी जा सकती है; परंतु यह अधिकतया—किंतु सर्वदा नहीं—तत्त्वज्ञों या सौंदर्य-स्रष्टाओं की अपेक्षा कर्मजीवियों में पायी जाती है।

गांधीजी दूसरी श्रेणी के श्रेष्ठ महापुरुष थे। उनकी महानता का और अपने देशवासियों और विश्व की जनता के हृदय पर उनके अधिकार का आधार यह था कि उनमें समाज के सामान्य नर-नारियों से तादात्म्य स्थापित करने और उस तादात्म्य को उन व्यक्तियों को अनुभव कराने की शक्ति थी।
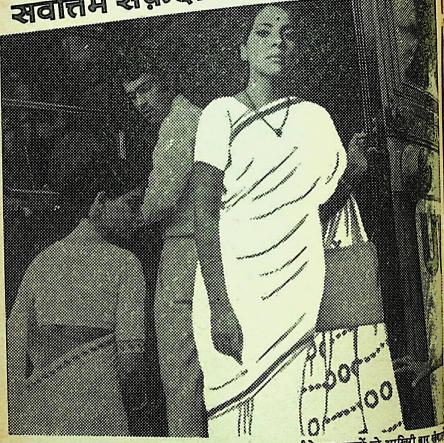
—जी० डी० एच० कोल

★

भावना का साम्राज्य सीमाएं नहीं मानता :

मानव के मूक मित्र

वेलेंतीन विरेन

एंड्रोक्लीस और शेर की प्रसिद्ध कहानी ऐतिहासिक दृष्टि से चाहे सच न हो; मगर आज सर्कस की दुनिया में मनुष्य और हिंस्र पशुओं की गहरी मित्रता के सच्चे उदाहरणों की कोई कमी नहीं है।

रूसी पशु-प्रशिक्षक बोरिस एडर अक्सर अपने एक शेर 'क्रीमिया' को बड़ी आत्मीयता और कृतज्ञता से याद किया करता था। एक बार प्रदर्शन के समय एडर के शेर किसी कारणवश उत्तेजित हो उठे और उसी पर हमला कर बैठे। एडर बचने के लिए होशियारी से एक ऐसे स्थान पर पहुंचने की कोशिश करने लगा, जहां से वह एक साथ सभी शेरों पर नजर रख सके। किंतु अचानक ही एक शेर को अपने पीछे देखकर वह सचमुच भयभीत हो उठा। उसने सोचा – "इससे बचना मुश्किल है।" किंतु वह शेर 'क्रीमिया' था, जो एडर की सहायता के लिए पीछे आ खड़ा हुआ था। क्रीमिया एकाएक दूसरे शेरों की ओर झपटा और इस स्थिति का फायदा उठाकर एडर किसी तरह बच निकला।

एक और प्रशिक्षक टर्नर और उसके शेर सीजर की दोस्ती भी लाजवाब थी; मगर उस दोस्ती का अंत बड़े लोमहर्षक ढंग से हुआ।

दोनों में इतना स्नेह था कि अगर कोई मजाक में भी टर्नर पर हाथ उठाता, तो सीजर क्रुद्ध होकर पिंजड़े की छड़ों को तोड़ने और अपने मित्र पर हाथ उठाने वाले पर झपटने की कोशिश करता।

एक बार एंड्रोक्लीस के शेर की तरह सीजर के पंजे में भी घाव हो गया। टर्नर ने घाव वाले पंजे के नाखून काट दिये और उस पर दवा लगा दी। टर्नर दवा लगाता और सीजर आज्ञाकारी बना चुपचाप बैठा रहता।

सर्कस के दूसरे कलाकार उनकी इस मैत्री की बहुत प्रशंसा करते; कभी-कभी तो लोगों को इस पर ईर्ष्या होती, किंतु अचानक ही एक दिन इस मैत्री का बड़े भयानक रूप में अंत हुआ।

जार्जिया प्रदेश की राजधानी तिबलिसी में प्रदर्शन चल रहा था। अंतिम करतब दिखाते हुए टर्नर ने हमेशा की तरह अपना सिर सीजर के मुंह में डाल दिया। टर्नर और सीजर यह खेल वर्षों से दिखाते आ रहे थे और इसमें सीजर को अपना मुंह खुला ही रखना था। मगर उस दिन अचानक सीजर ने अपना मुंह बंद कर लिया और

टर्नर का शरीर निष्प्राण होकर जमीन पर गिर पड़ा । सीजर ने अपने दोस्त के लहू-लुहान शरीर की ओर विस्मय से देखा, फिर अपना सिर झुकाया और उसे स्नेहपूर्वक चाटने लगा । उसे क्या पता था कि छोटी-सी चूक ने आज वर्षों की गहरी मित्रता का अंत कर दिया है ।

ऐसा लगता है कि दुर्घटना के इस क्षण में सीजर के खुले हुए मुंह में किसी मधुमक्खी या ततैये ने काट खाया था और अचानक ही उसका मुंह अपने आप बंद हो गया ।

* * *

सब जानवरों में से कुत्ते को प्रशिक्षण के लिए सर्वाधिक अनुकूल माना जाता है । उसे कलाबाजियां खाना, साइकल चलाना, फुटबाल खेलना, गणित के प्रश्न हल करना और दूसरे अनेक मनोरंजक करतब सिखाये जा सकते हैं ।

आज से लगभग चालीस वर्ष पूर्व एक रूसी शिकारी उत्तरी चीन की एक कच्ची धूल-भरी सड़क पर घूमते हुए एक बड़े ही अद्भुत काफिले से मिला । पुरानी लकड़ी की एक गाड़ी पर एक वृद्ध चीनी बैठा हुआ था और उस गाड़ी को छः बड़े-बड़े कुत्ते खींच रहे थे। वह चीनी अपंग था । उसके दोनों हाथ गायब थे और टांग भी एक ही थी । उसके चारों ओर पिल्ले बड़ी खुशी से उछल-कूद लगा रहे थे । गाड़ी के दोनों ओर और पीछे की ओर चार और कुत्ते घर-गृहस्थी के विविध सरंजाम लादे चल रहे थे ।

वृद्ध चीनी ने कुछ देर विश्राम करने के इरादे से रुकने का विचार किया । उसने सीटी बजायी । गाड़ी रुक गयी । कुत्ते चारों तरफ अलग-अलग दिशाओं में भागे और जल्दी ही आग जलाने के लिए लकड़ी के टुकड़े और सूखी टहनियां मुंह में लिये वापस लौटे । मालिक ने ज्यों ही पुकारा "संचा ऽऽ" कि एक बूढ़ा कुत्ता उसके पास आया । मालिक ने फुसफुसाकर कुत्ते को कुछ निर्देश दिये । और कुत्ता कुछ जैसे बेमन से दांतों में केतली दबाये पास की झील की ओर चल पड़ा । बूढ़ा और उसके ये मूक सेवक एक-दूसरे को पूरी तरह समझते थे ।

भोजन से पूर्व बूढ़े ने इन सहयोगियों को अपने सामने अर्धवृत्ताकार में बैठने को कहा और उनसे बातचीत करने लगा । कुछ की तारीफ की गयी और कुछ को डांट पिलायी गयी । प्रतिक्रिया भी स्पष्ट थी । कुछ तो प्रसन्न होकर पूंछ हिलाने लगे और दूसरों ने अपना सिर दूसरी तरफ घुमा लिया ।
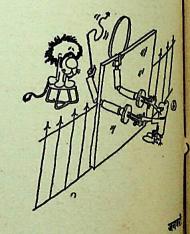
शिकारी, चीनी बोल लेता था, उसने बूढ़े की दुःखद गाथा सुनी।

उसका नाम था सुंग और वह एक सर्कस में काम करता था। उसका जन्म शंतुंग प्रदेश के एक ऐसे परिवार में हुआ था, जो पीढ़ियों से नट, पशु-प्रशिक्षक और जादूगर का पेशा करते थे। वह अभी लड़का ही था कि एक बार अपने प्रशिक्षित बंदरों, भालुओं, भेड़ों और कुत्तों को साथ लेकर गांवों में तमाशा दिखाने गया था। मगर उसका दुर्भाग्य कि वह एक रेल के पहियों के नीचे आ गया। उसकी जान तो किसी तरह बच गयी, मगर वह हमेशा के लिए पंगु बन गया।

सुंग अपनी ही तरह बेघरबार, आवारा कुत्तों को पकड़ने लगा। बड़े धैर्य से सर्कस के करतब और निजी काम करना सिखाता रहा। यह छोटा-सा काफिला गांवों में जाता और सड़कों चौराहों पर अपने खेलों का प्रदर्शन करता। सुंग, जो "मंचूरिया का कुत्ता-प्रशिक्षक" के नाम से बहुत प्रसिद्ध था, बड़े दुःख-भरे गाने गाता और उसके कुत्ते संग-संग धीरे-धीरे नाचते अथवा 'गों-गों' करते।

स्वर्गीय वाल्ट डिज्नी
जिसने अपनी अनुपम कार्टून फिल्मों में मानव और पशुओं की मैत्री का मार्मिक चित्रण किया है।

बात प्रथम महायुद्ध से कुछ ही समय पूर्व की है। एक बार एक वायलिन-वादक बाल-संगीतकार रूस के एक कस्बे ओरल में अपनी कला का प्रदर्शन कर रहा था। जैसे ही उसने वायलिन बजाना शुरू किया, चीं-चीं करता हुआ एक चूहा मंच पर आ पहुंचा और अपनी पिछली टांगों के बल पर बैठ गया और अगली टांगों से अपने मुंह को जैसे धोने-पोंछने लगा। फिर वह इस तरह चुपचाप बैठा रहा, जैसे संगीत ने उसे मंत्र-मुग्ध कर दिया हो। कार्यक्रम की समाप्ति पर दर्शकों की तालियों की गड़गड़ाहट से वह चौंका और तेजी से भागकर गायब हो गया।

अनेक दर्शकों का यह विश्वास था कि जरूर यह कोई बुद्धिमान चूहा रहा होगा, जो संगीत को समझने की तमीज रखता था और वायलिन-वादक के संगीत को सुनकर मुग्ध हो उठा। हालांकि सच्चाई कुछ और ही थी।

कुछ मास पूर्व एक प्रसिद्ध पशु-प्रशिक्षक व्लादिमीर दुरोव ने पाइड पाइपर (बंशीवाला) नामक प्रसिद्ध बालकथा को मंच पर अभिनीत किया था। उसमें भाग लेने वाले

कुछ प्रशिक्षित चूहे भाग निकले थे। यह चूहा उन्हीं में से एक था, और वायलिन बजते ही उसे बंशी समझ बैठा था और मंच पर इस आशा में चला आया था कि खेल दिखाने के बाद उसे पहले की ही तरह कुछ खाने को मिलेगा।

जब डानक्विग्जोट पर क्रीमिया में फिल्म बनायी जा रही थी, तो उसमें बोरिस एडर के साथ लेनिनग्राड के एक चिड़ियाघर का शेर वास्या भी काम कर रहा था। शूटिंग पूरी हो जाने के बाद उसे वापस चिड़ियाघर भेज दिया गया।

कोई डेढ़ वर्ष बाद एडर लेलिनग्राड आया और उसने अपने पुराने सहयोगी कलाकार वास्या से मिलने का निश्चय किया। एडर को देखकर वास्या खुशी से फूला न समाया। वह डानक्विग्जोट की शूटिंग के दौरान सीखे हुए करतब दिखाने लगा—शायद इस आशा में कि उसे फिर किसी फिल्म में काम करने का दूसरा अवसर मिल जाये।

अभी हाल में ही बर्लिन के एक सर्कस में नीरो नाम का एक शेर खेल दिखाया करता था। प्रदर्शन के बाद उसकी प्रशिक्षिका क्लारा हलिएट, यह देखकर दंग रह गयी कि कोई एक अजनबी परदे से पीछे से आकर सीधा शेरों के पिंजड़ों की ओर बढ़ रहा है। उस आदमी ने पुकारा—"नीरो!" और नीरो फौरन ही सीखचों के पास आ गया और थपथपाने के लिए अपनी पीठ उसके आगे कर दी। यह देखकर कुमारी हलिएट विस्मित रह गयी, क्योंकि नीरो ने उसके साथ तो ऐसा स्नेह कभी नहीं किया था।

वास्तव में नीरो और वह अजनबी पुराने मित्र थे। वह व्यक्ति कुछ वर्ष पूर्व लीपज़िग चिड़ियाघर में नीरो की देखभाल किया करता था।

सर्कस की एक अनुभवी कलाकार अन्ना कुक ने मुझे एक बार बड़ी ही दिलचस्प घटना सुनायी। एक बार अन्ना कुक और उसके नीग्रो पति बैंग्री कुक, जो सर्कस के एक प्रसिद्ध सवार थे, व्लादिमीर दुरोव से मिलने गये। जैसे ही वे अंदर पहुंचे, माइमस नाम का एक बंदर खुशी से दौड़ता हुआ बैंग्री कुक के पास आया और बड़ा स्नेह-प्रदर्शन करता हुआ उससे लिपट गया। कुक दंपति शाम तक रहे, और माइमस ने बैंग्री को एक क्षण के लिए भी नहीं छोड़ा। दुरोव माइमस को अफ्रीका से लाया था और स्पष्ट ही इतने वर्षों के बाद अपने देश का एक नीग्रो चेहरा देखकर वह खुशी में भरकर झूम उठा था।

घोड़ों की भी स्मरण-शक्ति अच्छी होती है। वी० मैंजेली नाम का एक पशु-प्रशिक्षक एक छोटा-सा कार्यक्रम प्रस्तुत करता था—'रेस्टोरेंट में घोड़ा' इसके लिए दो घोड़ों को प्रशिक्षित किया गया था। विल्नियस नाम के घोड़े को ग्राहक की भूमिका दी गयी थी और गोर्नोस्टाय नामक घोड़ा बैयरा का अभिनय करता था। सफेद टोपी और एप्रन पहनकर गोर्नोस्टाय रिंग में दौड़ता हुआ विल्नियस के सामने गाजर, चीनी और रोटी की प्लेटें सजा देता था।

बाद में यह खेल स्थगित कर दिया गया, मगर गोर्नोस्टाय के मस्तिष्क में कुछ बातें घर कर गयीं। वर्षों बाद एक बार सूप बनाने के लिए रखा गया सब्जियों से भरा बर्तन सर्कस के रसोईघर से गायब हो गया। मैंजेली तुरंत भांप गया। सब्जियों का खाली बर्तन गोर्नोस्टाय के अस्तबल में मिला।

एक घोड़ा करतब दिखाने वाले के दुर्व्यवहार की याद पाले रहा। और समय आने पर उसने उससे भयानक बदला लिया। खिलाड़ी इसके प्रति बड़ा रूखा व्यवहार करता था और अक्सर वह उसकी पिटाई कर दिया करता था। एक दिन घोड़े ने उसकी बांह अपने दांतों में कसकर पकड़ी और बांह को पकड़े हुए ही जमीन से उसे ऊपर उठा लिया और चबा-चबाकर उसकी बांह की धज्जियां उड़ा दीं।

हाथी भी अपने प्रति किये गये दुर्व्यवहार को नहीं भूलता। और एक हाथी के बदला लेने की घटना भी घोड़े के किस्से जैसी ही भयानक है, हालांकि स्वभाव से हाथी बड़े शांत और स्नेही होते हैं। उन दिनों चार्ली नार्मन का सर्कस रूस का दौरा कर रहा था। इस सर्कस में एक हाथी था जिमी। एक कर्मचारी हमेशा ही हाथियों को चिढ़ाता रहता था। कभी वह उसके सामने खाने के लिए रोटी रखता था और झपटकर उठा लेता था; कभी उनके संवेदनशील सूंड के बाल खींच लेता था। वह उन्हें इतना परेशान करता था कि हाथी उसे देखते ही गुस्से से चिघाड़ उठते थे और पैर जमीन पर पैर पटकने लगते थे।

एक सुबह जब वह आदमी घोड़ों को नहलाते समय हाथियों के करीब जा पहुंचा। जिमी ने उसे जोर से धक्का दिया और एक ओर की दीवार से कुचलकर उसने उस दिन अपने सारे हाथी बंधुओं की ओर से बदला ले लिया।

★

किसी सज्जन ने लोकप्रिय लेखिका मेरी कारेली से पूछा—"आप अभी तक अविवाहित क्यों हैं?" लेखिका ने उत्तर दिया—"मैंने तीन पशु पाल रखे हैं, जो मेरे पति के रिक्त स्थान की पूर्ति कर देते हैं।" साश्चर्य उस सज्जन ने पूछा—"क्या मतलब?"

"मतलब यह कि एक कुत्ता है, जो बहुत जल्द सवेरे उठकर गुर्राने लगता है। दूसरा एक तोता है, जो हर शाम को झूठी-झूठी कसमें खाता है और बड़ी-बड़ी बातें करता है। और तीसरा एक बिलाव है, जो हर रात इधर-उधर घूमकर, देरी से घर आता है। अब आप ही समझाइये, मुझे पति की क्या आवश्यकता? सभी पति यही सब-कुछ तो करते हैं।"

* * *

जज ने पत्नी को सलाह दी—"अच्छा तो यही है कि आप भी अपने पति को तलाक दे दें।" पत्नी बिफर पड़ी—"क्या कहते हैं? मैं पिछले बीस साल से जिसके साथ उलझती आ रही हूं, उसे अब एक बारगी सुखी कर दूं।"

★

जेली-जेली

वाजिदा तबस्सुम

नन्ही फरीदा के इस दुनिया में आते ही मानो पूरे घर के तेवर वदल गये। अम्मां, जो कुड़कमुर्गी की तरह दिन-भर कुड़कुड़ाती रहती थीं, अब सीने-पिरोने में लगी रहतीं। जमाल भाई भी पहले की तरह खुश रहने लगे। सलमा, अतिया, रजो सभी के ढंग निराले हो गये। मैं जैसी पहले थी, वैसी ही अब भी थी। हकीकत तो यह है कि मैंने भाभीजान को कभी बुरा नहीं समझा। बेचारी आम लड़कियों की तरह थीं। हमारा घराना वहुत ही दकियानूसी खयालों का था। वैसे भाभी कोई फैशनेवल तो नही थीं, लेकिन हमारे घराने को देखते हुए उन्हें फैशनेबल जरूर कहा जा सकता था। वे वालों को चोटी में गूंथने के वजाय, जूड़ा वांधतीं। तंग पाजामों के वजाय साड़ी को बेहतर समझतीं। और घुटनों तक लटकते हुए कुरतों की जगह वे ऐसा ब्लाउज पहनतीं, जिसमें से उनकी गोरी-गोरी पीठ नजर आती रहती।

और इन्हीं कारणों से अम्मां से उनकी एक मिनिट भी न वनती। जव देखो, तव अम्मां बेचारी भाभीजान को डांटती रहतीं और भाभीजान थीं कि मुस्कराती रहतीं। अम्मां को तो जाने दो, सलमा, अतिया और रजो से भी भाभीजान की कव पटती! ले-देकर पूरे घर में मैं ही ऐसी थी, जो भाभीजान को कुछ न कहती। और सच पूछिये, तो उनमें ऐसी कोई बुराई भी नहीं। शायद यही कारण था कि भाभीजान मुझ पर जान छिड़कतीं।

वे मुझे प्यार से 'जेली' कहतीं। मुझे यह नाम बेहद पसंद था। भला जमीला भी कोई नाम हुआ? मगर जव इसका संक्षिप्त रूप जेली हो गया, तो मुझे यही नाम दुनिया के सभी नामों से प्यार लगने लगा। भाभीजान ने लगभग सभी के नाम वदल दिये थे। जमाल भाई को वह 'जेमी' कहतीं और अतिया को 'अती', इसी तरह रजिया को 'रजो'। अम्मां को उनकी यह हरकत भी बुरी लगी; क्योंकि अच्छे-भले नामों को इस तरह बिगाड़ना उन्हें वर्दाश्त न था। वे कहती रहतीं —"जमाल— जमीला क्या बुरे नाम थे! मगर कहे कौन? यह तो निराला फैशन हुआ।"इस जमाने की तो बात ही

चित्र : कमलाक्ष शेणै

निराली है। हमारे जमाने में भी क्या सादगी थी, न कोई फैशन न आवारगी।"

यह आवारगी का ताना भाभीजान के ब्लाउज की ओर हुआ करता; मगर भाभीजान चुपचाप सुनतीं और मुस्कराती रहतीं। भाभीजान की इसी अदा ने तो मुझे लूट लिया था। मेरी समझ में न आता कि भाभी जान ने आखिर ऐसा कौन-सा गुनाह किया है, जो अम्मां दिन-रात झगड़ती रहती हैं। अम्मां की दुश्मनी तो उस जमाने से चली आ रही थी, जबकि भाभीजान को हमारे घर आये सिर्फ दो ही महीने हुए थे।

रमजान के लगभग भाई साहब की शादी हुई और दो माह बाद बकरीद आयी? ईद आखिर ईद थी। भाभी थीं नयी दुल्हन! उनका दिल चाहा कि ईद मायके में करें। उन्होंने भैया से कहा और भैया ने उन्हें मायके छोड़ दिया। और हमारे घर की नयी दुल्हनों के हाथ से परांठे पकवाने और शामी तलवाने की रीति पूरी न हो सकी। बस इतनी-सी बात पर अम्मां ने चिल्ला-चिल्लाकर ऐलान कर दिया कि—"देख लेना, यह दुल्हन घर चौपट कर देगी।"

मगर शादी को पूरा एक साल बीत गया। न तो भाभीजान ने घर चौपट किया, न अपनी सास-ननदों को उलटकर कोई जवाब दिया। मुझे घर के एक-एक सदस्य पर और सबसे ज्यादा अम्मां पर गुस्सा आता। वे हरदम भाभीजान के पीछे लगी रहतीं। यह नहीं सोचतीं कि उनकी लड़कियों को भी

अभी पराये घर जाना है। मगर अम्मां तो शुरूआत और परिणाम से बेखबर बस भाभी को जलाने पर तुली हुई थीं।

मगर नन्ही फरीदा के इस दुनिया में आते ही पूरे घर के तेवर बदल गये। वही घर था। वही लोग थे और वही भाभीजान थीं, मगर...... मैं सोचती शादी दरअसल खुशी का नाम नहीं है, बल्कि शादी इसलिए की जाती है कि बच्चे पैदा हों। खानदान का नाम रोशन हो और सबसे बढ़कर दादा-दादी का दिल बहले।

फरीदा पैदा हुई तो नाम का खूब झगड़ा हुआ! अम्मां उसका नाम 'मरियम' रखना चाहती थीं। चाचा, यानी जमाल भाई 'अख्तर' नाम पसंद करते थे और इधर भाई साहब कई दिन से सोचे बैठे थे कि लड़की हुई तो 'फरीदा' नाम रखेंगे। जाहिर है, बाप ने जो नाम रखा, वही चला! फरीदा का नाम फरीदा हो गया, मगर अम्मां के दिल में गिरह पड़ गयी कि यह भी दुल्हन का कारस्तानी है।

भाभीजान ने फरीदा को 'फिल्टी' कहना शुरू कर दिया। बच्चे और लोगों का अपेक्षा मां से ज्यादा घुल-मिल जाते हैं। इसलिए फरीदा बिलकुल ही 'फिल्टा' होकर रह गयी। अम्मां इस बात पर और भी जलीं। एक दिन भाई से बोलीं —"मियां! तुम्हारी दुल्हन तो हमारी औलाद को हम से छुड़ा देगी! इतनी-सी जान, देखो मां के सिवा किसी और के पास फटकती नहीं!"

भाभी ने तो नहीं, लेकिन अल्लाह मियां ने जरूर अम्मां की औलाद को उनसे छुड़ा दिया। फरीदा बीमार पड़ी और ऐसी पड़ी कि लेने के देने पड़ गये। भाभीजान दिन-रात फरीदा के पास बैठी रहतीं। डाक्टर आये, हकीम आये; मगर वही हुआ जो होना था। नन्हे-मुन्ने जूते गर्द से अट गये। छोटी-सी रेलगाड़ी के पहिये अपनी जगह ठहर गये। प्यारे-प्यारे खिलौने बक्स में बंद हो गये। हंसती-बोलती मैना एकदम खामोश हो गयी। भाई साहब की दुनिया ही लुट गयी। और भाभीजान पर तो जड़ता छा गयी। उनकी आंख से एक आंसू तक न निकला।

फरीदा की मौत के छः-सात दिन बाद भाभीजान को देखा। खिड़की में उदास बैठी थीं। नजर फरीदा के खाली पलंग पर थी। जहां फरीदा के बजाय उसका नन्हा-सा लिहाफ और तकिये पड़े थे और हाथों में फरीदा के जूते थे, जिन्हें वे इस तरह बेताबी से प्यार कर रही थीं, जैसे वह जूते नहीं, उनकी फिल्टी के गाल हों।

फरीदा की मौत ने अम्मां को फिर पहले जैसा बना दिया। और अम्मां ने बैठे-बैठाये एक नया रहस्योद्घाटन किया। अतिया, जमाल, भैया और दूसरे लोगों के सामने उन्होंने बड़े भेद-भरे लहजे में कहा —"फरीदा की मौत का एकमात्र कारण दुल्हन है।"

अतिया उछल पड़ी —"यह आपने कैसे जाना?"

अम्मां ने हाथ उछालकर कहा —"कैसे जाना? ऊंह! देखती नहीं हो कोख उजड़

गयी; मगर आंख से एक आंसू तक न ढलका। अरे, सच तो यह है कि आजकल की फैशनेवल हरामजादियां बच्चों को जी का जंजाल समझती हैं।"

सब गुमसुम होकर रह गये। बेचारी भाभीजान! अम्मां, अतिया और रजो उन्हें खुल्लमखुल्ला ताने देतीं और भाभीजान पहले की तरह ओंठों में मुस्कराने के बजाय ठंडी आहें भरकर रह जातीं।

फरीदा की मौत को तीन माह हो चुके थे और उन तीन महीनों में यह पहला मौका था कि मैंने भाभीजान को मुस्कराते हुए देखा। वे कुत्ते के एक छोटे-से बच्चे को गोद में बैठाकर प्यार से थपक रही थीं।

"अरे! कितना प्यारा है।" मैंने उसके कान को उंगली से छूकर कहा।

"प्यारा नहीं, प्यारी है यह!" भाभीजान मुस्कराकर बोलीं।

"ओह! फिर तो और भी अच्छी बात है। मुझे कुत्ते से ज्यादा कुतिया पसंद है! लेकिन भाभीजान आपने इसका नाम क्या रखा है?"

"इसका नाम", भाभीजान कुछ सोचकर बोलीं—"अगर हम उसे 'फिल्टी' कहें तो?"

मैंने भाभीजान को देखा! वे कुत्ते को घूर रही थीं और उनकी आंखों से [illegible] टपक रही थी।

वे दिन-भर फिल्टी को अपने पास रख[illegible] और उसके आराम का खयाल करतीं [illegible] एक दिन तो उन्होंने गज़ब ही कर दि[illegible] अम्मां ने बड़े चाव से जो घुंघरू फ[illegible] लिए बनवाये थे, फिल्टी के पैरों में बांध [illegible] इस पर अम्मां ने जो धांधली मचायी, [illegible] बयान के बाहर है।

चित्र : अनजान

एक ओर तो अम्मां [illegible] लड़ाइयां थीं ही, दूसरी [illegible] भाभीजान की फि[illegible] बेपनाह मुहब्बत! [illegible] समझ में नहीं आता [illegible] अम्मां कैसे यह कह [illegible] थीं कि दुल्हन को फ[illegible] से मुहब्बत नहीं थी [illegible] वही उसकी मौत [illegible] जिम्मेदार थीं। अगर [illegible] बात में जरा भी [illegible] होती, तो फिर भाभी[illegible] अपनी मुहब्बत, [illegible] ममता इस उदार[illegible] क्यों एक कुत्ते के बच्चे पर लुटा रही थीं?

एक दिन मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। भाभी[illegible] जान मुझसे बोलीं—"जेली! ऊन की [illegible] छोटी-सी टोपी बुन दोगी?"

मैं उस समय उपन्यास पढ़ रही थी। निगाह उठाये बिना ही बोली—"जी हां! क्यों नहीं?"

मगर भाभीजान के कमरे से चले [illegible]

के बाद मुझे यह खयाल आया कि यह छोटी-सी टोपी किसके लिए बनवा रही हैं। शायद कुछ......और फिर मेरे दिल में अजीब-सा खयाल आया। क्या भाभीजान को फिर ......मारे खुशी के मैं उछल पड़ी।

शाम को जब भाई साहब कार लेकर जाने लगे, तो मैंने उन्हें टोका। भाई साहब बेदिली से कार से उतर पड़े। मैं सवार होने लगी, तो भाभीजान बोलीं—"जरा ठहरो, मैं भी चलती हूं!"

उस समय वह फिल्टी का बदन रोएंदार तौलिये से पोंछ रही थीं। उन्होंने अभी-अभी उसे नहलाया था।

दुकान से अल्लम-गल्लम चीजें खरीदने के बाद मैंने टोपी बुनने के लिए ऊन खरीदा। कार दूसरी दुकान के सामने से पास होने लगी, तो एकाएक भाभीजान ने ड्राइवर से कहकर गाड़ी रुकवायी। और उस समय मेरे विस्मय की सीमा न रही, जब मैंने देखा कि भाभीजान बच्चों को दूध पिलाने की एक शीशी और निपल खरीद रही हैं।

मैंने मुस्कराकर पूछा—"भाभीजान...?"

लेकिन भाभीजान ने मेरी बात काट दी—"किसी गलतफहमी का शिकार न बनो जेली!"

मुझे बड़ा अफसोस हुआ, लेकिन टोपी और शीशी का भेद न खुला। उसी शाम मैंने भाभीजान को टोपी बुनकर दे दी।

इस घटना के तीन दिन बाद मैं अपने कमरे में पढ़ रही थी कि एकाएक फिल्टी के भूंकने की आवाज आने लगी। आवाज इतनी कर्कश और तेज थी कि मैं किताब पटककर जाने पर मजबूर हो गयी। आवाज भाभीजान के कमरे से आ रही थी। मैं लपककर आगे बढ़ी। दरवाजा बंद था। मैंने जरा-सा धक्का दिया, तो वह खुल गया! विस्मय से मैंने उंगली दांतों में दबा ली। भाभीजान फिल्टी को अपनी गोद में लिटाये हुए थीं। और फिल्टी के सिर पर वही ऊन की टोपी, जो मैंने बुनकर दी थी। भाभीजान फिल्टी के मुंह में जबर्दस्ती निपल घुसेड़ रही थीं। शीशी में दूध भरा हुआ था। मगर फिल्टी निपल को मुंह में लेना नहीं चाह रही थीं और खुद को छुड़ाने की कोशिश में भूंके जा रही थी।

"भाभीजान!" मैंने धीरे-से पुकारा।

अपनी तन्मयता में उन्होंने मुझे देखा तक न था। मेरे पुकारने पर वे एकदम चौंक पड़ीं। फिल्टी मौका पाकर भाग खड़ी हुई और शीशी दूर जा गिरी।

"भाभीजान!" कहकर मैंने उनके हाथ पकड़ लिये—"आपको यह क्या हो गया है?"

उनके उदास चेहरे पर बिलकुल हल्की-सी मुस्कराहट उतर आयी; मगर उसी क्षण उनकी आंखों में आंसू चमक उठे। उनकी नजर दूध की शीशी पर पड़ी और वे फिर मुस्करायीं और धीरे-से बोलीं—"जेली! मैं एक मां हूं!"

और एकदम मुझे खयाल आया—अम्मां कहती हैं कि आजकल की फैशनेबल हरामजादियां तो बच्चों को जी का जंजाल समझती हैं।

अनुवाद : सुरजीत

★
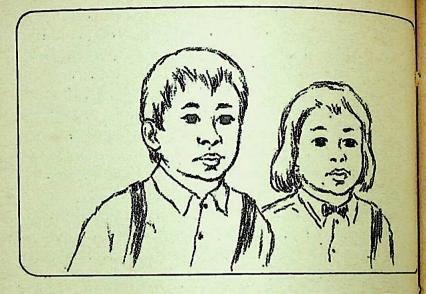
* शर्ली जैक्सन *

नटखट कहीं का

मेरा बेटा लैरी प्राइमरी स्कूल जाने लगा, तो उसने बच्चों वाले सब कपड़े एक ओर फेंक दिये और नीले रंग की पतलून पहनकर उस पर पेटी बांध ली। पहले दिन मैंने उसे पड़ोसी की लड़की के साथ स्कूल जाते देखकर महसूस किया कि मेरे जीवन का एक दौर खत्म हो गया। मेरा नन्हा पतलून जो पहनने लगा था! उस दिन गली के कोने पर वह हाथ हिलाकर मुझे अलविदा कहना भी भूल गया।

पहले दिन स्कूल से वापस आकर उसने खटाक से दरवाजा खोला, अपनी टोपी जमीन पर दे मारी और चिल्लाकर बोला—"घर में कोई है ?"

भोजन के समय वह अपने पिता से गुस्ताखी के साथ बोला। नन्ही बहन का दूध जमीन पर गिराया और फिर ऐलान किया कि हमारी मास्टरनी ने कहा है कि जगह-जगह ईश्वर का नाम नहीं लेना चाहिये।

मैंने सब कुछ नजरअंदाज-सा करते हुए पूछा—"स्कूल में आज का दिन कैसा रहा लैरी ?"

"बस ठीक रहा।"

"तुमने कुछ पढ़ा भी ?" उसके पिता ने पूछा।

"मैंने कुछ नहीं पढ़ा।" वह रुखाई से बोला। उसका सारा ध्यान खाने की ओर था–"हां, मास्टरनी ने आज एक लड़के को थप्पड़ मारा। उसने शरारत की थी।"

"कौन था वह लड़का और उसने क्या किया था?" मैंने पूछा।

लैरी ने थोड़ी देर सोचकर उत्तर दिया–"उसका नाम चार्ल्स है। उसने मास्टरनी से गुस्ताखी की थी। मास्टरनी ने उसे थप्पड़ मारा और कोने में खड़ा कर दिया।"

"उसने क्या गुस्ताखी की थी?" मैंने फिर पूछा, लेकिन लैरी उत्तर देने के बजाय खाना छोड़कर उठ खड़ा हुआ। रोटी का एक टुकड़ा हाथ में लिया और बाहर की ओर चल दिया। उसके पिता पुकारते ही रह गये; पर उसने एक न सुनी।

अगले दिन भोजन के लिए बैठते ही लैरी ने मुस्कराकर कहा–"आज चार्ल्स ने फिर गड़बड़ की। उसने मास्टरनी को मारा!"

"ओह! तब तो उसने फिर थप्पड़ खाया होगा।"

"और क्या?" लैरी ने कहा–"डैडी! जरा ऊपर देखिये तो!"

"क्या है?" उसके पिता ने ऊपर देखते हुए कहा।

"इधर नीचे, मेरे अंगूठे की ओर!" लैरी ने अंगूठा नचाया और पागलों की तरह हंसने लगा। उसके पिता खिसियाने हो गये।

"चार्ल्स ने मास्टरनी को क्यों मारा?" मैंने जल्दी से पूछा।

"वे कहती थीं लाल चाक से रंग भरो, लेकिन चार्ल्स हरे चाक से रंग भरना चाहता था। उसने मास्टरनी को मारा। मास्टरनी ने उसके एक थप्पड़ मारा और सब लड़कों से कह दिया कि कोई चार्ल्स के साथ न खेले। लेकिन सब उसके साथ खेलते रहे।"

इसके बाद लैरी के मुख से चार्ल्स की शरारतों का पता चलता रहा। बुध को अर्थात् पहले सप्ताह के तीसरे दिन, चार्ल्स ने एक लड़की के सिर पर लकड़ी दे मारी। खून बहने लगा। मास्टरनी ने चार्ल्स को थप्पड़ मारा और खाने की छुट्टी में भी कमरे में बैठाये रखा। बृहस्पतिवार को कहानी के घंटे में चार्ल्स को खड़ा किया गया; क्योंकि वह बार-बार जमीन पर पांव पटक रहा था। शुक्र को उससे तख्ती छीन ली गयी; क्योंकि वह सबकी ओर चाक फेंकता था।

रविवार को मैंने अपने पति से कहा–"मेरा विचार है कि यह स्कूल लैरी के अनुकूल नहीं है। वह अक्खड़ होता जा रहा है। चार्ल्स जैसे उद्धत लड़के की संगति उस पर बुरा प्रभाव डालेगी।" वे बोले–"सब ठीक हो जायेगा। दुनिया में चार्ल्स जैसे लोग भी होते हैं। अच्छा है, लैरी अभी से अभ्यस्त हो जाये।"

सोमवार को लैरी खासी देर तक स्कूल से न लौटा। मैं बाहर खड़ी होकर प्रतीक्षा कर रही थी कि वह दूर से आता हुआ दिखाई दिया। मुझे देखते ही दूर से चिल्लाया–"चार्ल्स...मम्मी! चार्ल्स ने आज फिर गड़बड़ की।"

"जल्दी अंदर चलो। खाना ठंडा हो रहा

अनुवाद : सुरजीत

'प्रेमिका'
साड़ियां
'नटखट'
साड़ियां
'पंडिता'
साड़ियां
प्रियतम का मन हरण करने के लिए सभी किस्म की साड़ियां ज़रूरी हैं :
अपनी मनपसंद साड़ियां चुनिए!
अपने साजन का दिल जीतने में आपकी सहायता करने के लिए बॉम्बे डाइंग ने कितनी किस्म की साड़ियां बनायी हैं! इन किस्म-किस्म की सुंदर साड़ियों में से अपनी पसंद की जग-मग रंगों और मनमोहक डिज़ाइन की साड़ियां चुनिए। आपकी साड़ियों से मेल खानेवाली चोलियों के लिए ६० रंगों की रूबिया और ४० रंगों की 'टेरीन'/ कॉटन भी उपलब्ध हैं। और पेटिकोट के लिए १२० रंगों की पॉपलिन और सटीन। यानी आपकी सफलता का पूरा साज-सामान!
बॉम्बे
डाइंग

है।" मैंने पुचकारते हुए कहा।

वह मेरे पीछे-पीछे कमरे में पहुंचा–"पता है मम्मी, आज चार्ल्स ने क्या किया? वह स्कूल में जोर-जोर से चिल्लाता रहा और हेड मास्टर ने मास्टरनी के पास एक लड़का भेजा कि यह शोर बंद कराओ। आज उन्होंने छुट्टी के वाद चार्ल्स को वहीं वैठाये रखा। हम सव उसे देखने के लिए अव तक वहीं थे।"

"अच्छा! वह क्या करता रहा?"

"वस बैठा रहा।"

"सुना आपने! चार्ल्स को आज छुट्टी के वाद स्कूल में रोक लिया गया था।" मैंने अपने पति को संवोधित करके कहा –"सव उसके साथ वहीं रहे।"

मेरे पति ने लैरी की ओर देखा और पूछा–" चार्ल्स है कैसा? उसका पूरा नाम क्या है?"

लैरी वोला –"वह मुझसे बड़ा है। रवर के जूते नहीं पहनता और उसके पास जैकट भी नहीं है।"

अगले सोम की शाम को स्कूल में अध्यापिकाओं और बच्चों की माताओं की पहली मुलाकात का समारोह था। जी चाहता था कि वहां जाऊं और चार्ल्स की मां से मिलूं, लेकिन छोटी लड़की की बीमारी के कारण जा नहीं पायी।

मंगल को लैरी ने वताया –"आज मास्टरनी से कोई मिलने आया था।"

"चार्ल्स की मां?" मैं और मेरे पति एक साथ वोल उठे।

"ऊंहूं!" लैरी ने अरुचि से कहा –"नहीं एक आदमी। वह आते ही हमें व्यायाम कराने लगा। हमें अपने पांव के अंगूठे छूने पड़े। देखिये, इस तरह।" यह कहकर वह कुर्सी से उठा और झुककर अपने पैरों के अंगूठे छुए, फिर वोला–"चार्ल्स ने व्यायाम विलकुल नहीं किया।"

"क्यों? क्या चार्ल्स को व्यायाम पसंद नहीं?" मैंने पूछा।

"नहीं, ऐसी वात नहीं! वात यह है कि पी० टी० मास्टर के साथ उसने इतनी बुरी वात की कि उसे व्यायाम करने ही नहीं दिया गया।"

"तो उसने फिर गुस्ताखी की?"

"हां, उसने पी० टी० मास्टर को लात मार दी। मास्टर ने उसे पैर के अंगूठे छूने को कहा। पर उसने मास्टर को एक और लात मार दी।"

लैरी के पिता ने पूछा–"क्या विचार है तुम्हारा, पी० टी० मास्टर अब चार्ल्स से क्या व्यवहार करेंगे।"

"मुझे लगता है कि वे उसे स्कूल से निकाल देंगे।" लैरी ने कंधे झटककर कहा और बातचीत समाप्त हो गयी।

बुध और बृहस्पति के दिन चार्ल्स कहानी के घंटे में चिल्लाता रहा।उसने एक लड़की के पेट में घूंसा मारकर उसे रुला दिया। शुक्र को वह छुट्टी के बाद फिर स्कूल में रहा। लैरी भी देर से आया; क्योंकि सब बच्चे उसे देखने के लिए वहीं रहे थे। तीसरे सप्ताह से हमारे घर में हर बुरे काम के साथ

चार्ल्स का नाम जोड़ा जाने लगा। नन्ही बच्ची शाम को रोती, तो हम उसे 'चार्ल्स' कहते। लैरी अपने छोटे-से ट्रक में मिट्टी भरकर रसोईघर में गिरा देता, तो चार्ल्स कहलाता। टेलिफोन का तार लैरी के पिता की टांगों में उलझ जाता और मेज पर रखा हुआ गुलदान जमीनपर आ गिरता, तो मैं मजाक में उन्हें 'चार्ल्स' का नाम देती।

तीसरे और चौथे सप्ताह के दौरान में चार्ल्स का सुधार होने लगा। एक दिन दोपहर का खाना खाते हुए लैरी ने वताया कि आज चार्ल्स का व्यवहार इतना अच्छा रहा कि मास्टरनी ने खुश होकर उसे खाने के लिये एक सेव दिया।

"क्या सचमुच ?" उसके पिता ने पूछा।

"हां, आज क्लास में रंगीन पेंसिलें वांटने का काम उसी ने किया और घंटा खत्म होने पर सबसे कापियां जमा करके मास्टरनी को दीं। मास्टरनी ने कहा, आज से चार्ल्स मेरा सहायक वन गया है।"

"लेकिन यह हुआ कैसे ?" मैंने पूछा।

"वस वह मास्टरनी का सहायक वन गया !" लैरी ने कंधे उचकाकर कहा। उस शाम मैंने अपने पति से पूछा —"क्या यह सच है कि चार्ल्स इतनी जल्दी सुधर गया ?"

"संभव है, वह कोई नया षड्यंत्र रच रहा हो।"

मगर उनका खयाल गलत लगता था, क्योंकि अगले पूरे सप्ताह चार्ल्स अध्यापिका का सहायक वना रहा। वह कक्षा में पेंसिलें वांटता और कापियां जमा करता। स्कूल में देर तक ठहरने की सजा भी उसे फिर न दी गयी।

एक दिन मैंने अपने पति को वताया कि अगले सप्ताह स्कूल में माताओं और अध्यापिकाओं से मुलाकात आयोजित की गयी है। उसमें मैं चार्ल्स की मां से अवश्य मिलूंगी।

"उनसे यह भी पूछना, चार्ल्स को क्या शिकायत है ?" लैरी के पिता बोले।

"मैं स्वयं वहुत व्यग्र हूं।"

शुक्र के दिन से हालात फिर वदल गये। दोपहर के खाने के समय लैरी बोला—"जानते

हैं आज चार्ल्स ने क्या किया ? उसने एक छोटी-सी लड़की से एक बड़ी ही बुरी वात कहलवायी। मास्टरनी ने उस लड़की का मुंह साबुन से धुलवाया था। चार्ल्स को वात वनाने का मौका मिल गया।"

"वह क्या बात थी ?" उसके पिता बेखयाली में बोले।

"यह मैं आपके कान में वताऊंगा।"

जब उसने पिता को वह बात वतायी, तो उनकी आंखें आश्चर्य से फैल गयीं। वे बोले—"अच्छा तो चार्ल्स ने उस लड़की से यह वात कहलवायी थी।" "हां !"

"आखिर उसे हुआ क्या था ?"

"कुछ भी तो नहीं। वह पेंसिलें वांट रहा था।" लैरी ने बेपरवाही से उत्तर दिया।

सोमवार की सुवह चार्ल्स ने क्लास में छोटी लड़की से कहलवानेके वजाय वे फिजूल शब्द तीन-चार वार स्वयं कहे और उसने दूसरों को चाक भी मारे।

उसी शाम को मैं अध्यापिकाओं और माताओं के मिलन-समारोह में जाने लगी, तो मेरे पति बाहर तक मुझे छोड़ने आये। बोले—"चार्ल्स की मां को चाय का निमंत्रण अवश्य देना। मैं एक नजर उन्हें देखना चाहता हूं।"

"ईश्वर करे, वे वहां आ जायें।"

"मास्टरनी ने अवश्य बुलाया होगा। भला चार्ल्स की मां के विना यह मुलाकात किस काम की ?"

मुलाकात के समय में मैं गौर से सब महिलाओं का निरीक्षण कर रही थी कि शायद कोई महिला दिखाई दे जाये, जो चार्ल्स की मां लगती हो। लेकिन उनमें से कोई भी वदजवान न दिखाई देती थी और न किसी ने इस बात की क्षमा मांगी कि उसके बेटे के कारण स्कूल वालों को परेशान होना पड़ रहा है।

रस्मी मुलाकात के वाद मैंने लैरी की अध्यापिका को ढूंढ़ निकाला और उसे एक ओर ले गयी—"मैं आपसे मिलने के लिए बेचैन थी। मैं लैरी की मां हूं।"

"अच्छा! हम सव लैरी में वहुत दिलचस्पी ले रहे हैं।" वह तपाक से वोली।

"लैरी ने स्कूल को वहुत पसंद किया है। हर समय स्कूल की बातें करता रहता है।" मैंने कहा।

"हां! शुरू में उसने हमें वहुत परेशान किया। लेकिन अव वह विलकुल ठीक है। यों अव भी कभी-कभी विगड़ वैठता है। हम उसका सुधार करने का प्रयत्न कर रही हैं। आप निश्चिंत रहें।"

"लैरी दूसरों से वहुत प्रभावित होता है। वहां शायद चार्ल्स के कारण कुछ कठिनाई हो रही है। वह भी चार्ल्स की तरह शरारतें करता होगा!"

"चार्ल्स ?........"

"हां," मैंने हंसते हुए कहा—"सुना है आपको चार्ल्स से निपटने में वड़ी कठिनाई आ रही है।"

"क्षमा कीजिये! मैं आपका मतलव नहीं समझी। हमारे स्कूल में तो चार्ल्स नाम का कोई लड़का है ही नहीं!"

यह सुनकर मेरे पैरों तले से धरती खिसक गयी। "नटखट कहीं का!"

★

किस्सा हमारे यहां का नहीं, एक समुन्नत देश का है, जहां सेक्स-संवंधी शिक्षा को शिक्षा का आवश्यक और महत्त्वपूर्ण अंग माना जा रहा है। माता-पिता के साथ फिल्म देखता हुआ छः साल का वच्चा परदे पर प्रणय का अंतरंग दृश्य देखकर बोल उठा—"अब हीरो इस लड़की पर पराग छिड़कने वाला है न पापाजी ?"

★
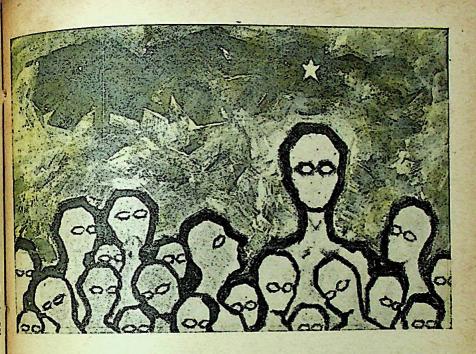
यातना का व्रत-स्नान

नीत्शे का कहना है—"जिसके पास जीने के लिए कोई 'क्यों' है, वह किसी भी कैसे को झेल ही लेगा।" वियेना के सुविख्यात मानस-चिकित्सक डा० विक्टर फ्रैंकल का चिंतन इसी सूत्र की व्याख्या है। वे मानते हैं कि "क्यों" अथवा "अर्थ" की खोज जीवन की मूलभूत प्रवृत्तियों में से है; और प्रत्येक मनुष्य के जीवन का यह "अर्थ" सर्वथा निजी है, जो उसे स्वयं खोजना होता है। वेदना और दुःख भी इस "अर्थ" का अंग हैं। और यह कोरा दिमागी तत्त्वज्ञान नहीं, बल्कि नाजी कन्सेंट्रेशन कैंप की वन्हि में नहाया हुआ जीवंत सत्य है, जैसा कि डा० फ्रैंकल के कैंप-जीवन के अनुभवों पर आधारित पुस्तक "मैन्स सर्च फार मीनिंग" का अगले पृष्ठों में प्रस्तुत सार सिद्ध करता है।

यह पुस्तक तथ्यों और घटनाओं का ब्योरा नहीं हैं, बल्कि यह तो निजी अनुभवों का वर्णन है—ऐसे अनुभवों का, जिन्हें लाखों कैदियों ने बहुधा झेला है। इस कथा का वास्ता उन महान विभीषिकाओं से नहीं हैं, जिनके काफी विवरण छप चुके हैं; इसका संबंध तो छोटी-छोटी असंख्य यंत्रणाओं से है। अर्थात् यह कथा इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास है कि कन्सेंट्रेशन कैंप के दैनिक जीवन का कैदी के मानस पर क्या प्रभाव पड़ता था।

यहां वर्णित अधिकांश घटनाएं प्रसिद्ध कैंपों में नहीं, बल्कि छोटे-छोटे कैंपों में घटीं, जहां कि ज्यादातर लोगों का खात्मा किया जाता था। यह कथा महान वीरों और शहीदों द्वारा झेले गये कष्टों से संबंधित नहीं है, न प्रसिद्ध 'कापो' लोगों से और न प्रसिद्ध कैदियों से। यह 'बड़ों' की कष्ट-कथा नहीं, बल्कि हजारों-लाखों अनामधेय बंदियों के त्याग, शूलारोपण और मृत्यु की गाथा है।

और इन्हीं अनामधेय कैदियों से ही तो कापो लोगों को नफरत थी। जबकि इन कैदियों को खाने को बहुत थोड़ा या कुछ भी नहीं मिलता था, कापो भरपेट खाते थे। बहुत-से कापो जीवन में कभी इतने खुशहाल नहीं रहे, जितने कि कैंपों में। प्रायः वे कैदियों के साथ एस० एस० के सिपाहियों से भी ज्यादा क्रूरता से पेश आते थे। कापो दरअसल ऐसे ही लोग बनाये जाते थे, जिनसे इस प्रकार के व्यवहार की आशा की जा सके। और जो कापो इस कसौटी पर खरे न उतरें, उन्हें पदच्युत कर दिया जाता था।

बाहर वाले प्रायः कैंप के जीवन के बारे में भावुकता और करुणा से मिश्रित भ्रांत धारणाएं बना लेते हैं। उन्हें क्या पता कि जिंदा रहने के लिए कैदियों में आपस में कैसा भीषण संघर्ष चलता है! रोटी के लिए, अपनी व अपने मित्र की जान बचाने के लिए वह निर्मम लड़ाई निरंतर चलती रहती थी।

उदाहरणार्थ, तबादले की बात लीजिये। आदेश हुआ है कि इतने कैदी दूसरे कैंप भेज दिये जायें। इसका अर्थ है—गैस-चेंबर भेजा जाना। बीमार या काम करने में असमर्थ कमजोर कैदी चुनकर बड़े कैंप में भेज दिये जायेंगे, जहां गैस-चेंबर और मुर्दे जलाने की भट्ठियां हैं।

अब कैदियों में व्यक्तिशः अथवा कैदियों के दलों में खुलकर लड़ाई होती है। बस, एक ही लक्ष्य है—किसी भी तरह, भेजे जाने वालों की तालिका में से अपना और अपने दोस्त का नाम कटवा देना। हालांकि सबको मालूम है कि बचने वाली हर जान के एवज में किसी और को शिकार बनाया जायेगा।

अधिकारियों को तो एक निश्चित संख्या में कैदी भेजने हैं—चाहे वे किसी नंबर के हों। कम-से-कम आश्वित्स में तो यही नियम था कि कैंप में आते ही कैदी के सब दस्तावेज छीन लिये जाते थे और नंबर लिखी हुई एक पट्टी (कपड़े की) उसे दी जाती थी, जिसे उसे पतलून, जैकेट या कोट पर एक निश्चित स्थान पर सी लेना पड़ता था। बहुधा ये नंबर शरीर पर गोद भी दिये जाते

जब एस० एस० के सिपाहियों को किसी पर इल्जाम लगाना होता, वे नाम नहीं पूछते थे, बस नंबर पर नजर गड़ा देते थे। किस कदर डरते थे हम उस नजर से!

हां तो बात तबादले की थी। नैतिकता की चिंता कोई नहीं करता था। बस एक ही विचार सब पर हावी रहता था—मैं कैसे जिंदा रहूं, कैसे मेरा मित्र जिंदा रहे? बिना झिझक और शर्म के अपनी जगह दूसरे के नंबर का इंतजाम करा दिया जाता था।

मैं कह आया हूं कि एस० एस० के अफसर सबसे बेरहम कैदियों को ही कापो चुनते थे। कैदियों में अपने बीच भी निरंतर चुनाव चलता रहता था। वही कैदी जिंदा रह पाते थे, जो सब प्रकार की झिझक छोड़ चुके हों और अपनी व अपने दोस्त की जान की खातिर हिंसा, चोरी और मित्रद्रोह तक करने को तैयार हों। हम जो लोग जिंदा लौट आये हैं, जानते हैं कि हममें जो सबसे अच्छे थे, वे वापस नहीं आये।

चूंकि यह एक साधारण कैदी के रूप में मेरे अनुभवों की कथा है, इसलिए अभी से कह दूं कि मुझसे कैंप में डाक्टर अथवा मानस-चिकित्सक का काम नहीं लिया जाता था। (अंत के कुछ महीने इसके अपवाद हैं।) मैं तो महज कैदी नंबर १,१९,१०४ था और मेरा काम था जमीन खोदना और रेल की पटरियां बिछाना। एक बार मुझे अकेले ही एक सड़क के नीचे सुरंग खोदनी पड़ी, पानी का पाइप बिछाने के लिए। और इसका मुझे इनाम भी मिला। १९४४ के बड़े दिनों से ठीक पहले मुझे दो तथाकथित 'विशेष कूपन' दिये गये। जिस ठेकेदार कंपनी को हमें गुलामों की तरह किराये पर दे दिया गया था, उसने ये कूपन जारी किये थे। एक कूपन पर उसे ५० पेनी खर्चने पड़ते थे और एक कूपन से छः सिगरेटें खरीदी जा सकती थीं।

मैं दो कूपनों का गर्वीला मालिक था। दो कूपन यानी बारह सिगरेटें। लेकिन उससे भी अधिक महत्त्व की चीज यह थी कि इनसे बारह कटोरे शोरबा (सूप) खरीदा जा सकता था। और बारह कटोरे शोरबे से बहुधा भुखमरी से बचा जा सकता था।

यों सिगरेट पीने का विशेषाधिकार कापो लोगों को ही था, या उन कैदियों को था, जो गोदाम आदि में जमादार का काम करते थे और जिन्हें इनाम में चंद सिगरेटें मिलती थीं। वरना अगर कोई कैदी अपनी कमाई की सिगरेट पी रहा हो, तो हम जान जाते थे कि अब इसका किस्सा खत्म, इसने संघर्ष में हार मान ली है।

× × ×

कैंप के जीवन के प्रति कैदी की मानसिक प्रतिक्रिया की तीन अवस्थाएं होती हैं :

१. कैंप में प्रवेश के बाद का समय;

२. वह समय जब कैदी कैंप के ढर्रे का अभ्यस्त हो चुका होता है;

३. मुक्ति के बाद का समय।

पहली अवस्था का मुख्य लक्षण है—आघात (शॉक)। कभी-कभी कैंप में प्रवेश के पूर्व ही आघात लग जाता है। मेरा ही-

'लोगोथैरेपी' के प्रवर्तक डा० विक्टर फ्रैंकल (पोर्ट्रेट : वी० एन० ओके)

उदाहरण लीजिये ।

पंद्रह सौ आदमी कई दिन और कई रात से रेल-यात्रा कर रहे थे । हर डिब्बे में अस्सी यात्री थे । सबको अपने सामान—बचे-खुचे सामान—की गठरियों पर लेटना पड़ रहा था । डिब्बों में भीड़ इस कदर थी कि खिड़कियों के ऊपरी भाग में से इसकी झलक-भर मिल रही थी कि पौ फट रही है । सभी को यही आशा थी कि रेल किसी शस्त्रास्त्र-कारखाने में ले जायी जायेगी, जहां हमसे बेगार ली जायेगी । हम नहीं जानते थे कि हम अभी साइलीशिया में हैं, या पोलैंड पहुंच चुके हैं ।

फिर रेल ने पटरियां बदलीं, निश्चय ही कोई बड़ा स्टेशन आ रहा था । अचानक एक आदमी जोर से चिल्ला पड़ा – "देखो, वहां लिखा है –आश्वित्स !" सबके दिल क्षण-भर को धक्-से रह गये । आश्वित्स अर्थात् भयंकरता का दूसरा नाम—गैस-चेंबर, मुर्दे जलाने की भट्ठियां, सामूहिक हत्याएं ! रेल बहुत धीरे, मानो झिझक के साथ चल रही थी । उजाला बढ़ने के साथ-साथ कन्सेंट्रेशन कैंप की रूपरेखा स्पष्टतर होने लगी– कांटे-दार तारों की घेरदार बाड़ें, पहरेदारों की अटारियां, फ्लैश लाइटें, फटेहाल इंसानों की लंबी कतारें, जो जाने किस ओर चलती जा रही थीं । बीच-बीच में सीटी या आदेश की इक्की-दुक्की आवाज गूंज उठती । उनका अर्थ हम नहीं जानते थे । मेरी आंखों के

सामने फांसी का तख्ता झूलने लगा।

आखिरकार स्टेशन आया। आदेश के स्वरों ने—बहुत चिल्लाने से भर्राये हुए स्वरों ने—नीरवता भंग की। डिब्बों के दरवाजे झटके से खोल दिये गये और कैदियों की एक छोटी-सी टुकड़ी भीतर घुस आयी। उनकी वर्दी धारीदार थी, सिर घुटे हुए थे; मगर वे भरपेट खाये हुए लगते थे। डूबता आदमी जैसे तिनके को पकड़ता है, मैं इस खयाल से चिपका रहा—"ये कैदी तो खुशहाल दीखते हैं। कौन जाने, शायद मुझे भी ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो जाये!"

मानस-चिकित्सा में एक स्थिति है, जिसे 'क्षमादान की भ्रांति' कहा जाता है। दंडित व्यक्ति को मृत्युदंड के ऐन पहले भ्रम होने लगता है कि शायद उसे आखिरी क्षण में क्षमादान मिल जायेगा। हम भी आशाओं के टूटे धागों को पकड़े हुए थे और कैदियों के लाल गाल और भरे मुखड़े हमारे लिए बहुत उत्साह-वर्धक थे।

ये कैदी नवागंतुकों और उनकी चीजों का कब्जा ले लेते थे। चीजों में चोरी से लायी गयी चीजें भी होतीं। आश्वित्स के स्टोरों में ही नहीं, एस० एस० के आदमियों के पास भी सोना, चांदी, प्लटिनम और हीरों का विशाल भंडार जमा हो गया था।

दो सौ आदमियों के लिए बनाये गये एक शेड में हम पंद्रह सौ आदमी ठूंस दिये गये। हम भूखे थे, ठंड से ठिठुर रहे थे। सबके बैठने लायक भी जगह नहीं थी, लेटने की बात दरकिनार। फिर भी मैंने एक पुराने कैदी को, जो शेड का मुखिया था, हमें लेने के लिए आने वाली टुकड़ी के एक सदस्य से हीरे-जड़े प्लाटिनम के टाइपिन के लिए सौदेबाजी करते देखा। सौदे से मिला पैसा शराब पर खर्च होने वाला था। पता नहीं, कितने हजार मार्क देने पर कहीं एक बोतल शराब नसीब होती थी!

कैदियों के एक वर्ग को एस० एस० की ओर से चाहे जब जितनी शराब दी जाती थी। ये वे कैदी थे, जिनकी ड्यूटी गैस-चेंबरों और मुर्दे जलाने की भट्ठियों में थी। इन्हें मालूम था कि एक दिन कोई नयी टोली उनका स्थान ले लेगी और वे स्वयं गैस-चेंबर और भट्ठियों के पेट में समा जायेंगे।

हम सभी क्षमादान के स्वप्न देख रहे थे, अतः आगे जो हुआ, उसका अर्थ हम ठीक से समझ नहीं पाये। हमसे सारा सामान ट्रेन में छोड़कर दो कतारों में खड़े हो जाने को कहा गया—एक में पुरुष, दूसरी में स्त्रियां। हमें एस० एस० के अफसर के सामने से कतार में गुजरना था। मेरी हिम्मत देखिये कि मैं अपना झोला भी कोट में छिपाकर ले आया। मैं जानता था कि अगर अफसर ने ताड़ लिया, तो मेरी खैरियत नहीं। और कुछ नहीं तो वह घूंसा मारकर मुझे ढेर तो कर ही देगा।

साफ-सुथरी वर्दी में अफसर बेतकल्लुफी से खड़ा था। दायीं कुहनी उसने बायीं हथेली पर टिका रखी थी और जब सामने से कैदी गुजरता, तो बड़ी लापरवाही से वह अपनी उंगली से दायीं या बायीं ओर जाने का
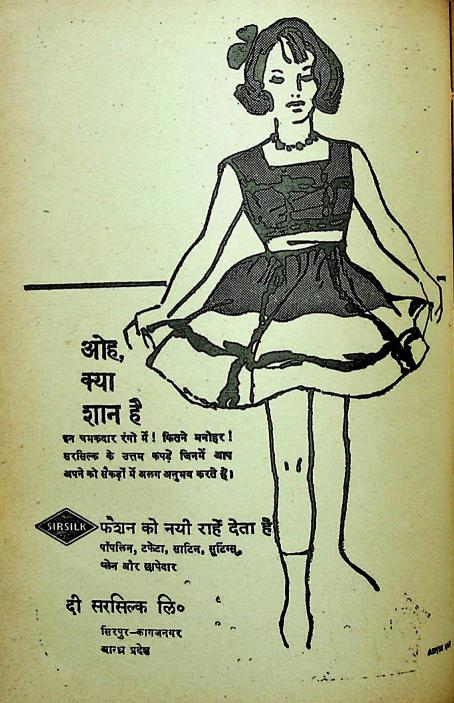
इशारा करता था।

अब अफसर के पास से गुजरने की मेरी बारी थी। किसी ने मेरे कान में फुसफुसा-कर कहा कि बायीं ओर भेजे जाने का अर्थ है—बीमार और काम करने में असमर्थ, जो कि विशेष कैंप में भेजे जायेंगे। सो झोले के भारी बोझ के बावजूद मैं कंधे सीधे करके आगे बढ़ा।

अफसर ने मुझ पर नजर डाली। क्षण-भर के अनिश्चय के बाद उसने मेरे कंधों पर हाथ रखकर धीरे-से मुझे दायीं ओर मोड़ दिया। मैं उसी ओर आगे बढ़ गया।

उंगली के संकेत का महत्त्व शाम को हमें पता चला। यह पहला चयन था—अस्तित्व और अनस्तित्व के बीच का पहला फैसला। हमारी ट्रेन के ९० प्रतिशत आदमियों के लिए इसका अर्थ था मृत्यु। जिन्हें बायीं ओर कर दिया गया था, उन्हें सीधे स्टेशन से ही मुर्दे जलाने की भट्ठी की ओर चलता कर दिया गया। भट्ठी जिस इमारत में थी, वहां काम करने वाले एक आदमी ने बताया कि उस पर अनेक यूरोपीय भाषाओं में लिखा हुआ था—स्नानघर। उसमें प्रवेश करने पर प्रत्येक आदमी के हाथ में साबुन का एक-एक टुकड़ा थमाया जाता था। आगे जो कुछ होता था, उसका वर्णन करने की मुझे आव-श्यकता नहीं। उस विभीषिका के कितने ही वर्णन छप चुके हैं।

हम जो थोड़े-से आदमी बख्श दिये गये थे, हमें शाम को सचाई का पता चल गया। मैंने कैंप के एक पुराने कैदी से पूछा कि मेरे मित्र और सहकर्मी प......को कहां भेजा गया है ?

"क्या वह बायीं ओर भेजा गया था ?"

"हां।" मैंने कहा।

"तो वहां देखो !"

"कहां ?" मैंने पूछा।

और किसी ने हाथ से इशारा किया कुछ सौ गज दूर पर खड़ी एक चिमनी की ओर, जिसमें से आग की लपटें निकल रही थीं।

"देखो, वहां तुम्हारा दोस्त जन्नत की ओर उड़ता जा रहा है।" जब इस पर भी मैं समझ नहीं पाया, तो मुझे सीधे शब्दों में समझाया गया।

पर यह तो कई घंटे बाद की बात हुई। स्टेशन से एस० एस० के पहरेदार हमें बिजली संचारित तारों की बाड़ के पास से दौड़ाते हुए ले चले स्नानागार की ओर। स्नान-घर में प्रवेश करते ही हमें एक शेड में रोक लिया गया। एस० एस० के आदमियों ने कंबल लाकर जमीन पर बिछा दिये और हमसे अपनी सब चीजें—घड़ियां और गहने भी—उनमें डाल देने को कहा। हमें विश्वास नहीं हुआ कि वे सभी कुछ छीन लेंगे।

मैंने एक पुराने कैदी से चुपके-से कहा—"मेरे पास एक पांडुलिपि है, मेरे वैज्ञानिक शोध-निबंध की। मुझे जैसे भी हो, इसे बचाये रखना होगा। यह मेरे सारे जीवन के परि-श्रम का फल है।"

सुनकर वह आदमी पहले हल्के-से मुस्क-राया, फिर मुस्कराहट अवज्ञापूर्ण हंसी में बदल गयी और अंत में उसने कहा—"लेंडी!"

कैदियों की वातचीत में यह शव्द पग-पग पर सुनने में आता था।

तभी अचानक खलवली मच गयी। कर्कश आवाजों में आदेश दिया गया और हमें मार-मारकर एक और कमरे की ओर खदेड़ा जाने लगा। जब सब लोग आ गये,तो एस० एस० के सिपाही ने कहा –"दो मिनिट दिये जाते हैं। दो मिनिटों में पूरे नंग-धड़ंग हो जाओ—सब कुछ फर्श पर डाल दो—वस जूते, हर्निया-बेल्ट और सस्पेंडर पहने रह सकते हो। लो, दो मिनिट शुरू।"

आपाधापी मच गयी। लोगों ने कपड़े फाड़ फेंके। फिर हमें हजामत के लिए एक और कमरे में ठेला गया। वहां सिर्फ सिर के ही नहीं, सारे शरीर के सब बाल मूंड दिये गय। फिर हम कतार में शावर-नलों के नीचे खड़े हो गये।

कतार में प्रतीक्षा करते हुए मेरे मन में विचार आया—अब हमारे पास नग्न और केशहीन शरीरों के सिवा कुछ नहीं है। हमारे पास बस नग्न अस्तित्व-भर रह गया है। अपने पुराने जीवनों से संबंध ही क्या रह गया है अब हमारा!

मेरे पास अभी चश्मा और वेल्ट बाकी थे। वेल्ट बाद में पावरोटी के टुकड़े के एवज में बेच दिया। जिनके पास हर्निया के ट्रस थे, उन्हें हमारे झोंपड़े के इन्चार्ज पुराने कैदी ने चेतावनी दी—अगर किसी ने ट्रस में हीरा या सोना छिपा रखा है, तो उसे मैं अपने हाथों इस शहतीर से लटकाकर फांसी दे दूंगा।

जिनके जूते अच्छे थे, छीन लिये गये और उनकी जगह छोटे या बड़े पुराने जूते दिये गये। कुछ लोगों ने पुराने कैदियों के सुझाव पर अपने जूते काटकर छोटे कर लिये थे। एस० एस० के आदमियों ने इन अपराधियों को दूसरे कमरे में भेज दिया। थोड़ी देर बाद उस कमरे से कोड़ों की मार और चीख-पुकार की आवाजें आने लगीं, जो काफी देर तक आती रहीं।

हमारे भ्रम टूट गये। सहसा हमें हंसी आ गयी। क्योंकि अपने उपहासास्पद नग्न अस्तित्व के सिवा अब हमारे पास कुछ भी नहीं था, जिसे हमसे छीना जा सकता हो। हम आंपस में हंसी-ठट्ठा करने लगे। आखिर नलों से पानी निकल रहा था—असली पानी।

इस अजीब हास्यवृत्ति के बाद कौतूहल ने हमें घर दबोचा। ऐसा कौतूहल एक बार मैंने पर्वतारोहण में बड़े भयानक संकट की घड़ियों में भी अनुभव किया था। मैं सोच रहा था – मैं क्या साबुत बच जाऊंगा? आश्वित्स में इस कौतूहल को हमने आत्म-

रक्षा के लिए भी विकसित किया। हम यह जानना चाहते थे कि अब क्या होगा? स्नान-घर से सीधे लाकर बाहर ठंडी तेज हवा में खड़े किये जाने का शरीर पर क्या असर होगा? कुछ दिन बाद हमारा कौतूहल आश्चर्य में बदल गया कि ठंड लगकर हम क्यों मर नहीं गये?

ऐसे जाने कितने आश्चर्य हमारे हिस्से में लिखे थे। हममें से जो चिकित्सक थे, उन्होंने यह जाना कि पाठ्य पुस्तकें झूठ बोलती हैं। चिकित्साशास्त्र की पाठ्य पुस्तकें कहती हैं कि आदमी सोये ही नहीं, तो कुछ निश्चित घंटों के बाद वह जी नहीं सकता।

आश्वित्स में पहली रात हम एक के ऊपर एक जुड़े हुए लकड़ी के तख्तों पर सोये। छः से आठ फुट लंबे हर तख्ते पर नौ आदमी थे, और नौ आदमियों के बीच दो कंबल। करवट लेटकर एक दूसरे से सटकर ही सोया जा सकता था; क्योंकि जगह बहुत कम थी। इससे कुछ राहत मिली कड़ाके की ठंड से। सख्त मनाही के बावजूद कुछ लोगों ने कीचड़ से सने जूते सिरहाने रखे। बाकी का तकिया तो उनकी बांह थी। फिर भी नींद आयी, चंद घंटों की बेहोशी और आराम दे गयी।

और भी आश्चर्य सुनिये। दांत साफ करने की सुविधा यहां नहीं थी। फिर भी किसी के मसूढ़े खराब नहीं हुए। महीनों कपड़े बदलने या नहाने की सहूलियत नहीं मिलती थी; मगर किसी के खुजली, दाद वगैरह नहीं हुई। जिनकी नींद घर में जरा-सी आवाज से टूट-टूट जाती थी, यहां खर्राटे-बाजों की बगल में, वे घोड़े बेचकर सोते थे।

आत्महत्या का विचार सबके दिमाग में चक्कर काटता था—थोड़े समय के लिए ही सही। प्रति क्षण मृत्यु के समक्ष जीने का यह परिणाम था। मैंने कैंप में पहली ही रात यह दृढ़ संकल्प किया कि मैं तार में नहीं उलझूंगा। कैंप के मुहावरे में इसका अर्थ था—आत्महत्या। बाड़ के बिजली वाले नंगे तार को छूना, यहां आत्महत्या का सबसे लोकप्रिय तरीका था।

आश्वित्स का कैदी आघात के पहले दौर में मौत का डर गंवा बैठता था। चंद दिनों के बाद गैस-चेंबर और मुर्दे जलाने की भट्ठी का खौफ भी जाता रहता था।

पहली ही रात मेरा एक पुराना सहकर्मी, जो कई महीनों से आश्वित्स में था, चोरी-छिपे हमारे बैरक में आ गया। उसकी हम सबको सलाह थी—"भगवान के वास्ते आप लोग रोज हजामत बनाया कीजिये। इससे आप तंदुरुस्त और जवान लगेंगे। 'मुस्लिम' जैसे मत दीखिये। यहां हम 'मुस्लिम' कहते हैं हताश, क्षीणकाय, काम करने में असमर्थ रोगी आदमी को। देर या सवेर 'मुस्लिम' को गैस-चेंबर पहुंचा दिया जाता है। इसलिए हजामत बनाइये, तनकर खड़े होइये, चुस्ती से चलिये। फिर आपको गैस-चेंबर से डरने की जरूरत नहीं।"

[२]

नये कैदी की दूसरी भी प्रतिक्रियाएं होती थीं—जैसे घर की तीव्र याद, आस-पास की परिस्थिति के प्रति तीव्र घृणा। कैंप में गंदगी

का साम्राज्य था। नवागत कैदियों को पहले पाखाना उठाने का काम सौंपा जाता। गंदगी को ट्रक में ले जाते समय हिचकोले के कारण यदि मल-मूत्र के छींटे मुंह पर आ पड़ें और कैदी उसे साफ करने के लिए हाथ उठाये, तो एस० एस० का सिपाही तुरंत उसकी पिटाई करता। इस तरह सहज प्रतिक्रियाएं मारी जाती थीं।

शुरू में कैदी किसी को सजा पाते देख अपनी नजर फेर लेता था; मगर कुछ दिनों या सप्ताहों के बाद परिवर्तन होने लगता। यही दूसरा दौर है। हरारत के कारण काम पर न आने वाले कैदी को बुरी तरह पीटे जाते हुए देखकर भी वह नजर नहीं फेरता। या वह स्वयं बुखार के कारण डाक्टर के पास गया है। बर्फ में नंगे पाव काम करने के कारण बारह साल के एक बच्चे की उंगलियां गल गयी हैं। डाक्टर चिमटे से एक-एक उंगली को नोचकर फेंक रहा है। मगर कैदी को उसे देखकर न जुगुप्सा होती है, न भय लगता है, न दया ही उपजती है। दर्द, बीमारी और मौत इतनी सामान्य चीजें हो जाती हैं कि वे उसे विचलित नहीं करतीं।

मैं टाइफस के बीमारों की कुटिया में था। एक रोगी मर गया। एक कैदी आकर उसका उस दिन का खाना उठा ले गया। दूसरे को मृतक की खड़ाऊं भा गयी। तीसरे ने उसका कोट उतार लिया। मैं तटस्थ-भाव से देखता रहा। फिर मैंने पुरुष नर्स को मुर्दा हटाने को कहा। उसने मुर्दे को तख्ते पर से नीचे पटका, फिर टांगों से पकड़कर घसीटते हुए दरवाजे तक ले गया और वहां से तीन सीढ़ी नीचे लुढ़का दिया। कौन तीन सीढ़ी उतरे! और सचमुच हम भुखमरे थके-हारे कैदियों के लिए तीन सीढ़ी चढ़ना मुसीबत थी। मैं सब देखता रहा और ठिठुरे हुए हाथों से प्याला पकड़कर शोरबे की चुस्कियां लेता रहा। अभी दो घंटे पहले इस आदमी से मैं बातें कर रहा था।

उदासीनता—अनुभूति और भावना का कुंद पड़ जाना—कैदी की मानसिक प्रतिक्रियाओं का दूसरा दौर है। वह उसे प्रतिदिन की, प्रतिघंटे की मार-पिटाई के प्रति संवेदनशून्य बना देती है। इस संवेदनशून्यता द्वारा कैदी अपने चारों ओर एक परकोटे की सृष्टि कर लेता है।

और पिटाई तो बिना बात हो जाती थी। हम रोटी के क्यू में खड़े थे। मेरे पीछे का आदमी कतार से जरा हटकर खड़ा हो गया। यह क्रम-भंग एस० एस० के सिपाही को अखरा। उसने आकर मेरे सिर पर डंडा जड़ दिया तड़ातड़ दो बार। मार का दर्द उतना असह्य नहीं होता, जितना कि मार की अन्यायपूर्णता और अपमान का एहसास असह्य होता है।

जिस मार का शरीर पर कोई निशान नहीं पड़ता, वह भी कई बार दिल पर गहरा घाव कर जाती है। बर्फीला तूफान था, फिर भी हम रेल-मार्ग के लिए जमीन खोद रहे थे। जमीन जमकर पत्थर हो गयी थी। क्षण-भर सुस्ताने के लिए मैं कुदाल के सहारे खड़ा हुआ। गार्ड की नजर पड़ गयी। उसने कंकड़ उठाकर मुझ पर ऐसे फेंका, जैसे कुत्ते

या बिल्ली का ध्यान खींचने के लिए फेंका जाता है।

एक वार कुछ कैदी एक भारी शहतीर ले जा रहे थे। कैदियों में से एक मेरा मित्र था। उसके कूल्हे की हड्डी जन्मकाल से ही सरकी हुई थी और वह लंगड़ाकर चलता था। अचानक वह फिसला और गिर पड़ा। मैं उसकी जगह शहतीर को संभालने के लिए लपका; क्योंकि संतुलन बिगड़ने से सबके गिर जाने का भय था। पर सिपाही ने मेरी पीठ पर छड़ी मारी और मुझे तुरंत वापस अपने स्थान पर जाकर खड़े होने की हिदायत दी। यही सैनिक हमें अक्सर डांटा करता था –"तुम सूअरों में सहयोग का भाव जरा भी नहीं है।"

पाला पड़ा हुआ था। २° फारनहाइट तापमान में भी मैं खुदाई कर रहा था। मेरी खोदी हुई मिट्टी का ढेर मेरे सामने था। मगर फोरमन मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। बोला – "सूअर, मैं तुझे सिखाऊंगा कि काम कैसे किया जाता है। जानवर की तरह तुझे धूल चटवाऊंगा। जिंदगी में तूने कभी काम नहीं किया। बोल सूअर, तू क्या था–व्यापारी ?"

मुझसे वर्दाश्त नहीं हुआ। मैंने कहा –"मैं डाक्टर था–विशेषज्ञ।"

"तव तो तूने खूब लूटा होगा, वेचारे गरीबों को !"

मैंने कहा –"मैं तो गरीबों के लिए धर्मार्थ अस्पतालों में मुफ्त में काम करता था।"

यह मेरी गुस्ताखी की हद थी। फोरमन मुझ पर टूट पड़ा।

सौभाग्य से हमारी श्रम-टुकड़ी का कापो मेरा अनुगृहीत था। काम पर जाते समय लंबे कूच में वह अपने प्रेम-प्रकरण और दांपत्य की समस्याएं मुझे सुनाया करता था। मेरी मनोविश्लेषण-क्षमता और लाभप्रद डाक्टरी सलाह से वह वहुत प्रभावित था। इसीलिए वह सदा टुकड़ी की पहली पांच कतारों में मेरे लिए जगह सुरक्षित रखता था। मुंह अंधेरे हमें कतार में खड़ा होना पड़ता। पिछली कतारों में खड़े होने से सब बचने की कोशिश करते। अगर कोई गंदगी-भरा काम करना हो, तो मुख्य कापो आकर पीछे की कतारों में से आदमी चुन लेते थे।

अगली पंक्ति में रहने का एक और लाभ था। सभी कैदियों की तरह मेरे भी पैर इस कदर सूज गये थे कि मैं घुटने नहीं झुका सकता था। जूते भी मैं बिना मोजों के पहनता और फीते न कसता। नहीं तो पांव जूतों

में घुसते ही नहीं। इससे वर्फ अंदर घुसकर उंगलियों को गलाती थी। एक कदम चलना भी बड़ी घोर यंत्रणा थी। चलते-चलते कोई कैदी गिर पड़ता। पिछले कैदी उस पर गिर पड़ते। तुरंत कोई सैनिक बंदूक के कुंदे मार-मारकर उन्हें खड़ा करने लगता। फिर उन्हें दौड़कर अगलों के साथ मिलना पड़ता। अगली कतारों में रहने पर गिरने का डर न रहता।

मेरी सेवा के वेतन के रूप में कापो दोपहर को खाने की छुट्टी में कड़छी ऐन तली तक डुबाकर मुझे शोरवा परोसता था, जिससे मटर के चंद दाने मुझे मिल जाते। इस कापो ने फोरमन के साथ ऊपर वर्णित झगड़े के बाद मुझे चुपचाप दूसरी टुकड़ी में कर दिया और मेरी जान बचायी।

उदासीनता या उपेक्षावृत्ति कैद की दूसरी अवस्था का मुख्य लक्षण था। आत्मरक्षा के लिए यह आवश्यक थी। सारी मानसिक शक्तियां एक ही कार्य पर केंद्रित होती थीं—अपनी और हो सके, तो अपने मित्र की जान बचाना। जीवित रहने का यह भार कैदी के आंतरिक जीवन को अति निम्नस्तर पर पहुंचा देता था।

कैदी स्वप्नों में क्या देखते थे? पावरोटी, सिगरेट और गरम पानी में स्नान। इस तरह सपनों द्वारा हम अपनी इच्छाओं की पूर्ति करते। एक रात एक कैदी को मैंने बुरी तरह कराहते सुना। जरूर कोई भयंकर सपना देख रहा था वह। मैं उसे जगाने ही वाला था कि सहसा हाथ पीछे खींच लिया, यह सोचकर कि वह सपना चाहे कितना भयंकर हो, कैंप-जीवन की वास्तविकता से ज्यादा भयंकर नहीं हो सकता।

निरंतर अधपेट रहने के कारण भोजन कैदी के विचारों का केंद्र बन जाता था। काम करते समय क्षण-भर को भी सुस्ताने का समय मिले, तो कैदी भोजन के बारे में बात करने लगते थे। एक-दूसरे से पूछते—तुम्हें सबसे ज्यादा पसंद क्या व्यंजन है? वे योजनाएं बनाते कि कैंप से छूटने के बाद घर पर क्या-क्या बनवाकर खायेंगे। बड़ा खतरनाक खेल था, मानसिक दृष्टि से यह।

हमारी कैद के आखिरी दिनों में हमें दिन में एक बार पतला-सा शोरबा मिलता और थोड़ी-सी डबल रोटी। इसके अलावा अतिरिक्त राशन मिलता—तीन-चौथाई औंस मार्गरीन या घटिया सासेज अथवा पनीर का टुकड़ा, या बनावटी शहद की चंद बूंदें। इस भोजन पर हमसे कसकर शारीरिक श्रम कराया जाता था। बीमारों को इससे भी कम खाना मिलता था; उन्हें काम न करने की छूट जो दी गयी थी!

शरीर पर से चरबी की आखिरी परत भी जब पिघल गयी, तो शरीर अपने प्रोटीन को स्वयं खाने लगा, मांसपेशियां गायब हो गयीं। हमारे झोंपड़ों में एक के बाद एक कैदी मरने लगा। अगली बारी किसकी है, यह बताना कठिन नहीं था। और हमारी भविष्यवाणी प्रायः ठीक निकलती थी।

जो इन परिस्थितियों में से नहीं गुजरे, वे इसकी कल्पना नहीं कर सकते कि कड़ाके की ठंड में जमीन खोदना और खाने की छुट्टी

के भोंपू की प्रतीक्षा करना क्या होता है। अगर फोरमन भयानक आदमी न हो, तो हम बार-बार उससे पूछते कि समय क्या है और जेब म रखी डबल रोटी को अपनी ठंड से अकड़ी उंगलियों से सहलाते। उसका छोटा-सा टुकड़ा तोड़कर मुंह में डालते और प्रवल आत्मसंयम के साथ बाकी रोटी को बचाये रखते।

डबल रोटी खाने के बारे में दो संप्रदाय थे। एक कहता कि ज्योंही वह परोसी जाये, तुरंत खा ली जाये। इससे दिन में एक बार तो भूख से कुछ देर के लिए मुक्ति मिलेगी, और डबल रोटी की चोरी हो जाने का भय भी नहीं रहेगा। दूसरा संप्रदाय डबल रोटी को थोड़ा-थोड़ा करके अलग-अलग समयों पर खाने के पक्ष में था। मैं इस संप्रदाय में शरीक हो गया।

कैंप-जीवन के २४ घंटों में सबसे भयानक घड़ी होती थी—उठने की घड़ी। काफी रात रहते तीन कर्कश सीटियां बजतीं और हमारी नींद को तोड़ देतीं। हम अपने गीले जूतों से जूझने लगते, जिनमें हमें अपने सूजे हुए पांव घुसेड़ने होते थे। फीते या उनकी जगह काम में लाये जाने वाले तार टूट जाते। एक दिन मैंने एक बड़े ही बहादुर और गंभीर प्रकृति के साथी को बच्चों की तरह बिलखकर रोते देखा। उसका तार टूट गया था, उसे नंगे पांव कूच पर जाना था। उन भीषण घड़ियों में मैं डबल रोटी जेब से निकालकर धीरे-धीरे खाने लगा। इससे मेरी आत्मा को बड़ी सांत्वना मिली।

भुखमरी के कारण जहां मन निरंतर भोजन की चिंता करता रहता था, वहीं शायद भुखमरेपन के कारण ही मन काम-वासना से लगभग विमुक्त भी रहता था। सैनिक-बैरक आदि केवल पुरुषों के निवासों में अक्सर जो स्थिति होती है, उसकी तुलना में कन्सेंट्रेशन कैंपों में काम-विकृति लगभग नहीं ही थी। सपनों में भी कैदी प्राय: सेक्स से वास्ता नहीं रखते थे।

अपने प्राण बचाये रखने की चिंता में निरंतर व्यस्त रहने के कारण ही अधिकांश कैदी भावना से और भावुकता से सर्वथा विमुक्त हो जाते थे। जब मैं आश्वित्स से डाचाउ के कैंप में भेजा जा रहा था, तब इसका अनुभव मुझे हुआ। हम २,००० कैदी रेलगाड़ी में थे। रेल वियेना होकर जाने वाली थी। गाड़ी आधी रात को वियेना के एक उपनगरीय स्टेशन पर पहुंची। यह लाइन उस सड़क और मकान के पास से गुजरती थी, जहांमैं जनमा और वर्षों रहा था और जहां से पकड़कर कैंप में लाया गया था। हम सब जानते थे कि हमें माउटहासेन के कैंप में भेजा जा रहा है, जिसका अर्थ है कि ज्यादा-से-ज्यादा हम पंद्रह दिन के मेहमान हैं।

इस डिब्बे में हम पचास कैदी थे। कुछ जवान लड़के सींकचेदार झरोखों के पास खड़े थे। आख़िरकार रेलगाड़ी मेरी सड़क और मेरे घर के पास से गुजरी। खिड़की के पास खड़े लड़के सब कुछ ध्यान से देख रहे थे। मैंने उनसे बहुत प्रार्थना की कि पल-

पूर्व जर्मनी में बुखेनवाल्ड कन्सेंट्रेशन कैंप के शहीदों का स्मारक

भर वे मुझे बाहर झांक लेने दें। मेरी प्रार्थना ठुकरा दी गयी। वे बोले – "तुम यहां जनमे और रहे थे? ...तब तो काफी देख चुके हो।"

× × ×

कैंप में एक प्रकार की सांस्कृतिक शीत-निद्रा छायी रहती थी। इसके दो ही अपवाद थे—राजनीति और धर्म। राजनीति की चर्चा हरदम हर जगह चला करती और उसका केंद्र होता था मोर्चे की खबरें या अफवाहें। लड़ाई के जल्दी समाप्त होने की आशाएं कई बार झुठलायी जा चुकी थीं। पर हमारा आशा-रोग लाइलाज था।

जब कैदियों में धर्म-भावना जागती थी, तो बड़ी सच्ची और गहरी होती थी। झोंपड़ों में या गाड़ियों में भूख और ठंड की यातना के बीच आयोजित ये प्रार्थना-सभाएं कितनी मार्मिक होती थीं!

सन १९४५ की सर्दियों में टाइफस रोग जोरों से फैल गया। जो निर्बल थे, धड़ाधड़ मरने लगे। रोगियों का कक्ष बहुत छोटा था। न दवाइयां थीं, न शुश्रूषा करने वाले। कुछ रोग-लक्षण बड़े बुरे थे—भोजन से भयंकर घृणा, सन्निपात। सबसे भयंकर सन्निपात मेरे एक मित्र को हुआ। उसे लगा कि वह मरने ही वाला है। वह प्रार्थना करना चाहता था, पर प्रार्थना के शब्द उसे याद नहीं आ रहे थे।

सन्निपात से बचने के लिए मैं जितनी भी देर तक हो सके, जागे रहने का यत्न करता। मैं अपने मन में ही शास्त्रीय विषयों पर भाषण देने लगता। मैंने अपना शोध-प्रबंध फिर से लिखना शुरू किया, जिसकी पांडु-

लिपि आश्वित्स में मुझसे छीन ली गयी थी। कागज के छोटे-छोटे पुर्जों पर मैं मुख्य विचार सूत्र रूप में लिख लेता था। कभी-कभी कैंप में शास्त्रीय चर्चाएं भी होतीं और चोरी-छिपे आत्मविद्या के प्रयोग भी होते।

× × ×

भौतिक और मानसिक दृष्टि से आदिम जीवन विताने की मजबूरी के बावजूद कैंप-जीवन में आत्मा की गहराई बढ़ने की भी संभावना थी। संवेदनशील और बौद्धिक व्यक्तियों को अधिक क्लेश अवश्य झेलना पड़ता था; पर उनकी आत्मिक क्षति भी कम होती थी। जुगुप्सित परिवेश में से अपने मन को भीतर मोड़कर आंतरिक समृद्धि और आत्मिक सार्थकता में रमना उनके लिए संभव था। अन्यथा इसका और क्या कारण हो सकता था कि कई कम हट्टे-कट्टे कैदी बलिष्ठ कैदियों की अपेक्षा कैंप-जीवन की कठिनाइयों को अधिक अच्छी तरह झेल लेते थे!

कूच के आदेश गूंज रहे थे—वायें एक-दो-तीन, बायें एक-दो-तीन! ......अंधेरे में हम पत्थरों, वर्फ और पानी-भरे छिछले गढ़ों में से कूच कर रहे थे। पीछे से बंदूक के कुंदों से हमें खदेड़ा जा रहा था। वर्फीली हवा में सबके ओठों पर ताला लगा हुआ था। तभी मेरी बगल में चल रहा आदमी कह उठा—"सोचो तो, हमारी बीवियां हमें इस हालत में देख लें, तो क्या सोचेंगी? मुझे आशा है, उनके कैंपों में हालत इससे बेहतर होगी और उन्हें पता न होगा कि हम पर क्या बीत रही है।"

मीलों तक हम दोनों बगैर बोले, एक दूसरे को सहारा देते हुए, एक दूसरे को गिरने से बचाते हुए चलते रहे। लेकिन दोनों जानते थे कि दोनों ही अपनी-अपनी पत्नी के बारे में सोच रहे हैं। मेरे मन में मेरी पत्नी की मूरत थी—मेरे प्रश्नों का उत्तर देती हुई। मुस्कराहट और अपनी निश्छल प्रेमल दृष्टि से वह मुझे प्रोत्साहन दे रही थी।

जीवन में पहली बार मैंने उस महासत्य का अनुभव किया, जिसके गीत कवियों ने गाये हैं, जिसे मनीषियों ने विवेक का सार कहा है। प्रेम मानव का सर्वोच्च और चरम लक्ष्य है। मानव की मुक्ति प्रेम द्वारा और प्रेम में ही होगी। मैंने अनुभव किया कि जो सब कुछ गंवा बैठा है, वह किस प्रकार अपने प्रिय के स्मरण और चिंतन मात्र से आनंद पा सकता है, भले ही क्षण मात्र के लिए सही। नितांत अहसाय अवस्था में भी, जब दुःख सहने के सिवा कोई चारा न हो, तब भी मनुष्य अपने प्रिय जनों के प्रेमपूर्ण स्मरण द्वारा जीवन-सार्थक्य अनुभव कर सकता है। जीवन में पहली बार इन शब्दों का अर्थ मेरी समझ में आया कि "देवता भी प्रेम की अनंत भव्यता के चिंतन में विलीन हैं।"

काम-धाम, डांट-डपट चल रही थी। मगर मेरा मन मेरी पत्नी की मूरत से चिपटा हुआ था। मैं नहीं जानता था कि वह जीवित है या नहीं। (और जानने का कोई मार्ग भी नहीं था।) मगर जानने की आवश्यकता भी नहीं थी। मेरे प्रेम को, मेरे खयालों को, मेरी प्रिया की मानसिक मूरत को कोई हाथ नहीं लगा सकता था। यदि मुझे मालूम भी होता

कि वह मर चुकी है, तो भी उसके साथ मेरा वह मानसिक मिलन, मानसिक वार्तालाप उतना ही सार्थक और संतोषप्रद रहता।

आंतरिक जीवन का इस प्रकार गहरा हो जाना कैदी को अपने वाह्य जीवन के खोखलेपन, छूंछेपन और अपने वाह्य अस्तित्व की दरिद्रता से मुक्ति पाने में सहायता देता है। इस आंतरिक गहराई में उसे कला और प्रकृति के सौंदर्य की ऐसी गहरी अनुभूति होने लगती है, जैसी जीवन में पहले कभी नहीं हुई थी।

एक शाम हम सब थकावट से चूर, हाथों में शोरबे के प्याले लिये बैठे हुए थे कि एक साथी दौड़कर आया और बोला—परेड के मैदान में चलकर गजब का सूर्यास्त देखो। बाहर जाकर हमने देखा, आकाश में राक्षसाकार बादल घुमड़ रहे थे—लाल-काले-नीले, क्षण-क्षण बदलते आकार वाले। क्षितिज पर धूसरवर्णी झोंपड़े विसंवादी पृष्ठभूमि प्रस्तुत कर रहे थे; पर कीचड़-भरे मैदान के गढ़ों में चमकीला आकाश पानी में प्रतिबिंबित हो रहा था। मिनिटों की आत्मविभोरता के बाद किसी ने कहा—"दुनिया कितनी सुंदर हो सकती है!"

अभी मैंने कला का नाम लिया। क्या कन्सेंट्रेशन कैंप में भी कला जैसी चीज संभव है? हां। जब-तब महफिल जुट जाती थी। उसमें नाच होता, गाने गाये जाते, कविताएं पढ़ी जातीं, चुटकुले सुनाये जाते। लोग भोजन भी छोड़कर उसमें शरीक होते थे।

दोपहर को काम के बीच खाने की छुट्टी में जब शोरबा परोसा जाता, कोई एक कैदी गाना गाने लगता। उसे शोरबा दुगुना दिया जाता और वह भी एकदम तली से।

मुझे आश्वित्स आये दूसरी ही रात थी। अचानक संगीत की ध्वनि से नींद टूट गयी। पिये हुए कुछ लोग गा रहे थे। अचानक ही शांति छा गयी, फिर वायलिन पर एक पुरानी घिसी-पिटी-सी धुन बज उठी। वायलिन रो रहा था। मेरी आत्मा रो रही थी। क्योंकि उस रोज किसी का चौबीसवां जन्मदिन था। और वह 'कोई' आश्वित्स के दूसरे किसी हिस्से में, शायद कुछ ही सौ या हजार गज की दूरी पर लेटी हुई थी। वह 'कोई' मेरी पत्नी थी।

हास्य आत्मा की रक्षा का दूसरा हथियार था। मैंने और एक साथी ने परस्पर प्रतिज्ञा कर रखी थी कि हम रोज खाने की छुट्टी में एक चुटकुला अवश्य सुनायेंगे। हम तरह-तरह के हास्यपूर्ण अथवा हास्यास्पद वाकयों की कल्पना किया करते। विनोद-वृत्ति का विकास जीने की कला को हस्तगत करने की एक युक्ति है। पर क्या कन्सेंट्रेशन कैंप में सर्वव्यापी दुःख की उपस्थिति में जीने की कला के अभ्यास के लिए गुंजाइश थी? हां, गुंजाइश थी। एक उपमा लें। यदि किसी कमरे में गैस छोड़ी जाये, तो धीरे-धीरे वह सारे कमरे में एकसार फैल जायेगी, चाहे कमरा कितना भी छोटा या बड़ा हो। दुःख चाहे कितना भी बड़ा या छोटा हो, वह संपूर्ण आत्मा को, चेतन मस्तिष्क को व्याप लेता है। दुःख का परिमाण इसलिए आपे-

क्षिक वस्तु है।

आश्वित्स से डाचाउ से संबंधित कैंप में जाते वक्त की घटना है। जब हमारी रेलगाड़ी डेन्यूब नदी के एक खास पुल के पास पहुंची, हम सब एकदम व्यग्र और संशयग्रस्त हो उठे। अनुभवी यात्रियों ने बताया था कि यदि गाड़ी पुल पर से गुजरी, तो बदनाम माउटहासेन कैंप को जायेगी। जब हमने देखा कि गाड़ी पुल पर से नहीं गुजरी और दूसरी ओर मुड़ गयी, तो हमारे आनंद का पार न रहा।

इसी तरह उस कैंप में पहुंचने पर जब हमें वहां के एक पुराने कैदी से पता चला कि वहां गैस-चेंबर और मुर्दा-भट्ठी नहीं है, तो हम कितने खुश हुए थे! हम खुशी में भरकर हंसने और आपस में मजाक करने लगे।

कैंप में पहुंचने पर गिनती हुई और पता चला कि २,५०० में से एक आदमी गायब है, तो बड़ी ढूंढ़ मची। वह पास के किसी शेड में जाकर सो गया था। सजा के तौर पर हम सबको सारी रात बाहर मैदान में खड़ा रखा गया। फिर भी हम खुश थे; क्योंकि वहां गैस-चेंबर और मुर्दे जलाने की भट्ठी नहीं थी।

सुख और सौभाग्य कितना सापेक्ष होता है! कुछ फोरमन कैदियों को बहुत मारते थे, उनकी टुकड़ी में न भेजा जाना बहुत बड़ा सौभाग्य था। रात को सोने से पहले जुएं मारने की दवा छिड़कवाने का अवसर मिल जाये, तो अपने को बड़भागी समझते। हालांकि इसके लिए काफी देर तक एक बर्फ जैसे

चित्र : डा० जगदीश गुप्त

ठंडे शेड में नंग-धड़ंग खड़े रहना पड़ता था। मगर उसके बाद हमें रात तो करवट बदलते न काटनी पड़ती। कैंप के छोटे-छोटे आनंद अभावात्मक आनंद थे, जिन्हें शोपेनहावर ने 'वेदना से स्वातंत्र्य' कहा है।

× × ×

जैसा कि मैं पहले भी कह चुका हूं, कैंप में रहते अपनी और अपने मित्र की जिंदगी बचाये रखना जीवन का सबसे बड़ा ध्येय बन जाता था। और जो दुनिया मानव-गौरव में विश्वास नहीं करती हो, जो उससे अंतिम दम तक काम लेकर फिर उसका खात्मा कर देने पर तुली हुई हो, उसमें मनुष्य आत्मसम्मान खोकर अपने मूल्य गंवा बैठता है। वह अपने को रेवड़ का सदस्य

समझने लगता है। और जैसे भेड़-बकरियां रेवड़ के बीचों-बीच रहने का यत्न करती हैं, हम भी कोशिश करते कि टोली के बीच रहें। इससे हम सिपाहियों की लातों से बच जाते थे, सर्द हवा से भी किसी हद तक बचाव हो जाता था। कैंप में आत्मरक्षा का एक महत्त्व-पूर्ण नियम यह था कि लोगों की नजरों में न आओ।

फिर भी कभी-कभी मन एकांत के लिए तड़प उठता था। रोगी-कक्ष में डाक्टर के रूप में काम करते हुए मुझे पांच-दस मिनिट के एकांतवास का अवसर मिल जाया करता था। इस कुटिया के पीछे पानी के पाइप की सुरंग का मुख था, जिस पर लकड़ी का ढक्कन था। उस पर बैठकर मैं कभी-कभी पर्वतों को निहारा करता। एक बार दो भगोड़े कैदी उसमें आ छिपे। उन्हें ढूंढ़ते हुए पहरेदार भी वहां आये। पर मैं अनजान बन-कर पहाड़ों की ओर देखता रहा।

कुटिया में पचास रोगी थे—प्राय: सन्नि-पात की अवस्था में। दवा के तौर पर उन्हें देने के लिए मुझे पूरे हफ्ते भर के लिए पांच या दस टिकिया एस्पिरीन की मुहैया की जाती थीं। मैं रोगियों का निरीक्षण करता, संजीदा मामलों में आधी टिकिया एस्पि-रीन देता। जो लोग बहुत-ज्यादा बीमार हों, उनके लिए कुछ भी करना असंभव था। उन्हें एस्पिरीन देना, दूसरों को दवा से वंचित करना था। जिनका रोग हल्का हो, उन्हें मैं प्रोत्साहन-भर देता था।

रोगियों की संख्या जब बहुत बढ़ जाती, तब उन्हें आराम-कैंपों में पहुंचाया जाता। दुपहिया हाथगाड़ियों पर कृशकाय रोगियों को डाल दिया जाता और दूसरे कैदी मीलों तक उन गाड़ियों को खींचते हुए ले जाते। अगर गाड़ी में चढ़ाने से पहले ही कोई रोगी मर जाये, तो भी उसे गाड़ी में भर लिया जाता था; क्योंकि रोगियों की संख्या पूरी होना जरूरी था। इन जाते हुए रोगियों के कपड़े, जूते जो भी चीज जंच जाये, उसे दूसरे कैदी उठा लेते थे।

यहां पर आदमी निरा एक नंबर ही तो था, चाहे जीवित हो या मृत। उस नंबर के पीछे जो व्यक्ति था, उसका कोई भी महत्त्व नहीं था। डाक्टर के नाते मुझे ऐसी बीमारों की गाड़ियों के साथ बावेरिया के बहुत-से कैंपों के चक्कर लगाने पड़े। हालांकि यह संदिग्ध होता था कि हम आराम-कैंप ही भेजे जा रहे हैं, या गैस-चेंबर में।

एक बार रोगियों को आराम-कैंप भेजा जाना था। सूची में डाक्टर के रूप में मेरा नाम था। प्रधान डाक्टर को मुझसे स्नेह-सा हो गया था। उसने कहा—चाहो तो तुम अपना नाम कटवा सकते हो। मैं नहीं माना। उसकी आंखों में आंसू आ गये।

मैं अपनी झोंपड़ी में लौटा। वहां मेरा मित्र ओट्टो मेरी प्रतीक्षा कर रहा था। मुझे वसीयत करनी थी। मैंने कहा—"मैं जा रहा हूं।" उसकी आंखों से आंसू बह निकले। मैंने कहा—"सुनो ओट्टो, अगर मैं घर न लौट सकूं और तुम्हारी मुलाकात मेरी पत्नी से हो, तो उसे बताना कि मैं दिन-भर उसे याद

किया करता था। दूसरे यह कि मैं उससे अपार प्रेम करता था। तीसरे यह कि हालांकि हमारा दांपत्य-जीवन कुछ ही वर्षों का था, पर वह कैंप में हम पर गुजरी तमाम चीजों से ज्यादा वड़ी चीज है।"

ओट्टो, तुम कहां हो ? क्या तुम जीवित हो ? मेरे साथ वितायी उस आखिरी घड़ी के वाद तुम्हारा क्या हुआ ?

इस वार हम सचमुच आराम-कैंप भेजे गये थे। जो लोग पीछे रह गये, उन्हें भयानक अकाल का सामना करना पड़ा। बाद में वहां के एक पहरेदार ने वताया कि वहां मरे आदमियों का मांस तक खाने की वारदातें हुईं।

कैदी कोई भी निर्णय करने से वहुत घबराते थे। कई वार चटपट निर्णय करना पड़ता था, जिसका अर्थ जिंदगी या मौत होता था। कैदी को फैसला करना पड़ता कि वह कैंप से भाग निकले या नहीं। गलत निर्णय का निश्चित अर्थ था—मृत्यु।

ऐसे निर्णय मुझे भी करने पड़े। एक वार मैंने और एक साथी डाक्टर ने भाग निकलने की तैयारी कर ली। मैं किसी काम से रोगी-कक्ष में गया, तो हमारे ही इलाके के एक रोगी मित्र ने मेरी योजना भांप ली और कहा—"तो तुम भी जा रहे हो ?" मैंने इन्कार तो किया; मगर उससे नजरें मिलाने की मेरी हिम्मत नहीं हुई। मैंने फैसला किया कि नहीं भागूंगा। मैंने जाकर अपने साथी डाक्टर को इसकी सूचना दे दी और मैं वैठकर रोगियों को सांत्वना देने लगा। इस निर्णय का परिणाम क्या होगा, यह मैं नहीं जानता था। परंतु इससे मुझे परम शांति अनुभव हुई।

× × ×

कैंप-जीवन का अंतिम दिन आ पहुंचा। लड़ाई का मोर्चा हमारे नजदीक आ पहुंचा। ज्यादातर कैदी दूसरे कैंपों में भेज दिये गये थे। कैंप के अफसर, कापो और रसोइये भाग चुके थे। शाम तक कैंप खाली करके रात को कैंप में आग लगा देने का आदेश आया था। दोपहर तक ट्रकें नहीं आयीं, जिनमें रोगी ले जाये जाने वाले थे। फाटक बंद कर दिये गये, ताकि कोई भाग न पाये। तो क्या हमें जिंदा जला दिया जायेगा ?

मगर फाटक अचानक खुला और रेड-क्रास की एक शानदार कार अंदर आयी। उसमें से रेड क्रास का एक प्रतिनिधि उतरा। अब कैंप और कैदी उसके संरक्षण में थे। दवाइयां उतारी गयीं। सिगरेटें वांटी गयीं। सव निश्चित हो गये। मगर तभी एस० एस० के आदमी कैंप खाली कराने का आदेश लेकर आ पहुंचे। उन्होंने हम सबको वताया कि हमें पहले केंद्रीय कैंप में ले जाया जायेगा, फिर वहां से बंदी जर्मन कैदियों के एवज में स्विट्जरलैंड भेजा जायेगा। वे बड़े दोस्ताना ढंग से बातें कर रहे थे और हमें सर्वथा निर्भय होकर उनके साथ चलने के लिए प्रोत्साहित कर रहे थे।

ट्रकें आ पहुंची। जो लोग चलने-फिरने के काबिल थे, वे ट्रकों में चढ़े; रोगियों को चढ़ाया गया। मुझे और मेरे साथी डाक्टर
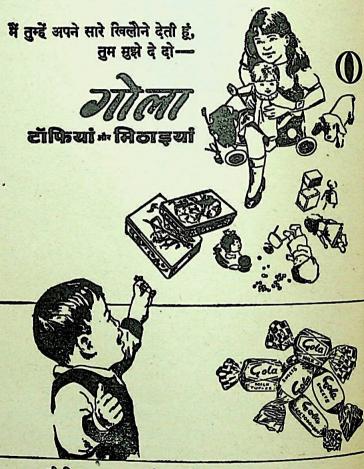
को आखिरी से पहली ट्रक में चढ़ना था। मगर प्रधान चिकित्सक ने उस ट्रक में जाने वालों में हमारा नाम शरीक नहीं किया। जले-भुने हम लोग आखिरी ट्रक का इंतजार करते रहे और अंत में सो गये।

रात को अचानक तोपों की गड़गड़ाहट से नींद खुल गयी। कैंप में खलवली मची हुई थी। युद्ध का मोर्चा ऐन हमारे कैंप तक आ पहुंचा था। सवेरे देखा तो कैंप के दरवाजे पर सफेद झंडा फहरा रहा था। कई हफ्ते बाद हमें पता चला कि आखिरी क्षणों में भी भाग्य ने कैदियों के साथ खिलवाड़ किया था। ट्रकों पर लदकर गये हमारे साथियों को पास के एक कैंप में झोंपड़ियों में बंद करके भस्म कर दिया गया था।

× × ×

इन मनोवैज्ञानिक स्थितियों के विवरण से यह धारणा वन सकती है कि शायद मनुष्य विलकुल अपने चारों ओर की परिस्थितियों का दास होता है। तो क्या मानवीय संकल्प नाम की कोई चीज नहीं? क्या मनुष्य को अपनी राह चुनने का कोई अधिकार नहीं?

अनुभव वताता है कि मनुष्य को यह अधिकार है। हमें याद है कि कैंप में ऐसे भी व्यक्ति थे, जो झोपड़ियों में घूम-घूमकर दूसरों को सांत्वना और शक्ति देते थे; जो अपने हिस्से की रोटी का आखिरी टुकड़ा भी दूसरों को दे देते थे। भले संख्या में ये मुट्ठी-भर रहे हों, मगर ऐसे एक भी आदमी का अस्तित्व इस बात का प्रमाण है कि मनुष्य का सब कुछ छीना जा सकता है, किंतु परि-

चित्र : डा० जगदीश गुप्त

स्थितियों के प्रति वह क्या मनोवृत्ति अपनाये, यह स्वतंत्रता उससे नहीं छीनी जा सकती।

तो मनुष्य कन्सेंट्रेशन कैंप में भी अपना आत्मगौरव बचाये रख सकता है। दास्तो-व्स्की ने कहा है—"मुझे केवल एक चीज से डर लगता है—अपने दुःखों का अपात्र सिद्ध होने से।" अगर जीवन का कोई अर्थ है, तो दुःख का भी अवश्य ही कोई अर्थ होगा। भाग्य और मृत्यु जीवन का अपरिहार्य अंग हैं। दुःख और मृत्यु के विना मानव-जीवन परिपूर्ण नहीं हो सकता।

मनुष्य की आंतरिक गरिमा का एक दृष्टांत मैंने कन्सेंट्रेशन कैंप में देखा। इस युवती को पता था कि वह थोड़े ही दिन की मेहमान है। फिर भी वह बड़ी प्रसन्नता से बातें करती थी। मुझसे उसने कहा—"धन्य हूं

मैं कि भाग्य ने मुझ पर करारा वार किया। मैं बहुत लाड़ में बिगड़ गयी थी और आत्मिक साधना पर मैंने ध्यान नहीं दिया था।" फिर वह कुटिया की खिड़की में से एक पेड़ की ओर इशारा करके कहने लगी—" यह वृक्ष इस तन्हाई में मेरा एकमात्र मित्र है।" चेस्टनट के उस वृक्ष की एक टहनी भर दिखती थी, जिस पर दो फूल थे। वह कह रही थी —"मैं अक्सर इस पेड़ से बातें किया करती हूं।" मैं चौंक पड़ा। कहीं यह सन्निपात में तो नहीं ? मैंने चिंतापूर्वक पूछा कि क्या पेड़ उत्तर देता है ? बोली — "हां, वह कहता है—मैं यहां हूं—मैं यहां हूं—मैं जीवन हूं—शाश्वत जीवन।"

× × ×

कन्सेंट्रेशन कैंप में कैदी को सबसे अधिक हताश करने वाली चीज यह होती है कि उसे पता नहीं होता कि उसकी कैद की मियाद क्या है, या कोई मियाद है भी या नहीं? कैंप में जीवन 'तात्कालिक जीवन' बन जाता है—अवधिहीन तात्कालिक जीवन। और यह अवधिहीनता आदमी को अपना अंतिम ध्येय नहीं चुनने देती। उसमें आंतरिक ह्रास शुरू हो जाता है। आदमी की काल-धारणा भी गड़बड़ा जाती है। उसे एक घंटा अनंत और एक सप्ताह या महीना बहुत छोटा लगता है।

तब लोग वर्तमान की भयानकता को भूलने के लिए अतीत में जीने लगते हैं। मगर वे इस बात को भूल जाते हैं कि कैंप की अत्यंत विषम पारस्थितियां मनुष्य को आत्मिक दृष्टि से बढ़ने और अपने से ऊपर उठने का अवसर देती हैं। वास्तव में यह एक अवसर है, चुनौती है। इन अनुभवों को जीतकर मनुष्य आंतरिक विजय पा सकता है, या हार मानकर पेड़-पौधों की तरह अचेतन जीवन जी सकता है, जैसा कि ज्यादातर कैदी जीते ही थे।

× × ×

कैदी को आत्मिक बल देने का सबसे बढ़िया उपाय यह है कि उसके पास भविष्य के लिए कोई मकसद हो। अपना ही अनुभव याद आता है। मेरे पैरों में घाव थे। मुझे लंगड़ाते हुए मीलों चलकर काम करने के स्थान पर पहुंचना था। ठंडी हवा थप्पड़ मार रही थी। मैं अपने दु:ख-भरे जीवन की छोटी-छोटी समस्याओं से मन में जूझ रहा था। रात को खाने को क्या मिलेगा ? क्या अपनी आखिरी सिगरेट देकर शोरबा ले लूं ? क्या जूते में फीते की जगह बांधने के लिए तार कहीं से मिल पायेगा ? काम पर पहुंचने में देर तो नहीं हो जायेगी, जिससे किसी क्रूर फोरमन की टोली में काम करना पड़ जाये ?

ये विचार सोचते-सोचते मन जुगुप्सा से भर उठा। तब मैंने जबर्दस्ती मन को दूसरे विषय की ओर मोड़ा। अचानक कल्पना की आंखों से मैंने देखा कि मैं एक प्रकाश-भरे सभा-भवन में मंच पर खड़ा हूं। मेरे सामने विद्वान श्रोता बैठे हैं। मैं कन्सेंट्रेशन कैंप के कैदियों की मनोदशा पर भाषण दे रहा हूं। विज्ञानवेत्ता की तटस्थ दृष्टि से देखने पर सारा उत्पीड़न मेरे लिए अध्ययन की वस्तु बन गयी। इस विधि के अभ्यास द्वारा मैंने

अपनी परिस्थिति से, उस क्षण की वेदना से ऊपर उठना सीखा। भावना वेदना है; पर जब हम उसका स्पष्ट चित्र मन में देख लेते हैं, वह वेदना नहीं रह जाती।

× × ×

जब कैदी भविष्य में आस्था खो बैठे, उसका सर्वनाश निश्चित है। इसका अनुभव मुझे एक बार बड़े नाटकीय ढंग से हुआ। हमारा सीनियर वार्डन फ......प्रसिद्ध संगीत स्रष्टा था। उसे फरवरी १९४५ में एक रात सपना आया कि ३० मार्च १९४५ तक सब कैदी मुक्त कर दिये जायेंगे और सबके दुःख का अंत हो जायेगा। ३० मार्च निकट आ पहुंचा; पर युद्ध की खबरों से मुक्ति का कोई आश्वासन नहीं मिल रहा था। २९ मार्च को फ......को अचानक तेज बुखार चढ़ आया; ३० मार्च को वह बेहोश हो गया; ३१ मार्च को उसकी मृत्यु हो गयी। यों उसकी मृत्यु का बाहरी कारण टाइफस था।

कैंप में दिसंबर १९४४ के अंतिम सप्ताह यानी बड़े दिन और नववर्ष दिन के बीच मृत्युसंख्या अकस्मात् बहुत बढ़ गयी। कारण यही था कि ज्यादातर कैदी आस लगाये हुए थे कि युद्ध खत्म हो जायेगा और उस वर्ष वे बड़े दिन अपने घर पर मना सकेंगे। लेकिन जब बड़े दिन आ पहुंचे और कोई उत्साहवर्धक समाचार नहीं मिला, तो वे हिम्मत हार बैठे। इसका उनकी रोग-प्रतिरोध क्षमता पर दुष्प्रभाव हुआ और बहुत लोग मर गये।

तो कैंप में आदमी की आंतरिक शक्ति को पुनरुज्जीवन करने का पहला कदम है उसके सामने कोई भावी ध्येय प्रस्तुत करना। नीत्शे का यह वाक्य बड़े महत्त्व का है— "जिसके पास जीने के लिए कोई 'क्यों' है, वह किसी भी 'कैसे' को झेल लेगा।"

और इसके लिए हमें यह हृदयंगम करना होगा कि यह महत्त्व की चीज नहीं है कि जीवन से हम क्या चाहते हैं; महत्त्व की चीज यह है कि जीवन हमसे क्या चाहता है। जीवन प्रतिदिन प्रतिघंटे हमसे सवाल कर रहा है। उसका उत्तर हमें शब्दों या चिंतन द्वारा नहीं, सही कर्म और सही आचरण द्वारा देना है।

सबके पृथक्-पृथक् जीवन-कार्य हैं, इसलिए जीवन का अर्थ भी सबके लिए भिन्न-भिन्न है, उसकी कोई एक सामान्य परिभाषा नहीं हो सकती है। और जीवन के 'अर्थ' में मृत्यु और वेदना भी सम्मिलित हैं। हर मनुष्य का भवितव्य अलग है, अनन्य है। इसलिए उसका दुःख और वेदना भी अनन्य हैं। जब मनुष्य देखे कि दुःख झेलना उसके भाग्य में है, तो उसे अपने कर्तव्य के रूप में ग्रहण करना चाहिये। जब दुःख का स्वरूप हमारी समझ में आ जाता है, तब हम उससे मुख नहीं मोड़ते। तब हमें पता चलता है कि दुःख हमें आंतरिक कर्तृत्व के कितने अवसर दे रहा है! इन्हीं अवसरों ने ही तो कवि रिल्के से कहलवाया था—"कितना सारा दुःख मुझे अभी निपटाना है।"

× × ×

घोषणा की गयी थी कि चोरी इत्यादि को तोड़-फोड़ का काम समझा जायेगा और

उसके लिए फांसी की सजा दी जायेगी। फिर भी एक दिन दो मूर्ख कैदी गोदाम में घुसकर कुछ आलू चुरा लाये। कैंप के अधिकारियों ने आदेश दिया कि इन कैदियों को उनके सुपुर्द किया जाये, नहीं तो सारे कैंप को एक दिन भूखा रहना पड़ेगा। २,५०० आदमियों ने भूखा रहना बेहतर समझा।

उस शाम हम सब उदास बैठे थे अपनी झोंपड़ी में। अचानक बिजली चली गयी। हमारा वार्डन विवेकी व्यक्ति था। उसने मुझसे कहा—पिछले दिनों बीमारी व आत्म-हत्या से बहुत लोग मरे हैं; शायद आशा छोड़ बैठना ही उसका कारण है। उसने मुझे सलाह दी कि मैं कैदियों से कुछ शब्द कहूं।

मैंने कहना शुरू किया कि युद्ध को शुरू हुए छः साल हो गये और सौभाग्यवश अभी हम जिंदा हैं। जो भी जीवित है, उसके लिए आशा का कारण है। स्वास्थ्य, परिवार, सुख, सम्मान—सब वापस मिल सकता है और आपने जो कुछ झेला है, वह भविष्य के लिए आपकी पूंजी है। नीत्शे ने कहा है—जो चीज मुझे नष्ट नहीं करती, मुझे बल देती है। निराश होने का कोई कारण नहीं। कौन कह सकता है, अगली घड़ी क्या होगा !

मैंने अतीत के आनंदों का उल्लेख किया और एक सुकवि की यह उक्ति उन्हें याद दिलायी—जो आनंद आप भोग चुके हैं, उसे कोई शक्ति आपसे छीन नहीं सकती। मानव-जीवन कभी अर्थहीन नहीं होता और दुःख, यंत्रणा, मृत्यु ये भी जीवनके 'अर्थ' में सम्मिलित हैं। हमारा संघर्ष चाहे कितना निराशा पूर्ण हो, पर अर्थहीन, गरिमाहीन नहीं है। याद रखिये, कोई ऊपर से हमें देख रहा है—मित्र, पत्नी या परमात्मा—और वह यही चाहता है कि हम दुःख को शान से झेलें, मरना जानते हुए झेलें—दीनतापूर्वक नहीं।

मैंने अपने उस कैदी मित्र की कथा सुनायी, जिसने कैंप में आते ही भगवान के सामने संकल्प किया था कि मेरा दुःख, मेरी मृत्यु मेरे प्रियजन को दुःखद मृत्यु से बचायेगी। इस आदमी के लिए दुःख और मृत्यु अर्थवान बन गयी; उसका बलिदान गहरे महत्त्व की चीज बन गयी।

जब बिजली जल उठी, तो लोग लंगड़ाते हुए आये, मुझे धन्यवाद देने के लिए। उनकी आंखों में आंसू थे।

[३]

अब तीसरी अवस्था को लें, अर्थात् कैदी के मुक्त होने के बाद की उसकी मनोदशा को लें। मगर उससे पहले एक प्रश्न का उत्तर दे दूं, जो बार-बार पूछा जाता है। कोई मनुष्य वैसा पाशविक व्यवहार कैसे कर सकता है, जैसा कैंप के पहरेदार कैदियों के साथ करते थे? इसका उत्तर देते समय हमें कई बातें ध्यान में रखनी होंगी :

१. पहरेदारों में कई विकृत मानस के व्यक्ति थे, दूसरों को सताकर सुख पाने वाले।

२. जब सख्त पहरेदारों की आवश्यकता होती थी, ऐसे आदमी विशेषतः चुने जाते थे।

३. अपने चारों ओर निरंतर क्रूरता को देखने से बहुत-से पहरेदार संवेदनशीलता खो बैठते थे।
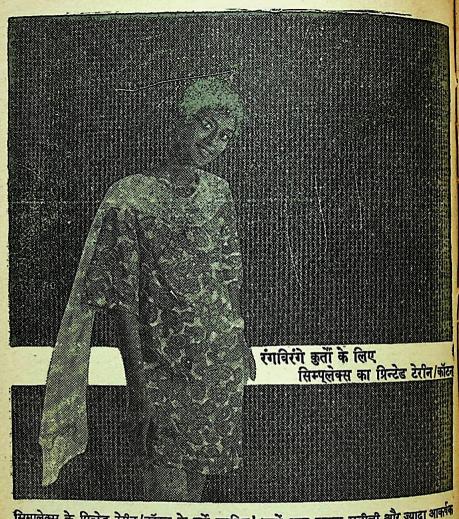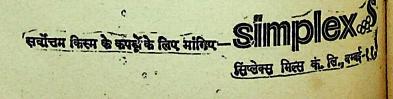
४. कई भले पहरेदार भी थे। याद आता है, एक वार एक फोरमन ने छिपाकर मुझे डवल रोटी दी थी, जो अवश्य ही उसने अपने नाश्ते में से दी होगी। मेरी आंखों में आंसू उमड़ आये थे।

इससे सिद्ध होता है कि मनुष्यों में केवल दो वर्ग हैं—भद्र मनुष्य और अभद्र मनुष्य। और सभी समुदायों में दोनों तरह के मनुष्य रहते हैं। कोई जाति 'शुद्ध नस्ल' की नहीं है।

मुक्ति के वाद की कैदी की मन:स्थिति को समझने के लिए मैं उस प्रात:काल का वर्णन करूंगा, जब कैंप पर सफेद झंडा लगा दिया गया और फाटक खोल दिये गये। कई दिन के तनाव के वाद एकाएक हम तनाव-मुक्त हो गये थे। मगर हम खुशी से पागल नहीं हो गये। पैर-घसीटते हुए हम फाटक पर पहुंचे, सहमते-डरते वाहर झांक-ताक की, वाहर निकलकर कुछ कदम चले। पहरेदारों ने हमें चिल्लाकर डांटा नहीं, न लात मारी, वल्कि उन्होंने दोस्ताना ढंग से हमें सिगरेट 'आफर' की। उन्हें हम मुश्किल से ही पहचान पाये; क्योंकि वे गैरफौजी पोशाक में थे।

हम धीमे-धीमे सड़क पर चल पड़े। पांव दुखने लगे, मगर हम चलते रहे। हम वार-वार अपने मन में कह रहे थे —"हम आजाद हैं।" मगर इन शब्दों का अर्थ समझ नहीं पा रहे थे।

हम जंगली फूलों से भरे एक मैदान में पहुंचे। मगर फूलों को देखकर भी मन खिला नहीं। एक रंग-विरंगा पंछी सामने से उड़ता हुआ निकल गया। आनंद की एक लहर मन में उठी, मगर केवल एक क्षण के लिए।

शाम को कैंप में जव सव जुटे, एक दूसरे से पूछा—"क्या आज तुम वहुत खुश थे?" सभी का उत्तर था—"सच-सच कहूं?..... नहीं तो।" वात यह है कि कैंप में रहते हुए कैदी को सभी कुछ अवास्तविक लगने लगता है। और यों भी तो वह कितनी ही वार सपनों में अपने को आजाद देख चुका था। कहीं यह भी सपना तो नहीं?

मगर शरीर आजादी का उपयोग कर रहा था खुलकर। दिन-भर हम घूमते और वतियाते थे। कुछ की तो जीभ थमती ही नहीं थी।

एक दिन मैं दूर घूमने निकल गया। चंडूल उड़ रहे थे और मजे से गा रहे थे। मीलों तक कोई मनुष्य नहीं था — केवल पक्षियों का आनंदोत्सव था और उन्मुक्त आकाश था। मैं घुटनों के बल बैठ गया और प्रभु की प्रार्थना करने लगा। उस दिन मेरा नव-जीवन शुरू हुआ, जिसने धीरे-धीरे मुझे पुन: मनुष्य बना दिया।

कैंप से छूटे आदमियों को आत्मिक उपचार की आवश्यकता होती है। इतने दीर्घ काल के उग्र मानसिक दवाव से एकाएक मुक्ति मिलना कई प्रकार से हानिकर भी हो सकता है। इसमें खतरा रहता है कि इतने अत्याचार सहने के कारण वह स्वयं अत्याचारी न वन जाये।

एक दिन एक साथी और मैं खेतों में

विचर रहे थे। मैं पौधों पर पैर न पड़ जाये, इसकी सावधानी वरत रहा था। नाराज होकर मेरा साथी मुझे अपने साथ घसीट-कर पौधों को कुचलता हुआ चलने लगा। मैंने मेंड़ पर से चलने को कहा, तो वह रोष से बोला—"क्या मेरा सब कुछ तवाह नहीं हो चुका है? मेरी वीवी, मेरे बच्चे गैस-चेंबर में मार डाले गये। और तुम मुझे जौ के चंद पौधे रौंदने से मना करते हो?"

धीरे-धीरे ही इन्हें समझाया जा सकता है कि अन्याय करने का अधिकार किसी को भी नहीं है, चाहे खुद उसके साथ कितना भी अन्याय किया जा चुका हो।

आकस्मिक मुक्ति में दो खतरे और हैं—कटुता और मोहभंग। अपने गांव या शहर लौटने पर जो सुलूक उसके साथ होता है, उससे वह सोचने लगता है कि क्या इसी के लिए मैंने इतना सव सहा था! और मोह-भंग तव होता है, जव वह देखता है कि जिससे मिलने की आस लेकर उसने वर्षों यंत्रणाएं झेली थीं, वह तो इस दुनिया से जा चुका है; और यह भी कि उसका यह खयाल गलत था कि कैंप से छूटने के साथ सव यंत्रणाएं समाप्त हो जायेंगी—यंत्रणाओं का तो कोई अंत नहीं।

फिर भी मुक्त हुए हर कैदी के जीवन में वह भी दिन आता है, जव वह आश्चर्य से सोचने लगता है—इतना सव कष्ट और दुःख मैंने झेल कैसे लिया? तब सारा कष्ट और दुःख उसके लिए एक बुरा सपना-भर रह जाता है।

मगर कन्सेंट्रेशन कैंप से लौटने वाले कैदी की सबसे महत्त्वपूर्ण अनुभूति तो यह है कि इतना सव झेल लेने के वाद अव मुझे किसी से डरने की जरूरत नहीं है—सिवा परमात्मा के।

★

मन में संशय और भय को जन्म देने वाली समस्त वस्तुएं, समस्त दुःख, समस्त चिंता, इस सीमावद्ध जीवन की समस्त सीमित अभिरुचियां हम काल के तट पर ही छोड़ जाते हैं। और जैसे अति उन्नत गिरि-शिखर से हम नीचे की दृश्यावली और धरती की सीमितता पर शांति से दृष्टि डाला करते हैं, उसी प्रकार भौतिक जगत् की ठोस सचाइयों से ऊपर उठकर आध्यात्मिक दृष्टि से देखने वाले मनुष्य को यह सब कुछ अस्तित्व का आभास मात्र प्रतीत होता है, जो कि अध्यात्म-सूर्य की रश्मियों से धुले उन उज्ज्वल लोकों से झांककर देखने पर, उसकी वर्णच्छटाओं और विविध रंगों और झाइयों को प्रतिक्षिप्त भर करता हुआ दिखाई देता है। आत्मा के इन प्रदेशों में विस्मरण की सरिताएं वहा करती हैं, जिनके जल को चित्त छककर पीता है और जिनमें वह समस्त दुःख को विसर्जित कर देता है। तव ऐहिक जीवन की समस्त काली वस्तुएं स्वप्नवत् हो जाती हैं और ऐसे वदल जाती हैं कि वे चिरंतन के ज्योतिर्मय रूपचित्र का चौखटा वन जाती हैं।

—हीगल

★

किराये की मेजबान

विनंती सरकार

"मोटरकार की तरह मेजवान किराये पर लीजिये"—यह घोषणा लंदन, यूरोप के कई शहरों में सुनी जा सकती है। ऐसी बात की हिन्दुस्तान में शायद कल्पना भी नहीं की जा सकती; लेकिन अब लंदन, पेरिस, लिस्वन आदि शहरों में जाने पर आदमी किराये पर मेजवान लेकर अपना अकेलापन मिटा सकता है।

'होस्टेसेस इंटरनेशनल' की स्थानीय शाखा को फोन करने पर यात्री को मेजवान के रूप में एक वड़ी ही सुंदर, सुशिक्षित और सुसंस्कृत युवती मिल जायेगी, जो उसके साथ ऐसी शिष्टता और मधुरता से पेश आयेगी और उसकी ऐसी अपनत्वपूर्ण आवभगत करेगी कि उसे वह शहर पराया नहीं लगेगा।

यह मेजवान उसे शहर की दर्शनीय चीजें दिखायेगी, उनके बारे में मनोरंजक बातें वतायेगी, खरीदारी में उसकी मदद करेगी, शहर के इतिहास और भूगोल की सव जानने योग्य व दिलचस्प बातें बतायेगी। 'होस्टेसेस इंटरनेशनल' ने सभी प्रमुख यूरोपीय शहरों में ऐसी युवतियों की सूची रखी है।

'किराये की मेजवान' की व्यवस्था जिस महिला के दिमाग की उपज है, उसका विकट-सा नाम है—कोन्तेस मार्ते द ला रोशफूको। एक वार वह न्यूयार्क गयी हुई थी। वहां कुछ लोगों के मुंह से उसे यह शिकायत सुनने को मिली कि फ्रांस में विदेशी यात्री को काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। एक तो देश अपरिचित, दूसरे कोई मददगार नहीं मिलता; इस कारण फ्रांस के प्रति अपनत्व पैदा नहीं होता।

फ्रांस लौटने पर मार्ते ने अपनी रिश्ते की वहन क्लाड और दूसरी कई परिचित स्त्रियों से इस वारे में वात की और पेरिस में छोटे से पैमाने पर 'होस्टेसेस इंटरनेशनल' की वुनियाद डाली।

मार्ते की वहन क्लाड किसी समय मोटरकारों की एक प्रदर्शनी में 'होस्टेस' का काम कर चुकी थी। विदेशी मेहमानों की सेवा करने के लिए एक संस्था बनाने की योजना भी उसने बनायी थी। इसलिए मार्ते के साथ वह बड़े चाव से काम करने लगी।

कुछ समय के बाद दो बहनों की यह संस्था बड़ी फायदेमंद सावित हुई, और किराये के मेजबानों की मांग इतनी बढ़ गयी कि उन्हें अपने दफ्तर का विस्तार करना पड़ा। धीरे-धीरे अन्य शहरों में भी उसकी शाखाएं खोली गयीं।

'होस्टेसेस इंटरनेशनल' की मेजबान

युवतियां विदेशी यात्रियों की कई प्रकार से सहायता करती हैं। वे उनकी कारें चलाती हैं, दुभाषिये का काम करती हैं, सम्मेलनों में उनके लिए नोट्स लेती हैं, और गाइड बनकर उन्हें शहर घुमाती हैं।

इस समय अकेले पेरिस केंद्र में ही लगभग पंद्रह सौ मेजबान युवतियां हैं।

इस संस्था की सफलता का रहस्य क्लाड के ही शब्दों में सुनिये :

"कारण बहुत-से हैं। अव्वल, प्रायः हर यात्री को ऐसी सहायता की जरूरत अनुभव होती है।

"दूसरे, हमारा सब काम बहुत उच्च स्तर का और बढ़िया होता है। लड़कियों का चुनाव हम बहुत छानबीन और सावधानी से करते हैं। हमारी सभी लड़कियां उच्च कुल की होती हैं। उच्च शिक्षा, परिवारिक पृष्ठभूमि और उच्च चरित्र की बदौलत वे हर परिस्थिति को दक्षता से संभाल सकती हैं। उनके पास अपनी निजी कारें होती हैं, उन्हें तीन-चार भाषाओं का ज्ञान होता है, और वे शहर की विभिन्न दुकानों, होटलों और व्यापारिक संस्थाओं से भली भांति परिचित होती हैं।

"सुंदरता, बुद्धिमत्ता और शिष्टता तो हमारी प्रत्येक लड़की में होती ही है; पर उसमें अन्य क्षमताएं भी होनी चाहिये। आवश्यक है कि वह सुदक्ष और सुशिक्षित सेक्रेटरी का काम भी संभाल सके, ताकि अगर हमारा मेहमान व्यापारी है, तो उसके काम-काज में भी वह सहायक सिद्ध हो। हमारे यहां की प्रत्येक लड़की विश्व की बत्तीस प्रमुख भाषाओं में से कम-से-कम तीन-चार में माहिर होती है।

प्रत्येक मेजबान को ज्यां पेताउ से विशेष रूप से तैयार करवाया गया लिवास दिया जाता है। इस लिवास की खूबी यह है कि थोड़े-से परिवर्तन से यह अलग-अलग ढंग के अवसरों पर पहने जाने वाले विभिन्न वेशों का रूप ले सकता है। इसे पहनकर सुबह किसी दफ्तर में निःसंकोच जाया जा सकता है, और शाम को काकटेल पार्टी में भी यह खूब मौजूं दिखाई देता है।

मेजबान युवती के साथ पुरुष यात्री दिनभर जहां चाहे जा सकता है। लेकिन अगर वह औचित्य की मर्यादा लांघने की कोशिश करे, तो निराशा ही उसके हाथ लगेगी। किसी भी लड़की को रात ढले मेहमानों से मिलने की इजाजत नहीं है। इस नियम का उल्लंघन करने वाली लड़की को नौकरी से जवाब दे दिया जाता है। हां, मेहमानों को किसी नाइट-क्लब या आमोद-प्रमोद स्थल का रास्ता बताने पर कोई रोक नहीं है।

इन सब नियमों और मर्यादाओं के कारण समाज में इन मेजबान युवतियों की अच्छी प्रतिष्ठा है। इसीलिए ऊंचे घराने भी अपनी बेटियों को मेजबान बनाने में संकोच अनुभव नहीं करते। लड़कियां एयर होस्टेस होने की भांति मेजबान बनना भी गर्व का विषय समझती हैं।

लड़कियों का चुनाव करते समय इसका भी ध्यान रखा जाता है कि मेहमान किस

प्रकार की लड़कियां पसंद करते हैं। किसी को नीली आंखों वाली लड़की पसंद होती है, किसी को लाल-सुनहरे बालों वाली लड़की, और कोई छरहरी लड़की का प्रशंसक होता है।

'होस्टेसेस इंटरनेशनल' में एक सौंदर्य-प्रसाधन-विशेषज्ञ भी नियुक्त है। प्रत्येक लड़की के रूप-रंग और उसके व्यक्तित्व की विशेषताओं को ध्यान में रखकर वह उसे और अधिक आकर्षक बनाने के उपाय बताता है। वह उसके स्वास्थ्य का खयाल रखता है और उसे 'आधुनिका' बनने के गुर बताता है।

'होस्टेसेस इंटरनेशनल' का 'एयर फ्रांस' के साथ व्यापारिक संबंध है। इस तरह एयर-फ्रांस के हवाई जहाज में सवार होकर पेरिस आने वाले मेहमान के लिए होटल में रिहाइश के प्रबंध के साथ आवभगत के लिए मेजबान युवती का भी प्रबंध आसानी से हो जाता है।

जहाज से उतरते ही यात्री को एक सुंदर सुसज्जित युवती अगवानी के लिए प्रस्तुत मिलती है। युवती बड़े सलीके से उसकी ओर हाथ बढ़ाकर उसका स्वागत करती है, उसे अपनी कार में बैठाकर उसके होटल पहुंचाती है। वह उसकी आवश्यकताओं के अनुसार दिन-भर का कार्यक्रम बनाती है और उसे किसी भी प्रकार की कठिनाई नहीं होने देती। यात्री इस तरुणी के साथ घूमते हुए और जिस काम से आया है, उसे निबटाते हुए अपने को पराये स्थान पर या एकाकी अनुभव नहीं करता। बल्कि वह अपने को एक सुंदर, सुशिक्षित और ममत्वमयी युवती का मेहमान अनुभव करता है।

★

चौराहे पर दो कारों की टक्कर हो गयी। दोनों की चालक महिलाएं थीं। दोनों जोर-जोर से चिल्लाकर एक दूसरे को दुर्घटना का जिम्मेदार बताने लगीं।

अनुभवी पुलिस वाले ने इतना ही कहा—"कृपया, बारी-बारी से आप दोनों दुर्घटना के बारे में बतायें; लेकिन पहले वे साहिबा बोलें, जो उम्र में बड़ी हों।"

अब वे दोनों महिलाएं चुप थीं।

—प्रेमप्रकाश वर्मा

* * *

जापान के एक प्रांत में चाइशेन नाम का एक प्रामाणिक अफसर रहता था, जिसकी ईमानदारी पूरे देश में मशहूर थी।

एक अंधेरी रात को कोई व्यापारी घूंस देने के इरादे से उसके घर आया और अशर्फियों की थैली आगे रखते हुए बोला—"यह मैं आपके लिए लाया हूं। इस बात को कोई नहीं जानता। इसे ले लीजिये।"

चाइशेन हंस पड़ा और बोला—"भाई तुम यह कैसे कहते हो? क्या तुम नहीं जानते, मैं नहीं जानता और ईश्वर नहीं जानता?"

—यूसुफ जे० गुजरीवाला

★

मुग्ध हूं मैं दाक्षिणात्य नारी पर

वि० स० सुखठणकर

"अच्छा, अब मैं चलूं।" मेरे एक मित्र ने मद्रास की एक लाइब्रेरी में कहा। इतनी जल्दी जाने की उनकी आदत नहीं थी। इसलिए मैंने पूछा—"आज इतनी जल्दी क्यों?" "आज बृहस्पतिवार है और मुझे घर में पारिवारिक भजन में सम्मिलित होना है।" मुझे चकित देख उन्होंने कहा—"क्यों, आपको विश्वास नहीं होता? अच्छा, तो आइये मेरे साथ।"

मेरे ये मित्र दक्षिण भारतीय हैं—उच्च-शिक्षित और आधुनिक विचारों वाले एक प्रसिद्ध पत्रकार। इसीलिए तो मुझे आश्चर्य हुआ। मैं उनके साथ उनके घर गया। सोलह-सत्रह वर्ष की एक लड़की मधुर स्वर में भजन गा रही थी और युवकों का एक दल दुहरा रहा था। मेरे मित्र महोदय भी उसमें सम्मिलित हो गये। भजन के वाद उन्होंने कहा—"यह लड़की मेरी वहन है और इस भजन में भाग लेने वाले बाकी लोग हैं मेरे परिवार के सदस्य और पड़ोसी।"

"क्या कर रही हैं आपकी वहन?" मैंने उनसे पूछा।

"कालेज में पढ़ती है।"

"क्या यहां कालेज की लड़कियां भजन-कीर्तन को दकियानूसी चीज नहीं मानतीं?"

"नहीं। वल्कि आधुनिक शिक्षा के कारण यहां तो उसे एक स्वस्थ परंपरा समझा जाता है। हां, हम एक बंधन जरूर रखते हैं। घर की महिलाओं के शील-संकोच का ध्यान रखते हुए हम वाहर वालों को पारिवारिक भजन में नहीं बुलाते। मगर आप तो अपवाद हैं।" मेरे मित्र ने समझाया।

***

मद्रास आकर पहले मैं कुछ दिन एक होटल में ठहरा। यह होटल एक संकरी गली के छोर पर था। गली के दोनों ओर के फुट-पाथों पर अभागे बेघरवार लोग अपने बर्तन-भांडों समेत रहते थे। मैं उन्हें रोज देखता था। उनमें कुछ काफी बूढ़ी औरतें थीं। मैं उदास मन से सोचा करता था—"कैसा दयनीय जीवन है इनका! सिर पर

छत तक नहीं है।"

एक दिन शाम को मैं देर से लौटा। गली में आगे बढ़ा, तो देखा कि औरतों का एक झुंड बिजली के एक खंभे के नीचे एक युवती के इर्द-गिर्द जमा है। वह युवती ऊंची आवाज में तमिल का एक अखबार पढ़ रही थी और बाकी औरतें, जिनमें कई बहुत बूढ़ी थीं, ध्यानपूर्वक सुन रही थीं—उनके चेहरों से प्रसन्नता छलक रही थी। बड़ा मर्मस्पर्शी दृश्य था। मैं सोचने लगा—निराश्रय फुटपाथ-वासियों के इस तरह अखबार का आनंद उठाने का दृश्य क्या भारत के किसी और भाग में भी देखने को मिल सकता है?

***

कुछ दिनों से मेरा यह क्रम था कि रोज सवेरे १० बजे मैं घर से निकलता और बस द्वारा नजदीक के एक पुस्तकालय में जाता था। उसी समय कालेज जाने वाली बहुत-सी लड़कियां भी वहीं से उस बस में चढ़ती थीं। कभी-कभी तो आधी से अधिक बस उनसे भर जाती थी। रोज हो, 'क्यू' में आकर खड़े होने से लेकर बस में बैठने और कालेज के सामने उतरने तक का उनका शिष्ट और और शालीन व्यवहार देखकर मैं प्रभावित हुआ करता था। नजरें नीची किये वे बिना खिलखिलाहट या हंसी-ठट्ठे और बड़बड़ बातों के बस में बैठी रहतीं।

सिर्फ शिक्षित वर्ग की ही नहीं, बल्कि गरीब और अशिक्षित वर्ग की भी दक्षिण भारतीय महिलाओं का व्यवहार सार्वजनिक स्थानों पर इतना आदर्श रूप होता है कि मेरे जैसे अदाक्षिणात्यों का मन बार-बार प्रशंसा से भर उठता है। अपने दो वर्ष के मद्रास निवास में मैंने कभी किसी दक्षिण-भारतीय महिला को, चाहे वह अमीर हो या गरीब, क्यू में पुरुषों को धकेलकर आगे बढ़ते, सार्वजनिक स्थानों में जोर से कर्कश आवाज में बोलते, खाने की चीजों पर मुंह चलाते नहीं देखा, जो बंबई जैसी जगहों में सामान्य बातें हैं।

***

मगर मैंने यह भी देखा है कि दक्षिण भारतीय महिलाओं का शील-संकोच झूठी लज्जालुता नहीं होती। वे दयालु और सहा-यता के लिए सदा तत्पर होती हैं।

एक बार मैं एक मित्र से मिलने जा रहा

था। उनके घर मैं पहले कभी नहीं गया था। वे एडवर्ड इलियट रोड के पास कहीं रहते थे। ट्राम जब रायपेटा पहुंची, तो मैंने बगल में बैठे एक सज्जन से पूछा कि मुझे कहां उतरना चाहिये? उत्तर मिला – "दूसरे स्टाप पर।" तभी एक युवती, जिसे हमारी बातें सुनाई दे गयी थीं, पीछे मुड़कर मुझसे बोली–" दूसरे स्टाप पर उतरने से आपको अपनी मंजिल तक पहुंचने के लिए कोई दस मिनिट चलना पड़ेगा। लेकिन तीसरे स्टाप पर उतरेंगे, तो आपको दो-तीन मिनिट ही चलना पड़ेगा।"

चंद नपे-तुले शब्दों में उस युवती ने सही मार्ग-निर्देश देकर बिन मांगे ही मेरी मदद की थी। बगल में बैठे सज्जन ने भी झेंपते हुए कबूल किया कि उस युवती की बात ठीक थी।

***

"यहां से खादी खरीदने के लिए तो आपको सूत देना पड़ेगा।" मद्रास खादी भंडार के मैनेजर ने मुझसे कहा। बात सन १९५२ की है। उन दिनों खादी की कमी के कारण अखिल भारत खादी बोर्ड ने यह नियम चालू किया था। मैंने मैनेजर से पूछा कि क्या ऐसी भी कोई दुकान है, जहां बिना सूत दिये खादी मिलती हो? उसने इन्कार में सिर हिला दिया।

"बड़ी मुसीबत है!" मैं निराशा से बड़बड़ाया और बाहर जाने लगा। तभी दो महिलाएं, जो खरीदारी में व्यस्त थीं, मेरी ओर मुड़ीं और सहानुभूतिपूर्ण स्वर में बोलीं– "हां, शहर में एक दुकान ऐसी है, जहां से आप बिना सूत दिये खादी खरीद सकते हैं।"

उन्होंने मुझे उस दुकान का पता तो बताया ही, साथ ही यह देखकर कि मैं इस शहर के लिए नया हूं, उन्होंने मेरे बिना पूछे ही यह भी बताया कि उस स्थान की ओर कौन-सी बस जाती है, कहां उतरना होगा, और उतरकर किस तरफ जाना होगा। उन्होंने मेरी बहुत-सी मुश्किलें हल कर दीं।

***

एक बार मैं जलवायु-परिवर्तन के लिए मद्रास के पास एक गांव में जाकर ठहरा। मैंने एक मकान किराये पर लिया, जिसके साथ फलों का खासा बड़ा बगीचा था। बगीचे में छांह देने वाले कई घने वृक्ष थे। मेरे पड़ोसी के नौकर दोपहर को वहीं अपना अड्डा जमाते थे। जब उनका गुल-गपाड़ा रोज का सिरदर्द बन गया, तो मैंने नौकरों के मालिक से शिकायत करने की सोची।

जैसे ही मैं पड़ोसी के बंगले के अहाते में प्रविष्ट हुआ, माली ने आकर पूछा –"क्या आप 'अम्मा' से मिलने आये हैं?" "नहीं, मैं तुम्हारे मालिक से मिलना चाहता हूं," मैंने उत्तर दिया। और जब पता चला कि मकान में कोई पुरुष नहीं है, तो मैंने लौटने की सोची।

दूसरे ही क्षण बंगले का दरवाजा खुला और मध्य वय की एक महिला बाहर आयीं। शायद उन्होंने हमारी बातें सुन ली थीं। मुस्कराते हुए उन्होंने मेरा स्वागत किया और बड़ी शिष्टता से बोलीं –" लगता है,

आप मेरे नये पड़ोसी हैं, जो बगल वाले बंगले में रहते हैं। अंदर पधारिये।"

झेंपता-हिचकिचाता मैं दहलीज पर खड़ा रहा। सोच रहा था—मैं निपट अजनबी किसी भद्र महिला से कोई शिकायत कैसे कर सकता हूं! यह तो अभद्रता होगी। लेकिन उन महिला ने पुनः निमंत्रित किया, तो फिर बाहर खड़ा नहीं रह सका।

जब मैंने अपने आने का कारण बताया, तो उन्होंने बहुत दुःख प्रकट करते हुए आश्वासन दिया कि वे तुरंत इसकी रोक-थाम करेंगी। फिर उन्होंने बात का रुख पलटते हुए उत्सुकतापूर्वक पूछा—"आप क्या महाराष्ट्रीय हैं? तब तो जरूर ही आप हिन्दी पुस्तकें पढ़ लेते होंगे? मेरे पास हिन्दी की कुछ धार्मिक पुस्तकें हैं। आप अगर उन्हें देखना चाहें, तो देख सकते हैं। मुझे बड़ी खुशी होगी।" उन्होंने अलमारी में से हिन्दी की कुछ पुस्तकें निकालकर मेरे सामने रखीं और मुझे हाल में अकेला छोड़कर अंदर चली गयीं।

कुछ ही पलों में जब वे लौटीं, तो उनके हाथ में मिठाई से भरी तश्तरी थी और पीछे शरबत का गिलास लिये हुए उनका नौकर था। "सोचा, इस दुपहरी में आप काफी पीना शायद पसंद न करें। लेकिन आशा है, शरबत तो आप स्वीकार करेंगे।" यह कहते हुए उन्होंने मिठाई और शरबत पेश किया। इस तरह मेरा संकोच दूर करके वे कहती रहीं—"हम लोग मद्रास में रहते हैं। लेकिन कभी-कभी यहां जलवायु-परिवर्तन के लिए

आ जाते हैं। यह बंगला मेरे पिताजी ने इसी काम के लिए बनवाया था।"

अंत में जब विदा लेने के लिए उठा, तो उन्होंने मधुर शब्दों में कहा—"बड़ी खुशी की बात है कि कुछ हफ्ते आप हमारे पड़ोसी रहेंगे। लेकिन बंबई से काफी दूर आप यहां एकदम अजनबी हैं। सो आपको अगर किसी चीज की जरूरत पड़े, तो निस्संकोच हमसे कहें। पड़ोसी के नाते यह हमारा सौभाग्य और कर्तव्य होगा कि हम आपके किसी काम आ सकें।"

***

दक्षिण भारतीय महिलाओं की ये सुखद स्मृतियां १९५२ की हैं; मगर उनकी मीठी छाप मेरे मन में सदा ताजी रहेंगी।

★

मुझे मुस्कराना सिखाया सागर ने
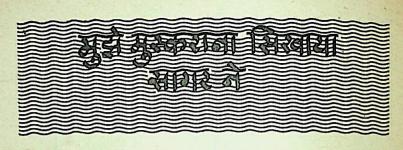
मेरी नाव 'डोफ' तूफानी समुद्र में कभी-कभी एक गेंद की तरह उछल जाती थी। हवा इतनी तेज थी कि मेरे होशो-हवास गुम होते जा रहे थे। आकाश पर काले बादल छाये हुए थे और चारों ओर इतना सघन अंधकार फैला हुआ था कि मेरा हृदय भय से कांप रहा था। मैंने जल्दी से अपना टेप-रिकार्डर निकाला और उसके माइक पर कहा –"शायद मेरा अंत निकट आ गया है। मैं सख्त तूफान में घिर चुका हूं। हिन्द महासागर की तूफानी लहरें मुझे निगलने के लिए व्याकुल हैं। पर मैंने अकेले यात्रा करके कोई भूल नहीं की है। आखिर, चिड़ियां भी तो अकेले ही यात्रा करती हैं......"

कुछ मिनिट बाद मैंने पुन: कहा–"मैं जाग रहा हूं, मुझे जागते हुए दो रातें बीत गयी हैं। मेरे नक्शे के अनुसार मारिशस द्वीप यहां से दो हजार तीन सौ मील दूर है। और मैं नहीं जानता कि यह तूफान कब समाप्त होगा। मैं अपनी प्यारी धरती को पुन: देख भी सकूंगा या नहीं ...... मैं अपनी मां से मिल सकूंगा या नहीं......"

यात्रा के दौरान मैं अपने अनुभवों को इसी प्रकार रिकार्ड कर लिया करता था, क्योंकि इस तरह मेरा दिल भी बहल जाता था और मुझे सांत्वना भी मिल जाती थी।

आज लोग पूछते हैं कि मैंने बिलकुल अकेले यह खतरनाक समुद्री यात्रा क्यों की थी? वास्तव में मैं दुनिया देखना चाहता था, और धन खर्च किये बिना देखना चाहता था। मेरे पास धन था ही कब, जो मैं खर्च कर सकता! इसलिए मैंने निश्चय किया कि पिताजी से कहकर एक नाव प्राप्त करूं और फिर सारे संसार की सैर कर लूं।

मेरे पिताजी अपनी जवानी में स्वयं असंख्य समुद्री यात्राएं कर चुके थे। इसलिए जब मैंने उन्हें अपनी इच्छा बतायी, तो वे मुस्करा दिये। उन्होंने मुझे प्रशिक्षण देने के लिए एक नाव में लगभग एक हजार मील की समुद्रीयात्रा करायी। उन्होंने मुझे बताया कि आकाश पर चमकने वाले सितारे किस तरह समुद्री जहाजों को दिशादान कर सकते हैं। उन्होंने मुझे नाव चलाना और उसके इंजन पर कंट्रोल करना भी सिखा दिया। मैं कुछ ही महीनों के बाद अकेला यात्रा करने के योग्य हो गया।

मई १९६५ में पिताजी ने मेरे लिए डोफ खरीद ली। यह एक सुंदर नाव थी, जिसमें

सोलह साल का किशोर राबिन ली ग्रैहम १८ जुलाई १९६५ को ४२ फुट लंबी नाव 'डोफ' पर सवार होकर सागरों की सैर करने निकल पड़ा, केवल दो बिल्लियों को साथ लेकर पूरे दो वरस तक उसका सागर-भ्रमण चलता रहा और 'डोफ' ने अनेक देशों और असंख्य द्वीपों को छुआ। पराक्रम का यह वृत्तांत ग्रैहम के ही शब्दों में पढ़िये।

वादवान भी थे और इंजन भी। उसमें कई छोटे-छोटे कमरे बने हुए थे और जीवन की सुविधा का लगभग हर सामान मौजूद था।

दो सप्ताह के अंदर पिताजी ने उस नाव को लंबी समुद्री यात्रा के योग्य वना दिया।

यात्रा की तैयारियां पूरी कर लेने के बाद मैंने कई हमउम्र मित्रों से अपनी यात्रा का जिक्र किया। कुछ मित्रों ने इच्छा प्रकट की कि वे भी मेरे साथ चलेंगे; पर जब चलने का समय आया, तो उनके माता-पिता ने रोक लिया, और वे मेरे साथ न जा सके। इसलिए सहयात्रियों के रूप में मैं अपने साथ दो सुंदर बिल्लियां ले गया।

फिलाडेल्फिया से होनोलुलु तक दो हजार मील की समुद्री-यात्रा तेईस दिन में मैंने पूरी की थी और इस आरंभिक यात्रा में ये दोनों बिल्लियां ही मेरी साथी रही थीं। होनोलुलु में मेरे माता-पिता मुझे देखने के लिए मौजूद थे। मुझे जीवित और स्वस्थ देखकर उनके हर्ष की सीमा न रही। एक सप्ताह तक मैंने उनके साथ आराम किया और दुवारा अपनी यात्रा पर चल दिया।

होनोलुलु से मैं १४ सितंबर १९६५ को दिन के ग्यारह बजे चला था।

मेरे पास एक ट्रांसमिटर था। एक ट्रांजिस्टर और एक पिस्तौल भी थी। यात्रा के दौरान मैंने पहली दोनों चीजों का तो उपयोग किया था, पर पिस्तौल का उपयोग करने की कभी नौवत ही नहीं आयी। होनोलुलु से चलने के वाद मैं सबसे पहले फीनिंग द्वीप पहुंचा, जिसका क्षेत्रफल केवल वारह वर्गमील है। मैंने चौदह दिन वाद धरती देखी, तो मेरे ओंठों पर मुस्कराहट फैल गयी। इस द्वीप की जनसंख्या केवल तीन सौ है और यहां केवल एक अंग्रेज रहता है। द्वीप पर नारियल की वागवानी होती है और यह ब्रिटिश साम्राज्य के स्वामित्व में है।

मैं फीनिंग द्वीप में दो दिन रुका। यहां मैंने स्थानीय लोगों को कुछ उपहार दिये। उनसे कुछ उपहार प्राप्त किये और वहां से चल दिया। स्थानीय लोग विस्मित थे कि मैं इतनी छोटी उम्र में इतनी खतरनाक यात्रा क्यों कर रहा हूं!

अब मुझे समोआ पहुंचना था। रास्ते में एक २५ फुट लंबी शार्क मछली मेरी नाव के साथ-साथ चलने लगी। मछली मेरी नाव से बड़ी थी और उसे देखकर मेरा खून सूखता जा रहा था। लगभग दस मील तक मेरी

नाव का पीछा करने के बाद वह समुद्र की गहराई में खो गयी।

फीनिंग द्वीप से चलने के बाद चौदह दिन तक मुझे राह में कोई जहाज दिखाई नहीं दिया और न कोई धरती ही। पंद्रहवें दिन मुझे दूर से बादल दिखाई दिये। जब मैं बादलों के नीचे पहुंचा, तो मुझे धरती दिखाई दी। मैंने व्याकुल होकर नक्शा फैलाया। कुछ ही क्षणों बाद मुझे पता चल गया कि मैं अमरीकी समोआ के टटीला टापू में पहुंचने वाला हूं।

किंतु अभी मैं धरती से लगभग बीस मील दूरी पर ही था कि एक जबर्दस्त तूफान से सामना हो गया। हवा इतनी तेज थी कि मेरी नाव का इंजन बिलकुल बेकार हो गया। बादबान टूट गये। नाव पत्ते की तरह उछलने लगी और फिर तेज हवा उसको एक चट्टान की ओर ढकेलने लगी। मैं डरा कि यदि मेरी नाव इस चट्टान से टकरा गयी, तो अंत निश्चित है। मैंने इंजन चलाने का अंतिम प्रयत्न किया। यह मेरा सौभाग्य था था कि इंजन चलने लगा और मैंने नाव की दिशा बदल दी।

एक घंटे के बाद मैं टटीला पहुंच गया।

टटीला के किनारे पर लगभग सौ आदमी मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। उनको वायरलेस से मेरे आगमन का समाचार मिल गया था। यहां पहुंचकर मुझे यह पता चला कि अब अमरीकी अखबार भी मेरी यात्रा में दिलचस्पी ले रहे हैं। इस टापू में मैं पंद्रह दिन ठहरा। प्रतिदिन किसी-न-किसी का मेहमान रहा। मैंने खूब आराम किया और खूब मनोविनोद भी।

इसी टापू में मेरी नाव के टूटे हुए भागों की भी मरम्मत कर दी गयी और उसे पुनः लंबी समुद्री-यात्रा के योग्य बना दिया गया। मुझे टापू के एक प्रसिद्ध होटल में ठहराया गया था। यहां हर रोज रात को नाच-रंग की महफिलें जमती थीं और स्थानीय स्त्रियां घास-फूस का लिबास पहनकर अपना परंपरागत नृत्य दिखाती थीं। टापू में आवास के दिनों में मुझे अपने माता-पिता की ओर से क्रिस्मस के उपहार का एक पार्सल भी मिला। पार्सल मिलते ही मुझे याद आया कि क्रिस्मस बिलकुल निकट है। मैंने निश्चय किया कि मैं निकटवर्ती टापुओं में घूमकर क्रिस्मस का त्यौहार मनाऊंगा। मैं २३ दिसंबर को टला नाम के एक छोटे-से टापू में घूम रहा था कि सहसा तूफान आ गया। तूफान इतना तेज था कि टापू के लगभग दो सौ मकानों की छतें उड़ गयीं। नारियल के लगभग सभी पेड़ गिर गये। किनारे पर जितनी नावें खड़ी थीं, सब या तो चकनाचूर हो गयीं, या समुद्र की तेज लहरों के साथ बह गयीं।

एक मई १९६६ को मैं पागो-पागो से चला। चलते समय मुझे बड़ा खेद हो रहा था; क्योंकि मेरी सहयात्री बिल्लियों में से एक ने पागो-पागो में विवाह कर लिया था और अब केवल एक ही बिल्ली मेरे साथ रह गयी थी। ४ मई को बावा टापू दिखाई दिया और शाम तक मैंने टापू में प्रवेश

किया। टापू में केवल २२ आदमी रहते हैं। बड़ा अजीब जीवन है इन लोगों का।

मैं एक सप्ताह तक वावा के निकटवर्ती टापुओं में घूमता रहा। आवादी हर जगह बहुत कम थी। जीवन बिलकुल सादा था। लोगों को न दुःख था और न खुशी। एक टापू में मुझे एक अमरीकी भी मिला, जो वहां नारियल के एक बड़े वाग का मालिक है। उसने मेरा बड़ा सत्कार किया और मुझे एक मशीनगन दी। मशीनगन देते हुए उसने मुझसे कहा –"मैंने ऐसी कई मशीनगनें दूसरे महायुद्ध में जापानियों से छीनी थीं। मैं तुम्हें यह उपहार इसलिए दे रहा हूं कि रास्ते में तुम्हें खूंख्वार शार्क मछलियों से मुकावला करना होगा......"

चलते समय उसने मुझे यह आशीर्वाद दिया–"मेरे वच्चे! ईश्वर तुम्हें सुरक्षापूर्वक तुम्हारे माता-पिता तक पहुंचा दे......"

यह मशीनगन रास्ते में मेरे वड़े काम आयी। सत्य यह है कि यदि मेरे पास यह मशीनगन न होती, तो मैं अपनी यात्रा से जीवित वापस न आता।

मैं एक दिन अपनी नाव में बैठा दूर क्षितिज पर डूवते हुए सूर्य को देख रहा था कि मैंने एक काली-सी चीज नाव के पास आते हुए देखी। मैंने जल्दी से दूरबीन लगा ली और फिर यह देखकर स्तब्ध रह गया कि वह एक बहुत वड़ी ह्वेल मछली थी।

सहसा मछली ने गोता लगाया। कुछ क्षणों के लिए वह नजर से ओझल हुई और उसके वाद जब वह पुनः उभरी, तो बिलकुल

मेरी नाव के निकट थी। ह्वेल अवश्य ही क्रोध में थी। वह मेरी नाव के साथ-साथ चलती रही और समुद्र में एक तूफान-सा पैदा करती रही। मैं सोचता रहा कि आखिर इस ह्वेल से कैसे छुटकारा पाया जाये। सहसा मुझे अमरीकी द्वारा मिली मशीनगन याद आयी। मैंने मशीनगन साध-कर ह्वेल को निशाना वना दिया।

मुझे नहीं पता कि मेरी गोली से ह्वेल मरी या नहीं, पर वह पुनः दिखाई नहीं दी और इस तरह एक बहुत वड़े संकट से मुझे मुक्ति मिल गयी।

कुछ दिनों के बाद मैं टोंगा टापू पहुंच गया। इस टापू में पर्याप्त आवादी है और यहां बाकायदा शासन-व्यवस्था है। मैं जब इस टापू में पहुंचा, तो यहां के बादशाह की मां के अंतिम संस्कार संपन्न किये जा रहे थे।

टोंगा की महारानी को मरे हुए छः महीने हो चुके थे और १५ जून १९६६ को उन्हें दफनाया जा रहा था। टोंगा में महारानी और राजा को उनके मरने के छः महीने बाद दफनाने का रिवाज है। टोंगा और

उसके अधीनस्थ टापुओं में एक माह बिताने के बाद मैंने अपनी नाव पुनः प्रशांत महासागर की तूफानी लहरों के हवाले कर दी।

दस दिन की यात्रा के बाद मैं कम्बार टापू पहुंच गया। समुद्र में इतना जबर्दस्त तूफान आया हुआ था कि मैंने कुछ दिन के लिए अपनी यात्रा स्थगित कर दी। कम्बार में मेरे दिन बहुत अच्छे बीते। हर रोज रात को मैं नृत्य-समारोह में भाग लेता और दिन-भर टापू में घूमता रहता।

तूफान समाप्त होने के बाद मैंने पुनः अपनी यात्रा शुरू की और कुछ दिनों के बाद फिजी द्वीप में पहुंच गया। यहां मेरे लिए एक नयी मुसीबत पैदा हो गयी। स्थानीय अधिकारियों ने मुझे किनारे पर रोक लिया और कहा कि जब तक ७५० रुपये जमा न कराओगे, तुम्हें द्वीप में कदम रखने की अनुमति नहीं दी जायेगी। मेरे पास केवल २६० रुपये थे। मैंने पूछा—" लेकिन आप ७५० रुपये क्यों लेना चाहते हैं?"

उत्तर मिला—"ताकि यदि तुम्हारे पास वापसी का किराया न हो, तो हम तुम्हारा टिकट खरीदकर तुम्हें हवाई जहाज पर सवार करा दें।"

मैंने उन अधिकारियों को बहुत समझाया कि मैं अपनी नाव पर अकेला सारे संसार की समुद्री-यात्रा पर निकला हूं और मुझे अभी अमरीका वापस नहीं जाना है, लेकिन उन्होंने मेरी बात नहीं मानी। उन्हें मेरी बात पर विश्वास नहीं हुआ। निदान, मैंने अमरीकी कान्सल से संपर्क किया, उसके बीच बचाव से मैं द्वीप में प्रवेश कर सका।

और अब इस द्वीप की एक रोचक कहानी भी सुनिये :

फिजी में एक लड़की से मेरी मुलाकात हुई। लड़की मुझसे आयु में बड़ी थी। वह मुझमें जरूरत से ज्यादा दिलचस्पी लेने लगी। फिर एक दिन वह बोली—"मैं भी तुम्हारे साथ तुम्हारी नाव में यात्रा करूंगी।" मैंने कहा—"मैं तुम्हें अपने साथ नहीं ले जा सकता। क्योंकि मैंने अपने माता-पिता को अकेले यात्रा करने का वचन दिया है।" किंतु वह नहीं मानी और जबर्दस्ती मेरी नाव में सवार हो गयी। उस लड़की से छुटकारा पाने के लिए भी मुझे अमरीकी कान्सल की सहायता लेनी पड़ी। वह तत्काल मेरी सहायता को आ पहुंचा और उसने स्थानीय पुलिस की मदद से उस लड़की को जबर्दस्ती मेरी नाव से उतारा।

लड़की निराश हो चीखें मार-मारकर रोने लगी। आज भी जब उसकी चीखें याद आती हैं, तो मेरा दिल उदास हो जाता है और मैं अपनी आंखें बंद करके कल्पना में उसे देखने लगता हूं।

यहां से चलने के चार दिन बाद मैं ऐसे टापू में पहुंचा, जहां सिर्फ एक बस्ती थी। उसके मुखिया ने मुझसे कहा—" दूसरे महायुद्ध के बाद तुम पहले अमरीकी हो, जो हमारे टापू में आये हो। इसलिए आज रात हम तुम्हारे सम्मान में एक बहुत बड़ा समारोह करेंगे। रात को जश्न हुआ और लगभग एक दर्जन पुरुष और स्त्रियों ने मेरे गिर्द

घेरा डालकर एक वड़ा उन्मादपूर्ण नृत्य किया। इस टापू में मुझे जापानियों की एक टूटी-फूटी पनडुब्बी भी दिखाई दे गयी, जिसे जापानी वहां छोड़कर चले आये थे।

मैंने इस टापू से पीने का पानी साथ लिया और आगे वढ़ा। किनारे पर वहुत-से लोग मुझे विदा करने के लिए देर तक खड़े रहे और मैं सोचता रहा कि संसार के हर मनुष्य के वीच एक संबंध अवश्य मौजूद है। बेशक इस संबंध का कोई नाम नहीं है; किंतु उसका बंधन सारे संसार में दिखाई देता है।

यहां से लगभग दो सौ मील पार कर लेने के वाद एक दिन मैं यों ही वक्त काटने के लिए मछली का शिकार कर रहा था कि सहसा मेरी नाव को एक झटका-सा लगा। मैं समझ गया कि किसी मछली ने मेरा कांटा निगल लिया है। मैंने वंसी उठाना चाहा; किंतु न उठा सका। "अवश्य ही यह कोई वहुत वड़ी मछली है," मैंने सोचा और फिर धीरे-धीरे डोर को अपनी ओर खींचा।

उस मछली का वजन चालीस पौंड था। मछली केवल भारी ही नहीं थी, निहायत सुंदर भी थी। दो दिन वाद जब सालोमन द्वीप पहुंचा और मैंने वहां रहने वाले हब्शियों को यह मछली उपहार में दी, तो वे वहुत प्रसन्न हुए। ये लोग वड़े अतिथि-प्रेमी थे। उन्होंने मुझसे कहा कि मैं अमरीका वापस न जाऊं, वल्कि इसी द्वीप में स्थायी रूप में रहने लगूं।

सालोमन द्वीप से प्रस्थान के वाद जब मैं खुले समुद्र में पहुंचा, तो मैंने यह महसूस किया कि समुद्र में वहुत तेज हवा चल रही है, जो सारे दिन चलती रही। मैं धड़कते दिल के साथ आगे वढ़ता रहा। रात को आकाश पर वादल छा गये। वर्षा की संभावना थी। इसलिए मैंने नाव की रफ्तार तेज कर दी।

रात को लगभग डेढ़ वजे मैं एक भयानक दुर्घटना का शिकार होते-होते बच गया। मैं तेजी से आगे वढ़ रहा था। सहसा मैंने महसूस किया, जैसे समुद्र में जबर्दस्त तूफान आने वाला है। चार-पांच मिनिट वाद सचमुच तूफान सिर पर आ पहुंचा। नाव बेकाबू हो गयी और केवल दस मिनिट के वाद एक समुद्री जहाज से टकराते-टकराते रह गयी, जो आस्ट्रेलिया जा रहा था। मेरी नाव और जहाज के बीच केवल दस गज की दूरी रह गयी थी। नाव मेरे काबू से वाहर थी और जहाज की ओर उछलती हुई बढ़ती चली जा रही थी। मैं समझ गया कि मेरा अंत निकट है। लेकिन यह

आज का दिन

पढ़कर रद्दी में फेंक दिये जाने वाले,
अखबार की तरह,
आज का दिन भी बीत गया,
लेकिन कोई उसे रद्दी में भी
खरीदने को तैयार नहीं
कारण, हम उसे पहले ही
भविष्य के कबाड़ी के हाथ
बेच चुके हैं।

—रामनारायण उपाध्याय

मेरा सौभाग्य था कि सहसा नाव की दिशा अपने आप बदल गयी और नाव दूसरी ओर बहने लगी।

पांच दिन तक मैं तूफान में घिरा रहा। किंतु मैंने साहस न छोड़ा। एक सप्ताह के बाद मैं न्यू-हेब्राइड्स पहुंच गया। यहां मेरे पिताजी मुझे मिलने के लिए उपस्थित थे, जिसकी मैंने कल्पना नहीं की थी। उन्होंने मुझे गले से लगा लिया और कहा —"मैं दो दिन से यहां तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था।"

पिताजी ने यह भी कहा —"अमरीका के सभी अखबारों में तुम्हारे इस अद्भुत कारनामे पर लेख छापे जा रहे हैं। एक अखबार ने मुझे पैसा दिया है कि मैं तुमसे न्यू-हेब्राइड्स में मिलूं और यात्रा के हाल पूछकर उस अखबार को समाचार भेजूं।" मैंने उन्हें बहुत-से फोटो दिये और अब तक की सभी घटनाएं भी लिखकर दीं।

न्यू-हेब्राइड्स टापू में शायद संसार की विचित्र सरकार है। यहां एक साथ फ्रांस और ब्रिटेन राज्य करते हैं। हर सरकारी इमारत पर दोनों का झंडा लहराता रहता है। पर जनता पर फ्रांसीसी जीवन का रंग छाया हुआ है।

न्यू-हेब्राइड्स के बाद मुझे असंख्य छोटे टापू मिले, जो संसार के सुंदरतम टापू हैं। इनमें कोई आबादी नहीं थी। मैंने सोचा— "हो सकता है इतनी सुंदरता का कारण यही हो कि यहां मानव देवता के कदम अब तक नहीं पड़े हैं।"

फिर मैं सावो पहुंचा। वहां मैंने एक अद्भुत चिड़िया देखी, जो छोटे मुर्गे के समान होती है। यह हवा में बड़ी तेजी से उड़ती है और अपने अंडों को जमीन में गड्ढा खोदकर दबा देती है। चालीस दिन बाद निश्चित समय पर वह गड्ढे की मिट्टी हटाकर अंडे तोड़ती है। अंडे से बच्चे निकलते हैं और तत्काल हवा में उड़ने लगते हैं।

५ जून को मैं हनोरिया पहुंच गया, जहां मुझे मां का तार मिला। मां ने मुझे आयु के अठारहवें वर्ष में कदम रखने की बधाई दी थी। हनोरिया से मैं चला, तो एक बार फिर समुद्र की तूफानी लहरों ने मुझे घेर लिया। नाव बेकार हो गयी, इंजन टूट गया। वायरलेस खराब हो गया। संसार से मेरा संबंध टूट चुका था। मुझे स्वयं नहीं पता था कि मेरी नाव कहां जा रही है।

चौदह दिन की इस डरावनी यात्रा के बाद मुझे धरती दिखाई दी। मैं किनारे पर उतरा, तो कुछ हब्शी खड़े थे। मैंने उनसे पूछा कि इस द्वीप का क्या नाम है? और जब उन्होंने उसका नाम बताया, तो मेरे आश्चर्य की सीमा न रही। मैं पुनः सालोमन द्वीप जा पहुंचा था। मेरे पास पीने का पानी लगभग समाप्त हो चुका था। इसलिए यहां मैंने अपनी बोतलों में पानी भरा। इंजन ठीक कराया। नाव की आवश्यक मरम्मत करायी और ईश्वर का नाम लेकर एक बार फिर नाव समुद्र में उतार दी।

अगले चौबीस दिनों में मेरी नाव ने ९०५ मील की दूरी तय की। पच्चीसवें दिन मैंने आस्ट्रेलिया के बंदरगाह डार्विन में प्रवेश

किया। मैं बेहद थक चुका था। २४ दिन की इस अकेली यात्रा ने मेरे मस्तिष्क को बिलकुल सुस्त कर दिया था। मेरी मनोदशा का अनुमान आप इसी से लगा सकते हैं कि प्राय: मैं अपनी बिल्ली से बातें करता था और जब वह उत्तर नहीं देती थी, तो उसे थप्पड़ मारकर बैठाता था।

डार्विन में आराम करने के बाद मैं ६ अगस्त को पुन: चल दिया। अब मेरी मंजिल थी दक्षिण अफ्रीका। जहां तक दृष्टि जाती थी, हिन्द महासागर फैला हुआ था। मुझे लगभग छ: हजार मील की यात्रा करनी थी। अब तक प्रशांत महासागर ने मेरा आतिथ्य किया था। अब मुझे हिन्द महासागर का बिन-बुलाया मेहमान बनना था। मैं सच कहता हूं, हिन्द महासागर में प्रवेश करने के बाद, जब पहली बार उसकी बिफरी हुई लहरें देखीं, तो मेरा दिल दहल गया। मुझे डर लगने लगा और मेरा डरना ठीक ही था। जैसे मेरी छठी इंद्रिय ने मुझे भविष्य के बारे में बहुत कुछ बता दिया था। अगर मैंने उसकी सलाह मान ली होती, तो मैं एक बहुत बड़ी चिंता से बच जाता।

मेरी पहली मंजिल थी कोकोस, जो १,९०० मील दूर था। अगली मंजिल थी मारिशस, जो कोकोस से २,४०० मील दूर था। पहली मंजिल पर मैं कुशलता से पहुंच गया। इसमें मुझे अठारह दिन लगे थे। कोकोस पर आस्ट्रेलिया का राज्य है। १८२७ में एक अंग्रेज ने इसे आबाद किया था। आज इसकी जनसंख्या केवल ४५० है। अधिकतर लोग मलय के हैं। सबके लिए मुफ्त मकान, मुफ्त बिजली और मुफ्त पानी का सरकारी प्रबंध है। जब कोई नया आदमी यहां रहने के लिए आता है, तो एक सप्ताह के अंदर उसे मुफ्त मकान मिल जाता है, लेकिन शर्त यह है कि उसे सपत्नीक होना चाहिये।
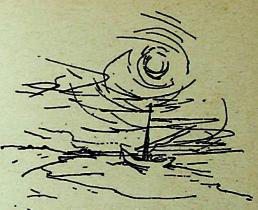
एक सप्ताह के बाद मैं कोकोस से चल दिया। पर काश ! मैं कोकोस से और एक सप्ताह बाद चला होता।

कोकोस से निकले हुए मुझे केवल अठारह घंटे हुए थे कि तूफानी वर्षा शुरू हो गयी। तूफान इतना तेज था कि रात को दो बजे मेरी आंख खुल गयी और उसके बाद एक क्षण के लिए भी मैं सो न सका।

मुझे प्रात:काल की प्रतीक्षा थी। परंतु प्रात:काल अपने साथ शांति के बजाय प्रलय लाया। क्योंकि दिन निकलने के साथ समुद्र

की लहरें नाव में प्रवेश करने लगीं। नाव पानी में लगभग डूब गयी। लहरों ने मुझे भी समुद्र में खींच लिया। मैं एक घंटे तक लहरों पर उछलता रहा और नाव पानी में डूबती और उतराती रही। आखिर मैं तैर-कर उसे पकड़ने में सफल हो गया और उससे इस तरह चिपक गया, जैसे जोंक आदमी की चमड़ी से चिपक जाती है। तीन घंटे तक मैं इसी तरह चिपका रहा।

तूफान तो समाप्त हुआ, मगर मेरा सारा सामान समुद्र की भेंट हो चुका था। केवल वह सामान बाकी रह गया, जो नाव के कमरे में बंद था। मेरी निराशा की सीमा न रही। मैं समझ गया कि अब मेरी मौत निश्चित है।

मेरे सामने २,३०० मील तक समुद्र-ही-समुद्र था और मुझे उसे पार करके मारि-शस पहुंचना था। मैंने अपने को भगवान की दया पर छोड़ दिया। नाव आगे बढ़ने लगी और हवा तेज थी, इसलिए उसकी गति भी बढ़ती गयी। उन्नीस दिन तक मुझे कोई परेशानी नहीं हुई। मैंने कम-से-कम पानी पिया, कम-से-कम खाना खाया; किंतु बीसवें दिन पुनः तेज तूफान आ गया और मैं पुनः समुद्र में गिर गया। यह मेरा सौभाग्य ही था कि मैं एक बार फिर अपनी नाव पर सवार होने में सफल हो गया। नहीं तो मैं समुद्र में रह जाता और नाव आगे बढ़ जाती।

दो दिन बाद मुझे धरती दिखाई दी। यह धरती मारिशस की थी। मैंने हिन्द महासागर की तूफानी लहरों पर विजय प्राप्त कर ली थी।

मारिशस में अमरीकी सरकार के प्रति-निधि ने अपने व्यय पर मेरी नाव की मरम्मत करायी। यहां से मैं गलागासे (मडागास्कर) आया और वहां से दक्षिणी अफ्रीका के बंदरगाह डर्बन।

डर्बन में मैं तीन महीने ठहरा। उसके बाद मैं पुनः अमरीका के लिए चल पड़ा। नाव वही थी। एकाकीपन वही था। समुद्र की लहरें वही थीं। मैं भी वही था। पर मेरा संकल्प नये सिरे से जवान हो चुका था।

अब जब भी मैं समुद्र की तूफानी लहरों को देखता हूं, मेरे चेहरे पर मुस्कान फैल जाती है। समुद्र ने मुझे यह पाठ सिखाया है कि मनुष्य को हर दशा में मुस्कराते रहना चाहिये; क्योंकि मुस्कान विजय की द्योतक होती है। मुस्कराने वाले कभी लड़ाई नहीं हारते।

★

दिवंगत पोप जान २३ वें अपने सेक्रेटरी कार्डिनल तार्दीनी को जब भी किसी काम से अपने पास बुलाते, तो वे काम छोड़कर उठते हुए हमेशा कहते– "मुझे जाना चाहिये। वे जो ऊपर हैं, मुझे बुला रहे हैं।"

एक दिन पोप जान को इस बात का पता लगा, तो उन्होंने तार्दीनी को बुलाकर बड़ी नरमी से कहा–"वे जो ऊपर हैं, वे स्वर्ग में निवास करने वाले परमप्रभु परमात्मा हैं। मैं तो सिर्फ तीसरी मंजिल पर रहने वाला एक मनुष्य हूं।"

★

अनमोल झील बैकाल

एक पुराने लोकगीत में बैकाल झील को 'शानदार पवित्र समुद्र' कहा गया है। क्यों? इसका कोई बुद्धिसंगत समाधान नहीं मिलता। बैकाल विश्वासघाती और निर्दय है। इसके तटों पर लकड़ी के क्रास से मंडित एकांत समाधियां हैं—उन लोगों की, जो इसकी गहराइयों में जान गंवा बैठे।

और इसकी पवित्रता के बारे में इसके सिवा कुछ ज्ञात नहीं है कि यहां के आदिवासी अपनी जवान बेटियों को शमन नाम की पहाड़ी से ढकेलकर इसकी भेंट चढ़ाया करते थे।

और समुद्र तो यह है ही नहीं, बल्कि निरी झील है। फिर भी इसके किनारों पर रहने वाले लोगों के लिए यह शानदार है, पवित्र है, समुद्र है।

मानव ने विश्वप्रसिद्ध सात आश्चर्यों का निर्माण अपने को महिमामंडित करने के लिए ही नहीं, बल्कि उस प्रकृति को चुनौती देने के लिए भी किया है, जिसके अनगिनत चमत्कार मनुष्य को शांत नहीं बैठने देते। और प्रकृति के उन्हीं चमत्कारों में से एक है बैकाल झील।

बैकाल सचमुच कल्पना से भी सुंदर है। किंतु इसके सौंदर्य में दक्षिण की रंग-रौनक नहीं है, अपितु उत्तर की शांत और कठोर सादगी है। यहां के रंग हल्के और कोमल हैं। झील और आकाश की नीलिमा, चट्टान

'स्पुतनिक' से साभार

के धूसर रंग, वृक्षों का भूरापन और हरीतिमा एक अद्‌भुत छबि की सृष्टि कर रही है। इधर-उधर सिर उठाकर खड़े, सुनहरी धारियों से युक्त संगमरमर के पत्थर भी अपनी शोभा से उस छबि में योग दे रहे हैं।

अब कुछ आंकड़ों की भी बात कर लें।

झील बैकाल ४०० मील लंबी, ५० मील चौड़ी तथा ५,७५० फुट गहरी है। सारे संसार में जितना ताजा पानी है, उसका पांचवां हिस्सा इसमें जमा है। इसकी कुल जलराशि ५,६०० घनमील है—वाल्टिक सागर या उत्तरी अमरीका की पांच बड़ी झीलों के बराबर।

लगभग ३०० नदियां बैकाल में अपना पानी उड़ेलती हैं, जबकि उसमें से निकलती है केवल नदी—अंगारा। इसका पानी किसी भी झील या समुद्र से अधिक पारदर्शी है और १२५ फुट की गहराई तक नंगी आंखों से आसानी से देखा जा सकता है।

गर्मी के दिनों में सूर्य की तपती किरणों से ६५० से ८०० फुट की गहराई तक इसका जल काफी तप जाता है और उसमें काफी गर्मी इकट्ठी हो जाती है। यही कारण है कि साइबेरिया की भीषण सर्दी में भी दिसंबर तक इसका पानी नहीं जमता। मगर जैसे इसकी कसर निकालने के लिए, बहुधा गर्मियों में भी बर्फ के टुकड़े झील पर तैरते हुए दिखाई पड़ जाते हैं।

बैकाल में १,८०० से अधिक किस्म की वनस्पतियां और प्राणी पाये जाते हैं, जिनमें १,३०० विश्व में कहीं अन्यत्र नहीं मिलते।

पाषाण-युग से आज तक बैकाल के किनारों पर अधिकांशतः शिकारी, मछुआरे और गड़रिये रहते आये हैं। पुरातत्त्ववेत्ताओं को आज भी यहां पर हड्डियों के वने मछली पकड़ने के कांटे, सूइयां, पत्थर की कुल्हाड़ियां और तीर की अनियां मिल जाती हैं। प्रस्तर-चित्रों के रूप में यहां के अतीत जीवन की झांकी भी मिलती है।

बैकाल के पश्चिमी किनारे पर संगमरमर की विशाल श्वेत चट्टानें झुकी हुई हैं, जिन्हें सगन-सावा कहते हैं। इनके निचले हिस्से में चौरस धरातल पर ६० से भी अधिक चित्र अंकित हैं। अपने रचना-विधान और भाव-वैविध्य के कारण ये बैकाल के पाषाण-चित्रों में सबसे अधिक दिलचस्प भी हैं और जटिल भी।

चित्रों का केंद्रबिंदु मानव ही है; लेकिन जंगली और पालतू पशु-पक्षियों को भी इसमें अंकित किया गया है। खासकर हंस को बहुत ही कलात्मकता और सावधानी से चित्रित किया गया है; क्योंकि शायद कुछ साइबेरिया-निवासी हंस को पूजते भी थे। तकनीक, शैली और भावों के अध्ययन से पता चलता है कि अधिकांश चित्र लगभग २,२०० से २,५०० वर्ष पूर्व बनाये गये थे।

यहां प्राचीन कुरिकन लोगों की संस्कृति के अवशेष भी मिले हैं। ये कुरिकन तुर्की मूल वंश के थे और वर्तमान याकुतों के पूर्वज थे। वे यहां छठीं शताब्दी से ग्यारहवीं शताब्दी तक रहे। वैदिन गुफाओं के प्रवेश-द्वार पर सफेद रंग से लिखे गये कुछ

शिलालेख भी दिखाई पड़ते हैं। उसके पास ही रंग-विरंगे केतुपट लटके हैं। शायद ये जलदेवता को भेंट में चढ़ाये गये थे।

विश्वास किया गया है कि ओल्खोन द्वीप की शमन गुफा को देखने के लिए चंगेज खां यहां आया था। प्राचीन काल में इस गुफा में एक मंदिर था, जिसमें कांसे, रजत और मिट्टी की वनी अनेक बौद्ध प्रतिमाएं और पूजा-सामग्रियां थीं। आज भी गुफा के चारों ओर चट्टानों पर प्राचीन बौद्ध प्रतीक और चिन्ह देखे जा सकते हैं।

मानव अनादि काल से बैकाल से परिचित है। लेकिन यह झील कितनी उपयोगी हो सकती है, इस पर उसका ध्यान अभी हाल ही में गया है।

सदियों से बैकाल की प्राकृतिक संपदा का केवल यही उपयोग होता रहा है कि उसमें से मछलियां पकड़ी जाती हैं। विविध मछलियों के अलावा मछुओं के लिए सबसे बड़ा आकर्षण है यहां की सील मछली, जो अपने मांस, चर्बी और खाल के कारण बहुत लाभकारी है। झील में मछलियां पहुंचती रहें, इसके लिए एक मत्स्य-उत्पत्तिशाला वनायी गयी है। एक विशेष शोध-संस्थान झील की समस्याओं का निरंतर अध्ययन करता रहता है।

साइबेरिया के विशाल प्राकृतिक संसाधनों का लाभ उठाने के लिए जो विशाल योजनाएं बनायी गयी हैं, उनके अंतर्गत झील के पानी से बैकाल-अंगारा जल-विद्युत्-स्टेशनों की शृंखला में बिजली उत्पन्न की जा रही है।

हजारों वर्षों से बैकाल के पर्वतीय ढलान पर विशाल साइबेरियन जंगल (तैगा) अछूता खड़ा था। लेकिन अब समय बदल गया है और आज घने जंगलों से लकड़ी की कटाई पूर्णतया वैज्ञानिक प्रणाली से की जा रही है, जिससे जंगल उजड़ता नहीं। इस प्रकार यहां पर प्रतिवर्ष १९ करोड़ ३० लाख घनफुट लकड़ी कटाई के लिए तैयार हो जाती है। इसमें प्रधानता है चीड़ और देवदार की। रेल्वे के 'स्लीपर' बनाने के लिए आरा-मशीन से युक्त एक कारखाना भी वना दिया गया है।

बैकाल के लकड़ी-उद्योग की एक नयी शाखा के रूप में सेल्युलोस का उत्पादन भी शुरू कर दिया गया है। सेल्युलोस के लिए अत्यंत शुद्ध जल आवश्यक होता है; जिसमें नमक की मात्रा बहुत थोड़ी हो; और बैकाल का पानी इस दृष्टि से आदर्श है और इसका उपयोग काफी बड़े पैमाने पर औद्योगिक कार्यों के लिए किया जा रहा है। झील के दक्षिणी किनारे पर एक विशाल सेल्युलोस कारखाना बनाया गया है। उसमें दूषित जल को शुद्ध करने के लिए एक शोधक-संयंत्र भी लगाया गया है और भविष्य में गंदगी झील में पहुंचे ही नहीं, ऐसी योजना भी बनायी जा रही है।

अब बैकाल के तट पर किसी ऐसे उद्योग की स्थापना की अनुमति नहीं दी जायेगी, जो झील या उसमें गिरने वाली नदियों के पानी को दूषित करे। यहां तक कि १९७०

तक नदियों में लट्ठे बहाने पर भी रोक लगा दी जायेगी। केवल सिगार की आकृति के लगभग १७,५०० घन फुट लकड़ीवाले गट्ठरों को ही झील में आने दिया जायेगा, उससे जल-दूषण का खतरा नहीं रहता।

प्राचीन काल से लोगों का अनुभव है कि बैकाल के किनारे पर बैठने या इसके पानी में नाव चलाने मात्र से तन-मन में उत्साह, स्फूर्ति और शक्ति का संचार हो जाता है। बीमार यहां अपने को स्वस्थ और प्रसन्न अनुभव करते हैं। दु:खी और उद्विग्न मन यहां शांत हो जाता है और थके-हारे आदमी में नयी शक्ति भर जाती है। अत: बैकाल का स्वास्थ्यवर्धक स्थान के रूप में उपयोग करने की बात सोची जा रही है।

झील के साथ ३५,००० वर्गमील के क्षेत्र में एक राष्ट्रीय उद्यान बनाने की योजना है। प्राकृतिक सौंदर्य और दृश्यों की विविधता की दृष्टि से यह उद्यान निश्चय ही अनुपम होगा। यहां के गहरे दर्रे, चित्रोपम झील, झरने और पहाड़ी चरागाह स्वीडन, नार्वे या स्विट्जरलैंड से किसी भी प्रकार कम न होंगे। यहां की पर्वतमालाएं और वनभूमियां कारपेथियन और बाल्कन देशों के समान आकर्षक होंगी।

यहां कृष्ण सागर के तटवर्ती क्रीमिया की भांति खुली धूप और खुश्क हवा होगी। ढलुवा रेतीले तटों और ७०° फारेनहाइट से लेकर ७७° फारेनहाइट तक तापमान वाले पानी के कारण यहां तैरना भी बड़ा आनंददायक होगा।

यह राष्ट्रीय उद्यान एक प्रकार से अनुसंधानशाला का भी काम करेगा। पर्वतीय वन, घास के जंगल और बर्फीले मैदान सभी कुछ यहां होने से जलवायु का बड़ा वैविध्य है। इसका विशेष अध्ययन किया जायेगा कि इस जलवायु के निर्माण में बैकाल का हाथ कहां तक है।

★

झील बैकाल के आस-पास के इलाके वनस्पतियों और जीवों की १,८०० जातियां हैं, जिनमें से १,३०० संसार कहीं अन्यत्र नहीं मिलती। झील में कल-कारखानों का गंदला पानी गिरने से इनमें से कई जातियों के नष्ट होने का खतरा देखकर साइबेरिया की विज्ञान एकेडेमी के अध्यक्ष ने इसकी रोकथाम के लिए आंदोलन चलाया है। बैकाल के विशिष्ट प्राणियों में से एक है, नन्ही सील मछलियां। इनकी संख्या ३५ हजार कूती गयी है। बर्फीले सागर-तट का यह जीव जमीन से घिरी इस झील में कैसे आ गया, यह विस्मय का विषय है। बैकाल का एक और अजूबा है छोटी-सी गोलोम्यांका मछली। बड़ी सुंदर होती है यह—सफेद और लगभग पारदर्शक। इसकी पूंछ में से अक्षर आसानी से अक्षर पढ़े जा सकते हैं। इसके शरीर के वजन का ३५ प्रतिशत चर्बी है और इस चर्बी में प्रति ग्राम के पीछे १०० यूनिट विटामिन ए होता है। अर्थात् तीन गोलोम्यांका मछलियां खाने से मनुष्य को दिन-भर के लिए आवश्यक विटामिन ए मिल जाता है।

★

दयानंद उपदेशक महाविद्यालय, यमुनानगर (अंबाला) में पढ़ते समय प्रायः देशी घी लाने के लिए सहारनपुर जिले के गांवों में जाता था। एक बार सायंकाल नकुड़ से बस पर सवार हुआ और सीट के पास ही घी का टीन रखकर बैठ गया। थोड़ी देर बाद सीटों की संख्या से अधिक यात्री सवार हो गये और बस चल दी। इतने में, उजले वस्त्र पहने एक सज्जन मेरे पास आये और पूछने लगे—क्या इस टीन पर बैठ सकता हूं? मैंने कहा—मुझे तो कोई एतराज नहीं; मगर यह घी का टीन है, कहीं इससे आपके वस्त्र खराब न हो जायें। उन्होंने बड़ी शालीनता से उत्तर दिया —"वस्त्र खराब हो गये, तो कोई बात नहीं; क्योंकि वस्त्र मेरे लिए हैं, मैं इनके लिए नहीं हूं।"

जीवन के लिए यह कितना उच्च तत्त्व-दर्शन है! सत्य ही है —"भोग्य हमारे लिए है, हम भोग्यों के लिए नहीं।"

—भद्रसेन, होशियारपुर

***

तब मैं प्रसिद्ध सिने-पत्रकार मनोरमा काठजू के अधीन काम करता था। एक बार वे बेंगलूर-मैसूर की सैर करके दफ्तर लौटीं, तो गाढ़े रंगों वाली साड़ी पहने हुए थीं। बड़े उत्साह से बताने लगीं—"देखिये, आपके शहर से कितनी सुंदर साड़ी ली है मैंने! और जानते हैं, कितने में? महज नौ रुपये में!" जब मैंने कोई प्रशंसा-भाव व्यक्त नहीं किया, तो कारण पूछने लगीं। मुझे कहना पड़ा कि ऐसी साड़ियां हमारे घरों में नौकरानियां पहनती हैं। इस पर बोली —"तब तो आपके यहां की नौकरानियों का 'एस्थेटिक सेंस' (सौंदर्यबोध) बहुत ऊंचा है।"

सचमुच, अपनी आंखों और सौंदर्य के बीच हम कितने परदे टांगे रहते हैं!

—नारायण दत्त, बंबई

***

जाने क्यों, अपने स्कूल के शिक्षक मौलवी साहब से मुझे चिढ़ थी। एक दिन मैं पानी के लिए कक्षा से निकला। मौलवी साहब किसी कक्षा को पढ़ा रहे थे। मुझे सामने से जाते देखकर बोले—"बेटा, उधर गंगा (चपरासी) होगा, जरा उससे मेरे लिए पानी भिजवा देना।" टंकी से पानी पीकर लौटते समय मैंने सोचा, कौन अब गंगा को ढूंढ़े, चुपके-से भाग चलूं। और मैं उनकी कक्षा के सामने से जोर से भागने लगा। तभी पीरियड समाप्त हो जाने से मौलवी साहब बाहर निकले। घबराकर मैं जोर से भागने लगा; मगर पांव फिसल जाने से मैं गिर पड़ा। मौलवी साहब ने लपककर मुझे उठा लिया और मेरे कपड़ों से धूल झाड़ते हुए पूछने लगे—"बेटा, चोट तो नहीं लगी!" उनका प्यार मुझे घायल कर गया।

—विष्णुचंद्र सिंह, वाराणसी

★

गजों लंबे दुश्मन से दो-दो हाथ

रामेश बेदी

शिकार की कहानियां आपने बहुत पढ़ी व सुनी होंगी, जिनमें अक्सर बताया जाता है कि किस तरह एक निरीह प्राणी को मौत के घाट उतार दिया गया। जंगल के शांत वातावरण में घाटियों को गुंजाती हुई बंदूक की आवाज उठी और उसके साथ ही एक जीव ने चीखते-कराहते और तड़फड़ाते हुए दम तोड़ दिया। जंगल की एक मोहिनी मूरत, जिसकी मस्तानी चाल को देखकर हम मुग्ध हुआ करते थे, जिसका सुहाना रूप मन को आह्लाद से भर दिया करता था, अब खून से लथपथ पड़ी है।

जंगल की बेजबान दुनिया की जिंदगी से इस तरह खिलवाड़ करने में मुझे जरा भी दिलचस्पी नहीं। इसलिए मैं इस तरह के शिकार नहीं किया करता।

शिकार के अन्य तरीके भी हैं। एक है कैमरे द्वारा शिकार करना, और दूसरा है जंगली जीवों को जिंदा पकड़ना।

मुझे दोनों ही किस्म के शिकार करने का काफी मौका मिला है। मेरी राय में ऐसे शिकार अधिक रोमांचक होते हैं। इनमें हमें लक्ष्य-प्राप्ति के लिए अधिक कठिन संघर्ष करना पड़ता है और जान का खतरा भी कहीं अधिक रहता है।

इस प्रकार का मेरा पहला शिकार बड़ा दिलचस्प रहा। इसमें मेरा पाला एक दैत्य से पड़ा था। यह दैत्य सोलह-फुटा अजदहा (अजगर) था।

खतरनाक अजदहों के कितने ही रोमहर्षक किस्से मैंने सुन रखे थे। शिकार की पुरानी किताबों में पढ़ा था कि इन अजदहों ने घने जंगलों में जाते हुए शिकारियों पर हमले किये थे। महाभारत के पराक्रमी वीर भीमसेन एक अजदहे के चंगुल से बड़ी मुश्किल से निकल पाये थे। कई किस्सों में बयान किया गया था कि अरने भैंसे जैसे बलशाली जानवरों की हड्डियों को अजदहों ने तोड़ दिया था और शेरों के साथ मुठभेड़ में उनका कचूमर निकाल दिया था। ऐसी घटनाएं भी दर्ज हैं कि गुलदार के साथ भिड़ंत होने पर इन्होंने गुलदार को पूरा-का-पूरा सटक लिया।

मुझे जिस अजदहे से जूझना पड़ा था, वह भी ऐसा ही खौफनाक था।

मैं उन दिनों शिवालक की तलहटी में रहा करता था। वह इलाका खूंख्वार जानवरों से भरा पड़ा है। हमारे पड़ोस के जंगल में हर रोज मौत का पैगाम लाने वाली कितनी ही लड़ाइयां हुआ करती थीं।

बस्ती के बाहर कामदारों की पांच-सात झोंपड़ियां थीं। इनके साथ जंगल लगता था। उसमें अड़ूसे की छोटी झाड़ियां दूर-दूर तक फैली हुई थीं। बीच-बीच में पसेंदू और सागवान के पेड़ उगे हुए थे।

रात को लगभग नौ बजे मैं विस्तर में घुस गया था। बंगले के नीचे से किसी के पुकारने की आवाज सुनाई दी। ऐसा लगा कि हड़बड़ाहट में कुछ लोग मुझे बार-बार पुकार रहे हैं। नीचे झांका, तो पांच-छ: लठैत खड़े थे।

मैं भी अपनी लाठी और टार्च लेकर उनके साथ हो लिया। ये लोग झोंपड़ियों में रहने वाले कामदार थे। इनका लीडर था किसना। वह अखाड़े में रोज मुगदर फेरा करता था और तरह-तरह की कसरतें करके उसने अपनी देह सुडौल बना ली थी।

मूंछों पर हाथ फेरते हुए किसना बोला—"साहब, आपको मेरे कहे पर यकीन न होगा, अपनी आंखों से चलकर देख लो। ऐसा जालिम मैंने नहीं देखा। बीस बरस इन जंगलों में नौकरी करते गुजर गये।"

मेरी जिज्ञासा बहुत बढ़ चुकी थी। मैंने कहा—"बात भी बतायेगा कि बस अपनी ही हांके जायेगा?"

बातूनी किसना ने कहना शुरू किया—"साहब, यह है न घसीटा, यह निपटने के लिए जंगल गया था। लालटेन इसके हाथ में थी। झाड़ियों में से इसे तरह-तरह की डरावनी आवाजें सुनाई देने लगीं। कभी तो गुर्राने की कई आवाजें एक साथ ऊंची उठती थीं। कभी टहनियां चरमराने की आवाजें आती थीं और उसके साथ ही कोई चीज धड़ाम से गिरती थी।"

पेड़ के ऊपर अजगर

किसना की बातें सुनते-सुनते मैं घटना-स्थल पर पहुंच गया। झाड़ी की ओट में पांच-सात गीदड़ खड़े थे, जो गुर्राते हुए कभी आगे बढ़ते थे और फिर अचानक एक झटके के साथ पीछे आ जाते थे। उनके सामने ही

फोटोग्राफ: राजेश बेदी

एक अजदहा लेटा पड़ा था, जिसकी कुंड-लियों के अंदर एक गीदड़ फंसा हुआ था।

इस दृश्य को देखकर सारा माजरा समझ में आ गया। झोंपड़ियों में रहने वाले कामदार रसोई का कचरा और जूठन वहीं झाड़ियों में फेंक देते थे। उसे खाने के लिए रात को गीदड़ों की टोलियां उधर आ निकलती थीं। जंगल की उस संकरी पटरी के अंदर ही कहीं इस अजदहे की मांद थी। इसने गीदड़ों को रोज इधर आते-जाते देख लिया था। इसी से आज यहां मोर्चा बनाकर बैठ गया था। ज्यों ही गीदड़ों की अनजान टोली पास से गुजरी, इसने एक गीदड़ को दबोच लिया। गीदड़ भी अपने साथी को यों ही नहीं छोड़ना चाहते थे।

अजदहे ने अपने सोलह-फुटे जिस्म के पिछले हिस्से में तो गीदड़ को जकड़ रखा था और अगले हिस्से से वह हमलावर गीदड़ों का मुकाबला कर रहा था। गुस्से में वह लप-लपाता और किसी गीदड़ के पास आ जाने पर कसकर वार करता। अजदहा एक दानव बन गया था और मुझे उसे जिंदा पकड़ना था। ऐसे दुर्लभ नमूने को मैं कैसे छोड़ता ?

हमें देखकर गीदड़ों की टोली भाग खड़ी हुई। अजदहे को दबाने के लिए मैंने लाठी बढ़ायी, तो उसने जोर से फुफकार छोड़ी। अपने निजी मामले में इंसान का दखल उसे पसंद नहीं था। लेकिन कजरारी रात में अचानक टार्चों के प्रकाश और इंसानों के हमले ने उसे हतप्रभ कर दिया। उसने मुकाबला करने का इरादा छोड़ दिया। पास ही पसेंदू का एक पेड़ था। वह सरपट उसके ऊपर चढ़ गया। पेड़ खूब घना था, उसकी टहनियां आपस में ऐसी गुथी हुई थीं कि उनमें अजदहे को तलाश पाना मुश्किल था।

अब मशालचियों का काम था। दो मशालें जलायी गयीं। अमावस का अंधेरा कुछ हद तक सिमटकर परे चला गया था। मशालों की फीकी रोशनी में मुझे अजदहा दिखाई दे गया। पर उसे ऊपर से तो नहीं पकड़ा जा सकता था। जलती हुई मशालें हम उसके मुंह के पास ले गये। उन्हें देखकर वह घबरा गया। बड़े-बड़े जानवरों को वह पटकी दे चुका था; लेकिन आग उगलने वाले जानवर से उसका कभी वास्ता नहीं पड़ा था। फिर भी वह टस-से-मस न हुआ।

कामदारों की झोंपड़ियों में से मैंने एक लंबा बांस मंगवाया। उसके सिरे पर एक तिरछी लकड़ी बंधी थी। इससे लोग जलाने के लिए सूखी टहनियां तोड़ा करते थे।

अजदहे के लंबे जिस्म के बीचों-बीच मैंने बांस के सिरे को फंसाया और लगा खींचने। पर उसने कई जगह से अपनी काया कस-कर शाखाओं से लपेट रखी थी। उसे इस सुरक्षित जगह से बाहर निकालना आसान काम नहीं था।

किसना पहलवान और दूसरे लठैत मेरे साथ लग गये। हम ज्यों-ज्यों अजदहे को खींचते थे, वह अपनी पकड़ को और भी मज-बूत करता जाता था।

हमने अब लड़ाई का दाव बदला। जोर लगाने की बजाय एक साथ मिलकर जल्दी-

जल्दी कई झटके दिये। यह उपाय कारगर साबित हुआ और अज-दहा धड़ाम-से नीचे आ गिरा।

मुंह खोलकर हमला करते हुए उस दानव को देखकर मशालची भाग खड़े हुए। किसना पहलवान अड़ूसे की झाड़ियों में उलझकर गिर पड़ा।

अंधेरे में अजदहे को पकड़ने की कोशिश करना खतरे से खाली न था। इधर मेरे कामदारों का मनोबल गिर गया था, और उधर अजदहे ने पहले से अधिक रौद्र रूप धारण कर लिया था। वह अपने सबसे खौफनाक दुश्मन यानी आग उगलने वाले जानवरों को तो भगा ही चुका था। बाकी दुश्मनों से भी निपटने की उसमें हिम्मत थी। जीभ लपलपाकर वह मुझे ललकार रहा था। उसकी आंखें ऐसी चमक रही थीं, मानो चक्षु-गोलकों में दो छोटे-छोटे अंगारे जड़े हुए हों। वह विशाल दैत्य अपने पूरे विकराल रूप में आ चुका था।

मेरी मुट्ठी में कैद होने पर भी दानव ने मुंह खोलकर हमला किया।

इस नाजुक घड़ी में ऐसी बुजदिली दिखाने पर मैंने मशालचियों को फटकारा और जैसे-तैसे आगे आने को राजी किया।

अब एक क्षण भी जाया करना मुनासिब नहीं था। कामदार किसी भी हालत में अज-दहे को जंगल में जिंदा नहीं छोड़ना चाहते थे। उन्हें खतरा था कि किसी दिन वह उनके बच्चों पर हमला कर सकता है। उसे मारने के लिए वे एक बंदूकची को भी बुला लाये।

अजदहे को मारना बड़ा आसान था; लेकिन मेरा इरादा उसे बिना जख्मी किये पकड़ने का था। यह काम जोखिम से खाली नहीं था। मैं ज्यों ही लाठी बढ़ाता, वह वार करने से न चूकता।

मुझे एक नयी तरकीब सूझी। किसना की कमर में बंधी चादर को मैंने खुलवाया। उसका एक पल्ला अपने हाथ में थामकर मैंने लटकती हुई चादर का दूसरा सिरा अजदहे की तरफ उछाला। उसे अपना

दुश्मन समझकर अजदहे ने मुंह खोलकर चोट की। चादर का पल्ला अजदहे के दांतों के अंदर फंस गया। अब इससे छुटकारा पाना अजदहे के लिए आसान न था; क्योंकि उसके नुकीले दांत पीछे की तरफ मुड़े रहते हैं।

मुझे दाव लगाने का अच्छा मौका मिल गया। मैंने लाठी से उसकी गर्दन दबोच ली। वह तिलमिला उठा। उसके खून का कतरा-कतरा जोश मार रहा था। जिस्म को इधर-उधर पटकियां देकर वह किसी तरह छूटना चाहता था।

मैंने हिम्मत बटोरी और बढ़कर उस दैत्य की गर्दन को अपने दायें हाथ से दबोच लिया। उसने पूंछ से मेरी टांगों पर वार किया और एक टांग को कुंडली में जकड़ने में कामयाब भी गया।

मेरे और अजदहे में दाव-पेच एक समान चल रहे थे। मेरी मुट्ठी में उसकी गर्दन थी, तो उसकी पूंछ में मेरी टांग। बड़ी नाजुक घड़ी थी। खतरा यह था कि कहीं वह अपनी कुंडलियों में मेरी छाती या पेट को न भींच ले। यदि ऐसा हो गया तो बस, मेरी अंदर की सांस अंदर और बाहर की बाहर ही रह जायेगी।

चादर से अपने मुंह को छुड़ाने के लिए अजदहा बार-बार जोरदार झटके दे रहा था। मेरी मुट्ठी थकान से हारती जा रही थी। मुट्ठी का ढीला पड़ना था कि मेरे लिए मौत का पैगाम आ पहुंचता। मैं अच्छी तरह जानता था :

हुई जो मुट्ठी जरा भी ढीली,
यह सांप काटेगा फिर पलट के।

मेरे कुछ कामदार तो इस कशमकश को देखकर दूर भाग गये थे। किसना और उसका एक साथी पूंछ को उतारने के लिए जद्दोजहद कर रहे थे। सभी लोग पसीने से तर हो गये थे।

अजदहे की पकड़ को ढीला करने का एक उपाय मुझे सूझा। धरती पर पड़ा एक पत्थर उठाकर मैंने अजदहे की रीढ़ की हड्डी पर बार-बार चोट की। इस जगह खाल पतली होती है, इसलिए यहां पर की गयी हल्की चोट भी वह बहुत ज्यादा महसूस करता है। उपाय कारगर साबित हुआ।

सोलह-फुटे दैत्य के जिस्म को चार जगह से लाठियों से कसकर दबा लिया। दो जगह रस्सियां बांध दी गयीं। इस तरह अच्छी तरह काबू में करके उसे बोरे में बंद कर लिया गया। उसे मैंने एक जालीदार पिंजरे में रखकर पाल लिया। मेरे पहले शिकार की यह जिंदा ट्रोफी उन ट्रोफियों से कहीं अच्छी थी, जो शिकारियों की बैठकों में मुंह बाये टंगी रहती है।

इस जिंदा ट्रोफी को हम खिलाते-पिलाते थे, नहलाते थे और हर तरह से उसकी सेहत का खयाल रखते थे।

अपने हाव-भावों और क्रिया-कलापों से यह हमारा दिल बहलाता था। सबसे महत्त्व की बात तो यह थी कि इसे पालकर मैंने अजदहों की आदतों के बारे में बहुत-सी बातें सीखीं।

★

किसे नहीं चाहिये ये खजाने?

डी० इंद्र

यूरोप के हर बड़े शहर के व्यस्त कहवा-खानों में आपको ऐसी कहानियां सुनने को मिलेंगी, जिनमें आप अनचाहे भी उलझ पड़ेंगे। ये कहानियां होंगी खजानों की—छोटे-मोटे खजानों की नहीं, करोड़ों की राशि के छिपे खजानों की। अखबारों में ऐसे समाचार भी पढ़ने को मिल जायेंगे कि अमुक व्यक्ति जंगल में एक ताजा खोदे गये गढ़े में मरा पाया गया; गढ़े की तली में कुछ आभूषण चमक रहे थे; मृतक की मुट्ठी में कुछ सोने के सिक्के मिले।

छिपे खजानों की कहानियां १९४५ से प्रकाश में आनी शुरू हुई हैं और आजकल छिपे खजानों की खोज जगह-जगह तेजी से चल रही है। ये खजाने जर्मन नाजियों के हैं, जिन्होंने हर विजित देश को लूटकर बेशुमार दौलत इकट्ठी की थी। जब मित्रराष्ट्रों की फौजें आंधी की तेजी से आगे बढ़ीं, तो भागते नाजियों को इतना अवसर नहीं मिल सका कि वे उन खजानों को भी अपने साथ ले जा सकें।

उन्होंने खजाने छिपाने की कोशिश की। जल्दी में कई खजाने तो ऐसी जगह फेंक दिये गये कि जैसे उन्हें कभी निकालने की जरूरत भी पड़ सकती है, यह बात मानो फेंकने वालों के दिमाग में आयी ही न हो। खजाने काफी विशाल थे। इसलिए उन्हें छिपाने में काफी आदमियों की जरूरत पड़ी थी।

छिपाने वालों में से कई तो मर गये, पर एक-दो बच भी निकले, जिनसे खबर उड़ती-उड़ती एक से दो और फिर दो से काफी लोगों तक जा पहुंची। इसके बाद तो खोज के साथ ही हत्याओं का भी दौर चला। कुछ खजाने मिले, पर अभी बहुत से छिपे हुए हैं। कहा जाता है कि कोई दो अरब रुपयों के मूल्य का सोना, हीरे-जवाहरात अब भी पहाड़ी गुफाओं, झीलों और तालाबों तथा घने वनों में पहाड़ी नालों के तलों में छिपे पड़े हैं।

ज्यादातर खजाने इटली, आस्ट्रिया और प्रशांत महासागर में हैं। कहा जाता है कि इटली की कोमो झील में अगाध संपत्ति छिपी पड़ी है। उसकी खोज का काम आज भी जारी है। कोमो झील का आधे से अधिक तल छाना जा चुका है; पर परिश्रम के अनुपात में सफलता नहीं मिली है। कोमो झील पर काफी हत्याएं भी हो चुकी हैं।

हिटलर का भी ऐसा ही एक खजाना

इटली के ब्रेनर दर्रे के पास कहीं छिपा पड़ा है। हिटलर ने लगभग चार करोड़ रुपयों का सोना एक वायुयान में लादकर इटली भेजा। यान जब ब्रेनर दर्रे के पास पहुंचा, तो दुर्घटनाग्रस्त होकर गिर पड़ा। यान के साथ ही सवार नष्ट हो गये, पर वह अरक्षित सोना वहीं पड़ा रहा।

एक दिन कुछ जर्मन सैनिक वहां पहुंचे। बक्सों पर स्वस्तिक चिन्ह देखकर उन्हें यह समझते देर नहीं लगी कि यह सोना किसका है। उन्होंने उसे ब्रेनर दर्रे के ही ऊबड़-खाबड़ क्षेत्र में छिपा दिया। वे जर्मन सैनिक तो बाद में इटली में काम आ गये, पर एक अधिकारी की डायरी मिलने से खजाना छिपाने की जगह का पता चल गया। उस जगह की खोज ब्रेनर दर्रे के असमतल क्षेत्र में आज भी हो रही है।

यह प्रमाणित हो चुका है कि मुसोलिनी का विशाल खजाना इटली की कोमो झील की अगाध जलराशि में पड़ा है। उसका मूल्य कोई तीस करोड़ रुपये आंका गया है। जब मुसोलिनी ब्रिटिश और अमरीकी सेनाओं से बचने के लिए भाग रहा था, तो उसने खजाने से भरे १०० संदूक कोमो झील में फिंकवा दिये थे। जिन आदमियों ने खजाना फेंकने का काम किया था, उनमें तीन आज भी जिंदा हैं; पर पता केवल एक का ही लगा है और वह भी चुप्पी साधे बैठा है।

फील्ड मार्शल कैसरलिंग के खजाने की कीमत कोई १७ करोड़ रुपये बतायी जाती है। कहते हैं कि उसने अपने अधीनस्थ कर्मचारियों की सहायता से बहुत धन इकट्ठा कर लिया था; परंतु वापस भागते समय वह खजाना अपने साथ न ले जा पाया। उसके छिपने के स्थान के बारे में कई कहानियां प्रचलित हैं, जिनमें से अधिकांश के अनुसार यह वेनिस के आस-पास कहीं है।

कैसरलिंग के खजाने की कुछ चीजें १९६२ में वेनिस में दिखाई दीं। जिन लोगों के पास ये चीजें पायी गयीं, उन्होंने यही कहा कि हमने इन्हें अमुक व्यक्तियों से खरीदा है; लेकिन खोज करने पर उन अमुक व्यक्तियों का कहीं सूराग नहीं मिला। इससे यह साबित होता है कि कुछ लोग उस खजाने का पता जानते हैं, पर छिपे रहना चाहते हैं।

रेगिस्तान की लोमड़ी (डेजर्ट फाक्स) कहे जाने वाले फील्ड मार्शल रोमेल के खजाने की कीमत साढ़े छः करोड़ से लेकर ६५ करोड़ रुपये के बीच आंकी जाती है! यह खजाना रोमेल ने संदूकों में भरकर उत्तरी अफ्रीका से गुप्त रूप से इटली भेजा था। जिस बजरे में संदूक लादे गये थे, वह कोर्सिका के उत्तर-पूर्वी किनारे पर तूफान में फंस गया और मित्रराष्ट्रों की नौसेना के विध्वंसकों ने भी उसे देख लिया। तब अधिकांश खजाना बस्टिया से पंद्रह मील दूर १८० फुट गहरे पानी में फेंक दिया गया। बचे हुए संदूक कोर्सिका के तट पर कहीं छिपा दिये गये।

रोमेल के इस कोष का पता जानने का दावा करने वाले बहुत से व्यक्ति, बुरी तरह

मारे गये। एक जर्मन व्यक्ति अभी जीवित है, जो अपने को उस वजरे का नाविक बताता है। उसका कहना है कि उसने इस खजाने का सारा विवरण कई बैंकों के लाकरों में जमा करा दिया है और अपना बीमा भी करा लिया है।

पालेर्मो के आस-पास एक नाजी यू-बोट डूबी पड़ी है, जिसमें कोई साढ़े छः करोड़ की राशि छिपी बतायी जाती है। कहते हैं कि यह राशि कई नाजी अधिकारियों की सम्मिलित संपत्ति थी, जो उन्होंने सिसली में लूटकर इकट्ठी की थी।

जब मित्रराष्ट्रों की सेनाओं का दबाव बढ़ने लगा, तो लूट का सारा माल एक जर्मन यू-बोट में लादा गया। बोट के चालक को जिनोआ (इटली) पहुंचने का आदेश दिया गया, जहां से ट्रकों द्वारा उसे बावेरिया ले जाया जाता। पर वह यू-बोट पालेर्मो के पास दुर्घटना-ग्रस्त होकर डूब गयी। डूबते समय उसने एक रेडियो सिग्नल भी भेजा था।

काफी खोज करने पर भी आज तक उसके डूबने के सही स्थान का पता नहीं चला है। खोज आज भी चल रही है।

इटली में नाजियों का एक निपुण गेस्टापो दल था। उसका काम था खतरनाक व्यक्तियों को ठिकाने लगाना। इस दल के सदस्यों ने बहुत धन इकट्ठा किया था। ये अपने शिकारों को जीवित छोड़ने का आश्वासन देकर उनसे लंबी रकमें ले लेते थे और फिर उन्हें मार भी डालते थे। दल के सदस्यों ने भागते समय लूट का सारा माल एकत्र करके रोम में कहीं छिपा दिया।

इटली की पुलिस के पास विवरण मौजूद है कि किस तरह उनमें से दो गेस्टापो एजेंट इस खजाने की तलाश में १९५४ में रोम आये थे। शायद वे किसी बात पर झगड़ पड़े थे; क्योंकि एक आदमी के सिर में गोली लगी थी और दूसरा छुरे के घावों से मरा था। उनके पास कुछ सोने के सिक्के और हीरे-मोती मिले थे। उसी दल का एक सदस्य आज भी जेल में है, पर वह कुछ भी नहीं बताता है।

नाजियों ने लाखों निरीह लोगों की बड़े सुनियोजित ढंग से हत्या की थी। सताये जाने वालों में बहुत-से काफी अमीर भी थे। लोगों का सारा माल लूटा गया, यहां तक कि उनके दांतों में लगा सोना भी नहीं छोड़ा गया। जब जर्मनी बिखरने लगा, तो इस लूट की अधिकांश राशि को संदूकों में बंद करके 'आर्मी रिकार्ड', 'सीक्रेट डाक्युमेंट्स' आदि के लेबल चिपकाकर उन्हें ट्रेनों और ट्रकों द्वारा आस्ट्रिया के पश्चिमी पहाड़ी प्रदेश और बावेरिया में पहुंचाया गया और वहीं छिपा दिया गया।

१९४५ से आज तक आस्ट्रिया में इस लूट का कोई पांचवां हिस्सा सामने आया है। बावेरिया में छिपी राशि का आज तक कोई पता नहीं चल सका है।

इसके अलावा सैकड़ों छोटे खजाने भी इधर-उधर छिपे हुए हैं। मई १९६१ में पश्चिमी आस्ट्रिया में दो पुलिसमैनों ने बर्गेंज के जंगल में एक आदमी को पकड़ा,

जा एक गड्ढे में से लोहे का संदूक निकाल रहा था। संदूक में से कुछ हीरे-जवाहरात आभूषण एवं सोने की सिल्लियां आदि निकलीं। निश्चय ही यह माल द्वितीय महायुद्ध की लूट का था। वह आदमी युवा था, इसलिए यह तो स्पष्ट था कि वह नाजी अधिकारी नहीं हो सकता था। संभव है, उसने किसी नाजी अफसर को शराब पिलाकर उसके मुंह से सारी बात उगलवा ली हो और फिर उसका काम तमाम कर दिया हो।

स्विट्जरलैंड के बैंकों में कई ऐसे खाते हैं, जिनमें करोड़ों रुपये जमा हैं और पिछले दस-पंद्रह साल से जिनकी किसी ने खोज-खबर नहीं ली है। ऐसे हजारों लाकर हैं, जिनमें पिछले कई सालों से कोई कुछ निकालने-रखने नहीं आया है। शायद इनके मालिक मर चुके हैं।

स्विस सरकार इस समस्या पर विचार कर रही है कि इन लाकरों का क्या किया जाये। संभव है कि जब इन्हें खोला जाये, तो इनमें अपरिमित मूल्य के हीरे-मोती व स्वर्णाभूषण निकलें।

गिरि-कंदराओं, पेड़ों के खोखले तनों, तालाबों व झीलों के तलों व इधर-उधर जो विशाल खजाने छिपे हुए हैं, उनका कोई मालिक नहीं है। जो उन्हें खोज लेगा, ये उसी को मिल जायेंगे। सरकार राजस्व-कर के रूप में थोड़ी-सी राशि अवश्य लेगी। लेकिन इसमें खतरे भी बहुत हैं। फिर भी ऐसे लोगों की कमी नहीं, जो सब कुछ छोड़कर इन खजानों के पीछे जी-जान से पड़े हुए हैं।
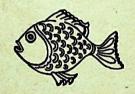
गाड़ी में एक वृद्धा के सामने बैठा शहरी लड़का इतमिनान से चुइंग-गम चबा रहा था। कुछ देर बाद वह उठकर उसके पास बैठी और बोली —"बेटा, तुम इतनी देर से मुझसे बातें कर रहे हो; लेकिन ऊंचा सुनती हूं, सो एक शब्द भी न सुन सकी।"

* * *

रात को अंधेरी गली में से गुजरते हुए सज्जन के सामने अचानक एक अजनबी आकर खड़ा हो गया।

"तु-तु-तुम क्या चाहते हो ?" सज्जन ने हकला कर पूछा।

अपरिचित ने ठंडे स्वर में कहा—" आप बड़े दयालु लगते हैं। क्या आप मुझ अभागे की सहायता करेंगे, जो भूखा और बेरोजगार है और जिसका इस दुनिया में कोई नहीं सिवा इस रिवाल्वर के।"

—प्रेमप्रकाश वर्मा

☆

पोलैंड के कार्डिनल विसजिन्स्की रेलगाड़ी से रोम जा रहे थे। गाड़ी पौना घंटा वीनिस में रुकती थी। वहां फादर रोंकाल्ली (जो बाद में पोप जान बने) उनसे मिले और उन्हें किश्ती की सैर करने की दावत दी। विसजिन्स्की को ग्रांड कैनाल की सैर इतनी मनोरंजक लगी कि उन्हें समय का कोई खयाल न रहा। आखिर जब खयाल आया, तो उन्होंने घड़ी देखी। "ओह, गाड़ी तो निकल गयी!" उनके मुंह से निकला।

रोंकाल्ली के ओंठों पर शरारत-भरी मुस्कराहट आयी और उन्होंने कहा—"चिंता न कीजिये। किश्ती में हमारे पीछे जो आदमी बैठा हुआ है, वह स्टेशन-मास्टर है। मैं जानबूझकर उसे अपने साथ ले आया था। जब तक वह यहां है, गाड़ी नहीं छूटेगी।"

* * *

पोप जान के माता-पिता गरीब थे और अंगूर के बागों में बहुत कड़ी मेहनत करके गुजारा किया करते थे। पोप जान को वे दिन कभी भूले नहीं। एक बार किसी राजनीतिज्ञ के इस कथन पर कि चुनाव में हार जाने पर आदमी तबाह हो जाता है, पोप जान ने कहा—"राजनीति में हमेशा उतार-चढ़ाव हुआ करते हैं। आदमी को सिर्फ तीन चीजें तबाह करती हैं—स्त्रियां, जुआ, और खेती-बाड़ी। मेरे पिताजी ने अपनी तबाही के लिए इनमें से सबसे उकताहट-भरी चीज चुनी थी—खेती-बाड़ी।"

* * *

एक बिशप कुछ ही समय पहले बिशप के पद पर नियुक्त हुआ था। उसने एक बार पोप जान से कहा—"इस नये ओहदे की जिम्मेदारियां इतनी ज्यादा हैं कि मैं सो नहीं पाता हूं।" इस पर पोप नरमी से बोले—"यही बात शुरू-शुरू में मेरे साथ भी घटी। जब मैं पोप के ओहदे पर नियुक्त हुआ, मुझे भी नींद नहीं आया करती थी। लेकिन एक दिन सपने में मैंने एक देवता को देखा। उसने मेरे कान के पास मुंह लाकर धीमे-से कहा—'जियोवान्नी, अपने काम में इतनी दयानतदारी से मेहनत न करो।' उसके बाद से मुझे बहुत अच्छी नींद आने लगी।"

* * *

पोप जान मृत्युशय्या पर पड़े थे और लोग बड़े चिंतित थे। चारों ओर उदासी का वातावरण था। उस विषाद को कम करने के लिए पोप जान ने अपने चारों ओर खड़े लोगों की ओर नजर घुमाते हुए मुस्कराकर कहा—"मेरे लिए इतनी चिंता न कीजिये ...... मैं लंबी यात्रा के लिए तैयार हूं। मैंने अपना सारा सामान बांध रखा है। अब किसी भी समय मैं रवाना हो सकता हूं।"

क्या आप विश्वास करेंगे कि अभी कुछ समय पहले वह कष्टदायक खांसी से परेशान थी। उसने ग्लायकोडिन लिया और ग्लायकोडिन लेते ही उसकी खांसी तुरंत और पूर्णतया गायब हो गयी।

खांसी पर सम्पूर्ण नियंत्रण के लिए ग्लायकोडिन से बढ़कर कोई दूसरा इलाज नहीं।

ग्लायकोडिन सभी पीड़ित भागों से खांसी को दूर भगाकर आपको इस प्रकार आराम पहुंचाता है :

- **दिमाग में**—खांसी के हमले पर नियंत्रण करता है।
- **गले में**—खराश को मिटाता है और जकड़न को दूर करता है।
- **छाती में**—जकड़ी हुई स्नायुओं को आराम मिलता है और सांस लेने में आसानी होती है।
- **फेफड़ों में**—कफ को ढीला करके बाहर निकालता और खांसी को दूर भगाता है।

Alembic

ग्लायकोडिन

टर्प वसाका

खांसी की विश्वस्त और सबसे ज़्यादा बिकने वाली घरेलू औषधि

everest/639d/ACW/hin

वार्षिक मूल्य रू. १४) (यह प्रति रू. १–३०

जनवरी (१-१-१९७०) मूल्य रु. १-३० Regd. No. MH 260